पुस्तक मळवानुं ठेकाणुं—

वकील मोहनलाल हिमचंद–पादरा (स्टेट वडोदरा).

वडोदरा—नियापुरामां, लुहाणामित्र स्टीम प्रि. प्रेसमां, विठ्ठलभाई आशाराम ठक्करे ता. १-९-१८ ना रोज प्रकाशक-शाह लल्लुभाई करमचंद दलाल, चंपागली-मुंबाई-ने माटे छापी प्रसिद्ध कर्युं.

निवेदन.

श्रीमद् बुद्धिसागरसूरि ग्रन्थमालांक ४१ तरीके श्रीमद् देवचंद्र प्रथम भाग बहार पडे छे. जैन कोमनां अढारमी सदीना अंते अने ओगणीसमी सदीना प्रारंभमां विद्यमान खरतरगच्छीय पंडित श्रीमद् देवचंद्रजी थएल छे. तेमने जे जे कृतिओ बनावी छे ते प्रस्तावनामां पादराना वकील मोहनलाल हेमचंदभाइए जणावी छे. श्रीमद् आनंदघनजी, श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्यायनी पेठे जैन कोमनां महात्मा ज्ञानी तरीके श्रीमद् देवचंद्रजी महाराज प्रख्यात थएल छे. श्रीमद् देवचंद्रजी महाराजना ग्रन्थोनो जैन कोममां आदर साथे प्रचार थयो छे, थाय छे अने भविष्यमां थशे. श्रीमद् देवचंद्रजी महाराज जेवा द्रव्यानुयोगी गीतार्थथी जैनसंघ अने खरतरगच्छनी महत्तामां वृद्धि थएल छे. श्रीमद् देवचंद्रजी महाराजनो तपागच्छीय आचार्य मुनिवरो साथे घणो सारो संबंध हतो. श्रीमद् उपाध्यायजी यशोविजयजीकृत ज्ञानसार ग्रन्थ पर तेमने ज्ञानमंजरी नामनी टीका रचेली छे अने दिगंबरी शुभचंद्राचार्यकृत ज्ञानार्णवनो ध्यानचतुष्पदी ग्रन्थमां सार खेंची सर्व गच्छोना महत्पुरुषो प्रत्ये शुभानुराग दर्शावी भविष्यना जैन साधुओ माटे स्वस्वसंजीवन करी गया छे. श्रीमद् द्रव्यानुयोगी गीतार्थ हता. तेमनुं चारित्र केवुं उत्तम हतुं ते तेमना बनावेला ग्रन्थोमांना वाक्योथी स्पष्ट थाय छे, अने खरतरगच्छना अद्यपर्यंत थएल सर्व आचार्यो मुनिवरोमां श्रीमद् देवचंद्रजी महाराज प्रथम नंबरे आवे छे. एवा महापुरुषनी कृतिओने छपावी बहार करवामां आवे तो तेथी जैन कोम तथा जैनेतर

भारतबंधुओपर महान् उपकार करी शकाय एवो विचार प्रथम श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजीना मनमां प्रगट्यो अने तेमणे पादरा निवासी सुश्रावक वकील मोहनलाल हेमचंदभाइ, माणेकलाल, प्रेमचंदभाइ, मंगळभाइ वगेरे श्रावकोने जणाव्यो अने तेओए श्रीमद् देवचंद्रजी महाराजकृत सर्व कृतियोने छपावीने बहार पाडवानो निश्चय कर्यो छे, तथा प्रवृत्ति करी छे. तेना फल तरीके श्रीमद् देवचंद्र प्रथमभाग छपाइने बहार पड्यो छे अने द्वितीय भाग अल्पमासमां छपाइने बहार पडशे एम आशा रहे छे. द्वितीय भाग छपाववानो आरंभ करवामां आव्यो छे अने तेमां कया ग्रन्थो छपाववामां आवशे तेनुं लीष्ट पण प्रस्तावनामां दर्शाववामां आव्युं छे. श्रीमद्नी कृतियो छपाववामां मुख्य भाग लेनार अने तेमना रागी पादराना वकील श्रावक मोहनलाल हिमचंदभाइ छे. तेमणे त्रणसेना आशरे पत्रो लखीने ज्यां त्यां मुनिराजो तथा श्रावकोने मळीने श्रीमद्नी कृतियो भेगी करी छे अने पोताना अमूल्य वखतनो भोग आपीने श्रीमद्नी कृतियो छपाववानी व्यवस्था करी छे तेथी तेमने धन्यवाद घटे छे. श्रीमद्ना ग्रन्थोना अभ्यासथी तेमना रागी बनेल पादरा निवासी द्रव्यानुयोगना अभ्यासी सुश्रावक शा. माणेकलाल वरजीवनदास तथा शा. प्रेमचंदभाइ दलसुख तथा वडु निवासी छगनलाल लक्ष्मीचंद तथा भाइलालभाइ चुनीलाल वगेरेए वकीलजी मोहनलाल हिमचंदभाइनी पेठे श्रीमद्नी कृतियो छपाववामां आर्थिक सहायनी व्यवस्थामां सारो भाग लीधो छे तेथी तेमने धन्यवाद घटे छे. वडोदरा–लुहाणामित्र स्टीम प्रेसना मालीक विट्ठलभाइ आशारामे जल्दी पुस्तक छापवा माटे प्रवृत्ति करी छे तेथी तेमने धन्यवाद आपवामां आवे छे,

तथा प्रुफो शोधमामां पंडित लालचंद भगवान् तथा पंडित जयचंद विठ्ठल तथा शास्त्री भाइशंकर वैकुंठराम तथा मुनि कीर्तिसागरजी तथा मास्तर चंदुलाल नानचंद वगेरेए थोडावणा अंशे जे जे सहाय करी तेमाटे तेमने धन्यवाद घटे छे.

आ पुस्तक छपाववामां आर्थिक सहाय करनाराओनो उपकार मानवामां आवे छे तथा जे जे मुनिराजोए तथा श्रावकोए श्रीमद्नी कृतियो मेळववामां साहाय्य करी छे तेनो प्रस्तावनामां उपकार मानवामां आव्यो छे. श्रीमद् देवचंद्रजीनी कृतियोनुं श्वेताम्बर जैनोनी पेठे दिगंबर जैनो पण वाचन श्रवण मनन करे छे, तेमनां बनावेलां पुस्तकोनो बहु प्रमाणमां फेलावो करवामाटे आर्थिक सहाय कर्ताओनी सहायथी पडतर किंमत करतां पण मोंघवारीना समयमां घणीज ओछी मात्र रु. २) किंमत राखवामां आवी छे. एक हजार उपर पत्रवाळा ग्रन्थनी बिलकुल ओछी किंमत राखीने तेनो जैनोमां सर्वत्र फेलावो करवानो इरादो राख्यो छे तेथी हवे वांचको तेनो लाभ लेवा चूकशे नहीं एम आशा रखाय छे. बालुचर निवासी श्रीयुत् झवेरी अमरचंदजी बोथराए तेनी १५० प्रतियो लेवानी मागणीनो ग्रन्थ तैयार थतां पूर्वे करी छे ते उपरथी श्रीमद् देवचंद्रजीकृत कृतियोनी उपयोगितानो ख्याल आवी शके छे. आ ग्रन्थनी किंमतनी उपजेली रकम बीजे भाग छपावतां वधशे तो तेनो अन्य द्रव्यानुयोगना तथा आध्यात्मिक ग्रन्थो छपाववामां उपयोग करवामां आवशे. तेथी परंपराए धार्मिक ग्रन्थोनो प्रचार तथा तेओनुं प्राकट्य थशे एम अवबोधीने जैनोए तथा गुणानुरागी जैनेतरोए श्रीमद् देवचंद्र प्रथम भागनो लाभ लेवा चूकवुं नहीं. अध्यात्मज्ञानप्रसारक मंडळ तरफथी आममाने

उपयोगी पुस्तको बहार पड्यां छे–पडे छे अने भविष्यमां सद्गृहस्थोनी साहाय्यथी उपयोगी पुस्तको बहार पडशे, माटे जैनधर्माभिलाषी सज्जनोए आ मंडळने सहाय करवी जोइए.

श्रीमद् देवचंद्रजीकृत पुस्तको छपाववामां अत्यार सुधीमां जे जे गृहस्थो तरफथी मदद मळी छे तेमनां नामो नीचे प्रमाणे.

५०१ शा. मोहनलाल नाथाभाई पादरा.
२०० शा. मोहनलाल नरोत्तमदास. रणु (पादरा).
२०० शा. जवेरभाई भगवानदास कावीठा (बोरसद).
१०१ श्रीयुत श्रेष्ठी अमरचंदजी बोथरा–वालुचर (मुर्शीदाबाद).
३१ „ „ बुधसिंहजी बोथरा „
६१ „ „ जगपतिसिंहजी दुगड „
५१ „ „ हरखचंदजी नाहटा „
२५ „ „ गुलाबचंदजी भुरा „
१८६ शा. हीरालाल छोटालाल पादरा.
१५० बाई रतन शा. चुनीलाल कहानदासनी विधवा रे. इटोला (वडोदरा).
१०१ वकील मोहनलाल हीमचंद पादरा.
२५ सौ. बाई जमना वकील मोहनलाल हीमचंदनां पत्नी पादरा.
१०० शा. लक्ष्मीचंद लालचंद वडु (पादरा).
१०० बाई चंचळ शा. दामोदर कल्याणदासनी विधवा वडु (पादरा)
८९ बेन मणी शा. प्रेमचंद दलसुखभाईनी भाणेज पादरा.

८० डॉ. [illegible]

७१ डॉ. [illegible] ([illegible]).

७० [illegible] डॉ. [illegible] ([illegible]).

५० डॉ. [illegible] ([illegible]).

४१ डॉ. [illegible]

२१ [illegible]

२१ [illegible] डॉ. [illegible]

२० [illegible]

१० डॉ. [illegible] ([illegible]).

१० डॉ. [illegible] ([illegible]).

५ [illegible] डॉ. [illegible]

५ [illegible] डॉ. [illegible]

१ डॉ. [illegible]

[illegible]

[illegible]

तेओ श्रीमद्ना रागी भक्त बनी तेमनां पुस्तकोनो प्रचार करी अमूल्य लाभ प्राप्त करशे अने तेथी तेओ भविष्यनी जैन कोमना उपकारी बनशे. ॥ इत्यलं विस्तरेण ॥ ॐअर्हंशान्तिः ३

अध्यात्मज्ञानप्रसारक मंडळ–मुंबाई,
चंपागली.
सं. १९७४ चैत्र सुदि. १



प्रस्तावना.

श्रीमद् देवचंद्रजी कृत सर्व ग्रंथो छपाववानो संकल्प.

श्रीमद् देवचंद्रजी महाराजकृत सर्व ग्रंथो छपाववानो संकल्प संकल्प संवत् १९६८ ना चैत्र मासमां थयो. योगनिष्ठ शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिश्वरजी विहार करता मुंबई मुकाम थई चैत्र मासमां पधारे पधार्या त्यारबाद श्रीमद्देवचंद्रजीकृत आगमसार नयचक्रसार विगेरे ग्रंथोनुं परिशीलन थयुं ते वखते गुरु महाराजे तेमना सर्व ग्रंथो मेळवी प्रकट करी छपाववा संबंधी उपदेश कर्यो तेथी तेम करवा दृढ निश्चय कर्यो, अने ते संबंधी विचारोनो प्रवाह शरु थयो, आदमां कया कया ग्रंथो छपाववा तेनो निश्चय कर्यो. संवत् १९७२ नी सालमां श्रीमद् सूरिजी महाराज विजापुरमां चोमासु रह्या ते समये तेमनी देखरेख नीचे तथा तेमनी दृष्टि तळे आगमसार ग्रंथ छपाववानो शरु कर्यो; वडोदराना सुप्रसिद्ध शेठ प्रेमचंद [illegible] ग. विठ्ठलभाई आदिनाथे [illegible] रीते पुस्तको छपाववानुं कबुल कर्युं तेथी तेमना प्रेसमां आगमसार ग्रंथ प्रथम छपाववा आप्यो, अने पछी तरफ तेमनां बनेलां पुस्तकोनी शोध अने संग्रह माटे प्रयत्न करवो शरु करवामां आव्युं.

श्रीमद् देवचंद्रजी महाराजनुं नाम समस्त जैन कोममां प्रख्यात छे. जैन कोमनो कोई पण व्यक्ति तेमना नामथी अजाण्यो नथी, सर्व गच्छवासीओ तेमना ग्रंथोने प्रेमथी उपयोग करे छे तेथी तेमना सर्व ग्रंथो छपाववानी आवश्यकता बहार

पडवाथी जैन कामयां आनंदनी लागणी फेलाई, तेमना ग्रंथो ज्यांथी ज्यांथी मळे एवो संभव हतो त्यां त्यां अनेक स्थळे अनेक महाशयो उपर पत्रो लख्या.

ग्रंथोनी प्राप्ति माटे पत्रव्यवहार.

श्रीमद् मूळचंदजी महाराजना संघाडाना आचार्य श्रीविजय कमलसूरिजी, तथा तेमना शिष्य पन्यास केशरविजयजी, तथा मुनी लाभविजयजी, तथा मुनीराज श्रीदेवमुनिजी, तथा प्रवर्तकजी महाराजश्री कान्तिविजयजी, तथा मुनिराजश्री जिनविजयजी, तथा पन्यासजी महाराजश्री दानविजयजी तथा मुनिमहाराजश्री श्रीकृपाचंद्रसूरिजी तथा पन्यासजीश्री भावविजयजी (पाली) तथा मुनीश्री नागचंद्रजी (कच्छ) तथा मुनिश्री चित्तविजयजी तथा वालुचर (मुर्शीदाबाद) निवासी जवेरी अमरचंदजी बोथरा तथा भोजक गीरधरभाई हेमचंद तथा रा. रा. चीमनलाल डी० दलाल तथा जवेरी भोगीलाल ताराचंद तथा रा. रा. मोहनलाल दलीचंद देसाई तथा अन्य मुनिराज तथा ग्रहस्थो अने संस्थाओ साथे पत्रव्यवहार कर्यो.

कया कया ग्रंथो क्यां क्यांथी मळ्या.

१ आगमसारनी एक जुनी प्रति के जेमां प्रतिमापूजा, पुष्पपूजाचर्चा, गुणस्थानक स्वरूप, पापस्थानक स्वरूप ए चार विषयो के जे छपाएला आगमसारनां नहोता ते प्रत पादराना भंडारमांथी मळी अने तेवा वधारावाळी बे प्रतिओ सुरतना श्रीमोहनलालजी महाराजना भंडारमांथी मळी * तथा मुनिश्री लाभविजयजी पासेथी एक प्रति तेवा वधारावाळी मळी.

---

* प्रत नं. ४०९—५९०

२ नयचक्रसारनी एक जुनी प्रति सुरतना मोहनलालजी महाराजना भंडारमांथी * मळी ते पूर्वेना छपायेला नयचक्रसारना जेवी हती.

३ ज्ञानमंजरी टीकानी जुनी बे प्रतिओ सुरत मोहनलालजी महाराजना भंडारमांथी मुनिश्री हेत मुनिजी मारफत मळी तथा तेमनाज तरफथी हालमांज छपाएली एक प्रति मळी.

४ गुरु गुणपट्त्रिंशिकानोटबो-तेनी एक प्रति पन्यास गुलाबविजयजी पासेथी भोजक गीरधरभाई हेमचंदे मेळवी आपी अने तेने श्री आत्मानंद सभा तरफथी छपाएल मूळ टीका सहितनी मळेली प्रतना आधारे सुधारी.

५ ध्यानदीपिकाचतुष्पदीनी एक प्रति आचार्य श्रीविजयकमळसूरिजी (मुळचंदजी महाराजना) मारफत घोराजीना भंडारमांथी शा. जादवजी खजीए मोकली तेना आधारे छपावी.

६ पांच कर्मग्रंथनो टबो आनी एक प्रति पन्यास गुलाबलाब विजयजी पासेथी भोजक गीरधरभाइए मेळवी आपी बीजी प्रति मळी नथी.

७ विचार रत्नसारनी एक प्रति प्रवर्तकजी श्री कांतिविजयजी महाराज पासेथी तथा एक प्रति अमदावाद श्रीशांतिसागरजीना भंडारमांथी शा. जमनादास वेलाभाई मारफत मळी तथा एक प्रति मुनि लाभविजयजी पासेथी मळी.

८ प्रश्नोत्तरनी एक प्रति प्र. श्रीकांतिविजयजी महाराज पासेथी मळी.

---

* नं. ५१६ पान ३१

पडवाथी जैन कोममां आनंदनी लागणी फेलाई, तेम
ज्यांथी ज्यांथी मळे एवो संभव हतो त्यां त्यां अने
अनेक महाशयो उपर पत्रो लख्या.

ग्रंथोनी प्राप्ति माटे पत्रव्यवहार.

श्रीमद् मुळचंदजी महाराजना संघाडाना आचार्य
कमळसूरिजी, तथा तेमना शिष्य पन्यास केसरविजय
मुनी लाभविजयजी, तथा मुनीराज श्रीहेतमुनिज
प्रवर्तकजी महाराजश्री कान्तिविजयजी, तथा मु
जिनविजयजी, तथा पन्यासजी महाराजश्री दान
तथा मुनिमहाराजश्री श्रीकृपाचंद्रसूरिजी तथा पन
भावविजयजी (पाली) तथा मुनीश्री नागचंद्रजी (
तथा मुनिश्री चित्तविजयजी तथा वालुचर् (मुर्श
निवासी जवेरी अमरचंदजी बोथरा तथा भोजक
हेमचंद तथा रा. रा. चीमनलाल डी० दलाल तथ
भोगीलाल ताराचंद तथा रा. रा. मोहनलाल दलीचं
तथा अन्य मुनिराज तथा ग्रहस्थो अने संस्थाओ
व्यवहार कर्यो.

कया कया ग्रंथो क्यां क्यांथी मळ्या.

१ आगमसारनी एक जुनी प्रति के जेमां प्र
पुष्पपूजाचर्चा, गुणस्थानक स्वरूप, पापस्थानक स्वरू
विषयो के जे छपाएला आगमसारनां नहोता ते प्रत
भंडारमांथी मळी अने तेवा वधारावाळी बे प्रतिओ
श्रीमोहनलालजी महाराजना भंडारमांथी मळी * तथ
लाभविजयजी पासेथी एक प्रति तेवा वधारावाळी

* प्रत नं. ४०९–५६०

२ नवघरमाननी एक हुंडी प्रति सुरता मोहनलालजी महाराजना भंडारनी * मळी ते परथी नकल करी नवघरमाननी लेवी हती.

३ ज्ञानभंडारनी टीकानी मुनी के प्रतिओ हता मोहनलालजी महाराजना भंडारनी मुनिश्री देव मुनिजी मारफत मळी तथा केटलाक नगरनी ज्ञानभंडारनी एक प्रति मळी.

४ मुंबई सुखसागरजीनी ... एक प्रति पन्यास गुलाबविजयजी पासेथी लेखक गोविंदसिंहे लखेली आवी अने तेने श्री आनंद सभा नगरनी ... हरिलाल मोदीए प्रत मोकली आपी.

५ अमदावादनी ... एक प्रति आचार्य श्री विजय कमलसूरिजी (बुद्धिसागरजी महाराजना) मारफत डेलाना भंडारनी ... मोकली आपी हती.

६ पांच ... एक प्रति पन्यास गुलाब विजयजी पासेथी लेखक ... मेळवी आपी ... प्रति मळी नथी.

७ विमल ... एक प्रति प्रवर्तकश्री कांतिविजयजी महाराज पासेथी तथा एक प्रति अमदावाद ... भंडारनी ... मारफत मळी तथा एक प्रति मुनि ... पासेथी मळी.

८ ... एक प्रति श्री कांतिविजयजी महाराज पासेथी मळी.

---

* नं. १२६ पत्र ११

९ कर्मसंवेद्य. अमदावाद डेलाना उपाश्रयन
झवेरी भोगीलालभाई ताराचंद मारफत मळी.

१० प्रतिमापुष्पपूजासिद्धि.

११ गुणस्थानकअविकार.

आ बंने विषयो पादराना तथा सुरतना भंड
मुनिलाभविजयजी पासेथी मळेली आगमसारनी जुनी
मळेल छे, अने प्रतिमापुष्पपूजासिद्धिना जुदा ल
बे प्रतो अमदावाद डेलाना उपाश्रयना ज्ञान
ळेली छे. * ज्यारे आगमसार छपातो हतो ते वख
वाळी प्रतिओ मळेली नहीं होवाथी तेनी अंदर
नथी अने पाछळथी मळवाथी ते आगमसारना
तरीके आ ग्रंथमां पाछळ दाखल करवामां आवे

श्रीमद् देवचंद्र द्वितीय भागमां छापव

१२ (१) विचारसार मूळ-संस्कृत-टीका—
द्रजीकृत विचारसार नामनो ग्रंथ छे एवी प्रथ
वालुचर नीवासी श्रीयुत अमरचंदजी बोथराए अ
जाहेरखबर वांचीने आपी अने ते ग्रंथनी मुळ-
प्रत तेमणे श्रीजिनयशः सुरिजीना पुस्तक भंडा
आपी अने तेवीज बीजी प्रती रा. रा. चीमनला

× डाबडो नं. ३२ बी. प्रत नं. ४२

+ प्रत नं. ३०९–५६२ पान ६६ ६७.

* डाबडो नं. ३० बी. प्रत नं. ८०–८१ पान

पुनने बीकानेरथी त्यांना पं. अनुपचंद्रजीयति पासेथी, खर्च करी मगावी मोकली आपी तथा तेवीज एक प्रति प्र० श्री कान्तिविजयजी महाराज पासेथी मळी × तथा आ ग्रंथनी संपूर्ण टीकावाळी प्रति अमदावाद डेलाना उपाश्रयना ज्ञानभंडारमांथी ÷ मळी तथा तेज भंडारमांथी टबावाळी एक प्रत मळी + तथा विमलशालानी प्रथमखंडनी संस्कृत टीकावाळी प्रत उपाध्यायजी धर्मविजयजी शास्त्रसंग्रहमांथी पं. श्रीदानविजयजी महाराज पासेथी मळी (पत्र ६८) आ स्थळे एक वात जणाववी जरूरनी छे के अमदावाद डेलाना उपाश्रयनो ज्ञानभंडार जे घणो जुनो तथा तेमांनो ग्रंथसंग्रह घणो उत्तम अने अमूल्य छे, परंतु कार्यवाहकोना मतभेदना लीधे तेमांथी प्रतिओ मेळववा घणी मुश्केलीओ नडी हती, छतां अमृतलाल रतिलाल झवेरी मोतीलालभाई तलकचंद पुनने खास प्रयास करी जोइती प्रतिओ मेळवी आपी हती तेथी तेमनो उपकार मानुं छुं.

१३ (२) अध्यात्मगीता—आ ग्रंथ प्रथम छपायेलो हतो ते शोधन तेनी बे प्रतिओ मुनि मोहनलालजी महाराजना ज्ञानभंडारमांथी मळी हती. *

१४ (३) अध्यात्मसार—नी एक प्रति अमदावाद विद्याशाळाना ज्ञानभंडारमांथी श्रेष्ठ गीरधरभाई मारफत अने एक प्रति पन्यास दानविजयजी महाराज पासेथी मळी हती.

× डाबडो नं. ४९ पोथी नं. ९७ पान ६८.

+ डाबडो नं. १२ नी. पोथी प्रत नं. ५० उपरांत नं. ९१.

÷ ,, नं. १२ नी प्रत नं. ६२

* प्रत नं. ७०२-४२६ प. १२-२९.

१५ (४) चोवीशी मोटी टबासह—आ चोवीशीनी प्रथम छपायली प्रतिओ उपरांत प्र० श्रीकांतिविजयजी महाराज पासेथी आजथी दोढसो वर्षपर सुरतना भणसाळी कुटुंबे लखावेली प्रति मळी छे आ प्रति प्रथम छपाएली चारे आवृतिओ करतां वधारे शुद्ध छे छापेली प्रतिओमां जुनी आवृति अमदावाद श्रीशांतीसागरजीना भंडारमां छे.

१६ (५) वीस विहरमानजी स्तवन (वीसी)—आ ग्रंथ प्रथम छपायेल छे.

१७ (६) गतचोवीसी (स्तवन २१) प्रथम छपाएल छे छे छेल्लां त्रण स्तवनो शोध कर्या छतां मळी शक्यां नथी कोइ महाशयना जोवामां आवेने जणावशे तो आभार थशे.

१८ (७) स्नात्रपूजा	आ चारे ग्रंथो प्रथम
१९ (८) नवपदजीपूजा (उलाळा)	पूजा संग्रहमां छपा-
२० (९) एकवीशप्रकारी पूजा	एल छे तेनी जुनी
२१ (१०) अष्टप्रकारी पूजा	हस्तलीखीत प्रति-

ओ पादराना पुस्तक भंडारमां छे.

२२ (११) वीरनिर्वाणना स्तवननी ढाळो—नी एक प्रति अमदावाद विद्याशाळाना भंडारमांथी भोजक गीरधरभाइ मारफत मळी छे.

२३ (१२) बाहुजीन स्तवनने टबो अमदावाद डेलाना उपाश्रयना भंडारमांथी मळेल छे.* बीजां ओगणीस स्तवनने टबो श्रीमदे लखेलो होय एवो संभव छे पण मळेल नथी.

---

* डाबडा नं. ४४ बी. प्रत नं. ८ पान ७

२४ (१३) भावी चोवीशीना प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभजीनुं स्तवन श्रीयुत अमरचंदजी बोथरा तथा भोजकगीरधर हेमचंद तरफथी मळेल छे बीजां ठेवीस स्तवनो छे एम सांभळ्युं छे पन हजु सुधी मळी शक्यां नथी.

२५ (१४) सीमंधरजिनस्तवन मोटुं भोजक गीरधरभाई तरफथी मळ्युं छे तेम छपायेलुं पन छे.

२६ (१५)
२७ (१६)
२८ (१७)
२९ (१८)
} सिद्धाचळनां स्तवनो आ चारे स्तवनो पादराना भंडाररूप टीपणामांथी मळेल छे.

३० (१९) दीवाळीनुं स्तवन नानुं
३१ (२०) नवानगरनी स्तवन
३२ (२१) ध्रुवपद स्तवन
} पादराना भंडारमांथी मळेल छे.

३३ (२२) समवसरणस्तवन
३४ (२३) कुंभस्थापना स्तवन
} आ बे स्तवनो श्रीयुत अमरचंदजी बोथरा तथा भोजकगी० हे० तरफथी मळेल छे.

३५ (२४) सहस्रकूटनुं स्तवन भोजकगी० हे० तरफथी मळेल छे. तेमज कॉ. हेरल्डना १९१५ नां खास अंकमां छपायलुं छे.

३६ (२५) अजितनाथ जिनहोरी होरी संग्रहमां छपाएल छे.

३७ (२६) प्रभुस्तुति.
३८ (२७) सिद्धाचलस्तुति
३९ (२८) विहरमानस्तुति
४० (२९) गीरनारस्तुति
४१ (३०) ज्ञानवर्द्धमानस्तुति
} आ स्तुतिओ श्रीयुत अमरचंदजी बोथरा तरफथी मळी छे.

१५ (४) चोवीशी मोटी टबासह—आ चोवीशीनी प्रथम छपायली प्रतिओ उपरांत प्र० श्रीकांतिविजयजी महाराज पासेथी आजथी दोढसो वर्षपर सुरतना भणसाली कुटुंबे लखावेली प्रति मळी छे आ प्रति प्रथम छपाएली चारे आवृतिओ करतां वधारे शुद्ध छे छापेली प्रतिओमां जुनी आवृति अमदावाद श्रीशांतीसागरजीना भंडारमां छे.

१६ (५) वीस विहरमानजी स्तवन (वीसी)—आ ग्रंथ प्रथम छपायेल छे.

१७ (६) गतचोवीसी (स्तवन २१) प्रथम छपाएल छे छे छेल्लां त्रण स्तवनो शोध कर्या छतां मळी शक्यां नथी कोइ महाशयना जोवामां आवेने जणावशे तो आभार थशे.

१८ (७) स्नात्रपूजा	आ चारे ग्रंथो प्रथम
१९ (८) नवपदजीपूजा (उलाळा)	पूजा संग्रहमां छपा-
२० (९) एकवीशप्रकारी पूजा	एल छे तेनी जुनी
२१ (१०) अष्टप्रकारी पूजा	हस्तलीखीत प्रति-

ओ पादराना पुस्तक भंडारमां छे.

२२ (११) वीरनिर्वाणना स्तवननी ढाळो—नी एक प्रति अमदावाद विद्याशाळाना भंडारमांथी भोजक गीरधरभाइ मारफत मळी छे.

२३ (१२) बाहुजीन स्तवननो टबो अमदावाद डेलाना उपाश्रयना भंडारमांथी मळेल छे. * बीज्रां ओगणीस स्तवननो टबो थोमदे लखेलो होय एवो संभव छे पण मळेल नथी.

* डाबडा नं. ४४ बी. प्रत नं. ८ पान ७

२४ (१३) भावी चोवीसीना प्रथम तीर्थंक
स्तवन श्रीयुत अगरचंदजी नाहटा तथा भोजकर्मा
तरफथी मळेल छे बीजां तेवीस स्तवनो छे एम
पण हजु सुधी मळी शक्यां नथी.

२५ (१४) शंखेश्वरजिनस्तवन मोटुं भोजक
तरफथी मळ्युं छे तेम छपायेलुं पण छे.

२६ (१५)
२७ (१६)
२८ (१७)
२९ (१८)
} सिद्धाचळनां स्तवनो आ चारे
पाटणना भंडारस्थ टीपणानांथी

३० (१९) दीवाळीनुं स्तवन नानुं
३१ (२०) नवानगरजी स्तवन
३२ (२१) झुनघर स्तवन
} पाटणना भंड
मळेल छे.

३३ (२२) तनवतारनस्तवन
३४ (२३) कुंभस्थानना स्तवन
} आ बे स्तवनो
अगरचंदजी नाहटा

भोजकर्मा० हे० तरफथी मळेल छे.

३५ (२४) तदवतुत्नुं स्तवन भोजकर्मा० हे० तरफ
मळेल छे. तेमज डॉ. हेल्डना १९१५ नां खास अंक
छपायेलुं छे.

३६ (२५) अजितनाथ जिनहोरी होरी संग्रहनां छपा
एल छे.

३७ (२६) प्रभुस्तुति.
३८ (२७) सिद्धाचलस्तुति
३९ (२८) विहरमानस्तुति
४० (२९) गीरनारस्तुति
४१ (३०) ज्ञानवृद्धमानस्तुति
} आ स्तुतिओ श्रीयुत
अगरचंदजी नाहटा
तरफथी मळी छे.

१५ (४) चोवीशी मोटी टबासह—आ चोवीशीनी प्रथम छपापली प्रतिओ उपरांत प्र० श्रीकांतिविजयजी महाराज पासेथी आजथी दोढसो वर्षपर सुरतना भणसाळी कुटुंबे लखावेली प्रति मळी छे आ प्रति प्रथम छपाएली चारे आवृतिओ करतां वधारे शुद्ध छे छापेली प्रतिओमां जुनी आवृति अमदावाद श्रीशांतीसागरजीना भंडारमां छे.

१६ (५) वीस विहरमानजी स्तवन (वीसी)—आ ग्रंथ प्रथम छपायेल छे.

१७ (६) गतचोवीसी (स्तवन २१) प्रथम छपाएल छे छे छेलां त्रण स्तवनो शोध कर्या छतां मळी शक्यां नथी कोइ महाशयना जोवामां आवेने जणावशे तो आभार थशे.

१८ (७) स्नात्रपूजा	आ चारे ग्रंथो प्रथम
१९ (८) नवपदजीपूजा (उल्लाळा)	पूजा संग्रहमां छपा-
२० (९) एकवीशप्रकारी पूजा	एल छे तेनी जुनी
२१ (१०) अष्टप्रकारी पूजा	हस्तलीखीत प्रति-

ओ पादराना पुस्तक भंडारमां छे.

२२ (११) वीरनिर्वाणना स्तवननी ढाळो—नी एक प्रति अमदावाद विद्याशाळाना भंडारमांथी भोजक गीरधरभाइ मारफत मळी छे.

२३ (१२) यादुजीन स्तवननो टबो अमदावाद डेलाना उपाश्रयना भंडारमांथी मळेल छे. * बीजां ओगणीस स्तवननो टबो थोभदे लखेलो होय एवो संभव छे पण मळेल नथी.

* डाबडा नं. ४४ बी. प्रत नं. ८ पान ७

२४ (१३) [illegible] है [illegible] है [illegible]

२५ (१४) [illegible] है [illegible] है.

२६ (१५)
२७ (१६) [illegible] है.
२८ (१७)
२९ (१८)

३० (१९) [illegible]
३१ (२०) [illegible] [illegible] है.
३२ (२१) [illegible]

३३ (२२) [illegible]
३४ (२३) [illegible] है.

३५ (२४) [illegible] है. [illegible] १९१५ [illegible] है.

३६ (२५) [illegible] है.

३७ (२६) [illegible]
३८ (२७) [illegible]
३९ (२८) [illegible] है.
४० (२९) [illegible]
४१ (३०) [illegible]

४२ (३१) मुडी साधुवंदनानी ढालो श्रीयुत अमरचंदजी बोथरा तरफथी मळेल छे.

४३ (३२) अष्टप्रवचन मातानी सझायो	आ सझायो छपायेली छे.
४४ (३३) प्रभंजनानी सझाय	
४५ (३४) ढंढण ऋषिनी सझाय	
४६ (३५) सामायिकनी सझाय	
४७ (३६) गजसुकुमालनी सझाय	

४८ (३७) पंचेंद्री विषय त्यागपद—श्रीयुत् अमरचंदजी बोथरा तरफथी मळ्युं छे.

४९ (३८) | सुरत नीवासी जानकीदास उपर लखेला

५० (३९) | पत्रो २—आ बे पत्रो आत्मानंदप्रकाशमां छपायला छे ते उपरथी लीधा छे.

५१ (४०) गुरु श्रावक उपर लखेलो पत्र—मु० श्रीकांतीविजयजी महाराज पासेथी मळ्यो छे.

५२ साधु स्वाध्याय.

५३ बे सझायो. पं. अजितसागरगणि तरफथी मळेल छे.

उपर प्रमाणे ज्यांथी पुस्तको स्तवनो सझायो विगेरे मळ्यां तेनी नोंधल आपी छे. श्रीमद् देवचंद्रजी महाराजना रागी भक्तोनां श्रीयुत अमरचंदजी बोथरानुं नाम प्रथम पद पावे छे तेमने श्रीमद्नी केटलीक कृतिओनां नाम तथा ते क्यां क्यां मळी शके ते मने पत्र लखी प्रथमथी जणाव्युं हतुं तेमना पत्रव्यवहार उपरथी तेमनी श्रीमद् उपरनी भक्तिनो उत्तम ख्याल आवी शके छे "श्रीमद् देवचंद्र" पहेलो भाग छपायलो तेमना जोवामां आव्यो त्यारे तेमने अत्यंत आनंद थयो हतो ते तेमणे पत्रथी जणावी नोंध आपी छे.

पत्र

" भद्रास्पद धर्मबंधु वकील मोहनलालभाइ जोग टी० कलकत्तासे अगरचंद दोपरेका प्रणाम बहुत बहुत वंचियेगा, यहां कुशलमंगल है आप लोगोंकी कुशल सदा चहाता हुं अपरंच समाचार वंचियेगा. आपु " श्रीमद देवचन्द्र " नामाग्रंथका द्वितीयांश आपने कृपापूर्वक भेजा सो पतितपावनि तिथि चैत्र शुक्ल त्रयोदशीके दिवस मुझे मिला था आपकी इस कृपाके लीये मैं आपका आ जन्म ऋणी भया हूं, उपरोक्त ग्रंथका पहुंच समाचार में कलकत्ते चले जानेसे फौरन देनमें देरि भया आशा है हमारा ए अपराध क्षमा करियेगा.

और कईदिनोंमें कलकत्तेसे आया हुं " विचारसार " ग्रंथ पहोंचा सो जानियेगा, बिकानेरवाले श्रीपूज्यजी कहां है मालुम नहीं भया मालुम होनेसे उनको पत्र लिखकर सर्व बात पुछकर आपको लिखुगा.

× × × ×

आगु—कमसेकम हजार पुस्तक छपवाइएगा ऐसा हमारा अनुमान था इसलिये १५१ पुस्तक भेजनेको लिखा था लिकन पुस्तक कम छपेंगी तो पु. १५१ भेजनेकी जरुरत नहि है, पुस्तक छपवानेके खर्च बाबत रुपीया चार पांच रोजमें भेजेंगे.

श्रीमत्कृत समस्त ग्रंथादि छपानेके विचार है एक अक्षर भी छोडनेका इरादा नहि है लिखा सो वांचकर खुशी भये.

पूज्याचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वर्जी तपागच्छके होकर श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराजके प्रति इतनी भक्ति रखते है इह इस कालमें अपूर्व है इस लिये श्रीआचार्य बुद्धिसागरसूरिजीको हमारी वारंवार नमस्कार हो.

× × × ×

श्रीमद् समन्वि हमको जो कुछ मालुम था सो बतलाना हमारा फरज था सो हम कथंचित पालन किया यह हमारा सौभाग्य है इस लिये हमारी प्रसंसा की कोई जरुरत नहि मुजे लज्जित होना पडता है सो मालुम किजियेगा धर्म स्नेह सविशेष रखीयेगा, पत्रोत्तर शीघ्र दिजियेगा यहां के लायक काम हो सो लिखियेगा इति.

छपाव्या विनानां पुस्तको.

(१) गुरुगुणपट्त्रिंशिका टबो. (२) ध्यानदीपिका चतुष्पदी. (३) कर्मग्रंथ पांचनो टबो. (४) विचाररत्नसार पूर्ण. (५) प्रश्नोत्तर. (६) विचारसार मुळ-टीका अने टबो. (७) कर्मसंवेध प्रकरण. (८) प्रतिमापुष्पसिद्धि. (९) गुणस्थानाधिकार. (१०) द्रव्यप्रकाश. (११) बाहुजिनस्तवन टबो. (१२) वीर निर्वाणनी ढालो. (१३) पद्मनाभजिन-स्तवन. (१४-१५-१६-१६) सिद्धाचलनां स्तवन. (१८) नवतत्त्वगरस्तवन. (१९) ध्रुवपदस्तवन. (२०) समवसरण स्तवन. (२१) कुंभस्थापनस्तवन (२२) सिद्धाचलस्तुति. (२३) वीशस्थानकस्तुति. (२४) ज्ञानबहुमानस्तुति. (२५) गिरनारस्तुति. (२६) कागळ. (२७) पंचेन्द्रिय विषय-रसागपद. (२८) प्रभुस्तुति. साधुपद. अन्यपद ए रीते ग्रंथ छपाव्या वगरना हता ते छपाव्या छे अने ते विनाना पहेला छपावेला हता ते पुनः शुद्ध करी छपावेल छे.

कइ शाळमां क्यां पुस्तको कया गाममां रच्यां.

संवत् १७७६ फागण सुदि बीजे मोटा कोट-मरोट-मां पोताना मित्र दुर्गादासना बोधार्थे आगमसारनी रचना कर-वामां आवी.

संवत् १७९६ ना कार्तिक सुदि पांचमे नवानगरमां
ार उपर ज्ञानमंजरी टीका रचवामां आवी.

संवत् १७६६ ना वैशाख वदि १३ ना रोज मुल्तान शहे-
भणशाळी मीठुमल्लना आग्रहथी ध्यानदीपिकाचतुष्पदी रची.

संवत् १७९६ ना कार्तिक सुदि १ ना रोज नवानगरमां
रसार ग्रंथरच्यो.

संवत् १७६७ ना पोष वदि १३ ना रोज द्रव्यप्रकाश
रच्यो.

संवत् १८०४ ना मागशर सुदि १३ ना रोज सिद्धाच-
तुं स्तवन सुरतवाशी कचरा कीकाना संघमां सिद्धाचळजीनां
ा करी रच्युं.

जेसल्मेरमां वर्धमान शेठना आग्रहथी पंचभावनानी रचना
शाळ मळती नथी.

ींमडी शहेरमां अध्यात्मगीतानी रचना करी.

भावनगरमां दीवाळीना दीवसे वीरनिर्वाणनुं स्तवन (ढालो)
शाळ रची नथी.

ए शीवाय बीजा ग्रंथोनी शाळ तथा स्थळ मळेल नथी

श्रीमद्‌नुं जीवनचरित्र.

मद्‌नुं जीवनचरित्र हजी परिपूर्ण उपलब्ध थयुं नथी ते संबंधी
ां त्यां पत्रो लखी हकीकत मेळववा प्रयास करवामां आवे छे.
मद् देवचंद्र द्वितीय भागमां श्रीमद्‌ना जीवनचरित संबंधी
जे हकीकत मळशे ते दाखल करवामां आवशे तथा तेमनी
तेओ संबंधी उपोद्घातमां छेरूप विचारो प्रगट करवामां

आवशे. प्रथम भागमां पत्र विस्तार भयथी ते दाखल करेल नथी. श्रीमद्ना जीवनचरित संबंधी जे जे महाशयो खबरो पूरी पाडशे तेमनी उपकारसह बीजा भागमां नोंध लेवामां आवशे.

अप्रगट कृतियो.

श्रीमद्नी जे जे कृतियो मळी तेनुं लीष्ट उपर आपवामां आव्युं छे तेम छतां हजी जे जे अप्रगट कृतियो रही होय ते संबंधी जाहेरखबरथी तथा पत्रव्यवहारथी प्रयत्न करवामां आवशे. श्रीमद्नी अप्रगट कृतिओ मेळववामां जे जे महाशयो सहाय करशे तेमनी बीजा भागमां उपकार सह नोंध लेवाशे.

पुस्तको मेळवी आपनार महाशयोनो उपकार.

अमदावाद डेलाना उपाश्रय ज्ञानभंडारमांथी बंने पक्षना मतभेद प्रसंगे पुस्तको न मळी शके तेवा संजोगोमां खास काळजी राखी श्रीमद्नी कृतियोनी प्रतिओ अपाववामां झवेरी भोगीलालभाइ ताराचंदे जे सहाय आपी छे तेमाटे तेमनो आभार मानुछुं श्रीमद् देवचंद्रजीनी चोवीशी तथा अन्य वांचनथी तेओनो श्रीमद्पर पूर्ण राग प्रगटेलो जणाय छे ने तेथी तेमणे आ कार्यमां सारी सहाय आपी छे.

वालुचरवाळा झवेरी अमरचंदजी बोथरा जेओ श्रीमद्ना पूर्ण रागी ज्ञानरसिक भक्त छे तेमनो तथा श्रीमद्नी कृतिनां पुस्तको आपवा माटे श्रीमद् प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजी तथा श्रीमद् विजयकमळसूरीश्वरजी, पन्यास लाभविजयजी, पन्यास केसरविजयजी, पन्यास गुलाबविजयजी, मुनि हेतमुनि, मोजक

ई हेमचंद तथा घोराजीना शेठ जादवजी खजी विगे-
करपूर्वक आभार मानुंछुं.

कार्यना मूळ उत्पादक अने प्रेरक परमपूज्य योगनिष्ठ
ाद जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिश्वरजी महाराज
मात्र आ ग्रंथ छपाववानो उपदेश करीनेज नहीं अट-
ान ग्रंथो शोधवा सुधारवामां तेमज प्रुफो तपासवानां
े वर्षो सतत प्रयास सेवेलो छे एटलुंज नहीं पण
ली संस्कृत टीका अने बीजा केटलाक ग्रंथ एटला
द्ध अने अव्यवस्थित रीते छपायला हता के जे शुद्ध
तेओ श्रीने घणो काळ व्यतीत थयो छे. तेओ श्रीनी
वर्षो काळजी अने सहाय न होत तो आ कार्य
थई शक्त नहीं तेथी तेओश्रीनो जेटलो उपकार
तेटलो थोडो छे, अने तेथी आ कार्यनी सफळतानुं
न तेओश्रीनेज घटे छे.

ा पुस्तकसंग्रहमां छपाएल ग्रंथो पैकी केटलाकनी प्रतिओ
ली पण अशुद्ध होवाथी तेमज तेनी मेळवणी माटे
ाधन नहीं मळवाथी तेने शुद्ध करवा प्रयत्न कर्या
नी भुलो रही जवानो संभव छे तेनुं शुद्धिपत्रक दाखल
छे छतां पण कोई स्थळे भुलो रहेली होय तो ते शुद्ध
सुधारी वांचशे अने मने जणावशे तो तेमनो आभार
बीजी आवृत्तिमां सुधारो करवामां आवशे.

ा ग्रंथ संबंधमां जे कांई लखवानुं बाकी रहेलुं हशे ते
आवृत्तिमां जणाववामां आवशे.



॥ श्रीसर्वज्ञाय नमः ॥

॥ अथ ॥

॥ श्रीपंडितदेवचंद्रजीकृत ॥

आगमसार.

मुमुक्षु जीवने प्रतिबोधवा निमित्ते मोक्षमार्गनी वचनिका करे छे. तिहां प्रथम जीव अनादिकालनो मिथ्यात्वी हतो ते कालपरिपाक पामीने त्रण करण करे छे. तेनां नाम—पहेलुं यथाप्रवृत्ति करण, बीजुं अपूर्व करण, अने त्रीजुं अनिवृत्ति करण.

तेमां पहेलुं यथाप्रवृत्ति करण कहे छे. १ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ अंतराय, ए चार कर्मनी त्रीश कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे, तेमांथी ओगणत्रीश कोडाकोडी खपावे अने एक कोडाकोडी बाकी राखे, तथा १ नामकर्म, २ गोत्रकर्म, ए बे कर्मनी वीश कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे, तेमांथी ओगणीश खपावे अने एक कोडाकोडी राखे, अने मोहनीकर्मनी सित्तेर कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे. तेमांथी ओगणोतेर खपावे, बाकी एक कोडाकोडी शेष राखे। एवी रीते एक आयुकर्म वर्जीने बाकी सात कर्मनी पल्योपमना असंख्यातमा भागे न्यून एक कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति राखे,

एवो जे वैराग्यरूप उदासी परिणाम तेने यथाप्रवृत्तिकरण कहिये. ए पहेलुं करण, सर्वसंज्ञी पंचेंद्रीजीव अनन्तीवार करेछे.

हवे बीजुं अपूर्वकरण कहेछे. ते एक कोडाकोडी सागरोपमनी स्थितिमांहेथी एक मुहूर्त अने अनादि मिथ्यात्व जे अनंतानुबंधीआनी चोकडी ते खपाववाने अज्ञान हेय ते छांडवुं, अने ज्ञान उपादेय एटले आदरवुं, ए वांछारूप अपूर्व कहेतां पहेलां क्यारे न आव्यो एवो जे परिणाम ते अपूर्व करण कहीये, ए बीजुं करण ते समकितयोग्य जीवने थाय.

हवे त्रीजुं अनिवृत्ति करण कहेछे. ते मुहूर्तरूप स्थिति खपावीने निर्मल शुद्ध समकित पामे मिथ्यात्वनो उदय मटे त्यारे जीव उपशम समकित पामे, एवो जे परिणाम ते अनिवृत्ति करण कहिये. ए करण कीधाथी गंठीभेद थयो कहीए. उक्तञ्च आवश्यकनिर्युक्तौ " जा गंठी ता पढमं । गंठीसमय छेओ भवे- बीओ ॥ अनिअट्टिकरणं पुण । समत्तपुरक्खडेजीवे ॥ १ ॥ ऊसर देसं दड्ढिल्लियं च । विज्झाइ वणदवो पप्प ॥ मिच्छत्त- स्साणुदए । उवसमसम्मं लहइ जीवो ॥ २ ॥ एम मिथ्यात्वनो उदय मटवाथी जीव समकित पामे, ते समकितनी सद्दहणाना बे भेद छे, एक व्यवहार समकित सद्दहणा, बीजी निश्चय समकित सद्दहणा.

देवश्रीअरिहंत देवाधिदेव, अने गुरु सुसाधु जे सच्चो अर्थ कहे ते, तथा धर्म केवलीनो प्ररुप्यो जे आगममां सातनय तथा एक प्रत्यक्ष बीजुं परोक्ष ए बे प्रमाण अने चार निक्षेपेकरी सद्दहे, एवी सद्दहणा ते व्यवहार समकित कहिये. ए पुण्यनुं कारण तथा धर्म प्रगट करवानुं कारण छे एवी रुचि ज्ञानविना पण घणा जीवोने उपजे.

बीजुं निश्चयनय ते ज्यां छे ते निश्चय होय ते अनेक धर्म तेने निजआत्मस्वरूप सिद्ध ते संग्रहनयनो [illegible]. तथा निश्चयनय ते पण आत्मानो अभेद तत्वरूपी. अने निश्चयनय ते अखंड वस्तुनो स्वभाव छे एवो ग्राहक ते जेटलुं वस्तु छे तेटलो तेनुं स्वरूप ओलखावीने ग्रहण करे एवो शुद्ध ग्राहक ते निश्चयनय.

हवे नयनुं स्वरूप कहीये ते नयना बे भेद. एक व्यवहारनय. बीजुं निश्चयनय. तेमां जे [illegible] सर्व [illegible]. अथवा [illegible] ते पुद्गलानुयोग ते द्रव्यनय. बीजो [illegible] अनुयोग ते [illegible]. त्रीजो धर्मकथानुयोग, ए चार अनुयोगनुं आचरवुं ते सर्व व्यवहारनय छे अथवा [illegible] ते [illegible] कर्ता ते पण व्यवहारनय कहीये.

हवे निश्चयनय ते छ द्रव्य तथा तेना गुण अने पर्याय ग्रहीने वळी तेमां पांच अजीव द्रव्य ते हेय-छांडवा योग्य जाणी छांडवां अने एक जीवद्रव्य ते निश्चयथी सिद्धसमान तेमना जेवो आत्मा तेनुं केवल [illegible] [illegible] छे एवो आत्मानो जीव ओळखीने [illegible] ते निश्चयनय कहीये.

हवे धर्मास्तिकाय, बीजो अधर्मास्तिकाय, त्रीजो आकाशास्तिकाय, चोथो पुद्गलास्तिकाय, पांचमो जीवास्तिकाय, अने छठो काल ए छ द्रव्य [illegible]. तेनुं ज्ञान कहे छे. ए छ द्रव्य मध्ये पांच अजीव द्रव्य अने एक जीव द्रव्य ते जेम [illegible]. [illegible].

हवे ए छ द्रव्यना गुण कहेछे. पहेलो धर्मास्तिकायना चार गुण एक अरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो अक्रिय, चोथो गतिसहायगुण. बीजा अधर्मास्तिकायना पण चार गुणछे. एक अरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो अक्रिय, अने चोथो स्थिति-सहायगुण. त्रीजा आकाशास्तिकायद्रव्यना चार गुणछे. एक अरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो अक्रिय, चोथो अवगाहना दान-गुण. हवे कालद्रव्यना चार गुण कहेछे. एक अरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो अक्रिय, चोथो नवापुराणवर्त्तनालक्षण. हवे पुद्गल-द्रव्यना चार गुण कहेछे. एकरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो सक्रिय चोथो मिलणविखरणरूप पूरणगलन गुण. हवे जीवद्रव्यना चार गुण कहेछे. एक अनंतज्ञान, बीजो अनंतदर्शन, त्रीजो अनन्तचारित्र, चोथो अनंतवीर्य, ए छ द्रव्यना गुण कह्या ते नित्यध्रुवछे.

हवे छ द्रव्यना पर्याय कहेछे. धर्मास्तिकायना चार पर्यायछे. एक खंध, बीजो देश, त्रीजो प्रदेश, चोथो अगुरुलघु. अधर्मास्तिकायना चार पर्याय. एक खंध, बीजो देश, त्रीजो प्रदेश, चोथो अगुरुलघु; पुद्गल द्रव्यना चार पर्याय. एक वर्ण, बीजो गंध, त्रीजो रस, चोथो स्पर्श अगुरुलघुसहित; तथा आकाशास्तिकायना चार पर्याय. एक खंध, बीजो देश, त्रीजो प्रदेश, चोथो अगुरुलघु; कालद्रव्यना चार पर्याय. एक अतीतकाल, बीजो अनागत काल त्रीजो वर्त्तमान काल, चोथो अगुरुलघु; अने जीव द्रव्यना चार पर्याय. एक अव्याबाध, बीजो अनवगाह, त्रीजो अमूर्तिक, चोथो अगुरुलघु. ए छ द्रव्यनापर्याय कह्या.

हवे छ द्रव्यना गुणपर्यायनुं साधर्म्यपणुं कहेछे. अगुरुलघुपर्याय सर्वद्रव्यमां सरीखो छे अने अरूपीगुणं पांच द्रव्यमां

छे. एक पुद्गलद्रव्यमां नथी; तथा अचेतनगुण पांच द्रव्यमांछे. एक जीवद्रव्यमां नथी, अने सक्रियगुण जीव तथा पुद्गल ए वे द्रव्यमांछे. बाकी चारद्रव्यमां नथी; तथा चलणसहायगुण एक धर्मास्तिकायमांछे, बीजा पांच द्रव्यमां नथी; वली स्थिरसहायगुण एक अधर्मास्तिकायमां छे. बीजा पांच द्रव्यमां नथी; तथा अवगाहनागुण ते एक आकाशद्रव्यमांछे, बीजा पांच द्रव्यमां नथी; अने वर्तनागुण ते एक कालद्रव्यमांजछे, बीजा पांच द्रव्यमां नथी; तेमज मिलणविखरणगुण ते पुद्गलमांछे, बीजा द्रव्यमां नथी तथा ज्ञान-चेतना गुण ते एक जीव द्रव्यमां छे, पण बीजा-द्रव्यमां नथी. ए मूलगुण कोइ द्रव्यना कोइ द्रव्यमां मिले नही. एक धर्म, बीजो अधर्म, त्रीजो आकाश, ए त्रण द्रव्यना त्रण गुण तथा चार पर्याय सरिखाछे अने त्रण गुणें करी तो काल-द्रव्य पण ए समान छे.

हवे वली अग्यार बोले करी छद्रव्यना गुणजाणवाने गाथा कहेछे.

परिणामि जीव मुत्ता, सपएसा एग खित्त किरिआय निञ्चं कारण कत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे ॥ १ ॥

अर्थ-निश्चयनयथी आप आपणा स्वभावे छए द्रव्य परिणामी छे अने व्यवहारनयथी जीव तथा पुद्गल ए वे द्रव्य परिणामी छे तथा एक धर्म, बीजो अधर्म, त्रीजो आकाश अने चोथो काल, ए चार द्रव्य अपरिणामी छे. तथा छ द्रव्यमां एक-जीव द्रव्य ते जीवछे, बीजा पांच द्रव्य अजीव छे तथा छ द्रव्यमां एक पुद्गल मूर्तिवन्त रूपी छे अने पांच द्रव्य अमूर्तिमंत अरूपी छे. छ द्रव्यमां पांच द्रव्य सप्रदेशी छे, अने एक-काल द्रव्य अप्रदेशीछे. तेमां एक धर्मास्तिकाय. बीजो अधर्मा-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तारुण्य अवस्था दिएछे, तथा अनादि संसारी जीव भवस्थिति परिपाक छतां एक अंतर्मुहूर्तकालमां सकलकर्म निर्जरी मोक्ष पहोंचे तिहां सिद्ध अवस्थायें अनंतोकाल पर्यंत जीव अनंता सुखने विलसे माटे कालद्रव्य पण जीवने भोग थाय छे. पण एक जीवद्रव्य छोडीने भोग आवतो नथी माटे अकारण कह्युं अने पांच द्रव्य भोग आवे माटे कारण कह्यां तथा घणी प्रतोमां तो संक्षेपे एम्बुं छे जे छ द्रव्यमां एक जीव द्रव्य कारण छे. पांच द्रव्य अकारणछे ए पण ज्ञान धर्मरीते मलतीछे. माटे जे बहुश्रुत कहे ते खरुं. मारी धारणा प्रमाणे जीवद्रव्य कारण अने पांच द्रव्य अकारण एम संभवे छे" निश्चयनयथी छए द्रव्य कर्त्ताछे अने व्यवहारनयें एक जीवद्रव्य कर्त्ताछे. बाकी पांचद्रव्य अकर्त्ता छे. छद्रव्यमां एक आकाशद्रव्य सर्वव्यापी छे. अने पांचद्रव्य लोक व्यापी छे. छए एक क्षेत्रमां एकटां रह्यां छे पण एक बीजा साथे मळी जाय नहीं ए छ द्रव्यनो विचार कह्यो.

हवे एकेका द्रव्यमां एक नित्य, बीजो अनित्य त्रीजो एक चोथो अनेक, पांचमो सत्. छट्ठो असत्, सातमो वक्तव्य, आठमो अवक्तव्य, ए आठ आठ पक्ष कहेछे.

धर्मास्तिकायना चार गुण नित्यछे तथा पर्यायमां धर्मास्तिकायनो एक खंध नित्यछे. बाकीना देश प्रदेश तथा अगुरुलघु पर्याय अनित्यछे. अधर्मास्तिकायना चार गुण तथा एक लोकप्रमाण खंध नित्यछे अने एक देश, बीजो प्रदेश, त्रीजो अगुरुलघु ए त्रण पर्याय अनित्यछे. तथा आकाशास्तिकायना चार गुण तथा लोकालोकप्रमाणखंध नित्यछे अने एक देश, बीजो प्रदेश. त्रीजो अगुरुलघु ए त्रण पर्याय अनित्यछे. तथा कालद्रव्यना चार गुण नित्यछे अने चार पर्याय अनित्यछे. पुद्गल द्रव्यना चार गुणनित्य

अने चार पर्याय अनित्यछे. जीवद्रव्यना चारगुण तथा त्रण पर्याय-नित्यछे अने एक अगुरुलघु पर्याय अनित्य छे. ए रीते नित्यानित्यपक्ष कह्यो.

हवे एक अनेकपक्ष कहे छे. एक धर्मास्तिकाय बीजो अधर्मास्तिकाय. ए बे द्रव्यनो खंध लोकाकाशप्रमाण एक छे अने गुण अनंताछे. पर्यायअनंताछे. प्रदेश असंख्याताछे, तेणेंकरी अनेकछे, आकाशद्रव्यनो लोकालोकप्रमाणंखंध एकछे अने गुण अनंताछे. पर्याय अनंताछे. प्रदेशअनंताछे माटे अनेकछे, काल द्रव्यनो वर्तनारूप गुण एकछे अने गुण अनंताछे, पर्याय अनंता छे, केमके समय अनंताछे. अतीत काले अनंतासमय गया अने अनागतकाले अनंता समय आवशे. तथा वर्तमानकाले समय एक छे माटे अनेकपक्षछे. पुद्गलद्रव्यना परमाणु अनंताछे ते एकेक परमाणुमां अनंतागुण पर्यायछे. ते अनेकपणंछे अने सर्व परमाणुमां पुद्गलपणुं ते एकज छे माटे एक छे.

जीवद्रव्य अनंताछे. एकेका जीवमां प्रदेश असंख्याताछे तथा गुण अनंताछे. पर्याय अनंताछे ते अनेकपणुं छे पण जीवितव्यपणुं सर्वजीवोनुं एकसरीखुंछे माटे एकपणुं छे. इहां शिष्य पुछे छे जे सर्व जीव एक सरीखा छे तो मोक्षनाजीव सिद्ध परमानंदमयी देखायछे अने संसारीजीव कर्मवश पड्या दुःखी देखाय छे अने ते सर्व जुदाजुदा देखाय छे ते केम ? तेहने गुरु उत्तर कहे छे के निश्चयनये तो जीव सिद्ध समान छे माटेज सर्व जीव कर्म खपावीने सिद्ध थाय छे तेथी सर्व जीवनी सत्ता एकछे.

वळी शिष्य पुछे छे के जो सर्व जीव सिद्ध समान कहोछो तो अभव्य जीव पण सिद्ध समान छे एम ठेरयुं (ठर्युं) अने

ते तो मोक्षे जता नथी, तेहने उत्तर जे अभव्यने
चीकणां छे अने अभव्यमां परावर्त्त धर्म नथी तेथी सिद्ध थ
नथी माटे तेनो एहवोज स्वभावछे जे मोक्षे जावुंज नथी अ
भव्यजीवमां परावर्त्त धर्म छे माटे कारण सामग्री मिले पल्टा
पामे गुणश्रेणि चढी मोक्षें करी सिद्ध थाय पण जीवना मुख्य
आठ रुचक प्रदेश जे छे ते निश्चयनयथी भव्य तथा अभव्य
सर्वना सिद्ध समान छे माटे सर्व जीवनी सत्ता एक सरीखी
छे केमके ए आठ प्रदेशने बिलकुल कर्म लागतां नथी ते
"श्री आचारांग सूत्रनी श्री सिलांगाचार्य कृत टीकाना लोक-
विजयाध्ययने प्रथमोद्देशके सारव छे तिहांथी सविस्तरपणे जोवुं."

हवे सत् तथा असत् पक्ष कहेछे. ए छ द्रव्य ते स्वद्रव्य,
स्वक्षेत्र, स्वकाल, अने स्वभावपणे सत् एटले छता छे अने परद्रव्य,
परक्षेत्र, परकाल तथा परभावपणे असत् एटले अछता छे तेनी
रीत बतावबाने अर्थे छए द्रव्यना द्रव्य क्षेत्र काल भाव कहिये छैये.

धर्मास्तिकायनो मूलगुण चलण सहायपणो ते स्वद्रव्य,
अधर्मास्तिकायनो मूलगुण स्थिति सहायपणो ते स्वद्रव्य, आका-
शास्तिकायनो मूल गुण अवगाहपणो ते स्वद्रव्य, कालद्रव्यनो
मूल गुण वर्त्तनालक्षण पणो ते स्वद्रव्य, तथा पुद्गलनो मूलगुण
पुरणगलनपणो ते स्वद्रव्य अने जीवद्रव्यनो मूलगुण ज्ञानादिक
चेतनालक्षणपणो ते स्वद्रव्य ए छद्रव्यनोस्वद्रव्यपणो कह्यो.

हवे स्वक्षेत्र ते द्रव्यनो प्रदेशपणो छे ते देखाडे छे. तिहां
एकधर्मास्तिकाय, बीजो अधर्मास्तिकाय. ए बे द्रव्यनो स्वक्षेत्र
असंख्यात प्रदेश छे अने आकाशद्रव्यनो स्वक्षेत्र अनंत प्रदेश
छे. कालद्रव्यनो स्वक्षेत्र समय छे. पुद्गलद्रव्यनो स्वक्षेत्र एक प

माणछे ते परमाणु अनंताछे. जीवद्रव्यनो स्वक्षेत्र एक जीवना असंख्याता प्रदेशछे.

हवे स्वकाल ते छए द्रव्यमां अगुरुलघुनोज छे अने एछ द्रव्यना पोतपोताना गुण पर्यायते सर्व द्रव्यनो स्वभाव जाणवो. एटले धर्मास्तिकायमां पोतानाज द्रव्य क्षेत्र काल भावछे पण बीजा पांच द्रव्यना नथी. तथा अधर्मास्तिकाय द्रव्य मध्ये पण स्वद्रव्यादिक चार छे. पण बीजा पांच द्रव्यना नथी. एमज आकाशास्तिकायने विषे आकाशनाज स्वद्रव्यादिक चार छे पण बीजा पांच द्रव्यना नथी. कालद्रव्यमां कालनाद्रव्यादिक चार छे बीजा पांच द्रव्यना नथी अने पुद्गलना द्रव्यादिक चार ते पुद्गलमांज छे पण बीजा पांच द्रव्यना नथी तथा जीव द्रव्यना स्वद्रव्यादिक चार ते जीवमां छे पण बीजा पांच द्रव्यना नथी.

जे द्रव्य ते गुण पर्यायवंत द्रव्यथी अभेदपर्याय होय ते द्रव्य कहियें तथा स्वधर्मनो आधारवंतपणो ते क्षेत्र कहियें अने उत्पाद व्ययनीवर्त्तना ते काल कहियें तथा विशेष गुण परिणति स्वभाव परिणति पर्याय प्रमुख ते स्वभाव कहियें.

इहां १ भेद स्वभाव, २ अभेदस्वभाव ३ भव्यस्वभाव. ४ अभव्यस्वभाव. ५ परमस्वभाव. ए पांच स्वभाव कहेवा. तेमां द्रव्यना सर्व धर्मने पोतपोताना स्वस्वकार्यने करवे करी भेद स्वभाव छे अने अवस्थान पणे अभेद स्वभाव छे. अणपलटण स्वभावे अभव्य स्वभाव छे. तथा पलटण स्वभावे भव्य स्वभाव छे अने द्रव्यना सर्व धर्म ते विशेष धर्मने अनुयायीज परिणमे ते माटे ते परम स्वभाव कहियें. ए सामान्य स्वभाव जाणवा ए रीते छए द्रव्य स्वगुणे सत् छे अने परगुणे असत् छे.

हवे वक्तव्य तथा अवक्तव्य पक्ष कहेछे. ए छ द्रव्यमां अनंता गुन पर्याय ते वक्तव्य एटले वचने कहेवा योग्य छे अने अनंता गुन पर्याय ते अवक्तव्य एटले वचने कह्या जाय नही एवा छे. तिहां केवली भगवंते सर्व भाव दीठा तेने अनंतमे भागे ते वक्तव्य एटले कहेवा योग्य हता ते कह्या वली तेनो पन अनंतमो भाग श्रीगणधर देवे सूत्रमां गुंथ्यो ते सूत्रमां गुंथ्या ते ने असंख्यातमे भागे हमणां आगम रह्यां छे ए छ द्रव्यमां आटपक्ष कह्या.

हवे नित्य तथा अनित्य पक्षनी चोभंगी उतनी ते कहे छे एक जेनी आदि नथी अने अंत पन नथी ते अनादि अनंत पहेलो भांगो अने जेनी आदि नथी पन अंत छे ते अनादि सांत बीजो भांगो तथा जेनी आदि पन छे अने अंत एटले छेहेडो पन छे ते सादि सांत त्रीजो भांगो वली जेहने आदि छे पन अंत नथी ते सादि अनंत नामे चोथो भांगो जानवो.

हवे ए चार भांगा छ द्रव्यमां उतारी देखाडे छे. जीव द्रव्यमां ज्ञानादिक गुन ते अनादि अनंत छे नित्य छे, अने भव्य जीवने कर्म साथे संबंध तथा संसारीपणानी आदि नथी पन सिद्ध थाय तेवारे अंत आव्यो तेथी ए अनादि सांत भांगो छे. अने देवता तथा नारकी मनुष्यना भव करता ते सादिसांत भांगो छे, अने जे जीव कर्म खपावी मोक्ष गया तेनो सिद्धपने आदिछे अने पाछो संसारमां कोइ काडे आववुं नथी माटे अंत नथी तेथी ए सादि अनंत भांगो छे. ए जीव द्रव्यमां चोभंगी कही. जीव द्रव्यना चार गुण अनादि अनंतछे. जीवने कर्म साथे संयोग ते अनादि सांतछे केमके तरे पन कर्म छूटे छे.

हवे धर्मास्तिकायमां चार गुण तथा खंधपणो ते अनादि अनंतछे अने अनादि सांत भांगो नथी तथा १ देश २ प्रदेश ३ अगुरुलघु ए सादि सांत भांगोछे. तथा सिद्धना जीवमां धर्मास्तिकायना जे प्रदेश रह्या छे ते प्रदेश आश्रयीने सादि अनंत भांगोछे एवीज रीते अधर्मास्तिकायमां पण चौभंगी जाणवी अने आकाश द्रव्यमां गुण तथा खंध अनादि अनंतछे बीजो भांगो नथी अने १ देश २ प्रदेश तथा ३ अगुरु लघु सादि सांतछे तथा सिद्धना जीवनी साथे संबंध ते सादि अनंत छे.

पुद्गल द्रव्यमां गुण अनादि अनंतछे. जीवपुद्गलनो संबन्ध अभव्य ने अनादि अनंतछे. भव्य जीवने अनादि सांतछे पुद्गलना खंध सर्व सादि सांतछे जे खंध बांध्या ते स्थिति प्रमाणे रही खरेछे वली नवा बंधायछे माटे सादि अनंत भांगो पुद्गलमां नथी.

कालद्रव्यमां गुण चार अनादि अनंतछे पर्यायमां अतीत काल अनादि सांत छे अने वर्तमानकाल सादि सांत छे. अनागतकाल सादि अनंत छे. ए कालनुं स्वरूप ते सर्व उपचारथी छे. ए रीतें काल द्रव्यमां चौभंगी कही.

हवे द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावमां चौभंगी कहे छे. जीव द्रव्यमां स्वद्रव्यथी ज्ञानादिक गुण ते अनादि अनंत छे. स्वक्षेत्रें जीवना प्रदेश असंख्याता छे ते सादि सांत छे ततोद्वर्त्तनापणे फरे छे ते माटे अथवा अवगाहना माटे सादि सांत छे पण छती पणे तो अनादि अनंत छे. स्वकाल अगुरु लघुने गुणे अनादि अनंत छे अने अगुरु लघु गुणनो उपजवो

तथा विगशवो ते सादि सांत छे. तथा स्वभाव गुण पर्य्या ते अनादि अनंत छे अने भेदान्तरे अगुरुलघु ते सादि सांत छे.

धर्मास्तिकायमां स्वद्रव्य ते चलण सहाय गुण ते अनादि अनंत छे अने स्वक्षेत्र असंख्यात प्रदेश लोक प्रमाण छे ते अवगाहनापने सादि सांत छे. स्वकाल ते अगुरुलघु गुणे करी अनादि अनंत छे अने उत्पाद व्यय ते सादि सांत छे. स्वभाव ते चार गुण अगुरुलघु अनादि अनंत छे १ खंध २ देश ३ प्रदेश ते अवगाहनाने प्रमाणे सादि सांत छे एम अधर्मास्तिकायना पण द्रव्यादि चार भांगा जाणवा तथा आकाशास्तिकायमां स्वद्रव्य अवगाहनादान गुण ते अनादि अनंत छे अने स्वक्षेत्र लोकालोक प्रमाण अनंत प्रदेश ते अनादि अनंत छे. स्वकाल ते अगुरुलघुगुण सर्वथापने अनादि अनंतछे अने उपजवे तथा विणसवे सादि सांत छे. स्वभावते चार गुण तथा खंध अने अगुरुलघु ते अनादि अनंत छे तथा देश प्रदेश ते सादि सांत छे ते आकाश द्रव्यना बे भेद छे एक चौद राज लोकनो खंध लोकाकाश ते सादि सांत छे बीजो अलोकाकाशनो खंध ते सादि अनंत छे. *

काल द्रव्यमां स्वद्रव्य ते नव पुराणवर्त्तना गुण ते अनादि अनंतछे स्वक्षेत्र समय काल ते आदि सांत छे केमके वर्तमान

* चउदराज लोकनो खंध लोकाकाश सादि सांत छे ते आवी रीते जे लोकना मध्यमां आठ रुचक प्रदेशथी मांडीने सादि छे तिहां चउदराज लोकनो अंत आवे तिहां सांत तथा चउदराज लोकनो छेलो प्रदेश मूकीने पछे अलोकनो आदि लेवी पण अलोकनो अंत नथी माटे सादि अनंत कह्यं छे.

हवे धर्मास्तिकायमां चार गुण तथा खंधपणो ते अनादि अनंतछे अने अनादि सांत भांगो नथी तथा १ देश २ प्रदेश ३ अगुरुलघु ए सादि सांत भांगोछे. तथा सिद्धना जीवमां धर्मास्तिकायना जे प्रदेश रह्या छे ते प्रदेश आश्रयीने सादि अनंत भांगोछे एवीज रीते अधर्मास्तिकायमां पण चौभंगी जाणवी अने आकाश द्रव्यमां गुण तथा खंध अनादि अनंतछे वीजो भांगो नथी अने १ देश २ प्रदेश तथा ३ अगुरु लघु सादि सांतछे तथा सिद्धना जीवनी साथे संबंध ते सादि अनंत छे.

पुद्गल द्रव्यमां गुण अनादि अनंतछे. जीवपुद्गलनो संबन्ध अभव्य ने अनादि अनंतछे. भव्य जीवने अनादि सांतछे पुद्गलना खंध सर्व सादि सांतछे जे खंध बांध्या ते स्थिति प्रमाणे रही खरेछे वळी नवा बंधायछे माटे सादि अनंत भांगो पुद्गलमां नथी.

कालद्रव्यमां गुण चार अनादि अनंतछे पर्यायमां अतीत काल अनादि सांत छे अने वर्तमानकाल सादि सांत छे. अनागतकाल सादि अनंत छे. ए कालनुं स्वरूप ते सर्व उपचारथी छे. ए रीतें काल द्रव्यमां चौभंगी कही.

हवे द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावमां चौभंगी कहे छे. जीव द्रव्यमां स्वद्रव्यथी ज्ञानादिक गुण ते अनादि अनंत छे. स्वक्षेत्रें जीवना प्रदेश असंख्याता छे ते सादि सांत छे ततोद्वर्तनापणे फरे छे ते माटे अथवा अवगाहना माटे सादि सांत छे पण छती पणे तो अनादि अनंत छे. स्वकाल अगुरु लघुने गुणे अनादि अनंत छे अने अगुरु लघु गुणनो उपजवो

तथा विगसवो ते सादि सांत छे. तथा स्वभाव गुण पर्याय ते अनादि अनंत छे अने भेदान्तरे अगुरुलघु ते सादि सांत छे.

धर्मास्तिकायमां स्वद्रव्य ते चलण सहाय गुण ते अनादि अनंत छे अने स्वक्षेत्र असंख्यात प्रदेश लोक प्रमाण छे ते अवगाहनापने सादि सांत छे. स्वकाल ते अगुरुलघु गुणे करी अनादि अनंत छे अने उत्पाद व्यय ते सादि सांत छे. स्वभाव ते चार गुण अगुरुलघु अनादि अनंत छे १ खंध २ देश ३ प्रदेश ते अवगाहनाने प्रमाणे सादि सांत छे एम अधर्मास्तिकायना पण उत्पादि चार भांगा जाणवा तथा आकाशास्तिकायमां स्वद्रव्य अवगाहनादान गुण ते अनादि अनंत छे अने स्वक्षेत्र लोकालोक प्रमाण अनंत प्रदेश ते अनादि अनंत छे. स्वकाल ते अगुरुलघुगुण सर्वथापने अनादि अनंतछे अने उपजवे तथा विगसवे सादि सांत छे. स्वभावते चार गुण तथा खंध अने अगुरुलघु ते अनादि अनंत छे तथा देश प्रदेश ते सादि सांत छे ते आकाश द्रव्यना बे भेद छे एक चौद-राज लोकनो खंध लोकाकाश ते सादि सांत छे बीजो अलोका-काशनो खंध ते सादि अनंत छे. *

काल द्रव्यमां स्वद्रव्य ते नव पुराणवर्त्तना गुण ते अनादि अनंतछे स्वक्षेत्र समय काल ते आदि सांत छे केमके वर्तमान

* चउदराज लोकनो खंध लोकाकाश सादि सांत छे ते आवी रीतें जे लोकना मध्यभागें आठ रुचक प्रदेशथी मांडीने सादि छे तिहां चउदराज लोकनो अंत आवे तिहां सांत तथा चउदराज लोकनो छेलो प्रदेश मूकीने पछे अलोकनी आदि लेवी पण अलोकनो अंत नथी माटे सादि अनंत कह्यु छे.

समय एकछे ते माटे. तथा स्वकाल ते अनादि अनंत छे. स्वभाव ते गुण चार अने अगुरुलघु अनादि अनंतछे. अतीत काल अनादि सांत छे अने वर्तमानकाल सादि सांत छे अनागत काल सादि अनंत छे.

पुद्गल द्रव्यमां स्वद्रव्य ते द्रव्यपणे जे पूरणगलन धर्म ते अनादि अनन्त छे अने स्वक्षेत्र परमाणु ते सादि सांत छे. स्वकाल स्थिति अगुरुलघु गुण ते अनादि अनंत छे. अगुरुलघुनो उपजवो विणशवो ते सादि सांत छे. स्वभावते गुण चार अनादि अनंत छे. वर्णादि पर्याय चार एटले वर्ण गंध रस स्पर्श ते सादि सांत छे. ए द्रव्यादि चारमां चौभंगी कही.

हवे छ द्रव्यना संबन्ध आश्री चौभंगी कहे छे, तिहां प्रथम आकाश द्रव्य छे तेमां अलोकाकाशमां कोइ द्रव्य नथी, अने लोकाकाशमां छ द्रव्य छे, तिहां लोकाकाश द्रव्य तथा बीजुं धर्मास्तिकाय द्रव्य अने त्रीजुं अधर्मास्तिकाय द्रव्य ते अनादि अनंत संबंधी छे जे लोकाकाशना एकेक प्रदेशमां धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यनो एकेक प्रदेश रह्यो छे ते पण किवारे विछडसे नहीं माटे अनादि अनंत संबंधी छे. आकाश खेत्र लोक सर्व अने जीव द्रव्यनो अनादि अनंत संबंध छे, अने संसारी जीव कर्म सहित तथा लोकना प्रदेशनो सादि सांत संबन्ध छे. लोकांत सिद्धक्षेत्रना सिद्ध जीवोनो आकाश प्रदेश साथे सादि अनंत संबन्ध छे, लोकाकाश अने पुद्गल द्रव्यनो अनादि अनंत संबन्ध छे. आकाश प्रदेशनी साथे पुद्गल परमाणुनो सादि सांत संबन्ध छे. एम आकाश द्रव्यनी परे धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकायनो पण सर्व संबन्ध जाणवो. अने पुद्गलना संबंधमां अभव्य जीवने पुद्गलनो

संबंध छे जेमके अभव्य जीवनां कर्म किवारे खरवो नहीं माटे,
अने भव्य जीवने कर्मनुं लागवुं अनादि कालनुं छे पन ते
विवेक छुटे माटे भव्य जीवने पुद्गल संबंध अनादि सांत
छे तथा निश्चय नयेकरी ६ द्रव्य स्वभाव परिनाम परिनम्या छे
ते परिनामिकनो भंग भाजतो छे ते माटे अनादि अनंत
छे अने जीव तथा पुद्गल बेहु द्रव्य बीजे संबंध भाव पने छे ते पर
परिनामिकनो छे ते परपरिनामिकनो अभव्य जीवने अनादि अ
नंत छे अने भव्य जीवने अनादि सांत छे अने पुद्गलनो परिनामी
पनो छे ते माटे अनादि अनंत छे अने पुद्गलनो मिलवो विछडवो
ते सादि सांत छे एटले जीव द्रव्य पुद्गल साथे मिल्यो सक्रिय छे
अने पुद्गल कर्मथी रहित थाय तेवारे जीव द्रव्य अक्रिय छे
अने पुद्गल द्रव्य सदा सक्रिय छे.

हवे एक, अनेक—पक्षनो निश्चय ज्ञान करवाने नय कहे
छे, सर्व द्रव्यनां अनेक स्वभाव छे, ते एक वचनथी कह्या
जाय नही माटे मांहोमांहे नय सर्व सापेक्ष पने कहे छे,
तिहां मूल नयना बे भेद छे एक द्रव्यार्थिक बीजो पर्याया-
र्थिक तेमां उत्पाद व्यय पर्याय गौन पने अने [illegible]
व्यनो गुन सत्ताने ग्रहे ते द्रव्यार्थिक नय कहिये तेना दस
द छे १ सर्व द्रव्य नित्य छे ते नित्य द्रव्यार्थिक २ अगुरु
लघु अने क्षेत्रनी अपेक्षा न करे मूल गुनने पिंडपने ग्रहे ते
क द्रव्यार्थिक ३ ज्ञानादिक गुने सर्व जीव एक सरिखा
माटे सर्वने एक जीव कहे स्वद्रव्यादिकने ग्रहे ते सत्
र्थिक जेम [illegible] द्रव्ये ४ द्रव्यनां कहेवा योग्य गुन
कार करे ते वक्तव्य द्रव्यार्थिक ५ आत्माने अज्ञानी
ी ते अशुद्ध द्रव्यार्थिक ६ सर्व द्रव्य गुन पर्याय सहित

छे एम कहेवुं ते अन्वय द्रव्यार्थिक ७ सर्व जीव द्रव्यनी मूल सत्ता एक छे ते परमद्रव्यार्थिक नय ८ सर्व जीवना आठ प्रदेश निर्मल छे ते शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ९ सर्व जीवना असंख्यात प्रदेश एक सरीखा छे ते सत्ता द्रव्यार्थिक नय, १० गुण-गुणी द्रव्य ते एक छे ते परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक. जेम आत्मा ज्ञानरूप छे. इत्यादिक ए द्रव्यार्थिक नयना दश भेद कह्या.

हवे पर्यायार्थिक नयना छ भेद कहे छे जे पर्यायने ग्रहे ते पर्यायार्थिक नय कहिये, तेना छ भेद छे १ द्रव्य पर्याय ते जीवने भव्यपणुं तथा सिद्धपणुं कहेवुं, २ द्रव्य व्यंजन पर्याय ते द्रव्यनुं प्रदेशमान, ३ गुण पर्याय जे एक गुणथी अनेकता थाय जेम धर्माधर्मादिद्रव्य पोताना चलण सहकारादि गुणथी अनेक जीव तथा पुद्गलने सहाय करे, ४ गुण व्यंजन पर्याय जे एक गुणना घणा भेद छे ५ स्वभाव पर्याय ते अगुरुलघु पर्यायथी जाणवो. ए पांच पर्याय सर्व द्रव्यमां छे अने छट्ठो विभाव पर्याय ते जीव पुद्गल ए वे द्रव्यमां छे तिहां जीव जे चार गतिना नवा नवा भव करे ते जीवमां विभाव पर्याय तथा पुद्गलमां खंधपणुं ते विभाव पर्याय जाणवो.

हवे पर्यायना बीजा छ भेद कहे छे १ अनादि नित्य पर्याय ते जेम पुद्गल द्रव्यनो मेरु प्रमुख, २ सादि नित्य पर्याय ते जीव द्रव्यनुं सिद्धपणुं, ३ अनित्य पर्याय ते समय समयमां द्रव्य उपजे विणशे छे, ४ अशुद्ध अनित्य पर्याय ते जन्म मरण थाय छे तेणे करी कहेवुं, ५ उपाधि पर्याय ते कर्म संबंध, ६ शुद्ध पर्याय जे मूल पर्याय सर्व द्रव्यना एक सरीखा छे ए पर्यायार्थिकनुं स्वरूप कह्युं.

[illegible]

[illegible]

विशेपताने अंगीकार करे छे, जे जीव द्रव्य एम कह्युं तो अजीव सर्व टल्या ते विशेष संग्रह.

हवे व्यवहार नय कहे छे. जे बाह्यस्वरूप देखीने भेदनी वेंहेचण करे अने जे बाहेर देखता गुणनेज माने पण अंतरंग सत्ता न माने एटले ए नयमां आचार क्रिया मुख्य छे. अंतंरंग परिणामनो उपयोग नथी केमके नैगम तथा संग्रह नय ते ज्ञान रूप ध्याननना परिणाम विना अंश तथा सत्ता ग्राही छे तेम इहां करणी मुख्य छे ते व्यवहारनये (पणे) जीवनी व्यवस्था अनेक प्रकारें छे. तिहां नैगम तथा संग्रह नय करी सर्व जीव सत्तायें एक रूप छे पण व्यवहार नयथी जीवना बे भेद छे. एक सिद्ध, बीजा संसारी. ते वली संसारी जीवना बे भेद छे. एक अयोगी चौदमा गुणठाणावाला तथा बीजा सयोगी ते सयोगीना बे भेद एक केवली बीजो छद्मस्थ, छद्मस्थना बे भेद एक क्षीण मोही बारमा गुणठाणे वर्त्तता मोहनीय कर्म खपाव्युं ते, बीजो उपशान्तमोहते उपशान्त मोहना वली बे भेद एक अकषायी इग्यारमा गुणठाणना जीव; बीजा सकषायीना बे भेद छे, एक सूक्ष्म कषायी दशमा गुणठाणाना जीव बीजा बादर कषायी. ते बादर कषायीना वली बे भेद छे. एक श्रेणि प्रतिपन्न, बीजो श्रेणि रहित ते श्रेणी रहितना बे भेद. एक अप्रमादी बीजो प्रमादी ते प्रमादीना बे भेद एक सर्व विरति बीजो देश विरति, देश विरतिना बे भेद एक विरति परिणामि बीजा अविरति परिणामि, अविरतिना बे भेद एक अविरति समकीति बीजा अविरति मिथ्यात्वी, ते मिथ्यात्वीना बे भेद एक भव्य बीजा अभव्य, ते भव्यना बे भेद एक ग्रंथिभेदी बीजा ग्रंथी अभेदी (अभेद ग्रन्थि) एवी रीते जे जीव जेवो देखाय तेने

तेवो माने ए व्यवहार नय छे एमज पुद्गलना भेद करवा ते कहे छे. पुद्गल द्रव्यना बे भेद छे एक परमाणु, बीजो स्कंध, स्कंधना बे भेद एक जीवने लाग्या ते जीव सहित बीजा जीव रहित ते घडो प्रमुख अजीवनो स्कंध, हवे जीव सहित स्कंधना बे भेद छे एक सूक्ष्म स्कंध बीजो बादर स्कंध.

इहां वर्गणानो विचार लखीये छैये, तिहां पुद्गलनी वर्गणा आठछे १ औदारिक वर्गणा २ वैक्रिय वर्गणा ३ आहारक वर्गणा ४ तैजस वर्गणा ५ भाषा वर्गणा ६ श्वासोच्छ्वास वर्गणा ७ मनो वर्गणा ८ कार्मण वर्गणा—ए आठ वर्गणानां नाम कह्यां. बे परमाणु भेळा थाय त्यारे द्विप्रदेशस्कंध कहेवाय. त्रण परमाणु भेळा थाय त्यारे त्र्यणुकस्कंध थाय. एम संख्याता परमाणु मिळे संख्याताणुकस्कंध थाय, तेमज असंख्याते असंख्याताणुकस्कंध थाय, तथा अनंता परमाणु मिळे अनंताणुकस्कंध थाय. ए स्कंध ते सर्व जीवने अग्रहण योग्य छे, अने ज्यारे अभव्यथी अनंतगुण अधिक परमाणु भेळा थाय त्यारे औदारिक शरीरने लेवा योग्य वर्गणा थाय.

एमज औदारिकथी अनंतगुणा अधिक वर्गणानां दळ भेळां थाय त्यारे वैक्रिय वर्गणा थाय, वळी वैक्रिय थकी अनंतगुणा परमाणु मिळे त्यारे आहारक वर्गणा थाय. एम सर्व वर्गणाना एकेकथी अनंतगुणा अधिक परमाणु मिळे त्यारे ते वर्गणा थाय. एटले पहेलीथी बीजी वर्गणा, बीजीथी त्रीजी एम सातमी मनो वर्गणाथी आठमी कार्मण वर्गणानां अनंतगुण परमाणु अधिक छे. इहां १ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तैजस, ए चार वर्गणा बादर छे तेनां पांचवर्णने गन्ध—पांच रस, आठ स्पर्श ए वीस गुण छे, तथा १ भाषा २ श्वासोच्छ्वास ३ मन ४ कार्मण ए

चार वर्गणा सूक्ष्म छे एमां पांचवर्ण–बे गन्ध, पांचरस–चार स्पर्श– ए सोल गुण छे, अने एक परमाणमां एक वर्ण–एक गंध– एक रस–बे स्पर्श ए पांच गुण छे. एम पुद्गल खंधना अनेक भेद छे.

ए व्यवहार नयना छ भेद छे. १ शुद्ध व्यवहार ते आगला गुणठाणानुं छोडवुं अने उपरना गुणठाणानुं ग्रहण करवुं अथवा ज्ञान–दर्शन–चारित्र गुण ते निश्चयनय एकरूप छे. पण ते शिष्यने समजाववाने जूदा जूदा भेद कहेवा ते शुद्ध व्यवहार छे. २ जीवमां अज्ञान राग द्वेष लाग्या छे ते अशुद्धपणुं छे माटे अशुद्ध व्यवहार. ३ जे पुण्यनी क्रिया करवी ते शुभ व्यवहार ४ जेथकी जीव पापरूप अशुभ कर्म करे ते ५ अशुभ व्यवहार. धन–घर–कुटुंब प्रत्यक्ष सर्व आपणाथी जुदा जुदा छे पण जीवें अज्ञानपणे आपणा करी जाण्या छे ते उपचरित व्यवहार. ६ शरीरादिक परवस्तु यद्यपि जीवथी जुदी छे तोपण परिणामिकभाव लोलीपणे एकठा मिली रह्या छे तेने जीव आपणा करी जाणे छे ते अनुपचरित व्यवहार जाणवो. ए व्यवहार नय कह्यो.

हवे ऋजु सूत्र नयनो विचार कहे छे. जे अतीत काल अने अनगत कालनी अपेक्षा न करे पण वर्त्तमान काले जे वस्तु जेवा गुण परिणामे वर्त्ते ते वस्तुने तेवेज परिणामे माने माटे ए नय परिणामग्राही छे. जेम कोइक जीव गृहस्थ छे पण अंतरंग साधुसमान परिणाम छे तो ते जीवने साधु कहे अने कोइक जीव साधुने वेषे छे पण मनना परिणाम विषयाभिलाप सहित छे तो ते जीव अव्रतीज छे एम ऋजु सूत्रनुं मानवुं छे. ते ऋजु सूत्रना बे भेद छे एक सूक्ष्म ऋजु सूत्र ते

एम कहे जे सदाकाळ सर्व वस्तुनां एक वर्त्तमान समय वर्ते छे एटले जे जीव गया काळे अज्ञानी हतो अने अनागत काळे अज्ञानी भावें अज्ञानी यशे एम बेहु काळनी अपेक्षा न करे पण एक वर्त्तमान समये जे जेवो तेने तेवो कहे ते वस्त्र ऋजुसूत्र कहियें अने महोटा बाह्यपरिणाम ग्रहे ते स्थूल ऋजु सूत्र नय जाणवो. एटले रुजु सूत्र नय कह्यो.

हवे शब्दनय कहे छे. जे वस्तु गुणवंत अथवा निर्गुण ते वस्तुने नाम कही बोलावियें जे भाषा वर्गणायी शब्द पणें वचन गोचर थाय ते शब्दनय जे कारणे अरूपी द्रव्य वचनथी कहेवा ते शब्दनय कहियें इहां जे शब्दनो अर्थ होय ते पणो जे वस्तुमां वस्तुपणे पामियें ते वारे ते वस्तु शब्दनय कहियें जेम घटनी चेष्टाने करतो होय ते घट. ए शब्दनयमां व्याकरणथी नीपना अने बीजा पण सर्व शब्द लीधा ते शब्दनयना चार भेद छे १ नाम २ स्थापना ३ द्रव्य ४ अने भाव चार निक्षेपाना पण एहिज नाम छे.

१ पहेलो नाम निक्षेपो ते आकार तथा गुणरहित वस्तुने नाम करी बोलाववो. जेम एक लाकडीनो कटको लेइने कोइके तेहने जीव एवुं नाम कर्युं ते नाम जीव जाणवुं. जेम काळी दोरीने सापनी बुद्धियें करी घावेहणे तेहने सापनी हिंसा लागे ए नाम सर्व थयुं. एवीज रीते नाम तप अथवा नाम सिद्ध जेम वड मसुरने सिद्धवड एम करी बोलावे छे ते नाम निक्षेपो कहियें ए सूत्र सारें छे.

२ स्थापना निक्षेपो कहे छे. जे कोइक वस्तुनां कोइक वस्तुनो आकार देखीने तेहने ते वस्तु करे जेम चित्रामय अथवा काष्ठ पाषाणनी मूर्त्ति तेने घोडा-हाथीनो आकार छे तो ते

घोडा–हाथी कहेवाय ते स्थापना जाणवी. ए स्थापना निक्षेपो नाम निक्षेपे सहित होय जेम स्थापना सिद्ध जिनप्रतिमा प्रमुख ते सद्भाव स्थापना पण होय अने असद्भाव स्थापना पण होय. अकृत्रिम जिन प्रतिमा ते नंदीश्वरद्वीप प्रमुखने विषे अने जेह इहांनी जिन प्रतिमा ते कृत्रिम ते सर्व स्थापना जाणवी. जेम चित्रामनी स्त्री जिहां मांडी होय तिहां साधु रहे नही. कारणके स्थापना स्त्री छे ते स्त्री तुल्य जाणवी तेमज जिन प्रतिमा जिन समान जाणवी. इहां कोइक अज्ञानी जीव कहे छे जे, स्थापनामां ज्ञानादि गुण नथी तेथी स्थापनाने मानवी पूजवी नही तेने उत्तर कहे छे के स्थापना रूप स्त्रीमां स्त्रीपणाना गुण नथी तो पण ते विकारनुं कारण थाय छे. तेमज जिनप्रतिमा पण ध्याननुं कारण छे अने ते एम पुछे के हिंसा थाय छे अने भगवंते तो दयाने धर्म कह्यो छे तेहने एम कहेवुं जे परदेशी राजा केसी गुरुने वांदवाने अर्थे बीजे दीवसें मोहोटा आडंबरथी आव्यो ते वंदनामां हिंसा थइ पण लाभ कारण गणतां त्रोटो न थयो. बीजो मल्लिनाथजीयें छ मित्र प्रतिबोधवाने पुतळीनो दृष्टान्त कह्यो, ते हिंसा तो घणी थइ पण ते लाभना कारणमां गणी छे एम भाव शुद्ध होय तिहां हिंसा लागती नथी, अथवा कोइक एम कहे छे जे अमे आपणे स्थानके बेठा नमुथ्थुणं कहिशुं अमने लाभ थासे ते खरो पण भगवती सूत्रमां भगवानने वंदनाने अधिकारें तो तिहां जइ वंदना करवानुं फल महोटुं कह्युं छे तथा निक्षेपाने अधिकारें कह्युं जे भाव निक्षेपो एकलो थाय नही पण नाम स्थापना तथा द्रव्य ए त्रण मिल्या भाव निक्षेपो थाय माटे स्थापना अवश्य मानवी. हवे जे स्थापना न माने तेने कहियें जे,

चित्रामनी मूर्त्ति ते हिंसाना परिणामथी फाडे तेहने हिंसा
छे तेमज जिनवरना थ्याने जिनप्रतिमा पूजतां लाभ था
एम युक्ति करतां तथा आगमनी साखे पण जिन प्रति
जिनसमान माने ते आराधक अने जे जिन प्रतिमाने न
तेणे स्थापना निक्षेपो उथाप्यो अने स्थापना उथापी तो द्र
तथा भाव निक्षेपो स्थापना विना थाय नही माटे द्रव्य त
भाव पण उथाप्यो एम त्रण निक्षेपा उथाप्या ते वीर सिद्धान्त
उथाप्यांज माटे जे जिनप्रतिमाने नहीं माने ते विराधक जा-
णवो ते स्थापना इतर अने यावत्कथिक ए वे भेदे छे.

२ द्रव्य निक्षेपो कहे छे, जेनो नाम पण होय तथा आ-
कार थापना गुण पण होय अने लक्षण होय पण आत्मोप-
योग न मिले ते द्रव्य निक्षेपो जाणवो एटले अज्ञानी जीव
ते जीव स्वरूपना उपयोग विना द्रव्य जीव छे "अणुवओगो-
दव्वं" इति अ योगद्वार वचनात्. वली कयुं छे जे सिद्धान्त
वांचतां पूछतां पद अक्षर मात्रा शुद्ध अर्थ करे छे अने गुरु-
मुखे सद्दहे छे ते पण शुद्ध निश्चये पोतानी सत्ता ओलख्या विना
सर्व द्रव्य निक्षेपामां छे. जे भाव विना द्रव्यपणो छे ते पुण्य-
बंधनुं कारण छे पण मोक्षनुं कारण नथी एटले जे करणी रूप
कष्ट तपस्या करे छे अने जीव अजीव पदार्थनी सत्ता ओ-
लखी नथी तेने भगवती सूत्रमां अव्रती तथा अपच्चक्खाणी
कह्या छे, तथा जे एकली बाह्य करणी करे छे अने पोते साधु
कहेवाय छे ते मृषावादी छे एम उत्तराध्ययन सूत्रमां कयुं छे
"नमुणी रन्नवासेणं" ए वचने "नाणेण य मुणी होइ" ए वचनथी.
जे ज्ञानवान् ते मुनि छे अने जे अज्ञानी ते मिथ्यात्वी छे.,
तथा कोइक गणितानुयोगना नरक देवताना बोल अथवा यति

श्रावकनो आचार जाणीने कहे जे अमे ज्ञानी छैयें ते पण ज्ञानी नथी पण जे द्रव्य गुण पर्याय जाणे तेने ज्ञानी कहियें. श्री उत्तराध्ययने मोक्ष मार्ग कह्यो छे. गाथा " एयं पंच विहणाणाणं दव्वाणय गुणाणय, पज्जवाणय सवेसिं, नाणं नाणी हि दंसियं ॥ १ ॥ माटे वस्तु सत्ता जाण्या विना ज्ञानी समजवुं नही अने नवतत्त्व ओलखे ते समकीति अने एहवा ज्ञान दर्शन विना जे कहे के अमे चारित्रिआ छैयें ते पण मृषावादी छे कारण के श्री उत्तराध्ययन सूत्र मध्ये कयुं छे जे " नाणं दंसण नाणं नाणेण विना न हुंति चरण गुणा " ए वचन छे ते माटे आज केटलाक ज्ञानहीन क्रियानो आडंबर देखाडे छे ते ठग छे तेहनो संग करवो नही. ए बाह्य करणी अभव्य जीवने पण आवे माटे ए बाह्य करणी ऊपर राचवुं नही अने आत्मानुं स्वरूप ओलख्या विना सामायक पडिकमणा पच्चख्खाण करवां ते सर्व द्रव्यनिक्षेपामां पुण्याश्रव छे पण संवर नथी. श्रीभगवती सूत्र मध्ये कयुं छे के " आयाखलु सामाइयं " ए आलावाथी जाणजो तथा जीव स्वरूप जाण्या विना तप संयम पुण्य प्रकृति ते देवताना भववुं कारण छे " पुव्व तवेणं पुव्व संयमेणं देवलोए उववज्जंति नो चेवणं आयत्ता भाववत्तव्वयाए " ए आलावो भगवतीमां कह्यो छे. तथा जे क्रियालोपी आचार हीन अने ज्ञानहीन छे मात्र गच्छनी लाजें सिद्धान्त भणे वांचे छे व्रत पच्चख्खाण करे छे ते पण द्रव्य निक्षेपो जाणवो. एम श्री अनुयोगद्वारमां कयुं छे. सेकिंतंलोगुत्तरिअंदव्वावस्सयं ?

जे इमे समण गुणमुक्कजोगी छक्काय निरणुकंपा ॥ हयाइव उद्दामा ॥ गयाइव निरंकुसा ॥ घट्ठामट्ठातुप्पोठा ॥ पंडुरपडपाउरणा जिणाणमणाणाए सच्छंदं विहरिउण उभओकालं आवस्सयस्स उवट्ठंति ॥ सेतं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं ॥

अर्थ—जेने छ कायनी दया नथी, घोडानी पेरें उन्मत्त छे, हाथीनी पेठे निरंकुश छे, पोताना शरीरने धोवतां मसलता उजळे कपडे शिणगार करी गच्छना ममत्वभावे माचतां स्वेच्छाचारी वीतरागनी आज्ञा भांजता जे तप क्रिया करे छे ते पण द्रव्य निक्षेपामां छे. अथवा ज्योतिष वैद्यक करे छे अने पोताने आचार्य उपाध्याय कहेवरावीने लोक पासे महिमा करे (करावे छे) छे ते पत्रीवंत खोटा रुपैया जेवा छे. घणा भव भमसे माटे अवंदनीक छे ए शास्त्र उत्तराध्ययनमध्ये अनाथी मुनिना अध्ययनथकी जाणवी अने सूत्रना अर्थ गुरुमुखे शिख्या विना तथा नय प्रमाण जाण्या विना निश्चय आत्मानुं स्वरूप ओळख्या विना निर्युक्ति विना उपदेश आपे छे ते पोते तो संसारमां बुड्या छे पण जे तेमनी पासे बेसे छे तेमने पण संसारमां बुडावे छे एम प्रश्न व्याकरण सूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्रमां कयुं छे "अज्ञान्ध चेन सोल समं" इत्यादि अने भगवती सूत्रमां पण कयुं छे "सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्ति मिसओ भणिओ, इयो तईयणुओगो, नायव्वाओ जिणवरेहिं" अने केटलाक एम कहे छे जे अने सूत्र उपर * अर्थ करिये छैये तो निर्युक्ति तथा टीका भणवानुं शुं काम छे ते पण मृषावाद

* श्री भगवती सूत्रमां "सुत्तत्थोखलु पढमो, बीओनिज्जुत्ति मिसओ भणिओ ॥ इत्तो तईयणुओगो, नायव्वाओजिणवरेहिं" एवी रीते आगमसारनी जूदी जूदी त्रण प्रतोमां लख्युं हतुं माटे में पण तेमज लख्युं छे पण बीजा ठेकाणे ए भगवतीनी शास्त्र दीठी छे तिहां तो "सुत्तत्थो खलुपढमो, बीओनिज्जुत्ति मिसओ भणिओ ॥ तइओय निरविसेसो, एस विहि होइ अणुओगो" एवो पाठ छे ते खरो जणाय छे बहुश्रुत कहे ते खरूं.

छे केमके श्रीप्रश्नव्याकरणमां " वयणतियं लिंगतियं " इत्यादिक जाण्या विना अने नय निक्षेप जाण्या विना जे उपदेश आपे ते मृषावाद छे एम अनेक सूत्रमां कह्युं छे माटे बहुश्रुत पासे उपदेश सांभलवो. श्री उत्तराध्ययन मध्ये बहुश्रुत ने मेरुनी तथा समुद्रनी अने कल्पवृक्षादि सोल उपमा दीधी छे ए द्रव्य निक्षेपो कह्यो.

४ भाव निक्षेपो कहे छे. जे नाम स्थापना अने द्रव्य ए त्रण निक्षेपा ते एक भाव निक्षेपा विना अशुद्ध छे जे नाम तथा आकार लक्षण गुण सहित वस्तु ते भाव निक्षेपो जाणवो " उवओगो भाव " इति वचनात् एटले पूजा, दान, शील, तप, क्रिया, ज्ञान ए सर्व भावनिक्षेपे सहित लाभनुं कारण छे इहां कोइ कहेशे जे मनना परिणाम दृढ करीने जे करियें तेने भाव कहियें एम कहे छे ते जूठा छे ए तो सुखनी वांछायें मिथ्यात्वी पण घणा करे छे ते गणवुं नही. इहां सूत्रनी साखे वीतरागनी आज्ञा हेय उपादेयनी परीक्षा करी अजीवतत्व तथा आस्रवतत्त्व अने बन्धतत्त्व उपर हेय कहेतां त्याग भाव अने जीवना स्वगुण जे संवर निर्जरा तथा मोक्ष तत्त्व ऊपरें उपादेय परिणाम ते भाव कहिये एटले रूपीगुण ते द्रव्य निक्षेप छे अने अरूपीगुण ते भावनिक्षेप छे एटले मन वचन काया लेश्यादिक सर्व द्रव्य निक्षेपामां छे अने ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य ध्यान प्रमुख सर्व गुण भाव निक्षेपामां छे. ए भाव निक्षेपो ते नामस्थापना तथा द्रव्य सहित होय एटले चार निक्षेपा कह्या.

हवे चार निक्षेपा पदार्थ ऊपर लगाडी देखाडे छे नाम जीव ते चेतना अथवा मांचाने एक वाणने जीव कही बोलावे

तथा कोइकनुं तप एहवुं नाम ते नाम तप तथा पुस्तकमां तपनी विधीनुं लेखन ते थापना तप अने पुण्यरूप मासखमणादिक करवो ते द्रव्य तप. जे परवस्तु उपर त्यागनो परिणाम ते भाव तप. एम संवरादिक सर्वमां चार चार निक्षेपा जाणवा. तथा श्री अनुयोगद्वार मध्ये कयुं छे–यतः " जत्थयजं जाणिज्जा, निख्खेवं निख्खिवे निरवसेसं ॥ जत्थवी य न जाणिज्जा, चउक्कगंनिख्खिवे तत्थ ॥ १ । ए चार निक्षेपा कह्या एटले शब्दनय कह्यो.

हवे छट्ठो समभिरूड नय कहे छे जे वस्तुना केटलाक गुण प्रगट्या छे अने केटलाक गुण प्रगट्या नथी पण अवश्य प्रगटशे एहवी वस्तुने वस्तु कहे ते वस्तुना नामांतर एक करी जाणे. जेम जीव चेतन तथा आत्मा एहनो * एक अर्थ कहे ते समभिरूढ नय कहियें ए नय एक अंश ओछी वस्तुने पूरेपूरी वस्तु कहे जेम तेरमा गुणठाणे केवली होय तेहने सिद्ध कहे. ए नयना भेद बिलकुल नथी ए समभिरूढनय कह्यो.

हवे एवंभूतनय कहे छे जे वस्तु पोताने गुणे संपूर्ण छे अने पोतानी क्रिया करे छे तेने ते वस्तु कही बोलावे. जेम मोक्षस्थानकें जे जीव पहोतो तेनें सिद्ध कहे. जेम पाणीथी भरेलो स्त्रीना माथा उपर आवतो जल धरण क्रिया करतो तेने घडो कहे. ए एवंभूतनय कह्यो.

हवे सात नयना दृष्टान्त श्री अनुयोगद्वार सूत्रथी लखियें छैयें. जेम कोइक पुरुषे कोइक बीजा पुरुषने पुछ्युं जे तमे किहां वसोछो तेवारें ते पुरुषे कयुं हुं लोकमां वसुंछुं तेवारें

* एकार्थवाची नामोनां नामभेदे भिन्न भिन्न अर्थ करे छे तेने समभिरूढनय कथे छे.

प्रदेश छे तेवारें व्यवहारनय बोल्यो के जे द्रव्य मुख्य देखाय छे तेहनो प्रदेश छे तेवारें ऋजुसूत्रनय बोल्यो के जे द्रव्यनो उपयोग देइ पुछियें ते द्रव्यनो प्रदेश छे. जो धर्मास्तिकायनो उपयोग देइ पुछियें तो धर्मास्तिकायनो प्रदेश छे. जो अधर्मास्तिकायनो उपयोग देइ पुछियें तो अधर्मास्तिकायनो प्रदेश छे. तेवारे शब्दनय बोल्यो के जे द्रव्यनो नाम लइ पुछियें ते द्रव्यनो प्रदेश छे. हवे समभिरूढनय बोल्यो जे एक आकाश प्रदेश मध्ये धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश छे, अधर्मास्तिकायनो एक प्रदेश छे अने जीवना अनंता प्रदेश छे. पुद्गलना पण अनंता प्रदेश छे, तेवारे एवंभूतनय बोल्यो के प्रदेशनी जे द्रव्यनी क्रियागुण पर्याय अंगीकार करी देखीयें ते समय ते प्रदेश ते द्रव्यनो गणियें ए प्रदेशमां सात नय कह्या.

हवे जीवमां सात नय कहे छे प्रथम नैगमनयने मते जे गुण पर्यायवंत शरीर सहित ते जीव एटले शरीरमां जे बीजा पुद्गल तथा धर्मास्तिकायादिक द्रव्य छे ते सर्व जीवमांज गण्या तेवारे संग्रहनय बोल्यो जे असंख्यात प्रदेशी ते जीव एटले एक आकाशना प्रदेश टल्या बीजा सर्व द्रव्य एमां गणाणां तेवारे व्यवहारनय बोल्यो जे विषय लइ काम वात संभारे ते जीव इहां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा बीजा पुद्गल सर्व टल्या पण पांचे इन्द्रीय तथा मन अने लेश्या ए पुद्गल छे ते जीवमां गणाणा, कारणके विषयादिकतो इंद्रियो ले छे ते जीवथी न्यारा छे पण इहां व्यवहारनयमते जीव भेला लीवा छे तेवारें ऋजुसूत्रनय बोल्यो जे उपयोगवंत ते जीव इहां इंद्रियादिक सर्व टल्या पण अज्ञान तथा ज्ञानना भेद टल्या नहीं. हवे शब्दनय बोल्यो जे नामजीव, स्थापना जीव

जीव मात्र जीव इहां जीवनां गुण-निर्गुणनो भेद पड्यो तेवारें समभिरूढनय बोल्यो जे ज्ञानादिगुणवंत ते जीव मतिज्ञान श्रुतज्ञान इत्यादिक साधक अवस्थाना गुण जीव स्वरूपनो आत्मा. हवे एवंभूतनयबोल्यो जे अनं-, अनंतदर्शन, अनंत चारित्र, शुद्धसत्तावंत ते जीव. ए नये द्ध अवस्थानां गुण हता तेज ग्रह्या ए सात नये जीव कह्यो.

हवे सातनयें धर्म कहे छे. नैगमनय बोल्यो जे सर्व धर्म के सर्व प्राणी धर्मने चाहे छे. ए नय अंशरूप धर्मने हवुं नाम कहे. हवे संग्रहनय बोल्यो जे वडेरायें आ-ते धर्म, एने अनाचार छोड्यो पण कुलाचारने धर्म कह्यो, नय बोल्यो जे सुखनुं कारण ते धर्म एने पुण्य कर-धर्म करी मान्यो. ऋजुसूत्रनयमनवे जे उपयोग सहित रूप परिणाम ते धर्म कहियें. ए नयमां यथाप्रवृत्तिक-परिणाम प्रमुख सर्व धर्मनां गण्या ते मिथ्यात्वीने पण -हवे शब्दनय बोल्यो जे धर्मनुं मूल समकित छे माटे त तेज धर्म तेवारें समभिरूढनय बोल्यो जे जीव अजीव व नवा ए द्रव्यने ओळखीने जीवसत्ता ध्यावे, अजीवनो करे एहवो ज्ञान दर्शन चारित्रनो शुद्ध निश्चय परिणाम र्म. ए नये साधक सिद्धना परिणाम ते धर्मनये लीधा. नय बोल्यो जे शुक्ल ध्यान रूपातीतना परिणाम क्षपक -कर्म क्षयना कारण ते धर्म जे जीवनो मूल स्वभाव ते धर्म जे मोक्षरूप कार्यने करे ते धर्म. ए साते नयें कह्यो.

हवे सातनयें सिद्धपणो कहे छे. नैगमनयनी मते सर्व

जीव सिद्ध छे केमके सर्व जीवना आठ रुचक प्रदेश सिद्ध समान निर्मल छे माटे संग्रहनय कहे जे सर्व जीवनी सत्तासिद्ध समान छे एणे पर्यायार्थिक नयेंकरी कर्म सहित अवस्था ते टाळीने द्रव्यार्थिकनयेंकरी अवस्था अंगीकार करी तेवारें व्यवहारनय बोल्यो जे विद्या लब्धि प्रमुख गुणे करी सिद्ध थयो ते सिद्ध. ए नये बाह्य तप प्रमुख अंगीकार करया. हवे ऋजुसूत्रनय बोल्यो के जेणे पोताना आत्मानी सिद्धपणानी सत्ता ओळखी अने ध्याननो उपयोग पण तेज वर्ते छे ते समये ते जीव सिद्ध जाणवो. ए नये समकीति जीव सिद्ध समान छे एम कह्युं हवे शब्दनय बोल्यो जे शुद्ध शुक्ल ध्यान परिणाम नामादिक निक्षेपे ते सिद्ध. तेवारें समभिरूढनय बोल्यो जे केवलज्ञान केवलदर्शन, यथाख्यातचारित्र ए गुणे सहित ते सिद्ध जाणवा. ए नये तेरमा चउदमा गुणठाणाना केवलीने सिद्ध कह्या अने एवंभूतनय कहे छे के जेना सकल कर्म क्षय थया लोकने अंते बिराजमान अष्टगुण संपन्न ते सिद्ध जाणवा. ए रीते सिद्ध पदे सात नय कह्या. एम सात नय मिल्या समकीति छे अने जे एक नयने ग्रहण करे ते मिथ्यात्वी छे. ए साते नय मिल्या ते वचन प्रमाण छे अने ए सात नयमां कोइ पण नयने उत्थापे तेनुं वचन अप्रमाण छे.

हवे प्रमाणनो विचार कहे छे. प्रमाणना बे भेद छे. एक प्रत्यक्ष प्रमाण बीजुं परोक्ष प्रमाण तेमां जे जीव पोताना उपयोगें द्रव्यने जाणे ते प्रत्यक्ष प्रमाण कहियें तेना बे भेद छे द्रव्य प्रत्यक्ष प्रमाणे जाणे तथा देखे ते सर्व केवळज्ञान ते सर्वथा प्रत्यक्ष ज्ञान छे, अने मनःपर्यवज्ञान ते मनोवर्गणा प्रत्यक्ष जाणे तथा अवधिज्ञान ते पुद्गल द्रव्यने प्रत्यक्ष जाणे.

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

४ अस्ति अने नास्ति ए बेहु भांगा एक समयमां छे तो वचने करी अस्ति एटलो बोलतां असंख्याता समय लागे तेथी नास्ति भांगो तेज वखते कहेवाणो नही अने जो नास्ति भांगो कह्यो तो अस्ति पणो नाव्यो माटे एकज अस्ति कहेतां थकां नास्तिपणो तेज समये द्रव्यमां छे ते नही कहेवाणो माटे मृषावाद लागे तेमज नास्ति कहेतां अस्तिनो मृषावाद लागे माटे वचने अगोचर छे एक समयमां बेहु वचन बोल्या जाय नही केमके एक अक्षर बोलतां असंख्याता समय लागे छे माटे वचनथी अगोचर छे ते स्यात् अवक्तव्य ए चोथो भांगो कह्यो.

५ ते अवक्तव्यपणो वस्तुमां अस्तिधर्मनो पण छे माटे स्यात्अस्ति अवक्तव्य पांचमो भांगो कह्यो.

६ तेमज नास्ति धर्मनो पण अवक्तव्यपणो वस्तु मध्ये छे माटे स्यात् नास्ति अवक्तव्य छट्ठो भांगो जाणवो.

७ ते अस्तिपणो तथा नास्तिपणो बेहु धर्म एकसमये वस्तु मध्ये छे पण वचनथी अवक्तव्य छे माटे स्यात् अस्ति-नास्तियुगपत्अवक्तव्य ए सातमो भांगो कह्यो.

हवे ए सात भांगा नित्य तथा अनित्यपणामां लगाडे छे १ स्यात् नित्यं २ स्यात् अनित्यं ३ स्यात्नित्यानित्यं ४ स्यात्-अवक्तव्यं ५ स्यात्नित्यंअवक्तव्यं ६ स्यात्अनित्यं अवक्तव्यं ७ स्यात् नित्यानित्यं युगपत् अवक्तव्यं, एमज एक अनेकना सात भांगा कहेवा तथा गुणपर्यायमां पण कहेवा केमके सिद्ध मध्ये नय नथी तोपण सप्तभंगी तो सिद्धमां छे.

हवे सत्ता ओलखाववाने त्रिभंगीयो कहे छे. १ मिथ्यात्व दशा ते बाधकदशा. २ समकित गुणठाणाथी मांडीने अयोगी केवली गुणठाणा सुधी साधक दशा जाणवी. ३ सर्व कर्मथी

रहित ते सिद्ध दशा. १ ज्ञाननो जाणपणो ते जीवनो गुण. २ तेनो ज्ञाता ते जीव. ३ ज्ञेय ते सर्व द्रव्य. १ ध्यान ते जीवना स्वरूपनो २ ते ध्याननो ध्याता जीव ३ ध्येय आत्मानो स्वरूप. १ कर्ता ते जीव २ कर्म ते एक मोक्ष बीजो बन्ध ३ क्रिया ते एक संवर बीजी आस्रव. १ कर्म ते चेतनाने कर्म बंधना परिणाम २ कर्मनुं फल ते चेतनाने जे कर्म उदयना परिणाम ३ ज्ञान चेतना ते जीवनो स्वगुण. ते आत्माना त्रण भेद छे १ अज्ञानी जीव शरीरादिक परवस्तुने आत्मबुद्धियें करी माने छे. पहेलो बहिरात्मा २ जे देह सहित जीव छे ते पण निश्चये सत्तागुण सिद्ध समान छे एटले पोताना जीवने सिद्ध समान करी ध्यावे ते बीजो अंतरात्मा जाणवो. ३ कर्म खपावी केवलज्ञान पाम्या ते अरिहंत तथा सिद्ध सर्व परमात्मा जाणवा. ए त्रिभंगीनो विचार कह्यो एटले आठ पक्षनो विचार कह्यो.

हवे एक द्रव्य मध्ये छ सामान्य गुण छे ते कहे छे. पहेलो अस्तित्व ते जे छ द्रव्य आपणा गुण पर्याय प्रदेशे करी अस्ति छे तेमां धर्म, अधर्म, आकाश अने जीव ए चार द्रव्यनो असंख्याता प्रदेश मिल्या खंध थाय छे अने पुद्गलमां खंध थवानी शक्ति छे माटे ए पांच द्रव्य अस्तिकाय छे अने छट्टो काल द्रव्यनो समय कोइ कोइथी मिल्तो नथी केमके एक समय विणस्या पछे बीजो समय आवे छे माटे काल अस्तिकाय नथी. द्रव्यमां ए अस्तित्व पणो कह्यो.

२ वस्तुत्व कहेतां वस्तुपणो कहे छे ते द्रव्य छए एकठा एक क्षेत्र मध्ये रह्या छे. एक आकाश प्रदेशमां धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश रह्यो छे तथा अधर्मास्तिकायनो पण एक प्रदेश रह्यो छे अने जीव अनंताना अनंता प्रदेश रह्या छे. पुद्

परमाणु अनंता रह्या छे. ते सर्व पोतानी सत्ता लीया थका रह्या छे पण कोइ द्रव्य साथे मिली जातो नथी ते वस्तुपणो.

३ द्रव्यत्व केहतां द्रव्यपणो ते सर्व द्रव्य पोतपोतानी क्रिया करे एटले धर्मास्तिकायमां चलनगुण ते सर्व प्रदेश मध्ये छे. सदा काले पुद्गल तथा जीवने चलाववारूपक्रिया करे छे, इहां कोइ पुछे जे लोकान्त सिद्धक्षेत्रमां धर्मास्तिकाय छे ते सिद्धना जीवने चलाववापणो करतो नथी तेनुं केम ? तेने उत्तर कहे छे जे सिद्धना जीव अक्रिय छे माटे चालता नथी पण ते क्षेत्रमां जे सूक्ष्म निगोदना जीव तथा पुद्गल छे तेहने धर्मास्तिकाय चलावे छे माटे पोतानी क्रिया करे छे, तेमज अधर्मास्तिकाय जीव तथा पुद्गलने स्थिर राखवानी क्रिया करे छे, तथा आकाश द्रव्य ते सर्व द्रव्यने अवगाहनारूपकार्य करे छे. इहां कोइ पूछे जे अलोकाकाशमांतो बीजुं कोइ द्रव्य नथी तो अलोकाकाश कया द्रव्यने अवगाहदान आपे छे तेने उत्तर कहे छे जे अलोकाकाशमां अवगाह करवानी शक्ति तो लोकाकाश जेवीज छे परंतु तिहां अवगाहनो दान लेनार द्रव्य कोइ नथी माटे अवगाहदान करतो नथी अने पुद्गल द्रव्य मिलवा विखरवारूप क्रिया करे छे तथा काल-द्रव्य वर्त्तना रूप क्रिया करे छे अने जीव द्रव्य ज्ञान लक्षण उपयोगरूप क्रिया करे छे एम सर्व द्रव्य पोताने परिणामी स्वसत्तानी क्रिया करे छे ए द्रव्यत्वपणो कह्यो.

४ प्रमेयत्वं कहेतां प्रमेयपणो जे छ द्रव्यमां प्रमेय पणो छे, तेनो प्रमाण केवली पोताना ज्ञानथी करे छे, जे धर्मा-स्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय अने आकाशास्तिकाय एकेक द्रव्य छे अने जीवद्रव्य अनंता छे तेहनी गणति कहे छे. संज्ञी

मनुष्य संख्याता छे, असंज्ञी मनुष्य असंख्याता छे, नारकी असंख्याता छे, देवता असंख्याता छे, तिर्यंच पंचेन्द्रिय असंख्याता छे, बेइन्द्री असंख्याता छे, तेइन्द्री असंख्याता, चौरेंद्रीय असंख्याता छे ते थकी पृथ्वीकाय असंख्याता, अपकाय असंख्याता, तेउकाय असंख्याता, वायुकाय असंख्याता, प्रत्येकवनस्पति जीव असंख्याता, ते थकी सिद्धना जीव अनंता ते थकी बादर निगोदना जीव अनंतगुणा एटले बादर निगोद ते कंदमूल आदु सूरण प्रमुख एहने सुइने अग्रभागें अनंता जीव छे ते सिद्धना जीवथी अनंत गुणा छे अने सूक्ष्मनिगोद सर्वथी अनंत गुणा छे. सूक्ष्मनिगोदनो विचार कहे छे. जेटला लोकाकाशना प्रदेश छे तेटला गोला छे ते एकेक गोलामां असंख्याता निगोद छे. निगोद शब्दनो अर्थ ए छे जे अनंता जीवनो पिंड भूत एक शरीर तेहने निगोद कहियें. ते एकेकी निगोदमध्ये अनंता जीव छे ते अतीत कालना सर्व समय तथा अनागतकालना सर्व समय अने वर्तमान कालनो एक समय तेने भेला करी अनंत गुणा करीये एटला एक निगोदमां जीव छे एटले अनंता जीव छे ए संसारी जीव एकेकाना असंख्याता प्रदेशे छे अने एकेका प्रदेशे अनंति कर्म वर्गणा लागी छे. ते एकेक वर्गणा मध्ये अनंता पुद्गल परमाणु छे एम अनंता परमाणु जीव साथे लाग्या छे ते थकी अनंत गुणा पुद्गल परमाणु जीवथी रहित छूटा छे.

गोलाय असंखिज्जा,
असंख निगोयओ हवइ गोलो ॥
इक्किकमि निगोए,
अणंतजीवा मुणेयव्वा ॥ १ ॥

गोद मध्ये छे अने भव्य जीवने निगोदनुं कारण ते अज्ञान दशा छे माटे तेहनो त्याग करो. ए निगोदनो विचार कह्यो. ए सर्व प्रमेयनो प्रमाता आत्मा पोताना ज्ञान गुणे करी प्रमेयनो प्रमाण करे ए प्रमेय पणो कह्यो.

५ सत्वपणो ते छ द्रव्य एक समयमां उपजे विणशे छे अने स्थिरपणे छे. उत्पाद व्यय ध्रुवपणो तेहिज सत्पणो. उत्पाद व्ययध्रुवयुक्तं सत् इति "तत्त्वार्थ वचनात्" ते विस्तारथी कही देखाडे छे. जे धर्मास्तिकायना असंख्याता प्रदेश छे तिहां एक प्रदेशमां अगुरुलघु असंख्यातो छे अने बीजा प्रदेशमां अनंतो अगुरुलघु छे, त्रीजा प्रदेशमां संख्यातो अगुरुलघु छे एम असंख्याता प्रदेशमां अगुरुलघुपर्याय घटतो वधतो रहे छे ते अगुरुलघु पर्याय चल छे ते जे प्रदेशमां असंख्यातो छे ते प्रदेशमां अनंतो थाय छे अने अनंताने ठेकाणे असंख्यातो थाय छे एम लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशमां सरीखो समकाले अगुरु लघु पर्याय फिरे छे ते जे प्रदेशमां असंख्यातो फिटीने अनंतो थाय छे ते प्रदेशमां असंख्यातपणानो विनाश छे अने अनंत पणानो उपजवो छे, अने अगुरुलघुपणे गुण ध्रुव छे एम उपजवो विणसवो अने ध्रुव ए त्रणे परिणाम छे. अधर्मास्तिकायमां पण ए त्रणे परिणाम असंख्यात प्रदेशे सदा समय समयमां परिणमी रह्या छे. तेमां पण उपजे विणशे अने थिर रहे छे. एम आकाशना अनंता प्रदेशमां पण एक समये त्रण परिणाम परिणमे छे, अने जीवना असंख्याता प्रदेश छे ते मध्ये पण उपजे विणशे थिर रहे (छे.) तथा पुद्गल परमाणुमां पण समय थाय छे अने कालनो वर्त्तमान समय फिटीने अतीत काल थाय छे तो ते समयमां वर्त्तमानपणानो विनाश

छे अने अतीतपणानो उपजवो छे काल पगे ध्रुव छे. ए स्थूल धर्मी उत्पादक व्यय ध्रुवपणो कह्यो अने वस्तुगते मूलपणे ज्ञेयने पलटवे ज्ञाननो पग ते भासनपने परिणमवो थाय ते पूर्व पर्यायना भासननो व्यय अने अभिनव ज्ञेयना पर्याय भासननो उत्पाद तथा ज्ञानपणानो ध्रुव ए रीते सर्व गुणना धर्मनी प्रवृत्तिरुप पर्यायनो उत्पाद व्यय श्रीसिद्धभगवन्तमां पण थइ रह्यो छे. एमज धर्मास्तिकायना प्रदेशें जे क्षेत्र गत असंख्यात पुद्गल तथा जीवने पहेले समय चलण सहायीपणो परिणमतो हतो अने बीजे समय अनन्त परमाणु तथा अनन्ता जीव प्रदेशने चलन सहायी थयो तेवारें असंख्याता चलन सहायनो व्यय अने अनंता चलन सहायनो उपजवो अने गुणपणे ध्रुव एम धर्मद्रव्य मध्ये उत्पाद व्यय थइ रह्यो छे. तेमज अधर्मादिक द्रव्यने विषे पण भाववुं. तथा वली कार्य कारणपणे उत्पाद व्यय तथा अगुरुलघुना चलननो उत्पाद व्यय पंचास्तिकायने विषे कहेवुं. तथा कालद्रव्य ते उपचार छे तेवुं स्वरुप सर्व उपचारथीज कहेवुं. ए रीते सर्व द्रव्यमां सत्पणो छे. जो अगुरुलघुनो भेद न थाय तो पछे प्रदेशनो मांहोमांहे भेद केवो थाय ते माटे अगुरुलघुनो भेद सर्वमां छे अने जेनो उत्पाद व्यय रुप सत्पणो एक छे ते द्रव्य एक छे. तथा जेनो उत्पाद व्यय सत् पणो जूदो ते द्रव्य पण जूदो छे एटले सत् केहतां सत्त्वपणो कह्यो.

६ अगुरुलघुपणो कहे छे. जे द्रव्यनो अगुरुलघु पर्याय छे ते छ प्रकारनी हानि वृद्धि करे छे. तेमां छ प्रकारनी वृद्धि छे. १ अनन्त भागवृद्धि, २ असंख्यातभागवृद्धि, ३ संख्यातभागवृद्धि, ४ संख्यातगुणवृद्धि, ५ असंख्यातगुणवृद्धि, ६ अनंत

गुणवृद्धि. हवे छ प्रकारनी हानि कहे छे. १ अनंतभागहानि, २ असंख्यातभागहानि, ३ संख्यातभागहानि, ४ संख्यातगुण हानि, ५ असंख्यातगुणहानि, ६ अनंतगुणहानि. ए रीते छ प्रकारनी वृद्धि तथा छ प्रकारनी हानि ते सर्व द्रव्यमां सदा समय समय थइ रही छे. वृद्धि ते उपजवो अने हानि ते व्यय कहियें. ए अगुरुलघुपणो कह्यो. नहीं गुरु तथा नहीं लघु ते अगुरुलघु स्वभाव कहियें. ए सर्व द्रव्य मध्ये छे ते श्री भगवती सूत्रें " सव्वदव्वा सव्वगुण सव्वपएसा सव्वपज्जवा सव्वद्धा अगुरु लहुआए " अगुरुलघु स्वभावने आवरण नथी तथा आत्मा मध्ये जे अगुरुलघुगुण ते आत्माना सर्व प्रदेशे क्षायक भाव थये सर्व गुण सामान्यपणे परिणमे पण अधिका ओछा परिणमे नही. ते अगुरुलघुगुणनुं प्रवर्तन जाणवुं. ते अगुरुलघु गुणने गोत्रकर्म रोके छे, ए अगुरुलघु स्वभाव ते सर्व द्रव्यमां छे.

हवे गुणनी भावना कहे छे. तिहां जेटला छए द्रव्यमां सरीखा गुण छे ते सामान्य गुण कहियें, अने जे गुण एक द्रव्यमां छे अने बीजा द्रव्यमां नथी ते विशेप गुण कहियें. जे गुण कोइक द्रव्यमां छे अने कोइक द्रव्यमां नथी ते साधारण असाधारण गुण कहिये. एम ए छ द्रव्यमां अनंतगुण, अनन्त पर्याय, अनन्त स्वभाव सदा शाश्वता छे. जेम श्रीकेवली भगवंतें प्ररूप्या ते सर्व जे रीतें छे ते रीतें सद्दहणापूर्वक यथार्थ उपयोगथी श्रुतज्ञानादिकथी यथार्थपणे जाणवा, सद्दहवा ते मोक्षनुं कारण छे जे जीव ज्ञान पाम्यो ते जीव विरति करे छे ते चारित्र कहियें. ज्ञाननुं फल विरतिपणो छे. ते मोक्षनुं तत्काल कारण छे.

हवे निश्चय चारित्र अने व्यवहार चारित्रनो विचार कहे

छे. तेमां प्रथम व्यवहार चारित्र ते जे प्राणातिपातविरमण प्रमुख पंचमहाव्रतरूप ते सर्व विरति कहियें अने स्थूलप्राणातिपातविरमण प्रमुख श्रावकना बार व्रत ते देश विरति चारित्र जाणवुं. ए व्यवहार चारित्र पुरुषनुं कारण छे एवी करणीरूप श्रावकना बार व्रत अने यतिनां पांच महाव्रत ते अभव्यने पण आवे तेथी देवतानी गति पामे पण सकाम निर्ज्जरानुं कारण न थाय. इहां कोइ पूछे के मोक्षनुं कारण नथी तो एटलुं कष्ट शा वास्ते करियें ? तेने उत्तर जे त्याग बुद्धि निश्चय ज्ञान सहित चारित्र ते मोक्षनुं कारण छे माटे निश्चय चारित्र सहित व्यवहार चारित्र पालवुं ते निश्चय चारित्र कहे छे. शरीर, इन्द्रिय, विषय, कषाय योग ए सर्व परवस्तु जाणी छांडवी तथा आहार ते पुद्गल वस्तु जाणी छांडवो. आत्मा अणाहारी छे ते माटे मुजने आहार करवो घटे नही. आहार ते पुद्गल छे, आत्मा अपुद्गली छे ते माटे त्याग करवो. तद्रूप जे तप ते तप निश्चय चारित्रमां जाणवुं. चारित्र कहेतां चंचलता रहित थिरताना परिणाम अने आत्मस्वरूपने विषे एकत्वपणे रमण तन्मयता स्वरूप विश्रांति तत्त्वानुभव ते चारित्र कहियें. ते चारित्रना बे भेद छे एक देशविरति, बीजुं सर्व विरति. तिहां देश विरति कहेतां श्रावकना बार व्रत ते बार व्रत निश्चय तथा व्यवहारथी कहे छे.

१ प्राणातिपात विरमण व्रत ते परजीवने आपणा जीव सरीखो जाणी सर्व जीवनी रक्षा करे ते व्यवहार दया थइ माटे व्यवहार प्राणातिपात विरमण व्रत जाणवुं अने जे आपणो जीव कर्म वश पड्यो दुःखी थाय छे ते आपणा जीवने कर्मबंधनथी मुकाववुं अने आत्म गुण रक्षा करी गुण वृद्धि करवी

ते स्वदया बंधहेतु परिणति निवारी स्वरूप गुणने प्रगटपणे करवा जे गुण प्रगट थयो ते राखवो एटले ज्ञाने करी मिथ्यात्व टाळी आपणा जीवने निर्मल करे ते निश्चयथी प्राणातिपात विरमण व्रत कहियें.

२ मृषावाद विरमणव्रत कहे छे. जूठुं वचन बिलकुल बोलवुं नही ते व्यवहार मृषावाद विरमणव्रत अने जे पर पुद्गलादिक वस्तुने आपणी कहेवी ते मृषावाद वचन छे अने जीवने अजीव कहे तथा अजीवने जीव कहे इत्यादिक अज्ञान भाव ते सर्व निश्चय मृषावाद छे अथवा सिद्धान्तना अर्थ खोटा कहे ए मृषावाद जेणे छांड्यो ते निश्चय मृषावाद विरमणव्रत कहियें, एटले बीजा अदत्तादानादिक व्रत जो भांजे (भांगे) तो तेनो मात्र चारित्र भंग थाय पण ज्ञान दर्शननो भंग न थाय अने जेणे निश्चय मृषावादनो भंग कर्यो तेणे समकित तथा ज्ञान अने चारित्र ए त्रणेनो भंग कर्यो. तथा आगममां एम कह्युं छे जे एक साधुयें चोथो व्रत भंग कर्यो अने एक साधुयें बीजो मृषावाद व्रत भंग कर्यो तो जेणे चोथो व्रत भंग कर्यो ते आलोयण लेइ शुद्ध थाय पण जे सिद्धान्तना अर्थनो मृषा उपदेश आपे ते आलोयण लीये पण शुद्ध थाय नही.

३ अदत्तादान विरमण व्रत कहे छे. जे पारकुं धन वस्तु छुपावे चोरी करे ठगबाजी करी लीये ते चोरी छे, एटले पारकी वस्तु धणीना दीधा विना लेवी नही ए व्यवहारथी अदत्तादानविरमण व्रत जाणवुं अने जे पांच इंद्रियना त्रेवीस विषय, आठ कर्मवर्गणा इत्यादिक परवस्तु लेवी नहीं तथा तेनी वांछा न करवी ते आत्माने अग्राह्य छे माटे ते निश्चयथी अदत्तादानविरमण व्रत कहियें. इहां कोइ पूछे जे विषयनी

अने कर्मनी वांछा योग करे छे? तेने उत्तर जे पुण्यने मेलो लेवा योग्य कहे छे ते जीव कर्मनी वांछा करे छे. जे पुण्यना ४२ भेद छे ते चार कर्मनी शुभ प्रकृति छे एटले जे व्यवहार अदत्तादान तो नथी लेता पण अंतरंग पुण्यादिकनी वांछा छे तेने निश्चय अदत्तादान लागे छे.

४ मैथुन विरमणव्रत कहे छे. जे पुरुष परस्त्रीनो परिहार करे तथा जे स्त्री परपुरुषनो परिहार करे. इहां साधुने स्त्रीनो सर्वथा त्याग छे अने गृहस्थने परणेटी स्त्री मोकली छे. परस्त्रीनो पचखाण छे ते व्यवहारथी मैथुननुं विरमण कहिये अने जे विषयना अभिलाषनुं तथा ममता तृष्णानो त्याग परभाव वर्णादिक परद्रव्यना स्वामित्वादिक तेनो अभोगीपणो आत्मा स्वगुण ज्ञानादिकनो भोगी छे अने ए पुद्गलस्कंध ते अनंता जीवनी एंठ छे तेने केम भोगवे ए रीते त्याग निश्चयथी मैथुन विरमण कहिये. जेने बाह्य विषय छांड्यो छे अने अंतरंग टालच छुटी नथी तो तेहने ते मैथुनना कर्म लागे छे.

५ परिग्रह परिमाणव्रत कहे छे. परिग्रह धन-धान्य-दास-दासी-चौपद-जमीन-वस्त्र आभरणनो त्याग तेनां साधुने तो सर्वथा परिग्रहनो त्याग छे तथा श्रावकने इच्छा परिमाण छे जेटली इच्छा होय तेटलो परिग्रह मोकलो राखे. बीजानी विरति करे ए व्यवहारथी कह्यो अने जे कर्म रागद्वेष अज्ञान द्रव्य ज्ञानावरणीय प्रमुख आठ कर्म अने शरीर इन्द्रियनो परिहार एटले कर्मने पर जाणी छांडवो ते निश्चयथी परिग्रहनो त्याग एटले परवस्तुनी मूर्छा छांडवी जेने मूर्छा छोडी तेने परिग्रह छोड्योज छे एम जाणवुं.

६ दिशिपरिमाण व्रत कहे छे. तिहां दिशि चार दिश

पांचमी अधो छट्टी ऊर्ध्व ए छ दिशिना क्षेत्रनो मानकरी मोकलो राखे ते व्यवहारथी दिशिपरिमाण कहियें अने चार गतिमां भटकवुं ते कर्मनुं फल छे एम जाणी तेथी उदासीपणो अने सिद्ध अवस्था(नो) शुं उपादेयपणो ते निश्चयं दिशिपरिमाण व्रत कहियें.

७ भोगोपभोगपरिमाण व्रत कहे छे. जे एकवार भोगववुं ते भोग अने जे वारंवार भोगववुं ते उपभोग तेनो परिमाण करे ते व्यवहार भोगोपभोगव्रत कहियें, अने जे व्यवहारनयें कर्मनो कर्त्ता भोक्ता जीव छे अने निश्चयनये तो कर्मनो कर्त्ता कर्म छे. आत्मा अनादिनो परभाव भोगी थयो छे तेथी परभावग्राहक अने परभावरक्षक थयो एटले आत्मानी ज्ञायकता, ग्राहकता, भोग्यता, रक्षकता वीगडे कर्त्ता पणो वीगड्यो तेथी परभाव कर्त्ता थयो ते पण परभाव रंगीपणें आठ कर्मनो कर्त्ता थयो छे पण सत्तायें तो स्वभावनो कर्त्ता छे पण उपकरण अशगता तेथी स्वकार्य करी शकतो नथी. विभावने करे छे अज्ञानपणे जीवनो उपयोग मन्यो छे पण न्यारो छे. पोताना ज्ञानादिक गुणनो कर्त्ता भोक्ता छे एहवो स्वरूपानुयायी परिणाम ते निश्चयभोगोपभोगव्रत त्याग जाणवो.

८ अनर्थदंडविरमणव्रत कहे छे. काम विना जीवनो वध करवो. पापना करनारने आरंभ प्रमुख करवानी आज्ञा प्रमुख आपवी ते व्यवहार अनर्थदंड अने शुभाशुभ कर्म ते मिथ्यात्व अविरति कषाय योगथी बंधाय छे तेने जीव आपणा करी माने ए निश्चयथी अनर्थदंड.

९ सामायिक व्रत कहे छे. जे मन वचन कायाना आरंभ टालीने तेने निरवद्यने वर्ते ते व्यवहार सामायिक जाणवो.

अने ते जीवना ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण विचारे सर्व जीवना गुणनी सत्ता एकसमान जाणी सर्व जीव साथे समतापरिणामे वर्ते ते निश्चय-समतारूप सामायिक कहिये.

१० देशावगाशिक व्रत कहे छे. जे मन वचन कायाना योग एक ठोर करी एकस्थानकें बेसी धर्म ध्यान करवो ते व्यवहार देशावगाशिक कहिये अने जे श्रुतज्ञाने करी छ द्रव्य ओळखीने पांच द्रव्यनो त्याग करे अने ज्ञानवंत जीवने ध्यावे ते निश्चय देशावगाशिक व्रत कहिये.

११ पौषध व्रत कहे छे. जे चार पहोर अथवा आठ पहोर सुधी-समता परिणामे सावद्य छोडी निरारंभपणे सज्झायध्याननां प्रवर्ते ते व्यवहार पोसह कहिये अने पोताना जीवने ज्ञान ध्यानथी पोषीने पुष्ट करे ते निश्चयथी पौषध व्रत कहिये. जीवने पोताना स्वगुणे करी पोषीजे तेने पौषध कहिये.

१२ अतिथिसंविभाग व्रत कहे छे. जे पोसहने पारणे अथवा सदा सर्वदा साधुने तथा जैनधर्मिश्रावकने पोतानी शक्ति प्रमाणे दान देवुं ते व्यवहार अतिथिसंविभाग कहिये अने पोताना जीवने अथवा शिष्यने ज्ञाननुं दान ते भणवुं, भणाववुं, सुणवुं सुणाववुं, ते निश्चयथी अतिथिसंविभाग व्रत कहिये. एहवे श्रावकना बार व्रत कह्यां ते समकित सहित जे निश्चय तथा व्यवहारथी बार व्रत धारे ते जीवने पांचमे गुणठाणे देशविरति श्रावक कहिये. देश केहतां देशथकी-थोडीथोडी व्रतिपणो छे माटे. अने यतिने सर्वथी व्रतिपणो छे तेथी पांच महाव्रत छे. साधुने पांच महाव्रतमां सर्व व्रत आव्यां. ए निश्चयव्यवहाररूप ज्ञान ध्यान संवर निर्जरामां थिरताना परिणाम ते निश्चय चारित्रना एक उत्सर्ग बीजो अपवाद ए बे मार्ग छे, तेमां जे उत्कृष्ट वीर्य

परिणाम ते उत्सर्ग अने जे उत्सर्ग राखवाने कारणरूप ते अपवाद-उक्तंच ॥ "संवरणंमि असुद्धं, दुन्नवि गिन्ह तदेतयाणहियं ॥ आउर दिट्ठं तेणं, ते चेवहीयं असंवरणे " ॥ १ ॥ एटले ज्यां सुधी साधक भावने बाधक न पडे त्यां सुधी जेहनी ना कही ते आदरवो नही अने जो साधक परिणाम रहेता न दीठा तेवारे जेहनी ना ते आचरे तेने अपवाद मार्ग कहियें. जे आत्मगुण राखवाने करवो ते अपवाद अने गुणीने रागे भक्तियें करवो ते प्रशस्त ए वे तो साधनछे अने जे औदयिकने अखमवायी करवुं ते अतिचार छे तथा सबलो अने औदयिक माटे अशक्तपणे करवुं ते पडिवाइ छे ते मध्ये अपवाद मार्ग ते परिणाम दृढ रहे तेम आज्ञायें करवो.

हवे चार ध्यान कहे छे. १ आर्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान, ४ शुक्लध्यान. तिहां पहेला वे ध्यान ते अशुभ कहियें अने पाछला वे ध्यान ते शुद्ध छे. तिहां मनमां आहट्ट दोहट्टना परिणाम ते आर्तध्यान कहियें तेना चार पाया छे. १ भाइ, मित्र, सज्जन, माता, पिता, स्त्री, पुत्र, धन, प्रमुख इष्ट वस्तुनो वियोग थयाथी विलाप करे ते पहेलो इष्ट वियोगनामा आर्तध्यान तथा २ अनिष्ट जे मुंडां दुःखनां कारण, दुश्मन दरिद्रीपणो, तथा कुपुत्रादि मलवाथी मनमां दुःख चिंता उपजे ते अनिष्ट संयोग नाम आर्तध्यान. ३ शरीरमां रोग उपना थका दुःख करे, चिंता घणी करे ते रोगचिंतानाम आर्तध्यान. ४ मनमां आगलना वखतनो शोच करे जे आ वर्षमां आ काम करशुं, आवता वर्षमां अमुक काम करशुं तो अमुक लाभ थशे अथवा दान शील तपनुं फल मांगे जे आ भवमां तप कीधो छे माटे आवते भवें इंद्र चक्रवर्त्तिनी पदवी मले

एहवी आगला भवनी वांच्छा छे ते अग्रशोच आर्तध्याननो चोथो पायो जाणवो. ए आर्तध्यानना चार भेद कह्या ए तिर्यंच गतिना कारण छे. ए ध्यानना परिणाम ते पांचमा अथवा छट्ठा गुणठाणा सुधी होय.

२ जे कठोर परिणामनुं चिंतवन ते रौद्रध्यान. तेना चार भेद छे. १ जीवहिंसा करीने हर्ष पामे अथवा बीजो कोइ हिंसा करतो होय तेने देखी खुशी थाय अथवा सुरूनी अनुमोदना करे ते हिंसानुबंधी रौद्रध्यान. २ जूठुं बोलीने मनमां हर्ष पामे के जुओ में केवो कपट केळव्यो. मारा जूठापणानी खबर कोइने पडी नही. एवो मृषावाद रूप परिणाम ते मृषानुबंधी रौद्रध्यान. ३ चोरी करी अथवा ठगाइ करी मनमां खुशी थाय के मारा जेवो जोरावर कोण छे, हुं पारको माल खाउं छुं एवो परिणाम ते चोरानुबंधि रौद्रध्यान. ४ परिग्रह धन धान्य परिवार घणो वधवानी लालच होय ते धन अथवा कुटुंबने माटे गमे तेवुं पाप करे अथवा घणो परिग्रह मिल्यायी अहंकार करे ते परिग्रहरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान. ए रौद्रध्यानना चार भेद कह्या. ए ध्यान नरक गति पमाडवानुं कारण छे. महा अशुभकर्मनुं कारण छे. ए पांचमा गुणठाणा सुधी छे, अने छट्ठे गुणठाणे पण एक हिंसानुबंधीरौद्रध्यानना परिणाम कोइक जीवने होय.

हवे धर्मध्यान कहे छे. जे व्यवहार क्रियारूप कारण ते धर्म तथा श्रुतज्ञान अने चारित्र ए उपादानपणे साधन धर्म तथा रत्नत्रयी भेदपणे ते उपादान शुद्ध व्यवहार उत्सर्गोऽनुयायी ते अपवाद धर्म जाणवो अने अभेद रत्नत्रयी ते साधन शुद्ध निश्चयनयें उत्सर्ग धर्म अने (धम्मो वत्थु सहावो) जे

वस्तुनो सत्तागत शुद्ध परिणामिक स्वगुण प्रवृति कर्त्तादिक अनंतानंद रूप सिद्धावस्थायें रह्यो ते एवंभूत उत्सर्ग उपादान शुद्ध धर्म, ते धर्मनुं भासन रमण एकाग्रतापणे चिंतन तन्मयतानो उपयोग एकत्वनो चिंतववो ते धर्म ध्यान कहियें. तेना पाया चार छे ते कहे छे.

१ आज्ञाविचयधर्मध्यान ते जे वीतराग देवनी आज्ञा साची करी सद्दहे एटले भगवंते छ द्रव्यनुं स्वरूप नय प्रमाणे निक्षेपा सहित सिद्ध स्वरूप, निगोद स्वरूप जेम कह्या तेम सद्दहे, वीतरागनी आज्ञा नित्य अनित्य स्याद्वादपणे निश्चये व्यवहारपणे माने सद्दहे ते आज्ञा प्रमाणे यथार्थ उपयोग भासन थयो तेने हर्षे करी ते उपयोग मध्ये निरधार, भासन, रमण अनुभवता, एकता, तन्मयपणो ते आज्ञाविचय धर्मध्यान कहियें.

२ अपायविचयधर्मध्यान ते जीवमां अशुद्धपणे कर्मना योगथी संसारी अवस्थामां अनेक अपाय कहेतां दूषण छे ते अज्ञान, राग, द्वेष, कषाय, आश्रव ए मारा नथी. हुं एथकी न्यारो छुं. हुं अनंतज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यमयी, शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी छुं. अज, अनादि, अनंत, अक्षर, अनक्षर, अचल, अकल, अमल, अगम्य, अनमी, अरूपी, अकर्म्मा, अबंधक, अनुदय, अनुदीरक, अयोगी, अभोगी, अरोगी, अभेदी, अवेदी, अछेदी, अखेदी, अकषायी, असखाइ, अलेशी, अशरीरी, अणाहारी, अव्याबाध, अनवगाही, अगुरुलघु, परिणामी, अतीन्द्रिय, अप्राणी, अयोनि, असंसारी, अमर, अपर, अपरंपार, अव्यापी, अनाश्रित, अकंप, अविरुद्ध, अनाश्रव, अलख, अशोकी, असंगी, अनारक, लोकालोकज्ञायक, एवो शुद्ध चिदानंद मारो जीव छे, एहवो एकाग्रतारूप ध्यान ते अपायविचयधर्मध्यान जाणवो.

३ विपाकविचय धर्मध्यान कहे छे. जे एहवो जीव छे तेपण कर्मवशें दुःखी छे ते कर्मनो विपाक चिंतवे जे जीवनो ज्ञानगुण ते ज्ञानावरणीय कर्मे दाब्यो छे अने दर्शनावरणीय कर्मे दर्शनगुण दाब्यो छे, एम आठ कर्मे जीवना आठ गुण दाब्या छे एटले आ संसारमां भमतां थकां जीवने जे सुखदुःख छे ते सर्व कर्मनां कीधां छे. माटे सुख उपने हरखवुं नहीं अने दुःख उपने दिलगीर थवुं नहीं. कर्म स्वरूपनी प्रकृति, स्थिति, रस, अने प्रदेशनो बंध, उदय, उदीरणा, तथा सत्ता, चिंतवनानुं एकाग्रता परिणाम ते विपाकविचय धर्मध्यान.

४ संस्थानविचयधर्मध्यान कहे छे. ते चउद राजमान लोकनुं स्वरूप विचारे जे ए लोक ते चउदराज उंचो छे ते मध्ये सातराज अधोलोक छे. विचमां अढारसो योजन मनुष्य क्षेत्र तिर्छो लोक छे ते उपर कांइक उणो सातराज ऊर्ध्वलोक छे तेमां सर्व वैमानिक देवता वसे छे अने उपर सिद्धशिला सिद्ध क्षेत्र छे. ए रीते लोकनुं प्रमाण छे. ए लोकनुं संस्थान वैशाख छे. अनंतो काल आपणा जीवे संसारमां भमतां सर्व लोकने जन्म मरण करी फरस्यो छे, एवुं जे लोक स्वरूप तथा लोकने विषे पंचास्तिकायनुं अवस्थान तथा परिणमन द्रव्य मध्ये गुणपर्यायनुं अवस्थान तेनो जे एकाग्रताये तत्त्वचिंतवन परिणाम एहवुं जे ध्यान ते संस्थान विचय धर्मध्यान कहिये. ए धर्मध्यानना चार पाया कह्या. ए धर्मध्यान चोथा गुणठाणाथी मांडीने सातमा गुणठाणा सुधी छे.

हवे शुक्लध्यान कहे छे. शुक्ल एटले निर्मल, शुद्ध, प

आलंबन विना आत्माना स्वरूपने तन्मयपणे ध्यावे एहवुं ध्यान तेने शुक्लध्यान कहियें. तेहना पाया चार छे ते कहे छे.

१ पृथक्त्ववितर्कसप्रविचार–ते पृथक्त्व केहतां जीवथी अजीव जूदा करवा, स्वभाव विभाव तेने जूदा पृथक्पणे वहेंचण करवी स्वरूपने विषे पण द्रव्य तथा पर्यायनो पृथक्पणे ध्यान करी, पर्याय ते गुणमां संक्रमावे अने गुण ते पर्यायमां संक्रमण करे ए रीते स्वधर्मने विषे धर्मांतरभेद ते पृथक्त्व कहियें अने तेनो वितर्क ते जे श्रुतज्ञाने स्थित उपयोग अने सप्रविचार ते सविकल्पोपयोग एटले एक चिंतव्या पछी वीजो चिंतववो तेने विचार कहियें एटले निर्मल विकल्प सहित पोतानी सत्ताने ध्यावे ते पृथक्त्व वितर्कसप्र विचार पेहेलो पायो ए आठमा गुणठाणाथी मांडी अग्यारमा गुणठाणा सुधी छे.

२ एकत्व वितर्कअप्रविचार नामा वीजो पायो कहे छे. जे जीव आपणा गुणपर्यायनी एकता करी ध्यावे ते आवी रीते के जीवना गुणपर्याय अने जीव ते एकज छे, अने महारो जीव सिद्धस्वरूप एकज छे एवो एकत्व स्वरूप तन्मयपणे अनंता आत्म धर्मनो एकत्वपणे ध्यानवितर्क केहतां श्रुतज्ञानावलंबीपणे अने अप्रविचार केहतां विकल्प रहित दर्शन ज्ञाननो समयांतरें कारणता विना रत्नत्रयीनो एक समयी कारण कार्यतापणे जे ध्यान वीर्य उपयोगनी एकाग्रता ते एकत्ववितर्क अप्रविचार जाणवो. ए पायो बारमा गुणठाणे ध्यावे. ए बेहु पायामां श्रुतज्ञानावलंबनीपणो छे. पण अवधि मनःपर्यव ज्ञानोपयोगें वर्तता जीव कोइ ध्यान करी सके नहीं, ए बे ज्ञान परानुयायी छे माटे ए ध्यानथी घनघातिया चार कर्म खपावे. नि-

ईम केवल ज्ञान पामे पछे तेरमे गुणठाणे ध्यानंतरिकाने छे.
तेहना अंते अने चउदमे गुणठाणे ए बे पाया ध्यावे.

३ सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति पायो कहे छे. ते सूक्ष्म मन,
वचन कायना योग रुंधे. ईहांथी चवन कर्या अयोगी थाय
ते जे अप्रतिपाति निर्मलपणे अचलाकार परिणाम ते सूक्ष्म-
क्रियाअप्रतिपाति ध्यान जाणवुं. इहां सत्ताये ८५ प्रकृति हती
ते मध्ये ७२ खपावे.

४ उच्छिन्नक्रियाअनिवृत्ति पायो कहे छे. जे योग निरुंध कीधा
पछे तेर प्रकृति खपावे, अकर्मा थाय. सर्व क्रियाथी रहित थाय
ते समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान कहिये. ए ध्यान ध्यावतां शैलेशीकरण,
सर्वथा क्रिया उच्छेदे. अवगाहना देह मानथकी त्रीजो
भाग घटाडे, समश्रेणि ईहांथी सातराज उपर लोकने अंते
जाय. सिद्ध थाय. इहां शिष्य पूछे जे चौदमे गुणठाणे तो
अक्रिय छे, तो सात राज ऊंचो गयो ए क्रिया केम करे छे?
तेने उत्तर जे सिद्ध तो अक्रिय छे, परंतु पूर्व प्रयोगे तुंबीने
दृष्टांते जीवनुं चालवानो गुण छे. धर्मास्तिकायनने प्रेरणा
गुण छे. तेथी कर्मरहित जीव मोक्षे जतां लोकने अंते जइ
रहे. इहां कोइ पूछे जे आगळ ऊंचो अलोक छे तिहां किम
जातो नथी? तेने उत्तर जे आगळ धर्मास्तिकाय नथी माटे न
जाय. वळी कोइ पूछे जे तो अधोगतिये अथवा तिरछी ग-
तिये केम नथी जातो? तेने उत्तर जे कर्मना भारथी रहित
थयो, हलवो थयो. माटे नीचो तथा टेढो तिरछो न जाय,
कारण के प्रेरक कोइ नथी तथा करे नही तेनके अक्रिय छे
माटे तथा कोइ पूछे जे सिद्धने कर्म केम लागता नथी? तेने
कहे छे जे कर्म तो जीवने अज्ञानपणे तथा योगथी लागे छे.

ते सिद्धना जीवने अज्ञान तथा योग नथी, माटे कर्म लागे नही. ए चार ध्याननो अधिकार कह्यो.

हवे वली बीजा चार ध्यान कहे छे. १ पदस्थ, २ पिंडस्थ, ३ रूपस्थ, ४ रूपातीत. तेमां पहेलुं पदस्थ ध्यान कहे छे. जे अरिहंतादीक पांच परमेष्टीना गुण संभारे, तेनो चित्तमां ध्यान करे ते पदस्थध्यान. २ पिंडस्थ केहतां शरीरमां रह्यो जे आपणो जीव तेमां अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने साधुपणाना गुण सर्व छे एहवो जे ध्यान ते पिंडस्थ ध्यान अथवा गुणीना गुण मध्ये एकत्वता उपयोग करवो ते पिंडस्थ ध्यान. ३ रूपमां रह्यो थको पण ए मारो जीव अरूपी अनंत गुणी छे, जे वस्तुनो स्वरूप अतिशयावलंबी थया पछे आत्मानुं रूप एकतापणो एहवो जे ध्यान ते रूपस्थध्यान. ए त्रण ध्यान धर्म ध्यानमां गणवा. ४ निरंजन, निर्मल, संकल्पविकल्प रहित, अभेद एक शुद्ध सत्तारूप चिदानंद तत्वामृत, असंग अखंड, अनंतगुण पर्यायरूप, आत्मस्वरूपनुं ध्यान ते रूपातीत ध्यान जाणवुं. इहां मार्गणागुणठाणा नयप्रमाण मति आदिक ज्ञान क्षयोपशमभाव सर्व छांडवा योग्य थया. एक सिद्धना मूल गुणने ध्यावे ते रूपातीत ध्यान जाणवो एटले मोक्षनुं कारण जे ध्यान ते कह्युं.

हवे भावना कहे छे. तेमां धर्म ध्याननी चार भावना कहे छे. १ मैत्री भावना ते सर्व जीव साथे मित्रतानो भाव चिंतववो, सर्वनुं भलुं चाहवुं पण कोइनुं माडुं चिंतववुं नही. सर्व जीव ऊपर हित बुद्धि राखवी ते मैत्री भावना. २ गुणवंत अने ज्ञानादिक गुण ऊपर राग ते बीजी प्रमोदभावना. ३ जे धर्मवंत ऊपर राग अने मिथ्यात्वी ऊपर राग नही तेम द्वेष पण

नहीं वरन के हिंसक जीवों पर उत्तम जीवने करुणा उप-
जे. जो उपदेश थकी मार्ग मार्गे आवे तो तेने शुद्ध मार्गे आ-
णवो. कदाचित् मार्गे न आवे तो पण द्वेष न राखवो केमके
ते अज्ञान छे एम समजवुं एहवा जे परिणाम ते मध्यस्थ
भावना. ४ सर्व जीवने पोताने तुल्य जाणी दया पाळे, कोइने
हणे नहीं तथा जे दुःखी अथवा धर्महीन तेहना उपर करुणा
लेना दुःख टाळवानो परिणाम तथा धर्महीन जीव देखीने एवो
चिंतवे जे ए जीव क्यारे धर्म पामशे. यथार्थ आत्मसाधन
पामी स्वरूप दशाने क्यारे अवलंबशे एवो परिणाम ते चोथी
करुणा तेहनी दया भावना. ए चार भावना कही.

१ हवे बार भावना कहे छे. शरीर, कुटुंब, धन, परिवार
सर्व विनाशी छे. जीवनो मूळ धर्म अविनाशी छे. एम चिं-
तववुं ते पहेली अनित्य भावना. २ संसारमां मरण समये जीवने
शरण राखनार कोइ नथी. एक धर्मनो शरण छे एवुं चिंतववुं
ते बीजी अशरण भावना. ३ आ जीवे संसारमां भमतां
सर्व भव कीधा छे ए संसारथी हुं क्यारे छूटीश, ए संसार
मारो नथी. हुं मोक्षमयी छुं एम चिंतववुं ते त्रीजी संसार भा-
वना. ४ ए माहरो जीव एकलो छे, एकलो आव्यो. एकलो
जशे, पोतना करेलां कर्म एकलो भोगवशे एम चिंतववुं ते
चोथी एकत्व भावना. ५ आ संसारमां कोइ कोइनो नथी एम चिं-
तववुं ते पांचमी अन्यत्व भावना. ६ आ शरीर अपवित्र मळमूत्रनी
खाण छे, रोग-जरानुं रहेठाण छे, ए शरीरथी हुं न्यारो छुं,
एम चिंतववो ते छट्ठी अशुचि भावना. ७ रागद्वेष. अज्ञान.
मिथ्यात्व वगेरे सर्व आश्रव छे. एम चिंतववुं ते सातमी
आश्रव भावना. ८ ज्ञानध्यानमां वर्त्ततो जीव नवां कर्म बां-

नही ते आठमी संवर भावना. ९ ज्ञान सहित क्रिया ते निर्जरानुं कारण छे, ते नवमी निर्ज्जरा भावना. १० चउदराज लोकनुं स्वरूप विचारवुं ते दशमी लोकस्वरूप भावना. ११ संसारमां भमता जीवने समकित ज्ञाननी प्राप्ति पामवी दुर्लभ छे अथवा समकित पाम्यो पण चारित्र सर्व विरति परिणाम रूप धर्म पामवो दुर्लभ छे ते अग्यारमी बोधिदुर्लभ भावना. १२ धर्मना कहेणहार(कथक)गुरु तथा शुद्ध आगमनुं सांभलवुं एहवी जोगवाइ मलवि दोहेली छे ते बारमी धर्मदुर्लभ भावना एटले बार भावना कही ए चारित्रनुं स्वरूप संपूर्ण कह्युं.

एवो समकित सहित ज्ञानचारित्र ते मोक्षनुं कारण छे, तेना उपर भव्य प्राणीयें विशेषे उद्यम करवो. अने जो तेवुं ज्ञानचारित्र नही पले तोपण श्रेणिक राजानी पेरे सद्दहणा शुद्ध राखवी. जो समकित शुद्ध छे तो मोक्ष नजीक छे. समकित विना ज्ञानध्यान क्रिया सर्व निःफल छे एम आगममां कह्यो छे.

जंसक्कंर्न किरइ, अहवा न सक्केइ तहय सद्दहइ ।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अयरामरं ठाणं ॥ १ ॥

अर्थ-रे जीव ! तुं करी शके तो कर अने जो न करी शके तोपण जेवो वीतरागें धर्म कह्यो ते रीते सद्दहजे. सद्दहणा शुद्ध राखनार जीव अजरामर स्थानक ते मोक्ष पदवी पामे.

हवे समकितनो मार्ग कहे छे. १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ संवर, ७ निर्ज्जरा, ८ बंध, ९ मोक्ष. ए नव तत्त्व छे. तेमां मोक्षनुं कारण जीव छे, अने संवर तथा निर्ज्जरा ए बे गुण छे, एटले जीव संवर निर्ज्जरा मोक्ष ए च्यार उपादेय छे अने बीजा पांच हेय छे एहवो परिणाम

तेने समकेत ज्ञान कहियें. ते समकेत ज्ञान भलीतरे थाय तिहां अनुयोगद्वारमां कह्यो छे.

> नायम्मि गिन्हियव्वे,।
> अगिन्हियव्वे अ इच्छ अच्छम्मि ॥
> जइयव्वमेवइयजो, सो उवएसो नओनाम । १ ।

अर्थः—ज्ञानथी छ द्रव्य जाणीने लेवा योग्य होय ते ले अने छांडवा योग्य छांडे एवो जे उपदेश ते नय उपदेश जाणवो. हवे समकेतनी दश रुचि कहे छे.

१ निसर्ग रुचि ते निश्चयनये करी जीवादि नव तत्त्व जाणे आश्रव त्यागे संवर आदरे वीतरागना कह्या भाव जे छ द्रव्य ते द्रव्य क्षेत्र काल भाव सहित जाणे, नामादि चार निक्षेपा पोतानी बुद्धिथी जाणे सद्दहे, वीतरागना भाख्या भाव ते सत्य एवी सद्दहणा होय.

२ उपदेश रुचि नव तत्त्व तथा छ द्रव्यने गुरु उपदेशथी जाणी सद्दहे ते उपदेश रुचि.

३ आज्ञा रुचि ते रागद्वेष मोह जेमना गया छे, अज्ञान निरस्युं छे एहवा अरिहंत देव तेने जे आज्ञा कही तेने माने सद्दहे ते आज्ञारुचि.

४ सूत्ररुचि. १ आचारांग. २ सुयगडांग. ३ ठाणांग. ४ समवायांग. ५ भगवती. ६ ज्ञाताधर्म कथा. ७ उपासकदशांग. ८ अंतगडदशांग. ९ अनुत्तरोववाइ दशांग. १० प्रश्नव्याकरण. ११ विपाक. ए इग्यार अंग तथा बारमुं अंग दृष्टिवाद जेमां चउद पूर्व हतां ते हमणां विच्छेद गयां छे. तथा १ उववाइ. २ रायपसेणी. ३ जीवाभिगम. ४ पन्नवणा. ५ जंबुद्वीपपन्नति.

६ चंदपन्नति. ७ सूरपन्नति. ८ कप्पीआ. ९ कप्पवडंसिया. १० पुप्फिआ. ११ पुप्फचुलीआ. १२ वन्हिदिशा. ए बार उपांग जाणवां. अने १ व्यवहारसूत्र. २ बृहत्कल्प. ३ दशाश्रुतस्कंध. ४ निशीथ. ५ महानिशीथ. ६ जितकल्प. ए छ छेदग्रंथ तथा १ चउसरण. २ संथारापयन्ना. ३ तंदुलवेयालीय. ४ चंदाविजय. ५ देविंदथुओ. ७ वीरथुओ. ८ गच्छाचार. ९ जोतिकरंड. १० आयुः पञ्चखाण. ए दश पयन्नाना नाम तथा १ आवश्यक. २ दशवैकालिक. ३ उत्तराध्यन. ४ ओघनिर्युक्ति. ए चार मूलसूत्र तथा १ नंदि. २ अनुयोगद्वार ए पीस्तालीस आगम ते मूळसूत्र तथा २ निर्युक्ति. ३ भाष्य. ४ चूर्णि, ५ टीका ए पंचांगीना वचन जे जीव माने तथा आगम सांभलवानी तथा भणवानी जेने घणी चाहना होय ते सूत्ररुचि जाणवी.

५ जे जीव गुरुमुखथी एक पदनो अर्थ सांभलीने अनेक पद सद्दहे ते बीजरुचि.

६ अभिगमरुचि ते जे सूत्र सिद्धान्त अर्थ सहित जाणे अने अर्थ विचार सांभलवानी घणी चाहना होय ते अभिगमरुचि.

७ जे छ द्रव्यना गुण पर्यायने चार प्रमाण तथा सात नये करि जाणे ते विस्ताररुचि.

८ क्रियारुचि ते दर्शन ज्ञान चारित्र, तप, विनय, सुमति, गुप्ति बाह्य क्रिया सहित आत्मधर्म साधे जेने रुचि घणी होय ते क्रियारुचि.

९ संक्षेपरुचि ते जे अर्थने ज्ञानमां थोडो कहे थके घणो जाणीने कुमतिमां पडे नहि, जिनमतनी प्रतित माने ते संक्षेपरुचि.

१० जे पांच अस्तिकायनुं स्वरूप जाणे श्रुतज्ञाननो स्वभाव अंतरंग सत्ता सद्दहे ते धर्मरुचि.

हवे समकितना आठ गुण कहे छे. १ निःशंका ते जिनागम मध्ये सूक्ष्म अर्थ कह्या ते साचा सद्दहे तेमां संदेह आणे नहीं. तथा सात भयथी पण डरे नहि. १ निकंखा गुण ते पुण्यरूप फलनी चाहना न राखे. केमके जिहां इच्छा तिहां कर्मनो बंध छे माटे. ३ निव्वितिगिच्छागुण ते शुभ अशुभ पुद्गल एक सरिखा छे तेमां पुण्यना उदयथी शुभयोग मिल्या खुशी थइ अहंकार न करवो तथा पापना उदयथी दुःखसंयोग मिल्या दिलगीर थावुं नहीं. ४ अमूढदृष्टि गुण ते जे आगममां सूक्ष्म निगोदना तथा छ द्रव्यना सूक्ष्म विचार कह्या छे ते सांभलतो थको मुंझाय नहीं, जे पोतानी धारणामां आवे ते धारी राखे अने जे धारणामां न आवे तेने सद्दहे ५ उपवृंहगुण जे ए आपणा जीवमां अनंत ज्ञानादिक गुण छे ते छुपाववा नहीं. शुद्ध सत्ता जेवी छे तेवी कहेवी, राग द्वेष अज्ञान ते कर्मनी उपाधि छे, जीव ए उपाधियी न्यारो छे. ६ स्थिरिकरण गुण ते आपणा परिणाम ज्ञानमां स्थिर करवा डगाववा नहीं अथवा कोइ भव्य प्राणी धर्मथी पडतो होय तेने साह्य देइ उपदेश आपी स्थिर करवो. ७ वात्सल्यना गुण ते जेनी साथे ज्ञान ध्यान तप पडिकमणो भेलो करता होइये अने सद्दहणा पण एकज होय ते आपणो सार्धमि भाइ छे तेनी भक्ति करवी अथवा सर्व जीवना ज्ञानादि गुण आपणा समान छे माटे सर्व जीव उपर दया करवी अथवा बीजा जीवना पण आपणा तुल्य ज्ञानादि गुण छे ते जीवने पोषवा योग्य ज्ञान ध्याननो घणो अभ्यास करावे. ८ प्रभावक

गुण ते भगवंतना धर्मनी प्रभावना महिमा करवो अथवा पोताने ज्ञानादि गुण वधारवा दान, शील, तप, भाव, पूजा करी घणो महिमा करवो ए समकितना आठ गुण.

हवे समकितना पांच भूषण कहे छे. १ उपशम भाव भूषण ते विवेकी प्राणी मायें कषाय न करे अने जो कदाचित् कषाय करे तोपण तरत मनने पाछो वाले. २ आस्ताभूषण ते भगवंतना वचन ऊपर शुद्ध प्रतीत राखें, भगवंतें जेम आगममां आज्ञा करी तेम सद्दहे. ३ दया भाव भूषण ते सर्व जीव पोताना सरीखा जाणी दया पालवी. ४ संवेग भूषण जे संसारथी तथा धनथी शरीरथी उदासीपणो राखवो. ५ निरवेद्यभूषण ते इन्द्रियना सुख जीवें अनंति वार भोगव्या पण ते दुःखना कारण छे, एक चिदानंद मोक्षमयी अतीन्द्रिय सुखने आपणा करी जाणे ए समकितना पांच भूषण कह्या.

हवे छ आयतन कहे छे. १ निश्चयकुगुरु ते भगवंतना वचनना खोटा अर्थ करे खोटी प्ररुपणा करे २ व्यवहारकुगुरु ते योगी, संन्यासी, ब्राह्मण अने आहारहीन वेषधारी यति ते पण छोडवा. ३ निश्चय कुदेव ते जिणे श्रीवीतरागदेवनुं स्वरूप नथी जाण्युं. ४ व्यवहार कुदेव ते जे रागीदेव कृष्ण महादेव क्षेत्रपाल देवी पितर प्रमुख ते पण छोडवा. ५ निश्चयथी कुधर्म ते जे एकांत मार्ग वाधकरनी उपर राच्या छे अनंतरंगज्ञान नथी ओलख्यो ते. ६ व्यवहार कुधर्म ते पारका अन्य दर्शनोना मत सर्व छांडवा एटले कुदेव कुगुरु तथा कुधर्मने छोडी शुद्धदेव गुरु तथा धर्म सद्दहे ते समकितनी सद्दहणा जाणवी. समकितना लक्षण परतणा सूत्रथी कहे छे.

परमत्थसंथवो वा,
सुदिट्ठपरमत्थ सेवणावावि ॥
वावन्न कुदंसणा,
वज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा । १ ॥

अर्थः—परमार्थ छ द्रव्य नव तत्त्वना गुण पर्याय मोक्षनुं स्वरुप एटले जे परमार्थ सूक्ष्म अर्थ छे ते जाणवानो घणो परचो करे अथवा जाणवानी घणी चाहना राखे अने सुदिठ कहेतां भली रीते दीठा जाण्या छे परमार्थ छ द्रव्य मोक्ष-मार्ग जेणे एहवा गुरुनी सेवा करे एटले ज्ञानी गुरु धारवा अने वावन्न कहेतां जिनमति यतिना नाम धरावीने जे क्षेत्र-पाल प्रमुखने समकित विना माने एवा गुरुनो संग वर्जे अने कुदर्शनी जे अन्यमति तेनो संग न करे एवा जे परिणाम ते समकितनी सद्दहणा जाणवी.

विरया सावज्जाओ,
कसायहीणा महव्वयधरावि ॥
सम्मदिट्ठिविहूणा,
कयावि मुक्खं न पावंति ॥ २ ॥

अर्थः—जे सावद्य आंरभथी विरम्या छे क्रोधादि चार कषाय जीत्या छे अने शुद्ध पांच महाव्रत पाळे छे पण समकित विना छे ते जीव मोक्ष पामे नहि.

हवे समकित ते शी वस्तु छे ते विषे गाथा कहे छे.

नयभंगपमाणेहिं, जो अप्पा सायवायभावेणं
जाणइ मोरवसरुवं, सम्मदिट्ठिओ सो नेओ । ३ ।

अर्थः—अहो भव्य प्राणी ! जो तमने जिनमतनी चाहना छे अने जो तुमे जिनमतने इच्छो छो मोक्षने चाहो छो तो निश्चयनय अने व्यवहारनय छांडशो नहि एटले बेहु नय मानजो. व्यवहार नय चालजो अने निश्चय नय सद्दहजो जो तुमे व्यवहार नय उथापशो तो जिन शासनना तीर्थनो उच्छेद थाशे. जेणे व्यवहारनय न मान्यो तेणे गुरु वंदना, जिनभक्ति, तप, पच्चख्खाण, सर्व न मान्या एम जेणे आचार उथाप्यो तेणे निमित्त कारण उथाप्यो अने निमित्त कारण विना एकलो उपादान कारण ते सिद्ध न थाय माटे निमित्त कारण रूप व्यवहार नय जरूर मानवो अने जो एकलो व्यवहारनय मानियें तो निश्चय नय ओलख्या विना तत्त्वनुं स्वरूप जाण्युं जाय नही माटे तत्त्वमार्ग अने मोक्षमार्ग ते निश्चय नय विना पामियें नही अने तत्त्वज्ञान विना मोक्ष नथी एटले निश्चय विना व्यवहार निःफल छे अने निश्चय सहित व्यवहार ते प्रमाण छे, तेनो दृष्टान्त—जेम सोनाना आभूषणमां उपधातु अथवा किणजो मिल्यो होय तेपण उंचा सोनाने भावें लेइ राखियें छैयें अने जो ते किणजो तथा सोनुं जूदुं करियें तो सहु कोइ सोनाने ले पण कोइ किणजो जे कुधातु ते लीये नही तेम निश्चयनय सोना समान छे माटे निश्चयनय सहित सर्व भला छे अने निश्चयनय विना सर्व अलेखे छे माटे आगममां निश्चय व्यवहार रूप मोक्षमार्ग छे ते कह्यो.

वळी शरीर ऊपर मोह करे नही ते विषे.

छिज्जो भिज्जो जाय खओ,
जोइ हमे हु सरीरं ॥
अप्पा भावे निम्मलो,
जं पावं भवतीरं ॥ १ ॥

अर्थः—भव्य प्राणी एम चिंतवे जे ए शरीर छीजजाओ, भिदजाओ, क्षय थइ जाओ, विनशीजाओ, ए म्हारुं शरीर पौद्गलिक छे परन्तु छे ते एक दिवसे मूकवुं छे माटे रे प्राणी ! तुं आपणा आत्माने निर्मलपणे ध्यावतो संसारथी तरीने कांठे पामीश.

ए हिज अप्पा सो परमप्पा,
कम्मविसेसेंइ जावोअप्पा ॥
इयने देवआणहो परमप्पा,
वहु तुम्ह अन्नो अप्पा ॥ १० ॥

अर्थः—अहो भव्यजीव! एहीज आपणो आत्मा छे ते शुद्ध बुद्ध छे पण कर्मने वश पड्यो जन्ममरण करे छे पण ए क्षीणनां जे जीव छे ते देव छे, परमात्मा छे, माटे तुमे आपणो आत्मा ध्यावो, नाण तारण जिहाज ए आपणो आत्माज छे एम श्री हेमाचार्ये वीतरागस्तोत्रमां कह्यो छे.

यः परात्मा परं ज्योतिः
परमः परमेष्ठिनाम् ॥
आदित्यवर्णं तमसः
परस्तादामनंति यम् ॥ १ ॥
सर्वे येनोदमूल्यंत,
समूलाः क्लेशपादपाः । इत्यादि ॥

अर्थ—परमात्मा छे परमज्योति छे, पंच परमेष्ठीथी परम अधिक पूज्य छे. केमके पंचपरमेष्ठीतो मोक्षमार्गना देखाडनारा छे पण मोक्षनां करावनारो तो आपणो जीव छे. अज्ञानना नि-

टाबनार छे सर्व कर्म क्लेशनो खपावनार छे एवो आत्मा-ध्यावो एहिज परम श्रेयनुं कारण छे, शुद्ध छे. परम निर्मल छे. एहवो आत्मा उपादेय जाणी सद्दहे अने जेवो पोतार्थी निरवाह थाय तेवो त्याग वैरागमां प्रवर्त्ते एटले धन ते पर-वस्तु जाणी सुपात्रने दान आपे अने इन्द्रियना विकार ते कर्मबंधना कारण जाणी परिहरे, शील पाले, जे आहार छे ते पौद्गलिक परवस्तु छे, शरीर पुष्टीनुं कारण छे, अने शरीर पुष्ट कीधाथी इंद्रियोना विषयनो पोष थाय माटे ते पर स्वभाव छे, अज्ञान संसारनुं कारण छे माटे आहारनो त्याग करवो तेने तप कहियें. तथा पूजा ते जे श्री अरिहंत देवें मोक्षमार्ग उप-देश्यो ते आपणे जाण्यो माटे आपणा उपकारी छे ते उपका-रीनी बहुमान सहित भक्ति करियें. माटे श्री अरिहंत देवा-धिदेवनी पूजा करवी. एम दान शील, तप, पूजा, सर्व जीव अजीवनुं स्वरूप ओलख्या विना जे करवुं ते पुण्यरूप इंद्रिय सुखनुं कारण छे अने जे जीवने उपादेय करी वांछा विना करणी करे छे ते निर्ज्जरानुं कारण छे. एम दया पण श्रीभ-गवती सूत्रमां सातावेदनी कर्मनुं कारण छे एटले सम्यक् ज्ञा-नीने सर्व करणी ते निर्ज्जरारूप छे अने ज्ञान विना सर्व क-रणी बंधनुं कारण छे, माटे ज्ञाननो घणो अभ्यास करजो ए भगवंतें सीखामण दीधी छे.

तथा ज्ञाननुं कारण श्रुतज्ञान छे तेनो घणो भाव राखजो. श्रीठाणांगमां तथा उत्तराध्ययनमां तथा भगवतीमां १ वाचना, २ पृच्छना, ३ परावर्तना, ४ अनुप्रेक्षा, ५ धर्मकथा. ए सज्झाय भणवा गुणवानुं फल मोक्ष कह्यो छे. सज्झाय करवाथी ज्ञाना-वरणी कर्म खपावे केमके वाचनाथी तीर्थधर्म प्रवर्त्ते, महानि-

ज्ञेरा थाय एहवाथी मूल तथा अर्थ शुद्ध थाय मिथ्यात्व मोहनीय खपावे ते जेम जेम अर्थ विचार पछे तेमतेम समकित निर्मळ थाय अने अनुप्रेक्षा ते अर्थ विचारतां सात कर्मनी स्थितिना रस पातला करे. अनंतो संसार खपावीने पातळो करे तथा श्रुतज्ञाननी आराधनाथी अज्ञान मिटे एवा फल कह्या छे.

माटे वांचवा तथा भणवानो घणो उद्यम करवो केमके आज पांचमा आरामां कोइ केवळी नथी तथा मनःपर्यवज्ञानी अने अवधिज्ञानी पण नथी एकमात्र श्रुतज्ञान तेहिज आगमनो आराधक छे यतः—

> कह अम्हारिसा पाणी,
> दुसमादोसदूसिया ॥
> हा यणाहा कहं हुंना,
> न हुंनो जइ जिणागमो ॥ १ ॥

अर्थ—हे भगवंन! अम सरिखा प्राणीनी शी गति थात ... टीवो. हा-इति ... जे अमे आ दुसम पंचम कालमां अवतार ... जो जिनराजना कहेला आगम ... खेदे, अने अनाथ छुं. (छीए) जो जिनराजना कहेला आगम ... होत तो आज शुं थात, एटले आज आगमनोज आधार ... माटे आगम अने आगमधर जे बहुश्रुत तेनो घणो वि... करवो. आगममां विनयनुं फल ते सांभलवुं अने सांभल... फल ज्ञान छे, ज्ञाननुं फल मोक्ष छे, एम आगम सां... लेवा योग्य लेजो, अयोग्य छांडजो, सद्दहणा शुद्ध रा... सद्दहणा ते मोक्षनुं मूल छे. ए इन्द्रिय सुख तो आ... अनंतिवार पाम्युं छे. एहवी जाति-जन्म-योनि कोइ... ... जीवे नहीं करी होय. ए जीवने ...

मनुष्यनो अवतार पाम्या पछी पण धर्मनी जोगवाई मळवी नही. जे हुं मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, निरोग शरीर, पंचेंद्रिय समग्र इंद्रि निर्मळ, उत्तम गोत्र [illegible] गीतारथनी [illegible] [illegible] सद्गुरुनी जोगवाई [illegible] आवो [illegible]! एवे धर्मने [illegible] उद्यम करवो, [illegible] जोगवाई [illegible] दुर्लभ छे [illegible] करवो नही. [illegible] शरीर, धन, कुटुंब, [illegible] मां [illegible] छे. [illegible] छे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सिद्ध थाय. ते [illegible] कहे छे. १ काळ, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत, ५ पुरुषाकार, ए पांच समवाय मळे ते समकित छे. एमा [illegible] [illegible] [illegible] सूत्रमां कह्यो छे.

[illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥

अर्थ—[illegible]

अने एकमूल प्रदेश सुद्धां सात प्रदेशनी फरशना छे अने बीजा द्रव्यनी त्रण दिशीनी फरशना छे एम सर्व द्रव्यनी फरशना छे अने आकाशथी धर्म अधर्मनी अवगाहना सूक्ष्म छे धर्म अधर्म द्रव्यथी जीवनी अवगाहना सूक्ष्म छे जीवथी पुद्गलनी अवगाहना सूक्ष्म छे.

एम छ द्रव्यना गुण पर्याय सामान्य स्वभाव ११ छे. अने विशेष स्वभाव दश छे. ते श्रीकेवली भगवंत ज्ञानथी दर्शनथी देखे. ते इग्यार सामान्य स्वभाव कहे छे. १ अस्ति स्वभाव, २ नास्ति स्वभाव, ३ नित्य स्वभाव, ४ अनित्य स्वभाव, ५ एक स्वभाव, ६ अनेक स्वभाव, ७ भेद स्वभाव, ८ अभेद स्वभाव, ९ भव्य स्वभाव, १० अभव्य स्वभाव, ११ परम स्वभाव. ए इग्यार सामान्य स्वभाव सर्व द्रव्यमां छे. ए सामान्य उपयोग दर्शन गुणथी देखे. हवे दश विशेष स्वभाव कहे छे. १ चेतन स्वभाव, २ अचेतन स्वभाव, ३ मूर्ति स्वभाव, ४ अमूर्ति स्वभाव, ५ एक प्रदेश स्वभाव, ६ अनेक प्रदेश स्वभाव, ७ शुद्ध स्वभाव, ८ अशुद्ध स्वभाव, ९ विभाव स्वभाव, १० उपचरित स्वभाव. ए दश विशेष स्वभाव छे. कोइक द्रव्यमां कोइक स्वभाव छे, कोइक द्रव्यमां कोइक स्वभाव नथी, ए ज्ञानथी जाणे एटले सिद्ध भगवान लोकालोक सर्व ज्ञानोपयोगथी जाणी रह्या छे. दर्शनोपयोगथी देखी रह्या छे एहवा अनंत गुणी अरुपी सिद्ध भगवान छे ते समान पोताना आत्माने जाणे उपादेय करी ध्यावे ते समकित जाणवो.

॥ दोहा ॥

अष्ट कर्म वन दाहके, भए सिद्ध जिनचन्द ॥
ता सम जो अप्पा गणे, वंदे ताको इंद ॥ १ ॥

कर्मरोग औषधसमी, ज्ञान सुधारस वृष्टि ॥
शिव सुखामृत सरोवरी, जय २ सम्यक् दृष्टि ॥ २ ॥
एहिज सद्गुरु शीख छे, एहिज शिवपुर माग ॥
छेजो निज ज्ञानादि गुण, करजो परगुण त्याग ॥ ३ ॥
ज्ञान वृक्ष सेवो भविक, चारित्र समकीत मूल ॥
अमर अगम पद फल लहो, जिनवर पदवी फूल ॥ ४ ॥
संवत सत्तर छिहुत्तरे, मनशुद्ध फागुण मास ॥
मोटे कोट मरोटमे, वसतां सुख चोमास ॥ ५ ॥
सुविहित खरतर गच्छ सुथिर, सुगवर जिन चंद सूर ॥
पुण्य प्रधान प्रधान गुण, पाठक गुणे पंडूर ॥ ६ ॥
तास शिष्य पाठक प्रवर, सुमतिसार गुणवंत ॥
सकल शास्त्र ज्ञायक गुणी, साधुरंग जसवंत ॥ ७ ॥
तास शिष्य पाठक विबुध, जिनमत परमत जाण ॥
भविक कमल प्रतिबोधवा, राजसागर गुरुभाण ॥ ८ ॥
ज्ञानधर्म पाठक प्रवर, शमदम गुणे अगाह ॥
राजहंस गुरु गुरु शक्ति, सहुजग करे सराह ॥ ९ ॥
तास शिष्य आगमरुचि, जैनधर्मको दास ॥
देवचंद आनंदमें, कीनो ग्रंथ प्रकाश ॥ १० ॥
आगमसारोद्धार एह, प्राकृत संस्कृत रूप ॥
ग्रंथ कियो देवचंदमुनि, ज्ञानामृत रसकूप ॥ ११ ॥
करयो इहां सहाय अति, दुर्गदास शुभचित्त ॥
समजावन निज मित्रकुं, कीनो ग्रंथ पवित्त ॥ १२ ॥
धर्ममित्र जिन धर्म रतन, भविजन समकितवंत ॥
[illegible] अमरद ओलखवा, ग्रंथ कियो गुणवंत ॥ १३ ॥

तत्त्वज्ञान मय ग्रंथ यह, जोवे बालाबोध ॥
निजपर सत्ता सब लिखे, श्रोता लहे प्रबोध ॥ १४ ॥
ता कारण देवचंद मुनि, कीनो आगम ग्रंथ ॥
भणशे गुणशे जे भविक, लहेशे ते शिवपंथ ॥ १५ ॥
कथक शुद्ध श्रोतारुचि, मिलजो एह संयोग ॥
तत्त्वज्ञान श्रद्धा सहित, वली काय निरोग ॥ १६ ॥
परमागमसुं राचजो, लहेशो परमानंद ॥
धर्मराग गुरु धर्मसौं, धरजो ए सुखकंद ॥ १७ ॥
ग्रंथ कियो मनरंगसो, सितपख फागुणमास ॥
भोमवार अरु तीज तिथि, सफल फली मन आस ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीआगमसारोद्धारग्रंथः समाप्तः ॥





॥ श्रीपरमगुरुभ्यो नमः ॥

अथ

श्रीदेवचंद्रजीकृत नयचक्रसार

बालावबोध सहित लिख्यते.

॥ मंगलाचरण ॥

प्रणम्य परमब्रह्म शुद्धानन्दरमास्पदम् ।
वीरं सिद्धार्थराजेन्द्र नन्दनं लोकनन्दनम् ॥ १ ॥
नत्वा सुधर्मस्वाम्यादि, सङ्घं सद्वाचकान्वयं ।
स्वगुरून् दीपचन्द्राख्यपाठकान् श्रुतपाठकान् ॥ २ ॥
नयचक्रस्य शब्दार्थ कथनं लोकभाषया ।
क्रियते बालबोधार्थं सम्यग्मार्गविशुद्धये ॥ ३ ॥

प्रशस्ति

श्रीजिनागमने विषे १ द्रव्यानुयोग २ चरणकरणानुयोग ३ गणितानुयोग ४ धर्मकथानुयोग ए चार अनुयोग कह्या छे तेमां छ द्रव्य अने नव तत्त्व तेना गुण पर्याय स्वभाव परिणमनने जाणवुं ते द्रव्यानुयोग. एवं पंचास्तिकायनुं स्वरूपक मन-

रूप छे ते पंचास्तिकायमध्ये एक आत्मा नामे अस्तिकाय द्रव्य छे ते आत्मा अनंता छे तेना मूल बे भेद छे तेमां एक सिद्ध निष्पन्न सर्वकर्मावरणदोषरहित संपूर्णकेवलज्ञान केवलदर्शनादिगुणप्रकटरूप, अखंड, अमल, अव्याबाधानंदमयी, लोकने अंते विराजमान, स्वरूपभोगी ते सिद्धजीव कहियें. ते सिद्धता सर्व आत्मानो मूल धर्म छे, ते सिद्धतानी ईहा करवाने सिद्धभगवंतनो यथार्थसिद्धपणो ओलखीने निष्पन्न सिद्धनो बहुमान करवो अने पोते पोतानी मूले अशुद्धचेतनपणे परिणमतां बांध्यां जे ज्ञानावर्णादिकर्म ते टालीने पोतानी संपूर्ण सिद्धतानी रुचि करवी एहीज हितशिक्षा छे.

वली बीजो भेद संसारिजीवोनो छे ते जेणे आत्मप्रदेशें स्वकर्त्तापणे कर्मपुद्गलने ग्रह्या जेने कर्मपुद्गलनो लोलीभाव छे ते मिथ्यात्व गुणठाणाथी मांडीने अयोगी केवली गुणठाणाना चरमसमयपर्यंत सर्व संसारीजीव कहियें तेना वली बे भेद छे, एक अयोगी, बीजा सयोगी. ते सयोगीना बे भेद, एक सयोगीकेवली बीजा छद्मस्थ. छद्मस्थना बे भेद एक अमोही बीजा समोही. समोहीना बे भेद छे एक अनुदितमोही बीजा उदितमोही. उदितमोहीना बे भेद एक सूक्ष्ममोही बीजा बादरमोही. बादरमोहीना बे भेद एक श्रेणिवंत बीजा श्रेणिरहित. श्रेणिरहितना बे भेद एक संयमी विरति बीजा अविरति, अविरतिना वली बे भेद एक समकीति बीजा मिथ्यात्वी. मिथ्यात्वीना बे भेद एक ग्रंथिभेदी बीजा ग्रंथिअभेदि. ग्रंथिअभेदिना बे भेद एक भव्य बीजा अभव्य. तेमां अभव्यजीवोतो तो दल ज एवो होय जे श्रुतअभ्यास पण करे तथा द्रव्यथी पंच महाव्रत आदरे पण आत्मधर्मना यथार्थ श्रद्धा विना पेहेलो गुणठाणो किवारे

॥ कर्मसंवेधप्रकरण ॥

॥६०॥ ऐनमः ॥ श्रीमज्जिनदत्तसूरिसद्गुरुभ्योनमः ॥ सिरिवीरजिणंनमिउं । वंदिअसव्वभदंतसुयगणं । गुणठाणगठाणे-सु अ । भणामि कम्माणसंवेहं ॥ १ ॥ नाणंतरायदुगभंगं । दंसे-इगतगुणगणेसुहेआ । पंचसुदुगेअभावो । वेअणमंता अट्ठरसाए ॥ २ ॥ गोयंमि सत्तभंगा । अट्ठयभंगाहवंतिवेअणीए । पन नव पन भंगा । आउचउक्केवि अउकमसो ॥ ३ ॥ पढ-मदुतिगसु पमेचउविअसुवेअणीअभंगा । गोएपनचउदोतिसु । एगदुसुदुदुइक्कंमि ॥ ४ ॥ अट्ठच्छाहिगवीसा । सोलसवीसंचवा-रछद्दोसु । दोचउसुतीसुइक्कं । मिछाइसुआउएभंगा ॥ ५ ॥ दो-दोतिदिसअटदो । दुगछगदुगमंतसीसगणेसुहेआ । गुणवत्तईसाभंगा । सम्मत्तठाणेसुजेयरा ॥ ६ ॥

दर्शनावरणीयभंगाः		मार्गणास्थानेषुभंगाः	
म.न. पंचे १ त्रस १ यो. ११ ३ चक्षु अचक्षु द. २ शुक्ल १ भव्य १ संज्ञी १ आहा १॥ १२		अज्ञान ३ लेश्या ५ अ-नाहारक १ अ. १ गति ३॥ १२	४
वेद ३ कषाय ४॥ ७	७	यथाख्यात १	९
ज्ञान ४ अ. द. १ क्षाय	९	केवल २	०

था. ५ इंद्रिय ४ अभ. १ असं. १ मि. १ सा. १॥ १३	२	उपशम १	६
सामायक १ छेदोप. २	५	सूक्ष्म संपराय १	३
परिहारविशुद्धि १	२	वे. स. मिश्र. देशवि. ३	२

मार्गणासुवेदनीयभंगाः		
म. ग. पंचेन्द्रिय १ त्रस १ क्षायिक अनाहारक १॥	५	८
केवल २ यथाख्यान १॥	३	६
सूक्ष्मसंपराय १		२
शेषमार्गणा ५३		४

बावीसइक्कवीसा । सत्तरस(स)तरसेवनवपंच । चउतिगदुगंचइक्कं । बंधट्ठाणाणिमोहस्स ॥ ७ ॥ छब्बावीसेवेअति । हासदुगअइदुग-भनमगुणीआ । चउइगवीसिअसंढा । अणिछिदुगभंगसत्तरविगे ॥ ८ ॥ पंचाइसु विण्णुअलं । भंगेक्कं मोहणिज्झउदयाइं । इग दो चउ पण छ सग अड नव दस इयपयाइं नव ॥ ९ ॥ दसबावीसे नवइग । वीसेसत्ताइं उदयठाणाणि । छाइनवसतरसे । तेरेपंचाइअठेव ॥ १० ॥ चत्तारिआइनववंधएसु उक्कोससत्तमुद-यंमा पंचहिबंधगेपुण उदउदुण्हंमुणेयव्वो ॥ ११ ॥ इत्तोचउबं-धाई इक्किक्कुदयाहवंतिसव्वेवि बंधोवरमेवितहा उदयाभावेविवा-

[illegible] ॥ १२ ॥ [illegible] ॥ १३ ॥ [illegible] ॥ १४ ॥ [illegible] ॥ १५ ॥ [illegible] ॥ १६ ॥ [illegible] ॥ १७ ॥ [illegible] ॥ १८ ॥

[illegible]	[illegible]
[illegible] २ [illegible] ४ [illegible] ९ [illegible] १२	[illegible] ६
[illegible]	[illegible] ७
[illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ७ [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] १ [illegible] १ [illegible] १ १६	[illegible] ६
[illegible]	[illegible] ७
[illegible] १ [illegible] १ [illegible] १ [illegible] १॥९ ७	[illegible] ४ [illegible] १ [illegible] १ [illegible] १ ७ ७
[illegible] १ [illegible] १ [illegible] १ [illegible] १ । ४ ९	[illegible] १ [illegible] १ २ ३
[illegible] ३ [illegible] १ [illegible] १ [illegible] १ [illegible] ८ ३	[illegible] १ [illegible] १ [illegible] ३ २८ [illegible] ४ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ३ [illegible] १ [illegible] १ [illegible] १ [illegible] १॥६९
[illegible] १ २ २	

केवल. २ यथाख्यात १।३	२	ज्ञान. ३ अ. द. १ सम्यक्त. ३।	२० ७
ज्ञान ३ अद. उपशंम ५	३	केवल २	१
क्षयोपशम १	२	सामा. ३ मनज्ञान १	६
क्षायिक १	४	देशविरति १	१२
मनप. ज्ञान १	२	सास्वादन	२६
सास्वादन १	४	सूक्ष्म. १ यथाख्यात १	२
		मिश्र	१६
		असंज्ञी १	९
		आहारक	२८
		अनाहारक	४

पु० २३	स्त्री० २३	नपुं० २३

वेयतिकसायचउगुण बारसतेज़अलदुगणचउवीसा चउरुदयं-जा हुंतिअपयगुणीआहुंतिपयमेआ ॥१९॥ उवसामगखवगे पुणवीसं चोवीससतरभंगाय वेपागिसोलसकेवल दुगेअहरकायगेनात्थि ॥२०॥ सुहुमेगंसेसेसुअमग्गण ठाणेसुगुणभवानेआ चउवीसगायभंगा पय-संखाउदयपच्चइआ ॥२१॥ इतिउदयं ॥ अठयसत्तपछचउ तिग-दुगएगाहिआभवेवीसा तेरसवारिक्कारस इत्तोपंचाइएगूणा ॥२२॥

बंधस्थान	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१
मिथ्यात्व	४	२५	१६	९	९२४०	४६३२	०	०
सासा	०	०	०	८	६४००	३२००	०	०
मिश्र	०	०	०	८	८	०	०	०
अवि	०	०	०	८	१६	८	०	०
देस	०	०	०	८	८	०	०	०
प्रमत्त	०	०	०	८	८	०	०	०
अप्रमत्त	०	०	०	८	८	१	१	०
अपूर्व	०	०	०	८	८	१	१	१
अनिवृत्ति	०	०	०	०	०	०	०	१
सूक्ष्म	०	०	०	०	०	०	०	१

सजिणाहाराभंगा, अनिअट्टिदुगे अ इक्किक्कं॥७३॥ वीसिगवीसाचउवीसगाउ, एगाहीआअट्ठगतीसा उदयट्ठाणाणिभवे नवअट्ट यहुंतिनामस्स ॥ ७४ ॥ एगनियाळिक्कारस तित्तीसाछस्सयाणितित्तीसा बारससत्तरससया णहिगाणिविपंचसीईहिं ॥७५॥ अउणित्तीसिक्कारस सयाणहिअसतरपंचसट्ठीहिं इक्किक्कगंचवीसा दट्टुदयंतेसु उदयविही ॥७६॥ नामधुवोदयतिरिदुग थावरएगिंदि-

तस्सपयडिठाणाणि ताणिमोहस्सइंतिपत्तस्स गुणउदयबंधठाणे मणानिसंतंसतंवेहं ॥२३॥ तिलिगेएगेगंतिग मी सेपंचचउहुति-गसुवे, इक्कारसपणंम्मि, सुहुमेचउतिनिउवसंते ॥२४॥

मार्गणास्थानेश्चमोहोदयभंगाः			
म. ग. १ पं. १ त्रस १ यो. ३ वे. ३ क. ४ च. १ अच. १ शुक्र. १ भव्य. १ संज्ञी १ आहारक १ ॥१९॥	चो.९२ भं. १७	सामायक छेदोप. मतिज्ञान.	चो.२० १७
		परिहारविशुद्धि.	चो.१६
		सूक्ष्मसंपराय	भं. १
इन्द्रीय ४ पृ. अप. वन. असंज्ञी. १॥८	चो.१२	अविरति	चो.१४
तेज १ वायु १ अभ. मि. ४	चो. ८	लेश्या ३ आदि	चो.४०
		लेश्यातेज १ पद्म	चो.४८
देव–नारकी	चो.२४	क्षयोपशम	चो.१६
तिर्यंच	२२	उपशम	चो.२० १७
देशविरति	८		
ज्ञान ३ अ. द. ४	चो.३६ १७	क्षायिक	चो.२० १७
		मिश्र	चो. ४
अज्ञान ३	१६	सास्वादन	चो. ४
केवल २ यथाख्यात १॥२	०	अनाहारक	चो.२०

[illegible] सुहेणेपरहसवसेण [illegible] ॥ ७७ ॥
[illegible] [illegible] पज्जेसमसवेपण,
[illegible] ॥७८॥ [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] अननपडुक्ण[illegible] क-
[illegible] [illegible] विरिडुणठाननतुण बेबे-
[illegible] ॥ ८० ॥ [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] ॥८१॥ [illegible]
[illegible] ॥८२॥ पुणिद्दिन [illegible] अ-
[illegible] [illegible] ॥८३॥ [illegible]
[illegible] ॥८४॥ [illegible] पडि-
[illegible] ॥ ८६ ॥ [illegible]
॥८७॥ [illegible] [illegible]
[illegible] ॥८८॥ [illegible]
॥८९॥ [illegible] [illegible]
[illegible] ॥९०॥ [illegible]
[illegible] ॥९१॥
[illegible] ॥९२॥ [illegible]
[illegible] ॥९३॥ [illegible]
[illegible] ॥ ९४ ॥ [illegible]

बंधस्थान	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१
मिथ्यात्व	४	२५	१६	९	९२४०	४६३२	०	०
सासा	०	०	०	८	६४००	३२००	०	०
मिश्र	०	०	०	८	८	०	०	०
अवि	०	०	०	८	१६	८	०	०
देस	०	०	०	८	८	०	०	०
प्रमत्त	०	०	०	८	८	०	०	०
अप्रमत्त	०	०	०	८	८	१	१	०
अपूर्व	०	०	०	८	८	१	१	१
अनिवृत्ति	०	०	०	०	०	०	०	१
सूक्ष्म	०	०	०	०	०	०	०	१

सजिणाहाराभंगा, अनिअट्टिदुगे अ इक्किक्कं॥७३॥ वीसिगवीसाचउवीसगाउ, एगाहीआअइगतीसा उदयट्ठाणाणिभवे नवअड यहुंतिनामस्स ॥ ७४ ॥ एगवियालिक्कारस तित्तीसाछस्सयाणितित्तीसा बारससत्तरससया णहिगाणिविपंचसीईहिं ॥७५॥ अउणित्तीसिक्कारस सयाणहिअसतरपंचसट्ठीहिं इक्किक्कगंचवीसा दट्ठुदयंतेसुउदयविही ॥७६॥ नामधुवोदयतिरिदुग थावरएगिंदिदु-

गुणठाणगेसुअट्ठसुइक्किक्कंमोहबंधठाणेसु पंचानियट्टिठाणे बंधोवरमोपरंतत्तो ॥३४॥ सत्ताइदसउमिच्छेसासायणमीसएनवुक्कोसा छाईनवउअविरएदेसेपंचाइअट्ठेव ॥३५॥ विरएखओवसमिएचउराई सत्तछच्चपुव्वंमि अनियट्टिबायरेपुणइक्कोवदुवेवउदयंसा ॥३६॥ एगंसुहुमसरागोवेएइअवेयगाभवेसेसा भंगाणंचपमाणंपुव्वुद्दिट्ठेणनायव्वं ॥३७॥ इक्कगछक्किक्कारसदसससचउक्किक्कगाचेव एएचउवीसगयाचउवीसदुगिक्कमिक्कारा ॥३८॥ बारसपणसट्ठिसयाउदयविगप्पेहिंमोहिया जीवा चुलसीईसत्तत्तरिपयविंदसएहिंविन्नेया ॥३९॥ नवपंचाणउयसएउदयविगप्पेहिंमोहियाजीवा अउणत्तरिइगसयरीपयविंदसएहिंविन्नेया ॥४०॥ तिन्नेवयबावीसेइगवीसेअट्ठवीससत्तरसे छच्चेवतेरनवबंधगेसुपंचेवठाणाई ॥४१॥ पंचविहचउविहेसुछछक्कसेसेसुजाणपंचेव पत्तेयंपत्तेयंचत्तारियबंधवोच्छेए ॥४२॥ दसनवपन्नरसाइंबंधोदयसंतपयडिठाणाई भणियाइंमोहणिज्जेइत्तोनामंपरंवोच्छं ॥४३॥ तेवीसपन्नवीसाछव्वीसाअट्ठवीसगुणतीसा तीसेगतीसमेगंबंधट्ठाणाणिनामस्स ॥४४॥ चउपणवीसासोलस नवबाणउईसयाय अडयाला एयालुत्तरछायालसयाइक्किक्कबंधविही ॥४५॥ वीसिगवीसाचउवीसगाउएगाहियाउइगतीसा उदयट्ठाणाणिभवेनवअट्ठयहुंतिनामस्स ॥४६॥ इक्कबियालिक्कारसतित्तीसाछस्सयाणितित्तीसा बारससत्तरससयाणहियाणिबिपंचसीईहिं ॥४७॥ अउणत्तीसिक्कारससयाणहियसत्तरसपंचसट्ठीहिं इक्किक्कगंचवीसादट्ठुदयंतेसुउदयविही ॥४८॥ तिदुनउईगुणनउई अडसीईछलसीईअसीईय गुणसीईअट्ठयछप्पन्ननव य अट्ठनामंमि ॥४९॥ अट्ठयबारसबारसबंधोदयसंतपयडिठाणाणि ओहेणाएसेणयजत्थजहासंभवंविभजे ॥५०॥ नवपणगोदयसंताتेवीसेपन्नवीसछव्वीसे अट्ठचउरट्ठवीसे नवसत्तुगतीसतीसंमि ॥५१॥

उसासेअपसत्यो १२०।२२८ गुणतिमेनिरिअजाउगुणा ॥९५॥
तिअष्टेनिरिअट्ठीमे उसासोज्जोअअजनमस्से वेउव्विअनिरिपुण
सगर्वीमेसुसरुङमामे ॥९६॥ ऊमामेउज्जोए गिनेतामोउ मा भ
अट्ठीमे ऊमामएपगमय ऊमपरिरेउज्जीए ॥९७॥ अट्ठग २
देव १६ निरए १ अट्ठावीसुनभंग २९ नीसुःपे तिपट्टुमि
लिसमाग १ सुअजचउभंगा ॥९८॥ भामाअणत्ताणं सगे
ज्जोएसुभंगलुगमेर भंगाहामगतिअगे मोमामेनिरिअगुनतिये
॥९९॥ सुमरेमाहुसरंवा सहीएपारभिगारगपभंगा गमणउमगी
सुमरंमोज्जोएनिरिअगुणतिमे ॥१००॥ वेउव्विअमगतिमे [illegible]
सोज्जोअमगुअट्ठभंगा मणुएउज्जोअतिगा पारतिशामगभंगा १०१
वेउव्विअमगतिमे ऊमामोज्जोअगमपुअ एगंगुदुभंगआहूरे एगे
देवेसुअट्ठभंगा ३० ॥१०२॥ उज्जोअगमितिमगे उज्जोसेवे
टुहुगतीमे भंगागम्मतिअंहे पत्तलिशामगतीए ३१ ॥१०३॥
देवत्तिअगमुज्जाए वंमेसुसिरजाअगदुसरिमट्ठ उसासंगेले [illegible]
गदेहुफजासुरुओ ॥१०४॥ एगुहुंपिअतिगे गगा १ उगा
९ मणुगुण्मोए वयणमिगेहमगीरा २९ गुणतिग[illegible]
२८ ॥१०५॥ [illegible]
[illegible] ॥१०६॥ [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥१०७॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] १ [illegible]
[illegible] ॥१०८॥ [illegible]
[illegible] ॥१०९॥
[illegible]
[illegible] १८ [illegible] ॥११०॥ [illegible]

बंधप्रा.	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	
एकेन्द्रिय	४	२०	१६						
बेन्द्रिय		१			८	८			
तेन्द्रिय		१			८	८			
चोरिन्द्रिय		१			८	८			
तिर्यचपंच		१			४६०८	४६०८			
मनुष्य		१			४६०८	८		१	
देवता				८	८	१	१		
नारकी				१					
सर्व	४	२५	१६	९	९२४८	४६४१	१	१	१३९४५

इगविगलथावरेसुं अजिणविउव्वाअनाणतिरिएसुं मिच्छअसंन्नीअभव्वे अजिणाहारा सजिणअजए ॥ ६७ ॥ अविगलविउव्विनिरए अविरयजासम्मनाणचउदिंसे चरणनिदेसेसुरजा अहरक्खाचक्खेवलेनत्थि ॥ ६८ ॥ देवपरित्तचापर तिरिअनरासेसपासुत्ताणभवा भगासग्गगणटाणे वंधट्टाणाणनेयव्वा ॥ ६९ ॥ अणहारेनिरयभवा आहारगनरयभवापनोभंगा मणनाणेसामइंआभंगसंखाभणपव्वा ॥ ७० ॥ मिच्छेतेवीसाइ । साणाइगुअट्ठवीसओबंधे । र्ञनखिदोनिदोसे । चउपणसनेसुजगबंधो ॥ ७१ ॥ मिच्छेअजिणाहारा । अविपलनिरदेवहुंडसामाने । दुहगानिमंचपणागिइ । चउविणदुगइज्जार्मासदुगे ॥ ७२ ॥ सजिणासमत्ताओ, देसदुगेदवजायसाहारा अपमत्तदुगेभंगा जमिआहिदुगेपइझि.र. ॥७३॥ दवभवादेसदुगे अपमत्तदुगेअदेवनरजुगा,

गाथोगणस्य	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
एकेन्द्रिय	०	५	१	७	१२	६						
बेइन्द्रिय	०	३			३		२	४	१	४		
तेइन्द्रिय		३			३		२	४	१	४		
चौरेन्द्रिय		३			३		२	४	१	४		
सा. तिर्यंच		९			२८९		५७६	११५२	१७२८	११५२		
तिर्य. वैक्रि				८		८	१६	१६	८			
मनुष्य		९			२८९		५७६	५७६	११५२			
मनु. वैक्री				८		८	९	९	१			
आहा				१		१	२	२	१			

आणातिरिदुगविहीणं मणुदुगजुत्तंमणुए एगंभंगापणअपइझे २५वं। २५भं॥ ॥ ५१ ॥ बायरपरित्तपणवीस मज्झेआयावजुअडवीसंति अहवाउज्जोअजुअं भंगाअडदुगणइगजुग्गा ॥५२॥ सुरनरपणं- दितसचउ परघावेउब्विदेवदुगसुगइ समथिरइयरछगेवा देवडवीसेड- पुव्वंना ॥५३॥ मिच्छेदसअपसत्थेहिं इगभंगोनिरयजुग्गअडवीसे पिविविअछेपणवीसे कुखगइपइडात्तपरियदुगदुसरं ॥५४॥ अपज- त्तहीणनववीसा भंगाचोवीसविपलवघइंपा बंधइनिरिनरमिच्छ सुरनिरिपरघायउरलदुगं ॥५५॥ नसचउपणंदिवीसे, संघयणांरि- इसुअसनमदुनयं थिरमथिरंवाछक्कं, खगइइगमम्बगुणतीसं ॥५६॥ यसओसगपयदुगणा संघयणगुणायआगइगुणआ छपालगयटभंगा तिरीएमणुएविएमेव ॥५७॥ देवटवीसेजिणजुअ भंगटगसम्मओ- अपुव्वंजा विअलपणंदीपनिरिजुग्ग गुणतीसेजोअनुअतीसं ॥५८॥ पुव्विवभंगसामीअ नरगुणतीसेसजिणअडभंगा सुरअटवीसेकह भंगसिगनरअपुव्वंजा ॥५९॥ आहारतीसजिणजुअ बंधइसुरगु- अएगजससगइ एगविहबंधटाणे, अपुव्वओसुहुमटाणंजा ॥६०॥ इगविगलथावरेसु अटविसिगतीसएगविगुपंच, देवेसुतीसगुणती- छवीसपणवीसनेवीसा ॥६१॥ नगजोअसमाणेसु परपुडअहा- भवनसंनी पचंदीपविएसु सव्वेदेसेनरडवीसा ॥६२॥ [illegible] [illegible]अन्नाने आडतीसेसे अभव्वअणहारे मिच्छअसंनिसुटाणा [illegible] इगतीसएगविणा ॥६३॥ एगागिणानेउ? निरीस [illegible] म्माए सासानेअटवीसतिअं इगतीसणुवंसपरिहारे ॥६४॥ [illegible] [illegible]ओहिदंस, उवसमसंगअछेअणानाडए अटनिस [illegible] एगविणाअसेएए ॥६५॥ अहगायरवरदुगे अं[illegible] विहसंधो सुक्कसिमतीसनिरदे मीसेअटवीसगुणतीसं ॥६६॥

[illegible]

उसासेअपसत्थो १२०।२२८ गुणतीसेतिरिअजादुगुणा ॥९५॥ विअलेतिरिअडवीसे उसासोज्जोअअन्ननमखेवे वेउव्वीअतिरीणुगुण सगवीसेसुसरऊसासे ॥९६॥ ऊसासेउज्जोए खितेरासोल मणुअ अडवीसे ऊसासएपणसय छसयरिवेउव्वीए ॥९७॥ आहार २ देव १६ निरए १ अठावीसुव्वभंग २९ तीसुदये विपलदवीसे- खिवसास १ सरअन्नचउभंगा ॥९८॥ भासाअपज्जत्ताणं सासो- ज्जोएसुभंगदुगमेव भंगाट्ठारसविअले सोसासेनिरिअगुणतीसे ॥९९॥ सुसरेवादुसरेवा सहीएयावाविगारसयभंगा वणसयछसयरी सुसरेसोज्जोएनिरिअगुणतीसे ॥१००॥ वेउव्विअमगवीसे सोसा- सोज्जोअसरएअडभंगा मणुएउज्जोअविणा चावत्रिकाररसयभंगा १०१ वेउव्विअसगवीसे ऊसासोज्जोअसरएअं एगंगुहभंगंआहारे एगं- देवेसुअडभंगा ३० ॥१०२॥ उज्जोअरहीअतिमे उज्जोएनेरहो- इइगतीसं भंगावारसविअले चावन्निकारसयवनिरिए ३१ ॥१०३॥ केवलिअसमुग्धाए बीमेसुपिवज्जउरलदुगरिमहं उववायंपतेअं संघ- णंछइपञ्चवीसुदओ ॥१०४॥ एगूहवीनिअनीसं पन्ना १ उन्न ९ खगइसुरपोए वयणनिरोहेसगविए २९ गुणतीमटवीसमासमिका २८ ॥१०५॥ इगवीससत्तवीसा इगतीसाजिणवरणनिरुज्जुअ योगनिरोहेदेवेवि तीसगुणतीसगानेआ ॥१०६॥ मणुअगइंजाइतस बायरंचपद्यत्तसुभगआइज्जं जसानिऊयंइपनव अटजिणमीओअं योगगुणे ॥१०७॥ उदयभंगासम्मत्ता ॥ संवेउदयस्थानानि ॥ निर- णठअहिअवीसेउदया ९ इगवीसओअडइगतीसा एगंगुणतीसाईि चउवीसविणापअडवीसे ॥१०८॥ इगतीसेएगेगुण तीसतरेसंह- सेसदमहाणा चउरगवीसपगहिआ भंगानेआपतुम्मना ॥१०९॥ निरिअदुक्भापअनाथ्वअयणुअनिरपअमन्यचउसेसे निअअडौ- अमंडे १८ उदयानवीसअहरिमा ॥११०॥ देवउवीसनिकर-

मूके नहीं माटे ए जीवो ते सिद्धपद पामवाने योग्य नहीं ते अभव्य थोडे अनंते छे.

बीजा भव्य ते जे सिद्धपणाने योग्य छे जेने कारण-योग मिळे पलटण पामे ते भव्यजीवो अभव्यथी अनंतगुणा छे. ते मध्ये केटलाएक भव्य सामग्रीयोग पामी ग्रंथिभेद करीने समकित पामे अने केटलाएक भव्य तो सामग्रीने अभावें समकित पामे ज नहीं. उक्तं च विशेषणवत्यां सामग्गीअभावाओ, ववहाररासिअप्पवेसाओ ॥ भव्वावि ते अणंता, जे सिद्धसुहं न पावंति ॥ १ ॥

पण ते भव्य जीवोमां योग्यताधर्म छतो छे ते माटे भव्य कहियें. जे जीव मिथ्यात्व तजीने शुद्ध यथार्थ आत्मपणे व्यापक रह्यो तेज मारो धर्म अने जेथी ते आत्मसत्तागत धर्म प्रगटे ते साधनधर्म बे भेदे छे एक वायणा-पुछणादि-वंदन, नमनादि पडिलेहण-प्रमार्जनादि जेटली योगप्रवृत्ति ते सर्वद्रव्यथी साधनधर्म कहियें. ते भावधर्म प्रगट करवाने जे करे तेने कारण-रूप छे द्रव्य ते जे भावतुं " कारण कारयासे दव्वं " इति आगमवचनात् ॥

अने जे उपयोगादि पोताना क्षयोपशमभावें प्रगट्या जे ज्ञानवीर्यादिगुण ते पुद्गलानुयायीपणाथी टाळीने शुद्धगुणी जे श्रीअरिहंत-सिद्धादिक तेना शुद्धगुणने अनुयायी करवा अथवा आत्मस्वरूप अनंतगुणपर्यायरूप तेने अनुयायी करवा ते भावथी साधनधर्म जाणवो ए आत्मा नीपजाववानो उपाय छे.

जिहां लगें आत्मानुं शुद्धस्वरूप चिदानंदघन ते साध्यमां नथी अने पुद्गलसुखनी आशायें विष, गरल, अन्योन्य अनुष्ठान जे करवुं ते संसारहेतु छे माटे साध्यसापेक्षपणे स्याद्वादश्रद्धायें

साधन करवुं एहिज मार्ग छे अने ए मार्गनी जे प्रतीतरुचि सम्यक्त्व कहियें. ते सम्यक्त्व ग्रंथिभेद करयो पामियें ते ग्रंथिभेद तो त्रण करण करे तो जडे ते त्रण करण जीव करे तेवारें सम्यक्दर्शन पामे ते त्रण करणमां पेहेलुं यथाप्रवृत्तिकरण, बीजुं अपूर्वकरण, त्रीजुं अनिवृत्तिकरण ए करण सर्व संज्ञी पचेंन्द्रि करे तेमां प्रथम यथा प्रवृत्तिकरण ते भव्य तथा अभव्य पण करे कोईक जीव अनंतिवार करे ते यथाप्रवृत्तिकरणनुं स्वरूप लखियें छैये.

सर्वकर्मनी उत्कृष्टस्थितिना बांधनार जीवने संक्लेश घणो छे माटे यथाप्रवृत्तिकरण करे नहीं, उक्तंच विशेषावश्यकेउक्कोसाद्वि न लम्भइ भयणा एएसु पुव्वलद्धाए ॥ सव्वजहन्नठिइसुवि, न लम्भइं जेण पुव्वपडिवन्नो ॥ १ ॥ माटे कर्मनी उत्कृष्टस्थितिनो बांधनार जीव ते चार सामायिकनो लाभ न पामे अने जे जीव सात कर्मनी जवन्यस्थिति बांधे ते जीव तो गुणवंत ज छे ए रीत छे माटे जे वारें एक कोडाकोडी सागरोपम पल्योपमने असंख्यातमें भागे उणी स्थिति बांधतो होय ते तथाप्रवृत्तिकरण करे जे जीव कर्मक्षपणारूप शक्ति पाम्यो न हतो ते शक्ति पाम्यो तेने यथाप्रवृत्तिकरण कहियें उक्तं च भाष्ये येन अनादिसंसिद्धप्रकारेण प्रवृत्तं कर्मक्षपणं क्रियते अनेनेति करणं जीवपरिणाम एव उच्यते अनादिकालात् कर्मक्षपणप्रवृत्ताध्यवसायविशेषो यथाप्रवृत्तिकरणमित्यर्थः

क्षयोपशमी चेतनावीर्य जे संसारनी असारता जाणे संसार दुःखरूप करी जाणे तेथी परिग्रह शरीरथी खरे उद्वेगें उदासीनता परिणामे करी सातकर्मनी स्थिति अनेक कोडाकोडीना थोकडा असंख्याता जे सत्तामां हता ते खपावे ने कांइक

सासाणेइगचउपण छनवत्तीसापत्तीसइगतीसा विगुअडनवतगुणोए सुक्काएवेअचउवीसा ३ ॥११६॥ इतिमार्गणासुउदयस्थानानि ॥ अथमार्गणासुभंगकाः॥ मणुआइचउगईसु । तिगईविगुनिअगईभवाभंगा एगिंदिअवापाला पुव्वीसुण चत्तअविउब्वा ६ ॥११७॥ तावविगावणउदगे वेउव्वजोअहीणत्तविउव्वा पवणेविअलेविअला तत्तेसुएगिंदिभंगविणा ८ ॥११८॥ इगविगलविणासगडे कसापचउगे जिणट्ठभंगविणा सत्तुएभंगावयणे मणवेएतेअविगलविणा ७ ॥११९॥ इगविगलनिरयजिगविगु पुरिसेइत्थीसुहारविगुतेविआहारतिछसुरविगु संडेतिगनायुनहिंदंसे ॥१२०॥ इगविगलंदिअजिणविगु पज्जचउगइभवापसामईए छेएनरपज्जसुद्दा मणपरहारेअणाहारा ॥११॥१२१॥ सुहमेदुसपरिवीना सजिणाहक्खायगेअसन्नाने २ मिछाभवेहाण्ग निछविणासव्वभव्वेसु ७ ॥१२२॥ केवलदुगिजिणज्झुग्गा निरिनरसुहेदेससंपनेभंगा निछुभ्भवपज्जत्ता इगविगलविगाविभंगंम्मि ४ ॥१२३॥ अजिणाहाराअजए साहाराछेसनिगअचक्खु सुचक्खुसु इगविनितिंदियजिणविगु वेअगितिनाफुव्व ७ ॥ १२४ ॥ खवगेवेजिगतुत्ता मीसदुगेठाणगायसन्नीसु जिणविगुपणंदिभंगा अडवीमंजानरअपज्जा ४ ॥१२५॥ संवपणागइपणविगु विउब्विविगुनिरिअज्जअसंन्निसु सेवेससमुच्चायग तगुअपज्जअणाहारे २ ॥१२६॥ पम्हासुनिरयइगजिण विगलविणतिउगेव्वइगछत्ता सुक्कासुसजिअइगविगु नाणुव्वाहारविगुवसमे ४ ॥२७॥ नवअडविउनगपोए मिच्छेआहारनिच्चयविगुवीए वायर२ विगल ६ गतिरि ८ नर ८ सुर८ पज्जाईतिवत्तीसं ॥१२८॥ दोफुणवापरपज्जा पणवीसेअट्ठदेवपवइया छव्वीसे ५८२ एगिंदिय १३ अपज्ज ५ विगुनवइगुणवीसे ॥ १२९ ॥ तितेतिरि ११५२ नर ११५२ सुर८ जा इगतीसेतिरपजायपज्जत्ता तईए जोगविगला

सुहमनिगोआइखणप्पजोगबायरविगलअमणमणा अपज्जलहुपढम- दुगुरु पज्जहस्सीअरो असंखगुणो ॥१५४॥ असमत्ततसुक्को सो पज्ज सहानिअएवटट्ठाणा इगओगंतगुणा—असन्नओगंतगुणी- अइला ॥१५५॥ सिद्धाणणंतभाए उज्लाइवग्गणानीअंगुणओ सव्वेवेअणनाइं चउरासविहीणगंतगुणा ॥१५६॥ धुवअधुवाप- अचित्ता सुमापत्तेअबायरेसुहुमे गुरुसंवेअवगाहो उजुणंगुलअ- संखंतो ॥१५७॥ जंजाइलठ्ठकलीअ पंतंसोसत्वदेसवाइणं ततो- अबायवाणं रसनेपुअप्पबहुगांनि ॥१५८॥ अप्पेपवडीसंघे योग- टाणेगुरुअगेरुस्सो लहुएलहुओवंधो उत्तनाणेदस्वमाणानिणं ॥ १५९॥ अवगाहणापरिसित फुनगाअंगुलअनंतभागोअ सुहमा-

उदयेसत्ताप्याननि.

२३।२०। ५ १२।८८।८६
२६ ८०।७८
२८ ४ १२।८१।८८
८६
२९ ७ १३।१२।८१
८८।८६।८०
७८
३० ७ १३।१२।८१
८८।८६।८०
७८
३१ १ १३
९ ८ १३।१२।८१
८८।८०।७१
७६।७५

२० २ ७९।७५
२१ ८ १३।१२।८९।८८।८६।
८०।७८।७६
२४ ७ १२।८८।८६।८०।७८
२५ ७ १३।१२।८९।८८।८६।
८०।७८
२६ १ १३।१२।८९।८८।८६।
८०।७९।७८।७५
२७ ७ १३।१२।८९।८८।८६।
८०।७६
२८ ८ १३।१२।८९।८८।८६।
७९।७५।८०
२९ १ १३।१२।८८।८६।८०।
८९।७९।७६।७५
३० १ १३।१२।८९।८८।८६।
८०।७९।७६।७५
३१ ५ १२।८८।८६।८०।७६
९ ३ ८०।७६।९
८ ३ ७९।७५।८

गैत्री	१	१						१	१	१	१	१
रेत्ता		८		८		८	१६	१६	८			
गाणी		१		१		१	१	१				
गां	१	४२	११	६३	६००	३३	१२०२	१०८५	२९१७	११६५	१	१

२३।२५।२६	२१।२४।२५।२६।२७। २८।२९।३०।३१	
२८	२१।२५।२६।२७।२८। २९।३०।३१	
२९।३०	२१।२४।२५।२६।२७। २८।२९।३०।३१	
३१।१ ३।१२	३० २०।२१।२६।२७।२८। २९।३०।३०।३१।९।८	

नाणनिगचरखुओहिवेअदुगे उवसमवेअगमहीपम्हाअगुए असग-पणरांसा ॥१११॥ तिगंल ठगतेनिग्वे इगपणगगअटनवहिआ-वांसा देवेते ६ तीसयुआ मुहमेपरिहागगेतीसं ७ ॥११२॥ पण मगअडनवमहिआ वांसानीसमणे १ दुसामइए २ देसेइगनीस-युआ ६ गुणनीसानमीममणपन ७ ॥११३॥ सव्वेभव्वे १ नानग पचंदिरवगेसुनच्चिउचउरामं इगरांगाइंज्झा सगरांगाइग-भावरेसव ११ ॥११४॥ दगचउसगदीसाविण केवलदुगिसुद्दगं-अमेउदया वांमिगवांसनवअइ५अगहारेगेग ८ आहारे॥११५॥

गुणस्थानेषुउदयस्था.भा.	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
मिथ्यात्व	०	४१	११	३२	६००	३१	१२००	१७८२	२९१५	११६४	०	०
सासादन	०	३२	२	८	५८२			९	३३१२	११५२	०	०
मिश्र								१७७०	२८९७	११५२		
अविरत	०	२५	०	२५	५७६	२५	११९४	१७७०	२८९७	११५२		
देशविरत				२		२	१४८	२२०	३६२			
प्रमत्त				२		२	७६	७६	१४६			
अप्रमत्त								७२	१४४			
अपूर्व									७२			
अनिवृत्ति									७२			
सूक्ष्मसंपराय									७२			
उपशान्तमोह									७२			
क्षीणमोह									२४			
सयोगि	१	१	१	१	१	१	१	२	२	१		
अयोगि											१	१

तेज		५	१०	६	६							३३
पवन		५	११	७	७							३६
श्रत	१	३७	०	२६	५८७	२७	१२०२	१७८५	२११७	११६५	१	१७७५१
कषाय ४	०	४१	११	३३	६००	३२	१२०२	१७८४	२१११	११६४		७७८३
वचन								१७	२१११	११६५		५०१३
मन								१७	२८११	११५३		५०६१
पु.	०	२६	०	२५	५७८	२५	११९५	१७७१	२८१८	११५२	०	०७६७०
स्त्री		२६	०	२४	५७८	२४	११९३	१७६१	२८१७	११५२		७६६३
नपुंसक १		३३	११	२४	६००	२३	११८४	१७६६	२९०७	११६४	०	०७७१२
ज्ञा. ३अ. द. १ वेदक १।५		२७		२६	५७६	२६	११९६	१७७२	२८१८	११५२	०	०७६७५

मार्गणासुउदयस्थानानि	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	
मनुज १	१	१०	०	९	२८९	१०	५८७	५८८	११५५	१	१	१	२६५२
तिर्यंच १	०	२३	११	१५	३११	१४	५९८	११८०	१७५४	११६४	०	०	५०७०
देवता १	०	८	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	६४
नारकी १	०	१	०	१	०	१	१	१	०	०	०	०	५
एकेन्द्रिय	०	५	११	७	१३	६							४२
विगल		९			९		६	१२	१८	१२			६६
पंचेन्द्रिय	१	२८	०	२६	५७८	२७	११९६	१७७३	२९११	११५३	१	१	७६८३
सू.	०	५	१०	६	१२	६							३९
[illegible]		५	१०	६	१२	३							३६

गुरुआलोओ कालोठिईट्ठाणमाणंच ॥१६०॥ अंतरमवंधभागे अणुदयकालोअसंतकालोय सव्वाणुणंतभागे लोगग्गाउअसंखमेभागे ॥१६१॥ मोहेवसमोमीसो चउवाईसुअट्ठकम्मसुअसेसा भाग पुणजहसंभव मग्गणठाणेसुनेअव्वा ॥१६२॥ चउदुगतिगपण चउतिग, तीसातीसासगठ दुगवीसा, वीसगुणवीसतेरस बारसभाग गुणठाणे ॥१६३॥ थोवाणुगाउरवंधे नामेगोएसमोअगहिओअ तत्तोविग्घावरण दुअहिओमोहेनओअहीओ ॥१६४॥ नगोसपो अगिज्जं अहिअंगुणमग्गणाणुयोगाओ उद्धरीअंगमयाओ कम्मसं वेहगंथमिणं ॥ १६५ ॥ इयकम्मसंवेहद्दा नत्तेअणओअणुहइ दंपत्ता नच्चयपसमभावव्वं कम्मसल्वणिभावेज्जा ॥१६६॥ पग प्पानाणंपुण झाणट्ठाणंचसिवरयनिहाणं नंतुणकम्मविरोगे कम्म विवेगोअनन्नाने ॥१६७॥ अप्पमट्ठोपरचाओ मज्झन्यसंपरम ज्झाणंच आपमगुत्तंहवई कम्मसम्मव्वम्मनाणेण ॥१६८॥ अन्ना हगीअणुव्वाओ उद्धरीआपगईसंगहाणंया नणोरेविरिणं कम्मं धाकपाणुकया ॥१६९॥ ननोउद्धरिऊणं पंचाईसुपरमर्भ सिरिजिणचंदमुनिसर रज्जेभणीअंमसामेणं ॥१७०॥ सुविहि रपरगच्छे ॥ सुगवगजिणचंदसूरिमाहाए पाटगासुखाना नम्म सासुमइमुणरपन्ना ॥ १७१ ॥ गम्मावंगराभण तम्मी गासुपसमुद्दा सिरिपुप्फमारुअज्जा पुन्नाविन्नाणिहाणानं ॥१७२॥ सुपसायपगासुगहा नाणरम्मा गुनायवम्मरग ॥ गपहंभाणनिम्वरग ॥१७३॥ नम्मीगयपभणीअ पमरगहा नाकम्मं(पापनेपाप) मारगाहेगणम्म ॥ १७४ ॥ इतिश्रीकर्मसंवेधप्रकरणं समाप्तं ॥ शुभंभवतु ॥

सं. १९.७१ वर्षे द्वि. आषाढ सुदि १ दिने श्रीजेसलमेर महादुर्गमध्ये लिपिसं सोनाक किशोरचंद श्रीमद् जिनमतुग्यामध्ये.

तेज		५	१०	६	६							३३
पवन		५	११	७	७							३६
चाप	१	३७	०	२६	१८७	२७	१२०२	१७८५	२११७	११५५	१	१७७४९
श्याम ४	०	४१	११	३३	६००	३२	१२०२	१७८४	२९११	११५४		७७८३
पवन								१७	२९११	११५५		५०९३
मन								१७	२८९९	११५३		५०६९
पु.	०	२६	०	२५	५७८	२५	११९५	१७७१	२८९८	११५२	०	०७६७०
स्त्री		२६	०	२४	५७८	२४	११९३	१७६९	२८९७	११५२		७६६३
नपुंसक १		३३	११	२४	६००	२३	११८४	१७६६	२९०७	११५४	०	०७७१२
शा. ६ ज्ञा. म. १ मेरुक ११५		२७		२६	५७६	२६	११९६	१७७२	२८९८	११५२	०	०७६७५



मनपर्याय १				१	०	१	७४	७४	१४५				२९५
केवल २	१	१			१	१	१	२	२	१	१	१	१२
अज्ञान ३ मिछ १ अभव्या ५	१०	४१	११	३२	६००	३१	१२००	१७८२	२११५	११६४	०	०	७७७६
विभंग				१६		१६	२४	१७६१	२८९६	११५२	०	०	५८७३
सामा. छे. २	०	०	०	२	०	२	७६	७६	१४६				३०२
परिहार १									१४५				१४५
सूक्ष्म. १									७२				७२
यथाख्यात	१	१			१	१	१	२	७४	१	१	१	८४
देशविरति				२	०	२	१८४	२२०	३६२	१४४			८७८
अविरतति	०	४१	११	३२	६००	३१	१२००	१७८२	२११५	११६४	०	०	७७७६

प्रकारनो करे, इहां चईय कहेतां प्रतिमा छे तो खोटी कल्पना स्यामाटे करो छो ? तथा वीजे प्रश्ने पूछयो जे अहिंसानां ६० नाम कह्यां छे अभओसव्वरसविअनावाओवुरुकायवित्तीपूयाविमलप्पभा निम्मलकरीति एव माइणीनियगुणनिम्मियाइं पज्जयनामाणिहुंतिअहिंसाए ॥ तिहां प्रतिमा तथा पूजानो नाम नथी तेहनो उत्तर तिहां अहिंसानो नाम जाणो तेहनो अर्थ देवपूजा छे पूजा एहवो दयानो नाम छे तो अजाण्योइमस्यें प्ररुपणाकरो छो ? वीजुं पूजातो श्रीअरिहंत प्रतिमानी ते तो विनय तथा वेयावच ते अभ्यंतर तपना भेद छे. ते तप मोक्षनो मार्ग छे. श्रीउत्तराध्ययन सूत्रे २८ मे अध्ययने तप ने मोक्षनां च्यार कारण कह्यां ते मध्ये गण्यो छे. तथा तो परये पुछयो जे बोलनी खबर नहवे ते विचारी बोलीये. तथा श्रावके कोणे देहरां कराव्यां ? तथा प्रतिमा पूजी ? तेहनो उत्तर श्रीसमवायांगसूत्रे तथा नंदीसूत्रे सर्व आगमनो नूंध छे तेमध्ये ए पाठ छे तिहां उपासकदशानो नोंध छे ते आलावो छे ते लखीये छे. सेकिंतउवासगदसाओ उवासगदसाझुणंसमणोवासगाणं नगराइंउज्झाणाइं चेइ[illegible] समोसरणाइंरायाणोअम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इह[illegible] आपारलोईया इड्ढिविसेसा भोगापरीआउ सुअपरिग्गहीआ त[illegible] [illegible] माओ उवसग्गसंलिहणाओ भत्तपच्चरकाणइयाउवगमणं देवलोगगमण सुकुलपच्चायापुणबोहिलाभो अंतकिरीयाआघरिज्जंति ए पाठ इहां चेइयाइंशब्दे देहरा तथा जिन प्रतिमा जाणज्यो. चेइय एहनो अर्थ वीजो थाये नहीं, जेवननो अर्थ उद्यानवनखंडनो पाठ जूदो छे. कोइ साधुनो अर्थ

चक्षु	०	३०	०	२६	१८१	२६	१११९८	१७७६	२१०४	११५६			७६५७
अचक्षु ३	०	४१	११	३३	६००	३२	१२०२	१७८४	२११६	११६४	०	०	७७८३
तेज	०	३०	१०	३१	१९०	३१	११९५	१७७१	२८१८	११५२			७७०८
पद्म	०	२६	०	२५	५७८	२५	१११५	१७७१	२८१८	११५२			७६७०
शुक्ल	१	२७	०	२५	५७८	२६	१११५	१७७२	२८११	११५३	०	०	७६७६
भव्य	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२११७	११६५	१	१	७७९१
उपशम	०	२७	०	२५	५७८	२५	१११४	१७७०	२८१७	११५२	०	०	७६६८
क्षायिक	१	२८	०	२६	५७८	२७	१११६	१७७३	२८११	११५३	१	१	७६८३
मिश्र								१७७०	२९१७	११५२	०	०	५८११
सा.	०	३२	२	८	५८२	०	०	१	२३१२	११५२			४०१७

सं

धम्मायरीया ए पाठ जुदो छे. ज्ञाननो अर्थ करे ते सुपए
पाठ जुदो छे. तेमाटे चेइय शब्दे जिनप्रतिमानो अर्थ छे. तथा
तुम्हे पुछो जे द्वारसां राजग्रहमें देहरा तथा प्रतिमानो पाठ
किहां छे ? तेहनो उत्तर नंदीसूत्रे अनुत्तरोववाइ तथा अंत-
गडना नोंवनो पाठ जोज्यो. तथा तुम्हे कहेस्यो इतला बोल
उवासकदशाप्रमुखे दीसता नथी तेहनो उत्तर जे नंदी तथा
समवायांगने ते पाठ तेहनो बोल इत्यादि शके ते जोज्यो.
तथा पुछस्युं जे किणे श्रावके प्रतिमा पुंजी छे ? तेहनो उत्तर
घणे श्रावके प्रतिमा पुंजी छे. ते पाठ श्रीभगवतीसूत्रे तुंगीया
नगरीना श्रावको वरणव्या तिहां अभिगयजीवाजीवा इत्यादिक
पाठ घणा छे. तिहां एहवो पाठ छे. असहिज्जदेवासुरनागसु-
वन्नजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्व महोरगादीएहिं देव
गणेहिं निग्गंथाओपावयणाओ अणतिक्कमणिज्जा निग्गंथे पाव-
यणेनिस्संकियानिक्कंखियालद्धट्ठागहीयट्ठा इत्यादि जे श्रावक कोइं
आविना देवतानो सहाज वांछता नथी तो कोइं बीजा देव-
तानी पूजा किम करे ? एहवा श्रावक जे देवने देव बुद्धि
मानता हवे तेहनेज पूजे ते श्रावक थिवर आव्या तेवारे एक-
वार सर्व एकठा मिल्यां एहवो विचार कह्यो जे एहवानिर्ग्रं-
थनो नाम सांभल्यानो पिण महा लाभ छे तो तेहने वांदवा
जातां सेवा करतां तो महानिर्जरा महापर्युपासन कहेतां मोक्ष
थवो इम विचारी पोते पोताने घरे गया पछी सूत्रे पाठ छे
ण्हायाकयबलिकम्माकयकोउयमंगलपायच्छित्तासुद्धप्पावेसाइंवत्थाइंपवरपरि-
हिआ अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सयाओगिहाओपडिनिक्खमंति
तिहां नाहा ते अंघोल करवं, कयबलिकम्मा ते देवपूजा करवी
कयकोउयमंगल ते तिलकादिक करवा पछी वस्त्र पहेरीने

संज्ञी	०	२७	०	२६	१२७८	२६	१११६	१७७२	२८१८	११५२			७६७५
असंज्ञी		३२	११	७	४०	६	३८	४४	६६	४४	०	०	२४८
आहार	०	०	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२११७	११६५	०	०	७७४६
अनाहार	१	४२									१	१	४५
का. यो. १	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२११७	११६५	०	०	७७८९

अजपुमेवदेसेवि ॥१३०॥ सुरनिरयदुहगतिविणा सुहसाहारामणुअजाछट्ठे अणहाराअपमत्ते पुव्वेसंघयण-निविणाते ॥१३१॥ इक्किक्कगंचपरओ टाणाइगवीस माइनवमिच्छे चउवीसविणासम्मे गुणतीसातिमीसिसा-साणे ॥१३२॥ इगवीसाइसत्तग सगट्ठवीसविणुएगनीसंजा देसेसगवीसाई पणपणवीसेणयुत्ताते ॥१३३॥ इगनासविणुपमाए गुणनीसदुअप्पमत्तगिअपुव्वा खीणंजातीसेगं अयोगिनवअट्ठदुगटाणा ॥१३४॥ योगी-जिणेवीसदुगं बारीसग छचअट्ठटाणाइं अपज्जत्तभवाभंगा विविखिआनत्थिमयभेआ ॥१३५॥ तिदुनउई-गुणनवई छलसीअसीइगुणासीइ अटपछपन्नत्तरिनवअट्ठपनामसंताणि ॥ १३६ ॥ तिनइंगव्वेसम्मे जिणरजहुसंतजाएदुनउई आहारपेमविणगुण नवइअडसीइंजिणरहिआ ॥ १३७ ॥ निरयगु-

आभरणअलंकार पहेर्या, तथी निकल्या पछी सिद्धार्थ राजा
तथा स्नानमंजन, मुक्ताफल हेठ इम मुजब एक आचारांगमां छे
[illegible] हेठ [illegible] गया छे तेवारे कायोत्सर्ग
तथा पछी घरे आवी स्वधर्मीवात्सल्य करीने दीक्षा लेवा नि-
कल्या तेवारे महावीर कायोत्सर्गमां पण रह्या छे, इत्यादिक घणा
अन्य देवनी पूजा न करे बोलवो न पण, अरिहंत देवोनी पू-
तथा कोइ कहेशे कायोत्सर्गमां पण [illegible] प्रमाण [illegible]
पामे छे तेवा प्रकारना छे? जो जोइने देवपुं? करे ते तेवुं
पुजे तथा देवल [illegible] पूजा करी हवे तेने [illegible]
[illegible] पूजा करती नो कां न करे? [illegible]
[illegible] छे नो कायोत्सर्गमां पण [illegible]
[illegible]

दुगअहवसुग्दुग रदिआउलनीइअहअणीइंधआनिरयसुक्खअगइ
उवहिआतेणउ३ग ॥ १३८ ॥ तेअनरदुअडसयरी उवसमसंना-
निरयतिरिदुधउजाइं थावरआयव दुग साहारणविगलीइं॥१३९॥
जिणविणुनेगुणसीइं ते आहारगविदीणउरसयरी जिणविणुतेपगस-
यरी अडनवसंनाविइदउव ॥१४०॥ तेवीसनिगेपणगं अडवी-
सेघउगसत्तगुणनीसे तीनेइगनीगइना दुग धंधेअटसंनंसा ॥१४१॥
उदयेसत्तास्थानानि ॥ दुगअडपणमगनवमग अडनवनवपणतिग-
तिगंधकमा धीमाइसुउदएसुं संनटागानिनेआनि ॥१४२॥ निदु-
नउइंगुणनउइं अटपउलगीअगीइंअडसयरी अविरयपणछेसाणुअ-
निनउइंविणुनिउआणं १० ॥१४३॥ तेविणुगुणनवइं इगया-
धगविगलामलेसुनिरिए अमस्नेनमपगाभव्वे अणहारेनवउविणुपोए
१८ ॥१४४॥ अडमपरिविणामगुए ११ नवटविणुदसकसायच-
धक्खुदुगे सुक्काहारगसंनीअ वेपगुए १३ नाणवदिदंसे ॥१४५॥
छलसीअडसयरीविणुअडपरेअगडेमदेवपरिहारे उवसमगेनिदुनवइं
गुणनवइंचेवअडसीइं ० ॥१४६॥ पुंआसीगुणसीइं छपणसय-
रीहिसुहममासइए केपुनवटगदीआ खवगाहक्खावगेनेआ ५
॥१४७॥ निनवइंचउविणकेवल दुगिउटाणादुसासनेमीसे दोन-
वइंअडसीइंगुणनवइंसुआयतेनिरए ५ ॥१४८॥ अडसीछलसीसीइं
अडसयरीमिछमभवाभव्वे ? उगदुगदुगचउपंचसु दुसुअडतिसु-
उठगमेगं ॥१४९॥ उदयसुदीरणाए सामित्ताएनविज्जइंविसेसो
मुणपइगुपालं सेसाणंसव्वपयडीणं ॥१५०॥ नवउदओअपोगे
राणातेरमेअवुछिमामगुआउवेअगीए उईरणाअपमत्तंजा ॥१५१॥
णंपयडीणं छेअसनपाउआलिगामोत्तूं पडगहीआणपसमगं
डिगहीआणविसमंति ॥१५२॥ अविभागवग्गफड्डुग अंतर-
वंइगापक्कमा लोगासंखगुणाते योगटाणादटनिमित्तं॥१५३॥

सूत्रमध्ये गुरुनी पाटनी आशातना टालवी कही छे, ते पाट अजीव छे. तेर्माण सर्व गुरुनो बहुमान छे, प्रतिमाने बहुमानें सिद्धनो बहुमान छे तथा सुधर्मा सभामांहि जिननी दाढा छे ते वंदनी पूजनीक छे, तेनो अजीव स्कंध छे तथा तुमे लख्यो जे परदेशी राजाए प्रतिमा कां न करी ? ते परदेशी श्रावक थया पछी केटलोक जीव्या छे ते तथा सर्व श्रावक एकज करणी करे ए स्यो नियम छे ? तथा परदेशीए तथा आणंद श्रावके कोइक साधुने पडिलाभ्या नथी तेमाटे तुम्ने साधुनी वीहराव्याने दोष मानस्यो ? ए विचारी ज्योज्यो तथा लख्युं छे जे सूर्याभे जे प्रतिमा पूजी ते राजधानीना मंगलीक माटे पूजा करी तेतो खोटुं बोलो छो, ए पाट सूत्रमें नथी. सूत्रमें तो एहवो पाट छे "हीयाए सुहाए खेमाए निस्सेसाए आणुगामीयत्ताए भविस्सइ निश्रेयस कहेता मोक्षभणी ए अर्थ छे तथा पच्छा शब्दे जे इहलोकनो अर्थ छे इंम कहे छे ते मूढ छे, दर्दुर देवताने अधिकारे पछा शब्दे आवता भवनो अर्थ छे. तथा आचारांगसूत्रे जस्सणथिपुरा तस्सपच्छाथिनो इहां पूर्व शब्दे पंटलो भव पछा शब्दे आवतो भव लीधो छे. तथा ए भवे समकितनो लाभ ते घणो छे तथा तीर्थंकर बांधाना फलनो पाट उवाइ मध्ये तथा पंचमहाव्रत पाल्यानो पाट आचारांग मध्ये तिहां पण हियाए इत्यादिक पाट छे ते ये ठेकाणे लाभ मानो छोतो जिनप्रतिमा टामे ना स्याने कहो छो अने किहां जिनप्रतिमा पूजानो पाट कह्यो नथी अने होय तो देखाडो तुंने लिख्युं जे भगवंते हिंसानी ना कही छे तेतो अमे किहां कहुं जे हिंसा करवी,पन भगवंते किसे सूत्रे प्रतिमा पूजानी ना कही नथी. प्रतिमानी १७ प्रकारनी पूजा सूत्रे कही छे. तथा तुने

५

गुणस्थानेषूदयस्थाना.	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
मिथ्यात्व	०	४१	११	३२	६००	३१	१२००	१७८२	२९१५	११६४	०	०
सासादन	०	३२	२	८	५८२							
मिश्र.								९	२३१२	११५२	०	०
अविरत.								१७७०	२८९७	११५२		
देशविरत.	०	२५	०	२५	५७६	२५	११९४	१७७०	२८९७	११५२		
प्रमत्त.				२		२	१४८	२२०	३६२			
अप्रमत्त.				२		२	७६	७६	१४६			
अपूर्व.								७२	१४४			
अनिवृत्ति.									७२			
सूक्ष्मसंपराय.									७२			
उपशांतमोह.									७२			
क्षीणमोह.									७२			
सयोगि.	१	१	१	१	१	१	१		२४			
अयोगि.								२	२	१	१	१

प्रतिमानी पूजा हिंसामें गणो छो ते इम नथी. प्रतिमानी पूजा तो विनय तथा वेयावच्च धर्ममां छे. तथा पूजा हिंसामे गणी तो ठाणांगे नदीमें पडती साध्वीने साधु काढे तेमां हिंसा गणी नहीं, तथा आचारांगसूत्रे बीजा साधु अजाणे पण शर्करानी भूले लूण वीहरीने पछे जाणे जे लूण वीहराव्यो ते जाणी ते पोते खाये ते पोते पीये तथा बीजा साधुसंभोगीने आपे ते खायेपीए तथा साधु विषमवाटे वेलने रूपने ल्हाने गूछाना अवलंबी उत्तरे जे ए पाठ आचारांगसूत्रे छे तथा भगवती सूत्रमे साधुना हरस काढे तेहने क्रियाकर्म लागे नही. तथा मल्लिनाथजी पूतलीमे कवला मूंक्या तेमाटे धर्म माटे हिंसा करी तथा सुबुद्धि मंत्रिए पाणी पलटाव्यो ते धर्म माटे करी पिण मंदबुद्धी न कह्या ते भगवतीसूत्रे २५ मे शतके साधु शासन माटे तेजोलेश्या मुके तेहने आराधक कह्यो, तथा जंबूद्वीपपन्नत्तीए निर्वाण महोछव कर्यो छे थूभकर्याते जिणमंदिर धम्मेत्तिए पाठछे. इम केटला पाठ लीखीये ? अनेक पाठ छे॥ तथा नंदी सूत्रे जे आगम कह्या ते उत्थापीने ३२ मानो छो ते केनी आज्ञा छे ? तथा आवश्यक सूत्रपडिकमणा विना साधुपणो श्रावकपणो हुवेज नही ते तुम्हे आवश्यक सूत्रपडिकमणो मानना नथी तो श्रावकपणो ने साधुपणो केम कहो छो ? धरावो छो ? श्रीभगवतीसूत्रे साधु साध्वी श्रावक श्राविका पंचमआराना छेहडा पर्यंत कह्या छे ते तुमारी श्रद्धामें हिवडां साधु साध्वी कोण छे ? तथा सूत्रे आचारज उपाध्याय गुरु गणनीनिश्राये विचरे ते आराधक ते तमे कोनी निश्राये विचरो छो ? ते लिखज्यो, तथा श्रीभगवतीसूत्रे गाथा छे।
[illegible]

दनी एक कोडाकोडी रहे ए यथाप्रवृत्तिकरण जाणवा अनंति-वार करे पण ग्रंथिभेद करी शके नहीं ए करण ते गिरि न-दीने विषे कठ्ठं पाषाण ते घंचना घोलनारूप थाइवे करीने जेम सहेजे सुंहालो थाय अने कोइक आकार पकडे तेम जन्म मरणादि दुःखने उवेगें अनाभोगथी ज भववैरागें जीव यथाप्रवृत्तिकरण करे एटले जीव कोइक रीतें वैराग्यें विचारे जे भवभ्रमण ते दुःख छे. ए संयोगवियोगादि असार छे पण कांइक ज्ञानानंदादि ते सार छे एहवी गवेषणा करनारो जीव ते यथाप्रवृत्तिकरण करीने अर्थकरण करे. इहां कोइ पुछे जे भव्यने तो एतद्य योग्यता छे पण अभव्य जीव केम करे तेहुं उत्तर जे तीर्थंकरभक्तिमां जे देवतानी महिमा तथा लोक सन्मानादिक देखीने पुन्यथी वांछायें देवत्व राज्यादिक लाभ इच्छायें द्रव्यथी जैन तथा वळी पंच महाव्रतादि पाले पण तेने सम्यक्त्व न होय जे पुद्गलानंदिपणुं छे तेने गुणस्पर्श न थाय उक्तं च महाभाष्ये ॥ अर्हदादिविभूतिमतिशयवती दृष्ट्वा धर्मा-देवंविधसत्कारो देवत्वराज्यादयः प्राप्यंते इत्येवं समुत्पन्नबुद्धेरभव्य-स्यापि देवनरेंद्रादिपदहेतवे निर्वाणश्रद्धारहितस्याप्यनुष्ठानं किंचिदंगी-कुर्वतो ज्ञानरूपस्य श्रुतसामायिकमात्रस्यलाभेऽपि सम्यक्त्वादिलाभः श्रुतस्य न भवत्येवेति ॥ ए रीतें जाणवुं.

तथा अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरणनो अधिकार जेम आगमसारमां कह्यो छे तेज प्रमाणे इहां पण जाणवो. इण त्रण करण करीने उपशम अथवा क्षयोपशम अथवा क्षायिक सम्यक्त्व जे पाम्यो अने आत्मप्रदेशें वर्तमाने सम्यक्दर्शनगुणनो गवेषक एहवो मिथ्यात्व मोहनीयनि विपाकोदयने टाले करीने जे सम्यक्दर्शनरूपनी प्रवृत्ति थाय तेनो यथार्थपणे निर्धार स-

हित जाणपणो प्रवर्त्ते ते जीवने द्रव्यानुयोगें तत्त्वज्ञान प्रगटे तेथीं जे आत्मगुण प्रगटे ते आत्मगुणरक्षणायें ज प्रवर्त्ते एहवी स्वरूपानुयायी आत्मगुणनी प्रवृत्ति तेहने धर्म करी संदहे ते माटे स्याद्वादपरिणामी पंचास्तिकाय छे ते स्याद्वादरूप ज्ञान ते नयज्ञाने थाय माटे नयसहित ज्ञान करवुं ते नयज्ञान अति दुर्लभ छे. अने नयनी अनंतता छे उक्तं च जावइया वयण-पहा तावइया चेव हुंति नयवाया ।। ते जे पूर्वापर सापेक्ष नहीं ते कुनय कहियें. अने सर्वसापेक्षपणे वर्त्ते ते सुनय कहियें. ते मूल सात नय छे, तेनुं स्वरूप अल्पमात्र लखियें छैयें.

नय ते ज्ञानगुणनुं प्रवर्त्तन छे. जे कारणे एकद्रव्य मध्ये अनंता धर्म छे ते एकसमयें श्रुतोपयोगमां आवे नहीं, त्यां माटे जे श्रुतज्ञाननो उपयोग असंख्यात समयें थाय. अने वस्तु मध्ये तो अनंता धर्म एकसमये परिणमता पामियें तेवारे श्रुतज्ञानें सत्य थाय नहीं तेमाटे नयें करी जाणे तथा यद्यपि केवळीनो उपयोग एकसमयी छे तेमाटे जाणवामां नयनुं कार्य केवळीने पडे नहीं पण वचने कहेतां केवलीने पण नयें करी कहेवुं पडे, कारण के वचन तो क्रमे करीने बोलाय छे अने वस्तुधर्म अनंता एकसमयकालें छे तेमाटे नयें करी कहे वली जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्य कहे छेः—

जीवादि द्रव्यमां जे गुण छे ते अनंतस्वभावी छे, गुणनी छति तेनुं परिणमन तेनी प्रवृत्ति तेमां जे समये कारणता ते समये ज कार्यता इत्यादि अनेकपरिणतिसहित छे तेथी कोइक रीतें सर्वनुं भिन्नाभिन्नपणे ज्ञान थाय ते नयथी थाय. माटे समकितरुचि जीवने नयसहित ज्ञान करवुं जे एटला धर्म सर्व-द्रव्य मध्ये रह्या छे माटे प्रथमतो श्रीगुरुकृपाथी द्रव्यगुण पर्याय

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
तथा [illegible] ७ [illegible] ४ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] १७ [illegible] पूजाना पाठ छे
[illegible] तथा पुष्प-
[illegible] पूजा [illegible]
के प्रमाण छे, तथा श्रीभगवतीसूत्रमे पण [illegible] देव पूजानी
[illegible] पाठ अनेक छे. तथा [illegible] अधिकारे
१७ प्रकारी पूजाना पाठ छे. तथा समवायांगसूत्रे चौतीस अति-
शयने अधिकारे " जलय थलय [illegible]-
[illegible] इत्यादि पाठ छे" इहां समवायांग
सूत्रमे देवता [illegible] नाम कह्यो नथी. तथा श्रीउववाईसूत्रे

पेहलो भेद उपसमसमकित जे जीव अनादि मिथ्यात्वि संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्तो कोई कारण पामीने संसारथी उभगे नरक निगोदथी बे पामे, जनममरणना दुःखथी बीहे तेवारे ए सर्व संसार खोटो जाणे, धर्म जागवानी रुचि घणी करे. दयापाळे, शीलदे, तप करे, श्रावकनां बार व्रत पाळे, साधुना महाव्रत पाळे ते जीव यथाप्रवृतिकरणे वर्तता कहीइं. एनली करणीसुवी भव्य तथा अभव्य जीव आवे, नवग्रैवेयकसुधी जाए पण समकित पाम्यो नथी ते माटे लेखामां नावे, तोपण कोई जीव वैराग्य परिणाम सहित संसारने असार जाणतो साचा धर्मनी परीक्षा करतो सातकर्मनी थीति उत्कृष्टी खपावे. एक कोडाकोडी सागरोपम थाकी थीति सातकर्मनी रहे तेवार अपूर्वकरण करे तेवारे एक ज्ञान मार्ग साचो करी माने. वृद्धिसूक्ष्मभाव जाणवानी विशेष थाइं तेवार पछे एक आत्मा पोताना शरीरने विषे रह्यो, पण अशरीरि छे, अरुपी छे, अविनाशी छे, अनंतज्ञानमयी अनंतदर्शनमयी, अनंतचारित्रमयी, अनंतअगुरुलघुमयी, अनंततपमयी, अनंतवीर्यमयी, निर्मळ अछेद्य अखंड छे, तेहना प्रदेश असंख्याता छे, प्रदेसे २ अनंता गुण अनंता पर्यायछे, उपयोग लक्षण ते माहरो धर्म छे, ए धर्म जे जे करतां प्रगट थावे, गुणीथी, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा सिद्धांत तेहनो विनय तथा वैयावच्च करवो, अरिहंतना आगम प्रमाणदर्शन गवेखे ते समकित कहीइं, ते समकितना तिन भेद छे उपसम समकित १ क्षयोपसम समकित २ क्षायकसमकितः तिहां अनंतानुबंधिकषाये मिथ्यात्वमोहनी, मिश्रमोहनी, समकितमोहनी ए सातप्रकृति उदये आवे ते खपावी अने उदये नथी आवी ते विपाकेउपसमावी छे, प्रदेसे उदये छे, समकितमोहनी उदय

प्रतिमानी पूजा हिंसामें गणो छो ते इम नथी. प्रतिमानी पूजा तो विनय तथा वेयावच्च धर्ममां छे. तथा पूजा हिंसामें [illegible] तो ठाणांगे नदीमें पडती साध्वीने साधु काढे तेमां हिं[illegible] गणी नहीं, तथा आचारांगसूत्रे बीजा साधु अजाणे पण [illegible] रानी भूले लूण वीहरीने पछे जाणे जे लूण वीहराव्यो है जाणी ते पोते खाये ते पोते पीये तथा बीजा साधुसंभोगीने आपे ते खायेपीए तथा साधु विषमवाटे वेलने रूपने [illegible] गूछाना अवलंबी उतरे जे ए पाठ आचारांगसूत्रे छे तथा भ[illegible] वती सूत्रमे साधुना ह्रस काढे तेहने क्रियारंभ लागे नहीं. तथा मल्लिनाथजी पूतळीमे कवला मुंक्या तेमाटे धर्म [illegible] हिंसा करी तथा सुबुद्धि मंत्रिए पाणी पलटाव्यो ते धर्म [illegible] करी पिण मंदबुद्धी न थया ते भगवतीसूत्रे २५ मे [illegible] साधु शासन माटे तेजोलेश्या मुके तेहने आराधक कह्यो, तथा जंबूद्वीपपन्नत्तीए निर्वाण महोत्सव कर्यो छे [illegible] धम्मेत्तिए पाठ छे. इम केटला पाठ लीजीये ? अनेक [illegible] छे। तथा नंदी सूत्रे जे आगम कह्या ते उत्थापीने ३२ [illegible] छो ते केनी आज्ञा छे ? तथा आवश्यक सूत्र [illegible] साधुपणो श्रावकपणो हुवेज नहीं ते तुम्हे आवश्यक [illegible] कस्यो मानता नथी तो श्रावकपणो ने साधुपणो [illegible] छो ? थयो छो ? श्रीभगवतीजीमें साधु साध्वी [illegible] पंचमाआराना छेहडा पर्यंत कह्या छे ते तुमारे [illegible] साधु साध्वी कोण छे ? तथा सूत्रे आवश्यक [illegible] [illegible] विधि ते आवश्यक ते [illegible] लिख्यो छो ? ते लिखज्यो, तथा श्रीभगवतीजीमें [illegible] [illegible]

ते मिथ्यात्व ७, जे मोक्ष गया तेहने मोक्ष न माने ते मि-
थ्यात्व ८, जे साधु विषयविकार त्यागी तेहने असाधु माने
ते मिथ्यात्व ९, तथा जे साधु नथी तेहने साधु करी माने
ते मिथ्यात्व १० ते मिथ्यात्वनी चाल तीन प्रकारनी छे देव-
गत मिथ्यात्व ते कुदेव सरागि तेहने देव करी माने १, बीजो
गुरुगत जे कुगुरुने गुरु करी माने बीजो पर्वगत मिथ्यात्व संसा-
रिपर्वने धर्मनापर्व करी माने ते मिथ्यात्व ते मिथ्यात्वनी स्थि-
तीन प्रकारनी छे. अनादि अनंतनी अभव्य जीवने, अना-
सांत भव्यजीवने, सादिसांत पडवाइने, ते जघन्य अंतर्मुहूर्त उ-
त्कृष्ट अर्द्धपुद्गलपरावर्त कांइक उंगी छे. बीजु गुणठाणुं सा-
स्वादन ते कोइक जीव उपशमकितथी पडतो मिथ्यात्व गुण-
ठाणे पोहोतो नथी वचे छआवलिका रहे ते सास्वादन गुणठाणुं
कहीइं. तेहनो दृष्टांत छे कोइ पुरुष खीरखांड घृत अन्न
तुम्न वमनो होइ ते वमनां कांइक स्वाद आवे तिम स-
कितिथी पडतां पिण कांइक वासना रहे तेहने सास्वादन कही
२ बीजो गुणठाणो मिश्र कोइ जीव क्षयोपशम समकित-
पडी मिश्रमोहनीने उदये मिश्रगुणठाणे आवे अथवा मिथ्या-
त्वथी निकली समकित गुणठाणे आवतां वचे मिश्रमोहनीने
उदये मिश्र गुणठाणे आवे ते जीव अंतर्मुहूर्तकालतांइ ते
एहने समकित मिथ्यात्वदृष्टि कहीइं. एहनो दृष्टांत कहे छे
कोइ जीव नालिकेरद्वीपमां वसतो होइ ते नालिकेरद्वीपे तेने
अन्नदीठे राग न उपजे तेम द्वेष पण न उपजे तिम ए जीव
जिनधर्म साचो सांभलतां राग पण न उपजे द्वेष उपजे न
एहवा जीवने मिश्रगुणठाणुं कहीइं एहनी स्थिति अंतर्मुहूर्त
३ चोथो अविरत समकित. एहना बे भेद छे [illegible]

पेहलो भेद उपसमसमकित जे जीव अनादि मिथ्यात्व संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्तो कोई कारण पामीने संसारथी उभगे नरक निगोदथी ते पामे, जनममरणना दुःखथी बीहे तेवारे ए सर्व संसार खोटो जाणे, धर्म जाणवानी रुचि घणी करे, दयापाले, दांनदे, तप करे, श्रावकनां बार व्रत पाले, साधुना महाव्रत पाले ते जीव यथाप्रवृत्तिकरणे वर्तता कहीइं, एतली करणीसुधी भव्य तथा अभव्य जीव आवे, नवग्रैवेयकसुधी जाए पण समकित पाम्यो नथी ते माटे लेखामां नावे, तोपण कोई जीव वैराग्य परिणाम सहित संसारने असार जाणतो साचा धर्मनी परीक्षा करतो सातकर्मनी थीति उत्कृष्टी खपावे, एक कोडाकोडी सागरोपम बाकी थीति सातकर्मनी रहे तेवारे अपूर्वकरण करे तेवारे एक ज्ञान मार्ग साचो करी माने, बुद्धिसूक्ष्मभाव जाणवानी विशेष थाइं तेवारे पछे एक आत्मा पोताना शरीरने विषे रह्यो, पण अशरीरि छे, अरूपी छे, अविनासी छे, अनंतज्ञानमयी अनंतदर्शनमयी, अनंतचारित्रमयी, अनंतअगुरुलघुमयी, अनंततपमयी, अनंतवीर्यमयी, निर्मल अलेप अखंड छे, तेहना प्रदेश असंख्याता छे, प्रदेशे २ अनंता गुण अनंता पर्यायछे, उपयोग लक्षण ते माहरो धर्म छे, ए धर्म जे जे करतां प्रगट थाये, गुणीश्री, अरिहंत, सिद्ध, आचारज, उपाध्याय, साधु तथा सिद्धांत तेहनो विनय तथा वैयावच्च करवो, अरिहंतना आगम प्रमाणप्रतीत राखे ते समकित कहीइं, ते समकितना तिन भेद छे उपसम समकित १ क्षयोपशम समकित २ क्षायकसमकितः तिहां अनंतानुबंधिकषाये मिथ्यात्वमोहनी, मिश्रमोहनी, समकितमोहनी एसातप्रकृति उदये आवे ते खपावी अने उदये नथी आवी ते विपाकेउपसमावी छे, प्रदेसे उदये छे, समकितमोहनी उदय

ते मिथ्यात्व ७, जे मोक्ष गया तेहने मोक्ष न माने ते मिथ्यात्व ८, जे साधु विषयविकार त्यागी तेहने असाधु माने ते मिथ्यात्व ९, तथा जे साधु नथी तेहने साधु करी माने ते मिथ्यात्व १० ते मिथ्यात्वनी चाल तीन प्रकारनी छे देवगत मिथ्यात्व ते कुदेव सरागि तेहने देव करी माने १, बीजो गुरुगत जे कुगुरुने गुरु करी माने त्रीजो पर्वगत मिथ्यात्व संसारिपर्वने धर्मनापर्व करी माने ते मिथ्यात्व ते मिथ्यात्वनी स्थिति तीन प्रकारनी छे. अनादि अनंतनी अभव्य जीवने, अनादि सांत भव्यजीवने, सादिसांत पडवाइने, ते जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्टी अर्द्धपुद्गलपरावर्त्त कांईक उंणी छे. बीजु गुणठाणुं सास्वादन ते कोईक जीव उपसमकितथी पडतो मिथ्यात्व गुणठाणे पोतो नथी वचे छआवलिका रहे ते सास्वादन गुणठाणुं कहीइं. तेहनो दृशंत छे कोइ पुरुप खीरखांड घृत जमीने तुरत वमतो होइं ते वमतां कांईक स्वाद आवे तिम समकितिथी पडतां पिण कांइक वासना रहे तेहने सास्वादन कहिइं २ त्रीजो गुणठाणो मिश्र कोइ जीव क्षयोपशम समकितथी पडी मिश्रमोहनीने उदये मिश्रगुणठाणे आवे अथवा मिथ्यात्वथी निकली समकित गुणठाणे आवतां वचे मिश्रमोहनीने उदये मिश्र गुणठाणे आवे ते जीव अंतमुहूर्त्तकालसीम रहे एहने समकित मिथ्यात्वदृष्टि कहीइं. एहनो दृष्टांत कहे छे जे कोई जीव नालियरदीपमां वसनो होइं ते नालियरखाइं तेहने अनदीठे राग न उपजे तेम द्वेष पण न उपजे तिम ए जीवने जिनधर्म साचो सांभलतां राग पण न उपजे द्वेष उपजे नहीं एहवा जीवने मिश्रगुणठाणुं कहीइं एहनी स्थिति अंतमुहूर्त्तनी ३ चोथो अविरत समकित, तेहना बे भेद छे त्रण छे, तेहनो

ग्गीओआवअण्णेयहवेवाणमंतरादेवादेवीउ अप्पेगतियाउप्पलहत्थ-
गताजावसतसहस्सपत्तहत्थगयाविजयदेवंपिट्ठओअणुगच्छन्ति "

इहां पुन्य धूंपी लीधां छे. ए आगले विजयदेवे पोते
वावडीमें उतरीने पुष्प धूंपी लीधां तथा सामानिक देवता तथा
बीजे देवताए पिण पुष्प पोताना हाथथी लीधां छे इहां कोइ
पुछस्ये जे तिहां कोइ माली नथी ते माटे पोते लिधां तेहनो
उत्तर जे माली नथी पिण देवना चाकर लोक घणा छे तेहनेज
पासे थां न मंगावे जो पुष्प आणवानो विधि होवे तोपण
पोताना हाथथी लेवानो विधि छे तेमाटे पोते वावडी मध्ये
उतरी लीधां छे तथा श्रीरायपसेणीसूत्रे सूरीआभाधिकारे

" तेणं से सूरियाभेदेवे पोत्थयरयणंगिण्हइ. पो. १. गि. त्ता
पोत्थयरयणंमुयइ, पोत्थयरयणंविहाडेइ, त्ता २ पोत्थयरयणंवाएति, त्ता २
धम्मियंववसायंगिण्हइ, २ त्ता पोत्थयरयणंपडिनिक्खवमति २ त्ता
सीहासणाओअब्भुट्ठेइ २ त्ता ववसायसभाओपुरच्छिमिल्लेणं दारेणं
पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव णंदापोक्खरिणि तेणेव उवागच्छइ
२ त्ता णंदापोक्खरिणी पुरच्छिमल्लेणं तोरणंणंतिसोपाणपडिरूवेणं
पच्चोरुहत्ति २ त्ता हत्थपायंपक्खालेइ २ त्ता आयंते चोक्खे
परमसुइभूए एगंमहंसेयंरययामयं विमलसलिल पुण्णं मत्तगयमुहा-
गितिसमाणंभिगारं पगिण्हंति पच्चोरुहइ २ त्ता जाइंतत्थउप्पला-
इंजावसयसहस्सपत्ताइंगिण्हंति णंदाओ पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ
२ त्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेगमणाए तएणं तं सूरिया-
भंदेवं चत्तारिसामाणियसाहस्सीओ जाव सोलसआयरक्खदेवसा-
हस्सीओ अण्णेयबहवेसूरियाभविमाणे जाव देवा देवीओअप्पे-
गइया उप्पलहत्थगया जावसतसहस्सपत्तहत्थगया सूरियाभं
देवंपिट्ठओसमणुगच्छंति ततेणं सूरियाभंदेवंबहवेआभिओगिय

साचा जाने ते निसर्गरुचि १ अभिगमरुचि ते जिनागमनासूक्ष्म अर्थ जाणवानी रुचि गुरुना मुखथी उपदेशथी जाने ते उपदेशरुचि २ श्रीअरिहंतकेवलीना कह्या वचननी आणा प्रमाण करे ते आणारुचि ३ सूत्ररुचि जिनसूत्र सांभलतां साचा मारगनी परतीत उपजे समकित पामे ४ बीजरुचि सिद्धांतनुं एकपद सांभलतां यथावोलतुं जाणपणुं आवे श्रद्धानथीपाइं ५ अभिगमरुचि ते ११ अंगादिक ८४ आगम तथा निर्युक्तिभाष्य चूर्णिटीकाना अर्थ जाने सर्व बोलना परमार्थ जाणवानी रुचि ६ विस्ताररुचि ६ द्रव्यनाभाव ४ निक्षेपेमाननये करी च्यार प्रमाने करी जाने ७ क्रिया रुचि ते जीव जिनशासननी क्रिया साची करी सूझनां कही ते गने कर आशीपाळी न करे ८ संक्षेपरुचि, जे जीव सिद्धांतना जाणगीनाथ आगमने अनुसारे जे अर्थ कहे ते साचा करी माने ९ धर्मरुचि, आतमानो धर्म ज्ञानदर्शन चारित्रमयी अरूपी आतमानो परिणाम भावदया प्रमुख गुणी श्री अरिहंतादिकनो बहुमान वेयावच्च ते धर्म करी माने बीजा बाह्य नयवाद्य किरिया जे आगमना कह्या परमाने करे ते धर्मनो कारण करी माने ते धर्मरुचि समकित मोक्षमार्ग मूल छे, समकित विना जे करनि ते संसार खाते छे (पण) मोक्षमारगनी न जाने ए चोथो गुणठाणो कह्यो ४ पांचमो देशविरति गुणठाणो इहां जीवने अनन्तानुबंधीया जावे जघन्ये एक नवकारसीपच्चखाण तथा चंदमूठना पच्चखाण साची श्रद्धा सहीत यथा होवे तेहने श्रावक कहीइं उत्कृष्टे इंद्रीसुखनी वांछा विना श्रावकनां बारव्रतनाडे ते उत्कृष्टो श्रावक कहीइं बारव्रतनां नाम १ स्थूलप्राणातिपात विरमण, जे त्रस जीवने निरापराध हणे नहि २ स्थूलमृषावाद विरमण, जे मोटका पांच

कन्यालीक १, गवालीक २, भौमालिक ३, थापिणमोसो ४, कुडीसाख नबोले ५ ॥ ३ थूलअदत्तादान विरमण, जे चोरी कीधे राजा दंडे तथा च्यार रुडां माणस ठवको दे अथवा पोताने भय लागे अथवा सामाना जीवने धास्को पडे ते मोटी चोरी करवी नहि ४ थूलमैथुन विरमणव्रत, जे परस्त्री मनुष्यणी तथा तिर्यंचणी तथा देवतानी भोगववी नहीं. पांच इंद्रीना स्वाद घणा मगनपणे सेवे नहीं ५ थूलपरिग्रह विरमण जे धनादिक नव भेदनो परिग्रहनो पचखांण करे, ईछा परिमाण करे अथवा पोता पासे जे धन होइं ते राखी बीजानो पचरकाण करे ६ दिक् परिमाणव्रत जे च्यार दिश तथा ऊंचो तथा नीचो दिसी जावानो मान करे ७ भोगोपभोग परिमाण व्रत जे नीम साचवे पन्नर कर्मादान न करे, जे पोताने खावेपीवे तथा वस्त्रोतुं मान राखे ८ अनर्थ दंड विमरणव्रत, ते जे मोटका पाप रंगवां खेतर खेडवां, भाठी जे चूना प्रमुखनी करवानां पचरकाण करे ९ सामायिकव्रत जे जघन्य २ घडी सुद्धी संसारनां काम मूकी कुटुंब धननो राग तजी कोइयी द्वेप न करवो एहवो समपरिणाम राखवो ते सामायिक कहिइं १० देसावगासिकव्रत जे बे घडीयी च्यार पोहोरयी उप्रंकाल दिसनुं मानकरी थीरचित्तसमनापणे रहेवुं ते देसावगासिकव्रत जाणवुं ११ पोषधव्रत च्यार पोहर अथवा आठ पोहोर सूधी समनापणे साधुपेरे श्रावकवरते, मन वचन काया समताइं राखे ते पोषधव्रत कहीइं १२ अतिथिसंविभाग बारमुंव्रत जे श्रावक जे ते साधुने विहरावीने पछे जिमवुं जो तेहवा साधुनो योग न मिले तो साधर्मिक श्रावकने जीमाडीने जमवा बेसवुं बेटा पछे योर्डामीकवार साधुजीनी वाटजोवी इंम करवां

ए रायपसेणीसूत्रे पाठ छे सूरीयाभे पोते हाथे फूल चूंटी लीधां छे, सामानीक प्रमुख पासे मंगाव्या नथी. तथा जंबुद्वीपपन्नत्तीमे जन्माभिषेक जेणेवखीरोदसमुद्दे तेणेव आगमत्तीरोदगं गिण्हंति २ त्ता जाइंतत्थउप्पलाइं पउमाइं जावसहस्सपत्ताइं तावगिण्हंति २त्ता इत्यादि सूत्रने पाठ हाथना चूंट्या फूल लेवाना छे. तथा कोइक कहेसे जे एनो चूंट्या नथी सहेजे पड्या लीधा छे तेहने कहीये छे. जे इज्जाग्गमे सहेजे मूक्या वावडीमध्ये हुवेज नही, तथा निशाइने अधिकारे निशाइ राजाए आंबानी मांजरीयो पोते चुंटी लीधी तेवारे कटक सवे चुंटी लीधी ते पाठ उववाईमध्ये जोजो अन्नयाउउत्तनिग्गओपेऊइ कुसुमाचूअरहणाएगामंजरगहीयाएवरकंथावरेणलस्केणं मंजरीपत्त पवालस्पाइ कट्ठाविसेसो कओ पडिनियत्तओपुच्छइ कहे सोरुक्खोअमचणादंसओ पहए सयाकेन्योभणइ तुम्हेहिं एगामंजरीगहीयापच्छमन्नेणंगहेवेणं एवंकओ ॥ इहां गहीय शब्दे चूटयानो अर्थ छे, तथा कोइ कहेस्ये जे एनो देवपणे कर्यो छो ते श्रावके करवानो किहां पाठ नथी तेहने कहीये जे जो देवतानी करणी ताहरे न करवी तो शक्रस्तव किम करे छे ? तथा स्नात्र केम मानो छो ? स्नात्र नो कलस ढोलो छो ते देवतानी करणीज छे, तथा सूर्याभनी पूजानी भलामण द्रौपदीने पाठे छे. देव अने पूजाकरणी तथा मनुष्यनो पाठ एकत्र छे तेमाटे देवतानी करणी श्रावक करे ए श्रद्धानमार्ग छे. तथा जे फूल चुंटवानी ना कहे ते धीरनी जीवनि कामना माटे तेवारे फूलनी पूजा किम करी शके ? अने फूलनी पूजानो तो सूत्रे पाठ छे. तथा जे पूजाने हिंसामें गणे तेहने कहीये जे श्री प्रश्नव्याकरण सूत्रे प्रथम संवरद्वारे अहिंसाना ६० नाम कह्यां

साधूजी नाव्या तो एहवी भावना भाववी जे धन ते श्रावक जे साधुजीने वहोरावीने जिमवा हसे ईम करतां चिंतवी जिमवा वेसे ए वारव्रत धरे ते श्रावक कहीइं श्रावकने जघन्य ३ वार उत्कृष्टे ७ वार चैत्यवंदन करवुं, अरिहंतदेवसिद्ध भगवंतने वंदना करवी तथा नित्य पडिक्कमणुं वे वार करवुं जो नित्य न थाये तो पाखीनो पडिक्कमणुं नियमा करवुं तथा पच्चखाण प्रभातना नोकारसी, अवस्य साचववी, रात्रिचउविहार तिविहार दुविहार ए ३ मांहि एक पच्चखाण अवस्य करवुं ए पांचमा गुणठाणानी स्थितिः जघन्य अंतमुहूर्त्त उत्कृष्टे उणी पूर्वक्रोडी वर्षनी जाणवी. ए जीव अढार पाप स्थानक आलोइने निर्मल थयो चारित्रफरसे ते कहे छे, अथ अढारे पाप स्थान लिखीइं छे. कोइ भव्य जीव अवसर पामीने जैनागम सुणतां संसारथी उभग्यो थको मोक्ष सुखनो अभिलाप करे पण आलंबन विना कार्य नीपजवो दुक्कर छे तेथी प्रथम देवतत्त्व श्री वीतराग अनंत ज्ञानमय अनंतदर्शनमय शुद्ध स्वरूपी आत्म रुपिभोगी आत्मालंबी अप्रमपरणामी जेहने अवलंबीने अनता जीव अव्याबाध सुख वरे ते देवतत्त्व तेहने सेववे सर्व जीव संसारभयथी छुटे तथा निर्ग्रंथपंथ महाव्रतधारी संवरस्वरूपी एक निर्मल मोक्षमार्गने विषे जेहनी दृष्टि छे, शरीर इंद्रीय, कषाय, जोगनी प्रवृत्तिजापना मुनिराज अतीतकाल विषय संभाल्ता नथी. वर्त्तमानविषे रमणता नथी, अनागतकाल विषयनी आसंसा नथी, पोताना अनंतगुणपर्याय निर्मल करवाने उत्कृष्ट उद्यमवंत छे ते साधु महात्मा गुरुपणे धारवा, तथा धर्मतत्त्व ज जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी स्याद्वाद रीते पोतानी गुणशाय पर्णति ने धर्म थी

कन्यालीक १, गवालीक २, भौमालिक ३, थापिणमोसो ४, कुडीसाख नबोले ५ ॥ ३ थूलअदत्तादान विरमण, जे चोरी करी राजा दंडे तथा च्यार रुडां माणस ठबको दे अथवा पोताने भय लागे अथवा सामाना जीवने धास्को पडे ते मोटी चोरी करवी नहि ४ थूलमैथुन विरमणव्रत, जे परस्त्री मनुष्यणी तथा तिर्यंचणी तथा देवतानी भोगवनी नही. पांच इंद्रीना स्वाद घणा मगनपणे सेवे नही ५ थूलपरिग्रह विरमण जे धनादिक ना भेदनो परिग्रहनो पचखांण करे, इछा परिमाण करे अथवा पोता पासे जे धन होइ ते सर्वा बीजानो पचखाण करे ६ दिक् परिमाणव्रत जे च्यार दिश तथा ऊंचो तथा नीचो दिशी जावानो मान करे ७ भोगोपभोग परिमाण व्रत जे नीम सा-चवे पनर कर्मादान न करे, जे पोताने खावापीवे तथा वस्त्रोने मान करे ८ अनर्थ दंड विरमणव्रत, ते जे मोटका पाप गंठां रोनर खेलवां, भांडी जे चना प्रमुखनी करवानां पचखाण करे ९ सामायिकव्रत जे जघन्य २ घडी सुधी समतानां वान मुकी कुटुंब धनना राग नहीं कोइथी द्वेष न करवो एहवां समपरिणाम राखवो ते सामायिक कहिइं १० देसावगासि-व्रत जे बे घडीथी च्यार पोहोरथी उपरांत दिवस मर्यादी-दीनचितसमनाराम रहे न दसावगासिकव्रत जाणवुं ११ पौ-षधव्रत च्यार पोहर अथवा अट पोहोर सुधी सवनो त्याग करे आरंभनो, मन वचन काया समताइं रहे ते पो-षध कहीइं १२ अतिथिसंविभाग व्रत जे साधु ने ते सादुने निरवद्य दान दिए, जो तेहना सबंधी जोग न मिले तो सामायिक आदरतां जीमतां तथा [illegible]

॥ गुणठाणाअधिकार ॥

(आगमसारान्तर्गत)

प्रथम गुणठाणानो विचार लखीइं छे. प्रथम मिथ्यात्वगुणठाणुं १, सास्वादनगुणठाणुं २, मिश्रगुणठाणुं ३, अविरत समकित गुणठाणुं ४, देशविरति गुणठाणुं ५, प्रमत्तगुणठाणुं ६, अप्रमत्तगुणठाणुं ७, अपूर्वकरण गुणठाणुं ८, अनिवृत्तिबादर गुणठाणुं ९, सूक्ष्मसंपराय गुणठाणुं १०, उपशांतमोह गुणठाणुं ११, क्षीणमोह गुणठाणुं १२, सयोगीकेवली गुणठाणुं १३, अयोगिकेवलि गुणठाणुं १४, अरिहंतनाभाख्या वचन साचा करी सद्दहेनहिं ते मिथ्यात्व गुणठाणो कहीइं, तेहना भेद पांच छे. अभिग्गहिय मिथ्यात्व जे लीधो हठ मुकी सके नहीं १, अनभिग्रहिक मिथ्यात्व जे देव तथा कुदेव तथा गुरु तथा कुगुरु धर्म, अधर्म सरिखा करी मानि परीक्षाबुद्धीनहीं २, अभिनिवेशमिथ्यात्व जे खोटाने खोटुं जाणे पण हठ मुकि सके नहीं ३, सांशयिक मिथ्यात्व जे केवलिनाभाख्या वचन तेमां संशय उपजे प्रतीपरतीत आवे नहीं ४, अनाभोग मिथ्यात्व जे कांई जांणपणुं उपजे नहि एकेंद्रीविकलेंद्रीनी पेरे तथा श्रीठाणांगसूत्रे मिथ्यात्वना दसबोल कह्या छे, जीवने अजीव करी माने ते मिथ्यात्व १, तथा अजीवने जीव करी माने ते मिथ्यात्व २, तथा धर्मने अधर्म करी माने ते मिथ्यात्व ३ तथा अधर्मने धर्म करी माने ते मिथ्यात्व ४, मोक्षनोमार्ग ज्ञानदर्शन चारित्रतपः तेहने मोक्षमार्ग न माने ते मिथ्यात्व ५, तथा मोक्षनो मार्ग नथी संसारनो हेतु छे तेहने मोक्षमार्ग करि माने ते मिथ्यात्व ६, तथा मोक्ष गया नथी तेहने मोक्ष माने

सातुबी नाव्या तो एहवी भावना भाववी जे धन ते श्रावक जे साधुजीने वहोरावीने जिमवा हरवे इम करतां चिंतवी जिमवा बेसे ए श्रावक घरे ते श्रावक कहीइं श्रावकने जघन्य दे वार उत्कृष्टे ७ वार देववंदन करवुं. अरिहंतदेवसिद्ध भगवंतने वंदना करवी तथा नित्य पडिक्कमणुं बे वार करवुं जो नित्य न थावे तो पाखीनो पडिक्कमणुं नियमा करवुं तथा पञ्चक्खाण प्रभातना नोकारशी, अवश्य साधववी, रात्रिचउ विहार तिविहार दुविहार ए रे मांहि एक पञ्चक्खाण अवश्य करवुं ए पांचमा गुणठाणानी स्थितिः जघन्य अंतमुहूर्त्त उत्कृष्टे ऊणी पूर्वक्रोडी वरसनी जाणवी. ए जीव अढार पाप स्थानक आलोइने निर्मल थयो चारित्ररसे ते कहे छे, अथ अढारे पाप स्थान लिखीइं छे. कोइ भव्य जीव अनंत पार्मीने जैनागम सुणतां संसारथी उभग्यो थको मोक्ष सुखनो अभिलाष करे पण आलंबन विना कार्य नीपजवो दुष्कर छे तेथी प्रथम देवतत्त्व श्री वीतराग अनंत ज्ञानमय अनंतदर्शनमय शुद्ध स्वरूपी आत्म रूद्धिभोगी आत्मालंबी आत्मतत्त्वगामी जेहने अवलंबीने अनंता जीव अव्याबाध सुख वरे ते देवतत्त्व तेहने सेववे सर्व जीव संसारभयथी छुटे तथा निर्ग्रथपंथ महाव्रतधारी संवरस्वरूपी एक निर्मल मोक्षमार्गने विषे जेहनी दृष्टि छे, शरीर इंद्रिय, कषाय, जोगनी प्रवृत्तिवासना मुनिराज अतीतकाळ विषय संभारता नथी, वर्त्तमानविषे रमणता नथी, अनागतकाळ विषयनी आशंसा नथी, पोताना अनंतगुणपर्याय निर्मल करवाने उत्कृष्ट उद्यमवंत छे ते साधु महात्मा गुरुतत्त्व धारवा, तथा धर्मतत्त्व जे जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी स्याद्वाद रीते पोतानां गुणपर्याय परणति ते धर्म थी

कन्यालीक १, गवालीक २, भौमालिक ३, थापिणमोसो ४, कुडीसाख नबोले ५ ॥ ३ थूलअदत्तादान विरमण, जे चोरी कीधे राजा दंडे तथा च्यार रुडां माणस ठपको दे अथवा पोताने भय लागे अथवा सामाना जीवने ध्रास्को पडे ते मोटी चोरी करवी नहि ४ थूलमैथुन विरमणव्रत, जे परस्त्री मनुष्यणी तथा तिर्यंचणी तथा देवतानी भोगववी नहीं. पांच इंद्रीना स्वाद घणा मगनपणे सेवे नहीं ५ थूलपरिग्रह विरमण जे धनादिक नव भेदनो परिग्रहनो पच्चखांण करे, ईछा परिमाण करे अथवा पोता पासे जे धन होइं ते राखी बीजानो पच्चरकाण करे ६ दिक् परिमाणव्रत जे च्यार दिश तथा ऊंचो तथा नीचो दिसी जावानो मान करे ७ भोगोपभोग परिमाण व्रत जे नीम साचवे पन्नर कर्मादान न करे, जे पोताने खावेपीवे तथा वस्त्रोनुं मान राखे ८ अनर्थ दंड विमरणव्रत, ते जे मोटका पाप रंगवां खेतर खेडवां, भाठी जे चूना प्रमुखनी करवानां पच्चरकाण करे ९ सामायिकव्रत जे जघन्य २ घडी सुद्धी संसारनां काम मूकी कुटुंब धननो राग तजी कोइथी द्वेष न करवो एहवो समपरिणाम राखवो ते सामायिक कहिइं १० देसावगासिकव्रत जे बे घडीथी च्यार पोहोरथी उणुंकाल दिसनुं मानकरीथीरचित्तसमतापणे रहेवुं ते देसावगासिकव्रत जाणवुं ११ पोषधवृत च्यार पोहर अथवा आठ पोहोर सूधी समतापणे साधुपेरे श्रावकवरते, मन वचन काया समताइं राखे ते पोषधव्रत कहीइं १२ अतिथिसंविभाग बारमुंव्रत जे श्रावक जे ते साधुने विहरावीने पछे जिमवुं जो तेहवा साधुनो योग न मिले तो साधर्मिक श्रावकने जीमाडीने जमवा बेसवुं बेठा पछे थोडीसीकवार साधुजीनी वाटजोवी इम कानां

ओळखावे छे ए पीठिका कही. हवे मूलसूत्रना अर्थनुं व्याख्यान करे छे.

श्रीवर्द्धमानमानम्य, स्वपरानुग्रहाय च ॥
क्रियते तत्त्वबोधार्थ, पदार्थानुगमो मया ॥ १ ॥

अर्थ ॥ श्रीके॰ गुणनी शोभा अतिशय शोभायें विराजमान एहवा श्रीवर्द्धमान अरिहंत शासनना नायक ते भर्ते असंतपणे नमीने नमस्कार करीने पोतानो मान मूकी त्रण योग समावी गुणीने अनुयायी चेतनानुं करवुं तेने नमवुं कहियें तेपण स्वके॰ पोताने अने पर जे शिष्य अथवा श्रोतादिकने अनुग्रहके॰ उपकारने सारु तत्त्वके॰ यथार्थ वस्तुधर्म तेने बोधके॰ जाणवाने अर्थे पदार्थके॰ धर्मास्तिकायादिक छ मूलद्रव्य तेनो अनुगमके॰ साचो प्ररुपवो ते क्रियते के॰ करीयें छैयें.

जगतमां मतांतरीओ द्रव्यने अनेकरुपे कहे छे तिहां नैयायिक सोल पदार्थ कहे छे. वैशेषिक सात पदार्थ कहे छे. वेदांति. सांख्य एक पदार्थ कहे छे. मीमांसक पांच पदार्थ कहे छे. पण ते सर्व मिथ्या छे. तेणे पदार्थनुं स्वरुप जाण्युं नथी अने श्रीअरिहंत सर्वज्ञ भलसज्ञानी ते एक जीव अने पांच अजीव ए रीते छ पदार्थ कहे छे. इहां कोइ पुछे जे नवतत्त्वरुप नव पदार्थ कह्या छे ते केम ? तेने उत्तर जे एक जीव, बीजो अजीव, ए बे पदार्थ तो मूल छे अने शेष सात तत्त्व तो जीव अजीवनो बाधक, साधक शुद्ध अशुद्ध परिणतिनी अवस्था भिन्न ओळखाववाने कर्या छे.

श्लोक ॥ द्रव्याणां च गुणानां च, पर्यायाणां च लक्षणं ॥
निक्षेपनयसंयुक्तं, तत्त्वभेदैरलङ्कृतम् ॥
तत्र तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्यातस्य-
जीवादेर्वस्तुनो भावः स्वरूपतत्त्वम्

अर्थ ॥ द्रव्यना गुणना तथा पर्यायना लक्षण जे ओलखाण ते निक्षेपें करी तथा नयें करी युक्त तत्त्वना भेदें सहित कहुं छुं तत्र के० तिहां जिनागमने विषे तत्त्व जे वस्तुस्वरूप, भेद तेना जूदा जूदा भेदपर्याय तेमां रह्या जे धर्म एटला प्रकारें व्याख्या के० अर्थनुं कहेवुं तेणे करीने यथार्थ व्याख्यान थाय तिहां तत्त्वनुं लक्षण कहे छे. व्याख्यान करवा योग्य जे जीवादिक वस्तु तेनो मूलधर्म ते वस्तुनुं स्वरूप तत्त्व कहियें जेम कंचननुं स्वरूप पीत गुरु स्निग्धतादि तथा एनुं कार्य भरणादिक अने एहनुं फल ते एहथी अनेक भोग्यवस्तु आवे एम जीवनुं स्वरूप ज्ञान दर्शन चारित्रादि अनंतगुण तथा जीवनुं कार्य सर्वभावनुं जाणवुं प्रमुख ए रीतें अभेदपणें रह्या जे धर्म ते सर्व वस्तुनुं तत्त्व कहियें.

येन सर्वत्राविरोधेन यथार्थतया व्याप्यव्यापकभावेन लक्ष्यते वस्तुस्वरूपं तल्लक्षणं तत्र द्रव्यभेदा यथा जीवा अनंताः कार्यभेदेन भावभेदा भवन्ति क्षेत्रकाल भावभेदानामेकसमुदायित्वं द्रव्यत्वम्

अर्थ ॥ हवे लक्षण कहे छे. जे गुणे करी सर्वद्रव्य स्वजातिमां अविरोधिपणे यथार्थपणे १ अतिव्याप्ति २ अव्याप्ति असंभवादि दोषरहित वस्तु जे व्याप्य तेहने विषे व्यापकपणे लखियें

साधुनी नास्ता तो एहवी भावना भाववी जे धन ते श्राव-
जे साधुजीने वहोरावीने जिमवा हस्ये ईंम करतां चितव-
जिमवा देसे ए भावना धरे ते श्रावक कहीइं श्रावके जघन्य
३ वार उत्कृष्टे ७ वार देववंदन करवुं. अरिहंतदेवबिंब भग-
वंतने वंदना करवी तथा नित्य पडिकमणुं बे वार करवुं जो
नित्य न थाय तो पर्वनो पडिकमणुं नियमा करवुं तथा
पच्चख्खाण नमाननां नोकारसी, अवश्य भाववी, रातिचउ-
विहार तिविहार दुविहार ए ३ मांहे एक पच्चख्खाण अवश्य
करवुं ए पांचमा गुणठाणानी स्थितिः जघन्य अंतर्मुहूर्त
उत्कृष्टे उणी पूर्वकोडी वर्षनी जाणवी. ए जीव अढार
पाप स्थानक आलोईने निवर्त्त थयो चारित्रने ते करे
छे, जय अढारे पाप स्थान छांडीइं छे. कोई भव्य जीव अ-
इतर पर्वीने जैनागम सुणतां संसारथी उभगो थको मोक्ष
सुखनो अभिलाष करे पण आलंबन विना कार्य नीपजवो
दुक्कर छे तेथी प्रथम देवतत्त्व श्री वीतराग अनंत ज्ञानमय
अनंतदर्शनमय शुद्धस्वरूपी अन्य [illegible] अन्यादेनी अ-
[illegible] जेहने अवलंबीने अनंता जीव अल्पकाल [illegible]
वरे ते देवतत्त्व तेहने सेववे सर्व जीव संसारथकी छूटे तथा
निर्ग्रंथ महाव्रतधारी [illegible] एक निर्ग्रंथ मोक्षनगरने विषे
जेहनी दृष्टि छे, शरीर इंद्रिय, कषाय, जोगनी गृहवासना
मुनिराज अविनश्वर विषय संसारना नथी. वर्तमानविषे स-
[illegible] नथी, अनागतकाल विषयनी अपेक्षा नथी, दीनाना अनंत-
गुणस्थानके निर्ग्रंथ कहावे उत्कृष्ट [illegible] छे ते गुरु महा-
ना दुःखने धरता. तथा धर्मतत्त्व जे जैन धर्म अहिंसा-
धरेली स्याद्वाद रीते वेदनो [illegible] [illegible] ते धर्म श्री

पोताना आत्माने तथा अन्य संसारी जीवने सिग (स्नेह) साग-
गता, परिग्रहता हिंसादिकनो हेतु थाये तिणे गुणीनी भक्ति
जोडतो निरधिकरणी थाये ते माटे जे अरिहंतनी भक्ति कारजे कर्यो
जे धनादिक ते देवद्रव्य कहिये ते जे खाधो होवे अथवा पोते
विणसाड्यो होवे अथवा उवेख्यो होवे ते सर्व देवद्रव्यना दूषण
थयो ते माटे देवद्रव्य दोषनी आलोयणा करवी ते लखीये छे
जे माहरे जीवे एकेंद्री पृथवीकायपणे जिनबिंबादिकनी आशा-
तना करी अथवा पृथवीकायपणे मूक्या जे शरीर तेहथी जे
गुणी अथवा गुणीनी थापना चैत्यादिक तेहने व्याघात थयो
तथा अपकायपणे पाणिमे चैत्य वहराव्या पड्या जिन बिंब
वहाव्या तथा अग्निकायपणे जे चैत्यबिंबादिक बाल्या होवे,
तथा वायुकायपणे चैत्य पड्यो होवे तथा वनस्पतिकायपणे
जे चैत्य मध्ये रूखडा झाड खापणे ऊगीने चैत्य पड्या होवे,
त्रसकायपणे चैत्यमध्ये मालादिक करी रह्या हवे पंखीने भवे
चैत्य तथा जिनबिंब उपर वेसी असमंजस आचरण कर्यां होवे,
तथा देवद्रव्य मनुष्यपणे जाणि तथा जाण्या विना खाधा
होवे अथवा अवधि वावर्या होवे तथा देवद्रव्य उपर अन्याय हुकम
कर्या होवे, अथवा देवनी वस्तु वावरीने पोताना यश बोलाव्या
होवे, देवद्रव्य दोकडा व्याजे राखे थोडो व्याज भरी आप्यो
होवे अने घणो लाभ लीधो होवे, तथा बीजो पण देवथी
इंद्री सुख यशवडाई प्रमुख जे करी होवे तथा अरिहंत देव
मते सांसारिक कामे मान्या इंछा होवे ते मने वचने कायाए
करी मिछामिदुक्कडं. हिवे माहारे ए कार्य अनुष्ठायगणरूप न
करवुं आज पछी माहारो आत्मा अनंतगुणमयी प्रगट करवानी
रुचि करवी श्रीअरिहंतनो कर्यो मार्ग नहस करी सदहवो,

धणी होवे-तेहनी अण दीधी जे वस्तु लेवी ते २ चोथुं जीव अदत्त जे कोइ जीवे एम कह्यो नथी जे माहरा प्राण हणो अने पोतानेइंद्रीसवाद माटे परजीवना प्राणहणे ते जीव अदत्त ४ तथा प्रशस्त काम करतां कोइ जीवना प्राणघात थाये ते श्रीभगवंते हींसा कही नथी, ते विनय तथा वैयावच मांगण्युं छे ए द्रव्यभाव अदत्तादान त्रिविधि त्रिविधिपणे होवे. चोथे महाव्रते सव्वाओ मेहूणाओ वेरमणं जे द्रव्यथी पांच इंद्रिना त्रेवीस विषे सेवे नही, सेवतां अनुमोदे नहीं, मनुष्य तिर्यंच देवताना विषयनी वांछा न करे, न करावे, अनुमोदे नहीं, भावथी जे आत्मा द्रव्य आत्म गुणनो भोगी छे ते पण करम करवा माटे परभावने भोगवे ते भाव मैथुन छे, ते सर्व परभाव भोगीपणे भोगवे नही, ते आत्मानिः कर्मा करवा माटे परभाव साधनपणे ग्रहे पण अभोग्य अग्राह्यपणे अरमणिक माने जे माहरो आत्मा आत्मानंदनो भोगी ते परभाव अनंत जीवे अनंतवार लेइ भोगवीने वम्यो ते मने ग्रहवो भोगववो घटे नही ए अनंत जीवे अनंतीवार भोगवीजे ऐंठ जड़चल तेहने हुं भोगवुं नहीं इम सर्व परभाव भोगीपणो तजी स्वभाव भोक्तापणे रहेवो ते द्रव्यथी मैथुनना कारणरूपी खंध तथा रूपी खंध मिल्या जीवनो, खेत्रथी मैथुन तीन लोकने विषे इंद्रीना सवादनी ईच्छा, कालथी मैथुन दिवस तथा रात्री, भावथी मैथुन रागथी तथा द्वेषथी ते सर्वथी सेववो नहीं तेहनी वाड नवे पालवी १ वाडे जे थानके स्त्री पशु पंडक रहे ते थानके ब्रह्मचारी रात्रीये रहेवुं नहीं. बीजी वाडे स्त्री साथे हासि तथा कामकथा करवी नहीं, त्रीजी वाडे जे पीट पाटले स्त्री बेठी होवे ते पाटले बे घडी लगे ब्रह्मचारी पुरुषे बेसवुं नहीं, स्त्रीये

तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय हण्या, संताप्या छेद्या भेद्या, तराव्या, परने संक्लेश उपजाव्यो, परगति संकल्पे प्रवर्त्त हे श्रीवीतराग तुमे सर्व जाणो छो. ते हिंसाने धर्म करी मान्यो हिंसामध्ये गम्यो ए रीते हिंसा जो ते ए भावे पाडछे अने-रोभवे जे जे हिंसा प्रवृत्ति करी, करावी, करतां, अनुमोदि मने वचने कायाए ते सर्व श्रीप्रभुजीनीसाखे गुरुसाखे मिच्छामिदु-क्कडं ए प्रथम पापस्थान १ हवे बीजो पापस्थान ते मृषावाद जे जूठुं बोलवुं, लौकिक संसारमध्ये लोकोत्तर धर्मकार्यमध्ये ते विना भाव मृषावाद स्वस्वरूपशुद्ध अध्यात्मभाव पोतानी पर-परिणति पोतानी न माने. शरीर इन्द्रिय धन कुटुंब ते परभाव संसार हेतु दुष्टना मूल तेहने पोताना कहे क्रोधेमृषा बोले, भयेमृषा बोले. लोभेमृषा बोले ते सर्व माहरे जीवे संसार भमतां चार गतिमांहीं जे मृषावाद बोल्या होय. बोलाव्या होय. बोलता अनुमोद्या होय. ते मने वचने कायाए ते सर्व श्रीप्रभुजीनीसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कडं २ हवे त्रीजो पापस्थानक अदत्तादान ते जे परकी वस्तु अणदीधी लेवी ते लौकिक जे संसारि अनपर्णना धनकंचन द्विपद चतुःपद आदिक अणदीधा लेवा. लोकोत्तरमे ते देवगुरुसाक्षण ज्ञानउपगरण चारित्रउपगरण तेहनो चोरवो ते द्रव्य चोरी वस्तुनो लेवो भाव नय जीवपर पुद्गल वर्णादिकनो अन्यनोवि ग्राहकताकर परिणमन करवो हवे, करायो. हवे. करता अनुमोद्यो हवे, ते मन वचन कायाए ते सर्व श्रीप्रभुजीनी साख गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदु-क्कडं ३ हवे चोथो पापस्थान मैथुन जे काली भोगीपने इंद्री विषे पुद्गलना वर्णादिकनो भोगववो लोकोत्तर धर्मलिंगे धर्मी महाजन साधु साध्वी धर्मोपकरण पदवीआदिने विषे इंद्रीनी पो-



सामायक कहीए, तथा जे सामायक मध्ये संज्वलनना तीव्रोदये जे आकरा अतिचारे अथवा बार कषायने उदये असंजमपरिणाम फरसे जे पूर्व पर्याय छेदीने अभिनव निर्मल पर्यायनो अंगीकार करवो ते छेदोपस्थापनीय कहीये, अने छेदोपस्थापनीयचारित्र भरत ५ तथा ऐरवत ५ ते मध्ये प्रथम चरम तीर्थंकरना साधुजीने होवे तथा तीर्थंकर तथा गणधरजीना शिष्य नव पूर्वथी उपरांत श्रुतवंत मध्य युवानवयि प्रथम संघयणे अढार मासनो उपगार ते अप्रमादी निद्रा रहित नवजणा वनवासी थका जे तप करे ते परिहार विशुद्ध चारित्र कहिजे, दशमे गुणठाणे शुक्लध्यान सुक्ष्म लोभनो उदय छे ते सूक्ष्म संपराय चारित्र कहिजे, तथा सर्वथा कषायनो उदय नथी ते यथाख्यात चारित्र कहीये ते मध्ये ११ मे गुणठाणे उपशांत यथाख्यात छे १२, १३, १४ मे गुणठाणे क्षायिक यथाख्यात छे, हवे सातमो अप्रमत्त गुणठाणो लिखीये छे, छठे गुणठाणे जे भाव साधुजीना कह्या ते सर्व होवे पण पांच प्रमाद न होवे, ते माटे अप्रमाद ए छठे गुणठाणे वरततो साधुजन शासनने कामे लब्धि फोरवे पण सातमे गुणठाणे वरततो साधु लब्धि न फोरवे, एहनी स्थिति जघन्य एक समे उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तनी छे. छट्टे तथा सातमे गुणठाणे मिलीने साधु देशे उणी पूर्व कोडी रहे. श्री भगवती सूत्रे ए बे गुणठाणानी देशे उणी पूर्व कोडी स्थिति पूरी कही छ. ते व्यवहार नये छे समे तथा बे समे मध्ये गुणठाणो पलटे ने गवेख्यो नथी तेमाटे अंतर्मुहूर्तनी स्थिति कही. छट्टे बे गुणठाणे सामायक तथा छेदोपस्थापनीय तथा परिहार वि-शुद्धि चारित्र छे, तथा सातमे गुणठाणे साधु लब्धि फोरवे नहीं अने छट्टा गुणठाणाना साधु जिनशासनने कामे लब्धि

पापस्थान मान. अहंकार रूपनो. धननो. राज्यनो, परिवारनो, बलनो. तपनो, विद्यानो, कुलनो तथा गुणी नहीं ते गुणीनो मान आचार्य उपाध्याय साधुपणानो अभिमान संसारकार्य यशाभिलापे मान धर्मकार्ये मंदार्थिन्य प्रमुखनो कराव्या रखवाल्यानो मान कर्यो हुवे, लौकिक वाह्यलोकोत्तर गुणनो गुणीथी, महत्व कर्यो हुवे ते सर्व मने वचने कायाइ करि कर्या हुवे कराव्यो होवे वल्ला अनुमोद्यो होवे ते श्रीप्रभुजीनी साखे आत्म साखे मिछामिदुक्कडं ७ हवे आठमो पापस्थान माया कपट निपडि वक्रता जे कोइथी वचननो द्रोह ठगाई करवी ते माया अलौकिक संसारी संबंधी लोकोत्तर आचार्य साधु साधर्मिकथी धर्म पद्धतिनो कपट कर्यो ते द्रव्यतः कोइने वंचवो भावतः आर्जवता रहित परिणामे जे माहर जीवे कर्यो कराव्यो करता अनुमोद्यो ते मने वचने कायाये करी श्रीजगवत्सल परम करुणानिधिनी साखे गुरु यथार्थवादिनी साखे, आत्म साखे मिछामि दुक्कडं ८ हवे नवमो पापस्थान लोभ, लालच परिणाम इच्छा गृद्धता ते लौकिक बाह्य पोताने इष्ट वस्तु वेहनी लालच जे घणी जडे इंद्रीय सुख प्रमुख आवे एहवो परिणाम ते लोभ ते लोकोत्तर धर्मलिंगे धन विषय जसनो लाभ वांछे तथा द्रव्यतः कर्युं जे भावतः परभावाभिलाप सर्व ते जे माहारे जीवे कर्यो कराव्यो करता अनुमोद्यो ते मने करि वचने करि कायाये करि श्रीप्रभुजीनी साखे गुरु साखे आत्म साखे मिछामिदुक्कडं ९ हवे दसमो पापस्थान रागप्रीत परिणाम वाल्हापणे जीव पोताने विषे पोषणीपे लौकिक तथा लोकोत्तरथी द्रव्य तथा भावथी ते राग परणति अनंती आत्माथी उपनी अन्य द्रव्यने विषे रागनी रीजते माहारे जीवे करी

पणा करवी ते वळी द्रव्यथी वेद ३ उदये जे कामविकारीपणे भोगविलासादिक, भावथी आत्मपरणति परभोगीपणे पर वस्तु अशुचिपरिणाममध्ये रमणीकता ते माहारे जीवे, एकेन्द्रिपणे वेरिन्द्रिपणे, तेरिन्द्रिपणे, चोरिन्द्रिपणे, पंचेन्द्रिपणे फरसन १ रसन २ घ्राण ३ चक्षु ४ श्रोत्रेन्द्रिय ६ इन्द्रीना त्रेवीस विषये वांच्छ्य। सेव्या सेवाया सेवता अनुमोद्या होइं ते मन वचन कायाए करी श्रीप्रभुजीनी साखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कडं ४ हवे पांचमो पापस्थान परिग्रह जे कोई आत्मधर्मथी अन्यभाव संरक्षणा परिणामे राखवा ते लौकिक परिग्रह द्विपद चतुःपद धनधान्य गृहखेत्र वस्त्रप्रमुख, लोकोत्तर परिग्रह सम्यक्त्वनो हेतु मोक्षकारण श्रीअरिहंतनो चैत्य तथा जिनबिंब तथा ज्ञाननो कारण पुस्तक नवकारवाली प्रमुखचारित्रना उपगरण तेहने ममत्वभावे गृहे द्रव्य परिग्रह पुद्गल खंधादि ममत्वभावे ग्रहे भावपरीग्रह क्रोधादिक अशुद्ध परिणाम परभावस्वामित्व-ग्राहकत्वादिक परिणति ते परिग्रह राख्यो हवे परद्रव्यनी इच्छा करे हवे, परिग्रह सुख मान्यो हवे, परिग्रह वासते धर्मआचरण कर्यो हवे ते परिग्रह पापस्थान मने वचने कायाए करी सेव्यो होये सेवनां अनुमोद्यो होवे ते श्रीअरिहंतनी साखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कडं ५ हवे छट्ठो पापस्थानक क्रोधना परिणाम क्षमानो रोधक ने लौकिक भाई पिता प्रमुख कुटुंब उपर तथा अन्य जीव उपर क्रोध परिणाम लोकोत्तर देवगुरु सार्धमिक उपर क्रोध परिणामते द्रव्यतः तथा सकटोग्ना भाव तथा रुद्र परिणाम ने जो कोई रीतनो अप्रशस्त क्रोध कर्यो होवे कराव्यो होवे करता अनुमोद्यो होवे तेथी निःशुकपणे निरंजन देवनीसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिछामिदुक्कडं ६ हवे मानने

एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तनी छे. ९ दशमो गुणठाणो सूक्ष्म संपराय इहां सूक्ष्म संजलनो लोभ उदय होवे. इहां बे जातना जीव पामीये, उपशम श्रेणि तथा क्षपक श्रेणि क्रमने उपशमावे द्वेषखपावनो जाए क्षपकश्रेणि कर्म मोहनीने खपावे. ए गुणठाणे एक सूक्ष्म संपराय चारित्र होवे, ध्यान शुक्ल होवे परिणाम निरमल होवे, ते अवेदी छे एहनी स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तनी छे. १० इग्यारमो गुणठाणो उपशांतमोह तिहां जे जीव उपशमश्रेणि आरुढेलनोवोदना परिणामस्थान मोह कर्मनी प्रकृतिउपशमावतो जाय. तेहनो उठाणचुम्यीज उपशमावतो छे ते नवमे आठी मोहप्रकृति उपशमावी दशमे लोभ उपशमावीने कषायना उदयहीन छे ते इग्यारमे आवे ते यथाख्यात चारित्र पामे. एहने चोथि [illegible] क्रिया आगे एकदेशियादिकी क्रिया रहे. [illegible] [illegible] ए बे [illegible] छे हेतु न [illegible], [illegible] एक [illegible] [illegible] छे. ध्यान शुक्ल छे ए गुणठाणे जे जीव [illegible] [illegible] चोथे गुणठाणे आवे ते [illegible] [illegible] [illegible] थाय. अथवा कोइक जीव अग्यारमे गुणठाणे [illegible] कोइ एक जीव अंतर्मुहूर्त रहे. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

बोलवो ते बोल्यो होवे बोलाव्यो होवे बोलनाने अनुमोद्यो होवे ते मन वचन कायाए करीने श्रीप्रभुजीनी साखे गुरु साखे आत्म साखे मिछामिदुक्कडं १४ पनरमो पापस्थान रति तथा अरति उपजे असाता दुःखवियोग हानि प्रमुख उपजे ने अरति आकुलता किहांइ सुहाय नही ते अरति लौकिक विषेनी ऊणी असुहामणे तथा लोकोत्तर आगम गुणतां देववांदे तप सामायकपोसह भणवो प्रमुख ते मध्ये अरति करि होवे तथा रति, इंद्री विषे–मध्येरीझ सुहामण रक्तता विश्राम ते रति लौकिक तथा लोकोत्तर धन्य पुस्तकादिकनी शुद्धता देखीने जे इंद्री विषे रीझ पांमे ते रीझ ए नवां कर्म बांधवाने आकरिचिकणना जे माहरे जीवे करी, करावी, करतां अनुमोदी ते मने वचने कायाये करी श्रीपरमात्मानी साखे गुरुनी साखे आत्म साखे मिछामिदुक्कडं १५ हवे सोलमो पापस्थान पैशुन्य पारकी चाडी करवी ते जे द्वेषे थाये आगल्या जीवनेकष्ट अमानानो हेतु राजा तथा आचार्यादिक अधिक आगले तेहना छता अथवा अछता दोष कही तेहनो आश्रय भांजवो ते पैशुन्य कहिये ते जे माहारे जीवे करयो कराव्यो करतां अनुमोद्यो मनेवचने कायाए करी श्रीप्रभुजीनी साखे, आत्मसाखे गुरुसाखे मिछामिदुक्कडं १६ हवे सत्तरमो पापस्थान माया मृषा कपटे परने ठगवा वास्ते मिठ्ठं बोले, कोइ कपटलिंग बगलानी पेरे देखाडीने गुणी नहि ने गुणी रीते वंदावयो, पूजावयो मनावयो, कुरावयो अथवा लौकिक वचने व्यापार प्रमुख मध्ये कपटे मृषा बोले. तथा धर्मवाले जैनागम मध्ये कपट गिने प्रवृति करी ने लिंगी जीव प्रमुख करतां ने जे माहारे जीवे करयां कराव्यां करतां अनुमोद्यां ते मने वचने कायाए करी श्रीप्रभुजीनी साखे

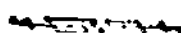
करावी करतां अनुमोदि ते सर्व मने करी वचने कायाए करी श्रीअरिहंतनी साखे गुरुनी साखे मिछामिदुक्कडं १० हवे अग्यारमो पापस्थानक द्वेष अप्रीति परिणाम जीव तथा अजीव उपर पोतानी विषयादि इष्टताये अपूरातां जे अमृद्गामणां ते लौकिक उपर द्वेषः तथा लोकोत्तर उपर द्वेष जे कर्यो होवे कराव्यो होवे करताप्रत्ये अनुमोद्यो होवे ते मने वचने कायाये करी ते श्रीसर्वज्ञनी साखे गुरु साखे मिछामिदुक्कडं ११ हवे बारमो पापस्थान कल्ह विढवाड कोईथी द्रव्य वासने जस व-डाई वासने आक्रोश कुवचनादिक करवा तथा धर्म मल्वेना-मार्ग वासने कुयुक्ति पोतानो मत थापवाने जे कलह कर्यो प्रशस्त करतां अप्रशस्त थयुं होवे ते सर्व मने वचने कायाए करी कर्यु कराव्युं अनुमोद्युं ते देवसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कडं १२ तथा तेरमो पापस्थान अभ्याख्यान कुडोआल देवोद्वेषे तथा हास्ये गुणीना गुण ओलववा, आगलाने सहसा-त्कारे हिणो वचन कहेवो तथा वस्तुगते लोपीने फरकार क-रवो ते लौकिक अन्यजीवने संमार्ग रीते लोकोत्तर अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु साधर्म्मिक देशविरति समकिती तेहनी औदयि चाल देखी कलंक देवो ते अभ्याख्यान कर्यो होवे कराव्या होवे करतां अनुमोद्या होवे ते मने वचने कायाए करी श्रीप्रभुजीनीसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कडं १३ हवे चउदमो पापस्थान परपरिवाद परकी निंदा ते द्वेषे पारका अवगुण वखा, कोइना अपजस वासनी पारकी कुथली करी अथवा साचा मनुष्यने खिसाणो पाडवा वासते जे निंदा करी ते मध्ये लौकिक ते जे संमार्ग जीवनी लोकोत्तर गुणी जैनदर्शनवंतनां मार्गानुसारियी माडी सिद्धभगवान सुधी जे अवर्णवाद

अतिशय नहोवे ते छेडे आवरजीकरण करे पछी जो आऊखो अने बीजा करम सरखा होवे तो केवली समुद्घात न करे, अने जो आऊखेथी करम घणा होवे तो केवली समुद्घात करे तेहने आठ समयलागे. ए तेरमा गुणठाणानी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्तनी छे उत्कृष्टे देशे उणीपूर्व कोडी वर्षनी छे

१३ चउदमे गुणठाणे अयोगी केवली ते जे जीव तेरमे गुणठाणे जोगरोध करवा मांडे, सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाते शुक्लध्याननो त्रीजो पायो ध्यावतो ते चउदमे गुणठाणे चढे तिहां प्रथमथी बादर मनोजोग रोके पछी बादर वचनजोग रोके पछी बादर कायाजोग रोके पछी सूक्ष्म मनोयोग रोके पछी सूक्ष्म वचनजोग रोके पछी सूक्ष्म कायाजोग रोके शरीरहिन थाए जेटलो देहमान होवे जघन्य बे हाथनो उत्कृष्टो पांचसे धनुषनो त्रीजे भागे घटाडे, तेवार जघन्य बत्रीस आंगुलनी उत्कृष्ट तीनसेतेत्रीस धनुष बत्रीस आंगुलनी अवगाहना रहे. तेवारे आत्मा अयोगी अक्रिय, अलेसी, अनाहारी, अशरीरी, शुक्लध्याननो चोथो पायो थईने अघाती करम च्यार, वेदनीकर्म १ आउखोकर्म २ नामकर्म ३ गोत्रकर्म ४ नो क्षय करीने मोक्ष जाय ॥ इतिश्री चउदमुं गुणस्थानकं संपूर्णम् ॥

पोताना आत्माने तथा अन्य संसारी जीवने सिग(स्नेह)सरा॰
गना, परिग्रहता हिंसादिकनो हेतु थाये तिणे गुणीनी भक्ति
जोडतो निरधिकरणी थाये ते माटे जे अरिहंतनी भक्ति कारजे कर्यों
जे धनादिक ते देवद्रव्य कहिये ते जे खाधो होवे अथवा पोते
विणसाड्यो होवे अथवा उवेख्यो होवे ते सर्वे देवद्रव्यना दूषण
थयो ते माटे देवद्रव्य दोषनी आलोयणा करवी ते लखीये छे
जे माहरे जीवे एकेंद्री पृथ्वीकायपणे जिनबिंबादिकनी आसा॰
तना करी अथवा पृथ्वीकायपणे मृत्तका जे शरीर तेहथी जे
गुणी अथवा गुणीनी थापना चैत्यादिक तेहने व्याघात थयो
तथा अपकायपणे पाणिमे चैत्य वहराव्या पड्या जिन बिंब
वहराव्या तथा अग्निकायपणे जे चैत्यबिंबादिक बाल्या होवे,
तथा वायुकायपणे चैत्य पड्यो होवे तथा वनस्पतिकायपणे
जे चैत्य मध्ये रुखडा झाड खापणे उगनि चैत्य पड्या होवे,
त्रसकायपणे चैत्यमध्ये मालादिक करी रह्या हुवे पंखीने भवे
चैत्य तथा जिनबिंब उपर बेसी असमंजस आचरण कर्यां होवे,
तथा देवद्रव्य मनुष्यपणे जाणि तथा जाण्या विना खाधा
होवे अथवा अवधि बावर्या होवे तथा देवद्रव्य उपर अन्याय हुंकम
कर्या होवे, अथवा देवनी वस्तु वावरीने पोताना घर शोभाव्या
होवे, देवद्रव्य शोकडा व्याजे राखे थोडो व्याज भरी आप्यो
होवे अने घणो लाभ लीधो होवे, तथा बीजो पण देवथी
इंद्री सुख मगावडाई प्रमुख जे करी होवे तथा अरिहंत देव
प्रते सांसारिक कामे मान्या ईडा होवे ते मने वचने कायाए
करी मिच्छामिदुक्कडं. हिवे माहारे ए कार्य अशुद्धाचरणरूप न
करवुं आज पछी माहारो आत्मा अनंतगुणमयी प्रगट करवानी
रुचि करवी श्रीअरिहंतनो कर्यो मार्ग तहत्त करी सद्दहवो,

श्रीमद् देवचन्द्र प्रथमभागनुं अशुद्धि शुद्धिपत्रक.



पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
१	७	सागरोपन	सागरोपम
२	२५	जीवाने	जीवोने
३	८	थीजुं	बीजुं
४	१	पहेलो	पहेला
६	१४	अमे	अने
८	७	प्रमाणंतरथ	प्रमाणतरथंय
८	१८	शिप्य	शिष्य
१७	१	संग्रह	संग्रह
१९	१०	द्रपयुक्त	द्रपयुक्त
२०	७	निश्चप	निश्चय
२०	१९	अनगत	अनागत
२१	२५	घाडा	घोडा
२४	५	नार्गाहि	नार्गाहि
२४	९	विना	विणा
२४	१७	प्रवृति	प्रवृत्ति
२५	१५	सुतत्यो	सुत्तत्थो
२५	१५	निशुत्ति	निज्जुत्ति
२५	१९	सुतत्यो	सुत्तत्थो
२५	२३	सुतत्यो	सुत्तत्थो
२९	१४	संसारे	संयारे
३२	२१	भांग	भांगो

पृ	पं	अशुद्ध	शुद्ध
३५	५	[illegible]	[illegible]
३५	२३	[illegible]	[illegible]
३६	६	[illegible]	[illegible]
३७	२४	[illegible]	[illegible]
३८	६	[illegible]	[illegible]
४१	१०	करें	करो
४२	८	[illegible]	[illegible]
४४	२४	[illegible]	[illegible]
४६	१८	[illegible]	[illegible]
"	२५	[illegible]	[illegible]
५०	१८	[illegible]	[illegible]
५३	८	[illegible]	[illegible]
५६	१४	[illegible]	[illegible]
५७	२५	उतार	उतार
५८	३	[illegible]	[illegible]
"	८	उत्पातन	उत्पातमन
६०	१०	[illegible]	[illegible]
६१	२	[illegible]	[illegible]
६३	५	अंजेअंजे	अंजे
६७	१२	[illegible]	[illegible]
"	९	[illegible]	[illegible]
६८	१३	सहा	सहारा
६९	३	[illegible]	[illegible]

इत्यादि ते ते वस्तुनुं लक्षण कहिये. ते लक्षण बे प्रकारनुं छे
एक नियत्त असाधारण अने बीजुं वस्तुनां छो जे स्वरूप
ते. ए बे भेद छे तेमां जिणथी तो नामनुं लक्षण ते सामा-
न्यरूपते ते बीजुं असाधारण लक्षण छे ए बन्ने लक्षणे जे
ओळखाय ते ते साधारण छे अने जे वस्तुने एने ओळखाय
ते असाधारण कहिये. जेम चेतनालक्षण ते जीव. तथा चेत-
नारहित ते अजीव इत्यादिक लक्षणे लक्षणस्वरूप जाणवो एम
अनेक रीते वाणी जेवी. जेमाट हवे भेदनुं स्वरूप कहे छे.
वस्तुस्वरूपभेदाः केः जे वस्तु कथन वस्तु होय तेहना चार
भेद छे तत्र द्रव्यभेदाः० जिहां द्रव्यना भेद मूलगाने गणिया
ए जिहांथी जुदा छे ते द्रव्यनो भेद कहिये. यथाः० जेम
सर्वे जीवद्रव्यपणे सरखा छे पण जीव जीव प्रते पोतपोतानी
गुणपर्यायनी भिन्नतो जुदो छे कोइनुं कोइमां मिले नही
नहि ते माटे जीव अनंता द्रव्यपिंडथी हवेथी अजीव अनंता
द्रव्यपिंडरूपे एम पुद्गलपरमाणु पण स्कंधरूपथी लपिया पण सर्व
पण जुदो जुदा द्रव्य छे ते कोई पुद्गलने पुद्गल छे कोइ कोइ
रूपे नहीं तेम तसे बने नहीं ए सर्व द्रव्यथी भेद जाणवो.

हवे क्षेत्रभेदाः क्षेत्रथी भेद ते जे विचारे तो जुदो क्षेत्र
अवगाहीने रहे जेम जीवादि द्रव्यना प्रदेश अवगाहनाने जुदा
छे पण द्रव्यने जुदा पडे नहीं. तेमाटे एक गुणपर्याय सर्व
प्रदेशे अनंता छे ते गुणपर्याय एक प्रदेश मूकी बीजा प्रदे-
शमां जाय नही. धर्मास्तिकाय प्रमुखनो अने पदेशनो अवगाह
भिन्नपणे छे पण ते पर्याय अनंता भिन्न छे अने ते अनंता
पर्याय प्रदेशे एक सर्वे रहे ते कारणे जुदा रहे छे. धर्मास्तिकाय
प्रदेश एम सर्वे छे ए क्षेत्रथी भेद छे.

एकवस्तुमां उत्पादव्ययरूप पर्याय पलटवानुं मान ते समय कहियें. जेटलो उत्पाद व्यय तथा अगुरुलघुनी हानिवृद्धिने परिणमतानुं मान ते समय कहियें अने तेथी बीजी परिणमनता थइ ते बीजो समय एम जे अनंति अतीतप्रवृत्ति थइ ते वर्त्तमानप्रवृत्तिनी परंपरारूप जाणवी अने आगामिक थाशे ते कार्यरूपें योग्यतारूप जाणवी. अतीतकालनो तथा अनागत कालनो कोइ ढिगलो नथी अने पिंडरूप पंचास्तिकायनुं वर्तना रूप जे परिणमन तेनुं मान ते काल कहियें तेने समयभेद ते बीजो कालरूप भेद कहियें ते जे पर्याय भिन्न भिन्न कार्य करे ते कार्यभेदें भिन्नपणो छे ते माटे चोथो भावथी भेद कहियें. हवे द्रव्यनुं लक्षण कहे छे ते क्षेत्रकाल अने भावनां जे भेद ते सर्वनुं एकठा मिलिने पिंडपणे एकाधारपणे समुदायीपणे रहेवुं ते द्रव्य कहियें.

> तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रतिप्रदेशे स्वस्वएककार्यकरणसामर्थ्यरूपा अनन्ता अविभागरूपपर्यायास्तेषां समुदायो गुणः ॥ भिन्न कार्यकरणे सामर्थ्यरूप भिन्नगुणस्य पर्यायाः एवं गुणा अप्यनन्ताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया अविभागरूपाः अनन्तास्तुल्याः प्राय इति ते चास्तिरूपाः प्रतिवस्तुन्यनन्तास्ततोऽनन्तगुणाः सामर्थ्यपर्यायाः

अर्थ ॥ हवे गुणनुं लक्षण कहे छे तिहां गुणानामाश्रयो-द्रव्यमिति वचनात् एकद्रव्यने विषे स्वस्वके० पोतापोतानो एक जाणवा प्रमुख कार्य करवानुं जेने सामर्थ्य छे एवा अनंता सूक्ष्म जेनो अविभागके० बीजो छेदन थाय एवा विभागनो

[illegible]

८ ४ ६ १२ १७ १३ १३ १४ १० २२ १६ ८ १ ५ ७ २ ६ २० १ १ १४ १७ ४ १६

८ ७५ । । ७६ ७६ ८० ८८ ६० ६० ६१ ६३ ६७ ६७ ६७ १०० १०० १०० १०३ १०३ १०३ १०३ १०५ १०५

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
१०६	१६	पर्यायसत्वेन	पर्यायासत्वेन
१०७	५	संकेतिकेन	सांकेतिकेन
१०७	१९	,,	,,
११०	१९	थर्का	थकां
१११	२	आण्या	आण्युं
१११	३	गुपर्याय	गुणपर्याय
११२	२	तृतयो	तृतीयो
११६	४	स्याद्राद्द	स्याद्वाद्
११८	९	प्रदेशादिनां	प्रदेशादीनां
११९	७	कार्य	काय
१२०	२२	उत्पादव्यय	उत्पाद
१२२	११	घटापट्यादि	घटपटादि
,,	१४	घटा	घट
,,	१९	दिप्यवि	दिप्यपि
१२५	४	संयु	संयुक्त
१२६	९	उत्पाद	उत्पादः
१२९	५	गुणीलक्ष	गुणिलक्षणः
१३०	९	सोने	सोनें
१३१	९	उत्पित्न	उत्पित्र
,,	१२	प्रकाश	प्रकाश
,,	१६	छिन्न	छिन्न
१३५	९	पूर्ण	पूर्ण
१३६	२५	योग्यकत्व	योग्यत्वात्व
१३७	१२	धर्म	धर्म

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
"	११	सुप	सुप
"	१३	जीपदया	जीवदया
४८७	१८	मिथ्याग्रय	मिथ्याग्रह
"	२५	सुपयी	सुखयी
४८८	२४	केर	करे
४९०	२४	स्ताने	खाने
४९३	२२	साझ	साथे
"	५	धम	धर्म
४९९	३	मुर्झाय	मुझाय
"	२२	पठ्या	संख्या
५००	१	मन वशील	मानव शील
"	१०	विंध्योजात	विंध्यो न जात
"	११	भारण	कारण
५०२	९	केकीर	केकी
५११	१९	वृप	वृक्ष
५१४	१५	रमणिक	रमणिक
"	"	आदेय छे	आदे अछे
५१५	४	गंधनेमे	गंधनेमे
५१६	२१	सुद्रा	मुद्रा
५१८	१०	छे	छ
"	१२	द्वे	देह
५२०	८	निन	नती
५२१	३	तास	नाग
५२८	२०	उदयावलि	उदयावलि

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
१३९	१०	सँरेंवा	सँवेरेवा
१४२	१०	पूर्ण	पुरुष
"	१२	तत्र	तत्र
१४३	८	परगुण	परगुण
१४४	२०	निवृत्ति	निव्र्वृत्ति
१४५	७	जानिज्जा	जानिज्जा
"	"	निरक्खेवंनिरिखवे	निरकेवंनिरिकवे
१४६	६	पज्जाया	पज्जाया
१४७	१६	स्पर्शः	स्पर्श
१५१	२	ज्ञानी	ज्ञान
"	६	वर्त्तन	वर्त्तमान
"	७	तेम	ते
१५२	८	वस्तु	वस्तु
"	२१	जानाः	जानः
१५३	१२	विप	विपे
१५६	६	लोकिका	लौकिका
"	"	त्रैया	त्रिया
१५७	२०	द्वादशसार	द्वादशार
"	२३	ऋजुं	उज्जु
१५८	१	अवक्रम	अवक्रं
"	५	वक्र	वक्र
"	५	नदेव	तएव
"	७	मार्म्मीय	मार्म्मीयं
"	८	ऋजु	ऋजुः

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
५२१	४	जीवे	जावे
५३१	१५	शिशि	शशि
५४७	१६	सथिर	अथिर
५५१	१२	वाचा रे	वचारे
५६०	१०	सवर	संवर
५६१	१६	षोडश	षोडशदळ
५६६	८	व्यय	अव्यय
"	१३	पानपान	पानपात्र
"	१४	गुणराणा	गुणस्थाण
५६८	१	अठेय	अठय
५६९	९	वाय	क्षय
५७१	११	निदे	निचे
५७२	१५	आदरे	आदर
"	२४	धान	धात
५७३	४	भडता	जडता
५७५	१०	मनपर्वे	मनपर्यव
५७९	४	कुमकरण	कुंभकरण
"	१०	षष्टमो	षष्ट:

कर्मग्रन्थ:

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
५८५	१६	विरोष	विशेष
५८९	१२	उतन	ओतन
६००	७	ठंवर्ग	ठंवंग
६०२	२२	सस्थान	संस्थान

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
१५८	९	तस्यार्जु	तस्यर्जु
,,	१२	गाही	ग्गाही
,,	१३	ति	त्ति
,,	१७	ऋजु	ऋजु
१६२	९	इन्द्रन	इन्दन
,,	१०	शक्रन	शकन
१६३	११	ध्यंज्यते	व्यज्यते
,,	१३	वाच्यर्नोथन	वाच्येनार्थेन
१६५	१४	ऋजू	ऋजु
,,	१२	देशा	दंशा
,,	२१	भेको	मेकः
१६६	२०	पणे	पणो
१६९	६	दिनयांतर	दीन्यवांतर
१७४	११	मश्ति	मश्त्ति
,,	२१	लंबि	लंबी
१७८	२०	सदृदया	सादृश्या
१८१	२५	दश	दस
१८३	१८	पण	तया
,,	१०	निज्झरा	निज्जरा
१८४	२१	अयोगी	अयोगि
,,	२२	नांबाधनिरूपाधिनि-धिरूपं चरित्रानयाशा-	नाबाधनिरुपाधिति-रूपचरितानायासा
१८५	२४	पयाट्ठिआ	पइट्ठिआ
१८६	४	उन्ववाइ	उववाइ

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
६२८	७	नम्यो	नम्या
६३२	१	तीर्थकरने	तीर्थकर न
६३४	५	अपर्याप्तस्थामें	अपर्याप्तजवस्थामें
६३९	६	मार्गगामें	मार्गगामें
६४४	५	कमुरल	कम्मुरल
६४६	१०	मय	मइ
६४८	५	किण्हा	किण्हा
६४९	३	जीवमें	जीव
"	१२	मार्गणा	मार्गणामें
"	१५	तिरिं	तिरि
६५३		असत्याअमृषा	असत्यामृषा (सर्वत्र)
६५८	१८	पहेली	पहेलो
"	१८	मनोयोग	मनोयोगे
६७३	५	लद्दि	लब्धि
६८१	१	मध्यय	मध्यम
६८३	९	नवामा	नवमा
"	१३	चतुर्थो	चतुर्थः
"	१३	कर्मग्रन्थ	कर्मग्रन्थः
"	१४	समेतं	समेतः
"	१४	समासम्	समासः
६८४	१५	सद्दारं	सद्दारं
६८८	१३	निदो	निद्दो
"	१४	अमुवोदयी	अमुवोदयी
७१०	२०	आवलीनी	आवलिनो

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
"	५	वग्गो	वग्ग
"	१८	तन्नुशिप्य	ताच्छिष्य
१८८	७	द्वादशसार	द्वादसार
"	१४	उवज्झाय	उवज्झाय

श्रीज्ञानसार.

१९२	१७	उवेक्षते	उवेक्ष्यते
१९५	२०	शरी	शरीर
१९६	९	समभिरूढेनः	समभिरूढनः
"	१०	एवंभूतेनः	एवंभूतनः
"	१७	समाधान	समाधाय
१९७	५	साधनत्विमनोः	साधनरुचिमनो
"	११	स्थाप्य	संस्थाप्य
"	१५	द्रव्यं	द्रव्ये
१९८	१	आत्माननंतानंदसंप-न्नमयं	आत्मानमनंतानं-दसंपन्नं
"	२१	निक्षेपानां	निक्षेपाणां
२००	२१	तेज	तेजो
२०१	८	चारित्रादिनां	चारित्रादीनां
२०४	७	माप्नोति	सुखं माप्नोति
२०६	२	पूर्ण	पुरण
२१३	२२	अगमनो	आगमनो
२१५	१५	मम	मम न

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
२१६	१४	ज्ञानपात्रः	ज्ञानपात्रं
२१८	१	द्रव्येन	द्रव्ये
,,	२	असंगाहि इत्यादि	....
,,	५	आश्रव	आस्रव
,,	११	वर	नर
,,	२१	अत	अतः
२२०	५	ज्योति	ज्योतिः
,,	६	मिन्तं	भिन्नं
२२१	१९	हेतु	हेतुः
२२३	२	तत्र	तन्न
,,	१३	विश	विश्ञ
२२९	८	उपशांताद्वा	उपशान्ताद्वा
,,	१४	अध्यवसानानि	अध्यवसायमनि
२३२	२१	आगाव्रलेन	आगालेन
२३३	२१	शुद्धात्मानंदने	शुद्धात्मनंदने
२३६	८	परिष्ट	पटिष्ट
२३८	२१	अस्त्र	अश्व
२३९	१२	अतीत	अनागत
२४२	८	जइतव्यं	जेतव्यं
२४३	१	तां	स्तां
,,	११	मुह्यतां	मूढतां
२४६	१९	भृंगो	गंधासक्तो भृंगो
२५३	६	स्वरुपं	स्वरूपे
२५६	२०	द्वंद्रं	द्वंद्व

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८१७	२	वेद	वेदनीय
८१८	२४	परिसहोपनाणनाणं	परिसहपन्नाअंताण
८१९	१	चेत्र	चेल
"	२	पुरस्सक्कारो	य सम्मत्तं
"	६	सप्टं	सट्टं
८२०	२५	पुरिससिहाणं	पुरिससिंहाणं
८३५	६	कम्म	कम्मं
"	९	अवन्न	अवन्नं
८३७	१६	जीव	अजीव
८३८	५	संमयोर्ध्वं	समयोर्ध्वं
"	६	सम्यक्त्वोपशमिकं	सम्यक्त्वौपशमिकं
"	१९	पिछइ	पिच्छइ
८३९	२२	गणि	मणि
"	२४	रयण	रयणं
"	२४	वेअइड	म्रेपट्ठ
८४०	१४	निंजर	निंजरा
"	२२	सव्वट्ठाओ	सव्वट्ठाओ
८४१	३	देओनी	देवोनी
८४२	१०	अत्येन्द्रि	अतीन्द्रिय
"	१६	अनावगाहि	अनवगाही
"	२२	द्रव्यपणे	द्रव्यपने
८४३	१३	सत्य	सत्त्व
"	१४	असत्य	असत्त्व
"	१७	स्वमदेश	समदेश

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८४७	१५	तंस	तंसय
८५३	१६	उन्द्रव	उन्द्रव
८५४	९	वनुनि	वनुष्मि
"	९	छउउन	छउम
"	२१	अट्टं	अट्टण्णं
८६०	२१	जीसने	जीव
८६२	११	मिथ्यात्वनय	मिथ्यात्वना
८६४	३	बनाप	बनासा
"	४	अजियं	नाजियं
"	४	धरिनं	धरितं
८६६	१५	सम्यक्त्व	सम्यक्त्व
"	१७	समकिन	समकित
"	२०	क्षपोय	क्षयोपशम
८६७	१९	रतोके	तोके
८६८	८	थीस	थीस
८७०	१८	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व
"	२४	सुरव	सुवर
८७१	३	मूनि	मूषि
"	८	निकर्त्तनं	नियत्तंनं
"	९	दउ	हलं
"	१६	तपयत्तो	तव्वतं
८७२	१०	इनौ	इतौ
"	११	दिनहूनौ	दिनहूवे
"	१३	इर्यानदिशि	इर्यान्दिशि

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
३२५	२२	निर्वार	निर्वारे
३२९	९	श्रितं	सृतं
"	१८	भद्रः	भद्र
३३०	३	आत्मी	आत्मीय
३३१	२४	तहा	महा
३३२	१	कार्तस्वरद्	कार्तस्वरवद्
३३३	५	अनवछिन्ना	अनवच्छिन्ना
"	१४	दीनतां	दीनता
३३४	४	ममात्मतः	ममात्मनः
"	५	ध्रौव्यात्व	ध्रौव्यत्व
"	२०	आत्य	आत्म
३३६	७	अयं	अहं
"	८	हन्वया	हन्त्या
३३८	२	दुःखामां	दुःखानां
"	१९	बाह	बहि
३३९	१	भवन्ति	भवति
"	५	दग्	दृग्
३४१	१५	भावद्दि	भावर्द्धि
"	२१	दाष्टि	दृष्टि
३४४	१०	मुनि	मुनिः
"	१८	योगिन	योगिनो
३४६	१०	प्रत्यक्षं	न प्रत्यक्षं
३४७	१६	मान	माण
३५१	१५	थर्म	धर्म

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८७४	५	रुदि	इंदि
"	५	वर्मी	यंमी
"	७	इन्द्रि	इंदि
"	१०	शिल्प	शिल्प
"	२०	जपा	जग
"	३०	रुपे	रुपे
"	२१	योगे	जोग
"	२४	अने	अनेक
८७७	१७	धर्मात्रें	धम्मात्रें
८७८	४	उच्छेदांगुल	उस्सेधांगुल
"	७	पमाणंगुलं	पमाणंगुलं
"	८	दुगुणियं	दुगुणियं
"	८	वीरस्सायंगुलं	वीरस्सायंगुलं
"	१०	पमाणंगुलेणं	पमाणंगुलेणं
"	१६	अर्धाग्रहना	अर्धावगाहना
"	९	आयंगुलेन	आयंगुलेन
८८३	८	[illegible]	[illegible]
"	९	क्रिम	केम
"	९	[illegible]	[illegible]
८८८	७	[illegible]	[illegible]
"	७	[illegible]	[illegible]
"	९	[illegible]	[illegible]
"	१०	[illegible]	[illegible]
"	१२	[illegible]	[illegible]



पृ.	प.	अशुद्ध.	शुद्ध.
″	१३	रुचा	रुचः
८९०	१९	उम्ने	उम्ने
″	२०	अपट्टैव	व पट्टैव
८९१	२	नोटोर	नोटोव
″	८	दर्णी	दर्णी
″	१३	गनाट	गनाप्
″	१६	आवरना	आवरिना
″	१६	इयवना	इन्विना
८९२	१५	रवोन	रवोन्व
″	१५	पर्णीत	पर्णीनीः
″	१६	गमर्पा	गमर्प्यं
″	१८	प	ट
८९३	२१	दरिप	दरिप
८९५	६	आर्धी	गनपआर्धी
८९६	८	ग्गतार	ग्रीतजार
″	११	ग्निपृ	ग्निपृ
″	११	पानीपट	पानीवट
″	११	ग्गठेपाल	हतपठेपाल
८९८	११	११ मा ग्गी	१२ मा ग्गी
९००	१७	पट्जमांतरया	पट्अंसमांतरला
९०६	१२	पतिया	अतिया
″	१३	इति	इंति
″	१३	वितिया	ततिया
९१०	१८	नवपोसे	नवपोसे

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
३८२	१४	कस्मात	कस्मात्
३८४	१४	घ्यायया	घ्याय्यया
"	२२	द्येः	सात्वैः
३९७	४	त्वोपयोगसाव्यं	त्वोपयोगःसाम्यः
४०७	१३	परिणत	परिणतं
४१६	१२	ज्ञानैवात्मा	ज्ञानमेवात्मा
४२२	८	भवतां	गूयास्व
"	२२	सावकः	साधकौ

गुरुगुणपट्त्रिंशिका.

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
४३०,	१०	भोजनकाति	भोजनजाति
४३५	१	विणओ	विणए
४३९	२	चंउ	घउ
४४२	४	कुवंते	कुव्वंते
"	४	मेहुणुं	गेहूणं
"	४	रीइ	राइ
"	१६	मायय	माय
"	१६	धिनूणं	विनूणं
"	२२	प्पयसाविं	जसाविं
४४४	२१	प्रभावयना	प्रभावना
४५४	१२	मूरिवराणां	मूरिवराणं
	२३	देवनंदीये	देवनंदीये
४५७	१५	असमान	समान

पृ.	पं.	अशुद्धि	शुद्धि
११६	१३	वावी	वावि
"	१४	गेविज्झे	गेविज्जे
"	१९	निवाणुं	नियाणुं
"	२१	निवाणुं	नियाणुं
"	११	वणस्स	वणस्सइ
११९	४	पादोपगम	पादपोपगम
"	९	सचित्त	अचित्त
"	९	अचित्त	सचित्त
"	१५	अंघः	अधः
"	१८	असंख्यता	असंख्याता
१२०	१४	प्रागातिपात	प्राणातिपात विरमण
"	१८	सवाच्छ	सवाः छ
१२२	११	निगह	निग्गह
१२६	१२	अंगुसेठी	अंगुल सेढी
१२९	५	सयकेवलि	सुयकेवलि
"	९	कारणं	कारणं तैजसम्
"	१४	मूत्तं	मूर्त
१३५	२	उदेशासना	उदेशाना
"	५	आगमनना	आगमना
"	२५	बडिवन्वे	पडिवन्वे
१४०	१७	उगवमाणो	उग्गममाणो
१४२	१२	प्रपंचा	प्रपंच
"	२१	कला	वेला
१४४	२४	काल	कालः

ते समुदाय तेने गुण कहियें जेम एक दोरडो ते तांतणानो वणो ते मो तांतणा नो अविभागरूप छता पर्याय छे ते दोरडायी अनेक कार्य थाय, अनेक वस्तु बंधाय, अने अनेकने आधार थाय अनेक वेटण थाय तेने सामर्थ्य पर्याय कहियें. छतिरूपते पर्याय ते तो वस्तुरूप छे अने सामर्थ्यपर्याय तो प्रवर्त्तनरूप कार्यरूप छे ते छतिपर्यायनो समुदाय तेने गुण कहियें. छतिपर्यायना अविभाग ते योगस्थान समयस्थानमां कह्यो ज छे अने मितरके० जुदो कार्य करवानुं जेमां सामर्थ्य होय एवा अविभागरूप आत्मा प्रदेशें अनंता पर्याय ते मितरके० जुदा गुणना पर्याय जाणवा जेम जे अविभाग परिणामालंबनरूप कार्य सामर्थ्यरूप तेनो समुदाय ते वीर्यगुण एमज जाणवारूप सामर्थ्य छे जेमां एहवा जे अविभागपर्याय छे तेनो समुदाय ते ज्ञानगुण तेवा गुण एकद्रव्यने विषे अनंता छे. ते एकगुणना प्रदेशें प्रदेशे पर्याय अविभागरूप अनंता छे अने सर्व प्रदेशे सरिखा छे. तथा पंचास्तिकाय मध्ये, एक अगुरुलघु पर्यायनो भेद तरतम छे. तथा पुद्गलपरमाणुमध्ये कालभेदें अथवा द्रव्यभेदें वर्णादिकना पर्यायनो तरतमयोग ते थोडा घणापणो छे ते पर्यायअस्तिरूप छे. सदा छता छे. कोइ पर्याय द्रव्यांतरमां जातो नथी. प्रदेशांतरमां पण जातो नथी. ते छतिपर्यायथी सामर्थ्यपर्याय अनंतगुणा जाणवा, ते कार्यरूप छे तथा च महाभाष्ये यावन्तो ज्ञेयास्तावन्त एव ज्ञानपर्यायाः ते च अस्तिरूपाः प्रतिवस्तुनि अनन्तास्ततोप्यनन्तगुणाः सामर्थ्यपर्यायाः

तत्र द्रव्यलक्षणं–उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सल्लक्षणं द्रव्यं ए तद् द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकोभयनयापेक्षया लक्षणं ॥

गुणपर्यायवद् द्रव्यं एतत् पर्यायनयापेक्षया, अर्थ-क्रियाकारि द्रव्यं एतल्लक्षणं स्वस्वशक्तिधर्मापेक्षया। धर्मास्तिकाय–अधर्मास्तिकाय–आकाशास्तिकाय–पुद्गलास्तिकाय–जीवास्तिकाय–कालश्चेति

अर्थ ॥ हवे वळी द्रव्यनुं मुख्यलक्षण कहे छे उत्पाद के० नवा पर्यायनुं उपजवुं व्यय के० नवा पर्यायनुं विणसवुं अने ध्रुव के० नित्यपणो ए तीन परिणमनपणें सर्वदा जे परिणमे तेने द्रव्य कहियें. एटले तेहिज गुण कारणकार्य बे धर्मे समकालें परिणमे छे. कारण विना कार्य थाय ज नही अने कार्य करे नहीं ते कारण पण समजवुं नहीं, जे उपादानकारण तेहिज कार्य थाय छे ते कारणतानो व्यय अने कार्यतानुं उपजवुं समकालें थाय छे वळी कारणपणो समये नवो नवो छे अने कार्यपणो पण समयें समयें नवो नवो छे ते माटे कारणपणानो पण उत्पाद व्यय छे अने कार्यपणानो पण उत्पाद व्यय छे अने गुणपिंडपणें द्रव्याधारपणे ध्रुव छे एवी परिणतियें परिणमे ते सत् के० छतिवंत द्रव्य जाणवो एटले ए लक्षण ते द्रव्यास्तिकनय तथा पर्यायास्तिकनय ए बे भेला लइने कर्यो छे. जे ध्रुवपणो ते द्रव्यास्तिकधर्म ग्रह्यो छे अने उत्पाद व्यय ते पर्यायास्तिकधर्म ग्रह्यो छे ते माटे ए लक्षण संपूर्ण छे, ए तत्त्वार्थकारकनुं वाक्य छे.

तथा वळी बीजुं लक्षण तत्त्वार्थमां ज कह्युं छे. एक द्रव्यमां बधामां स्वकार्यगुणे वर्त्तमान ते गुण अने पर्याय ते गुणनुं कारणभूत द्रव्यनुं भिन्न भिन्न कार्यपणे परिणमे द्रव्यगुण ए बेहुने स्वाश्रयीपणे परिणमन ते बे छे जेमां ते द्रव्य कहियें



पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
”	२४	कसाय	कसाय
”	२४	मिछअसंन्नी	मिच्छअसन्नि
९८२	१०	पणंदि	पणिंदि
”	१०	नच्छि	नत्थि
”	११	दीस	दस
९८३	९	तिछ	तित्थ
”	९	विगलंदि	विगलिंदि
”	१०	परहारे	परिहारे
”	१२	मिछा	मिच्छा
”	१२	तिछ	तित्थ
”	१३	मिछम्	मिच्छं
”	१८	अज्ज	अपज्ज
९८६	११	अविरतति	अविरति
९८८	१०	छंच	पंच
”	११	तिनइ	तिनवइ
९८९	१५	युंआ	युआ
”	१९	मिछ	मिच्छ
”	२०	उदसु	उदयुप्पु
”	२३	पडगही	पडिगहि
९९१	३	जएनिअर	जहन्निपर
”	३	टइठाणा	ठिइठाणा
”	६	उणु	उणू
”	७	दलिअ	दलिआ
९२	१२	मज्जत्य	मज्झत्य

૩૫. ષડ્દ્રવ્ય વિચાર.	૨૪૦	૦-૪-૦
૩૬. વિજાપુર વૃત્તાંત.	૯૦	૦-૪-૦
૩૭. સાબરમતી કાવ્ય.	૧૬૬	૦-૬-૦
૩૮. પ્રતિજ્ઞા પાલન.	૧૧૦	૦-૪-૦
૩૯-૪૦-૪૧. જૈનગચ્છમત પ્રબંધ.સંઘપ્રગતિ. જૈનગીતા.		૧-૦-૦
૪૨. જૈન ધાતુપ્રતિમા લેખ સંગ્રહ....		૧-૦-૦
૪૩. મિત્રમૈત્રી.		૦-૮-૦
૪૪. શિષ્યોપનિષદ્.		૦-૨-૦
૪૫. જૈનોપનિષદ્.	૪૮	૦-૨-૦
૪૬-૪૭. ધાર્મિક ગદ્યસંગ્રહ તથા પત્રસદુપદેશ. ભાગ ૧ લો.	૬૭૬	૨-૦-૦
૪૮. શ્રીમદ્ દેવચંદ્રજી પ્રથમભાગ	૧૦૨૮	૨-૦-૦

નીચેના ગ્રન્થો પ્રેસમાં છપાય છે.

(૧) કર્મયોગ. (૨) ભજનપદસંગ્રહ ભાગ ૮ મો. (૩) શ્રીમદ્ દેવચંદ્રજી ગ્રન્થસંગ્રહ. દ્વિતીયભાગ.

નિચલા સ્થળે પુસ્તકો મળે છે.

મુંબાઇ, પાયધુની. બુકસેલર-મેઘજી હીરજી.

,, ચંપાગલી. અધ્યાત્મ જ્ઞાન પ્રસારક મંડળ.

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
"	१३	ज्झाणं	झाणं
"	१४	अग्गाहणीअ	अग्गायणी
"	१५	ततो	तत्तो
११३	१६	निज्झर	निज्झर
"	१८	निज्झंरा	निर्जरा
११६	१७	महरस्ठ	महरप
११८	२०	श्राविक	श्राविका
१००३	१०	पुज्जव	अप्पजुत्तं
"	१०	पेठइ	पेच्छइ
"	११	कुसुमाचुअराइणा-वेगा मंजरागहिया	कुसुमियंचूयपंतेणएगा मंजरी गहिया
"	११	खंधावारेणंलपतणं	खंधावारेण लपंतेण
"	१२	पडिनिपतओ	पडिनिपत्तो
"	१२	कहे	कहिं
"	१३	अमम्वणादंसाओ	अमच्चेण दंसणाओ
"	१३	पच्छसच्चण	पच्छासच्चेण
"	१२	कट्ठाविसेसी	कट्ठावसेसो
१००६	११	उपसमकितयी	उपशमसमकितयी
"	१९	अंतमुहूर्त	अंतर्मुहूर्त
"	२४	"	"
१००७	१२	शूद्धि	बुद्धि
१०१२	११	निरावणा	निरावरणा
"	१४	भुंजंतो	भुंजंतो
१०१४	५	६	५

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
१०१५	८	मिछामि	मिच्छामि
"	१४	"	"
"	२२	"	"
१०१६	२	"	"

अशुद्धि शुद्धि अंगे सूचना.

पृ. १ पं. ज्यां " २९ कोडाकोडी " इत्यादि खपावशातुं कहुं छे त्यां साधिक पल्योपमना असंख्यातमा भाग अधिक २९ को. को. इत्यादि जाणवुं.

पृ. २ पं. ३ १ " एक कोडाकोडीसागर " स्थाने देशुण एक कोडाकोडीसागर वांचवुं.

पृ. २ पं. ४ थी ९ "मुहूर्त" ने स्थाने अन्तर्मुहूर्त वांचवुं.

पृ. २१ पं. ९ " अरुपी " स्थाने रुपी अरुपी बन्ने ग्रहण करवा.

पृ. ४० पं. ८ थी १० " कोइ एक प्रदेशे असंख्य, अनंत, वा संख्यात अगुरु लघु गुण कह्या छे " परन्तु प्रति प्रदेशे अनंत अगुरु लघु सर्वदा होय छे अने समय तय, प्रदेशोमां परस्पर असंख्यगुण वा अनंतगुण वा संख्यगुण हानी वृद्धि ए परिणमे ए अर्थ ग्रहण करवो.

पृ. ५२ पं. ६ पर्याय ते गुणमां संक्रमावे. इत्यादि वाक्यमां मनोयोगनेज पर्यायथी उतारी गुणमां संक्रमावे इत्यादि

पांच द्रव्य सप्रदेशी छे, ते प्रदेशना पिंडपणा माटे अस्तिकायपणो पांच द्रव्यने छे. अने छटो कालद्रव्य तेने प्रदेश नथी ते माटे अस्तिकायता नथी तिहां काल ते मुख्यवृत्तियें द्रव्य नथी, उपचारथी द्रव्य कहेवाय छे. जेम वस्तुगने धर्मास्तिकायादिक द्रव्य छे तेम काल द्रव्य नथी. जो ए कालने पिंडरूप द्रव्य मानियें तो एनो मान किहां छे? जो मनुष्यक्षेत्रमां काल द्रव्य मानियें तो बाहिरना क्षेत्रमां नवपुराणादिक तथा उत्पाद व्यय कोण करे छे? अने जो चौदराजलोकमां व्यापी मानीयें, तो असंख्यात प्रदेश मानवा जोइयें; अने प्रदेश मानवे करी अस्तिकाय थाय, अने जो रेणुक असंख्याता मानियें, तो लोकप्रदेश प्रमाण रेणुक थाय ते वारें असंख्याता काल द्रव्य थाय. ते तो अनंत द्रव्य मान्यो छे माटे ए कालने पंचास्तिकायना वर्त्तनारूप पर्यायने आरोपे द्रव्य मानियें. केमके अस्तिकायता नथी. अने सर्वमां वर्त्तना करे ए पक्ष सत्य छे जे आगमने विषे ठाणांगसूत्रना आलावामां छे. किं भंते अद्धासमयेतिवुच्चति? गोयमा जीवा चेव अजीवा चेव एटले काल ते जीव तथा अजीवनो वर्त्तमानपर्याय छे तेना उत्पाद व्ययरूप वर्त्तनाने काल कह्यो छे ते कालने अजीव द्रव्यमां गण्यो तेनो आशय ए छे जे जीव वर्त्तनाथी अजीववर्त्तना अनंतगुणी छे ते बहुलता माटे कालने अजीव गवेष्यो छे केमके कालनी वर्त्तना अजीव ऊपर अनंति छे अने जीव ऊपर तेथी थोडी छे माटे.

तथा विशेषावश्यकभाष्यमध्ये न पश्यति क्षेत्रकालावसौ तयोरमूर्त्तत्वात्, अवधेश्च मूर्त्तिविषयत्वात्; वर्त्तनारूपं तु कालं पश्यति द्रव्यपर्यायत्वात्तस्येति तथा बावीसहजारीमध्ये तथा कालस्य वर्त्तनादिरूपत्वात् पर्यायत्वात्, द्रव्योपक्रमः उपचारात्

जाणवुं. कारण के द्रव्य, गुण, पर्यायनो परस्पर संक्रम होय नहि.

पृ. ९३ मां जीव अधोगतीए वा तीर्च्छो केम नथी जतो ? एना उत्तरमां मुख्य उत्तर जीवनी स्वाभाविक गति ऊर्ध्वज छे एम्लुं जाणवुं.

पृ. ९८ पं. १२ "दर्शनगुणते विशेष छे" ए स्याने " ज्ञान-गुण ते विशेष छे " एम जाणवुं.

पृ. ५५० पं. १७ " सादि अनादि अहेगतछेरे " ए पदना अर्थमां प्रथम " अनादि " ने पछी " सादि " ए अनुक्रम राखवो.

पृ. ५५४ पं. ९ " विविधताए आधार छे " ए स्थाने त्रिवि-धत्वप आधार छे " ए अर्थ संभवे.

पृ. ५८५ गाथा ७ मीना अर्थमां पर्यायसमासादिकना अर्थमां ज्यां ज्यां " सर्व " पद आवे त्यां त्यां " एकथी अधिक " वा " अनेक " एवो अर्थ करवो.

पृ. ५९० पं. ६ " एक कोडाकोडी " ने स्थाने " देशुण-पल्योपमना असंख्यातमा भाग हीन एक कोडाकोडी " एम जाणवुं.

पृ. ६२५ पं. १८ " ते आहारपर्याप्त तांइन सास्वादन भावमें वर्ते " एम कयुं छे परन्तु सास्वादनपणुं, तो आहार पर्याप्तियी आगळ शरीर पर्याप्ति सुधी होय छे का-रण के आहारपर्याप्ति तो १ समय मात्र छे ने अत्रे अपंचेन्द्रिय जीवोने सास्वादनपणुं समय मात्र होय एम कहेवानुं प्रयोजन नहि.

अर्थ ॥ सर्व द्रव्यने आधारभूत अवगाह स्वभावी जे जीव तथा पुद्गलने अवगाहनानो ओठंभानो हेतु ते आकाशास्तिकाय द्रव्य कहियें. तेना प्रदेश अनंता छे. लोक तथा अलोक रूप छे तेमां जे क्षेत्रें जीव तथा पुद्गल तथा धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय छे ते क्षेत्रने लोक कहियें अने केवल एक लोक मात्र आकाशज जिहां छे तेने अलोक कहियें एटले जे लोक ते जीवादि द्रव्य सहित अने जीवादिक द्रव्य जिहां नथी तेने अलोक कहियें ते, अलोकना प्रदेश अनंता छे, अवगाहक धर्मे सर्व द्रव्य एमां समाय छे.

कारणमेव तदन्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ॥ एकरसवर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिंगीच ॥ पूरणगलनस्वभावः पुद्गलास्तिकायः स च परमाणुरूपः । ते च लोके अनन्ताः एकरूपाः परमाणवः अनन्ताः द्व्यणुका अप्यनन्ताः त्र्यणुका अप्यनन्ताः एवं संख्याताणुका स्कंधा अप्यनन्ताः असंख्याताणुकस्कंधा अप्यनन्ताः एकैकस्मिन् आकाशप्रदेशे एवं सर्वलोकेऽपि ज्ञेयं एवं चत्वारोऽस्तिकायाः अचेतनाः ।

अर्थ ॥ हवे पुद्गल द्रव्यनुं स्वरूप लखियें छैयें. जे पूरण के० पूरायें वर्णादिगुणे वधे, गळी जाय, खरि जाय, वर्णादि गुण घटि जाय एवो जेमां स्वभाव छे ते पुद्गलास्तिकाय कहियें ते मूल द्रव्य परमाणुरूप छे ते परमाणुनुं लक्षण कहे छे. द्व्यणुकादिक जेटला स्कंध छे ते सर्वनुं अत्यंत के० मूल कारण परमाणु छे एटले सर्व स्कंधनुं परमाणु कारण छे पण परमाणुनुं कारण कोइ नथी, कोइनुं नीपजाव्यो थयो नथी अने कोइने

पृ. ६५५ गाथा ३१ ना टबामां केवलिने ७ योगमां " असत्यमनयोग तथा " असत्यवचनयोग " गणाव्यो छे ते स्थाने असत्यामृषामनयोग तथा असत्यामृषावचनयोग गणवो.

पृ. ६६१ पं. १० " मानकषायीथी क्रोधीथुं मायावी कपटी अधिकार छे " ए स्थाने मानकषायीथी क्रोधी अधिक छे ने क्रोधीथी मायावी कपटी अधिक छे एम वांचवुं.

पृ. ६६१ पं. पं. १४ " च्यारगतिमें समकीते सर्व जीव छे. " ए स्थाने " चारे गतिमां समकीती जीवने अवधिज्ञान होय छे माटे " एम वांचवुं.

पृ. ७३६ पं. २ " औदारिकथी वैक्रिय सूक्ष्म, भाषाथी उश्वाससूक्ष्म, " एमां मध्ये रही गयेलो पाठ आ प्रमाणे जाणवो. औदारिकथी वैक्रिय सूक्ष्म, वैक्रियथी आहारक सूक्ष्म, आहारकथी तैजस सूक्ष्म, तैजसथी भाषासूक्ष्म, भाषाथी उश्वाससूक्ष्म.

पृ. ८०९ " चार वार श्रेणिगत अने पांचमीवार पडतां " ए प्रमाणे उपशम सम्यक्त्वनी ५ वार प्राप्ति कही छे परन्तु अनादि मिथ्यात्वीने सम्यक्त्वनी प्रथम प्राप्तिमां एकवार अने चारवार श्रेणिमां, ए रीते ५ वार उपशम सम्यक्त्वनी प्राप्ति जाणवी.

तथा आठमे गुणठाणे अटकीने क्षपकश्रेणि मांडीने केवल ज्ञान पामे" एम कह्युं छे, परन्तु श्रेणि पडी ७ मे अप्रमत्त गुणठाणे जईनेज क्षपकश्रेणि मांडी शकाय परन्तु ८ मेथी नहि एम जाणवुं.

शांश अवगाहे एम असंख्याता प्रदेश अवगाहे छे पण एक वर्गणानी अवगाहना अंगुलने असंख्यातमें भागे अवगाहे वधति अवगाहे नही अने अनंति वर्गणा मिले अंगुल हाथ गाउ योजनादिकने माने अवगाहना थाय एम ए १ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ३ आकाशास्तिकाय ४ पुद्गलास्तिकाय ए चारे द्रव्य अचेतन छे अजीव छे जाणपणा रहित छे.

चेतनालक्षणो जीवः, चेतना च ज्ञानदर्शनोपयोगी अनन्तपर्याय परिणामिककर्तृत्वभोक्तृत्वादिलक्षणो जीवास्तिकायः ।

अर्थ ॥ हवे जीव द्रव्यनुं स्वरूप कहे छे चेतना जे बोध शक्ति छे लक्षण जेनुं ते जीव कहियें. जे पोताना परिणमन तथा परनी परिणमन सर्वने जाणे ते जीव तथा सर्व द्रव्य ते अनंता सामान्य स्वभाव अने अनंता विशेष स्वभाववंत छे तेमां सर्व द्रव्यना अनंता विशेष धर्मनुं अवबोधक ते ज्ञानगुण कहियें, तथा सामान्य विशेष स्वभाववंतवस्तुने विषें जे सामान्य स्वभावनुं अवबोधक ते दर्शन गुण कहियें. ते ज्ञानदर्शनोपयोगी जे अनंतपर्याय तेनो परिणामी कर्ता भोक्तादिक अनंति शक्तिनुं पात्र ते जीव जाणवो. उक्तं च " नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।। वीरियं उवओगो अ, एवं जीवस्स लक्खणं ॥ १ ॥

चेतना लक्षण ज्ञानदर्शन चारित्र सुखवीर्यादिक अनंत गुणनुं पात्र स्वस्वरूपभोगी तथा अनवच्छिन्न जे स्वावस्था प्रगटी तेनो भोक्ता अनंता स्वगुणनी जे स्वस्वकार्यशक्ति तेनो कर्त्ता, भोक्ता, परभावनो अकर्त्ता, अभोक्ता, स्वक्षेत्रव्यापी

जीव द्रव्य अनंता छे. अकृत सदा छता अखंड द्रव्य छे. सत्-चिदानंदमयी छे पण परपरिणामी थवे पुद्गलग्राहक पुद्गलभोगी थवे प्रतिसमये नवा कर्म बांधवे संसारी थया छे. तेहिज जे वारें स्वरूप ग्राहक स्वरूप भोगी थाय तेवारें सर्व कर्म रहित थयी परम ज्ञानमयी, परम दर्शनमयी, परमानंदमयी, सिद्ध, बुद्ध, अनाहारी, अशरीरी, अयोगी, अलेशी, अनाकारी, एकांतिक, आत्यंतिक, निःप्र यासी, अविनाशी, स्वरूप सुखनो भोगी, शुद्ध सिद्ध थाय ते माटे अहो चेतन !!! ए पर भाव अभोग्य सर्व जगत्ना जीवनी एठ तेनो भोगववापणो तजी स्वभाव भोगीपणानो रसीयो थयी स्वस्वरूप निर्धार स्वरूप भासन, स्वरूप रमणी, थयी पोताना आनंदने प्रगट करीनें निर्मल थावुं.

तथा आकाश द्रव्य ते लोकालोक मिलि एक द्रव्य छे, अनंत प्रदेशी छे। अने पुद्गल द्रव्य ते परमाणु रूप छे केम के परमाणु अनंता छे माटे अनंता द्रव्य छे इहां कोइ पूछे जे प्रदेशना संबंध विना परमाणु द्रव्यने अस्तिकाय किम कह्यो छे ? तेने उत्तर जे परमाणु तो एक प्रदेशी छे पण अनंता परमाणुथी मिलवाना जे कारण ते आ द्रव्य तेणे युक्त छे ते योग्यता माटे अस्तिकाय कह्यो छे तथा काल द्रव्यने उपचारें भिन्न द्रव्यपणो कह्यो छे ते व्यवहारनयनी अपेक्षायें जे मनुष्य क्षेत्रने विषे सूर्यनी गतिने परिज्ञाने एटले समयावलिकादिरूपपरिमाणे जे मान तेने व्यवहारथी काल कहियें इति ए काल मुख्य वृत्तियें तो समय क्षेत्र मध्ये छे अने मनुष्य क्षेत्रथी बाहेर जे जीवो छे तेना आयुष्य पण एज क्षेत्र प्रमाणे सर्वज्ञ देवें कह्या छे तथा सूर्यनोचारते पण जीव पुद्गलनुं प्रवर्तन छे कारण के सूर्य ते पण जीव तथा

विषे छे सर्व. गुण पर्याय पोताने रूपें अनेक छे पण ते समुदाय पिंडपणुं मूकीने जूदा थायज नही ते माटे ए रीतें जे परिणमन होय ते सामान्य स्वभाव कहियें. ते सामान्यना बे भेद छे अस्तितादिक जे सर्व पदार्थने विषे छे ते महा सामान्य कहियें. एनी श्रुतज्ञानेकरी प्रतीत थाय पण प्रत्यक्ष तो अवधिदर्शन केवलदर्शनेज जणाय. परोक्षें न ग्रहवाय. तथा वृक्ष अंब निंब जंबु प्रमुख व्यक्ति अनेक छे पण वृक्षत्व सर्वमां छे ए अवांतर सामान्य ते चक्षुदर्शने तथा अचक्षुदर्शने ग्रहवाय अने अस्तित्व वस्तुत्वादि सामान्य ते अवधिदर्शन तथा केवलदर्शने ग्रहवाय अने विशेष धर्म ते ज्ञान गुणेज ग्रहवाय हवे विशेषनुं लक्षण कहियें छीए. कोइक धर्में नित्य कोइक धर्में अनित्य कोइक रीतें अवयव सहित, कोइक रीतें अवयव रहित, अविभाग पर्यायें सावयव, सामर्थ्य पर्यायें निरवयव, पण सक्रियता हेतु देशगत जे गुण ते गुणांतरमां व्यापता नथी ते माटे देशगत जे गुण होय ते आखा द्रव्यमां व्यापकज होय तेने सर्वगत कहियें तो एवा जे धर्म ते सर्व विशेष जाणवा पदार्थना गुणनी प्रवृत्ति तेना जे कारण ते विशेष स्वभाव जे कार्य करे ते गुणने पण विशेष धर्मज गणवो. जे सामान्य ते विशेष रहित नथी अने जे विशेष ते सामान्य रहित नथी.

ते मूलसामान्यस्वभावाः षट् । ते चामी १ अस्तित्वं २ वस्तुत्वं ३ द्रव्यत्वं ४ प्रमेयत्वं ५ सत्त्वं ६ अगुरुलघुत्वं । तत्र १ नित्यत्वादीनां उत्तरसामान्यानां परिणामिकत्वादीनां निःशेषस्वभावानामाधारभूतधर्मत्वं अ-

શ્રીમદ્ બુદ્ધિસાગરજી ગ્રન્થમાળામાં પ્રગટ થયેલા ગ્રન્થો.

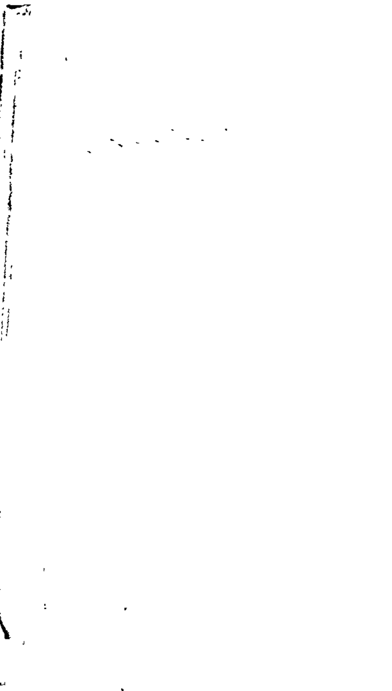
ગ્રન્થ	પૃષ્ઠ	કિંમત
૧. ભજન સંગ્રહ ભાગ ૧ લો.	૨૦૦	૦-૮-૦
૧. અધ્યાત્મ વ્યાખ્યાનમાળા.	૨૦૬	૦-૪-૦
૨. ભજનસંગ્રહ ભાગ ૨ જો.	૩૩૬	૦-૮-૦
૩. ભજનસંગ્રહ ભાગ ૩ જો.	૨૧૫	૦-૮-૦
૪. સમાધિ શતકમ્	૩૪૦	૦-૮-૦
૫. અનુભવ પચ્ચિશી.	૨૪૮	૦-૮-૦
૬. આત્મપ્રદીપ.	૩૧૫	૦-૮-૦
૭. ભજનસંગ્રહ ભાગ ૪ થો.	૩૦૪	૦-૮-૦
૮. પરમાત્મદર્શન.	૪૩૨	૦-૧૨-૦
૯. પરમાત્મજ્યોતિ.	૫૦૦	૦-૧૨-૦
૧૦. તત્ત્વબિંદુ.	૨૩૦	૦-૪-૦
૧૧. ગુણાનુરાગ. (આવૃત્તિ બીજી)	૨૪	૦-૧-૦
૧૨-૧૩. ભજનસંગ્રહ ભાગ ૫ મો તથા જ્ઞાનદીપિકા.	૧૯૦	૦-૬-૦
૧૪. તીર્થયાત્રાનું વિમાન (આ. બીજી)	૬૪	૦-૧-૦
૧૫. અધ્યાત્મ ભજનસંગ્રહ	૧૯૦	૦-૬-૦
૧૬. ગુરુબોધ.	૧૯૨	૦-૪-૦
૧૭. તત્ત્વજ્ઞાનદીપિકા.	૧૨૪	૦-૬-૦
૧૮. ગહુંલી સંગ્રહ.	૧૧૨	૦-૩-૦
૧૯-૨૦. શ્રાવકધર્મસ્વરૂપ ભાગ ૧-૨ (આવૃત્તિ ત્રીજી)	૪૦-૪૦	૦-૧-૦
૨૧. ભજન પદ સંગ્રહ ભાગ ૬ ઠ્ઠો.	૨૦૮	૦-૧૨-૦
૨૨. વચનામૃત.	૩૦૮	૦-૧૪-૦
૨૩. યોગદીપક.	૨૬૮	૦-૧૪-૦
૨૪. જૈન ઐતિહાસિક રાસમાળા.	૪૦૮	૧-૦-૦
૨૫. આનન્દઘન પદસંગ્રહ ભાવાર્થ સહિત.	૮૦૮	૨-૦-૦
૨૬. અધ્યાત્મ શાન્તિ (આવૃત્તિ બીજી)	૧૩૨	૦-૩-૦
૨૭. કાવ્યસંગ્રહ ભાગ ૭ મો.	૧૫૬	૦-૮-૦
૨૮. જૈનધર્મની પ્રાચીન અને અર્વાચીન સ્થિતિ.	૬૬	૦-૨-૦
૨૯. કુમારપાલ ચરિત્ર (હિંદી)	૨૮૭	૦-૬-૦
૩૦. થી ૩૪. સુખસાગર ગુરુગીતા.	૩૦૦	૦-૪-૦

वली द्रव्यपणानुं लक्षणांतर कहे छे. उत्पादपर्यायनी जे प्रसवशक्ति एटले आविर्भाव लक्षण जे शक्ति तेना व्ययीभूत पर्यायनो तिरोभाव थयो अथवा अभाव थवा रूप शक्तिनो जे आधारभूत धर्म तेने द्रव्यत्व कहियें.

४ स्व के० पोते आत्मा अने पर के० पुद्गलादिक धर्मास्तिकायादिक अन्य द्रव्य तेने यथार्थपणे जाणे ते ज्ञान कहियें. ते ज्ञान पांच भेदें छे. ते ज्ञानना उपयोगमां आवे एवी जे शक्ति तेने प्रमयेत्वपणो कहियें ते प्रमेयपणो सर्व द्रव्यनुं मूल धर्मछे. प्रमाणमां वसाव्यो जे वस्तु तेने प्रमेयपणो कहियें. ते सर्व गुण पर्याय प्रमेय छे अने आत्मानो ज्ञानगुण तेमां प्रमाणपणो तथा प्रमेयपणो ए बे धर्म छे,पोतानो प्रमाणपणो ते पोतेज करे छे, दर्शनगुणनो प्रमाणज्ञान गुण करे छे, केमके दर्शनगुण ते विशेष छे. जे सावयव होय ते विशेषज होय अने जे विशेष होय ते ज्ञानयीज जणाय. दर्शनगुण ते सामान्य धर्मनो ग्राहक छे ते पण प्रमाण कहेवाय पण प्रमाणना भेद कह्या छे. तिहां ज्ञानज ग्रह्युं छे तेनुं कारण जे दर्शनोपयोग ते व्यक्त पडतो नथी ते माटे प्रमाण मध्ये गवेष्यो नथी. ते प्रमाणना मूल बे भेद छे एक प्रत्यक्ष अने बीजो परोक्ष. स्पष्टं प्रत्यक्षं परोक्षमन्यत् इतिस्याद्वादरत्नाकरवाक्यात्.

५ उत्पाद के० उपजवो व्यय के० विणसवो ध्रुव के० नित्यपणो वस्तुना एक गुणमां एक समये ए त्रणे परिणमनें सदा परिणमे छे एवो जे परिणाम ते सत्पणो कहियें अने ते सत्पणानो भाव ते सत्वपणो कहियें.

६ तथा छट्टो १ अनंतभाग हानि, २ असंख्यात भाग



द्रव्यपणो छे उक्तं च संमतौदवा पज्जवरहिआ न पज्जवा दवओवि उत्पत्ति ए मूल सामान्य स्वभावना छ भेद कह्या.

> तत्र अस्तित्वं उत्तरसामान्यस्वभावगम्यं ते चोत्तरसामान्य स्वभावा अनन्ता अपि वक्तव्येन त्रयोदश १ अस्तिस्वभावः २ नास्तिस्वभावः ३ नित्यस्वभावः ४ अनित्यस्वभावः ५ एकस्वभावः ६ अनेकस्वभावः ७ भेदस्वभावः ८ अभेदस्वभावः ९ भव्यस्वभावः १० अभव्यस्वभावः ११ वक्तव्यस्वभावः १२ अवक्तव्यस्वभावः १३ परमस्वभावः इत्येवरूपंवस्तुसामान्यानंतमयम् ॥

अर्थ ॥ तथा वळी अस्तित्व उत्तर सामान्य स्वभाव कहे छे ते उत्तर सामान्य स्वभाव वस्तु मध्ये अनंता छे पण तेर सामान्य स्वभाव अनेकांतजयपताकादि ग्रंथे वखाण्या छे, तेमांथी लेशमात्र लखिये छैये तेनां नाम ऊपरना मूल पाठमां सुलभ छे माटे लिख्यां नथी. तथा एना व्याख्यानथी पण जणाशे. ए तेर सामान्य स्वभावें परिणमति वस्तु होय.

> स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन व्याप्यव्यापकादिसम्बन्धिस्थितानां स्वपरिणामात् परिणामान्तरागमनहेतुः वस्तुनः सद्रूपनापरिणतिः अस्तिस्वभावः

अर्थ ॥ तेमां १ प्रथम अस्तिस्वभावनुं लक्षण कहे छे. स्व के० पोताना द्रव्यादिक चार धर्म तेनो जेमां व्यापकपणो छे, १ द्रव्य ते गुणपर्यायना समुदायनो आधारपणो, २ क्षेत्र ते प्रदेशरूप सर्व गुणपर्यायनी अवस्थाने राखवापणो जे जेने राखे

एटले गुण तथा पर्यायवंत ते द्रव्य कहियें ते द्रव्य एकना बे खंड भाव ज नहीं ए मूल द्रव्यनुं लक्षण छे अने जे घणा परमाणुना खंधने द्रव्य मान्यो छे ते उपचारें जाणवो जेनी परिणति त्रण कालमध्ये ते रूपने त्यजे नहीं ते द्रव्य पोतानी मूल जाति त्यजे नहीं जेने अगुरुलघुनुं षट्गुण हानिवृद्धिरूप लक्षण चक्र एकठो फिरे ते एक द्रव्य अने जेने जुदो फिरे ते भिन्न द्रव्य कहियें एटले धर्म, अधर्म, आकाश ए एक एक द्रव्य छे अने जीव असंख्यातप्रदेशरूप एक अखंड द्रव्य छे. एवा जीव सर्वलोकमध्ये अनंता छे ते जीव भिन्नता वर्ते छे अने संसारीपणानां ओळखा थाय छे पण सर्वकालमां घटता वधता नथी. तथा पुद्गल परमाणु एक आकाशप्रदेश प्रमाण एक द्रव्य छे तेवा परमाणु सर्व जीवथी तथा सर्वजीवना प्रदेशथी पण अनंतगुणा द्रव्य छे. स्कंधपणे अथवा छुट्टा परमाणुपणे वर्ते तथा घटी जाय पण परमाणुपुद्गलनी जे संख्या छे तेमां वधता घटता नथी ए निश्चयनयथी लक्षण कह्युं.

हवे व्यवहार नयथी लक्षण कहे छे अर्थ जे द्रव्य तेनी जे क्रियाके० प्रवृत्ति तेने करे ते द्रव्य कहियें. तेमां जीवनी शुद्ध क्रिया ते ज्ञानादिक गुणनी प्रवृत्ति जेम सकल ज्ञेय जाणवा माटे ज्ञानविभागनी प्रवृत्ति एम सर्व गुणनुं जे कार्य जेम ज्ञानगुणनुं कार्य विशेष धर्मनुं जाणवुं. तथा दर्शनगुणनुं कार्य सकलसामान्यस्वभावनो बोध अने चारित्रगुणनुं कार्य ते स्वरूपनुं रमवुं इत्यादि अने धर्मास्तिकायनुं कार्य गतिगुणे परिणम्या जे जीव तथा पुद्गल तेने चालवाने सहकारी थाय एम सर्व द्रव्यनां लक्षण जोइ लेवां. ए लक्षण सर्व द्रव्यना जे गुण छे ते

अन्यजातीयद्रव्यादीनां स्वीयद्रव्यादिचतुष्टयतया व्यवस्थितानां विवक्षिते परद्रव्यादिके सर्वदैवाभावाविच्छिन्नानां अन्यधर्माणां व्यावृत्तिरूपो भावः नास्तिस्वभावः यथा जीवे स्वीयाः ज्ञानदर्शनादयो भावाः अस्तित्वे परद्रव्यस्थिताः अचेतनादयो भावा नास्तित्वे सा च नास्तिता द्रव्ये अस्तित्वेन वर्तते घटे घट धर्माणां अस्तित्वं पटादिसर्वपरद्रव्याणां नास्तित्वं एवं सर्वत्र

अर्थ ॥ हवे बीजा नास्ति स्वभावनुं स्वरूप लखियें छैयें अन्य के० बीजा जे द्रव्यादिक जे द्रव्य गुणपर्याय तेना पोताना जे द्रव्य क्षेत्र काल भाव ते तेहिज द्रव्यमां सदा अवष्टंभपणे परिणमे छे, एटले विवक्षित द्रव्यादिकथी पर जे बीजा द्रव्यादिकना जे धर्म ते तेमां सदा अभावपणे निरंतर अविच्छेद छे, ते माटे परद्रव्यादिकना धर्मनीव्यावृत्तितापणानो जे परधर्म ते विवक्षित द्रव्यमां नथी एवा द्रव्यमां जे भाव छे ते नास्ति स्वभाव जाणवो. जेम जीवनेविषे ज्ञान दर्शनादिक पोताना जे भाव तेतो अस्तिपणे छे, अने परद्रव्यमां रह्या जे अचेतनादिक भाव तेनी नास्तिता छे एटले ते धर्म जीव द्रव्यमां नथी माटे परधर्मनी नास्तिता छे, पण ते नास्तिता ते द्रव्य मध्ये अस्तिपणे रही छे जेम घटना धर्म घटमां छे तेथी घटमां घट धर्मनो अस्तित्वपणो छे पण पटादि सर्व परद्रव्योनो नास्तित्वपणो ते घटने विषे रह्यो छे तथा जीवमध्ये जीव ज्ञानादिक गुण ते अस्तित्वपणें छे, पण पुद्गलना वर्णादिक जीवमध्ये नथी. माटे वर्णादिकनी नास्ति ते जीव मध्ये रहि छे. श्रीभगवती सूत्रे कह्युं छे, हे गौतम अत्थित्तं अत्थित्ते

तथा भगवत्यंगे १३ तेरमा शतक मध्ये इहां पुद्गलवर्त्तनानी अपेक्षायें कालने रूपी गवेष्यों छे.

तत्र गतिपरिणतानां जीवपुद्गलानां गत्युपष्टंभहेतुर्धर्मास्तिकायः, स चासंख्येयप्रदेशलोकप्रदेशपरिमाणः ।

अर्थ ॥ हवे पंचास्तिकायनुं भिन्न भिन्न लक्षण कहे छे. जे गति परिणामीपणे परिणम्या जीव तथा पुद्गल तेने गतिना ओटंभानो हेतु ते धर्मास्तिकाय द्रव्य कहियें. ते धर्मास्तिकाय असंख्याता प्रदेश परिमाण छे. लोकमां व्यापी छे, लोकमान छे, लोकना एक एक प्रदेशे धर्मास्तिकायनो एक एक प्रदेश ते अनंत संबंधीपणे छे ए धर्मादि त्रण द्रव्य अचल अवस्थित अक्रिय छे.

स्थितिपरिणतानां जीवपुद्गलानां स्थित्युपष्टंभहेतुः अधर्मास्तिकायः, स चासंख्येयप्रदेशलोकपरिमाणः ।

अर्थ ॥ स्थितिपणे परिणम्या जे जीव तथा पुद्गल तेने स्थितिना ओटंभानो हेतु ते अधर्मास्तिकाय द्रव्य कहियें ते पण लोक परिमाण असंख्य प्रदेशी छे.

सर्वद्रव्याणां आधारभूतः अवगाहकस्वभावानां जीवपुद्गलानां अवगाहोपष्टंभकः आकाशास्तिकायः, स चानन्तप्रदेशः लोकालोकपरिमाणः । यत्र जीवादयो वर्तन्ते स लोकः असंख्यप्रदेशप्रमाणः, ततः परमलोकः केवलाकाशप्रदेशव्यूहरूपः स चानन्तप्रदेशप्रमाणः ।

अछता पण कहेवाय; तेवारें स्व पर्यायनो छतापणो पर पर्यायनो अछतापणो ए बे धर्म समकालें छे पण एक समयें कहेवाय नही ते माटे ए घटादि द्रव्य ते स्व द्रव्यमां स्वपर्यायनो सत्वपणो, परपर्यायनो असत्वपणो, ते कोइ पण एक सांकेतिक शब्दें करी कहेवाने समर्थ नही माटे सत्व अस्तिपणो असत्व नास्तिपणो ते एक समयें कहेवामां असमर्थ छे तेथी वस्तु स्वभावना बे धर्म ते एक समयें छता छे तेनो ज्ञान करवा माटे स्यात् अवक्तव्य ए वचन बोल्या. केमके कोइकने एवो बोध थाय जे सर्वथी वचने अगोचरज छे ते माटे स्यात्पद दीधो स्यात् के० कथंचित्पणे कोइक रीतें एक समये न कहेवाय माटे स्यात् अवक्तव्य ए जीव छे. एम सर्व द्रव्य जाणवा. ए त्रीजो भांगो थयो. ए त्रण भंगा सकलादेशी छे. सर्व वस्तुने संपूर्णपणे ग्रहेवा रूप छे. जीवादिक जे वस्तु तेने संपूर्ण ग्रहेवावंत छे.

अथ चत्वारो विकलादेशाः तत्र एकस्मिन् देशे स्वपर्यायसत्वेन अन्यत्र तु परपर्यायसत्वेन संश्च असंश्च भवति घटोऽघटश्च एवं जीवोऽपि स्वपर्यायैः सन् परपर्यायैः असन् इति चतुर्थो भङ्गः

अर्थ ॥ हवे चार भांगा विकलादेशी कहे छे जे वस्तुनुं स्वरूप कहेवो तेना एक देशनेज ग्रहे ए स्वरूप छे तिहां एक देशने विषे स्वपर्यायनो सत्वपणो अस्तिपणो गवेषे छे ते वारें वस्तु सद्द असत्पणे छे एटले ए घट छे अने ए घट नथी एम जीव पण स्वपर्यायें सत् परपर्यायें असत् ते माटे एक समयें अस्ति नास्ति रूप छे, पण कहेवामां असंख्यात समयें

निल्ये पण थयो नथी. सूक्ष्म छे. एक आकाशप्रदेशनी अव-
गाहना तुल्य एक परमाणु छे तो पण ते एक आकाश प्रदे-
शमां अनंत परमाणु समाय छे पण परमाणु मध्ये बीजुं द्रव्य
कोइ समाय नहीं माटे परमाणु द्रव्य सूक्ष्म छे अने नित्य
छे जेटलुं परमाणु द्रव्य छे ते खंधादिक अनेकपणे परिणमे पण
परमाणु द्रव्य कोइ विणसी जाय नहीं एवुं परमाणु द्रव्य छे.
ते एक परमाणुमां एक रस होय, एक वर्ण होय, एक गंध
होय अने लुखो, चिकणो, टाढो, उन्हो, ए चार स्पर्श मांहेला
गमे ते बे फरस होय एवुं एक परमाणु द्रव्य छे. इहां कोइ
पुछे जे ते परमाणु देखातो नथी तो केवी रीते मनाय तेने
उत्तर जे घटपट शरीरादिक कार्य देखाय छे, ग्रहवाय छे, ते
रूपी छे तो एहना संबंधवुं कारण परमाणु सूक्ष्म छे माटे
इंद्रियज्ञाने ग्रहेवातो नथी, परंतु रूपी छे केमके अरूपीथी रूपी
कार्य थाय नहीं ते माटेज परमाणु रूपी छे. तेथी ए स्कंध पण
रूपी थया छे अने आकाश प्रदेश अरूपी छे तो तेनो अ-
नंत प्रदेशी स्कंध पण अरूपी छे एम धारवुं ते परमाणुना
द्व्यणुकादिक स्कंध अनंता छे, तथा छुटा परमाणु ते पण अनंत
छे ते वली स्कंधमां मिले छे तो बीजा स्कंधमांहेथी छुटा थाय छे
एम खंध विखरी जाय ने परमाणु थाय तेनी वर्गणा अठ्या
वीस प्रकारनी छे. ते अठ्यावीस भेद कम्मपयडीथी जाणवा.
एकला परमाणु ते पण अनंता तथा बे मिलने खंध थाय
तेवा खंध पण अनंता एमज संख्यानाणुकना खंध पण अ
तेमज असंख्यात परमाणु मिलि खंध थाय ते पण अ
तथा अनंत परमाणु मल्या खंध थाय तेवा खंध पण अ
ते ए जातिना खंध ते एक आकाश प्रदेश अवगाहे. अ

असद्भाव के० अछतापणे अर्पित करीने मुख्यपणे गवेषीयें
तेवार पछी अन्य के० बीजा स्वपर्यायें अस्तिपणो तथा पर
पर्याय जे नास्ति पर्याय ए बे सत्व के० छतापणे असत्व के०
अछतापणे युगपत् समकाळे कहियें, इहां संकेतिक शब्दने अभावें
कहेवामां न आवे, अने ते वक्ता विना श्रोताने ज्ञान केम
थाय ? ते माटे स्यात् पद ते अन्य भांगानी सापेक्षता माटे
तथा सर्व धर्मनी समकालता जणाववा माटे स्यात्नास्तिअव-
क्तव्य ए छट्ठो भांगो जाणवो. एटले जीव पोताने स्वगुणे तो
छतापणो सर्वपर्याय समकालनो अवक्तव्यपणो ए स्यात्नास्ति
अवक्तव्य छठो भांगो थयो.

तथा एकदेशे स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितः एकस्मिन् देशे
परपर्यायैरसद्भावेनार्पितः अन्यस्मिंस्तु देशे स्वपरो-
भयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां युगपदेकेन शब्देन
वक्तुं विवक्षितः सन् असन् अवक्तव्यश्च भवति इति
सप्तमो भङ्गः । एतेन एकस्मिन् वस्तुन्यर्पितानर्पितेन
सप्तभङ्गी उक्ता ॥

अर्थ ॥ तथा एकदेशे स्वपर्यायने छतापणे अर्पित करियें
अने एकदेश परपर्यायने अछतापणे गवेषियें अने ते सर्व पर्याय
समकाळे जेवा छता छे पण वचने कहेवाय नहीं एटले अस्ति-
पणो पण छे अने नास्तिपणो पण छे, ए सर्व धर्म समकाळे छे,
पण वचने गोचर थाय नहीं, ए अवसरें स्यात्अस्ति स्यात्
अवक्तव्य ए रीतें वस्तुनो परिणमन छे. ए सातमो भांगो जा-
णवो. ए सप्तभंगी अर्पित अनर्पितपणे कही. ते अर्पित एक
धर्मने होय पण एक धर्मने विषे सप्तभंगी कही.

जनांति आत्मसत्तानो ग्राहक, व्यापक, रमण करनारो, तेने जीव जाणवो.

पञ्चास्तिकायानां परस्परत्वे नवपुराणादिभिर्व्यक्त-हीनवर्तनारूपपर्यायः कालः, अस्य चाप्रदेशित्वेन अस्तिकायत्वाभावः। पञ्चास्तिकायान्तर्भूतपर्यायरूपत्वात् एते पञ्चास्तिकायाः। तत्र धर्माधर्मौ लोकप्रमाणासंख्येयप्रदेशिकौ, लोकप्रमाणप्रदेश एव एकजीवः। एते जीवा अप्यनन्ताः, आकाशो हि अनन्तप्रदेशप्रमाणः, पुद्गलपरमाणुः स्वयं एकोऽप्यनेकप्रदेशबंधहेतुभूत-द्रव्ययुक्तत्वात् अस्तिकायः, कालस्य उपचारेण भिन्न-द्रव्यता उक्ता सा च व्यवहारनयापेक्षया आदित्यग-तिपरिच्छेद्यपरिमाणः कालः समयक्षेत्रे एव एष व्यव-हारकालः समयावलिकादिरूप इति ॥

अर्थ ॥ हवे काल द्रव्यनुं लक्षण कहे छे जे पंचास्ति-कायने पर्यायने जूनो ए. जीर्ण तथा पुद्गल स्कंधने नव पुराण-पणे व्यक्त के० प्रगट छे इति के० प्रकाशे तेने वर्तना कहिये ते वर्तनारूप पर्याय तेने काल कहिये एने प्रदेश नथी ते माटे अस्तिकायपणो नथी ए. काल ते पंचास्तिकायने विषे अंतर्भूतपर्याय परिणमन छे, जाने धर्मास्तिकायादिकनो पर्याय छे एम तत्त्वार्थवृत्तिने विषे कह्यो छे. तिहां धर्मास्तिकाय एक द्रव्य छे असंख्यात प्रदेशी छे. लोकाकाशना प्रदेश प्रमाण छे. एम अधर्मास्तिकाय पण एक द्रव्य छे. लोकप्रमाण असं-ख्यात प्रदेशी छे. अनेक जीव द्रव्य ते पण लोकप्रमाण असं-ख्यात प्रदेशी छे पण स्व अवगाहना प्रमाण व्यापक छे ते

दने छेडे कह्यो छे. जो आवरवा योग्य वस्तु भिन्न छे तो आवरण जूदा छे. तिहां क्षयोपशमने भेदें जाणे छे ते परोक्ष अथवा देशथी जाणे छे, सर्वथा आवरण गयेथके प्रत्यक्ष जाणे पण केवलज्ञान सर्वभावनो संपूर्ण प्रत्यक्षदायक ते संपूर्ण प्रगट्यो तेवारें बीजा ज्ञाननी प्रवृत्ति छे पण भिन्न पडति नथी, माटे ते केवलज्ञाननो जाणपणोज कहेवाय छे, तथा कोइक ज्ञानगुणना अविभाग सर्व एक जातिना कहे छे, ते अविभागमध्ये वर्णादिक जाणवानी शक्ति अनेक प्रकारनी छे, तेमांज आवरण एटले जे शक्ति प्रगटे ते शक्तिनुं मतिज्ञानादि भिन्न नाम छे, अने सर्व आवरण गयाथी एक केवलज्ञान रह्युं छे. छद्मस्थ ज्ञाननो भास छे. ए पण व्याख्यान छे. एवो ज्ञानगुण पोताना स्वपर्याय ज्ञायक परिच्छेदक वेतृत्वादिकें अस्ति छे. एम सर्व गुणमां स्वधर्मनी अस्तिता कहेवी. तेमज जे अविभागरूप पर्याय छे जेना समूहनी एक प्रवृत्तिने गुण कहियेंछैयें तेपण स्वकार्य कारणधर्में अस्ति छे. एम छ द्रव्यनुं स्वरूप स्वस्वरूपें अस्ति छे अने अन्य छे भांगा पण छे एवो सापेक्षता माटे स्यात्पद देइने बोलवो ते स्यात् अस्ति ए प्रथम भांगापणो (कह्यो) एटले गवेष्यो. जे अस्तिधर्म ते पण नास्तिपणा सहित छे एटले अस्ति कहेतां थकां नास्ति प्रमुख छ भांगानी छति छे, तिहां शब्द सहित उपयोग थयो तेथी सत्यपणो थयो.

तथा स्वजात्यन्यद्रव्याणां तद्धर्माणां च विजातिपरद्रव्याणां तद्धर्माणां च जीवे सर्वथैव अभावात् नास्तित्वं तेन स्यात् नास्तिरूपो द्वितीयो भङ्गः अत्र परधर्माणां नास्तित्वं नास्तिपदेन गृहीतं शेषा अस्तित्वादयः स्यात्पदे गृहीता इति

प्रगट छे एटले ए काल द्रव्य ते कालने भिन्न सिद्धने ठेरवो नही उपचरित ठेरवो एम मानवो.

इहां कोइ कहे जे एक एक द्रव्यने विषे अनेक अनेक पर्याय छे ते कोइ पर्यायने द्रव्यपणे न कह्यो अने एक वर्त्तना पर्यायने विषे द्रव्यनो आरोप शा माटे कर्यो ? तेने उत्तर ए वर्त्तना परिणति ते सर्व पर्यायने सहकारी छे अने सर्व द्रव्यने छे तेथी मुख्य पर्याय छे माटे एने द्रव्यनो आरोप छे ते पण अनादि भाव छे.

एते पञ्चास्तिकायाः सामान्यविशेषधर्ममया एव, तत्र सामान्यतः स्वभावलक्षणं द्रव्यव्याप्यगुणपर्यायव्याप्यकत्वेन परिणामिलक्षणं स्वभावः, तत्र एकं नित्यं निरवयवं अक्रियं सर्वगतं च सामान्यं । नित्यानित्य निरवयवसावयवः सक्रियताहेतुः देशगतः सर्वगतं च विशेषधर्मगुणसत्ताविकारत्वं विशेषः । न सामान्यं विशेषरहितं न विशेषः सामान्यरहितः ॥

अर्थ ॥ हवे ए पंचास्तिकाय ते सामान्य विशेष धर्ममयी छे ते सामान्यनुं लक्षण विशेषावश्यके कह्युं छे. तिहां प्रथमथी स्वभावनुं लक्षण कहे छे. जे द्रव्यने विषे व्यापतो होय तथा गुण पर्यायनां पण व्यापकपणे सदा परिणमतो थको पामियें तेने सामान्य स्वभाव कहियें ते सामान्य स्वभाव जे होय ते एक होय तथा नित्य अविनाशी होय तथा निरवयव के० जेहने अविभाग रूप अवयव न होय अने सर्व गत के० सर्वनां व्यापकपणे होय ते सामान्य स्वभाव कहियें. जीवादि द्रव्यने विषे एकपणो ते सिद्धने छे ते सर्व द्रव्यने

केपाञ्चिद्धर्माणां वचनगोचरत्वेन तेन स्यात्अवक्तव्य इति तृतयो भङ्गः। अवक्तव्यधर्मसापेक्षार्थं स्यात्पद-ग्रहणम्

अर्थ ॥ हवे त्रीजो भांगो कहे छे. जे वस्तु होय तेमां केटलाक धर्म एवा छे जे वचने करी कहेवाता नथी ते अवक्तव्य छे. ते केवलीने ज्ञानमां जणाय पण वचने करी ते पण कही शके नही ते माटे तेवा धर्मनी अपेक्षायें वस्तु अवक्तव्य छे एटले कहेतां थकां वक्तव्यनी ना थयी पण केटलाक धर्म वस्तु मध्ये वक्तव्य छे ते जणाववा माटे स्यात्पद ग्रहण करीने स्यात् अवक्तव्य ए त्रीजो भांगो कह्यो.

अत्र अस्तिकथने असंख्येयाः नास्तिकथनेप्यसंख्येयाः समया वस्तुनि, एकसमये अस्तिनास्तिस्वभावौ समकवर्त्तमानौ तेन स्यात्अस्तिनास्तिरूपश्चतुर्थो भङ्गः

अर्थ ॥ हवे चोथो भांगो कहे छे जे अस्ति एवो शब्द उच्चार करतां पण असंख्यात समय थाय तथा नास्ति ए शब्द उच्चार करतां पण असंख्यात समय थाय अने वस्तुमां तो अस्तिधर्म नास्तिधर्म ए बेहु एक समयमां छे, ते बेहु समकालें जणाववा माटे अने जे अस्ति ते नास्ति न थाय तथा जे नास्ति ते अस्ति न थाय ते सापेक्षता माटे स्यात् अस्तिनास्ति ए चोथो भांगो जाणवो.

तत्र अस्तिनास्तिभावाः सर्वे वक्तव्या एव न अवक्तव्या इति यज्ञानिवारणाय स्यात्अस्ति अवक्तव्य इति पञ्चमो भङ्गः स्यान्नास्ति अवक्तव्य इति षष्ठः

स्तित्वं २ गुणपर्यायाधारत्वं वस्तुत्वं ३ अर्थक्रियाकारित्वं द्रव्यत्वं. अथवा उत्पादव्यययोर्मध्ये उत्पादपर्यायाणां कनकत्वकत्वस्याविर्भाव लक्षणव्ययीभूतपर्यायाणां तिरोभावस्वभावरूपयाः शक्तेराधारत्वं द्रव्यत्वं ४ स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्रमाणं, प्रमीयते अनेनेति प्रमाणं.तेन प्रमाणेन प्रमातुं योग्यं प्रमेयं ज्ञानेन ज्ञायते ज्ञेयोग्यत्वं प्रमेयत्वं ५ उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्वं ६ षड्गुणहानिवृद्धिस्वभावा अगुरुलघुपर्यायास्तदाधारत्वं अगुरुलघुत्वं एवं षट्स्वभावाः सर्वं द्रव्येषु परिणमंति तेन सामान्यस्वभावाः

अर्थ ॥ ते मूळ सामान्यना छ भेद छे ते सर्व द्रव्यमां व्यापकपणे छे. १ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व ५ सत्त्व, ६ अगुरुलघुत्व. ए छ मूळ स्वभाव छे ते सर्व द्रव्य मध्ये पारिणामिकपणे परिणमे छे ए धर्मने कोइनो सहाय नथी तत्र के० तिहां १ सर्व द्रव्यने विषे उत्तर सामान्य स्वभाव नित्यत्व अस्तित्वादिक तथा विशेष स्वभाव ते परिणामिकतादिक तेनो आधारभूतपणं ते धर्मने वीर्थकरदेव सामान्य स्वभाव अस्तित्वरूप कहे छे तथा, २ गुणपर्यायनो आधारभूत पदार्थ तेने वस्तुत्व कहिये अने, ३ अर्थ जे द्रव्य तेनी जे क्रिया. जेम धर्मास्तिकायनी चलनसहाय क्रिया, अधर्मास्तिकायनी स्थिरसहाय क्रिया, आकाश द्रव्यनी अवगाहरूप क्रिया, जीवनी उपयोग लक्षण क्रिया तथा पुद्गलनी मिलन विखरणरूप क्रियानो करवानो पणुं जे पदार्थनी प्रवृत्ति ते अर्थ क्रिया अने अर्थ क्रियानो आधार धर्म तेने श्री तीर्थंकरे द्रव्यत्वपणो कह्यो छे.

पणे छे, अभेदपणे छे, इत्यादिक ते अस्तिधर्ममां अनेकांतता छे तेने ग्रहे छे. केंमके वस्तुनो एकगुण तेमां अस्तिपणो छे नास्तिपणो छे, नित्यपणो छे, अनित्यपणो छे, भेदपणो छे, अभेदपणो छे, वक्तव्यपणो छे, अवक्तव्यपणो छे, भव्यपणो छे, अभव्यपणो छे, ए अनेकांतपणो एह ज स्याद्वाद छे तेनुं संकेतिक वाक्य ते स्यात्पद छे ए रीते जाणवो.

आत्मद्रव्यने विषे स्वधर्मनी अस्तिता छे, परधर्मनी नास्तिता छे, स्वगुणनो परिणमवो अनित्य छे अने तेज गुणपणे नित्य छे, तथा द्रव्य पिंडपणे एक छे अने गुण पर्यायपणे अनेक छे, तथा आत्मा कारणपणे कार्यपणें समय समयमां नवानवापणो जे पामे छे ते भवनधर्म छे तो पण आत्मानो मूलधर्म जे पलटतो नथी ते अभवनधर्म छे. इत्यादिक अनेक धर्म परिणति युक्त छे ए रीते पद् द्रव्यने जाणी निर्धारीने हेयोपादेयपणे श्रद्धान भासन थाय ते सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन छे ए जीवनी अशुद्धता ते परकर्त्ता परभोक्ता, परग्राहकता, टालवाना उपायनुं साधन ते साधन करवे आत्मा आत्मापणें मूलधर्मे रहे ते सिद्धपणो तेनी रुचि उद्यमपणो करवो एहिज श्रेय छे.

स्यातअस्ति, स्यान्नास्ति, स्यात्अवक्तव्यरूपास्त्रयः सकलादेशाः संपूर्णवस्तुधर्मग्राहकत्वात्, मूलतः अस्तिभावा अस्तित्वेन सन्ति, नास्तित्वेन सन्ति एवं सप्तभङ्गाः एवं नित्यत्वसप्तभङ्गी अनित्यत्व सप्तभङ्गी एवं सामान्यधर्माणां, विशेषधर्माणां, गुणानां, पर्यायाणां, प्रत्येकं सप्तभङ्गी तद्यथा

हानि. ३ संख्यात भाग हानि. ४ संख्यात गुण हानि. ५ असं-
ख्यात गुण हानि. ६ अनंत गुण हानि. ए छ प्रकारनी हानि.
तथा १ अनंत भाग वृद्धि. २ असंख्यात भाग वृद्धि. ३ संख्यात
भाग वृद्धि. ४ संख्यात गुण वृद्धि. ५ असंख्यात गुण वृद्धि. ६
अनंत गुण वृद्धि. ए छ वृद्धि एम छ प्रकारनी हानि तथा छ
प्रकारनी वृद्धि ते अगुरुलघु पर्यायनी सर्व द्रव्यने विषे वर्त्तै
परिणमे, ते जे समये, कोइक ज्यारे अनंतभाग हानिरूपे
परिणमे छे अने कोइक, ज्यारे कोइक ज्यारे अनंतभाग वृद्धिरूपे
परिणमे छे. एम सर्व समये परिणमे छे ते अगुरुलघु पर्यायनी
परिणमन शक्ति, ते अगुरुलघुनुं अगुरुलघुनी वात जाणवी.
सघळा ग्रंथने विषे पाठक अध्याय ओळखवाथी कहेवाणी
कहेली छे. एम ए छ स्वभाव सर्व द्रव्यने विषे परिणमे छे, ए
छ ए द्रव्यनो मूल स्वभाव छे. द्रव्यनो भिन्नपणो प्रदेशनो विभ-
पणो ते अगुरुलघुने भेदपणे थाय छे ते माटे ए छ मूल
सामान्य स्वभाव छे, ए द्रव्यार्थिक धर्म छे अने एनुं परिण-
मन ते पर्यायार्थिक धर्म छे. भेदनय, ताहरी एम कहे छे जे
पर्यायनो पिंड ते द्रव्य छे पण द्रव्यपणो भिन्न नथी जेम घृत
घडा आगमो ? हाथनी संख्यानी पुद्गल समुदायने माटे कहिये
पण सर्व अवयवथी भिन्न आकारपणो कोइ देखातो नथी तेमज
ज्ञानादिक गुणथी भिन्नपणे कोइ आत्मा देखातो नथी तेने
कहिये जे ज्ञानादिक गुणने विषे इति एक पिंड समुदायना
सदा अविचलपणो अने द्रव्यथी भिन्न न थाय तथा एव क्रिया-
वंतपणो इत्यादिक सामान्य धर्म छे. इति अनित्य-अर्थ क्रिया-
वंत ते द्रव्यपणो एक नित्यपणो ते वस्तु इत्यादिक ते सर्व
द्रव्यपणो छे एटले द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक ए भेद करीने

एकद्रव्यव्यापि गुण तथा स्वजाति भिन्न जीवव्यापि ज्ञानादिक सर्वगुण अने अचेतनादिक परद्रव्यव्यापिसर्व धर्मनी नास्ति छे. एम पंचास्तिकायने विषे अस्तिकायें अनंति सप्तभंगीओ पामे. ए सप्तभंगी स्याद्वादपरिणामें छे ते सर्व द्रव्यादिकमां छे.

हवे वस्तुमध्ये अस्तिपणो न मानियें तो शो दोष उपजे ते कहे छे. जो वस्तुमां अस्तिपणो न मानियें तो गुण पर्यायनो अभाव थाय अने गुणना अभावें पदार्थ शून्यतापणो पामे.

तथा जो वस्तुमध्ये नास्तिपणो न मानियें तो ते वस्तु कदाकालें पर वस्तुपणें अथवा परगुणपणें परिणमि जाय तेथी कोइवारे जीव ते अजीवपणो पामे अने अजीव ते जीवपणो पामे तो सर्व संकरतादोष उपजे तथा व्यंजन के० प्रकटतानो हेतु तेने योगें छतो धर्म ते फुरे पण जे धर्मनी सत्ता छति न होय ते फुरे नही. जो नास्तिपणो न मानियें तो असत्तापणे फुरे अने जेवारें असत्ता स्फुरे तेवारें द्रव्यनो अनियामक के० अनिश्चयपणो थइ जाय, ते माटे सर्व भाव अस्ति नास्तिमयी छे. व्यंजकतानो दृष्टांत कहे छे. जेम कोरा कुंभमां सुगंधतानी सत्ता छे तोज पाणीने योगें वासना प्रगटे छे. जो वस्त्रादिकमां ते धर्म नथी तो तेमां प्रगटतो पण नथी एम सर्वत्र जाणवो. हवे बीजो नित्य स्वभाव कहे छे ते जे वस्तुना भाव तेनो अव्यय के० नहीं टलवो एटले तेमनो तेमज रहेवो ते नित्यपणो कहियें तेना वे भेद छे ते कहे छे.

एका अप्रच्युतिनित्यता द्वितीया पारंपर्यनित्यता ॥
तथा द्रव्याणां ऊर्ध्वप्रचयतिर्यग्प्रचयत्वेन तदेव द्रव्य

ते तेनुं क्षेत्र जाणवुं, ३ काल ते उत्पादव्यय ध्रुवपणे
४ भाव ते सर्व गुणपर्यायनो कार्यधर्म तिहां जीव
१ स्वद्रव्यप्रदेश गुणनो समुदाय द्रव्य छे, ते गुणपय
जनकपणो ते स्वद्रव्य अने, २ जीवना असंख्याता प्रदेश
स्वपर्यायनो स्वक्षेत्रपर्याय ते जाणवा एटले देवत्वादिक जे
णनो पर्याय तेनुं जे क्षेत्र ते स्वक्षेत्र, ३ पर्यायमध्ये क
कार्यादिकनो जे उत्पादव्यय ते स्वकाल तथा, ४ अतीतअ
गत वर्तमाननुं परिणमन ते स्वभाव ते कार्यादिक धर्म जे
ज्ञानगुणनो पर्याय जाणंगपणो, वेत्तापणो, परिच्छेदकपणो, विवे
चनपणो, इत्यादिक स्वभाव एम स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव
जे परिणामिकपने परिणमना तेनी अस्तिता कहेवी ए सर्वनी
छति छे ते अस्ति स्वभाव छे. ए अस्ति स्वभावें द्रव्य छे, ते
पोतानो मूल धर्म मूकी अन्य धर्मपणे परिणमतो नथी, परि-
णामांतरे आगमन छे ए अस्ति स्वभाव ते सर्व द्रव्यमां पो-
ताना गुणपर्यायनो जाणवो. जे अस्ति ते सद्रूपता छता रूप-
पणानी परिणति लेवी, सर्व द्रव्यमां पोतानें धर्मेज परिणमें पण
जे जीव द्रव्य ते अजीव द्रव्यपणे न परिणमे. तथा एक जीव
ते अन्य जीवपने न परिणमे. वली एक गुण ते अन्य गुणपणे
न परिणमे, ज्ञानगुणने विषे दर्शनादिक गुणनी नास्तिता छे
अने ज्ञानना धर्मनी अस्तिता छे, तथा एकगुणना पर्याय
अनंता छे ते सर्व पर्यायधर्में सरिखा छे पण एक पर्यायना
धर्म बीजा पर्यायमां नहीं अने बीजा पर्यायना धर्म पहेला
पर्यायमां नहीं माटे सर्व पोताने धर्मेज अस्ति छे. ए रीतें
अस्ति नास्तिनुं ज्ञान सर्वत्र करवुं, ए द्रव्यने विषे प्रथम अस्ति
स्वभाव कह्यो.

रने कारणे राग हतो तेहिज वस्त्र धनने कारण प्रते राग थयो ते कारण नवा रागनो नवापणो पण राग रहित आत्मा केवारे नही, ए पारंपर्य एटले परंपरा नित्यना कहियें. बीजुं नाम संतति नित्यता जाणवी, ते कारण योगे निमित्तें नीपजे, नवा नवा पर्यायने परिणमवे एटले पूर्व पर्यायने व्ययथवे तथा अभिनव पर्यायने उपजवे अनित्य स्वभाव जाणवो. एटले उत्पत्ति के० उपजवो व्यय के० विणसवो एवो जे स्वभाव ते अनित्य स्वभाव जाणवो.

तत्र नित्यत्वं द्विविधं कूटस्थं प्रदेशादिनां, परिणामित्वं ज्ञानादिगुणानां, तत्रोत्पादव्ययावनेकप्रकारौ तथापि किञ्चिल्लिख्यते विस्रसाप्रयोगजभेदाद् द्विभेदो सर्वद्र व्याणां चलनसहकारादिपदार्थक्रियाकारणं भवन्त्येव ॥

अर्थ ॥ तिहांवली ग्रंथांतरे नित्यपणो बे प्रकारे कह्यो छे एक कूटस्थनित्यता, बीजी परिणामिनित्यता छे. जीवना असंख्यात प्रदेश ते संख्यायें तथा क्षेत्रावगाह पलटतो नथी ते तथा गुणनो अविभाग ते सर्व कूटस्थनित्यता छे.

ज्ञानादिक गुण ए सर्व परिणामिक नित्यतायें छे. केमके गुणनो धर्मज ए छे. जे समयें समयें स्वभाव कार्यपणे परिणमे अने जे कार्य होय ते परिणामिकपणेज होय ए नीतिज छे अने जो ज्ञानगुणने कूटस्थनित्यतापणे मानियें तो पेहेले समयें जे ज्ञाने करी जाण्यो तेहिज जाणपणो सदासर्वदा रहे पण तेम तो नथी. ज्ञेय तो नवनवी रीतें परिणमता देखाय छे तो ते ज्ञेयनी नवनवी अवस्था ज्ञान जाणे नही एटले पहेले समय जे रीते ज्ञान परिणमे छे ते रीतें परिणमन जोवुं

परिणमवी नत्थित्ते नत्थित्ते परिणमवी तथा ठाणांग सूत्रे
सियअत्थि. २ सियनत्थि, ३ सियअत्थिनत्थी, ४ सियअ
त्तवं. ए चोभंगी कही छे. अने श्रीविशेषावश्यक मध्ये क
छे के, जे वस्तुनो अस्ति नास्तिपणो जाणे ते सम्यग् ज्ञा
अने जे न जाणे अथवा अयथार्थपणे जाणे ते मिथ्यात्व
उक्तं च सदसद विसेसणाओ, भवहेउजहछियओवलंभाओ॥ ना
फलाभावाओ मिच्छादिठिस्सन्नाणं ॥ १ ॥ ए गाथानी टीक
मध्ये स्याद्वादोपलक्षितवस्तुस्याद्वादस्थसप्तभङ्गीपरिणामः एकै
स्मिन्द्रव्येगुणेपर्यायेचसप्तसप्तभङ्गाभवन्त्येव अतः अनन्तपर्यायपर्या
यतेवस्तुनिअनन्ताः सप्तभंग्योभवन्ति इतिरत्नाकरावतारिकायां
द्रव्यने विषे गुणने विषे पर्यायने विषे स्वरूपे सात भंगा हो
जे ए सात भंगानो परिणाम ते स्याद्वादपणो कहियें.

तथाहि स्वपर्यायैः परपर्यायैरुभयपर्यायैः सद्भावेना-
सद्भावेनोभयेन वार्पितो विशेषतः कुंभः अकुंभः कुंभा-
कुंभो वा अवक्तव्योभयरूपादिभेदो भवति सप्तभंगी
प्रतिपाद्यते इत्यर्थः ओष्टग्रीवाकपोलकुक्षिबुध्नादिभिः
स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितः विशेषतः कुंभकुंभो भण्यते
सन् घट इति प्रथमभंगो भवति एवं जीवः स्वपर्यायैः
ज्ञानादिभिः अर्पितः सन् जीवः

अर्थ ॥ ए सप्तभंगी पत्नी अपेक्षायें नयी ते द्रव्यादि
मध्ये ज छे यथा स्वधर्मे परिणमवुं ते अस्ति धर्म छे अने
द्रव्यना धर्मे न परिणमवुं ए नास्तिवुं फल छे, ते माटे ए स
भंगी ते वस्तुधर्म छे, ते विशेषावश्यकथी सप्तभंगी लखियें छे

थाय. हवे इहां सहजनो उत्पादव्यय कहे छे. तिहां धर्मास्तिकायादि छ द्रव्यने पोतापोताना चलनसहकारादि गुणनी प्रवृत्तिरूप अर्थक्रियानो करवो थायज अने चलन सहकारपणो ते कार्य धर्मास्तिकायद्रव्यने प्रतिप्रदेशें रह्यो जे चलन सहकारी गुणा विभाग ते उपादानकारण छे, तेहिज कार्यपणे परिणमे छे एटले कारणपणानो व्यय अने कार्यपणानो उत्पाद तथा चलन सहकारीपणे ध्रुव छे. एमज अधर्मास्तिकायने विषे थिरसहायगुणनुं प्रवर्त्तन छे तथा आकाशास्तिकायने विषे पण अवगाहनागुणनुं प्रवर्त्तन एमज छे. वली पुद्गलमां पूरणगलनादिक गुणनुं प्रवर्त्तन छे. तेमज जीवद्रव्यमां ज्ञानादिक गुणनुं प्रवर्त्तन छे अथवा वली अनेकांतजयपताका ग्रंथने विषे एम पण कह्युं छे जे प्रतिसमयें गुणने विषे कारणपणो नवो नवो उपजे छे एटले कारणपणानो पण उत्पाद व्यय छे तेमज प्रतिसमयें कार्यपणो पण नवो नवो उपजे छे, एटले कार्यपणानो पण उत्पाद व्यय छे एम सर्व द्रव्यने विषे सर्व गुणनो कार्यपणो कारणपणो उपजे विणसे छे, एम उत्पाद व्ययनो एक स्वरूप प्रथम भेद कह्यो.

तथाच सर्वेषां द्रव्याणां पारिणामिकत्वं पूर्वपर्यायव्ययः नवपर्यायोत्पादः एवमप्युत्पादव्ययौ द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वं इति द्वितीयः

अर्थ ॥ सर्व धर्म छे ते परिणामिक भावे छे. तिहां पूर्व पर्यायनो व्यय अने नवा पर्यायनो उत्पाद व्यय समय समयें छे अने द्रव्यपणो ध्रुव छे ए बीजो भेद.

छे ते माटे स्यात् पूर्वक छे एम स्यात् अस्तिनास्ति ए चोथो भंगो जाणवो.

तथा एकस्मिन् देशे स्वपर्यायैः सद्भावेन विवक्षितः अन्यत्र तु देशे स्वपरोभयपर्यायैः सत्वासत्वाभ्यां युगपद्संकेतिकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितः सन् अवक्तव्यरूपः पञ्चमो भङ्गो भवति. एवं जीवोपि चेतनत्वादिपर्यायैः सन् शेषैरवक्तव्य इति

अर्थ ॥ तथा एक देशें पोताने पर्यायें स्वद्रव्यादिकें छतापणे गवेर्षायें अने अन्य के० बीजा देशोने विषे स्वपर ए वे पर्यायें सत्व छतापणें तथा असत्व–अछतापणें समकालें असंकेतपणे नामने अणकहे गवेर्षायें तेवारें सत् के० अस्तिअवक्तव्यरूप भांगो उपजे अने ए भांगा छतां बीजा छ भांगा छे तेनी गवेषणा माटे स्यात् पद जोडीयें एटले स्यात् अस्ति अवक्तव्य ए पांचमो भांगो जाणवो. जेम जीवने विषे चेतनपणो मुख्यवीर्यगुणें अस्ति छे अने नास्तिपणे अस्तिनास्ति समकालपणे वचनगोचर न आवे ते स्यात् अस्ति अवक्तव्य.

तथा एकदेशे परपर्यायैरसद्भावेनार्पितो विशेषतः अन्यस्तु स्वपरपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां सत्वासत्वाभ्यां युगपद्संकेतिकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितकुंभोऽसन् वक्तव्यश्च भवति। अकुम्भो वक्तव्यश्च भवतीत्यर्थः देशे तस्याकुम्भत्वात् देशे अवक्तव्यत्वादिति षष्टो भङ्गः -

अर्थ ॥ तथा एकदेशें परपर्याय जे नास्ति पर्याय तेने

स्वकालरूप परिणमन छे, ए उत्पाद व्ययनो त्रीजो भेद जाणवो.

इहां केटलाक कालनी अपेक्षा लेइने परप्रत्ययपणो कहे छे ते खोटो छे, कारण के कालद्रव्य जे छे, ते पंचास्तिकायनो पर्याय छे अने परिणतितो द्रव्यनो स्वधर्म छे, माटे काल ते स्वकालरूप वस्तुनो परिणाम तेनो भेद छे, अथवा कालने भिन्न द्रव्य मानिये तोपण काल ते कारणपणे छे, अने अतीत, अनागत वर्त्तमानरूप परिणति तेतो जीवादिक द्रव्यनो धर्म छे ते माटे ए उत्पाद व्यय पण स्वरूपज छे ए त्रीजो भेद थयो.

तथाच सिद्धात्मनि केवलज्ञानस्य यथार्थज्ञेयज्ञायकत्वात् यथा ज्ञेया धर्मादिपदार्थाः तथा घटापटादिरूपा वा परिणमन्ति तथैव ज्ञाने भासनाद् यस्मिन् समये घटस्य प्रतिभासः समयांतरे घटध्वंसे कपालादिप्रतिभासः तदा ज्ञाने घटा प्रतिभासध्वंसः कपालप्रतिभासस्योत्पादः ज्ञानरूपत्वेन ध्रुवत्वमिति. तथा धर्मास्तिकाये यस्मिन् समये संख्येयपरमाणूनां चलनसहकारिता अन्यसमये असंख्येयानां एवं संख्येयत्वसहकारिताव्ययः असंख्येयानन्तसहकारिताउत्पादः चलनसहकारित्वेन ध्रुवत्वं. एवमधर्मादिष्वपि ज्ञेयं, एवं सर्वगुणप्रवृत्तिषु इति चतुर्थः ॥

अर्थ ॥ तथा के० तेमज वली सिद्धात्माने विषे केवल ज्ञानगुणनी संपूर्ण प्रगटता छे ते यथार्थ जे कालें जे ज्ञेय जेम परिणमे ते कालें तेमज जाणे एहवो ज्ञेयनो ज्ञायक ते केवल ज्ञान छे, जेम धर्मादि द्रव्य तथा घटपटादि ज्ञेय पदार्थ जे रीते

व्ययौ स्तः नास्ति भावानां परद्रव्यादीनां परावृत्तौ नास्तिभावानां परावृत्तित्वेनाप्युत्पादव्ययौ ध्रुवत्वं च अस्तिनास्तिद्वयौ इति पञ्चमः ॥

अर्थ ॥ तथा सर्व द्रव्यमां अस्ति तथा नास्ति ए बे स्वभाव परिणमि रह्या छे. तिहां जे अस्ति स्वभाव छे ते स्वद्रव्यादिकनो छे. ते जेवारें ज्ञानगुण घट जाणतो हतो तेवारें घट ज्ञाननी अस्तिता हती अने तेज घटध्वंस थये कपाल ज्ञान थयुं ते वारें घट ज्ञाननी अस्तितानो व्यय थयो अने कपाल ज्ञाननी अस्तितानो उत्पाद थयो, ए रीतें अस्तितानो उत्पाद व्यय छे तेज रीतें नास्तितानो पण उत्पाद व्यय जाणवो. जे पहेली घट नास्तिता हती ते पछे घटध्वंसें कपाल नास्तिता थयी. एम परद्रव्यने पलटवे नास्तिता पलटे छे ते स्वगुणने परिणामिक कार्यने पलटवे करीने अस्तिता पलटे छे अने जिहां पलटवापणो तिहां उत्पाद व्यय थायज. एम द्रव्यमां सामान्य स्वभाव सर्व धर्म छे तेमां जेम संभवे तेम श्री प्रभुनी आज्ञायें उपयोग देइने उत्पाद व्ययपणो करवो अने अस्ति नास्तिपणे ध्रुव छे ए पांचमो अधिकार कह्यो.

तथा पुनः अगुरुलघुपर्यायाणां षड्गुणहानिवृद्धिरूपाणां प्रतिद्रव्यं परिणमनात् नानाहानिव्ययेवृद्ध्युत्पादः वृद्धिव्यये हान्युत्पादः ध्रुवत्वं चागुरुलघुपर्यायाणां एवं सर्वद्रव्येषु ज्ञेयं "तत्त्वार्थवृत्तौ" आकाशाधिकरे यत्राप्यवगाहकजीवपुद्गलादिर्नास्ति तत्राप्यगुरुलघुपर्याय वर्त्तनयावश्यत्वे चानित्यताभ्युपेया ते च अन्ये अन्ये

अर्थ ॥ हवे त्रीजो भांगो कहे छे ते एक जी
द्रव्योमां आत्मा छे ते जीवने विषे, अन्य जे वि
जीव छे ते सर्वना स्वभाव अस्तित्वादि प्रमुख
नास्ति छे. अने अजीव द्रव्य तथा तेना वर्णादिक
नास्ति छे. जेम अजीवमां ग्राहकपणो छे तेनी प
अजीवने ग्रहिवो पडतो छे. ते पण ग्राहक छे पण
एवो भिन्न छे एटले जे वर्णादिनो ग्राहकपणो ते अ
अने जे अजीवनो ग्राहकपणो ते वर्णादिकनो नथी.
जीवनो ज्ञानादिक गुण छे ते पुद्गलमां नथी
जीवनो जे ज्ञानादिक गुण छे ते तेनो नथी.
छे. ते माटे ज्ञानादिक कार्य करिवा करे तो
पोतपोतानो गुण छे पण कोई द्रव्यनो गुण कोई
आवतो नथी. ते माटे स्वजाति अन्य द्रव्यनो,
एवो नर अन्य धर्मनो ए सर्वनो नास्ति छे, ए
पण सर्व अन्य द्रव्यादिकनो नास्ति छे, तथा धर्मा
कालमां पण स्वजाति अविभागोना कारणनी,
ते माटे एकद्रव्य ते एकक्षेत्रनो. एककालनो, एकभाव
नास्ति छे. एवो नास्तिपणो पण तेमां रह्यो छे ते
नास्तिपणो ए भांगो पण तेमां छे. एम एकत्र
परोक्षे थके अस्तिपणो तथा एक समयने प
जीवनां सहज ज्ञानी नास्ति छे. एटले उदयनी
जीवमांज रही छे. इत्यादिक अनंता धर्मो ना
स्याद्वादी जेहनां सर्व धर्मनो भांग न पडे एटले
ते माटे स्याद्वास्ति ए त्रीजो भांगो कह्यो.

गवेषिये नही तो अलोकाकाशनें विषे सल्लक्षण न्यून के० ओछो पडे जे उत्पाद व्यय ध्रुवता संयुक्त ते सत् कहियें अने जे द्रव्य होय ते सत्पणा संयुक्तज होय. माटे अगुरुलघुनुं परिणमन, सर्व द्रव्यमां सर्व पर्यायमां सर्व प्रदेशमां छे ए अगुरुलघुनो उत्पाद व्यय कह्यो ए छट्ठो अधिकार थयो.

तथा भगवतीटीकायां तथा च अस्तिपर्यायतः सामर्थ्यरूपा विशेषपर्यायास्ते चानन्तगुणास्ते प्रतिसमयं निमित्तभेदेनपरावृत्तिरूपाः तत्र पूर्वविशेषपर्यायाणां नाशः अभिनवविशेषपर्यायाणामुत्पादपर्यायत्वे ध्रुवत्वं इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयं इति सप्तमः

अर्थ ।। तेमज वळी अस्तिपर्यायथी विशेष पर्याय जे सामर्थ्यरूप ते अनंत गुणा छे ए भगवती सूत्रनी टीका मध्ये कह्यो छे. जे अस्ति पर्याय ते ज्ञानादिक गुणना अविभागरूप पर्याय छे. जे पर्याय पर्यायमां सर्व ज्ञेय जाणवानुं सामर्थ्य छे ते विशेष पर्याय छे. तथा महाभाष्ये यावंतो ज्ञेयास्तावंतो ज्ञानपर्यायाः ए सामर्थ्य पर्यायगवेष्या छे, ए सामर्थ्य पर्याय ते ज्ञेयनें निमित्ते छे, ते ज्ञेय तो अनेक उपजे छे ने अनेक विणशे छे तेवारें विशेषपर्याय पण पलटे छे ते प्रतिसमयें निमित्त भेदनी परावृत्ति पलटवेथी पूर्व विशेष पर्याय नाश थाय तथा अभिनव विशेष पर्यायनो उपजवो छे अने पर्यायनी अस्तिता ध्रुव छे. एम गुणपर्यायनो उत्पाद व्यय ध्रुवपणो ते सातमो छे ए अस्तिनास्ति स्वभाव वखाण्या.

नित्यताऽभावे निरन्वयता कार्यस्य भवति कारणाभावता च भवति, अनित्यताया अभावे ज्ञायकतादि-

अत्र वक्तव्या भावाः स्यात्पदे गृहीताः अत्र अस्तिभावा वक्तव्या तथा अवक्तव्या तथा नास्तिभावा वक्तव्या अवक्तव्या एकस्मिन् वस्तुनि, गुणे, पर्याये, एकसमये, परिणममाना इति ज्ञापनार्थं स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य इति सप्तमो भङ्गः॥ अत्र वक्तव्या भावास्ते स्यात्पदे संगृहीता इति अस्तित्वेन अस्तिधर्मा नास्तित्वेन नास्तिधर्मा युगपदुभयस्वभावत्वेन वक्तुमशक्यत्वात् अवक्तव्यः स्यात्पदे च अस्त्यादीनामेव नित्यानित्याद्यनेकान्तसंग्राहकम्

अर्थ ॥ हवे सातमो भांगो कहे छे, इहां अस्तिभावपणो वक्तव्य छे तेमज नास्तिभाव पण वक्तव्य छे, अने अवक्तव्य पण छे. ए सर्व धर्म एक समयमां एक वस्तुमध्ये तथा एक गुणमध्ये तथा एक पर्यायमध्ये समकाळे परिणमे छे ते जणाववा माटे अस्तिनास्ति अवक्तव्यः ए सातमो भांगो. इहां अस्ति ते नास्ति न थाय अने नास्ति ते अस्ति न थाय तथा वक्तव्य ते अवक्तव्य न थाय अने अवक्तव्य ते वक्तव्य न थाय ते जणाववाने अर्थे स्यात्पद ग्रह्यो छे. इहां अस्तिपणे जे भाव छे ते अस्तिधर्म अने नास्तिपणे जे भाव छे ते नास्तिपणे ग्रह्या छे, वेहु समकाळे छे ते माटे एक समय वक्तव्यके॰ कहेवामां अशक्य छे, असमर्थ छे, तेथी अवक्तव्यके॰ अगोचरपणे छे अने जे स्यात्पद छे ते अस्तिधर्म नास्तिधर्म अवक्तव्य धर्मनो नित्यपणो, अनित्यपणो प्रमुख अनेकांतनो संग्रह करे छे जे अस्तिधर्म छे ते नित्यपणे पण छे तथा अनित्यपणे पण छे एकपणे छे, अनेकपणे छे, भेद-

प्रमेयत्व, अगुरुलघु आदिक समस्त पर्याय गुणा विभागादिक ते सर्वनुं आधारभूत क्षेत्र ते प्रदेश छे ते स्व के० पोताना जे क्षेत्र ते सर्व भेदरूप जुदा जुदा छे एटले संख्याता प्रदेश भिन्न छे पण ते एक पिंडपणो किवारें तजता नथी, सर्व प्रदेशमां अंतराल क्षेत्रपणो कोईवारें पामतो नथी जे अनंता स्वभाव, अनंत पर्याय, ते असंख्यात प्रदेश रूप तेनुं प्रमाण फिरतुं नथी एवो जे द्रव्यने विषे समुदाय पिंडपणो रहे छे ते एक स्वभाव कहियें. ते पंचास्तिकायमध्ये १ धर्म, २ अधर्म, ३ आकाश, ए त्रण द्रव्य एकेक छे अने जीव द्रव्य अनंता छे तेथी पुद्गल परमाणु अनंत गुणा छे. ते एक जीव अनेक रूप नव नवा करे पण अंतर पडे नही ते माटे द्रव्यमध्ये एक स्वभाव छे.

क्षेत्र असंख्यात प्रदेश काल उत्पाद व्ययरूप भाव पर्याय गुणना अविभाग ते पोताना भिन्नकार्य परिणामी छे ते सर्वनो भिन्न प्रवाह छे एटले सर्वनो कार्यपणो भिन्न छे ते माटे द्रव्यने सर्व स्वभाव पर्याय भेदें विचारतां द्रव्यमां अनेक स्वभाव पण छे. जो वस्तुमां एकपणानो अभाव मानियें तो सामान्यपणो रहे नही अने गुणनो पर्यायनो स्वामी आधार ते कोण थाय ? अने आधार विना गुणादि आधेय ते क्यां रहे ? ते माटे द्रव्यनो एकपणो छे. जो वस्तुमां अनेकपणो न मानियें तो द्रव्य ते विशेष रहित थई जाय तेथी गुणनो अनेकपणो शी रीते द्रव्यनेविषे पामियें? माटे द्रव्यमां गुणकार्यनो अनेकपणो पण छे तथा स्वस्वामित्व व्याप्य व्यापकभाव केम ठरे? जे गुण पर्याय ते स्व के० धन अने द्रव्य ते तेनो स्वामी छे अथवा द्रव्य ते व्याप्य अने गुण पर्याय

अर्थ ॥ स्यात्‌अस्ति स्यात्‌नास्ति स्यात्‌अवक्तव्य ए त्रण भांगा वस्तुना संपूर्णरूपने ग्रहे माटे सकलादेशी छे अने शेष रह्या जे चारभांगा ते विकलादेशी छे ते वस्तुना एकदेशने ग्रहे माटे तथा वळी अस्तिपणाने विषे जे अस्तिपणो ते नास्तिपणे नथी अने नास्तिपणो नास्तिपणे छे तेमां अस्तिपणो नथी. इहां कोइ पुछे के वस्तुमां जे नास्तिपणो ते अस्तिपणे कह्योछो तो नास्तिपणामां अस्तिपणानी ना किम कह्योछो? तेने उत्तर जे नास्तिपणो ते अस्ति छे-छतापने छे अने अस्तिधर्म कांइ नास्तिपणामां नथी माटे ना कही छे. छतिनी ना कही नथी. तथा एमज नित्यपणानी सप्तभंगी तथा अनित्यपणानी सप्तभंगी तेमज सामान्य धर्म सर्वनी भिन्न भिन्न सप्तभंगी, तथा सर्व विशेष धर्मनी सप्तभंगी, तेमज गुण पर्याय सर्वनी जूदी जूदी सप्तभंगी कहेवी, तद्यथा के० ते कही देखाडे छे.

ज्ञानं ज्ञानत्वेन अस्ति दर्शनादिभिः स्वजातिधर्मैः अचेतनादिभिः विजातिधर्मैः नास्ति, एवं पञ्चास्तिकाये प्रत्यस्तिकायमनन्ता सप्तभंग्यो भवन्ति. अस्तित्वाभावे गुणाभावात्पदार्थे शून्यतापत्तिः नास्तित्वाभावे कदाचित् परभावत्वेन परिणमनात् सर्वसङ्करतापत्तिः व्यंजकयोगे सत्ता स्फुरति तथा असत्ताया अपि स्फुरणात् पदार्थानामनियता प्रनिपत्तिः सम्यग्ज्ञानार्थे तज्ज्ञानाव्ययं नित्यम् ॥

अर्थ ॥ हवे गुणनी सप्तभंगी कही देखाडे छे. जेम ज्ञान गुण ज्ञायकादिक गुणे अस्ति छे अने दर्शनादिक स्वजाति

अजीव ते चेतना रहित अभेद छे. अजीवमध्ये जे धर्मास्तिकाय द्रव्य ते चलनसहकारनें करे छे, पण बीजा अजीवद्रव्य ते ए कार्य करता नथी. एम धर्मास्तिकाय थिरसहायगुणनें करे छे. आकाशअवगाह दाननें करे छे. पुद्गलरूपी आवरण स्कंधादि परिणमन करे छे. एम सर्व द्रव्यनें भेद छे, तोज भिन्न भिन्न द्रव्य कहेवाय छे. इहां कोइ कहेशेके जीवअनंता तेतो सरिखा छे तो सर्व जीवनें एकद्रव्य शावास्ते न कह्यो ? तेने उत्तर जे रूपैया सोनारूपापणे अथवा धवलापणे तोलपणे सरिखा छे, पण वस्तुना पिंडपणे भिन्न छे, तेमाटे सोनेपण भिन्न भिन्न कहियें छेयें. तेम जीवने पण भिन्न भिन्न कहियें. वली उत्पाद व्ययनो फिरवो सर्वमां तेज रीतनो छे, पण पलटण ते एक रीतनो नथी, तथा अगुरुलघुनी हानिवृद्धिनो फिरवो पण सर्व द्रव्यमां पोतपोताने छे, तेथी सर्व जीव तथा सर्व परमाणु भिन्न छे, ए भेद स्वभाव जाणवो.

" तन्मयतावस्थानाधारताद्यभेदेन अभेद स्वभावः " तथा तन्मयता अवस्थानतानो अभेद छे अने आधारतानो पण अभेदपणो छे ते अभेद स्वभाव छे.

तथा भेदनो जो अभावपणो मानियें एटले वस्तुमां भेदपणो न मानियें तो सर्व गुण तथा पर्यायनो संकर के० एकमेकपणो ए दोष लागे, तो गुणी कोण? तथा गुण कोण ? द्रव्य कोण ? एम गुणपर्यायने केइ द्रव्यनो कयो पर्याय एम वेहेंचण थाय नहीं. गुण तथा गुणी तथा जे ओलखवा योग्य लक्षण तेनुं चिन्ह तथा कारणधर्म तथा कार्यधर्मता ए बे जुदा पडे नहीं. कार्यधर्म तथा कारणधर्मनो नाश थाय माटे वस्तुमां भेद स्वभाव मानवो.

मिति ध्रुवत्वेन नित्यस्वभावः नवनवपर्यायपरिण-
मनादिभिः उत्पत्तिव्ययरूपो अनित्यस्वभावः उत्पत्ति-
व्ययत्वत्वानित्यम् १

अर्थ ॥ एक अप्रच्युतिनित्यता बीजी परंपरनित्यता
त्यां अप्रच्युतिनित्यता तेने कहियें जे द्रव्य ते उर्ध्व प्रचय
पर्यायने परिणमते ए द्रव्य तेहिज ए ध्रुवतारूप ज्ञान
न छे पहेले समा मंडस बने काले तेहिज एवुं जे ज्ञान
न छे ते मूल स्वभाव पलटे नहीं ते अप्रच्युति नित्यता
कहियें अने ए नित्यतानो जे उर्ध्व प्रचय कह्यो ते ओल-
खवे छे जे पहेले समयें द्रव्यनी परिणति हती ते बीजे
समये नवा पर्यायने उपजवे अने पूर्वपर्यायने व्यये सर्व पर्यायनी
परावर्ति थई तो पण ए द्रव्य तेहुं तेज एवुं जे ज्ञान भाव
ते द्रव्यनो उर्ध्वप्रचय कहियें उपरे समये ते माटे उर्ध्व
प्रचय कहियें.

तथा अनंता जीव सरिखा छे पण सर्व जीव जुदा ए
पण जीव एवो जीवत्वतादिस्तुल्य भिन्न जीव सत्तारूप ज्ञान
भाव ते तिर्यक्प्रचय कहियें.

ऊर्ध्वप्रचय ते समयांतरे अनेक उत्पादव्ययने पलटे पण
ए जीव ते तेज छे एवुं ज्ञान भाव ए नित्यस्वभावनो धर्म
जाणवो. ए कारणी कार्यपणानो तेहुं ज्ञान भाव ते नित्यस्वभा-
वनो धर्म जाणवो. तथा ए कारणी जे कार्यपणानो कर्ता ज्ञान
थई ते कारणी बीजे करणे भिन्न कार्य भाव एम नवे नवे
कार्यपणे पण जीव तेज छे एवुं जे ज्ञान भाव. परंपरारूप
निवृत्ति थई जाय ते परंपर नित्यता कहियें जेम प्रथम हटि-

मवस्थानात्मिकाभवनवृत्तिस्तिरोभूता नत्वभावस्यैव जाता कपालाद्युत्तरभवनवृत्यन्तरक्रमाविच्छिन्नरूपत्वा-दित्येवमादिभिराकारैर्द्रव्याण्येवभवनलक्षणान्यपदिश्य-न्ते, त्रिकालमूलावस्थाया अपरित्यागरूपोऽभव्यस्व-भावः, भव्यत्वाभावविशेषगुणानामप्रवृत्तिः अभव्य-त्वाभावे द्रव्यान्तरापत्तिः

अर्थ ॥ हवे भव्य स्वभाव तथा अभव्य स्वभाव कहे छे. जीवाजीवादिक द्रव्य छे ते परिणामि छे. समयें समयें नवा नवा परिणामें परिणमे छे. तिहां पूर्वपर्यायने विनाशे अने उत्तरोत्तर नवा नवा पर्यायने प्रगटावे एवी जे द्रव्यनी परिणति तेनुं मूल कारण ते भव्य स्वभाव कहियें. तिहां तत्त्वार्थ टीका मध्ये कह्यो छे. इहां द्रव्यानुयोगने विषे भाव धर्मने विषे एटले गुण पर्यायने विषे द्रव्य ते भव्य के० भवन थयो एटले नवो नीपजवो ते भवन इति के० एम वस्तुना गुणपर्याय जे छे ते भवन के० नवो थवा रूप समवस्थान मात्र छे एटले नवा नवा थवारूप छे. तिहां दृष्टांत कहे छे, जे पुरुष उत्थित के० उठ्यो आसीन के० वली तेहिज बेठो, बेसवुं ते पद्मासन कहियें, अथवा उठवुं ते आसन सहित थयुं जेम इत्यादिक पर्यायें ते पुरुष थाय छे तेम तेहज स्पंदन के० पूर्व पर्यायनो विनाश अने उत्तर पर्यायनो उपजवो ते स्पंदना कहियें. स्पंद-तर स्पंदितरूपपणे उपदेशे छे ते भवनधर्मनी प्रवृत्ति करे छे, जायते के० नवो उपजे अस्ति के० छतिपणे छे. विपरिणमते के० बीजाजाने परिणमे वधे सामर्थ्यं धर्म वधे अने अपक्षी-यते के० घटे विनश्यति के० विनाश पामे स्थित के० समुदाय-

[illegible] ज्ञान [illegible] [illegible] [illegible] नहीं ते माटे
[illegible] [illegible] छे. जेम ज्ञान [illegible] [illegible]
ज्ञान [illegible] [illegible] ज्ञानगुण [illegible] नवा नवा
[illegible] [illegible] [illegible] ज्ञाननी [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] छे. [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] छे.

[illegible] कार्यं [illegible] [illegible]
[illegible] विभागः [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] तेन [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] मुख्येन प्र-
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] इति मय-
[illegible]

॥ जिहां जेम धर्मास्तिकायद्रव्यनो चलन सहका-
[illegible] [illegible] अने अधर्मास्तिकायद्रव्यनो स्थिर
[illegible] [illegible] [illegible] छे. [illegible] [illegible] अवगाहना
[illegible] कार्य छे. जीवनो [illegible] [illegible] उपयोग
[illegible] छे. पुद्गलनो [illegible] ते मुख्य
[illegible] [illegible] [illegible] छे ते जिहां थायुं तिहां
[illegible] अने जिहां [illegible] ते उत्पाद थयो अने
[illegible] ते [illegible] [illegible] होय ते [illegible] तत्त्वार्थ ग्रंथ
छे. [illegible] ते [illegible] बे प्रकारना छे. एक प्रयो-
अने बीजो विश्रसा छे. [illegible] परिणामी [illegible]

जे भवन धर्मनो वर्त्तवो तेनो तिरोभाव थयो कहियें. जेम विणस्यो घट जे मृत्पिंडने विषे ते चक्रादि कारणे प्रगट थयो, जे घट तेने प्रध्वंसें विनाश कहियें. एम द्रव्यने विषे कार्य करवारूप जे पर्याय तेने तिरोभावें अन्यपणे कार्यकरण रीते समवस्थान जे रहेवुं ते समयें ते भवनवृत्ति कहियें. तथा तिरोभावपणाने अभावें थावुं जे कपालादिक उत्तर भवन तेपणे वर्त्तवुं ए पण भवन धर्म छे. एम अनुक्रमे अविच्छिन्न निरंतर रूपें इत्यादिक अनेक आकारें द्रव्य तेज भवन लक्षण कहियें. ए भव्य स्वभाव जाणवो द्रव्यनेविषे जे अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्वादिक धर्म, ते त्रणे कालमां मूल अवस्थाने अपरित्यागे के० तजता नथी. तेहिज रूपपणे रहे. एहवा जेटला धर्म ते अभव्यस्वभाव जाणवो जे, अनेक उत्पाद व्ययने परिणमने फिरवे फिरे पण जीवनो जीवपणो पलटाय नही तेमज अजीवनो अजीवपणो पलटाय नही ए सर्व अभव्य स्वभाव जाणवो.

हवे ए बे स्वभाव जो द्रव्यमां न मानियें तो शो दोष थाय ? ते कहे छे. जो द्रव्यने विषे भव्यपणो न मानियें तो द्रव्यना जे विशेष गुण गतिसहकार, स्थितिसहकार, अवगाह दान, ज्ञायकता, वर्णादि जे पंचास्तिकायना विशेष गुण तेनी प्रवृत्ति न थाय, अने प्रवृत्ति विना कार्यनो करवो न थाय अने कार्यने अणकरवे द्रव्यनो व्ययपणो थाय, ते माटे भव्य स्वभाव छे.

जो द्रव्यने विषे अभवनरूप अभव्य स्वभाव न होय अने एकलो भवन स्वभावज होय तो नवा नवापणे थवे ते द्रव्य पल्टीने अन्य द्रव्य थयी जाय ते माटे द्रव्यत्व सन्य

[illegible]

[illegible]

कहियें. तें वक्तव्य धर्मथी अवक्तव्य धर्म अनंतगुणा छे. वचनतो संख्याता छे पण ते वचनोमां एवो सामर्थ्य छे जे अवक्तव्य धर्म सर्वनो ज्ञानपणो थाय. उक्तं च अभिलप्पा जे भावा, अणंतभागो य अणभिलप्पाणं, अभिलप्पसाणंतो, भाग सुए निबद्धो अ ॥ १ ॥ तत्र के० तिहां अक्षर संख्याता छे ते अक्षरना सन्निपात संयोगीभाव असंख्याता छे ते अक्षर संन्निपातने ग्रहवाय एवा जे पदार्थादिकना भाव ते अनंतगुणा छे, तेथी अवक्तव्य भाव अनंतगुणा छे, जे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अभिलाप्यभावनो परोक्षप्रमाणे ग्राहक छे. अवधिज्ञान ते पुद्गलनो प्रत्यक्ष प्रमाणे जाणग छे, पण एक परमाणुना सर्व पर्यायने जाणे नही. केटलाक पर्यायने जाणे ते पण असंख्यात समयें जाणे अने केवलज्ञान ए छ द्रव्यना सर्व पर्यायने एक समयमां प्रत्यक्ष जाणे. माटे जो द्रव्यमां वक्तव्यपणो न होय तो श्रुतज्ञाने ग्रहण थाय नही अने जे ग्रंथाभ्यास, उपदेशादिक, सर्व काम थाय छे तेतो एम नथी माटे द्रव्यमां व्यक्तव्यपणो छे.

अवक्तव्याभावे के० अवक्तव्यपणाने न मानियें तो अतीतपर्याय ते वस्तुमां कारणतानी परंपरामां रह्या छे, तथा अनागतपर्याय सर्व योग्यतामां रह्या छे ते सर्वनो अभाव थाय, ते वारें वस्तुमां वर्तमान पर्यायनी छति पामियें तेथी अतीत अनागतनो ज्ञान थाय नहीं, माटे अवक्तव्य स्वभाव अवश्य मानवो अने वर्तमान सर्व कार्य ते निराधार थइ जाय अने द्रव्यमां एक समयमां अनंता कारण छे ते अनंता कारणना अनंता कार्य धर्म छे अने अनंता कार्यना अनंता कारण परंपरानुं ज्ञान ते केवलीने छे अने वर्तमानकालें कारण धर्म तथा कार्य धर्मथी अनंतगुणा कारण कार्यनी योग्यरूप सत्ता छे ते कोइना अवि-

परिणमे ते रीतेज केवल ज्ञान जाणे ते जे समये घटज्ञान हतुं ते समयांतरे घट ध्वंस थये कपालनुं ज्ञान थाय तेवारें घटप्रति भासनो ध्वंस कपाल प्रति भासनो उत्पाद अने ज्ञाननो ध्रुवपणो एम दर्शनादि सर्व गुणनो प्रवर्त्तन जाणवो.

तथा धर्मास्तिकायने विषे जे समये संख्यात परमाणुनो चलन सहकारिपणो हतो, फरी समयांतरे असंख्यात परमाणुने चलनसहकारीपणो करे तेवारें संख्याता परमाणु चलनसहकारनानोव्यय अने असंख्येय परमाणुने चलनसहकारतानो उत्पाद अने चलनसहकारीपने ध्रुव छे. एमज अधर्मास्तिकायादिकने विषे पण सर्व गुणनी प्रवृत्ति थाय छे. ए रीते द्रव्यनेविषे अनंता गुणनी प्रवृत्ति छे. इहां कोइ पुछशे जे धर्मास्तिकाय मध्ये अनंता जीव तथा अनंता परमाणु ते चलणसहकारी थाय एटलो चलनसहकारी छे, तो थोडा जीव अने थोडा परमाणुनें चलणसहकार करतां बीजो गुण कयो अणप्रवर्त्यो रह्यो ? एम कहे तेने उत्तर के निरावरण जे द्रव्य छे तेनो गुण अप्रवर्त्यो रहेज नही अने जीव पुद्गल जे आवी पहोता तेने सहकारें सर्व चलन सहकारी गुणना पर्याय ते प्रवर्ते ज छे. केमके अलोकाकाशमध्ये जो अवगाहक जीव पुद्गल नथी तोपण अवगाहक दान गुणतो प्रवर्त्ते ज छे. तेम धर्मास्तिकायादिकमां जीव पुद्गल थोडाने पोंचवे, पण गुण तो बधो प्रवर्त्ते ज छे, एम धारवो. ए रीतें गुण पर्यायनो उत्पाद व्यय ध्रुवरूप धर्म कहेवो. ए चोथुं रूप कयुं.

तथा सर्वे पदार्थाः अस्तिनास्तित्वेन परिणामिनः तत्रास्ति भावानां स्वधर्माणां परिणामिकत्वेन उत्पाद-

भव्यायोजनीयाः क्रियावत्त्वं पर्यायोपयोगिता प्रदे-
शाष्टकनिश्चलता एवंप्रकाराः संति भूयांसः अनादिपरि-
णामिका भवन्ति जीवस्वभावा धर्मादिभिस्तु समाना
इति विशेषः।

अर्थ ॥ तेमज अस्तिपणो, नास्तिपणो, कर्त्तापणो, भोक्तापणो, गुणवंतपणो, असंख्यातिपणो, प्रदेशवंतपणो, इत्यादि अनंत स्वभाववंत द्रव्य छे. तेमज तत्त्वार्थ टीकामध्ये परिणामिक भावना भेद वखाणनां कर्या छे. पुनरपि आदि शब्दना ग्रहण करतां एम जणावे छे जे वस्तु अनंत धर्मवंत छे ते सर्व गिणनारी शके नही तो पण द्रव्य द्रव्यने विषे प्रवचनना जाण पुरुषे जेम संभवे तेम धर्म जोडवा. तथा क्रियावंतपणो जे ज्ञानादिक गुण ते लोकालोक जाणवाने प्रति समये प्रवर्त्ते छे. श्री भाष्यकारे ज्ञानादि गुण ते करण अने तेज गुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया जाणवी तथा देखवो ते कार्य एम धर्मास्तिकायादिकना सर्व गुण ते स्व परिणतिये परिणामी छे, ते माटे पंचास्तिकाय ते अर्थ क्रिया कर छे, ते क्रियावंतपणो जाणवो. सर्व पर्यायनो उपयोगीपणो ए पण जीव स्वभाव छे तथा प्रदेशाष्टकनी निश्चलता ए पण जीवनो स्वभाव छे. तिहां धर्माधर्म अने आकाश ए त्रण अस्तिकायना प्रदेश अनादि अनंतकाल अचलितपणे छे. पुद्गलने चलपणो सदा सांत छे. पुद्गलपरमाणु तथा पुद्गलस्कंध ते संख्यातो काल अथवा असंख्यातो काल एक ठेकाणे रहे पण पछे अवश्य चल थाय. तथा जीवद्रव्यने मध्यना संसारीने देशनी स्थानांतर गमन करवो भवांतर गमनरूप थतो छे, ते जीवने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्चारित्रने प्रगटवे सर्व परभावभोगीपणो निवारे

च भवन्ति अन्यथा तत्र नवोत्पादव्ययौ नापेक्षितौ-
विति न्यूनं एवं सल्लक्षणं स्यात् इति षड्ः ॥

अर्थ ॥ तथा के० तेमज वळी सर्व द्रव्य तथा पर्याय ते अगुरुलघु धर्म संयुक्त होय द्रव्यने प्रदेशें अगुरुलघु अनंतो छे. ते अगुरुलघु समयें समयें प्रदेशें तथा पर्यायें कोइक वारें वृद्धि पामे कोइक वारें घटी जाय ते वधघट थवो छ छ प्रकारें छे. १ अनंत भाग हानि, २ असंख्यात भाग हानि, ३ संख्यात भाग हानि, ४ संख्यात गुण हानि, ५ असंख्यात गुण हानि, ६ अनंत गुण हानि, ए छ प्रकारें हानि तथा १ अनंत भाग वृद्धि, २ असंख्यात भाग वृद्धि, ३ संख्यात भाग वृद्धि ४ संख्यात गुण वृद्धि, ५ असंख्यात गुण वृद्धि, ६ अनंत गुण वृद्धि. ए छ प्रकारनी वृद्धि ते सर्व द्रव्यना सर्व प्रदेशें सर्व पर्यायमां थाय. एक प्रदेशमां कोइक समयें वधे छे कोइक समयें घटे छे जेम परमाणुमां वर्णादिक वधे घटे छे तेम अगुरुलघुपणो पण वधेघटे छे. हानिनो व्यय छे तो वृद्धिनो उत्पाद छे. अथवा वृद्धिनो व्यय छे तो हानिनो उत्पाद छे पण अगुरुलघु ध्रुवनो ध्रुव छे. एम सर्व द्रव्यने विषे जाणवो. तिहां तत्त्वार्थटीकामां आकाशें द्रव्यना अधिकारे कह्युं छे ते लखियें छैयें. जिहां अलोकाकाशमध्ये अवगाहक जीव पुद्गलादिक द्रव्य नथी तिहां पण अगुरुलघुपर्यायवंतपणो अवश्य छे. ते अगुरुलघुनी अनित्यता अवश्य अंगीकारे छे अने ते अगुरुलघु ते पर्यायें तथा प्रदेशें अन्य अन्य के० बीजो बीजो थाय छे एटले पूर्व समयें अगुरुलघुनो व्यय अने बीजे समयें नवा अगुरुलघुनो उत्पाद छे. जो ए रीते नवो उत्पाद व्यय

छे. तेथी ए आठ प्रदेशने बंध नथी, तथा कार्याभ्यासें प्रदेश मेला थाय तेथी प्रदेशना गुण पण तिहां ते कार्य करवाने प्रवर्त्ते छे तथा जे द्रव्यनो जे गुण जे प्रदेशें होय ते गुण ते प्रदेश मूकी अन्य क्षेत्रें जाय नही तथा जीवना आठ प्रदेश सर्वथा निरावरण छे. बीजा प्रदेश अक्षरनो अनंतमो भाग चेतना सर्वदा उघाडी छे. ए रीते गति के० छे. घणा अनादि परिणामिकभाव ते भवंति के० होय. अनादि परिणामिकभाव छे ते जीवना भाव छे अने सप्रदेशादिक धर्मास्तिकाय प्रमुखने विषे समान छे एम जाणवो. इत्यादिक विशेष स्वभाव छे.

भिन्नभिन्नपर्यायप्रवर्त्तनरूपकार्यकारणसहकारभूताः पर्यायानुगतपरिणामविशेषस्वभावाः ते च के, १ परिणामिकता, २ कर्तृता, ३ ज्ञायकता, ४ ग्राहकता, ५ भोक्तृता, ६ रक्षकता, ७ व्याप्यव्यापकता, ८ आधाराधेयता, ९ जन्यजनकता १० अगुरुलघुता, ११ विभुत्वकारणता, १२ कारकता, १३ प्रभुता, १४ भावुकता, १५ अभावुकता, १६ स्वकार्यता, १७ सप्रदेशता, १८ गतिस्वभावता, १९ स्थितिस्वभावता, २० अवगाहकस्वभावता, २१ असंगता, २२ अनन्तता, २३ अमूर्त्तता, २४ अक्रियता, २५ सक्रियता इत्यादि स्वीयोपकरणप्रवृत्तिनिमित्ताः " उक्तं च सम्मतौ " आगमोपलब्धि सर्वदर्शने तत्र वस्तुधर्मैः उपादानासत्वात् न पर्यायाभिमुखता इति .

अर्थ ॥ हवे विशेष स्वभाव कहे छे. भिन्नभिन्न जे पर्याय छे तेनुं कार्य करवाने जे प्रवर्त्तन तेना सहकारभूत जे परि-

शक्तेरभावः अर्थक्रियासंभवः तथा समस्तस्वभावप-
र्यायाधारभूतमव्यप्रदेशानां स्वस्वक्षेत्रभेदरूपाणामेकत्व-
पिण्डीरूपापरित्यागः एकस्वभावः ॥ क्षेत्रकालभावानां
भिन्नकार्यपरिणामानां भिन्नभावरूपोऽनेकस्वभावः ए-
कत्वाभावे सामान्याभावः ॥ अनेकत्वाभावे विशेषध-
र्माभावः स्वस्वामित्वव्याप्यव्यापकताप्यभावः

अर्थ ॥ एमज सर्व द्रव्यमां नित्यता तथा अनित्यता छे. ए नित्य अनित्यपणा विना द्रव्य कोइ नथी ज. द्रव्यमां नित्यता न होय तो कार्यनो अन्वय कोने होय ? एटले अमुक कार्य ते अमुक द्रव्ये कर्यो एम कह्यो जाय नहीं माटे द्रव्यमां नित्यता मानवाथीज अमुक द्रव्ये अमुक कार्य कर्यो एम कहेवाय छे माटे जो द्रव्यने नित्यपणेज मानियें तो गुणनुं कार्य ते द्रव्यनो कहेवाय अने गुण ते द्रव्य न कहेवाय अने जो द्रव्य नित्य होय तो कारणपणानो अभाव थाय माटे द्रव्यमां नित्यता मानवी अने जो द्रव्यमां अनित्यपणो न मानियें तो जाणंग आदे देइनें सर्व द्रव्यना गुणरूप कार्यनो अभाव थइ जाय, अर्थ क्रिया संभवे नहीं, एटले कोइक अनित्यपणो होय तो अर्थ क्रियाने करे केमके करवापणो कोइक बीजापणो एटले नवापणो निपजाववो ते पूर्व पर्यायनो ध्वंस थयेथी थाय अने ते एकनो ध्वंस अने कोइक बीजा नवानो नीपजवो ते द्रव्यमां अनित्यपणो छे एटले नित्य स्वभाव तथा अनित्य स्वभाव ओलखाव्या. हवे एक स्वभाव तथा अनेक स्वभाव ओलखावे छे.

तथा के० तेमज समस्त के० सर्व जे स्वभाव अस्तित्व,

देवसेनकृत नयचक्रमध्ये जीवने अचेतन स्वभाव, मूर्त स्वभा
तथा पुद्गल परमाणुने चेतन स्वभाव, अमूर्त स्वभाव कह्या
असत् छे, एतो आरोपणपणे कोइक कहे ते कथनमात्र जाण
पण ए वात छतीमां नथी, जे धर्म आरोपें तथा उपचारें ग
थाय ते वस्तुनो धर्म नथी. उपाधियी थाय छे, ते माटे
उपाधि ते वस्तुनी सत्ता नथी एम धारवुं.

धर्मास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रियगतिसहायादयो गुणाः। अधर्मास्तिकाये अमूर्त्ता चेतनाक्रियस्थितिसहकारादयो गुणाः। आकाशास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रियावगाहना-दयो गुणाः। पुद्गलास्तिकाये मूर्ताचेतनसक्रियपूर्णग-लनादयो वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः। जीवास्तिकाये ज्ञानदर्शनचारित्रवीर्याऽव्याबाधामूर्त्ताऽगुरुलघ्वनवगा-हादयो गुणाः। एवं प्रतिद्रव्यं गुणानामनन्तत्वं ज्ञेयम्॥

अर्थ ॥ धर्मास्तिकायना गुण चार १ अरूपी, २ अचे
तन, ३ अक्रिय, ४ गतिसहाय इत्यादि अनंतगुण छे. अधर्मा
स्तिकायना गुण चार १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४
स्थितिसहाय, इत्यादि अनंतगुण छे. आकाशास्तिकायना गु
चार १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ अवगाहनादि
अनंतगुण छे. पुद्गलास्तिकायना गुण चार छे १ रूपी, २ अचे
तन, ३ सक्रिय, ४ पूर्णगलन. १ वर्ण, २ गंध, ३ रस, ४ स्प
इत्यादिक गुण अनंता छे. जीवास्तिकायने विषे १ ज्ञान, २
दर्शन, ३ चारित्र, ४ वीर्य, ५ अव्याबाध, ६ अरूपी, ७ अगु
रुलघु, ८ अनवगाहादिक अनंतगुण छे, ए रीतें अनंतगुण
जाणवा.

ते स्थानक ते ए रीते द्रव्यनां एक स्वभाव तथा अनेक स्वभाव जाणवा.

स्वकार्यभेदेन स्वभावभेदेन अगुरुलघुपर्यायभेदेन भेदस्वभावः अवस्थानाधारत्वादिभेदेन अभेदस्वभावः भेदाभावे सर्वगुणपर्यायाणां संकरदोषः गुणगुणिनोः लक्षणः कार्यकारणतानाशः अभेदाभावे स्थानभ्रंशः कस्यैते गुणाः को वा गुणी इत्याद्यभावः

अर्थ ॥ स्वस्व के० पोतपोतना कार्यने भेदे करी एटले ज्ञेयद्रव्यनो जाणवु ते ज्ञानगुणनुं कार्य करे तथा चारित्र-गुण स्थिरतारमणरूप कार्य करे तथा पुद्गलद्रव्य ते रूपनो भिन्न कार्य करे, तथा वर्णनो, गंधनो, रसनो अने स्पर्श-नो, सर्व कार्य भिन्न छे. तथा स्वभाव भेद ते अस्तित्व-भाव सहित रूप छे. नित्य स्वभाव अविनाशीपणे छे. अनि-त्यपणो ते उत्पाद व्यय रूप छे. एकपणो ते पिंडरूप छे. अनेक-पणो ते प्रदेशादिक छे. इत्यादि स्वभाव भेद तथा अगुरुल-घुपर्याय सर्वगुणविभागे जूदो जूदो छे. कोई कोईनो तुल्य नथी. हानिवृद्धिरूप परिणमन छे. इत्यादि प्रकारे द्रव्यनां भेद स्वभाव छे.

तथा सर्व धर्मनो अवस्थान के० रहेवो तेने आधारपणो वर्तवो तुल्य के० सरिखापणानो केवारें भिन्न पडतो नथी. तेमाटे द्रव्यनो अभेद स्वभाव छे.

जो द्रव्य गुणपर्यायमां भेद स्वभाव न होय तो सर्व संकर एकपणो थाय तेवारें कार्यनो भेद केम पडे? ते माटे सर्व द्रव्य गुणपर्यायमां भेद सर्व भाव छे. जीव ते चेतना लक्षणवंत

३ एक गुणना अविभाग अनंता छे तेनो पिंडपणो ते गुणपर्याय कहिये ४ गुणव्यंजन पर्याय ते ज्ञानना जाणगपणो तथा चारित्रनो स्थिरतापणो इत्यादिक अथवा ज्ञानगुणना भेदांतर ज्ञानना भेद जे मतिज्ञानादिक पांच तथा दर्शनगुणना चक्षुदर्शनादिक भेद तथा चारित्र गुणना क्षमादिक भेद, पुद्गलनो रूपी गुण तेना भेद वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संस्थानादिक, अरूपी गुणना अवर्ण, अगंधे, अरसे, अफासे, इत्यादिक चार चार जाणवा ते गुण व्यंजन पर्याय, ५ स्वभाव पर्याय ते वस्तुनो कोइक स्वभावज एवो छे ते अगुरुलघुपणे छे. छ प्रकारनी वृद्धि तथा छ प्रकारनी हानि एवी रीते बार प्रकारे परिणमे छे. इहां कोइ प्रेरकनो योग नथी. वस्तुने मूल धर्मनो हेतु छे. एनुं स्वरूप पूर्ण वचनगोचर नथी. अनुभव गम्य नथी. केमके श्रीठाणांगसूत्रनी टीका मध्ये श्रुतज्ञान वृद्धिना सात अंग छे तिहां प्रथम सूत्रअंग बीजुं निर्युक्तिअंग, ३ भाष्यअंग, ४ चूर्णिवालो सूत्रादि सर्वना अर्थ कहे छे. ५ टीका व्याख्या निरंतर ए पांच अंग तो ग्रंथरूप छे. तथा छट्ठो अंग परंपरारूप छे तथा सातमुं अंग अनुभव ए साते कारणे विनय सहित भणतां सुणतां थकां, साचा अर्थ पामिने आत्मानुं निर्मल ज्ञान थाय. श्री भगवतीसूत्रे "गाथा" सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निर्युत्तिमिसिओ भणीओ, तइयो अ निरवसेसो, एस विहि होइ अणुओगे, ए पांच पर्याय कह्या ते सर्व द्रव्य मध्ये छे.

६ विभाव पर्याय ते जीव तथा पुद्गल मध्येज छे, ते विभाव पर्याय जीवने नरनारकीपणुं पामवुं ते तथा पुद्गलने द्व्यणुक त्र्यणुकादिक खंधनो मिलवुं, अनंतागुण पर्यंत अनंत पुद्गल स्कंधरूप ते विभाव पर्याय कहियें.

तथा जो वस्तुनों अभेदपणो न मानियें तो स्थानवंत
छे जे स्थान कोण? अने ते स्थानकमां रहे ते कोण छे?
दिकनो अभाव थाय छे. एम विचारतां सर्वथा एकपणो
नां कोण गुणी? अने कोण गुण? एम ओळखाण न थाय.
रीतें भेदाभेद स्वभाव वस्तुनो मानवो.

परिणामिकत्वे उत्तरोत्तरपर्यायपरिणमनरूपो भव्यस्व-
भावः तथा तत्त्वार्थवृत्तौ भू तु भावे द्रव्यं भव्यं
भवनमिति गुणपर्यायाश्च भवनसमवस्थानमात्रिका एव
दधिपनास्तीतीत्युच्यतामृतसामान्यपुरुषपर्यायवदेव द्रव्यं-
तत्व्यक्तिरूपेणोत्पद्यते, जायते, अस्ति विपरिणमते,
वर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति षिड्डातिरिक्त इत्थं-
नरावस्थाप्रकाशनायां तु जायते इत्युच्यते सत्ताया-
ऽय भवनवृत्तिः अस्ति इत्यनेन निर्व्यापारात्मसत्ता
ऽऽख्यायते भवनवृत्तिरुदासीना अस्तिशब्दस्य निपा-
तत्वात् विपरिणमते इत्यनेन तिरोभूतात्मरूपस्यानु-
च्छिन्नतथावृत्तिकस्य रूपान्तरेण भवनं. यथा क्षीरं दधि-
भावेन परिणमते. विकारान्तरवृत्त्या भवनवाचिट्ठने
स्वात्मन्यपत्तिसंभावृत्तिर्वा विपरिणामः वर्द्धते
इत्यनेन तूपचयः भवति यथाङ्कुरो वर्द्धते उपच-
यवत् परिणामरूपेण भवनवृत्तिर्ध्वंस्यते अपक्षीयते
इत्यनेन तु तस्यैव परिणामस्यापचयवृत्तिराख्यायते
दुर्बलीभवत् पुरुषवत् पुरुषबलापचयस्य भवनवृत्त्यन्त-
रव्यक्तिरुच्यते विनश्यति इत्यनेनाविर्भूतभवनवृत्ति-
स्तिरोभवनमुच्यते यथा विनष्टो घटः प्रतिविशिष्ट-

सिद्धत्वपणो प्रगटे भव्यत्वपर्यायनो विनाश छे ते माटे अनादिकालनो छे पण अंत थया सहित छे, माटे अनादि सांतपर्याय छे, एम पर्याय अनेक जाणवा.

तथा वस्तुमां सहजना जे चार निक्षेपा छे ते पण वस्तुना स्वपर्याय छे, ते श्रीविशेषावश्यकनी भाष्यमध्ये कह्यो छे. "चत्तारो वत्थुपज्झाया" ए वचन छे ते माटे स्वपर्याय कहियें. वली श्रीअनुयोगद्वारसूत्रमां कह्यो छे, जिहां जे वस्तुना जेटला निक्षेपा जाणियें तिहां ते वस्तुना तेटला निक्षेपा करियें. कदाचित् वधता निक्षेपा भासनमां न आवे तोपण १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ भाव, ए चार निक्षेपा तो अवश्य करवा. तेमां नामनिक्षेपाना बे भेद छे.

१ सहजनाम, २ सांकेतिकनाम, ते कोइनो कर्यो नाम, तथा स्थापनाना बे भेद छे. १ सहजस्थापना ते वस्तुनी अवगाहनारूप, २ आरोपस्थापना ते आरोपथी थयी माटे कृत्रिम कहियें, आरोपजा कहियें. हवे द्रव्य निक्षेपाना बे भेद छे ते कहे छे, १ आगमथी द्रव्य निक्षेपो ते जे जे पुरुषना स्वरूपना जाणपणे हमणां ते उपयोगें नथी ते आत्मद्रव्यनिक्षेप जे वस्तु ते गुण सहित छे, पण हमणां तेपणे वर्तता नथी. तेहना त्रण भेद छे. १ ज्ञशरीर जेहना हता पण मरण पाम्या तेथी तेनुं शरीर जे ऋषभदेवना शरीरनी भक्ति श्रीजंबूद्वीप पन्नतीमां छे, २ भव्यशरीर ते हमणां तो गुणमय नथी पण गुणमय थशे, जेम अयमंतामुनि, ए भव्यशरीर जाणवो, ३ तद्व्यतिरिक्त जे ते गुणे वर्ते छे पण ते उपयोगें हमणा वर्तता नथी.

भावनिक्षेपाना बे भेद १ आगमथी भावनिक्षेपो ते आ-

तेथी अतीरिक्त, के० वांझी शनि जे गुरुनी महत्वंतनी
ाले प्रवाह पदे करीने जे भवनवनो थाय मुक्ते टेरी जे
त्ति ते सत्याकार छे पण निराकार नथी.

अनि ए वचने निराकार आत्मशक्ति छे ते कहियें छैयें.
भवनशक्तिनी उत्पत्ति छे मुक्ते भवनशक्तिने महा कर्मी
अनि शब्दे निपातनवनो छे, विसरिणमते ए वचने नि-
के० आतमरूढी जे वस्तु तेमां तत्परतो अनुविद्ध के०
गई. तथा प्रतिपन्न के० ते रीतें वर्तने आत्मशक्ति
पांतरे थवो ते भवन कहियें. जिहां दृष्टांत जेम क्षीर ते दृध
ं परिणमे, विकारांतर थवो ते रीतें रहे ए भवनधर्म
जे ज्ञानादिपर्यायनो अनंतज्ञेय जाणवानी शक्ति छे पण
ले रीतें परिणमे ते रीतें ज्ञानगुण प्रवर्ते ए ज्ञानगुणनुं
ते प्रतिसमयें विसरिणामपने परिणमन छे. ए पण
धर्म छे. वळी पूर्वंतरवर्तने अन्वयपणे व्याप्तिने हेतु करीने
तरे वर्तवो ते विपरिणाम कहियें. तथा वळी वर्द्धते के०
वचने उपचयरूपपणे प्रवर्ते जेम अंकुर वधे छे तेम
ः पुद्गलना गुण उपचयपणे वधे ए उपचयरूप भवनना
त्पत्ते के० प्रगट करियें छैयें.

र गुणने कार्यांतरपणे परिणमने द्रव्यमां भवन धर्म छे
ीयते " ए वचने वर्तने तु के० वळी तेहिज परिणा-
ामो थवो अथवा टळवो कहियें, दुर्बल थता पुरुषनी
र पुरुष दुर्बल थाय तेम पर्यायने घटवे द्रव्य प्रमाणा-
या ते समयें अगुरुलघु पर्याय घटवे ते दुर्बल थयुं
जे भवन शक्तिने अंतरे व्यक्ति के० प्रगटता करि छे
विनाशपनि ' एम कहेवाथी आविर्भूत के० प्रगट थयो

शापलापी पुनर्नयाभासः, स व्याससमासाभ्यां द्विप्रकारः व्यासतोऽनेकविकल्पः समासतो द्विभेदः द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकः तत्र द्रव्यार्थिकश्चतुर्धा १ नैगम, २ सङ्गह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्रभेदात्, पर्यायार्थिकस्त्रिधा, १ शब्द, २ समभिरूढ, ३ एवंभूतभेदात्.

अर्थ ॥ जे नय छे ते पदार्थना ज्ञानने विषे ज्ञानना अंश छे. *तिहां नयतुं लक्षण* कहे छे. अनंत धर्मात्मक जे वस्तु एटले जीवादिक एक पदार्थमां अनंता धर्म छे तेनो जे एक धर्म गवेष्यो तो पण अन्य के० बीजा अनंता धर्म तेमां रह्या छे तेनो उच्छेद नही अने ग्रहण पण नही एक धर्मनी मुख्यता करवी ते नय कहियें. ते नयना व्यास के० विस्तारथी अनेक भेद छे अने समास के० संक्षेपथी बे भेद छे १ द्रव्यार्थिक, २ पर्यायार्थिक, ते रत्नाकरावतारिकाग्रंथथी लखियें छैयें " द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवत् तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं तदेवार्थः सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन स द्रव्यार्थिकः "

जे वर्त्तमान पर्यायने द्रवे छे अने आगामिककालें द्रवसे तथा अतीतकालें द्रवतो हतो ते द्रव्य कहियें तेज छे अर्थ प्रयोजन विषयपणे जेने ते द्रव्यार्थिक कहिये. एटले पर्याय ते जन्य अने द्रव्य ते जनक कह्यो तथा द्रव्य ते ध्रुव अने पर्याय ते उत्पाद विनाशरूप छे उक्तं च.

" पर्येति उत्पादविनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः स एवार्थः सोऽस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिकः " जे उपजवा विणशवानो परि के० नवा नवापणे एति के० पामे तेज अर्थ प्रयोजन

स्वकार्यादि धर्म अभव्यनो छे तेनोज द्रव्य पलटतो नथी तेमनो तेमज रहे छे ए अभव्यभाव छे.

वचनगोचरा ये धर्मास्ते वक्तव्याः, इतरे अवक्तव्याः। अस्तिताद्यः मोक्षादयः जन्मादिजातिः प्रदेशत्वादयः गत्युत्पाद भावाः भावश्रुतगम्याः. अनन्तगुणाः वक्तव्याभावे श्रुतज्ञानस्यावरणैः भवनत्वभावे भवसिद्धानामनन्तभागानां शास्त्रादावविष्टाःवाग्गम्याः सर्वज्ञानां निगद्-यन्तेऽपि शेषाणां पदार्थानां च विशेषगुणानन्त-भिन्नस्वभावावगम्यानामनन्तत्वात् अवक्तव्यगुणाः भेदाः भावरूपाः. भावानामवाच्यगुणानामेषां सर्व-नुभवितृणि नुः परमस्वभावः इत्यादयः भावान्य-स्वभावाः ॥

अर्थ ॥ आत्मानो वीर्यनामा गुण तेना अविभाग जे वीर्यांतराय कर्मे आवर्या छे तेज वीर्यांतरायने क्षयोपशमे तथा क्षय थवाथी प्रगटयो जे वीर्यधर्म तेने भाषापर्याप्ति नामकर्मने उदये ग्रहणकाले भाषावर्गणानां पुद्गल ते भाषपणे परिणमे ते मात्र पुद्गल स्कंध छे. पण श्रोताजनने जाणवा हेतु छे एटले तेनां जे गुण न होय ते गुणनुं कारण पण थाय नहीं एम जे वदे छे ते मृषा छे. केमके जे निमित्त कारण होय तेनो गुण होय किंवा न पण होय. अने उपादान कारणनां ते गुणना कारणताने तथा योग्यतानो नियामक छे ने वचनयोगे ग्रहवाय एवा जे वस्तुनां धर्म छे तेने वक्तव्य धर्म कहिये अने तेथी इतर ते० एवा जे धर्मास्तिकाय द्रव्यनां अनेक धर्म छे ने वचननां ग्रहवाना नथी, तेवा सर्व धर्म अवक्तव्य

विकल्पान्तरे ऋजुसूत्रस्य पर्यायार्थिकताप्यस्ति स नैगमस्त्रिप्रकारः आरोपांशसङ्कल्पभेदाद् विशेषावश्यके तूपचारस्य भिन्नग्रहणात् चतुर्विधः। न एके गमा आशयविशेषा यस्य स नैगमः तत्र चतुःप्रकार आरोपः द्रव्यारोपगुणारोपकालारोपकारणाद्यारोपभेदात् तत्र गुणे द्रव्यारोपः पञ्चास्तिकायवर्त्तनागुणस्य कालस्य द्रव्यकथनं एतद्गुणे द्रव्यारोपः १ ज्ञानमेवात्मा अत्र द्रव्ये गुणारोपः २ वर्त्तमानकाले अतीतकालारोपः अद्य दीपोत्सवे वीरनिर्वाणं, वर्तमाने अनागतकालारोपः अद्यैव पद्मनाभनिर्वाणं, एवं षड् भेदाः कारणे कार्यारोपः बाह्यक्रियाया धर्मत्वं धर्मकारणस्य धर्मत्वेन कथनं। सङ्कल्पो द्विविधः स्वपरिणामरूपः कार्यान्तरपरिणामश्च अंशोऽपि द्विविधः भिन्नोऽभिन्नश्चेत्यादि शतभेदो नैगमः।

अर्थ ॥ वळी विकल्पांतरे ऋजुसूत्र ते पर्यायार्थिकमां पण कह्यो छे. केमके ए विकल्परूप नय छे ते माटे. तेमां नैगमना त्रण भेद छे १ आरोप, २ अंश, ३ संकल्प तथा विशेषावश्यकमां चोथो भेद पण उपचारपणे कहे छे, नथी एक गमो अभिप्राय जेनो ते नैगमनय कहियें. एटले अनेक आशयी छे ते नैगमनयना चार भेद छे ते मध्ये आरोपना चार प्रकार छे. १ द्रव्यारोप, २ गुणारोप, ३ कालारोप, ४ कारणाद्यारोप.

१ तिहां गुणादिकने विषे द्रव्यपणो मानवो ते द्रव्यारोप. जेम वर्तना परिणाम ते पंचास्तिकायनो परिणमन धर्म छे तेने कालद्रव्य कहि ओलाख्यो ए काल ते भिन्न पिंडरूप द्रव्य नथी.

भाग नथी पण अविभागी जे ज्ञानादिक गुण तेमां अनंता कारणधर्म अनंता कार्यधर्म ऊपजवानी योग्यतारूप सत्ता छे ते सर्व अवक्तव्यरूप छे.

हवे परम स्वभावनुं स्वरूप कहे छे. सर्व जे धर्मास्तिकायादिक पदार्थ तेना विशेष गुण जे धर्मास्तिकायनो चलन सहकारीपणो तथा अधर्मास्तिकायनो स्थितिसहाय आकाशास्तिकायनो अवगाहक तथा पुद्गल द्रव्यनो पूरणगलन, जीव द्रव्यनो चेतना लक्षण, ए सर्व द्रव्यना विशेष गुण कह्या. एम लक्षणरूप तथा द्रव्यांतरथी भिन्न पाडवानुं मूल कारण ते परम प्रकृष्ट गुण कहिये. ए प्रधान गुणने अनुयायी बीजा जे साधारण गुण ते गुण पंचास्तिकायमां पामिये. ते नामना अविनाशीपणो, अखंडपणो, नित्यत्वादिक कर्म ए पंचास्तिकायने सरिखा छे ते माटे साधारण गुण तथा पंचास्तिकायमां कोइक अस्तिकायमां पामिये. कोइकमां न पामिये ते गुणने साधारण असाधारण कहिये, ते सर्व गुणने विषे विशेष गुणने अनुयायि प्रवर्ते छे ते प्रवर्तनना कारण द्रव्यमां एक परमस्वभाव पणो छे, ते परमस्वभावने परिणमने द्रव्यना सर्व गुण मुख्य गुणने अनुगने ज प्रवर्ते. ते परमस्वभाव सर्व द्रव्यने विषे छे एटले ते सामान्य स्वभाव कह्या. वली अनेकांतजयपताकामां कह्या छे.

तथास्तित्व, नास्तित्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, अमर्त्यगतत्व, प्रदेशत्वाद्यविभागाः पुनः तत्स्वार्थटीकायां पुनरप्यादिग्रहणं सुर्वन् ज्ञापयत्यपरानन्तधर्मवत्त्वं तथात्मनः सम्ता-स्यन्तु सर्वे धर्माः प्रतिपदं प्रवचनज्ञेन पुंसा यथासं-

उत्तरतश्च, मूलतोऽस्तित्वादिभेदतः षड्विधः उत्तरतो जातिसमुदायभेदरूपः जातितः गवि गोत्वं, घटे घटत्वं, वनस्पतौ वनस्पतित्वं, समुदयतो सहकारात्मके वने सहकारवनं, मनुष्यसमूहे मनुष्यवृंदं, इत्यादि समुदायरूपः अथवा द्रव्यमिति सामान्यसङ्ग्रहः जीव इति विशेषसङ्ग्रहः तथा विशेषावश्यके "संगहणं संगिन्हइ संगिन्हंतेवतेणं जं भेया तो संगहो संगिहिय पिंडियत्थं वउज्जास्स" संग्रहणं सामान्यरूपतया सर्ववस्तुनामाक्रोडनं सङ्ग्रहः अथवा सामान्यरूपतया सर्वं गृह्णातीति सङ्ग्रहः अथवा सर्वेऽपि भेदाः सामान्यरूपतया सङ्गृह्यन्ते अनेनेति सङ्ग्रहः अथवा संगृहीतं पिण्डितं तदेवार्थोऽभिधेयं यस्य तत् सङ्गृहीतपिण्डितार्थं एवंभूतं वचो यस्य सङ्ग्रहस्येति सङ्ग्रहीतपिण्डितं तत् किमुच्यते इत्याह संगहीय मागहीयं संपिंडियमेगजाइमाणीयं ॥ संगहीयमणुगमो वा वइरे गोपिंडियं भणियं ॥ १ ॥ सामान्याभिमुख्येन ग्रहणं सङ्गृहीतसङ्ग्रह उच्यते, पिण्डितं त्वेकजातिमानितमभिधीयते पिण्डितसङ्ग्रहः अथ सर्वव्यक्तिष्वनुगतस्य सामान्यस्य प्रतिपादनमनुगमसङ्ग्रहोऽभिधीयते व्यतिरेकस्तु तदितरधर्मनिषेधाद् ग्राह्यधर्मसङ्ग्रहकारकं व्यतिरेकसङ्ग्रहो भण्यते यथा जीवोजीव इति निषेधे जीवसङ्ग्रह एव जाताः अतः १ सङ्ग्रह, २ पिण्डितार्थ, ३ अनुगम, ४ व्यतिरेकभेदाचतुर्विधः अथवा स्वसत्तारूपं महासामान्यं संगृह्णाति इतरस्तु गोत्वादिकमवान्तरसामान्यं पिण्डितार्थमभिधीयते महासत्तारूपं अवान्तरसत्तारूपं " एगं निचं निरवयवमक्रियं

आत्मस्वरूप निरावरण स्वरूप भासन स्वरूप परिणमने करे, स्वरूप पुरुषे. स्वधर्मकर्त्ता स्वधर्मभोक्तापणे. सकल पर भाव तजवे, निरावरण, निःसंग, निरामय, निर्द्वंद्व, निष्कलंक, निर्मल, स्वीय अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अरूपी, अव्याबाध, परमानंदमयी, सिद्धात्मा, सिद्धबुद्ध स्या ते सादि अनंतकाल स्थिर छे. सकल प्रदेश स्थिर छे, अने संसारी जीव तेना आठ प्रदेश सदा सर्वदा स्थिर छे. ते आठ प्रदेश निरावरण तथा आचारांगनी टीका शीलांकाचार्यकृतना लोकविजयाध्ययनने प्रथमोद्देशकेऽनन्तेन पंचदशविधेनापि योगेनात्मा अष्टौ प्रदेशान् विहाय तप्तभाजनोदकवदुद्वर्तमानैः सर्वैरात्मप्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टब्धाकाशस्थं कार्मणशरीरयोग्यं कर्मदलिकं यद् बध्नाति तत् प्रयोगकर्मेत्युच्यते.

एटले आ अष्ट प्रदेशे कर्म लागता नथी. इहां कोइ पुछे जे आठ प्रदेश निरावरण छे तो लोकालोक केम जाणता नथी ? तिहां उत्तर जे आत्म द्रव्यनी जे गुणप्रवृत्ति ते सर्व प्रदेश मिले प्रवर्त्ते तो तेमां ए आठ प्रदेश अल्प छे तेथी आठ प्रदेशमां सर्व गुण निरावरण छे पण कार्य करी शकता नथी. जेम अग्निनुं अत्यंत सूक्ष्म कणीयुं होय तेमां दाहक पाचक प्रकाशक गुण छे पण अल्पता माटे दाहकादिकार्य करी शकतुं नथी.

वळी कोइ पुछे जे ए आ अष्ट प्रदेश ते निरावरण केम रही शक्या ? तेनुं उत्तर जे चल प्रदेश होय तेने कर्म लागे पण अचल प्रदेशने कर्म लागे नही. एम भगवतीसूत्रे कह्युं छे. जेअइ, वेअइ, चलइ, फंदइ, घट्टइ, खुब्भइ, उदीरइ ते माटे जे चल होय ते बंधाय अने अष्ट प्रदेश ने अ

गमां समकालें ग्रहेवुं सामान्यरूपपणे सर्व वस्तुनो आक्रोडण ग्रहण करवो ते संग्रह कहियें अथवा सामान्यरूपपणे सर्व संग्रह करे ते संग्रह कहियें, अथवा जेथकी सर्व भेद सामान्यपणे ग्रहियें तेने संग्रह कहियें, अथवा संगृहीतं पिण्डितं के० जे वचनथी समुदाय अर्थ ग्रहवाय ते संग्रह वचन कहियें तेना चार भेद छे. १ संगृहीत संग्रह, २ पिण्डित संग्रह, ३ अनुगम संग्रह, ४ व्यतिरेक संग्रह.

१ सामान्यपणे वहेंचण विना ग्रहण थाय एवो जे उपयोग अथवा एवुं वचन अथवा एवो धर्म कोइपण वस्तुने विशे होय तेने संगृहीत संग्रह कहियें.

२ अने एकजाति माटे एकपणो मानिने ते एकमध्ये सर्वेनो ग्रहण थाय जेम "एगे आया" "एगे पुग्गले" इत्यादि वस्तु अनंति छे पण जाति एक माटे ग्रहवाय छे ते बीजो पिंडित संग्रह कहियें.

३ जे अनेक जीवरूप अनेक व्यक्ति छे ते सर्वमां पामियें जेम सत्‌चित्‌मय आत्मा एटले सर्व जीव तथा सर्व प्रदेश सर्व गुण ते जीवनां लक्षण छे एने अनुगम संग्रह कहियें.

४ तथा जेने ना कहेवे तेथी इतरनो सर्व संग्रहपणे ज्ञान थाय ते जेम अजीव छे तेवारें जे जीव नही ते अजीव कहिये एटले कोइक जीव छे एम व्यतिरेक वचने ठेर्यो तथा उपयोगें जीवनो ग्रहण थाय छे ते व्यतिरेक संग्रह कहियें.

अथवा संग्रहनय बे भेदें कहेवाय छे. १ महासत्तारूप, २ अवांतरसत्तारूप ए रीतें पण संग्रहनो स्वरूप कह्यो छे.

"सदिति भणियम्मि जम्हा, सबत्थाणुप्पवत्तए बुद्धी । तो सवं तम्मत्तं नत्थितदत्थंतरं किंचि ॥१॥ यद्यस्मात् सदित्येवं भणिते सर्वत्र

पतो यस्मात्तेन व्यवहारः। न व्यवहारास्त्वस्वधर्ममव-
र्तितेन ऋते सामान्यमिति स्वगुणमवृत्तिरूपव्यवहा-
रस्यैव वस्तुत्वं तमंतरेण तद्भावात् स द्विविधः वि-
भजन, १ मवृत्ति, २ भेदात्। मवृत्तिव्यवहारस्त्रिविधः
वस्तुमवृत्तिः १ साधनमवृत्तिः २ लौकिकमवृत्तिश्च,
३ साधनमवृत्तिस्त्रेधा लोकोत्तर, लौकिका, २ कु-
मावचनिक, ३ भेदात् इति व्यवहारनयः श्रीविशे-
षावश्यके ॥

अर्थ ॥ हवे व्यवहारनयनी व्याख्या करे छे संग्रहनयें ग्रहित जे वस्तु तेने भेदांतरे विभजन के० वहेंचवुं ते व्यवहार-नय जेम द्रव्य एवुं सामान्य नाम कह्युं तेमां वली वेंहेचण करियें जे द्रव्यना बे भेद छे. १ जीव द्रव्य, २ अजीव द्रव्य, वली तेमां पण वेहेंचण करियें जे जीवना बे भेद १ सिद्ध बीजा संसारी एम वेंहेचण करवी ते सर्व व्यवहारनयनो स्वभाव जाणवो अथवा व्यवहार के० प्रवर्त्तन ते व्यवहारनय तेना बे भेद छे. १ शुद्ध व्यवहार, २ अशुद्ध व्यवहार, वली शुद्ध व्यवहारना बे भेद छे. १ सर्व द्रव्यनी स्वरूपरूप शुद्धप्रवृत्ति जेम धर्मास्तिकायनी चलणसहायता तथा अधर्मास्तिकायनी स्थिरसहा-यता तथा जीवनी ज्ञायकता इत्यादिकने वस्तुगत शुद्ध व्यव-हार कहियें, २ द्रव्यनो उत्सर्ग निपजवा माटे रत्नत्रयी शुद्धता गुणस्थाने श्रेणीआरोहणरूप ते साधनशुद्ध व्यवहार कहियें.

वली अशुद्ध व्यवहारना बे भेद छे. १ सद्भूत, २ अस-द्भूत तेमां जे क्षेत्रे अवस्थानें अभेदें रह्या जे ज्ञानादि गुण तेने परस्पर भेदें कहेवा ते सद्भूतव्यवहार.

पर्यायाः षोढा द्रव्यपर्याया असंख्येयप्रदेशसिद्धत्वादयः। १ द्रव्यव्यंजनपर्यायाः द्रव्याणां विशेषगुणाश्चेतनादय-श्चलनसहायादयश्च, २ गुणपर्यायाः गुणा विभागादयः ३ गुणव्यंजनपर्याया ज्ञायकादयः पार्दन्याः मतिज्ञा-नादयः ज्ञानस्य, चक्षुर्दर्शनादयो दर्शनस्य, शमादार-पादयः चारित्रस्य, वर्णगन्धरसस्पर्शादयो मूर्तस्य इत्यादि ४ स्वभावपर्याया अगुरुलघुविकाराः ते च द्वादशप्रकाराः षड्गुणहानिवृद्धिरूपाः अवाग्गोचराः एते पञ्चपर्यायाः सर्वद्रव्येषु, विभावपर्यायाः जीवे नर-नारकादयः॥ पुद्गले द्व्यणुकाद्यनन्ताणुकपर्यन्तास्कन्धाः

अर्थ ॥ हवे नयज्ञान करवानो अधिकार कहे छे, तिहां द्रव्यास्तिकनयना मूल बे भेद छे. १ शुद्ध द्रव्यास्तिक, २ अशुद्ध द्रव्यास्तिक, अने देवसेनकृत पद्धतिमां द्रव्यास्तिकना दश भेद कर्या छे ते सर्व ए बे भेद मध्ये समाय छे, तथा ते सामान्य स्वभावमां समाणा छे ते माटे इहां न वखाण्या.

हवे पर्यायना छ भेद कहे छे तिहां प्रथम १ जे द्रव्यने विषे एकत्वपणे रह्या जे जीवादिकना असंख्याता प्रदेश तथा आकाशना अनंता प्रदेश ए द्रव्य पर्याय कहियें, २ सिद्धत्वादिक अनंतत्वादिक तथा द्रव्यनो व्यंजक के० प्रगटपणो जे माने छे ते द्रव्य व्यंजन पर्याय कहियें.

द्रव्यनो विशेष गुण जे अन्य द्रव्यमां नथी तेने विशेष गुण कहियें. ते जीवने चेतनादिक अने धर्मास्तिकायमां चलण-सहकार तथा अधर्मास्तिकायमां स्थिरसहकार, आकाशमां अव-गाहदान, पुद्गलमां पूरणगलनरूप ए सर्व द्रव्यनी भिन्नताने प्रगट करे छे ते माटे ए धर्मने व्यंजन पर्याय कहियें.

ऋजुश्रुतं सुज्ञानं बोधरूपं ततश्च ऋजु अवक्रमश्रुतमस्य-सोऽयमृजुश्रुतं वा अथवा ऋजु अवक्रं वस्तु सूत्रयतीति ऋजुसूत्र इति कथं पुनरेतदभ्युपगतस्य वस्तुनोऽवक्रत्वमित्याह ॥ पच्चुपन्नं संपयमुप्पन्नं जं च जस्स पत्तेयं । तं ऋजु तदेव तस्सत्थि उ वकम्मन्नंति जमसंतं ॥ २ ॥ यत्सांप्रतमुत्पन्नं वर्तमानकालीनं वस्तु, यच्च यस्य प्रत्येकमात्मीयतदेव तदुभयस्वरूपं वस्तु प्रत्युत्पन्नमुच्यते तदेवासौ नयः ऋजु प्रतिपाद्यते तदेव च वर्तमानकालीनं वस्तु तस्यार्जुसूत्रस्यास्ति अन्यत्र शेषातीतानागतं परकार्यं च ययस्मात असद्‌विद्यमानं ततो असत्त्वादेव तद्वक्रमिच्छत्यसाविति । अत एव उक्तं निर्युक्तिकृता "पच्चुपन्नगाही उजुसुनयविही मुणेयवोति" यतः कालत्रये वर्तमानमंतरेण वस्तुत्वं उक्तं च यतः अतीतं अनागतं भविष्यति न सांप्रतं तद् वर्तते इति वर्तमानस्यैव वस्तुत्वमिति अतीतस्य कारणता अनागतस्य कार्यता जन्यजनकभावेन प्रवर्तते अतः ऋजुसूत्रं वर्तमानग्राहकं तद् वर्तमानं नामादिचतुःप्रकारं ग्राह्यम् ॥

अर्थ ॥ हवे ऋजुसूत्रनय कहे छे ऋजु के० सरल छे श्रुत के० बोध ते ऋजुसूत्र कहियें ऋजु शब्दें अवक्र एटले समो छे श्रुत जेने ते ऋजुसूत्र कहियें अथवा ऋजु अवक्रपणे वस्तुने जाणे कहे ते ऋजुसूत्र कहियें ते वस्तुनो वक्रपणो केम जाणियें ते कहे छे सांप्रत के० वर्तमानपणे उपनो जे वर्तमानकालें वस्तु ते ऋजुसूत्र कहियें अन्य जे अतीत अनागत ते

[illegible]गुणपर्यायाः सादयोऽनन्ताः [illegible]-
[illegible]. [illegible]पर्यायाः [illegible] [illegible]-
[illegible]. [illegible]पर्याया [illegible]
[illegible] च [illegible]; [illegible] [illegible] पर्याया [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
इति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] च [illegible], [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] च [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]
[illegible]विशेषः [illegible]विशेषः [illegible]विशेषः [illegible]
तत्र [illegible]विशेषो द्विविधः [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] द्विविधा [illegible] [illegible] च, [illegible] द्वि-
विधः [illegible] [illegible] तत्र [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible], भावविशेषो द्विविधः [illegible] [illegible]-
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
तत्र [illegible] [illegible] [illegible] पर्यायः

अर्थ ॥ द्रव्यने विषे [illegible] ते अनादि नित्य पर्याय छे.
[illegible] [illegible], [illegible], ते [illegible] [illegible] पर्याय
छे, तथा भव्य अने [illegible] [illegible] [illegible] ए [illegible]
[illegible] ते [illegible] क्षयोपशमथी उपना [illegible] [illegible]
ते केवलनो क्षयोपशम [illegible] उपनो [illegible] अने [illegible]
ते चारित्रनो क्षयोपशम [illegible] ते [illegible] [illegible] ए सर्व
[illegible]. ते सादि सांत पर्याय छे, तथा सिद्धगमन
योग्यता पणे ते भव्यत्वो ए पर्याय ते अनादि सांत छे, ते

अनेकैरि शब्दः, [illegible]
[illegible] यथा [illegible]
[illegible] हेतुः । अर्थस्तु [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] शब्दो [illegible]
दिशेषं इति भावः । यथा ऋजुसूत्रनयाभिमतं न
[illegible] शब्दनयः । [illegible]
[illegible]
[illegible] न तु [illegible]
[illegible] पश्यति । [illegible]
[illegible]
[illegible] इति घटः अतो [illegible]
कुर्वन् घटः । अयमत्रोऽपि नामादिनिक्षेप [illegible] ऋजु
सूत्राभिमतं [illegible] भणो । [illegible]
[illegible] अथवा ऋजुसूत्रात्
शब्दनयः विशेषिततरः ऋजुसूत्रे सामान्येन घटोऽभि-
मतः, शब्देन तु सद्भावादिभिरनेकधर्मैरभिमत इति
मे च सप्तभङ्गाः पूर्वं उक्ता इति ॥

अर्थ ॥ हवे शब्दनयनुं स्वरूप कहियें छैये शपति के०
बोलावे तेने शब्द कहियें अथवा शपियें बोलावियें वस्तुपणे
ते शब्द कहियें ते शब्दे जे वाच्य अर्थ तेने ग्रहे एहवो छे
प्रधानपणो जे नयमां तेपण शब्दनय कहियें जेम कृतक ते जे
कर्यो तेनो हेतु जे धर्म ते जे वस्तुमां होय ते बोलाय एटले

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तेने पर्यायार्थिक कहिये. ते द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ए बे धर्मने द्रव्य तथा पर्याय कहिये.

इहां कोइक पुछे जे त्रीजो गुणार्थिक केम कहेता नथी? ते वटी तत्त्वार्थवृत्तिका मध्ये कह्यो छे " गुणस्य पर्याये एवान्तर्भूतत्वात् तेन पर्यायार्थिकेनैव तत् तद्ग्रहात्. "

जे गुण ते पर्यायने विषे अंतर्भूत छे ते पर्यायार्थिक मध्येज संग्रह्यो छे. ते पर्याय बे भेदे छे एक सहभावि बीजो क्रमभावि. तेमां सहभावि ते गुण छे ते पर्यायने विषे अंतर्भूत छे, तिहां द्रव्य पर्यायथी व्यतिरिक्त सामान्य विशेष ए बे धर्म छे माटे सामान्य विशेष बे नय जुदा केम कहेता नथी? एम कोइ पुछे तेने उत्तर.

जे " द्रव्यपर्यायाभ्यां व्यतिरिक्तयोः सामान्यविशेषयोरप्रसिद्धेः तथाहि द्विप्रकारं सामान्यमुक्तमूर्ध्वतासामान्यं तिर्यक्सामान्यं च तत्रोर्ध्वतासामान्यं द्रव्यमेव तिर्यक्सामान्यं तु प्रतिव्यक्तिसदृशपरिणामलक्षणं व्यञ्जनपर्याय एव. " ए पाठथी ऊर्ध्व सामान्य ते द्रव्यनो धर्म छे अने तिर्यक्सामान्य ते पर्याय धर्म छे " विशेषोऽपि वैसादृश्यविवर्त्तलक्षणं पर्याय एवान्तर्भवति नैताभ्यामधिकनयावकाशः "

विशेषपणे अनेक रीतें वर्त्तवानो लक्षण छे ते पर्यायने विषे अंतर्भाव छे ते माटे भिन्न नयनो अवकाश नथी. ए बे नय मध्येज अंतर्भाव छे. तेमां वली द्रव्यार्थिकना चार भेद छे १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र तथा पर्यायार्थिकना त्रण भेद छे १ शब्द, २ समभिरूढ, ३ एवंभूत.

अर्थ ॥ हवे एवंभूतनयनो स्वरूप कहियें छैयें एवं के० जेम, घटचेष्टवाची इत्यादिक रूपे शब्दनयनो अर्थ कह्यो छे ए रीते जे घटादिक अर्थ वर्त्ते ते एवं के० एमज जे विद्यमानपणे शब्दना अर्थने ओलंघीने वर्त्ते ते ते शब्दनो वाच्य नयी अने शब्दार्थपणो जेमां न पामियें ते वस्तु ते रूपे नही माटे जो शब्दार्थमांयी एक पर्याय पण ओछो होय तो एवंभूतनय तेने ते पणो कहे नही ते माटे शब्दनयथी तथा समभिरूढनयथी एवंभूतनय ते विशेषांतर छे.

ए एवंभूतनय ते स्त्रीने मस्तके चढ्यो, पाणी आणवानी क्रियानो निमित्त मार्गे आवतापणानी चेष्टा करतो होय तेने घट माने पण घरने खूणे रह्यो जे घट तेने घट करी माने नही. केमके ते चेष्टाने अणकरतो छे ते माटे. जे थकी अर्थने व्यंजीये के० प्रगट करीयें तेने व्यंजन कहियें व्यंजन ते वाचक शब्द छे ते अर्थने कहे ते क्रियावंत थको तेनेज ते वस्तु कहे बीजाने न कहे अने तेहिज अर्थे कह्यं. जे लक्षण ते कह्याने रूपें विशेष थाय जेम चेष्टा घट शब्द वाचे प्रसिद्ध छे योषित् के० स्त्रीने माथे पाणी लावनो ते घट तथा स्थानकें रह्यो अथवा तरण क्रिया करताने एवंभूतनय घट कहे नही. ए शब्दें अर्थ तथा अर्थें शब्दने थापे छे एनुं ए रहस्य छे जे स्त्रीने मस्तकें चढ्यो चेष्टावंत अर्थ ते घट शब्दें बोलाये तेयी अन्यथा तेने तेपणे बोलावे नही जेम सामान्य केवली जे ज्ञानादिक गुणे समान छे तेने समभिरूढनय अरिहंत कहे पण एवंभूतनय तो समवसरणादि अतिशय संपदा सहित तथा केवली ते इंद्रादिकें पूजतां युक्त होय तेनेज अरिहंत

पण आरोपे द्रव्य थतो नथी माटे द्रव्यारोप अने द्रव्यने विषे गुणनो आरोप करवो. जेम ज्ञानगुण छे पण ज्ञानी तेज आत्मा एम ज्ञानने आत्मा कहेवो ते गुणनो आरोप करवो माटे गुणारोप. तथा जेम श्रीवीरनिर्वाण थया तेने तो घणो काळ गयो छे पण आज दीवाळीना दीवसे वीरनो निर्वाण छे एम कहेवुं ए वर्तमानमां अतीतनो आरोप कर्यो. अथवा आज श्रीपद्मनाभ प्रभुनो निर्वाण छे, एम कहेवुं तेम वर्तमानने विषे अनागत कालनो आरोप छे. एवी रीते वर्ते अतीतना बे भेद छे तथा एवीज रीते अनागतना बे भेद छे अने वर्तमानना बे भेद उपर कह्या ते सर्वे मळी कालारोपना छ भेद जाणवा.

वळी कारण विषे कार्यनो आरोप करवो ते कारण चार छे. १ उपादान कारण. २ निमित्त कारण, ३ असाधारण कारण, ४ अपेक्षा कारण, तेमां आज्ञाद्रव्यक्रिया ते साधकसाध्यसंकल्पने धर्मनुं निमित्त कारण छे. तोपण एने धर्मकरण कहीये. तेमज श्रीतीर्थंकर मोक्षनुं कारण छे तेथी तेने तारणहार कह्यो ते कारणने विषे कर्त्तापणानो आरोप कर्यो एम आरोपना अनेक प्रकार छे. ए कारणारोप वळी संकल्पनैगमना बे भेद छे, १ स्वपरिणामरूप जे वीर्य चेतनानो जे नवो नवो क्षयोपशम ते लेवो. बीजो कार्यांतरे नवे नवे कार्ये नवो नवो उपयोग थाय ते ए बे भेद थया. तथा अंशनैगमना पण बे भेद छे, १ भिन्नांश ते जुदो अंश स्कंधादिकनो बीजो अभिन्नांश ते जे आत्माना प्रदेश तथा गुणना अविभाग इत्यादिक ए सर्वे नैगमनयना भेद जाणवा एटले नैगमनय कह्यो.

सामान्यवस्तुसत्ताग्राहकः संग्रहः स द्विविधः सामान्यसंग्रहो विशेषसंग्रहश्च, सामान्यसंग्रहो द्विविधः मूलत

अर्थ ॥ हवे स्याद्वाद रत्नाकरथी नयस्वरूप लखियें छेयें नीयते के० पमाडीयें जे थकी श्रुतज्ञान स्वरूप प्रमाणे विषये कीधो जे पदार्थनो अंश ते अंशथी इतर के० बीजो जे अंश ते थकी उदासीपणो तेने पडि वर्जता वालानो जे अभिप्राय विशेष तेने नय कहिये एटले वस्तुना अंशने ग्रहे अने अन्यथी उदासीनपणो ते नय कहिये. एक अंशने मुख्य करीने बीजा *अंशने उत्थापे ते नयाभास कहियें.* ते नयना बे भेद छे एक द्रव्यार्थिक बीजो पर्यायार्थिक तेमां द्रव्यार्थिकना १ नैगम २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र ए चार भेद छे. केटलाक आचार्य ते ऋजुसूत्रने विकल्परूप माटे भावनय गवेषे छे ते रीते द्रव्यार्थिकना त्रण भेद छे.

हवे नैगमनयनुं स्वरूप कहे छे. जे धर्मने प्रधानपणे अथवा गौणपणे *अथवा धर्मीने प्रधानपणे अथवा गौणपणे तथा* धर्म धर्मी ए बेउने प्रधानपणे तथा गौणपणे जे गवेषवो एटले धर्मोनी प्राधान्यता ते वारे पर्यायोनी प्रधानता थयी अने जिहां *धर्मीनो प्रधानपणो तिहां द्रव्यनो प्रधानपणो तेमज गौणपणो* तथा धर्म धर्मीनो प्रधान गौणपणो ए रीते जे द्रव्य पर्यायनो गौण प्रधानपणानी गवेषणा रूप ज्ञानोपयोग ते नैगमनय जाणवो तेना बोधने नैगम बोध कहिये तेना उदाहरण कहे छे.

सत् के० छतापणे चैतन्य के० जाणपणो ए बे धर्म मध्ये एक धर्म पक्ष मुख्यपणे गणे अने बीजाने गौणपणे न गवेषे. ए रीतें नैगमनय जाणवो. इहां चैतन्य नामे जे व्यंजन पर्याय तेने *प्रधानपणे गणे* केमके चैतन्यपणो ते विशेष गुण छे अने सत्वनामा व्यंजन पर्याय छे ते सकल द्रव्य साधारण छे ते माटे तेने गौणपणे लेखवे ए नैगमनो प्रथम भेद कह्यो.

सवर्ण च सामन्यं * एवम् महासामान्यं गवि गोत्वा-
दिकमवांतरसामान्यमिति संग्रहः ॥

अर्थ ॥ हवे संग्रहनय कहे छे सामान्य मूल सर्व द्रव्य व्यापक नित्यत्वादिक सत्तापणे रह्या जे धर्म तेनो जे संग्रह करे ते संग्रह कहियें तेना बे भेद छे १ सामान्य संग्रह, २ विशेष संग्रह वली सामान्य संग्रहना बे भेद छे १ मूल सामान्य संग्रह. २ उत्तर सामान्य संग्रह वली मूल सामान्य संग्रहना अस्तित्वादिक छ भेद छे ते पूर्वे कह्या छे तथा उत्तर सामान्यना बे भेद छे, १ जातिसामान्य, २ समुदायसामान्य तिहां गायना समुदायमां गोत्वरूप जाति छे तथा घटसमुदायमां घटत्वपणो अने वनस्पतिने विषे वनस्पतिपणो ते जातिसामान्य कह्यो अने आंबाना समूहनें विषे अंबवन कहे तथा मनुष्यना समूहमां मनुष्य ग्रहण थाय ते समुदाय सामान्य ए उत्तर सामान्य ते चक्षुदर्शन तथा अचक्षुदर्शनने ग्राहीक छे अने मूल सामान्य ते अवधिदर्शन तथा केवल दर्शनथी ग्रहवाय छे अथवा १ सामान्यसंग्रह, २ विशेषसंग्रह तिहां छ द्रव्यना समुदायने द्रव्य कह्युं ए सामान्य संग्रह इहां सर्वनो ग्रहण थयो छे अने जीवने जीवद्रव्य कही अजीव द्रव्यथी जूदो भेद पाड्यो ए विशेष संग्रह ए विशेष संग्रहनो विस्तार घणो छे तथा विशेषावश्यकथी संग्रहनयना चार भेद ते लखियें छैयें मूल पाठमां कहेली गाथानो अर्थ छे.

संग्रहणं के० एकठो एकवचन मध्ये एक अध्यवसाय उपयो-

* एकं सामान्यं सर्व्व सर्व्वत्र भावात् तथा नित्यं सामान्यं अविनाशात् तथा निरवयं अदेशत्वात्, अक्रियं देशान्तरगमनाभावात् सर्वगतं च सामान्यं अक्रियत्वादिति ॥

शुद्धद्रव्य सन्मात्र ग्राहकः परसंग्रहः धर्माकाशा-
[illegible] सद्रूपतः सकलसंनि-
पात् [illegible] सद्रूपमेकत्वेन
'एगे आया' इत्यभिधानात् [illegible] एक आत्मा [illegible]
[illegible]
नात् द्रव्यत्वादिनावान्तरसामान्यानि मन्वानस्तद्भेदेषु
गजनिमीलिकामवलम्बमानः पुनरपरसंग्रहः धर्माधर्मा-
कालपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वादिभेदादित्यादि-
द्रव्यत्वादिकं [illegible] निष्क्रान्तस्व-
भावः यथा द्रव्यमेव सर्वं [illegible]
[illegible] इति संग्रहः

अर्थ ॥ हवे संग्रहनय कहे छे. सामान्य मात्र समस्तविशेष रहित सत्यद्रव्यादिकने ग्रहेवानो छे. स्वभाव जेनो ते स के० पिंडपने विशेषराशिने ग्रहे पण व्यक्तपणे न ग्रहे स्वजातिना दीठा जे इष्ट अर्थ तेने अविरोधे करीने विशेष धर्मोने एक-रूपपने जे ग्रहण करवो ते संग्रहनय कहिये ए भावना छे तेना बे भेद छे १ परसंग्रह, २ अपरसंग्रह तेमां "अशेषवि-शेषोदासीनं भजमानं शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसंग्रह इति" जे समस्त विशेष धर्म स्थापनानी भजना करतो एटले विशेषपणाने अणग्रहतो थको शुद्धद्रव्य सत्तामात्रने माने जेम द्रव्य ए परसंग्रह विश्व एक सत्पणा माटे एम कहावी छता-पणाना एकपणानुं ज्ञान थाय छे एटले सर्व पदार्थनो एकपणे ग्रहण छे ते परसंग्रह कहिये.

तथा जे सत्तानो अद्वैत स्वीकारे अने द्रव्यांतरभेद न माने

भुवनत्रयांतर्वर्तिवस्तूनि ह्यविविक्तत्वेन प्रथावति नहि तत् किमपि
वस्तु अस्ति यत् सत्त्वेन सद्रीति बुद्धौ न प्रतिभासते तस्मात्
सर्वे समानाः न पुनः अर्थानां तत् भवनलक्षणं यत् संग्रहेण
संगृहीते तेन परिगमनलक्षणत्वादेव संगृह्यतेति " एटले सर्व भुव-
नमां जे जे वस्तु छे ते सर्व संग्रहनयने महत्तानां आवती
संग्रहनय कहे. ... संग्रहनयनां महत्तानी ज छे ए.

संग्रहगृहीतवस्तुभेदान्तरेण विभजनं व्यवहरणं प्रवर्तनं
वा व्यवहारः, स द्विविधः शुद्धोऽशुद्धश्च । शुद्धो
द्विविधः वस्तुगतव्यवहारः धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां
गमनस्थानावगाहनादिलोकालोकादिविभागादि-
रूपः स्वस्वगुणव्यापारादिभावसाधनरूपो गुणसाधकता-
व्यापारः गुणधर्मव्यापारादिसाधनशुद्धव्यवहारः । अशु-
द्धोऽपि द्विविधः सद्भूतासद्भूतभेदात् सद्भूतव्यव-
हारो ज्ञानादिगुणः परस्परं भिन्नः, असद्भूतव्यव-
हारः कषायादि मनुष्योऽहं देवोऽहं । सोऽपि द्वि-
विधः संश्लेषितासद्भूतव्यवहारः शरीरं मम अहं शरीरी ।
असंश्लेषितासद्भूतव्यवहारः पुत्रकलत्रादिः तौ च
उपचरितानुपचरितव्यवहारभेदात् द्विविधौ तथा च
विशेषावश्यके "ववहरणं ववहरए स तेण व वहीरए
व सामन्नं । ववहारपरो व जओ विसेसओ तेण
ववहारो ॥" व्यवहरणं व्यवहारः, व्यवहरति स इति
वा व्यवहारः, विशेषतो व्यवह्रियते निराक्रियते सा-
मान्यं तेनेति व्यवहारः लोको व्यवहारपरो वा विशे-

माणु तथा खंध इत्यादिक कार्यभेदें भिन्न माने तथा क्रमभावी पर्यायना बे भेद एक क्रियारूप बीजो अक्रियारूप इम वेहेंचण जे सामर्थ्यादिक गुणभेदें पडे ते सर्व व्यवहारनय जाणवो अने जे परमार्थ विना द्रव्यपर्यायनो विभाग करे ते व्यवहाराभास जाणवो.

जे कल्पना करी भेदें वेंचे ते चार्वाकमत प्रमुख ए व्यवहारनयनो दुर्नय छे जेम चार्वाक प्रमाणपणें छतो जीवपणो लोकप्रत्यक्षमां दृष्टिगोचर नथी आवतो ते माटे जीव नथी एम कहे अने जगतमां पंचभूतादिक वस्तु नथी एम कल्पना करी स्थूललोकने कुमार्गे प्रवर्त्तावे ते व्यवहारदुर्नय कहियें ए व्यवहारनयनुं स्वरूप कह्युं.

ऋजु वर्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्राधान्यतः सूत्रयति अभिप्रायः ऋजुसूत्रः। ज्ञानोपयुक्तः ज्ञानी, दर्शनोपयुक्तः दर्शनी, कषायोपयुक्तः कषायी, समतोपयुक्तः सामायिकी। वर्तमानापलापी तदाभासः यथा तथागतमत इति ॥

अर्थ ॥ हवे ऋजुसूत्रनय कहे छे ऋजु के० सरलपणे अतीत अनागतने अणगवेषतो अने वर्त्तमानसमय वर्त्तता जे पदार्थना पर्यायमात्र तेने प्रधानपणे सूत्र के० गवेषे ते ऋजुसूत्र कहियें। ते ज्ञानने उपयोगें वर्तताने ज्ञानी कहे, दर्शनोपयोगें वर्तताने दर्शनी कहे, कषायपणे वर्तता जीवने कषायी कहे, समताने उपयोगें वर्तता जीवने सामायिकवंत कहे. इहां कोइ पुछे जे उपर कह्या मुजब तो ऋजुसूत्र तथा शब्दनय ए बे एकज थाय छे तेने उत्तर कहे छे जे विशेषावश्यकमां कह्युं छे “ कारणं यावत् ऋजुसूत्रः ” एटले ज्ञानने कारणपणे वर्ततो ते

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जे संग्रह तथा नैगमनयवालो कहे ते सत्ता योग्यता अंशना ग्राहक छे तथा तत्त्वार्थटीका मध्ये शब्दवशथी अर्थ पडिवजवो ते शब्दें बोलावतो होय जे अर्थ ते वस्तुमां धर्मपणे प्रगट देखाय तेनेज ते वस्तु माने ए नयने शब्दानुयायी अर्थे परिणमति जे वस्तु कहे छे काललिंगादिभेदें अर्थनो भेद छे ते भेद तेम ते धर्म वस्तु माने ते शब्दनय कहियें अने ते अर्थ विना ते वस्तुमध्ये तेपणो वर्तनो देखातो नथी तेने ते वस्तुपणे समर्थ न करे ते शब्दाभास कहिजे एटले शब्दनय कह्यो.

एकार्थावलंबिपर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढः। यथा इंदनादिंद्रः, शकनाच्छक्रः, पुरदारणात् पुरंदरः इत्यादिषु । पर्यायध्वनिनामाभिधेयनानात्वमेव कक्षीकुर्वाणस्तदाभासः; यथा इंद्रः शक्रः पुरंदर इत्यादि भिन्नाभिधेयं.

अर्थ ॥ हवे समभिरूढनय कहे छे जे एक पदार्थने अविलंबी जेटला सरिखा नाम तेटला पर्याय नाम थया ते पर्याय नाम जेटला होय तेटला निरुक्ति व्युत्पत्ति भिन्न होय ते अर्थनो पण भेद होय ते अर्थने सं० के० सम्यक् प्रकारें आरोहतो एटले एटला सर्व अर्थ संयुक्त जे होय ते समभिरूढनय कहियें जेम इदि धातु परमैश्वर्यने अर्थे छे ते परम ऐश्वर्यवंतनें इंद्र कहियें, तथा शक्र कहेतां नवि नवि शक्तियुक्तने शक्र कहियें, पुर के० दैत्यने दरे के० विदारे ते पुन्दर, अने शचि जे इंद्राणी तेनो पति स्वामी ते शचिपति कहियें. एटला सर्व धर्म ते इंद्रमां छे ते माटे जे देवलोकनो धणी

विकलादेशी ज होय अने जे सकलादेशी सप्तभंगी ते प्रमाण छे पण नयनी सप्तभंगी न ऊपजे.

उक्तं च रत्नाकरावतारिकायां "विकलादेशस्वभावा हि नयसप्तभंगी वस्त्वंशमात्रप्ररूपकत्वात्, सकलादेशस्वभावा तु प्रमाणसप्तभंगी संपूर्णवस्तुस्वरूपप्ररूपकत्वात्" ए वचन छे एटले यथायोग्यपणे नयनो अधिकार कह्यो.

सकलनयग्राहकं प्रमाणं, प्रमाता आत्मा प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धः चैतन्यस्वरूपपरिणामी कर्त्ता साक्षाद् भोक्ता स्वदेहपरिमाणः प्रतिक्षेत्रभिन्नत्वेनैव पञ्चकारणसामग्रीतः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसाधनात् साधयते सिद्धिः। स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्रमाणं तद् द्विविधं प्रत्यक्षपरोक्षभेदात्स्पष्टं प्रत्यक्षं परोक्षमन्यत अथवा आत्मोपयोगत इन्द्रियद्वारा प्रवर्तते न यज् ज्ञानं तत्प्रत्यक्षं; अवधिमनःपर्यायौ देशप्रत्यक्षौ, केवलज्ञानं तु सकलप्रत्यक्षं, मतिश्रुते परोक्षे; तच्चतुर्विधं अनुमानोपमानागमार्थापत्तिभेदात्, लिङ्गपरामर्शोऽनुमानं लिङ्गं चाविनाभूतवस्तुकं नियतं ज्ञेयं यथा गिरिशुहिरादौ व्योमावलम्बिधूम्रलेखां दृष्ट्वा अनुमानं करोति, पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वात्, यत्र धूमस्तत्राग्निः यथा महानसं; एवं पञ्चावयवशुद्धं अनुमानं यथार्थज्ञानकारणं. सदृश्यावलंबनेनाज्ञातवस्तूनां यज्ज्ञानं उपमानज्ञानं, यथा गौस्तथा गवयः गोसादृश्येन अदृष्टगवयाकारज्ञानं उपमानज्ञानं. यथार्थोपदेष्टा पुरुष आप्तः स उत्कृष्टतो वीतरागः सर्वज्ञ एव। आप्तोक्तं वाक्यं आगमः, रागद्वेषाज्ञानभयादि

शब्दनुं कारण तो वस्तुनो धर्म थयो जेम जलाहरण धर्म जेमां छे तेने घट कहिये छैये एम इहां पण शब्दे वाच्यअर्थ ग्रहे ते माटे ते नयनो नाम पण शब्द कहेवाय जेम ऋजुसूत्रनयने वर्त्तमानस्थलना धर्म इष्ट छे तेम शब्दादिकनयने पण वर्त्तमान-नाना धर्मज इष्ट छे.

पेटके पेटे पृथु के० पहोलो बुध्न के० बोल संकोचित उदराकारादियुक्त जलाहरणक्रियावंत तत्पर प्रसिद्ध घटरूप भावघट तेनेज घट इच्छे छे पण जेम नाम स्थापना अने द्रव्यरूप त्रण घटने ए शब्दनय घट माने नहीं घट शब्दना अर्थने ने संकेतनेज घट कहे. घट धातु ने चेष्टावाची छे अतः कारणात् के० ए कारणना माटे ए शब्दनय ने चेष्टाकृतनिज घट कहे एटले ऋजुसूत्रनय चार निक्षेपा संयुक्तने घट माने अने शब्द-नय ने भावघटनेज घट माने एटलो विशेषपणो छे. शब्दना अर्थनी जिहां उत्पत्ति होय तेनेज ते वस्तुपणे कहे एटले ऋजु-सूत्रनयें सामान्य घट गवेष्यो अने शब्दनयें सद्भाव जे अस्तिधर्म तथा असद्भाव जे नास्तिधर्म ने सर्व संयुक्त वस्तुने वस्तुपणें कहे.

एटले वस्तुने शब्दे बोलाववानां सप्तभंगे बोलाववो माटे ए सप्तभंगी जेटलाज शब्दनयना भेद जाणवा ने सप्तभंगीनो स्वरूप पूर्वे कह्युं छे. ए शब्दादिकनय वस्तुना पर्यायने अवलंबीने व-स्तुना भावधर्मना ग्राहक छे. ते माटे वस्तुना भाव निक्षेपा, ए नये शुद्ध छे पूर्वना चार नयनां नामादिक त्रण निक्षेपा शुद्ध छे ए शब्दनयनुं स्वरूप कह्युं.

गाथा॥ जं जं सण्णं भासइ ॥ तं तं चिय समभिरोहइ जम्हा ॥ सण्णंतरत्थविमुहो, तओ नओ समभिरूढोत्ति ॥ १ ॥ यां यां संज्ञां घटादिलक्षणां भाषते वदति तां =।

भवभीरु जगत् जीवोना उपकारी एवा श्रुत आम्नायधर जे श्रुतने अनुसारें कहे तेनो वचन पण प्रमाण मानवुं.

तथा कोइक फलरूप लिंगे करीने जे अजाण्या पदार्थनो निर्धार करियें ते अर्थापत्ति प्रमाण कहियें. जेम देवदत्तनो पीन के० पुष्ट शरीर छे पण ते देवदत्त दिवसनो जमतो नथी तेवारें अर्थापत्तिथी जाणीयें जे रात्रें जमतो हशे माटे पुष्ट शरीर छे. एम अर्थापत्ति प्रमाण जाणवो. ए प्रमाण ते जाते अनुमाननो अंश छे ते माटे श्री अनुयोगद्वारमां प्रथम कह्यो नथी.

इहां दर्शनांतरीयो जे प्रमाण माने छे पण ते सत्य नथी जेम छ प्रकारना इंद्रिय सन्निकर्षथी ऊपनो जे ज्ञान तेने नैयायिक प्रत्यक्ष प्रमाण कहे छे, अने परब्रह्मने इंद्रिय रहित माने छे ज्ञानानंदमयी माने छे तेवारें इंद्रिय रहित ज्ञान ते अप्रमाण थाय छे. इत्यादिक अनेक युक्ति छे ते माटे ते प्रमाण नही. तथा चार्वाक मतवाला मात्र एक इंद्रियप्रत्यक्षनेज प्रमाण माने छे एम दर्शनांतरीयना अनेक विकल्प टालीने सर्व नय निक्षेप सप्तभंगी स्याद्वादयुक्त जे वस्तु जीव तथा अजीवनो सम्यक् ज्ञान जेनामां होय तेने सम्यक् ज्ञानी कहियें ए ज्ञाननुं स्वरूप कह्युं.

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं । यथार्थहेयोपादेयपरीक्षायुक्तज्ञानं सम्यग्ज्ञानं । स्वरूपरमणपरपरित्यागरूपं चारित्रं। एतद्रत्नत्रयीरूपमोक्षमार्गसाधनात्साध्यसिद्धिः। इत्यनेनात्मनः स्वीयं स्वरूपं सम्यग्ज्ञानं ज्ञानप्रकर्ष एवात्मलाभः ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षण एवात्मा छद्म-

[illegible] इति ॥

तथा चेतना लक्षण तेज जीवपणो छे, अने ज्ञानना प्रकर्ष बहुलपणो ते आत्माने लाभ छे; ज्ञान तथा दर्शनना उपयोग लक्षण आत्मा छे. तिहां छद्मस्थने प्रथम दर्शनोपयोग पछे ज्ञानोपयोग छे, अने केवलीने प्रथम ज्ञानोपयोग पछे दर्शनोपयोग छे; जे सर्व जीव नवो गुण पामे तेनो केवलीने ज्ञानोपयोग ते काले थाय ते माटे प्रथम ज्ञानोपयोग वर्त्ते.

अने सहकारी जे कर्तृताशक्ति ते जेम हतो तेमज छे. एक गुणने ग्राह्य करे अने बीजा गुणनो उपयोग सहकारें वर्त्ते छे सहकार ते ज्ञानोपयोग विशेष धर्मने जाणे ते जाणतां विशेष ते सामान्यने आधारें वर्त्ते छे ते सहित जाणे एटले विशेष ते भेला सामान्य ग्रहवाणा अने सामान्य ग्रहतां सामान्य ते विशेषता जन कहेतां सहित जाणे ते माटे सर्वज्ञ सर्वदर्शीपणो जाणवो ए रीते स्वतत्त्वनुं ज्ञान करवुं. तेथी स्वधर्मनो उपादान के० लेवापणुं थाय पछे स्वरूपने पामवे स्वरूपमां रमण थाय ते रमण थकी ध्याननी एकत्वता थाय एटले निश्चे ज्ञान निश्चे चारित्र तथा निश्चे तपपणो थाय जे थकी सिद्धि के० मोक्ष निपजे ए सिद्धांत जाणवो.

तत्र प्रथमतः ग्रन्थिभेदं कृत्वा शुद्धश्रद्धानज्ञानी द्वादशकषायोपशमः, स्वरूपैकत्वध्यानपरिणतेन क्षपकश्रेणीपरिपाटीकृतघातिकर्मक्षयः, अवाप्तकेवलज्ञानदर्शनः, योगनिरोधात् अयोगीभावमापन्नः, अघातिकर्मक्षयानंतरं समय एवास्पर्शवद्गत्या एकांतिकात्यंतिकानां बाधनिरूपाधिनिधिरूपं चरित्रानयोशाविनाशिसंपूर्णात्मशक्तिभाग्भावलक्षणं सुखमनुभवन् सिध्यति साद्यनंतंकालं तिष्ठति परमात्मा इति। एतत् कार्यं सर्वं भव्यानां॥

कहे ते विना न कहे. वाच्य वाचकनी पूर्णताने कहे ए स्वरूपें एवंभूतनय जाणवो.

ए साते नयना भेद ते विशेषावश्यकने अनुसारे कह्या. तेमां नैगमना दस भेद, संग्रहना छ भेद अथवा चार कह्या. व्यवहारना भेद आठ अथवा चउद कह्या. ऋजुसूत्रना चार अथवा छ कह्या शब्दना सात भेद कह्या. समभिरूढना बे भेद अने एवंभूतनो एक भेद कह्यो. ए रीते सर्वना भेद कह्या. वळी नयचक्रमां नयना भेद सातसो कह्या छे ते पण जाणवा.

एवमेव स्याद्वादरत्नाकरात् पुनर्नयलक्षणं उच्यते नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्य अंशस्तदितरांशौदासीन्यतः सप्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः। स्वाभिप्रेतादंशादपरांशापलापी पुनर्नयाभासः। स समासतः द्विभेदः द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिक आद्यो नैगमसंग्रह व्यवहार ऋजुसूत्रभेदाच्चतुर्धा केचिदृजुसूत्रं पर्याया-र्थिकं वदन्ति ते वर्तमानत्वेन विकल्पस्य ऋजुसूत्रे ग्रह-णात् धर्मान्तरासक्ते द्रव्यतः परिणामिचक्रस्यैव भाव-धर्मत्वेनांगीकारात् तेषां ऋजुसूत्रः द्रव्यनये एव धर्म-योर्धर्मिणोर्धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जन आरोपणद्रव्यां-शादिभावेनानेकगमग्रहणान्नैको नैगमः सच्चैतन्यमा-त्मनीति धर्मयोः सुखवद्वस्तु द्रव्यमिति धर्मिणोः क्षणमेको सुखी विषयासक्तो जीव इति धर्मधर्मिणोः सूक्ष्मनिगोदजीवसिद्धज्ञानवदाकः अयोगीनो संसा-रीति भंगाष्टा नैगमः धर्मांसमोर्द्वैनामेकान्तिकत्वार्थं यथाभिमन्यिर्नैगमाभासः

इह बोंदिं चइत्ताणं तत्थ गंतूण सिज्झई ॥ " इत्यादि ते सिद्ध एकांतिक आत्यंतिक, अनाबाध, निरुपाधि, निरुपचरित, अनायास, अविनाशी, संपूर्ण आत्मशक्ति प्रकटरूप सुखप्रते अनुभवे अव्याबाध सुखने प्रदेशे प्रदेशे अनंतो छे उक्तं च उववाइसूत्रे " सिद्धस्स सुहोरासि ॥ सवद्धा पिण्डियं जइ वज्जा ॥ सोणंतवग्गोभइयो ॥ सवागासे न माइज्जा ॥१॥ " इति वचनात् ए रीते परमानंद सुख भोगवता रहे छे. सादि अनंतकाल पर्यंत परमात्मापणे रहे छे. तो एहिज कार्य सर्व भव्यने करवो, ते कार्यनो मुख्य कारण श्रुताभ्यास छे ते श्रुतअभ्यास करवा माटे ए द्रव्यानुयोग नय स्वरूप लेशथी कह्यो. ते जाणपणो जे गुरुनी परंपराथी हुं पाम्यो ते गुर्वादिकनी परंपराने संभारुं छुं.

काव्य

गच्छे श्रीकोटिकाख्ये विशदखरतरे ज्ञानपात्रा महान्तः,
सूरिश्रीजिनचंद्रा गुरुतरगणभृतशिष्यमुख्या विनीताः॥
श्रीमत्पुण्यात्प्रधानाः सुमतिजलनिधिपाठकाः साधुरंगाः, तच्छिष्याः पाठकेंद्राः श्रुतरसरसिका राजसारा मुनींद्राः ॥ १ ॥

तच्चरणांबुजसेवालीनाः श्रीज्ञानधर्मवराः ॥ तच्छिष्यपाठकोत्तमदीपचंद्राः श्रुतरसज्ञाः ॥ २ ॥ नयचक्रलेशमेततेषां शिष्येण देवचंद्रेण ॥ स्वपरावबोधनार्थं कृतं सदभ्यासवृद्ध्यर्थं ॥ ३ ॥ शोधयन्तु सुधियः कृपापराः, शुद्धतत्त्वरसिकाश्च पठंतु ॥ साधनेन हृतसिद्धिसत्सुखाः, परममंगलभावमश्नुते ॥ ४ ॥ इति श्रीनयचक्रविवरणं समाप्तम्-॥

तथा वळी "वस्तु पर्यायवद् द्रव्यं" एम बोलवुं ते धर्मीनो नैगम छे इहां "पर्यायवद् द्रव्यं" एम वस्तु छे इहां द्रव्यनो मुख्यपणो धर्म, वस्तुने पर्यायवंत कहेवुं ते वस्तुनो गौणपणो अने पर्यायनो मुख्यपणो इहां उभयगोचरपणा माटे ए नैगमनो बीजो भेद कह्यो.

"क्षणमेकः सुखी विषयासक्तो जीव इति धर्मधर्मिणो-रिति" इहां विषयासक्त जीवात्म जे धर्मिना मुख्यपणाना विशे-षणपणाथी सुखलक्षण धर्मनी प्रधानता ने विशेषणपणे करीने धर्मधर्मिने आलंबने ए त्रीजो नैगम जेवारे धर्म तथा धर्मि ए बेने अवलंबे, ग्रहण करे तेवारे संपूर्ण वस्तुनो ग्रहण थयो तेवारे ए ज्ञानने प्रमाण कह्यो तिहां उत्तर द्रव्य पर्याय ने बेहुने प्रधानपणे अनुभवनो जे ज्ञान प्रमाण थाय इहां बे पक्षने विषे एकनी गौणता बीजानी मुख्यता लइने ज्ञान थाय छे ते माटे नय कहियें तथा वळी सूक्ष्मनिगोदि जीव ते समान सत्तावंत छे अथवा अयोगी केवली जिन तेने संसारी कहेवुं ते अंशनैगम.

हवे नैगमाभास कहे छे. वस्तुनां धर्म अनेक छे ते ए-कांते माने पण पुद्गलीजाने सापेक्षपणे न माने एटले एक धर्मने माने अने बीजा धर्मने न माने ते नैगमाभास कहियें ए दुर्नय जाणवो. केमके अन्य नयने गवेषे नहीं माटे जेम आ-त्माने विषे सत्व तथा चैतन्य ए धर्म भिन्नभिन्न छे तेमां चैतन्य-पणो न माने ते नैगमाभास कहियें एटले नैगमनय कह्यो.

यथाऽऽत्मनि सत्त्वचैतन्ये परस्परं भिन्ने सामान्यमात्रग्राही
सथापरामर्शात्मकसंग्रहः स परापरभेदाद् द्विविधः तत्र

इम जाणी शासनरुचि । करजो श्रुतअभ्यास ॥
पामी चारित्रसंपदा । लेहेसो लीलविलास ॥ १३ ॥
दीपचंद्रगुरुराजने । सुपसायें उल्लास ॥
देवचंद्र भवीहितभणी । कीधो ग्रंथप्रकाश ॥ १४ ॥
सुणसे भणसे जे भविक । एह ग्रंथ मनरंग ॥
ज्ञानक्रियाअभ्यासतां । लहेशे तत्त्वतरंग ॥ १५ ॥
द्वादशसार नयचक्र छे । मल्लवादिकृत वृद्ध ॥
सप्तशातिनय वाचना । कीधी तिहां प्रसिद्ध ॥ १६ ॥
अल्पमतिना चित्तमें । नावे ते विस्तार ॥
मुख्यथूलनयभेदनो । भाख्यो अल्प विचार ॥ १७ ॥
खरतरमुनिपति गच्छपति । श्रीजिनचंद्रसूरीश ॥
तास शीस पाठकप्रवर । पुन्यप्रधान मुनीश ॥ १८ ॥
तसु विनयी पाठकप्रवर । सुमतिसागर सुसहाय ॥
साधुरंग गुणसंनिधि । राजसार उवज्झाय ॥ १९ ॥
पाठक ज्ञानधर्म गुणी । पाठक श्रीदीपचंद ॥
तास सीस देवचंद्रकृत ॥ भणतां परमानंद ॥ २० ॥

इति श्रीनयचक्रविवरणं समाप्तं ॥

समस्त विशेषपणाने ना कहेतो थको जे ग्रहण करे ते अद्वैत-वादि वेदांत तथा सांख्यदर्शन ए परसंग्रहाभास छे केमके जे भेद धर्म छता देखाय छे तथा द्रव्यांतरपणो तेने न माने माटे परसंग्रहाभास कहियें अने जैन तो विशेष सहित सामान्यने ग्रहे छे माटे संग्रहनय कहियें.

" द्रव्यत्वादिनयांतरसामान्यानि मत्वा तद्भेदेषु गजनि-मीलिकामवलंबमानः अपरसंग्रहः " द्रव्य जे जीव अजीवादिक जे अवांतर सामान्यने मानतो अने जीवने विषे प्रति जीवनो विशेष भेद भव्य अभव्य सम्यक्त्वी मिथ्यात्वी नरनारकादि जे भेद तेने गजनिर्मीलिका के० मारूनाइयें न गवेषवो ते अपरसंग्रह कहियें अने द्रव्यने सामान्यपणे माने पण स्वद्रव्यनी परिणा-मिकनादिक धर्मने न माने ते अपरसंग्रहाभास कहियें ए संग्र-हनयनुं स्वरूप कह्युं.

> सद्ग्रहेण च गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहारः, यथा यत् सत् तत् द्रव्यं पर्यायश्चेत्यादिः यः पुनरपरमार्थिकं द्रव्यपर्या-यप्रविभागमभिमैति स व्यवहाराभासः चार्वाकद-र्शनमिति व्यवहारदुर्नयः ।

अर्थ ॥ हवे व्यवहारनय कहे छे संग्रहनयें ग्रह्या जे व-स्तुना सत्त्वादिक धर्म तेनेज गुणभेदें वेहेंचे भिन्नभिन्न गवेषे तथा पदार्थनी गुणप्रवृत्ति तेनेज मुख्यपणे गवेषे ते व्यवहार-नय कहियें जेम द्रव्य छे तेना जीव पुद्गलादिक पर्यायना क्र-मभावी तथा सहभावी ए रीतें वे भेद छे तेमां वली जीव वे प्रकारें १ सिद्धना, २ संसारी तेमज पुद्गलना वे भेद पर-

स्मरणरूपमंगलात्मकं च आद्यं पद्यं वक्ति ग्रंथकारः, ऐंद्रश्री इति । तेन मुनिना पाठकेन सूरिणा यथार्थक्षयोपशमोपयोगवता तथा–श्रीमदर्हता सिद्धपरमात्मना क्षायिकोपयोगवता न्यायसरस्वतीविरुदधरेण श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायेन 'पूर्णं' सकलं जगत् अशुद्धपरसंयोगोत्पन्ननवनवपर्यायगमनशीलत्वात् 'लीलालग्नमिव' कल्पनाकल्पितक्रीडामुग्धमिव अवेक्ष्यते दृश्यते, इति संटंकः । इत्यनेन शुद्धामूर्तात्मानंदाऽनुभवलग्नाः परानुभवमग्नान् मूढत्वेनैव पश्यंति, नच परवस्तुनि किञ्चिद् भोग्यत्वमस्ति, वस्तुवृत्त्या स्वीयगुणपर्यायानुभव एव युक्त इति । अतः परस्वरूपमग्ना मुग्धा इति तात्पर्यं, तेन कथंभूतेन ? ऐंद्रश्रीसुखमग्नेन इन्द्रो जीवः तस्य इयं ऐंद्री च या श्रीश्च ऐंद्रश्रीः आत्मगुणलक्ष्मीः तस्याः सुखं आनंदः तत्र मग्नेन एकत्वा(त्व)स्थाऽऽपन्नेन, पुनः सत् शुभं शाश्वतं वा चित् ज्ञानं तस्य य आनंदः तत्र पूर्णेन ज्ञानानंदभृतेन मुनिना जगत् मिथ्यात्वासंयममग्नं मूढं विलोक्यते । पूर्णा अपूर्णं जगत् भ्रांतं जानंति । इत्यतः पूर्णानंदात्मस्मरणेन स्वीयः पूर्णानंदः साध्य इति ॥ १ ॥

अथ पूर्णत्वं वस्तुनो निरूपयति ।

पूर्णता या परोपाधेः, सा याचितकमण्डनम् ।
या तु स्वाभाविकी सैव, जात्यरत्नविभानिभा ॥ २ ॥

पूर्णता–इति । पूर्णता परोपाधेः पुद्गलसंयोगजन्यतनुधनस्वजनयशःख्यात्यादिरूपायाः या पूर्णता चक्रिशक्रादीनामिव सा याचितकमंडनं मार्गितामरणशोभा तेन दृश्यत्वं, यद्व जगज्जीवैरनंतशो भुक्त्वोज्झितं आत्मनोऽशुद्धताहेतुः तद्योगे स्वरूपानुभवप्रशंसां शोभा न, तत्त्वरसिकानां तु–पुनः या स्वाभाविकी

ऋजुसूत्र ग्रहे छे अने जे सामान्य कार्यने धाय ते शब्द-
नय कहिये ए फेर छे.

वर्तमानकालने पन ग्रहन करे ते ऋजुसूत्राभास कहिये,
जे हना भावने अजना करे अथवा विपरीत करे जेम जीवने
अजीव करे, अजीवने जीव करे इत्यादिक ते तथा गत के०
बौद्धनो मत छे जे एनो मत सर्वदा वर्तनो जीवादि द्रव्य तेना
पर्यायने पलटवे सर्वथा द्रव्यने विनाशी माने तेने ऋजुसूत्र-
नयाभासाभिप्राय जानवो ए ऋजुसूत्रनय कह्यो.

> एकपर्यायनामभावेन विशेषाविर्भावग्राहकः शब्दनयः,
> कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपादयमानः शब्दः, जलाह-
> रणादिक्रियासमर्थ एव घटः, न मृत्पिण्डादौ तत्त्वार्थवृत्तौ
> सन्द्रव्यादर्शननिरपेक्षः तत्कार्यधर्मे वर्तमानवस्तु तथा
> मन्वानः शब्दनयः । शब्दानुरूपं अर्थपरिणतं द्रव्यमि-
> च्छति त्रिकालत्रिलिंगविवचनत्वयवहृतिभिः समन्वि-
> तमर्थमिच्छति तद्भेदं तस्य तमेव समर्थमागमल-
> क्षणमाना ।

अर्थ ॥ हवे शब्दनय कहे छे जे वस्तुना एक पर्यायने
प्रगट देखवे थाता शब्द वाचकरूपोने विशेषोने अगटवटवें
पन ते पर्यायने ग्रहे अथवा काल भेग वचन भग लिंग भग
तेने भेदें शब्दनो भेद पडे छे भेदेंज अर्थने कहे अथवा
जलाहरणादि समर्थने घट कहे तथा कुंभादिक चिन्ह पर्याय
जेटला छे तेटलानो अर्थ वर्तनो न देखाय तो पन तेने नाम
वडी बोलवे एम तेनां कार्यनो सामर्थ्यवंतपणो छे तेने ग्रहे
पन माटीना पिंडने घट कहे नहीं ते शब्दनय कहिये अने

भवति स्वीयसहजाप्रयासानन्दस्य पूर्णतैव भवति । कथम्भूता ज्ञानदृष्टिः ? ' तृष्णाकृष्णाहिजांगुली, ' तृष्णा पुद्गलभोगपिपासा, सा एव कृष्णाहिः कृष्णसर्पः । तद्दमने जांगुली गारुडमंत्रविशेषः इति । अत्र भावना–संसारचक्रक्रोडगतस्य जंतोः स्वीयासंख्येयप्रदेशव्याप्तज्ञानादिगुणास्वादच्युतस्य पौद्गलिकभोगपिपासासर्पदष्टस्य स्वपरविवेकरूपज्ञानदृष्टिजांगुलीस्मरणेन परतृष्णानिर्विषस्य शुद्धस्वरूपैकत्वतत्त्वध्यानमग्नस्य निष्पन्नक्षायिकभावानंदस्य पूर्णस्य नास्ति दीनता, यतो हि अविरतसम्यग्दृष्टिः तत्त्वश्रद्धायुक्त आत्मानं आत्मतया परं च परतया, निर्धार्य्य, विचरन् तृष्णातुरो न भवति तर्हि किं पूर्णानन्दमग्नानां ? इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

पूर्यन्ते येन कृपणा–स्तदुपेक्षैव पूर्णता ।
पूर्णानन्दसुधास्निग्धा, दृष्टिरेषा मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

पूर्यंत, इति 'येन' परसंयोगेन धनधान्यादिना 'कृपणाः' लोभमग्नाः आत्मधर्मसंपद्विकलाः परास्वादनरसिकत्वेनात्मानं धन्यं मन्यमानाः, वस्तुधर्मे धीरताशून्याः 'पूर्यंते' प्रचुरा भवंति सा 'पूर्णता' उपाधिजा 'उपेक्षा एव' अनंगीकारयोग्या एव । अथवा तदुपेक्षा एव नहि एषा पूर्णता किं तु पूर्णतात्वेन उपेक्ष्यते आरोप्यते इत्यर्थः । यथाहि–घटः जलेनापूर्णः। बहिःस्निग्धजमलेन पूर्णः केनचिदुच्यते मलपूर्णोऽयं घटः, एषा मलजा पूर्णता, सा किं पूर्णकुंभत्वावस्थां लभते ? नैवेति। एवं आत्मानंतज्ञानानंदादिस्वरूपापूर्णस्य कर्मोपाधिजा पूर्णता, सा किं तत्त्वभोगपूर्णैः पूर्णत्वेनैव अङ्गीक्रियते ? नैवेति । एवं ज्ञात्वा उपेक्षा एव। अत एव अनादिस्वरूपभ्रष्टानां परोपाधिजा पूर्णता तन्मयत्वेन अभेदपरिणत्या प्रवर्त्तमानत्वात्, निर्विकल्पायां तु सम्यग-

छे तेने इंद्र एवे नामें बोलावे छे बीजा नामादिक इंद्रने ए नामे न बोलावे जेटला पर्याय नाम छें तेना जे अर्थ थाय ते सर्वने भिन्न भिन्न अर्थ कहे छे पण एकार्थ न जाणे ते समभिरूढाभास कहिये एटलें समभिरूढनय कह्यो.

एवं भिन्नशब्दवाच्यत्वाच्छब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूतः। यथा इंदनमनुभवन्निंद्रः, शकनाच्छक्रः, शब्दवाच्यतया प्रत्यक्षस्तदाभासः। तथा विशिष्टचेष्टाशून्यं घटाख्यवस्तुनः घटशब्दवाच्यं घटशब्दप्रवृत्तिभूतार्थशून्यत्वात् पटवदित्यादि.

अर्थ ॥ हवे एवंभूतनय कहे छे शब्दनी प्रवृत्तिनो निमित्तभूत जे क्रिया ते विशिष्ट संयुक्त जे अर्थ तेने वाच्य जे धर्म तेने जे पहोंचनो होय एटले ते कारण कार्य धर्म सहित तेने एवंभूतनय कहियें तथा ऐश्वर्य सहित ते इंद्र, शक्रूप सिंहासने बेसे ते शक्र, शचि के० इंद्राणीने साथे बेठो ते वारें शचीपति कहे, एटले जे शब्दना जेटला पर्याय ते सर्व तेमां पहोंचता भावने ते नाम कहि बोलावे अने जे पर्याय पहोंचनो देखे नहीं ते पर्यायनो ना कहे. जिहां गुणी एक पर्याय छतो छे तिहां गुणी समभिरूढनय कहियें, अने सर्व वचन पर्यायने पहोंचे ते वारें एवंभूतनय कहियें. जे पदार्थनो नामभेदनो भेद देखीने पदार्थनो भिन्नता कहे ते एवंभूतनयाभास कहिजे, नामभेदें ते वस्तुज भिन्न जेम हाथी, घोडा, हिरण भिन्न छे तेम भिन्नशब्दो नामे तेना अर्थ भिन्नपणा माटे घटथी पट भिन्न छे तेम इंद्रपणाथी पुरंदरपणो भिन्न माने ते एवंभू॰

परस्वत्वकृतोन्माथा, भूनाथा न्यूनतेक्षिणः।
स्वस्वत्वसुखपूर्णस्य, न्यूनता न हरेरपि ॥ ७ ॥

परस्वत्वेति । परे परवस्तुनि संगांगिभावजविभावपरिणतौ स्वस्य भावः–स्वत्वं, परे स्वत्वं–परस्वत्वं तेन कृत उन्माथ उन्मादो व्याकुलत्वं येषां ते 'परस्वत्वकृतोन्माथाः' एवंभूता 'भूनाथाः' पृथ्वीशाः अपि, न्यूनतेक्षिणः न्यूनतादर्शनशीलाः, यतः परसंपद्रक्तानां चिंतामण्यनंतकोटिप्राप्तौ अपि न तृप्तिः, तृष्णाया अनंतगुणत्वात् सदैवापूर्णत्वात् न्यूनतामेव पश्यंति । तृष्णाया विभावत्वात्, परित्यागे सुखम् । स्वशब्देन आत्मा तत्रैव स्वत्वं 'स्वस्वत्वं' तदुत्पन्नसुखं आत्मस्वभावनिर्धारभासनरमणानुभवरूपं 'सुखं' तेन पूर्णस्य मुनेः, हरेरपि इंद्रादपि न न्यूनता यतः इंद्रादीनां शुभाशुभाध्यवसायनिबद्धपुण्यविपाकभोगिनां आत्मगुणानुभवशून्यानां दीनत्वमेव विलोक्यते तत्त्वरसिकैः । स्वरूपसुखलेशोऽपि जीवनं परमामृतं पुण्योदयोद्भवसुखकोटिरपि स्वगुणावरणत्वेन महद् दुःखं अहह!!बंधसत्तातोऽपि उदयकालः दारुणः, येनाऽऽत्मनः गुणावरणता । अतः स्वरूपसुखे रुचिः कार्या ॥७॥

कृष्णे पक्षे परिक्षीणे, शुक्ले च समुदञ्चति ।
द्योतते सकलाध्यक्षा पूर्णानन्दविधोः कला ॥ ८ ॥

कृष्णे पक्षे इति । कृष्णे पक्षे परिक्षीणे क्षयं प्राप्ते शुक्ले पक्षे समुदञ्चति उदयं प्राप्तवति सति सकलाध्यक्षा सकलजनप्रत्यक्षा विधोः चंद्रस्य कला द्योतते इति लोकप्रवृत्तिः । एवं कृष्णे पक्षे अर्धपुद्गलाधिकसंसाररूपे क्षीणे सति, शुक्लपक्षे अर्द्धपुद्गलाभ्यंतरसंसाररूपे प्रवर्तमाने सति, पूर्णानंद आत्मा, स एव

दोषरहितत्वात् अर्हतः वाक्यं आगमः, तदनुयायि-
पूर्वाचार्यरचितं मिथ्यात्वादिमदकषायशान्तिनिमित्तं स्या-
द्वादोपेतं वाक्यं अन्येषां निर्ग्रन्थानामपि वाक्यं आगमः।
लिङ्गग्रहणाद् भेदज्ञानोपकारकं अर्थापत्तिप्रमाणं, यथा
पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते तदा अर्थाद्रात्रौ भुङ्क्ते
एव. इत्यादि प्रमाणपरिपाटीगृहीतजीवात्मस्वरूपः
सम्यग्ज्ञानी उच्यते.

अर्थ ॥ हवे प्रमाणनुं स्वरूप कहे छे सर्व नयना स्वरू-
पने ग्रहण करनारो तथा सर्व धर्मनो आणांगपणो छे जेमां
एहवुं जे ज्ञान तेने प्रमाण कहिये जे प्रमाण ते मापवानुं
नाम छे. पण जगत्ना सर्व प्रमेयने मापवानुं प्रमाण ते ज्ञान
छे अने ते प्रमाणनो कर्त्ता आत्मा ते प्रमाता छे ते प्रत्य-
क्षादि प्रमाणे सिद्ध के० ठरेलो छे चैतन्य स्वरूप परिणामी
छे. वळी भवन धर्म्यी उत्पाद व्ययपणे परिणमे छे ते माटे
परिणामिक छे. तथा कर्त्ता छे तथा भोक्ता छे. जे कर्त्ता होय
तेज भोक्ता होय. भोक्तापणा विना सुखमयी कहेवाय नही ते
चैतन्य संसारीने स्वदेह परिमाण छे प्रतिक्षेत्र के० प्रत्येकें
शरीर भिन्नपणे भिन्न जीव छे ते जीव पांच कारणनी
सामग्री पामीने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रने साध-
वाथी संपूर्ण अविनाशी, निर्मल, निःकलंक, असहाय, अप्रयास,
स्वगुण निरावरण, स्वकार्य प्रवृत्ति, अक्षर, अव्याबाध, सुखमयी,
एवी सिद्धता नीपजे एज साधन मार्ग छे.

स्व शब्दे कर्ता आत्मा परशब्दे परद्रव्य स्व आत्माथी भिन्न
अनंता पर जीव धर्मादिक तेना व्यवसायी व्यवच्छेदक जे ज्ञान

अविवक्षितभावस्वभावः, उक्तं च श्रीशांतिवादिवेतालैः, नवरं तद्व्यतिरिक्तश्च जीवाद् भव्यजीव उच्यते इति प्रक्रमस्तु विशेषद्योतकः स चायं विशेषो यथा–न कदाचित्तत्पर्यायवियुक्तं द्रव्यं तथापि च, यदा च तद्वियुक्ततया विवक्ष्यते तदा तद्द्रव्यप्राधान्यतो द्रव्यजीवः भावपूर्णः आगमतः पूर्णपदार्थः समस्तोपयोगी, नोआगमतः ज्ञानादिगुणपूर्णः । संग्रहेण सर्वे जीवा, नैगमेनाऽऽसन्नसिद्धिमन्तो भव्याः पूर्णानंदाभिलाषिणः, व्यवहारेण अभ्यासवन्तः ऋजुसूत्रेण तद्विकल्पवंतः, शब्दनयेन सम्यग्दर्शनादिसाधकगुणानंदपूर्णाः, समभिरूढेनः अर्हदाचार्योपाध्यायसाधवः स्वस्वभावसुखास्वादनेन भवोद्विग्नत्वात्, एवंभूतेनः सिद्धाः अनंतगुणानंद–अव्याबाधानंदपूर्णत्वात् । अत्र हि–भावनिक्षेपसाध्यः, तत एवं पूर्णानंदः साधनत्वेन गृहीत इति । शुद्धसिद्धामलानंताकृत्रिमस्वरूपसकलस्वभावाविर्भावानुभवरूपः पूर्णानंदः साध्यः, साधना तु या सम्यगात्मगुणास्वादानंदतया परिणमय्य पूर्णानंदसाधना विधेया। इति व्याख्यातं पूर्णाष्टकम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं मग्नाष्टकम् ।

प्रत्याहृत्येन्द्रियव्यूहं, समाधाय मनो निजम् ।
दधच्चिन्मात्रविश्रान्ति–र्मग्न इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

अथ मग्नाष्टकं वितन्यते–तत्र नामस्थापने सुगमे, द्रव्येण धनमदिरापानादिना मग्नः, द्रव्यात् धनकांचनात् मग्नः, द्रव्ये शरीरादौ मग्नः । अथवा द्रव्यरूपो मग्नो द्विधा, आगमत मग्नपदार्थज्ञाता अनुपयुक्तः. नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरे पूर्ववत्; तद्व्यतिरिक्तस्तु मूढः शून्यः जडः । भावमग्नो द्विविधः, अशुद्धः

स्थानां च प्रथमं दर्शनोपयोगः केवलिनां प्रथमं ज्ञानोपयोगः पश्चाद्दर्शनोपयोगः सहकारिकुंभकयोगात् उपयोगान्तरकरणेन सेवगुणानां महकवचनुवशात् इ-दंवंं स्वरूपज्ञानवर्णं स्वरूपाचरणं तथा स्वरूप-रमणध्यानैकत्वेनैव सिद्धिः।

अर्थ ॥ हवे श्रीजैनागमना आगमथी जाण्यो जे वस्तु स्वरूप तेने हेयोपादेयपणे निर्धार करवो ते सम्यक दर्शन कहिये तिहां तत्त्वार्थने विषे कह्यो छे के जे तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक दर्शनं। उक्तं च उत्तराध्ययने जीवा जीवा य बंधो ॥ पुण्णं पवासवो तहा ॥ संवरो निज्जरा मुक्खो ॥ संति एतेतहिया नव ॥ १ ॥ तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं ॥ भावेण सद्दहंतस्स ॥ सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ २ ॥ इत्यादिक सम्यग्दर्शन सर्व जाणवुं जे तत्त्वार्थ जीवादि पदार्थनो श्रद्धान निर्धार ते सम्यक दर्शन कहिये अने जे सम्यक् दर्शन ते धर्मनुं मूल छे. तथा जे हेय ते तजवा योग्य, अने उपादेय ते ग्रहण करवा योग्य. एहवी परीक्षा सहित जे जाणवुं ते सम्यक् ज्ञान छे. जेना हेयोपयोग संयोग अकरण बुद्धि नथी पण उपादेयने उपयोगे एहवी विवक्षा थाय जे हवे किवारे करुं ? ए किम केम थाशे ? एहवी जो बुद्धि नथी तो ते संवेदन ज्ञान छे तेथी संवर करवुं थाय एवो निर्धार नथी.

तथा स्वरूप रमण परभाव राग द्वेष विभावादिकनो त्याग ते चारित्र कहिये, ए रत्नत्रयरूप परिणाम ते मोक्षमार्ग छे. ए मार्गे साधवाथी साध्य जे पूर्ण आत्मसाधन तेनी सिद्धि निष्पत्ति थाय. ते आत्मानो पोतानुं रूप ते यथार्थ ज्ञान छे.

र्ति प्राप्तः, आत्मानंतानंदसंपन्नमयं ज्ञात्वा, परमात्मसत्तास्वरूपे मग्नो भवति, स मग्नः अभिधीयत इति ॥ १ ॥

य आत्मानुभवमग्नः स कीदृग् भवति तदाह—

यस्य ज्ञानसुधासिन्धौ, परब्रह्मणि मग्नता ।
विषयान्तरसञ्चार–स्तस्य हालाहलोपमः ॥ २ ॥

यस्येति । यस्य जीवस्य अनादिविभावविरतस्य ज्ञानसुधासिंधौ परब्रह्मणि ज्ञानामृतसमुद्ररूपे परमात्मसमाधौ मग्नस्य तस्य जीवस्य विषयांतरे वर्णगंधादौ संचारः प्रवर्त्तनं हालाहलोपमः महाविषभक्षणतुल्यः । यो हि अमृतस्वादमग्नः स विषमविषं भोक्तुं कथं प्रवर्त्तते ? मालतीभोगमग्नो मधुकरः करीरादिषु न वसति, एवं शुद्धनिःसंगनिरामयनिर्द्वंद्वस्वीयात्मज्योतिर्मग्नः अनंतजीवेष्टेषु स्वयं अनंतवारभुक्तमुक्तेषु, वस्तुतः अभोग्येषु स्वगुणावरणहेतुभूतेषु विषयेषु, तस्य मनो न संचरति न प्रवर्त्तते, इति तत्त्वम् ॥२॥

पुनस्तदेव द्योतयति—

स्वभावसुखमग्नस्य, जगत्तत्त्वावलोकिनः ।
कर्त्तृत्वं नान्यभावानां, साक्षित्वमवशिष्यते ॥ ३ ॥

स्वभावसुख० इति । 'स्वभावं' सहजं सुखं सहजात्यंतिकैकांतानंदं तत्र 'मग्नस्य' तन्मयस्य, 'जगत्' लोकः तस्य तत्त्वं तद्धर्मं, यथार्थतया विलोकिनः दर्शनशीलस्य पुरुषस्य, अन्यभावानां परभावानां रागादिविभावानां ज्ञानावरणादिकर्मणां बाह्यस्कंधादाननिक्षेपानां कर्त्तृत्वं न, किंतु ज्ञायकस्वभावत्वात् साक्षित्वमेव, तत्र कर्त्तृत्वं एकाधिपत्ये क्रियाकारित्वं, तत्, जीवे जीव-

अर्थ ॥ ते प्रथम श्रेणिभेद करीने शुद्धश्रद्धावान् तथा शुद्ध ज्ञानी जे जीव ते प्रथम त्रण चोकडीनो क्षयोपशम करीने पाम्यो जे चारित्र ते त्यारें एकत्व थयाने क्षपकश्रेणि मांडी अनुक्रमे घातिकर्म क्षय करीने केवलदर्शन पामे. पछे ए सयोगी गुणें जघन्यथी अंतर्मुहूर्त अने उत्कृष्टो आठ वरस उणापूर्वकोडी रहीने कोइक केवली समुद्घात करे, कोइक केवली समुद्घात न करे; पण आवर्जिकरण सर्व केवली करे ते आवर्जिकरणनुं स्वरुप कहे छे–इहां आत्मप्रदेशे रह्या जे कर्मदल ते पेहेला घटे छे, पछे उदीरणा थाय छे, पछे भोगवी निर्जरे छे. तिहां केवलीने जिवारे तेरमें गुणठाणे अल्पायु रहे तिवारें आवर्जिकरण करे छे. ते आत्मप्रदेशगत कर्मदलने प्रति समयें असंख्यातगुण निर्जरा करवी छे तेटला दलने आत्मवीर्ये करीने सर्व चलायमान करी मूके एवुं जे वीर्यनुं प्रवर्तन ते आवर्जिकरण कहियें. एम करतां पण कर्मदल वधतां रह्यां तो समुद्घात करे नहींतो न करे ते माटे आवर्जिकरण सर्व केवली करे. पछे तेरमा गुणठाणाने अंते योगनो रोध करीने अयोगी अशरीरी, अनाहारी अप्रकंप घनीकृत आत्मप्रदेशी थको. पांच लघु अक्षर जेटलो काल अयोगी गुणठाणे रहीने, शेषसत्तागत प्रकृति विद्यमान तथा अविद्यमान स्तिबुक संक्रमें सत्ताथी खपावी, सकल पुद्गल संगरहित थयो, गति थकी, तेहिज समयें आकाश प्रदेशनी बीजी श्रेणिने अणफरसतो थको लोकांते सिद्ध कृतकृत्य संपूर्ण गुण प्राग्भावी पूर्ण परमात्मा परमानंदी अनंत केवलज्ञानमयी, अनंत दर्शनमयी, अरूपी सिद्ध थाय. उक्तं च उत्तराध्ययने "कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ॥ कहिं बोंदिं चइत्ताणं ॥ कत्थ गंतूण सिज्झई ॥ अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ॥"

आत्मनः परभावकर्तृत्वं नास्त्येव । ज्ञायकत्वमेवेति । अतः स्वरूपरसिकानां सर्वभावज्ञायकत्वं कर्तृत्वं स्वपरिणामिकभावस्य । अतः स्वात्मानं एकांते निवेश्य, अनादिभ्रांतिजं परभावकर्तृत्व-भोक्तृत्व-ग्राहकत्वादिकं निवारणीयम्, अखंडानंदकर्तृत्वादिकं करणीयं इति गाथार्थः ॥ ३ ॥

परब्रह्मणि मग्नस्य, श्लथा पौद्गलिकी कथा।
कामी चामीकरोन्मादाः,स्फारा दारादराः क्व च ?॥४॥

परब्रह्मणीति । परब्रह्मणि परमात्मनि मग्नस्य तन्मयस्य स्वरूपावलोकनरमणरक्तस्य, पौद्गलिकी पुद्गलसंबंधिनी, कथा नाम वार्त्ता, 'श्लथा' शिथिला इत्यर्थः । परत्वेन अग्राह्यत्वेन अभोग्यत्वेन निर्धारात् यस्य कथापि श्लथा तस्य ग्रहः कुतो भवति ? । अत एव अमी चामीकरोन्मादाः तस्य क्व ? शुद्धात्मगुणसंपद्वतां चामीकरग्रह एव न परत्वात्; पापस्थानहेतुत्वात् कुत उन्मादः ? । च पुनः स्फारा देदीप्यमाना दारा वनिता तस्या आदराः क्व ? इति कुतः, नैवेति । स्वभावसुखभोगिनां पौद्गलिकभोग एव न, तर्हि मोघा कुरागपटी अशुद्धविभावनटी दाराकटी; तत्रादरः कथं भवति ? नैवेति । इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

तेजोलेश्याविवृद्धिर्या, साधोः पर्यायवृद्धितः ।
भाषिता भगवत्पादैः, सेत्थंभूतस्य युज्यते ॥ ५ ॥

तेजोलेश्या इति । तेजलेश्या चित्तसुखलाभलक्षणा ज्ञानानंदास्वादाश्लेषरूपा तस्या विवृद्धिः विशेषतः वर्द्धना, साधोः निर्ग्रंथस्य, पर्यायवृद्धितः चारित्रपर्यायविवृद्धितः, भगवत्पादैः भा-

दोहा.

शुद्धबोध विन भविकने । न होवे तत्त्व प्रतीत ॥
तत्त्वालंबन ज्ञान विन । न टले भवभयभीत ॥ १ ॥
तत्त्व ते आत्मस्वरूप छे । शुद्धधर्म पण तेह ॥
परभावानुग चेतना । कर्मगेह छे एह ॥ २ ॥
तजी परपरिणतिरमणता । भज निजभाव विशुद्ध ॥
आत्मभावथी एकता । परमानंद प्रसिद्ध ॥ ३ ॥
स्याद्वाद गुणपरिणमन । रमता समतासंग ॥
साधे शुद्धानंदता । निर्विकल्परसरंग ॥ ४ ॥
मोक्षसाधनतणुं मूल ते । सम्यग्दर्शनज्ञान ॥
वस्तुधर्म अवबोध विनु । तुसखंडन समान ॥ ५ ॥
आत्मबोध विनु जे क्रिया । ते तो बालकचाल ॥
तत्त्वार्थनी वृत्तिमें । लेजो वचन संभाल ॥ ६ ॥
रत्नत्रयी विनु साधना । निष्फल कही सदीव ॥
लोकविजयअध्ययनमें । धरो उत्तमजीव ॥ ७ ॥
इंद्रियविषयआसंसता । करता जे मुनिलिंग ॥
ग्रह्या ते भवपंकमें । भाखे आचारांग ॥ ८ ॥
इम जाणी नाणी गुणी । न करे पुद्गलआस ॥
शुद्धात्मगुणमें रमे । ते पावे सिद्धिविलास ॥ ९ ॥
सत्यार्थ नयज्ञानविनु । न होवे सम्यग्ज्ञान ॥
सम्यग्ज्ञान विनु देशना । न कहे श्रीजिनभाण ॥ १० ॥
स्याद्वादवादी गुरु । तसु रसरसिया शीस ॥
योग मिले तो नीपजे । पूरण सिद्ध जगीस ॥ ११ ॥
वक्ता श्रोता योगथी । श्रुतअनुभवरस पीन ॥
ध्यानध्येयनी एकता । करता शिवसुख लीन ॥ १२ ॥

गास्तावंतोऽधिकाः क्षयोपशमा भवन्ति, तद्द्वितीये कंडके प्रथमं संयमस्थानं, ततः असंख्येयानि स्थानानि अनंतभागवृद्धिरूपाणि असंख्यभागप्रदेशराशिप्रमाणानि द्वितीयं कंडकं । ततः परं एकं असंख्यातभागवृद्धिरूपं पुनः असंख्येयानि अनंतभागवृद्धिरूपाणि तृतीयं कंडकं । तत एकं असंख्यातभागवृद्धिरूपं एवं अनन्तभागांतरितांगुलासंख्येयभागमात्रं असंख्यभागवृद्धिरूपं अंगुलासंख्येयभागकंडकमानस्थानरूपं द्वितीयं स्थानं । ततः संख्यातभागवृद्धिरूपं प्रथमं संयमस्थानं । ततः पुनः अनंतभागवृद्धिरूपाणि असंख्येयानि, ततः पुनः एकं असंख्यभागवृद्धिरूपं ततः असंख्येयानि अनंतभागवृद्धिरूपाणि एवं अंगुलमात्रक्षेत्रासंख्यभागप्रदेशमानकंडकेषु गतेषु एकं संख्यातभागवृद्धिरूपं स्थानं, एवं अंगुलासंख्येयभागतुल्यानि संख्येयभागवृद्धिस्थानानि गतानि एवं संख्यातगुणवृद्धि—असंख्यातगुणवृद्धि—अनंतगुणवृद्धिरूपाणि असंख्येयानि संयमस्थानानि भवंति । ततः परं स्थानमसंख्येयगुणसंयमस्थानमानं भवति । एकांतरं तानि असंख्येयानि अनंतभागवृद्धिरूपाणि संयमस्थानानि भवंति । सर्वसंयमस्थानसंख्या लोकसमानाः अलोके असंख्येयालोकाकाशाः कल्प्यंते, तावत्प्रदेशराशितुल्यानि संयमस्थानानि भवन्ति उत्तरोत्तरनिर्मलानि । आदितः अनुक्रमसंयमस्थानारोही नियमात् शिवपदं लभते । प्रथमं एव उत्कृष्टमध्यमसंयमस्थानारोही नियमात् पतति । एवं प्रथमस्थानतः अनुक्रमेण संयमक्षयोपशमी तस्य चारित्रपर्यायनिर्मलत्वेन चारित्रसुखस्वरूपं भगवतीवाक्यं आलापश्च भगवत्यां— "जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एएण कस्स तेउल्लेसं वितीवयंति ? गोयमा ! मासपरियाए समणे निग्गंथे वाणमंतराणं देवाणं तेउल्लेसं वितीवयंति । दुमासपरिआए समणे

अर्हम् ।

न्यायविशारद-न्यायाचार्य-श्रीमद्-यशोविजयोपाध्यायविरचितं

श्री ज्ञानसारसूत्रम् ।

(श्रीमद्देवचन्द्रयतिपतिकृत-ज्ञानमञ्जरी-वृत्तियुक्तम् ।)

अथ पूर्णाष्टकम् ॥ १ ॥



श्रीसर्वेशं जिनं नत्वा, शुद्धं स्याद्वादसंयुतम् ।
आत्मानंदविशुद्ध्यर्थं, ज्ञानसारं प्रतन्यते ॥ १ ॥
यशोविजयवन्तो मुनीशाः, पूर्वं सद्गुणतोहनेशाः ।
तेषां गुरुरसानुरक्तानां, करोमि टीकां स्वहितां सुबोधाय ॥२॥
नास्तीह लोके सुरसम्पोत्पो, मतोऽपि संततविवातवीरः ।
तथाऽप्यनुबोधाय तनोमि टीकां, भव्यादिनाखापिकृतावलम्बः ॥३॥

ऐन्द्रश्रीसुखमग्नेन, लीलालग्नमिवाखिलम् ।
सच्चिदानन्दपूर्णेन, पूर्णं जगदवेक्ष्यते ॥ १ ॥

इह शिष्टाचारपरिपालनाय, मंगलादि वाच्यम्-तत्र, शुद्धात्म-स्वरूपनिरूपणपरत्वात् सर्व एव ग्रन्थो मंगलं, तथापि-ग्रंथा-ध्यायिलिखितसारबोधाय शिष्यजनविज्ञानार्थं च पंचमंगलरूपामूलं श्रीमज्जिनागमादिपंचकल्याणकरूपं मंगलमाविष्कृतम् । शुभस्तवन-स्तुति-अंतरंगकल्पयोगाहंकारादिविकारप्रोत्साहनार्थमुने । अर्हदा-दिपरमेष्ठिस्वरूपभावमंगलात्मकं कर्तुर्विद्यासिद्धिबीजं, 'ऐं' इति-

संयममार्गोल्लंघनेन तत्प्रमागसंयमस्थानोल्लंघी मुनिर्ग्राह्य इति । अत्र पंपरासंप्रदायः, जघन्यतः उत्कृष्टं यावत् असंख्येयलोकाकाशप्रमाणेषु संयमस्थानेषु क्रमात्रगवर्तिनिर्ग्रंथेषु मासतः द्वादशमाससंयमप्रमाणसंयमस्थानोल्लंघनोपरितने वर्तमानः साधुरीदृग् देवनातुल्यं सुखं अतिक्रम्य वर्तते इति ज्ञेयम् । उक्तं च—

"मासादिपर्यायवृद्ध्या, द्वादशभिः परं तेजः ।
प्राप्नोति चारित्री सर्वदेवेभ्य उत्तमम् ॥१॥"

धर्मविदस्तेजस्विनः सुखलाभक्षणं वृत्ती । इत्येवं आत्मसुखवृद्धिः आत्मज्ञानमग्नस्य भवति ॥ ५ ॥

ज्ञानमग्नस्य यच्छर्म, तद्वक्तुं नैव शक्यते ।
नोपमेयं प्रियाश्लेषै–र्नापि तच्चन्दनद्रवैः ॥ ६ ॥

व्या०—ज्ञानमग्नस्येति 'ज्ञानमग्नस्य, आत्मसुखोपलब्धियुक्तस्य 'यत् शर्म, सुखं, स्पर्शज्ञानानुभवानंदं तत् वक्तुं नैव शक्यते, अतींद्रियत्वात् वागगोचरत्वात्, तद् अध्यात्मसुखं प्रिया मनोज्ञेष्टवनिता तस्या 'आश्लेषैः, आलिंगनैः, तथा चंदनद्रवैः चंदनविलेपनैर्नोपमीयते । यतः स्रक्चंदनादिजं सुखं वस्तुतः न सुखं, आत्मसुखभ्रष्टैः सुखबुद्ध्या आरोपितं, लोके पुद्गलसंयोगजं आरोपसुखं जाया दुःखमेव । उक्तं च विशेषावश्यके—

"जत्तो चिअ पच्चक्खं, सोम्म ! सुहं नत्थि दुक्खमेवेदं ।
तप्पडियारविभत्तं, तो पुण्णफलं ति दुक्खं ति ॥१॥
विसयसुहं दुक्खं चिय दुक्खप्पडियारओ तिगिच्छ व ।
तं सुहमुवयाराओ न उवयारो विणा तच्चं ॥२॥

स्वभावोत्था दर्शनज्ञानचारित्राद्यात्मका सकलात्मस्वभावाविर्भा-वरूपा शोभा सा एव शोभा जात्यरत्नविभानिभा, जात्यरत्नस्य विभा कांतिः तत्तुल्या, या हि-पुद्गलादिपरोपाधिजन्या सा तु स्फटिकोपलपुष्टिकस्वर्णगैरिकतुल्या, या तु-स्वभावोत्पन्ना सा तु जात्यमाणिक्यकांतितुल्या, अतः स्वीयशुद्धसहजपूर्णतारुचिभा-सनरमणतया भवितव्यमिति गाथार्थः ॥ २ ॥

अवास्तवी विकल्पैः स्या-त्पूर्णताब्धेरिवोर्मिभिः ।
पूर्णानन्दस्तु भगवान्, स्तिमितोदधिसन्निभः ॥३॥

अवास्तवी-इति । वस्तु पदार्थः, तस्य इयं वास्तवी, न वास्तवी 'अवास्तवी' परसंयोगोद्भवा, रागद्वेषमोहादिजैः विकल्पैः पूर्णता, अब्धेः समुद्रस्य ऊर्मिभिः इव स्यात् । यथा-ऊर्मिभिः समुद्रः अग्राह्यः, अनवगाह्यश्च भवति । तथाऽऽत्मापि रागद्वेषो-र्मिभिः अग्राह्यः, अनवगाह्यश्च भवति । 'तु' पुनः-'पूर्णानंदः' आत्मीयानंदसंदोहसमग्रवस्तुरूपो, निष्पन्नपरमात्मावस्थारूपः । भगवान् परमैश्वर्यरूपः स्तिमितोदधिः स्थिरोदधिः तेन संनिभः सदृश इति । अतः चलत्वं विहाय अचलतया भवितव्यं, आत्मा आत्मस्वभावस्थः निर्विकल्पो भवति तत्साधनाय यतितव्यमितिसर्पः ॥ ३ ॥

जागर्ति ज्ञानदृष्टिश्चेत्, तृष्णाकृष्णाहिजाङ्गुली ।
पूर्णानन्दस्य तत्किं स्याद्, दैन्यवृश्चिकवेदना? ॥४॥

जागर्ति-इति । चेत् यदि 'ज्ञानदृष्टिः' तत्त्वज्ञानरूपा दृष्टिः सम्यक् जागर्ति, विकासरूपा प्रवर्तते, 'तस्य पूर्णानन्दस्य' स्वरू-पाविर्भावचिदानन्दयुक्तस्य भगवतः 'दैन्यं दीनता' तद्रूपा वृश्चि-कवेदना किं स्यात्? अपितु-न स्यात् दैन्यं नूनं तस्य न

भ्रांतिपरिणतिः, नहि पुद्गलादीनां शुभाशुभपरिणतिः कस्यापि जीवस्य निमित्ता, किन्तु पूर्णगलनपारिणामिकत्वेन । अथ वर्णादिकर्मविपाकाद्वा तत्र रागद्वेषकृता तु भ्रांतिरेव उक्तं च—

कणगो लोहो न भणइ, रागो दोसो कुणंतु मज्झनुमं ।
नियतत्तविलुत्ताणं, एस अणाईअ परिणामो ॥ १ ॥

स्वरूपस्य स्वायत्तत्वात् स्वभोग्यत्वात् परवस्तुसंयोगवियोगाभ्यामिष्टानिष्टतोपाधिः । एवं शमस्य शैत्यं शीतलत्वं अतप्तत्वं, तस्य 'पुषः' पोषकस्य यस्य पुरुषस्य शमशैत्यपुषः विप्रुषः बिंदुमात्रस्यापि महाकथा महावार्त्ता, शमशैत्यबिंदुरपि दुर्लभः यस्य ज्ञानपीयूषे तत्त्वज्ञानामृते सर्वांगमग्नता तत्र तस्मिन् स्थाने किं स्तुमः किं वर्णयामः ? तस्य वर्णनं कर्त्तुं असमर्था वयमिति । यो हि स्वरूपज्ञानानुभवः स अतिप्रशस्यः । उक्तं च—

"लब्भइ सुरसामित्तं, लब्भइ पहुअत्तणं न संदेहो ।
इक्को नवरि न लब्भइ, जिणिन्दवरदेसिओ धम्मो ॥ १ ॥
धम्मो पवित्तिरूवो, लब्भइ कइयाविनिरयदुक्खभया ।
जो नियवत्थुसहावो, सो धम्मो दुल्लहो लोए ॥ २ ॥
निअवत्थुधम्मसवणं, दुलहं वुत्तं जिणिंदिआण सुहं ।
तप्फासणमेगत्तं, हुंति केसिं च धीराणं ॥ ३ ॥

अतः वस्तुस्वरूपधर्मस्पर्शनेन परमशीतीभूतानां परमपूज्यत्वमेव ॥ ७ ॥

यस्य दृष्टिः कृपावृष्टिः, गिरः शमसुधाकिरः ।
तस्मै नमः शुभज्ञान-ध्यानमग्नाय योगिने ॥ ८ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रभेदरत्नत्रयीरूपा पूर्णता स्वाभाविकी अपि अभिनवाभ्यासतः सविकल्पा क्षयमागत्वात् अभेदरत्नत्रयीपरिणतानां स्वाभाविकी पूर्णता निर्विकल्पा भवति, तत्साध्यत्वेन तत्त्वसाधनासिक्ततया भवितव्यमिति । उपदेशः 'मनीषिणां' पण्डितानां शुद्धश्रद्धानभासनपूर्वकस्वरमणानुभवपरिणतिवतां पूर्णानंदसुधा तया स्निग्धा दृष्टिर्भवति । पूर्णः सम्पूर्णः च आनंदः पूर्णानंदः पूर्णानंद एव सुधा पूर्णानंदसुधा तया स्निग्धा दृष्टिः 'एषा' भवति इति संबंधः । स्वस्वरूपस्वाभाविकपूर्णात्मीयासंनैकांतिकनिर्द्वंद्वानंदस्निग्धा दृष्टिः तत्त्वज्ञानवतां भवति । आत्मज्ञानिनः स्वरूपानंदपूर्णतां एव पूर्णत्वेन मन्यंते इति न तत्र पौद्गली पूर्णतासंकल्पः, उपाधित्वेन निर्धारात् इति गाथार्थः ॥ ५ ॥

अपूर्णः पूर्णतामेति, पूर्यमाणस्तु हीयते ।
पूर्णानन्दस्वभावोऽयं, जगदद्भुतदायकः ॥ ६ ॥

अपूर्णः इति । यः त्यागपरिणत्या सकलपुद्गलपरित्यागरुचिः पुद्गलैः 'अपूर्णः' सावकाशत्मगुणैः 'पूर्णतां' प्रति प्राप्नोति । तु पुनः 'पूर्यमाणः' पुद्गलैः 'हीयते' पूर्णानंदेन पुद्गलैः पूर्यमाणस्य आत्मानंदे हीयते एव । 'अयं' ज्ञानगोचरीभूतः 'पूर्णानंदस्वभावः 'जगदद्भुतदायकः' अस्ति इति । पूर्णानंदस्वभावस्य इयं अद्भुतता, परद्रव्यत्यागे वृद्धिः, परभावग्रहणे हानिः । अत्र भावना—आत्मनः सकलस्वरूपाविर्भावानुभवोत्पन्नानंदः, जगति लोके धनादिसंपत्तिवत्त्वे पुद्गलानंदभोक्तरि विस्मयरूपः । शुद्धनयपूर्णानां तु स्वरूपत्वात् न विस्मयः । अत एव पूर्णानंदसाधनभूते विशुद्धस्वरूपरत्नत्रयसाधने यत्नो विधेय इति गाथार्थः ॥ ६ ॥

इयते, तत्र धर्मास्तिकायादीनां त्रयाणां स्थिरता अक्रियत्वात्, पुद्गलानां स्थिरता स्कंधादिनिरुद्धा, सा तु न साधनहेतुः, अत्र नांगीकृता, या तु वस्तुवृत्त्या स्थिरस्य, परोपाधितः चलीभूतस्य, सम्यग्दर्शनादिगुणावाप्तौ परभावादिष्वगमनरूपा आत्मनः स्थिरता प्रतन्यते, तत्र नामस्थापना सुगमा, द्रव्यतः योगचेष्टारोधरूपा, द्रव्ये स्थिरता मम्मणवत्, द्रव्येण स्थिरता रोगादिसंभवा, द्रव्यरूपा स्थिरता द्रव्यस्थिरता, आगमतःनोआगमतः, आगमतः स्थिरतापदार्थज्ञस्य अनुपयुक्तस्य, नो आगमतः स्वरूपोपयोगशून्यस्य साध्यविकलस्य, प्राणायामादिषु कायोत्सर्गादिर्वा द्रव्यस्थिरता । भावतो द्विविधा अशुद्धा रागद्वेषमनोज्ञविषयेषु तन्मयत्वेन एकता, शुद्धा च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिस्वरूपे तन्मयत्वरूपा, धर्मध्यानशुक्लध्यानादिषु अचलताभावस्थिरता, शुद्धसाध्यशून्या योगादीनां स्थिरता सा दुर्नयरूपा, या तु साध्यवार्त्तया साध्यनिष्पादनपरिणतिविकला नयाभासरूपा, या तु–साध्याभिलाषसाध्योद्यमपरिणत्या कारणभूता योगादीनां द्रव्याश्रवात्यागरूपा स्थिरता सा आद्यनयचतुष्टयरूपा, या तु–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेण स्वरूपसाधनसाध्यनिष्पादनाभ्यासवती स्थिरता सा शब्दनयस्थिरता, या तु–धर्मशुक्लध्यानगतस्वरूपाप्रच्युतिपरिणतिरूपा समभिरूढनयस्थिरता, या तु क्षायिकदर्शनज्ञानचारित्रवीर्यसुखादिभ्यः अप्रच्युतिरूपा सा एवंभूतस्थिरता, विभावेऽपि सर्वनयरूपा स्थिरता तत्त्वविकल्पात्रामिष्यते, तथापि–अत्र परमानंदसंदोहभोगरूपसिद्धत्वसाधनरूपा स्वभावस्थिरतास्तस्या एवाऽवसरत्वात् सा एव व्याख्यायते । अनाद्यशुद्धात्मनः स्वरूपसुखाप्राप्तौ इंद्रियसुखेच्छया चंचलोऽयं जीवः तस्य करुणया गुरुर्वक्ति ।

[illegible] इति । [illegible] इति ।
[illegible] तु—

"जेसिमवड्ढपुग्गलपरिअट्टो सेसओ अ संसारो ।
ते सुक्कपक्खिया खलु अवरे पुण किण्हपक्खीया" ॥१॥

"जो किरिआवाई सो भव्वो नियमा सुक्कपक्खीओ ।
अंतो पुग्गलपरिअट्टस्स उ सिज्झइ नियमा"

इति [illegible]

[illegible] इति [illegible] न भवति [illegible] भवति । [illegible] इति [illegible] इति [illegible] । [illegible]

अखंडानंदरूपे, चित्स्वरूपे, अवर्णागंधारसास्पर्शे, आत्मनि श्रद्धानज्ञानरमणतया स्थिरो भव ॥ २ ॥

अस्थिरे हृदये चित्रा, वाग्नेत्राऽऽकारगोपना ।
पुंश्चल्या इव कल्याण–कारिणी न प्रकीर्तिता ॥३॥

व्या०—'अस्थिरे इति' हृदये अस्थिरे सति परभावाभिलाषिणि चित्ते सति, चित्रा अनेकप्रकारा वाङ्नेत्राद्याकारगोपना द्रव्यक्रियारूपा, पुंश्चली इव असती स्त्री इव कल्याणकारिणी न प्रकीर्तिता हितकारिणी न मता, जैनानां द्रव्यक्रिया भावधर्मयुता भावाभिलाषिणी एव प्रशस्या, भावधर्मरहिता तु–मार्जारसंयमतुल्या, तत्त्वार्थे द्रव्यक्रिया केषांचित् परंपरया धर्महेतुतया जाता, सा तु–देवादिसुखेहलोकयशोऽभिलापरहितानां एव, न तु लोकसंज्ञारूढानां, अतः तत्त्वस्वरूपाभिमुखीभूय मन आत्मधर्मैकत्वं विधाय चित्तस्थिरताग्रवकं स्थैर्यं करणीयम् । इति गाथार्थः ॥ ३ ॥

अन्तर्गतं महाशल्य–मस्थैर्यं यदि नोद्धृतम् ।
क्रियौषधस्य को दोष–स्तदा गुणमयच्छतः ॥ ४ ॥

व्या०—'अन्तर्गतमिति' अंतर्गतं अभ्यंतरं महाशल्यं महत् शल्यरूपं परभावानुयायि, परभावानुगतचेतनावीर्यपरिणतिरूपं, अस्थैर्यं अस्थिरत्वं, अतश्चापल्यं आत्मपरिणतीनां स्वस्वकार्यकरणे परभावोन्मुखप्रवर्त्तनरूपं अस्थैर्यं, यदि न उद्धृतं न वारितं तदा क्रियौषधस्य को दोषः ? न कोऽपीत्यर्थः, कथंभूतस्य क्रियौषधस्य ? गुणं स्वात्मस्वभावाविर्भावरूपं अयच्छतः अददतः, क्रिया हि वृत्तिरूपा, भावपरिणतिस्तु आत्मगुणशुद्धिरूपा, अन्तः

शुद्धश्चेति । तत्र अशुद्धः क्रोधादिमग्नः विभावभावितात्मा, शुद्धः द्विविधः, साधकः, सिद्धश्च, तत्र साधकः वस्तुस्वरूपाभिमुखः आद्यनयचतुष्टये तु निरस्तज्ञानदग्यादिदोषवर्जितविस्तुपेतद्रव्य- साधनप्रवृत्तिपरिणतस्वस्तुस्वरूपसाधकचिमतोः भवति । शब्दादिन- यमग्नस्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राद्यात्मसत्ताधिमग्नः संपूर्णवस्तुस्व- रूपे निरावरणे मग्नः निष्पन्नः । अत्र हि गुणस्थानादिविशुद्धस्वस्व- रूपानंदमग्नत्वनीस्वते तत्र मग्नलक्षणं गदन्नाह-प्रत्याहृत्येन्द्रिय इति। इन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणां, यो व्यूहः समू- हस्तं प्रत्याहृत्य प्रत्याहारं कृत्वा, विषयसंसारतो निवार्य,"प्रत्याहार स्त्विन्द्रियाणां विषयेभ्यः समाहृतिः" इति वचनात् । निजं स्वीयं मनः, चेतना वीर्यैकत्वविकल्परूपं समाधाय समाधौ स्थाप्य विषय- निरोधे आत्मद्रव्यैकाग्रतारूपं कृत्वा, "समाधिस्तु तदेवार्थमात्राभासन पूर्वकं" आत्मस्वरूपमात्रैकत्वरूप समाधिः, तत्र मनः कृत्वा. चिन्मात्रे ज्ञानमात्रे आत्मनि, मुख्यतः दर्शनज्ञानमय एव आत्मा, "उव- ओगो नाणदंसणगुणेहिं" इति वाक्यात् । ज्ञानस्वरूपे स्वस्यं विश्रान्तिं दधत् मग्न इति अभिधीयते कथ्यते, इत्येनेन अनादितः अयं जीवः पुद्गलस्कंदवर्णगंधरसस्पर्शरसादिषु मनोज्ञेषु स्वजना- दिषु च भ्रमन् विकल्पकोटिकोटिं प्राप्त इष्टान् विषयान् इच्छन्, अनिष्टान् विषयान् अनिच्छन् वातोद्धूतशुष्कपलाशवद् भ्रमति। कदाचित् स्वपरविवेकरूपं भेदज्ञानं प्राप्य अनंतज्ञानदर्शनानं- दमयं स्वीयं भवं स्वत्वतया निर्धार्य इदं विषयसंगादिकं न मम, नाहं अस्य भोक्ता उपाधिरेव एष, नहि मम कर्तृत्वं भोक्तृत्वं ग्राहकत्वं च परवस्तूनां, मया हि स्वरूपभ्रष्टेनैव विहितं, सांप्रतं जिनागमाञ्जनेन ज्ञातस्वपरविवेकेन तेषु रमणास्वादनं न युक्तम्। इति विचार्य स्वरूपानंतस्वभावगुणपर्यायस्याद्वादानंतात्मनि विश्रा-

सृतं अतः सङ्कल्पविकल्परूपचलपरिणतिमपहाय द्रव्यभावप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहरूपैरास्रवैः सृतं, यो हि आत्मसमाधिरतः स्वस्वभावस्थिरः तस्य आस्रवाः कुत इति ? यत आत्मनः स्वधर्मैकर्तृत्वयथार्थभासनस्वरूपग्राहकत्वस्वगुणभोक्तृत्वस्वस्वभावरक्षकत्वपरिणतस्य न आस्रवाः, एतेषां स्वभावानां परभावपरिणतानां आस्रवाः स्वरूपभ्रांतिरेव, स्वपरिणतीः परकर्तृत्वेन परिणमयति, यदा तु अस्य स्वरूपावबोधः स्वकार्यैककारणनिर्धारो जातस्तदा स्वपरिणतीः स्वकार्यैककारणे एव व्यापारयति न परकर्तृत्वे, कारकचक्रमपि स्वरूपमूढे च परकर्तृत्वादिव्यापारेण अशुद्धीकृतं यदा अनेन स्वपरविवेकेन अहं अहं, परः परः, नाऽहं परकर्त्ता भोक्ता एवं लब्धविवेकः स्वकारकचक्रं स्वकार्यकरणे व्यापारयति; आत्मा आत्मानं, आत्मा आत्मने, आत्मन आत्मनि प्रवर्त्तयति इति स्वरूपं एवं स्वरूपपरिणतानां आस्रवा न भवंति ॥ ६ ॥

उदीरयिष्यसि स्वान्ता–दस्थैर्यपवनं यदि ।
समाधिधर्ममेघस्य, घटां विघटयिष्यसि ॥७॥

व्या०—'उदीरयिष्यसि इति' यदि 'स्वान्तात्' अन्तःकरणात् अस्थैर्यपवनं त्वं उदीरयिष्यसि अस्थिरतामारुतं यदा प्रवर्त्तयिष्यसि तदा समाधेः, स्वरूपार्थविश्रान्तिरूपधर्ममेघस्य घटां 'विघटयिष्यसि' दूरीकरिष्यसि इति, अस्थिरस्य समाधिध्वंसो भवति अत आत्मधर्मविषये स्थिरता करणीया ॥ ७ ॥

चारित्रं स्थिरतारूप–मेतत्सिद्धेष्वपीष्यते ।
यतन्तां यतयोऽवश्य–मस्या एव प्रसिद्धये ॥८॥

व्या०—'चारित्रमिति' अतः कारणात् सिद्धेष्वपि सकलकर्म-

[illegible] । यतो हि एव [illegible] न कर्तृत्वं. [illegible] कर्तृत्वं [illegible] । नहि [illegible] कोऽपि [illegible] किंतु [illegible] कर्ता. न [illegible] तु कर्तृत्वे [illegible] लोकः [illegible] अत एव [illegible] कर्ता. किंतु [illegible] । [illegible] कर्ता [illegible] न एव [illegible] न [illegible] कर्ता भवति. किंतु [illegible] एव अत [illegible] । अयं हि [illegible] कर्तृत्वं [illegible] कर्तृत्वं [illegible] तेन [illegible] कर्तृत्वं [illegible] करोति । अत एव [illegible] न [illegible] कर्तृत्वं इति. किंतु [illegible] । [illegible] कर्तृत्वे [illegible] कर्तृत्व [illegible] । नहि [illegible] कर्तृत्व [illegible] तथापि [illegible] अकर्तृत्वं. अथवा [illegible] तु न [illegible] कर्तृत्वं । अथवा [illegible]

इत्येवं विभाव्य द्रव्यकर्मतनुधनस्वजनेषु भिन्नतां नीतेषु स्वभावैकत्वेन मोहजयो दृष्टः; अतः अहङ्कारममकारत्याग इष्ट इति ॥१॥

पुनस्तदेव भावयति–

शुद्धात्मद्रव्यमेवाहं, शुद्धज्ञानं गुणो मम ।
नान्योऽहं न ममान्ये चे-त्यदो मोहास्त्रमुल्वणम् ॥२॥

व्या०–शुद्धात्मद्रव्यं इति, शुद्धो निर्मलः सकलपुद्गलाश्लेषरहितो ज्ञानदर्शनचारित्रवीर्याव्याबाधामूर्त्ताद्यनन्तगुणपर्यायनित्याद्यनन्तस्वभावमयः, असंख्यप्रदेशी, स्वभावपरिणामी, स्वरूपकर्तृत्वभोक्तृत्वादिधर्मोपेतः, आत्मा शुद्धात्मा, तदेव शुद्धात्मद्रव्यं एव अहं, अनन्तस्याद्वादस्वसत्ताप्रागभावरसिकः, अनवच्छिन्नानन्दपूर्णः परमात्मा परमज्योतीरूपः, अहं शुद्धं निरावरणं सूर्यचंद्रादिसहायविकलप्रकाशं, एकसमये त्रिकालत्रिलोकगतसर्वद्रव्यपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यावबोधकं ज्ञानं मम गुणः, कर्त्ता ज्ञानस्य, मे कार्यं ज्ञानं, ज्ञानकरणान्वितो ज्ञानपात्रो ज्ञानात् जानन्, ज्ञानाधारोऽहं, ज्ञानमेव मम स्वरूपं इत्यवगच्छन् अन्ये धर्माधर्माकाशपुद्गलस्वतोऽन्यत् जीवपदार्थः जीवपुद्गलसंयोगजपरिणामः अन्यः सर्वः, अहं न, मत्तो भिन्ना एव एते पूर्वोक्ता भावा मम द्रव्यादिचतुष्टयेन भिन्नत्वात् । यो हि व्याप्यव्यापकभावाद् भिन्नः, स मम न, यः असंख्यप्रदेशो स्वक्षेत्रे अभेदतया स्वपर्यायपरिणामः, स मम इति, स्वस्वरूपे स्वत्वं, परे परत्वपरिणामः, 'मोहास्त्रं' मोहच्छेदकं अस्त्रं ईदृग्भेदज्ञानविभक्तेन मोहक्षयः, अतः सर्वपरभावभिन्नत्वं विधेयं । अत एव निर्ग्रन्थास्त्यजन्ति आस्रवान्, श्रयन्ति गुरुचरणान्, वसन्ति वनेषु, उदासीभवन्ति विपाकेषु, अभ्यस्यन्ति आगमव्यूहं, अनादिपरभावच्छेदाय प्रयतन्त उत्तमानाम् ॥ २ ॥

[illegible]

[illegible] संयमस्थानं ।

एते कित्तिया पएसा? सव्वागासस्स मग्गणा होइ ।
ते तित्तिया पएसा अविभागाओ अणंतगुणा ॥१॥

प्रथमं संयमस्थानं [illegible] अनंत-[illegible] द्वितीयं संयमस्थानं प्रथमस्थानात् अनंतत्वे [illegible] प्रथमं [illegible] । प्रथमं संयमस्थानं प्रथमं [illegible] ।

एवं परद्रव्येन अरमन् आत्मा मुच्यते अत एव सर्वसङ्गपरिहारोऽसङ्गा हि मुच्यनां निमित्तं मुग्नतां त्यागार्थां, तन्निमित्तान् धनस्वजनाङ्गनाभोजनादीन् त्यजति कारणाभावे कार्याभावः, इति भावाश्रयपरिणतिरोधसंयमः, तद्रक्षणाय ब्रह्मचर्यं हिताय आश्रवत्यागो मुनीनां, भावना च–यैः परभावा अभोग्या अग्राह्याः कृताः ते कथं तत्र रमन्ते ? ॥ ३ ॥

पश्यन्नेव परद्रव्य—नाटकं प्रतिपाटकम् ।
भवचक्रपुरःस्थोऽपि, नामूढः परिखिद्यति ॥ ४ ॥

व्या०–पश्यन्नेवेति; स्वरूपाच्युतिस्वधर्मैकत्वे 'अमूढः' तत्त्वज्ञानी, स्वरूपसाधनोद्यतः, 'प्रतिपाटकं' एकेन्द्रिय–विकलेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियरूपपाटके वरतिर्यग्देवनरकलक्षणे सर्वस्थाने परद्रव्यनाटकं जन्मजरामरणादिरूपं संस्थाननिर्माणवर्णादिभेदविचित्रं, पश्यन् एव न 'परिखिद्यति' न खेदवान् भवति । जानाति च पुद्गलकर्मविपाकजां विचित्रतां, न मत्स्वरूपं भ्रान्तानां भवत्येव, न तत्त्वपूर्णानां कथंभूतः ? अमूढः भवचक्रपुरस्थः अपि, अनादिस्वकृतकर्मपरिणामनृपराजधानीचतुर्गतिरूपभवचक्रक्रोडगतोऽपि, आत्मानं भिन्नं जानन् न खिद्यति, परस्मैपदं तु काव्ये प्रयुक्तत्वात् "खिद्यति काव्ये जडः" इति पाठदर्शनात्। इत्यनेन कर्मविपाकचित्रतां भुंजन्नपि अखिन्नः तिष्ठति, कर्तृत्वकाले न अरतिः अनादरः तर्हि भोगकाले को द्वेष उदयागतभोगकाले इष्टानिष्टतापरिणतिरेव अभिनवकर्महेतुः, अत अव्यापकतया भवितव्यं, शुभोदयोऽपि आवरणः, अशुभोदयोऽप्यावरणः, गुणावरणत्वेन तुल्यत्वात् का इष्टानिष्टता ? ॥ ४ ॥

[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] । [illegible] इत्यर्थः । [illegible]
[illegible] ।
[illegible], न पुनः सर्वं प्रतिषेधो भवति. [illegible] ।
[illegible]

लोऽहं पञ्चेद्रियोऽहं जानाति परं शुद्धं स्वीयं सच्चिदानन्दरूपं निर्मलं स्वरूपं नाववोधति इति मूर्खनापरिणतिः तत्त्वज्ञः खानिस्थवज्रं समलं सावरणं समृदपि रत्नपरीक्षकवत् वज्रत्वेन अवधारयति, एवं ज्ञानावरणाद्यावृतं अनदाकारं ज्ञानज्योति, प्रकाशविकलमपि आत्मानं पूर्णानंदं सहजाप्रयासानंदसंदोहं सर्वज्ञं सर्वतत्त्वस्वरूपाभिन्नं सम्यग्ज्ञानबलेन निर्धारयति इति, इत्यनेन आत्मा शुद्ध एव श्रद्धेयः, उपाधिदोषस्तु सन्नपि तादात्म्याऽभावात् संसर्गजत्वात् भिन्न एव निर्धार्य इति ॥ ६ ॥

मोहात् जीवः परवस्तु आत्मत्वेन जानन् आरोपजं सुखं सुखत्वेन अनुभवति, भेदज्ञानी तु आरोपजं सुखं दुःखमेवेति निवारणाय मन् तदुपदिशन्नाह—

अनारोपसुखं मोह–त्यागादनुभवन्नपि।
आरोपप्रियलोकेषु, वक्तुमाश्चर्यवान् भवेत् ?॥ ७ ॥

व्या०–अनारोपेति, अनारोपजं सहजं सुखं स्वगुणज्ञाननिर्द्धारसागभावरूपं सुखं मोहत्यागात् मोहक्षयोपशमात् अनुभवन्नपि भुंजन्नपि आरोपो [illegible] येषां ते आरोपप्रियास्ते लोकाश्च आ[illegible] [illegible] आरोपलु[illegible] वक्तुं आश्चर्यवान् भवेत् ? अत्र [illegible] [illegible] न [illegible] येन आरोपजं [illegible] मानं स आरोप[illegible] [illegible] [illegible] भवति अथवा अनारोपसुखानुभव[illegible] आरो[illegible] आरोपजं सुखं सुखं इति [illegible] आश्चर्यवान् भवति, [illegible] न सन्त्यौ [illegible] सुखाभावात् [illegible] [illegible] दुःखरूपे सुखं इति लोकार्थ [illegible] आश्चर्यवान् भवेत्

*सायासायं दुक्खं, तव्विरहम्मि य सुहं जओ तेणं ।
देहेंदिएसु दुक्खं, सुक्खं देहिंदियाभावे ॥३॥

उक्तं च—

यं वाञ्छनात्रमवत्तादयति प्रतिष्ठा,
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ।
नातिश्रमापगमनाय यथा श्रमाय,
राज्यं स्वहस्तधृतदंडमिवातपत्रम् ॥१॥ इति ॥

तस्मात् संसारः सर्वदुःखरूप एव । स्वाभाविकानंद एव सुखं यावत् इंद्रियसुखे सुखबुद्धिः तावत् सम्यग्दर्शनज्ञाने न स्तः, इति तत्त्वदृष्टौ, अतः आत्मानंदसुखं पूर्णाऽऽक्षेपकत्वेन नोपनीयते ॥ ६ ॥

शमशैत्यपुषो यस्य, विप्रुषोऽपि महाकथा ।
किं स्तुमो ज्ञानपीयूषे, तत्र सर्वाङ्गमग्नता ? ॥७॥

व्या०—'शमशैत्यपुष' इति, शम उपशमः रागद्वेषाभावः, तत्त्वावबोधकत्वं आत्मनि निर्धार्य इष्टानिष्टे वस्तुनि रागादीनां शांतिः, नहि रागद्वेषौ वस्तुपरिणामाः किन्तु विभावजा अशुद्धा

* यत एव समस्तं सौख्यं [illegible] सुखं नास्ति दुःखनैरन्तर्यम् ।
[illegible] विरहे ततः [illegible] दुःखानि ॥ १ ॥
[illegible] दुःखेन दुःखनीरस [illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible] दुःखं [illegible] सुखं [illegible] ।
देहेन्द्रियेषु दुःखं सौख्यं देहेन्द्रियाभावे ॥ ३ ॥

॥ अथ पञ्चमं ज्ञानाष्टकम् ॥

मोहत्यागश्च ज्ञानाद् भवति, अतः ज्ञानाष्टकं लिख्यते। तत्र ज्ञानलक्षणं, 'व्यवहाराव्यभिचाररूपं सर्वपदार्थावबोधरूपं सामान्यविशेषात्मनि पदार्थजाते विशेषबोधलक्षणं ज्ञानं, ज्ञायते अनेनेति ज्ञानं। उक्तं च उत्तराध्ययने।

"एयं पञ्चविहं नाणं, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाणं च सव्वेसिं, नाणं नाणीहिं देसियं॥"

(अ० २८। गा० ५)

इति। आत्मनो विशेषलक्षणं नाम ज्ञानं शब्दालापरूपं, स्थापनाज्ञानं सिद्धचक्रादौ स्थापितं द्रव्यज्ञानं आगमतनज्ञानपदावबोधी अनुपयुक्तः, नोआगमतः द्रव्यज्ञानं अनुपयुक्तावस्था इति तत्त्वार्थे। तथा द्रव्यज्ञानं पुस्तकन्यस्तं। अथवा वाचना-पृच्छना-परिवर्त्तना-धर्मकथानुप्रेक्षादीनां द्रव्यज्ञानं, भावज्ञानमुपयोगपरिणतिः मत्यादिप्रकारं स्वपरविवेचकं परिच्छेदावलोकनाभासनादिपर्यायं, तत्र नैगमेन ज्ञानं, भाषादिस्कंधज्ञानं। संग्रहेण सर्वजीवज्ञानं अभेदोपचारात्, व्यवहारेण पुस्तकादिज्ञानं, ऋजुसूत्रेण तत्परिणामसंकल्परूपं ज्ञानं, अथवा-ज्ञानहेतुर्वीर्यं, नैगमेन संग्रहेण आत्मा व्यवहारेण क्षयोपशमीभूतज्ञानविभागप्रवृत्तिः, ऋजुसूत्रेण वर्त्तमानबोधः यथार्थायथार्थरूपमुभयज्ञानं, शब्दनयेन सम्यग्दर्शनपूर्वकयथार्थावबोधलक्षणं कारणकार्यसापेक्षं ज्ञानं स्वपरप्रकाशं स्याद्वादोपेतं अर्पितानर्पितादियुक्तं सम्यग्ज्ञानं, समभिरूढनयेन सकलज्ञानवचनपर्यायशक्तिप्रवृत्तिरूपं, एवंभूतनयेन मत्यादिस्वस्वरूपपूर्णैवंभूतना-

[illegible]—[illegible] [illegible] दीप्तिने नमः
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] दीप्तिने
[illegible] [illegible] नमः ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न एव [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । ([illegible]) [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] दीप्तिने नमः इति अत्र
[illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]. अतः
[illegible] हि [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible] [illegible], [illegible]
[illegible] [illegible]. [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] अत्र [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] ॥ ८ ॥ ॥ इति [illegible]
[illegible] ॥

॥ अथ तृतीयं स्थिरताष्टकम् ॥

अथ मग्नत्वे स्थिरता भवति, अतः स्थिरताष्टकं प्रक-

ग्रीष्मतापतप्तशिलातलस्था अपि शीतला अत्यंतहिमे अकंपाः, ध्यायंति स्वतत्त्वं जगत्विक्षोभ-अनाक्षोभक्षुवा चिंतयंति स्वगुणपर्यायान्, शक्रस्पर्द्धिचक्रिलीलां त्यजंति, किं बहुना? आत्मानंदावबोधरसिकानां अन्यत् तुच्छं, यथार्थसंपूर्णप्रत्यग्‌आत्मरसिकाः तितिक्षंति परीषहान्, प्रारंभंति श्रेणिं, नयंति स्वरूपैकत्वरूपं ध्यानं, अतो ज्ञानास्वादिन एव धन्याः उक्तं च संवेगरंगशालायाम्:—

ते धन्ना सुकयत्था, जेसिं नियतत्तबोहरुइ जाया।
जे तत्तबोहभोई, ते पुज्जा सव्वभवाणं॥ १॥
जेसिं निम्मलनाणं, जायं तत्तसहावभोगित्तं।
ते परमातत्तसुही, तेसिं नामंपि सुट्ठुयरं॥ २॥

तेषां जन्म जीवितं सफलं ये स्वतत्त्वबोधरसिका इति, अतो ज्ञानी ज्ञाने मज्जति, यथा मरालो हंसो मानसे मज्जति तथा इति ॥ १ ॥

निर्वाणपदमप्येकं, भाव्यते यन्मुहुर्मुहुः।
तदेव ज्ञानमुत्कृष्टं, निबन्धो नास्ति भूयसा ॥ २ ॥

व्या०—निर्वाणपदमिति,—निर्वाणपदं, निःकर्मताहेतुपदं, एकमपि स्याद्वादसापेक्षं मुहुर्मुहुः वारंवारं भाव्यते आत्मतन्मयनया क्रियते, वाचना-पृच्छना-परिवर्त्तना-अनुप्रेक्षा-धर्मचिंतन-परिशीलन-निदिध्यासनतया करणं कर्तृत्वं कार्यत्वं कारणत्वं आधारत्वं आस्वादनं विश्रामः स्वरूपैकत्वं, तदेवोत्कृष्टं ज्ञानं येनाऽऽत्मा स्वरूपलीनो भवति अनाद्यनास्वादितात्मसुखमनुभवति, तत् पदमप्य-

वत्स! किं चञ्चलस्वान्तो,भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा विषीद
निधिं स्वसन्निधावेव, स्थिरता दर्शयिष्यति ॥

व्या०—'वत्सेति' हे वत्स ! त्वं चंचलस्वांतः चप
लःकरणः सन् इत इतो भ्रांत्वा, एकं लजन् अन्यं गृ
अतिदीनः कथं विषीदसि विषादवान् भवसि? अप्राप्ता दी
नाप्याऽऽतृप्तः अत एव परभावे विषाद एव सुखबुद्ध्या गृ
तस्य स्वयं सुखरूपाभावात् प्राप्तौ अपि न सुखं. अतस्तत्र प्र
निर्विषादत्वा एव. रे वत्स ! स्वसंनिधौ एव स्वसत्तायां ए
आत्मनि एव. निधिं स्वगुणसंपद्भाजनं. तत्र स्थिरता केवल
स्यानेकत्वस्वरूपा दर्शयिष्यति उपयोगगोचरं करिष्यति.
अतः अनादिविभावाक्लततां त्यक्त्वा शुद्धे ज्ञानादिअनंतगुणे
इदानीमेव स्थिरत्वं कुरु ॥ १ ॥

ज्ञानदुग्धं विनश्येत, लोभविक्षोभकूर्चकैः ।
आम्लद्रव्यादिवास्थैर्या-दिति मत्वा स्थिरो भव ॥२॥

व्या०—'ज्ञानदुग्धमिति' लोभविक्षोभकूर्चकैः अस्थैर्यात्
ज्ञानदुग्धं विनश्येत. लोभः लोलुपतापरिणामः, इच्छा मूर्छा
ध्वलताऽऽकांक्षा इत्यादि लोभपर्यायाः परभावाभिलाषरूपा अशु-
द्धपरिणामाः, त एव कूर्चकैः तैर्ज्ञानं तत्त्वावबोधलक्षणरूपं,
दुग्धमिव दुग्धं. विनश्येत क्षयं व्रजेत. लोभपरिणाम आत्म-
स्वरूपानुभवविनाशहेतुः. कस्मादिव ? आम्लद्रव्य इव. यथा
आम्लद्रव्ययोगे पयो विनश्यति. तथा लोभपरिणत्या आत्मस्व-
रूपगुणं विनश्येत इति । लोभपरिणामः परभावग्रहणेच्छाकारि-
त्वात्, आत्मगुणानुभवविनाशहेतुः इति ज्ञात्वा
२२

स्वल्पज्ञानेन नो शान्ति, याति दृप्तात्मनां मनः।
स्तोकं दृष्टा यथा तप्त-भूमिरुन्मायतेतराम् ॥ २ ॥

अतो निरतिचारानाशंसि यथार्थात्मयोगे रसिकतया भावनीयं तदर्थमेवांगोपांगयोगोपधानाद्यभ्यासो मुनीनाम् । तथा योगशास्त्रं महात्मा पतंजलिप्रमुखः, यशोविजयश्च श्रीहरिभद्रसूरिर्योगदृष्टिसमुच्चये ॥ ३ ॥

वादांश्च प्रतिवादांश्च, वदन्तोऽनिश्चितांस्तथा ।
तत्त्वान्तं नैव गच्छन्ति, तिलपीलकवद् गतौ ॥ ४ ॥

व्या०—वादांश्चेति—वादान् पूर्वपक्षरूपान्, प्रतिवादान् उत्तरपक्षरूपान्, परस्परजयपराजयेच्छया वदंतः [illegible] कुर्वंतः, तत्त्वांतं तत्त्वस्य वस्तुधर्मस्य अंतं पारं नैव गच्छंति नैव लभंते, कथंभूतान् वादान्? अनिश्चितान् अनिर्धारितार्थान् [illegible] वदंतः तत्त्वांतं [illegible] वस्तुं नैव लभंते । किंवत्? गतौ गमने तिलपीलकवत् तिलपीडकवृषभवत् [illegible] न लभते, एवं [illegible] अनेकशास्त्रश्रमं [illegible] न तत्त्वान्तं गच्छन्ति, अतो यथार्थतत्त्वज्ञानमर्थिनया भावनीयम् ॥ ४ ॥

स्वद्रव्यगुणपर्याय—चर्या वर्या परान्यथा ।
इति दत्तात्मसन्तुष्टि—र्मुष्टिज्ञानस्थितिर्मुनेः ॥ ५ ॥

व्या०—स्वद्रव्येति, स्वद्रव्ये [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥४॥

[illegible] गणा ।
[illegible] निशि ॥५॥

[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible]प्रदीपकेषु, [illegible] सहस्रदीपकैः ।
[illegible] [illegible]ऽस्तरैः ॥ ६ ॥

[illegible]

उपयुज्यंते ? न क्वापि, दृष्टिः सर्वालोकनक्षमा तर्हि सहायभूतदीपस्य किं प्रयोजनं ? । अत्र ग्रंथिभेदस्वरूपं । तत्र-पंचेंद्रियत्वसंज्ञित्वपर्याप्तत्वरूपाभिस्तिसृभिः लब्धिभिः युक्तः अथवा उपशमलब्धिः उपदेशश्रवणलब्धिः करणत्रयहेतुप्रकृष्टयोगलब्धिविक्युक्तः करणकालात्पूर्वमपि अंतर्मुहूर्तकालं यावत् प्रतिसमयमनंतगुणवृद्धया विशुद्धया विशुध्यमाना अवदातमाना चित्तसंततिः ग्रंथिकसत्वानां अभव्यसिद्धिकानां या विशोधिः तामतिक्रम्य वर्त्तमानः ततोऽनंतगुणविशुद्धः अन्यतरस्मिन् (मतिश्रुतविभंगान्यतमस्मिन् साकारोपयोगे) चान्यतमस्मिन् वर्त्तमानः तिसृणां विशुद्धानां लेश्यानामन्यतमस्यां लेश्यायां वर्त्तमानो जघन्यतः तेजोलेश्यायां, मध्यमपरिणामेन पद्मलेश्यायां, उत्कृष्टपरिणामेन शुक्ललेश्यायां, तथा पूर्वजानां सप्तानां कर्मणां स्थितिमंतःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणं कृत्वा अशुभानां कर्मणां अनुभागं च मुख्यस्थानकं संतं (सन्) द्विस्थानकं करोति, शुभानां च कर्मणां द्विस्थानकं संतं (सन्) चतुःस्थानकं करोति, तथा ध्रुवप्रकृतीः सप्तचत्वारिंशत् संख्यया बध्नन् परावर्त्तमानाः स्वस्वभावप्रायोग्याः प्रकृतीः शुभा एव बध्नाति ता अप्यायुर्वर्ज्याः अतीव विशुद्धपरिणामो हि नायुर्बंधमारभते, यदुत तिर्यग् मनुष्यो वा प्रथमं सम्यक्त्वं उत्पादयन् देवगतिप्रायोग्याः शुभाः प्रकृतीः बध्नाति, देवो नैरयिको वा प्रथमं सम्यक्त्वमुत्पादयन् मनुजगतिप्रायोग्याः सुभगाः प्रकृतीः बध्नाति, सप्तमनरकतिर्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रं बध्नाति, भवप्रायोग्यान् बध्यमानस्थितिः अंतःसागरोपमकोटाकोटिं बध्नाति, नाधिकां योगवशात् प्रदेशाग्रमुत्कृष्टजघन्यमध्यमं च बध्नाति, स्थितिबंधे पूर्णे सत्यन्यं स्थितिबंधं प्राक्तनस्थितिबंधं प्राक्तनस्थितिबंधापेक्षया पल्योपमा-

मतश्रुतेऽप्यपि स्थिरतारूपं चारित्रं दृश्यते, पंचमाङ्गे सिद्धानां चारित्राभाव उक्तः, स च-क्रियाव्यापाररूपः, परन्तु स्थिरतारूपः सद्-वस्तुधर्मत्वात् अस्त्येवेति, प्रज्ञापना-तत्त्वार्थ-विशेषावश्यका-दिषु व्यक्तं व्याख्यानत्वात्, आवरणाभावे आवर्यस्य प्रागभावात् विगतचारित्रमोहस्य चारित्रप्रकटनात्, सिद्धानामपि स्थिरतारूपं चारित्रं. अतः स्थिरता साधनीया प्रथमं सम्यग्दर्शनेन श्रद्धास्थि-रतां कृत्वा सज्ज्ञानस्वरूपविश्रान्तिस्वरूपरमणतारूपां स्थिरतां कृत्वा समस्तगुणपर्यायाणां स्वकार्यप्रवृत्तिरूपां स्थिरतां निष्पाद्य समस्तात्मपरिणतिनिःसङ्गरूपां परमां स्थिरतां निष्पादयति. अतः समस्तपरभावपरित्यागेन योगस्थिरतां कृत्वा उपयोगस्थिरत्वेन स्वरू-पकर्तृत्व-स्वरूपरमणत्व-स्वरूपभोक्तृत्वरूपं स्थिरत्वं साध्यं, तस्मात् स्थिरत्वसाधने यत्नः करणीय इत्युपदेशः ॥ ८ ॥

॥ इति व्याख्यातं स्थिरताष्टकम् ॥

॥ अथ चतुर्थं मोहत्यागाष्टकम् ॥

अथ स्थिरता मोहत्यागाद् भवति, आत्मनः परिणतिचा-ञ्चल्यं मोहोदयात्. मोहोदयश्च मिथ्यात्वसम्यग्दर्शनस्वरूपरमण-चारित्रवारकश्च. क्षयोपशमो चेतनावीर्यादीनां विपर्यासस्वरमणत-त्त्वादिपरिणमनरूप इति, तेन चाञ्चल्यं, अतो मोहोदयवारणेन स्थिरता भवति, तेन त्यागाष्टकं वितन्यते, नामस्थापनामोहः सुगमः, द्रव्येण मदिरापानादिना मोहो मूढतापरिणामः, द्रव्याद् धनस्वजनवियोगात्, द्रव्ये शरीरपरिग्रहादौ द्रव्यरूपो मोहः, मोहनर्गीतादिषु गन्धर्वादीनां वाद्येषु, अनुपयुक्तस्य आगमतो नोआगमतो रागवत्। भावतो मोहः आगमतः, समस्तापा-

रूपद्स्थानप्रतीतानि । इह कल्पनया द्वौ पुरुषौ युगपत्करण-प्रपन्नौ विवक्ष्येते, तत्र एकः सर्वजघन्यया श्रेण्या प्रतिपन्नः, अपरः सर्वोत्कृष्टया विशोध्या, प्रथमजीवस्य प्रथमसमये मंदा, द्वितीयसमये अनंतगुणा तृतीये अनंतगुणा एवं यावत् येषां प्रवृत्तकरणस्य संख्येयो भागो गतो भवति, ततः प्रथमसमये द्वितीयस्य जीवस्य, उत्कृष्टं विशोधिस्थानं अनंतगुणं वक्तव्यं, ततोऽपि द्वितीये उत्कृष्टा विशोधिरनंतगुणा, तत उपरि जघन्यविशोधिः अनंतगुणा, एवमुपर्यधश्च एकैकं विशोधिस्थानमनंतगुणं द्वयोर्जीवयोस्तावन्नेयं यावच्चरमसमये जघन्यविशोधिस्ततः आचरमात् चरममभिव्याप्य यानि अमुक्तानि शेषाणि उत्कृष्टानि स्थानानि तानि क्रमेण निरंतरमनंतगुणानि वक्तव्यानि, तदेवं समाप्तं यथाप्रवृत्तकरणं, अस्य च यथाप्रवृत्तकरणस्य पूर्वप्रवृत्तं इति द्वितीयं नामशेषकरणाभ्यां, पूर्वं प्रथमं प्रवृत्तं पूर्वप्रवृत्तमिति अस्मिंश्च यथाप्रवृत्तकरणे स्थितिघातरसघातौ गुणश्रेणिर्वा न प्रवर्तेते केवलमुक्तरूपा विशोधिरेवानंतगुणा यानि वा प्रशस्तानि कर्माण्यप्र स्थितौ बध्नाति, यानि च शुभानि तेषां चतुःस्थानकं स्थितिबंधेऽपि पूर्णे पूर्णे सत्यन्यं स्थितिबंधं पल्योपमसंख्येयभागन्यूनं च बध्नाति । संप्रति अपूर्वकरणमभिधीयते । " बीयस्स बीयं समये जह एहमवि अणंतरुक्कस्सा" इत्यादिवचनात् । द्वितीयस्य अपूर्वकरणस्य यो द्वितीयः समयः कृतजघन्यमपि विशोधिस्थानात् अनंतगुणं वक्तव्यं । एतदुक्तं भवति–त्ते हि यथाप्रवृत्तकरणवत् प्रथमतो निरंतरं विशोधिस्थानं अनंतगुणं वक्तव्यं, किंतु प्रथमसमये प्रथमतो जघन्या विशोधिः सर्वस्तोका, सापि च यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयभाविन उत्कृष्ट विशोधिस्थानात् अनंतगुणा, ततः प्रथमसमये एवोत्कृष्टा विशोधिरनंतगुणा, ततो

यो न मुह्यति लग्नेषु, भावेष्वौदयिकादिषु ।
आकाशमिव पङ्केन, नाऽसौ पापेन लिप्यते ॥ ३ ॥

व्या०–यो न मुह्यति इति. यो जीवः तत्त्वविलासी 'औदयिकादिषु भावेषु. शुभाशुभकर्मविपाकेषु आदिशब्दात् परभावानुगतक्षयोपशमे अशुद्धपारिणामिकभावप्रभृतिषु तेषु 'लग्नेषु' आत्मनि एकीभूतेषु यो न मुह्यति मोहितभावं न प्राप्नोति. भेदज्ञानविवेकेन स्वतत्त्वसंयोगः अरक्तद्विष्टेषु च. अनन्यासक्तः स पापेन कर्मणा न लिप्यते । किमिव पङ्केन आकाशमिव, यथा आकाशमध्यगः आकाशस्य न लेपः, तत्र अपरिणमनात् । एवं ज्ञानसंवेगनिर्वेदभावनाभावितस्य उदयोदयविपाके भुज्यमानेऽपि अकारकत्वात् न लेपः । स हि–स्वकर्तृत्वनिर्धारकरूपं कार्यं करोति, स्वीयपरिणामस्य निरूपणेन अकर्तृत्वं तस्य परभावानाम् । उक्तं च अध्यात्मबिन्दौ–

स्वत्वेन स्वं परमपि परत्वेन जानन् समस्तान्य-
द्रव्येभ्यो विरमणमिति यश्चिन्मयत्वं प्रपन्नः ।
स्वात्मन्येवाभिरतिमुपनयन् स्वात्मशीली स्वदर्शी
त्येवं कर्त्ता कथमपि भवेत् कर्मणो नैष जीवः ॥१॥

न कामभोगा समयं उवेंति,
नयावि भोगा विगइं उवेंति ।
जे तप्पओसी अ परिग्गही अ
सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥ २ ॥

भावना च यात्यस्थितिखंडमध्याद्दलिकं गृहीत्वा उदयसमयात् प्रतिसमयं असंख्येयगुणतया निक्षिपति प्रथमसमये स्तोकं, द्वितीयसमये असंख्येयगुणं, तृतीयसमये असंख्येयगुणं, एवं यावच्चरमसमयः । एष प्रथमसमयगृहीतदलकनिक्षेपविधिः, एवं द्वितीयादिसमयगृहीतानां अपि, इत्यनेन प्रथमसमये स्तोकः, द्वितीयसमये असंख्येयगुणः, तृतीयसमये असंख्येयगुणः; गुणश्रेणिदलिकनिक्षेपो भवति । इति अपूर्वकरणस्वरूपं । अनिवृत्तिकरणे एतदुक्तं भवति—अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमये ये वर्तंते ये च वृत्ताः ये च वर्तिष्यंते तेषां सर्वेषामपि समाना एकरूपा विशोधिः, द्वितीयसमयेऽपि ये वर्तंते ये च वृत्ताः ये च वर्तिष्यंते तेषामपि समा विशोधिः, एवं सर्वेष्वपि समयेषु, नवरं—पूर्वतः उपरितने अनंतगुणाधिका विशोधिः चरमसमयं यावत्, अस्मिन् करणे प्रविष्टानां तुल्यकालानामसुमंतां परस्परमध्यवसायानां या निवृत्तिर्व्यावृत्तिः सा न विद्यते इत्यनिवृत्तिकरणं-अनिवृत्तिकरणे यावंतः समयास्तावंति अध्यवसायस्थानानि पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् अनंतगुणवृद्धानि भवंति अनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु सत्सु एकस्मिंश्च भागे संख्येयतमे शेषे तिष्ठति अंतर्मुहूर्त्तमात्रमधो मुक्त्वा मिथ्यात्वस्यांतरकरणं करोति अंतरकरणकालश्चांतर्मुहूर्त्तप्रमाणः अंतरकरणे च क्रियमाणे गुणश्रेणेः संख्येयतमं भागं उत्किरति उत्कीर्यमाणं च दलिकं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति एवं उदीरणाआगालबलेन मिथ्यात्वोदयं निवार्य औपशमिकं सम्यक्त्वं लभते । उक्तं च—

मिच्छत्तुदये खीणे लहइ संमत्तमोवसमीयं ।
सो लंभेण जस्स लब्भइ आयहियं अलद्धपुव्वं जं ॥१॥

विकल्पचपकैरात्मा, पीतमोहासवो ह्ययम् ।
भवोच्चतालमुत्ताल–प्रपञ्चमधितिष्ठति ॥ ५ ॥

व्या०–विकल्पचपकैरिति, विकल्पाश्रितकल्लोला एव चपका मद्यपानपात्राणि तैः, हीति निश्चितं अयं जीवः पीतो मोह एव आसवो मादकरसो येन सः पीतमोहासवः पुरुषो भवोच्चतालं भवः संसारः स एव उच्चतालं मद्यपगोष्ठीक्षेत्रं प्रति उच्चतालं पुनःपुनः उच्चस्वरेण तालदानरूपं प्रपञ्चं विस्तारं अधितिष्ठति प्राप्नोति इत्यनेन मोही जीवो मदिरामत्तवत् चापल्यवैकल्यं करोति परं स्वत्वेन स्वं च परत्वेन कल्पयन् आत्मानं अकार्यनिष्पादनपरिष्टं प्रवर्त्तयन् स्वस्थानभ्रष्टो भ्रमति, अत एव मोहत्यागः श्रेयान् ॥५॥

निर्मलस्फटिकस्येव, सहजं रूपमात्मनः ।
अध्यस्तोपाधिसम्बन्धो, जडस्तत्र विमुह्यति ॥ ६ ॥

व्या०–निर्मलस्फटिकस्येवेति, निर्मलस्फटिकस्य वर्णानिरसङ्गस्फटिकस्य इव आत्मनो ज्ञायकतत्त्वस्य सहजं–स्वाभाविकं शुद्धं रूपं अस्ति इत्यनेन वस्तुवृत्त्या आत्मा स्फटिकवत् निर्मल एव निस्सङ्ग एव संग्रहनयेन आत्मा परोपाधिसङ्गी एव नास्ति परमज्ञायकचिदानन्दरूपः अध्यारोपोपाधिसम्बन्धः प्राप्तपुद्गलसंसर्गजकर्मोपाधिसम्बन्धः, अनेकम्लानम्लानावस्थो जडः वस्तुस्वरूपापरिज्ञानी तत्र उपाधिभावे मुह्यति, एकत्वं प्राप्नोति, यथा–मूर्खः श्यामनीलपीतादिपुष्पसंयोगात् स्फटिकाभेदभ्रान्त्या नीलपीतस्वभावं जानाति तथा वस्तुस्वरूपावबोधविकलो जीवो मिथ्यात्वाऽविरतिकषाययोगनिमित्ताद् बद्धैकेन्द्रियादिनामकर्मोदयात् एकेन्द्रियाभावमापन्नं एकेन्द्रियादिरूपमेव मन्यते, एकेन्द्रियोऽहं विक-

व्या०—पीयूषमिति, असमुद्रोत्थं पीयूषं अमृतं, अनौषधं औषधरहितं रसायनं जरामरणनिवारकं, अनन्यापेक्षं अन्यत् परवस्तु तस्य अपेक्षया रहितं ऐश्वर्यं 'आश्चर्यमिति' पाठे आश्चर्यं चमत्कारि ज्ञानं, स्वपरावभासनलक्षणं आहुः मनीषिणः पंडिता, इत्यनेन वस्तुतः मरणवारकं सर्वरोगमुक्तिहेतु रसायनं ज्ञानं, वस्तुतः अवलोकनचमत्कारि ज्ञानं, इत्येवं आत्मज्ञानं परमं उपादेयज्ञानं यथार्थावबोधपरभावत्यागलक्षणं स्मृतं, इत्यनेन अनादिपरभावपरिणतस्य मिथ्यात्वाज्ञानासंयममोहितस्य परभावोत्पन्नात्मरोधकपरिणतिं तत्त्वत्वेनांगीकुर्वन् परभावमोहितो भ्रमति सूक्ष्मनिगोदादिचतुर्दशसु जीवस्थानेषु, स च तत्त्वज्ञानामृतपरिणत आत्मा मिथ्यात्वादिदोषान् विहाय सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकोटिमारूढः स्वरूपावभासानंदी सर्वदोषरहितो भवति, अत एवामृतं रसायनं ज्ञानं तदर्थमेवोद्यमः कार्यः ॥ इति व्याख्यानं ज्ञानाष्टकम् ॥

अथ पंचमज्ञानाष्टककथनानंतरं षष्टं शमाष्टकं प्रारभ्यते, ज्ञानी हि ज्ञानात् क्रोधादिभ्य उपशाम्यति, अतः शमाष्टकं विस्तार्यते, तत्र आत्मनः क्षयोपशमाद्याः परिणतयः स्वभावपरिणामेन परिणमंति न तत्रादिपरिणती स शमः, नामशमस्थापनाशर्मो सुगमौ, द्रव्यशमः परिणत्यसमाधौ प्रवृत्तिसंकोचो द्रव्यशम आगमतः, शमस्वरूपपरिज्ञानी अनुपयुक्तो नोआगमतः मायया लब्धिसिद्धयादिदेवगत्याद्यर्थं उपकारापकारविपाकक्षमादिक्रोधोपशमनत्वं इत्यपि द्रव्यशमः, भावतः उपशमस्वरूपोपयुक्त आगमतः, नोआगमतो मिथ्यात्वमपहाय यथार्थभासनपूर्वकचारित्रमोहोदयाभावात् क्षमादिगुणपरिणतिः शमः, सोऽपि लौकिकलोकोत्तरभेदात् द्विविधः, लौकिकं वेदांतवादिनां, लोकोत्तरं जैन-

किमुक्तं इदं मया नेदं सुखं अतः परसंभवे सुखे सुखाभास निवारणीयो मोहकत्त्वात्, पौद्गलिके सुखे सुखभ्रांतिरेव आत्मं-तरं निष्पान्नं इति ॥ ७ ॥

यश्चिद्दर्पणविन्यस्त-समस्ताचारचारुधीः ।
क नाम स परद्रव्ये-ऽनुपयोगिनि मुह्यति ? ॥ ८ ॥

व्या०—यश्चिद्दर्पण इति. यः पुरुषः आगमानुगताशयः चिद् ज्ञानं सर्वपदार्थपरिच्छेदकं तदेव दर्पणं आदर्शः तेन विन्यस्ताः स्थापिताः समस्ता ज्ञानाद्याचाराः तेन चारुः मनोहरा धीर्बुद्धिर्यस्य स पुरुषः, नाम इति कोमलामंत्रणे परद्रव्ये पुद्गलादौ अनुपयोगिनि अकिंचित्करे कस्मिन्नपि कार्ये गृहीतुमयोग्ये क मुह्यति ? इत्यर्थः, यो ज्ञानादिपंचाचारेण संस्कारितोपयोगी आत्मानंदं ज्ञानदर्पणे परस्य परद्रव्ये कथं मुह्यति ? नैवेति । तत्त्वज्ञानविकलानां अनादिमिथ्यात्वाऽसंयमवतां स्वरूपानुभवशून्यानां एव परद्रव्यात्मकः । तत्र सुखभ्रांतिरूपो मोहः । स्वभावधर्मनि-[illegible] तत्त्वज्ञानीनां न मोहः, अत आत्म-स्वरूपैक[illegible] मोह[illegible], अत एव अनादिभ्रान्तिमपहाय [illegible] । आत्मस्वरूपश्रद्धानभासनरम-[illegible], [illegible] आत्मस्वभावसंगत्यागात् तत्त्व-[illegible] संयोगजं सर्वानिन्द्यवरणं संसारहेतु [illegible] शरीर[illegible] परिरिक्तं परस्परं पुनराचि-[illegible] आत्मनः [illegible] संवरः उदीरके अप-[illegible] इत्यादि परिणत्या मोहत्यागो विधेयः। इति चतुर्थ मोह-त्यागाष्टकम् व्याख्यानम् ॥ ८ ॥

अनित्यादिभावनया विबुध्य अनुभवभावनया स्वरूपाभिमुख-योगवृत्तिमध्यस्थ आत्मानं मोक्षोपाये युंजन् भावनायोगः २ स एव पिंडस्थ–पदस्थ–रूपातीत–ध्यानपरिणतरूपैकत्वी ध्यानयोगी भण्यते ३ ध्यानबलेन भस्मीभूतमोहकर्मा तत्तत्त्वादि-परिणतिरहितः समतायोगी उक्तः ४ तथा योगाधीनकर्मोदया-धीना अनादिवृत्तिः जीवस्य तस्याः क्षयः अभावः स्वरूपवृत्तिः वृत्तिक्षययोगी उच्यते ५ एवं पंचयोगेषु समतायोगी साधने परिष्ट इति ज्ञानस्य पूर्णावस्था शमः ॥ १ ॥

अनिच्छन् कर्मवैषम्यं, ब्रह्मांशेन शमं जगत् ।
आत्माभेदेन यः पश्येदसौ मोक्षंगमी शमी ॥ २ ॥

व्या०–अनिच्छन् कर्मेति, कर्म वैषम्यं ऊनाधिकत्वं अनिच्छन् गति-जाति-वर्ण-संस्थान-ब्राह्मण-क्षत्रियादि वैषम्यं ज्ञानवीर्यक्षयोप-शमकार्य वैषम्यं अनिच्छन् उदयन आवरणतः क्षयोपशमभेदे सत्यपि ब्रह्मांशेन चेतनालक्षणेन, अथवा द्रव्यास्तिक–अस्तित्व–वस्तुत्व-सत्त्व–अगुरुलघुत्व–प्रमेयत्व-चेतनत्व-अमूर्त्तत्व-असंख्येयप्रदेशत्व-परिणतया जगत् चराचरं आत्माभेदेन आत्मतुल्यवृत्त्या समानत्वेन यः पश्येत् सर्वजीवेषु समत्वं कृत्वा अरक्तद्विष्टत्वेन वर्त्तमानः असौ योगी मोक्षगामी सकलकर्मक्षयलक्षणावस्थां गच्छतीत्येवं शीलो भवति, यो हि सर्वजीवेषु जीवत्वतुल्यवृत्त्या रागद्वेषप-रिणतिमपहाय आत्मस्वभावानुयंगी असौ योगी मोक्षंगमी भवति ॥ २ ॥

आरुरुक्षुर्मुनिर्योगं, श्रयन् वाह्यक्रियामपि ।
योगारूढः शमादेव, शुद्ध्यत्यन्तर्गतक्रियः ॥ ३ ॥

वस्तुतः केवलं ज्ञानं एवंभूतज्ञानं, अत्र मिथ्यादर्शनेऽपि विपर्यासोपेतं ज्ञानं कुज्ञानं, तत्र मोहत्यागहेतुः, अतः सम्यग्दर्शनपरिकरस्वरूपोपादेयापरभावहेयोपयोगलक्षणं सम्यग्ज्ञानं गृहीतं, तस्यैव संसारनिस्तीर्णहेतुत्वात् उक्तं च—

तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ॥
तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ? ॥ १ ॥

अतो ज्ञानं तत्त्वावबोधरूपं आत्मनः स्वस्वभावाविष्करणहेतुः, मोक्षमार्गस्य मूलं 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' 'पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए'। एवं स्वरूपं अज्ञानमग्नतायुक्तः स्वपरज्ञानस्यावरकः तद् व्याख्यायते—

मज्जत्यज्ञः किलाज्ञाने, विष्ठायामिव शूकरः ।
ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने, मराल इव मानसे ॥ १ ॥

व्या०—मज्जत्यज्ञ, इति—अज्ञः स्वभावविभावाविवेकः किल इति सत्ये अज्ञाने अयथार्थोपयोगे मज्जति, मग्नो भवति, यथार्थविवेकविकलः अयथार्थे लीनो भवति, क इव ? विष्ठायां शूकर इव, यथा शूकरो विष्ठायां मज्जति तथा अज्ञः अभोग्ये आत्मगुणानन्दस्थाने परवस्तुनि ज्ञानादिविपाके इन्द्रियविषये मज्जति। ज्ञानी—यथार्थविवेकी ज्ञाने तत्त्वावबोधे आत्मस्वरूपे निमज्जति तन्मयो भवति। आत्मस्वरूपावबोधानुभवलीनाः शब्दादिविषयान् मनोज्ञान् इष्टानिष्टविकल्पत्वेन गृह्णन्ति, तेन स्वरूपे, मौन-

द्रव्यदयापि दयात्वेन आरोपिता, "श्रीविशेषावश्यके" गणधरवादाधिकारे इति। अतो द्रव्यदया तु कारणरूपा, भावदया तु दयाधर्मः, एवंविधाया दयानद्याः शमपूरे सकलकषायपरिणतिशांतिः शमः रागद्वेषाभावः वचनधर्मरूपः शमः तस्य पूरः, तस्मिन् प्रसर्पति वृद्धिमति सति विकाराः कामक्रोधादयः अशुद्धात्मपरिणामाः त एव तीरवृक्षाः तेषां मूलात् उन्मूलनं भवेत् उच्छेदनं भवेत् अभावः इत्यनेन ध्यानयोगतो दयानदीपूरः प्रवर्द्धते वर्द्धमानपूरश्च विकारवृक्षाणां उच्छेदनं करोत्येव अयं हि आत्मा विषयकषायविकारविप्लुतः स्वगुणावरककर्मोदयतः परिभ्रमति स एव स्वरूपोपादानतः तत्त्वैकत्वतया प्रवर्द्धमानशमपूरो विकारान् मूलात् उन्मूलयति ॥ ४ ॥

ज्ञानध्यानतपःशील–सम्यक्त्वसहितोऽप्यहो ।
तं नाऽप्नोति गुणं साधुर्यमाप्नोति शमान्वितः ॥ ५ ॥

व्या०–ज्ञानध्यानेति–ज्ञानं तत्त्वावबोधः, ध्यानं परिणामस्थिरतारूपं, तपः इच्छानिरोधः, शीलं ब्रह्मचर्यं, सम्यक्त्वं तत्त्वश्रद्धानं, पदानां उत्क्रमता द्वंद्वसमासात्, इत्यादि गुणोपेतः साधुः साधयति रत्नत्रयकरणेन मोक्षं स साधुः तं निरावरणगुणं केवलज्ञानादिगुणं नाप्नोति न प्राप्नोति यं गुणं शमान्वितः शमताचारित्रमय आप्नोति प्राप्नोति लभते इत्यर्थः। अत्र ज्ञानादयो गुणा निरावरणाऽमलकेवलज्ञानस्य परंपराकारणं शमः कषायाभावः, यथाख्यातसंयमः केवलज्ञानस्यासन्नकारणं, अपूर्वकरणसमीकरणकिट्टीकरणवीर्येण सूक्ष्मलोभं खंडशः कृत्वा क्षयं नीते सति निर्विकल्पसमाधौ अभेदरत्नत्रयीपरिणतिः क्षीणमोहावस्थायां यथाख्यातचारित्री परमशमान्वितः ज्ञानावरण–दर्शनावरणांतरायक्षयं नयति,

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] ॥ ६ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] तथा चोक्तं महात्मना ॥ ६ ॥

[illegible] —

[illegible] [illegible] [illegible] विशेषं ।

[illegible] —

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

इति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] —

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] (?) [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ७ ॥

इति शमनास्वादिनां नरेशभोगा रोगाः, चिंतामनिसमूहाः कर्करसमूहाः, वृंदारका दारका इव भासंते, अनः संयोगजा रतिर्दुःखं शमनैव महानंदः ॥ ६ ॥

शमसूक्तसुधासिक्तं, येषां नक्तंदिनं मनः ।
कदाऽपि ते न दह्यन्ते, रागोरगविषोर्मिभिः ॥ ७ ॥

व्या०—शमसूक्त इति–येषां महात्मनां मनः चित्तं शमः कषायाभावः चारित्रपरिणामः तस्य सूक्तानि सुभाषितानि तान्येव सुधा अमृतं तेन सिक्तं अभिषिक्तं नक्तंदिनं अहोरात्रं ते रागोरगविषोर्मिभी रागः अभिष्वंगलक्षणः स एव उरगः सर्पः तस्य विषस्य ऊर्मयः तैः शमतासिक्ता न दह्यंते, जगद्जीवा रागाहिदष्टाः, विषोर्मिघूर्मिता, भ्रमंति इष्टसंयोग–अनिष्टवियोगाचिंतया, विकल्पयंति बहुविधान् अप्रशौचादिकल्पनाकल्लोलान्, संगृह्णंति अनेकान् जगदुच्छिष्टान् पुद्गलस्कंधान्, याचयंति अनेकान् धनार्जनोपायान्, प्रविशंति कूपेषु, विशंति यानपात्रेषु, द्रव्याद्यहितं हितवत् मन्यमानाः, जगदुपकारितीर्थंकरवाक्यश्रवणप्राप्तशमताधनाः स्वरूपानंदभोगिनः स्वभावभासनस्वभावरमण–स्वभावानुभवनेन सदा असंगमग्ना विचरंति आत्मगुणानंदनवने, अतः सर्वपरभावैकत्वं विहाय रागद्वेषविभावमपहाय शमतावत्त्वेन भवनीयम् ॥ ७ ॥

गर्जद्ज्ञानगजोत्तुङ्ग–रङ्गद्ध्यानतुरङ्गमाः ।
जयन्ति मुनिराजस्य, शमसाम्राज्यसम्पदः ॥ ८ ॥

व्या०–गर्जद्ज्ञानमिति, मुनिराजस्य शमसाम्राज्यसंपदो जयंति कथंभूताः संपदः ? 'गर्जद्ज्ञानगजोत्तुंगरंगद्ध्यानतुरंगमाः'

आया सभावनाणी, भोइ रमई विवत्थुधम्मंमि ।
सो उत्तमो महप्पा, अवरे भवसूयरा जीवा ॥१॥

परद्रव्यगुणपर्यायस्मरणानुभवलक्षणा परिणतिः अन्यथा अकार्या अस्ति परभावपरिणाम एव भ्रमणहेतुः; उक्तं च–

परसंगेण बंधो, मुक्खो परभावचायणे होई ।
सव्वदोसाण मूलं, परभावाणुभवपरिणामो ॥ १ ॥

अत एव देशविरतसर्वविरताः प्रत्याख्यांति परिग्रहादीन्, त्यजंति स्वजनपरिजनान्, प्रतिपद्यंते एकाकिविहारं, शृण्वंति स्वतत्त्वगोष्ठिं, चिंतयंति स्वधर्मानंततां, ध्यायंति स्वगुणपर्यायं, परिणाममग्ना भवंति तदनुभवनेन, त्यजंति सर्वपरभावानुमोदनाम् इत्येवं प्रकारेण मुनेः त्रिकालनिर्विषयस्य ज्ञाततत्त्वस्य युष्टिर्ज्ञानस्थितिः अवस्थानं, संक्षेपरहस्यज्ञानविश्राममर्यादा; कथंभूता स्थितिः ? दत्तात्मसंतुष्टिः, दत्ता प्रदत्ता आत्मनः संतुष्टिः संतोष इत्यनेन आत्मग्रहणं परत्यागः इति मर्यादा निर्ग्रंथस्य ॥ ५ ॥

अस्ति चेद् ग्रन्थिभिद् ज्ञानं, किं चित्रैस्तन्त्रयन्त्रणैः।
प्रदीपाः क्वोपयुज्यन्ते ?, तमोघ्नी दृष्टिरेव चेत् ॥६॥

व्या०–अस्तीति चेत् यदि ग्रंथिभित् ग्रंथिभेदोत्पन्नं विपर्यासप्रतिभासदलविकलं आत्मधर्मैकत्वसंवेद्यरूपं ज्ञानं प्रतिभासः अस्ति; तंत्रयंत्रणैः चित्रैः अनेकप्रकारैः परभावनानिमित्तैः किं ? न किमपि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रभावपरिणतस्य किं परापेक्षया ? । तत्र दृष्टांतः । चेत् दृष्टिः चक्षुः तमोघ्नी तमः अंधकारं तस्य घ्नी हंत्री जाता तदा प्रदीपाः क्व

मानं ज्ञानं विषयः कारणकार्ये एकता चारित्रमोहोदयेन अरम्ये रमणं असंयमः, तत्र वर्णादयो हि ज्ञेया एव न रम्यात् तत्र रमणी विषयेंद्रियद्वारप्रवृत्तज्ञानस्य इष्टानिष्टतया परिणमनं तस्य जय इंद्रियविषयजयः, किमित्याह इति यद् द्वारेण वर्णादीनां ज्ञानं न इष्टानिष्टता इंद्रियजयः, अनाद्यशुद्धासंयमपरिणतिवारणारूपः, तत्र ज्ञानं हि आत्मनः स्वलक्षणत्वात् स्वपरपरिच्छेदः विधिः इष्टानिष्टताद्विभाव एव संगांगितया अनादिसंततिजः अशुद्धपरिणामः सर्वथा त्याज्यः, अत एव इंद्रियं जयितव्यं, तत्र द्रव्यजयः संकोचादिलक्षणः, भावजयः चेतनावीर्ययोः स्वरूपानुपातः। नैगमेन निर्वृत्युपकरणेंद्रियपरिणतिनिर्माणादिविपाकजानि इंद्रियसंस्थानानि, ऋजुसूत्रेण स्वस्वविषयग्रहणोत्सुकौ निर्वृत्युपकरणौ, शब्दनयेन संज्ञाग्रहमिता लब्धिः उपयोगपरिणतिवृत्तिः, समभिरूढनयेन संज्ञागृहीताऽगृहीतविषयक्षेत्रप्राप्तविषयपरिच्छेदः, एवंभूतनयेन मतिश्रुतचक्षुरचक्षुर्वीर्यांतरायाणां क्षयोपशमावधेः मतिं यावद् ज्ञानं, तत्रासंयतरयेष्टानिष्टयुक्त एवात्रबोधो भवति, तेन विषय इति संज्ञाभोकृत्वाशुद्धता आत्मनः अशुद्धपरिणामः, तस्य जयः सोऽपि आद्यनयचतुष्टये कारणरूपशब्दादिषु संयमगुणप्राग्भावानुगतचेतनादिपरिणामो द्रव्यजयोऽपि भावजयहेतुत्वात् अभ्यस्यः, भावजयस्तु स्वधर्मत्वात् साध्य एव तदर्थमुपदेशः—

बिभेषि यदि संसारात्, मोक्षप्राप्तिं च कांक्षसि।
तदेन्द्रियजयं कर्तुं, स्फोरय स्फारपौरुषम्॥ १॥

व्या०–बिभेषि यदीति–हे भव्य! यदि त्वं संसारात् बिभेषि भयं प्राप्तोऽसि, च पुनः मोक्षः सकलकर्मक्षयलक्षणः तस्य प्राप्तिं

[illegible]स्थानं करोति, ततः अन्यं [illegible] स्थानं करोति अतः अन्यं [illegible] [illegible] स्थानं करोति. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] द्विप्रकारं [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] च [illegible] [illegible] [illegible] करोति, [illegible] ततः [illegible], [illegible] [illegible]: । [illegible] च [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] च—

अणुसमयं वड्ढंतो अज्झवसाणाणणंतगुणणाए ।
परिणामठाणाणं दोसु वि लोगा असंखिज्जा ॥ १ ॥

इति कर्मप्रकृतौ. प्रतिसमयं अध्यवसायानामनन्तगुणतया विशुद्ध्या वर्धमानानां [illegible] यावत् वर्तन्ते तानि कियन्ति अध्यवसायस्थानानि भवन्ति ? इत्याह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] च [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] भवन्ति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], एवं [illegible], [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]

तृष्णाकुलस्यैव विपया रमणीयाः सा च अनाद्यभ्यासतः विपमसंगेन वर्द्धते अत इंद्रियपरित्यागो युक्तः ॥ २ ॥

सरित्सहस्रदुःपूर–समुद्रोदरसोदरः ।
तृप्तिमान् नेन्द्रियग्रामो, भव तृप्तोऽन्तरात्मना ॥३॥

व्या०—सरित्सहस्रेति—हे भव्य ! अयं इंद्रियग्रामः तृप्तिमान् न, कदापि तृप्तिं न लभते, यतः अभुक्तेषु ईहा, भुज्यमानेषु ममता, भुक्तपूर्वेषु स्मरणं, इति त्रैकालिकी अशुद्धा प्रवृत्तिः, इंद्रियार्थरक्तस्य तेन तृप्तिः, कथंभूत इंद्रियग्रामः ? " सरित्सहस्रदुःपूरसमुद्रोदरसोदरः " सरितां सहस्रं तेन दुःपूर्यते समुद्रस्योदरः तस्य सोदरः, सहस्रशो नदीपूरैः दुःपूरः अपूर्यमाणो यः समुद्रस्य जलनिधेः उदरः तस्य सोदरो भ्राता अतः कारणात् पूर्यमाणोऽपि दुःपूर इंद्रियाभिलाषः स शमसंतोषेणैव पूर्यते, तदर्थं हितोक्तिः भो उत्तम ! अंतरात्मना आत्मनः अंतर्गतेन स्वरूपेण तृप्तो भव, स्वरूपावलंबनमंतरेण न तृष्णाक्षयः, अयं हि संसारचक्रक्रोडीभूतपरभावान् आत्मतया मन्यमानः, "शरीरमेवात्मा" इति बहिर्भावे कृतात्मबुद्धिः बहिरात्मा सन् अनंतपुद्गलावर्त्तकालं मोहावगुंठितः पर्यटति, स एव निसर्गाधिगमाभ्यां स्वरूपपररूपविभजनेन " अहं शुद्धः " इति कृतनिश्चयः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रात्मकमात्मानमात्मत्वेन जानन् रागादीन् परत्वेन निर्धारयन् सम्यग्दृग् अंतरात्मा उच्यते, स एव सम्यग्दर्शनलाभकाले निर्धारिततत्त्वस्वरूपपूर्णप्राप्तौ परमात्मा परमानंदमयसंपूर्णस्वधर्मप्राग्भावभोगी सिद्धो भवति, तेन मिथ्यात्वमपहाय आत्मस्वरूपभुंजनेन उच्छिष्टमलजंबालोपमान् विषयान् त्यजति—

द्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनंतगुणा, ततोऽपि तस्मिन्नेव द्वितीय-
समये तु उत्कृष्टा विशोधिरनंतगुणा, एवं प्रतिसमये तावद्वा-
च्यं यावच्चरमसमये उत्कृष्टा विशोधिः, अपूर्वाणि चत्वारि स्थिति-
घातरसघातगुणश्रेणिस्थितिबंधादीनां निवर्तनानि यस्मिन्, तद्
अपूर्वकरणं । तस्मिन् अपूर्वकरणे प्रविशन् प्रथमसमय एवं स्थिति-
घातं रसघातं गुणश्रेणिस्थितिबंधं चान्यं पुनः आरभते, तत्र
स्थितिघातः स्थितिसत्कर्मणोऽग्रिमभागतः उत्कर्षतः प्रभूतसंख्य-
सागरोपमप्रमाणस्य जघन्येन पुनः पल्योपमसंख्येयभागमात्रं [स्थितिकं-
डकमिति उत्कीर्य च या स्थितिः अधो न खंडयिष्यति तत्र
प्रक्षिपति. अंतर्मुहूर्तेन कालेन तत् स्थितिकंडकं उत्की-
र्यते एवं द्वितीयं, एवं तृतीयं, एवं बहूनि स्थितिकंडकसह-
स्राणि व्यतिक्रामंति. तथा च सति यत् अपूर्वकरणस्य प्रथम-
समये स्थितिः सत्कर्म आसीत् तत्सर्वं चरमसमये संख्येय-
गुणहीनतां जातं । रसघाते तु अशुभानां प्रकृतीनां यत् अनु-
भागसत्कर्म तस्य अनंततमं भागं मुक्त्वा शेषान् अनं-
तभागान् अंतर्मुहूर्तेन विनाशयति. ततः पुनरपि तस्य
प्रागुक्तस्यानंततमं भागं मुक्त्वा शेषान् विनाशयति. एवं अने-
कानि अनुभागखंडसहस्राणि एकस्मिन् स्थितिखंडे व्यतिक्रामंति,
तेषां च स्थितिखंडानां सहस्रैः द्वितीयमपूर्वकरणं परिसमाप्यते ।
स्थितिबंधाद्धा तु अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये अन्य एव अपूर्वः प-
ल्योपमसंख्येयभागहीनस्थितिकं आरभ्यते । जीर्णस्थितिघात-
स्थितिर्वर्जा तु पुरस्तादुक्तैव । पुनरेव निर्जरा यतः गुणश्रे-
णि । यथा-

गुणसेढीनिरक्खवो, समए समए असंखगुणणाए ।
अद्धादुग्गइरित्तो सेसे सेसे य निक्खेवो ॥ १ ॥

सत्तागतं सम्यग्दृष्टि–देशविरति–सर्वविरतानां साध्यरूपं निर्विकल्पसमाधिः शुक्लध्यानस्य फलरूपं अर्हत्सिद्धानां परमं स्वरूपं केवलज्ञानं धनं स्वीयं सहजं विस्मृत्य उपाधिकारोपितमृत्पलरूपे धने मुह्यन्ति मूढाः ॥ ५ ॥

पुरः पुरः स्फुरत्तृष्णा–मृगतृष्णानुकारिषु ।
इन्द्रियार्थेषु धावन्ति, त्यक्त्वा ज्ञानाऽमृतं जनाः॥६॥

व्या० पुरः पुर इति—जडा मूर्खाः स्याद्वादवस्तुस्वरूपोपलंभरहिता ज्ञानामृतं ज्ञानं बोधः तदेव अमृतं अविनाशिपदहेतुत्वात्, तत् त्यक्त्वा इन्द्रियार्थेषु रूपरसगंधस्पर्शशब्दलक्षणेषु धावन्ति, भोगाभिलाषिण आतुरा भवंति, तदर्थं यत्नः, तदर्थं दंभविकल्पकल्पना, तदर्थं कृष्यादिकर्म करोति. कथंभूतेषु इन्द्रियार्थेषु ? पुरः पुरः स्फुरत्तृष्णामृगतृष्णानुकारिषु, अग्रे स्फुरंती या तृष्णा भोगपिपासा तया, मृगतृष्णा जलभ्रांतिः तदनुकारिषु तत्सदृशेषु, यथा–मृगतृष्णाजलं न पिपासापहं भ्रांतिरेव एवमिंद्रियभोगा न सुखं सुखभ्रांतिरेव तत्त्वविकल्पानां ॥ ६ ॥

पतङ्गभृङ्गमीनेभ–सारङ्गा यान्ति दुर्दशाम् ।
एकैकेन्द्रियदोषाच्चेद्, दुष्टैस्तैः किं न पञ्चभिः ?॥७॥

व्या०–पतंगभृंगमीनेति–रूपासक्तः पतंगः, रसासक्तो मीनः, भृंगो भ्रमरः, स्पर्शासक्त इभो गजः, शब्दासक्तो मृगः सारंगः, एते एकैकेंद्रियदोषात् दुर्दशां दुष्टां दीनां दशां अवस्थां यांति, तदा तैः पंचभिः दुष्टैः किं न स्यात् किं दुःखं न भवति ? भवत्येव, अत एव महाचक्रधरा वासुदेवा मंडलेश्वराः कंडरिकादयश्च विषयध्यानोद्विग्नचित्ता नरके दीनावस्थां प्राप्ताः, किं बहुना ? मा कुरुध्वं विषयविषसंगमम् ॥ ७ ॥

मिथ्यात्वमोहे क्षीणे सति स जीव उक्तेन प्रकारेण औपशमिकं सम्यक्त्वं लभते यस्य सम्यक्त्वस्य लाभेन यथा-स्थितवस्तुस्वरूपसंवेदनादिनवतत्त्वश्रद्धानादि लभते । तथाहि सम्यक्त्वलाभे सति जात्यंधस्य पुंसः चक्षुर्लाभे सति एवं जंतोः यथावस्थितवस्तुतत्त्वावलोको भवति, महाव्याध्यभिभूतस्य व्याध्य-पगमे इव महांश्च प्रमोदः । अत्र अनिवृत्तिकरणं विधाय यदि पुंजत्रयं करोति तदा प्रथमं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं लभते. अकृतपुंजः प्रथमं उपशमसम्यक्त्वं लभते इति सिद्धान्ता-शयः । कर्मग्रंथमते तु प्रथमं उपशममेव लभते अयं च त्रिपुंजीकरणं उपशमे करोति इति ग्रंथिभिद् ज्ञान तत्त्वोपयो-गवतः तस्य अन्यविकल्पैः किम्? ॥ ६ ॥

मिथ्यात्वशैलपक्षच्छिद्, ज्ञानदंभोलिशोभितः ।
निर्भयः शक्रवद् योगी, नन्दत्यानन्दनन्दने ॥७॥

व्या०—मिथ्यात्वेति योगी स्वरूपयोगोपेतो आनंदनंदने आनंदः आह्लादः स एव नंदनं आनंदनंदनं तस्मिन् नंदति क्रीडां करोति, किंवत् ? शक्रवत् इंद्रवत् किंभूतो योगी ? 'मिथ्यात्वशैलपक्षच्छिद् ज्ञानदंभोलिशोभितः' मिथ्यात्वं विपर्यासरूपं तदेव शैलः पर्वतः तस्य पक्षच्छेदकृत् एवं ज्ञानं तदेव दंभोलि, तेन शोभितः, इत्यनेन मिथ्यात्व-भेदज्ञानवान् स्वरूपसंपन्नतत्त्वविवेचको योगी आ-नंदनंदने नंदति शुद्धानंदेन नंदति ॥ ७ ॥

पीयूषमसमुद्रोत्थं, रसायनमनौषधम् ।
अनन्यापेक्षमैश्वर्यं, ज्ञानमाहुर्मनीषिणः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमं त्यागाष्टकम् ।

इंद्रियजयो हि त्यागाद् वर्द्धते अत आत्मनः स्वरूपाद्न्यत्परभावत्वं त्याज्यं, तेन त्यागाष्टकं लिख्यते, त्यजनं त्यागः सर्वेषां परभावत्यागः सुखं त्याग उत्सर्जनं तत्र स्वद्रव्यस्वक्षेत्रस्वकालस्वभावत्वेन स्यादस्ति इति प्रथमभंगगृहीतात्मपरिणामस्वात्मनि वर्तमानः स्वधर्मः तस्य समवायत्वेनाभेदात् त्यागो न भवति, अस्त्येव तदात्मनि उपादेयत्वं तु सम्यग्ज्ञानादिसाधनवृत्त्या विस्मृतस्य स्मरणात्, तिरोभूतस्याविर्भावात्, अभुक्तस्य भोगात्, शेषाणां सर्वसंयोगिकनया ज्ञानात् हेयनैव यद्यपि देवादिनिमित्तानां शुभाचारादीनां ध्यानादीनां आत्मसाधनपरिणामानां अनाद्यशुद्धपरिणतिग्रहणनिवारणाय ग्रहणता कृता तथापि स्वसिद्धावस्थात्यागता न इति उत्सर्गमार्गेण न ग्रहणता अनादिमिथ्यादृष्टिः कुदेवादिरक्तः स च सम्यग्दर्शनबलेन निर्धारितस्वधर्मरुचिः शुद्धदेवादीन् गृह्णाति तथापि परत्वजमिरेव अप्रशस्तत्यागः प्रशस्तग्रहणं प्रशस्तत्यागः स्वसाधनपरिणतिग्रहण परमसिद्धे, तत्र नामत्यागः शब्दालापरूपः, स्थापनात्यागः दशयतिधर्मपूजनादौ स्थाप्यमानो द्रव्यत्यागो द्रव्येण बाह्यवृत्त्या इंद्रियसुखाभिलाषेण उपयोगपूर्वेन वा यो त्यागो द्रव्यत्यागः, द्रव्यस्य द्रव्याणां वा आहारोपधिप्रमुखस्य त्यागो द्रव्यरूपः त्यागः स च आगमतो द्रव्यत्यागः स्वरूपज्ञानी अनुपयुक्तः, नोआगमतो ज्ञशरीरं त्यागस्वरूपज्ञायकस्य शरीरं भव्यशरीर त्यागस्वरूपज्ञायकभावि लब्धिशिष्यादितद्व्यतिरिक्तशुद्धद्रव्यत्यागः पूजनयाशंसा- इहलोकाशंसा-परलोकाशंसारहितः स्वरूपसाधनाभिमुखो बाह्यो-

प्रवचनानुसारिशुद्धस्वरूपरमणैकत्वं, आद्यनयचतुष्टये भावक्षमादि-
स्वरूपगुणपरिणमनहेतुः मनोवाक्कायसंकोच–विपाकचिंतन–तत्त्व-
ज्ञान–भावनादिः, अंत्यनयत्रये क्षयोपशमक्षमादिः शब्दनयेन
क्षपकश्रेणिनिष्पन्नातिसूक्ष्मकषायवतः समभिरूढनयेन क्रोधादिशमः
क्षीणमोहादिषु एवंभूतनयेन कषायशमः । अत्र भावना–चिंता-
स्मृतिविपाकभयादिकारणतः क्षयोपशमभावादिसाधनतः क्षायिक-
शमः साध्यः एवं शमपरिणतिः करणीया आत्मनो मूलस्वभाव-
त्वात् मूलधर्मपरिणमनं हि तेनैव कारणेन शुद्धात्मपदप्रवृत्तिः
संगत्यागात्मध्यानसंवरीचंचरीकत्वं करणीयम्—

विकल्पविषयोत्तीर्णः, स्वभावालम्बनः सदा ।
ज्ञानस्य परिपाको यः, स शमः परिकीर्त्तितः ॥ १ ॥

व्या०–विकल्प इति, विकल्पः चित्तविभ्रमः, तस्य विषयो
विस्तारः, तेन उत्तीर्णो निवृत्तः आत्मास्वादनतो वर्णादिषु निवृत्त-
विषयः स्वभावः अनंतगुणपर्यायसम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रस्वरूपः,
तस्य आलंबनः स्वभावालंबन इत्यनेन आत्मस्वभावदर्शी; आत्म-
स्वभावज्ञानी, आत्मस्वभावरमणी, आत्मस्वभावविश्रामी, आत्म-
स्वभावास्वादी, शुद्धतत्त्वपरिणतः, ज्ञानस्य आत्मोपयोगलक्षणस्य
यः परिपाकः मंदावतरः स शमः शमभावलक्षणः परिकीर्त्तितः,
अत्र योगस्य पंचविधत्वं प्रोक्तं हरिभद्रपूज्यैः–अध्यात्मयोगः १
भावनायोगः २ ध्यानयोगः ३ समतायोगः ४ वृत्तिक्षययोगः ५,
तत्र अनादिपरभावं औदयिकभावरमणतायनावर्त्तत्वेन निर्वार्य तत्पु-
ष्टिहेतुक्रियां कुर्वन् अवश्यं धर्मतृष्णया इच्छन् प्रवृत्तः स एव
निरामय. निरसंगःशुद्धात्मभावनाभावितांतःकरणस्य स्वभाव
एव धर्म इति योगतृष्णया अध्यात्मयोगः १ सर्वपरभावान्

याओ एकसयं रायकन्नाओ मापत्तीता पणीयाओ सो तेहि सद्धिं विसयमुंजमाणो तिलोगनाह तिलोयबंधु सेवणरओ चिट्ठइ, तओ पुगया अणेगेहिं केवलिहिं अणेगेहिं विउलमइहिं अणेगेहिं उज्जुमईहिं अणेगेहिं ओहिनाणीहिं अणेगेहिं पुव्वधरेहिं अणेगेहिं आयरियउवज्झाएहिं अणेगेहिं तवोधणेहिं अणेगेहिं नवदिक्खिएहिं अणेगदेवदेवीपरिवुडो सिरिसंभवो अरिहा सवन्नू सवदंसी आगासगएणं छत्तेणं आगासगएणं चक्केणं उद्धुवमाणेहिं सेयचामरेहिं पुरओ धम्मज्झएण विरायमाणं नयरपरिसरे सामि समोसढो, जाओ अ रामो सरणो तिवप्पो, परिसा निग्गया, वणपालेण वद्धाविओ कुमारो, जं सइ दंसणं अभिलससि सो सवजगजीववच्छलो तित्थयरो समागओ, ते पुण्णजोगेणं, तेणं समएणं सो कुमारो इत्थियसएहिं परिवेढीओ आसि, तओ भणइ सुणसु मे तारगो निम्ममो निरहंकारो अकिंचणो सवन्नू सवदंसी जिणो वीयरागो सुद्धधम्मदेसी आगओ, गच्छामि वंदणत्थं इति पुलिअंगो अब्भुट्ठिओ चलिओ अ जिणवंदणत्थ, मग्गेवि टोगवुहं भणंतो अहो अममो मे भयवं अकिंचणो मे भयवं अतिण्हो मे भयवं वंदिउं भो तुब्भे जइ सुहत्थिणो आगच्छंतु भो तुम्हाणं सवसंसयच्छेयगो परमेसरो दिट्ठव्वो इअ भणंतो इत्थिआहिं समं वणं पत्तो दिट्ठाइमओ भणइ अत्थि भद्दे ! कोवि एयारिसो विद्धुमगनयणक्कारगो सवसुरिंदेहि वंदिज्जमाणचरणो ? एवं जाव सन्नूहं पासई अरिहंतं पुन्नुप्पन्नकम्मनयणरपणो अहो मे पुण्णंकुरो अज्ज फलं पत्तो, अहो मे अज्ज अमियवुट्ठी, जेण वीयरागदंसणं जायं, एवं अभिगंतो पंचाभिगमजुयं तिपयाहिणं वंदित्ता ठिओ वुणंतो ताव चारित्तमोहस्स खओवसमेण जायविरईपरिणई भणइ नाह ! अणंतनाणमहापसाह !

व्या०—आरुरुक्षुरिति, आरुरुक्षुः आरोहणेच्छुः, मुनिः भावसाधकः, प्रीतिभक्तिवचनरूपशुभसंकल्पेन अशुभसंकल्पात् वारयन् आराधको भवति, सिद्धयोगी तु रागद्वेषाभावेन उपशमी दूनार्थः, बाह्यां क्रियां याचाचारप्रतिमादि श्रयन् अपि अंगीकुर्वन् अपि शमादेव शुद्ध्यति शमात् कोपाभावात् शुद्धयति निर्मलीभवति, कथंभूतो मुनिः ? योगारूढः योगे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रे आत्मीयसाधनरत्नत्रयीलक्षणे आरूढः पुनः कथंभूतो मुनिः ? अंतर्गतक्रियः अंतर्गता वीर्यगुणप्रवृत्तिरूपा क्रिया यस्य सः अंतर्गतक्रियः, एवमभ्यंतरक्रियावान् रत्नत्रयपरिणतः शमात् क्षमाया मार्दवार्जवमुक्तिपरिणतिपरिणतो निर्मलो भवति ॥ ३ ॥

ध्यानवृष्टेर्दयानद्याः, शमपूरे प्रसर्पति ।
विकारतीरवृक्षाणां, मूलादुन्मूलनं भवेत् ॥ ४ ॥

व्या०—ध्यानवृष्टेरिति ध्यानवृष्टेः ध्यानं धर्मशुक्लाख्यं, अंतर्मुहूर्तं यावत चित्तस्य एकत्रावस्थानं ध्यानं । उक्तं च—

अंतोमुहुत्तमित्तं, चित्तावत्थाणमेगवत्थुमि ।
छउमत्थाणं झाणं, जोगनिरोहो जिणाणं तु ॥ १ ॥

अत्र च निमित्तरूपे देवगुरुस्वरूपे अद्भुतनादियुक्तचित्तैकत्वे धर्मध्यानं आज्ञाऽपायविपाकसंस्थानाख्यं, तत्र आज्ञाया निर्द्धारः सम्यग्दर्शनं आज्ञाया अनंततत्त्वपूर्वापराविरोधित्वादिस्वरूपे चमत्कारपूर्वकचित्तविश्रामः आज्ञाविचयधर्मध्यानं, एवं अपायादिकेष्वपि, निरालंभासनप्रशस्तानुभवचित्तविश्रांतिः ध्यानं एवं शुक्लेऽपि इत्थं ध्यानवृष्टेः [illegible] दया—स्वपरभावप्राण—आवाननरूपा भावदया, तद्दर्शितलक्षणहेतुत्वात् स्वपरद्रव्यप्राणरक्षणानिर्विषयत्वेन

व्या०—कान्ता मे इति—तत्त्वज्ञानी आत्मसंगमरंगे रतिं करोति तदाह—मे मम स्वरूपसाधनतत्परस्य समता एव मुदा कांता वल्लभा भोगयोग्या, इत्यनेन तत्त्वावलंबनीभूतानां समता वर्णिता. समक्रियाः साधवः मे ज्ञातयः स्वजना इति कृत्वा बाह्यवर्गं पुत्रकलत्रादिकं त्यक्त्वा धर्मसन्न्यासवान् गृहस्थधर्मत्यागवान् भवेत्. औदयिकसंपदं विहाय क्षयोपशमजां स्वीयां साधनसंपदां भव-तयनादिप्रसंगादिविभावसंपदां गृह्णन् इच्छन् भुंजन् भवाटव्यां परिभ्रमति, स एव सम्यग्ज्ञानदर्शनेन चारित्रसाधनधर्मपरिणतो मोक्षसाधको भवति ॥ ३ ॥

धर्मास्त्याज्याः सुसङ्गोत्थाः, क्षयोपशमिका अपि।
प्राप्य चन्दनगन्धाभं, धर्मसन्न्यासमुत्तमम् ॥ ४ ॥

व्या०—धर्मा इति—क्षयोपशमका भेदरत्नत्रयीरूपा धर्माः सुसंगोत्थाः सत्संगदेवगुरुप्रसंगसंभवा अपि धर्माः त्याज्या धर्मसन्न्यासं उत्तमं क्षायिकाभेदरत्नत्रयीरूपं स्वधर्मपरिणामं सहजपरिणमनरूपं प्राप्य लब्ध्वा कथंभूतं धर्मसंन्यासं ? चंदनगंधाभं चंदनगंधतुल्यं, तिलादौ हि सुगंधता संगसंभवा पुरुषादिनिमित्तसंभवा, चंदने सुगंधता सहजरूपा तादात्म्यत्वेन सहजेन उत्था उत्पन्नाः सहजोत्था अनेन सहज एव आत्मनि धर्मपरिणामः स्वरूपत्वात् सहजः स च अशुद्धतया आवृतत्वेन गुरुनिमित्तात् प्रागभावं लभते, तत्र प्रथमं सविकल्पयुतजिज्ञासादिनिमित्तसापेक्षं सम्यग्दर्शनादिकं प्रकटयति, तेनैव वर्द्धमानेन विकल्पं अभेदरत्नत्रयीरूपं निमित्ताद्यपेक्षां विना गुणपरिणामरूपं सहजधर्मपरिणामं परिणमति तदा सविकल्पा साधना त्याज्या एव भवति। उक्तं च योगदृष्टिसमुच्चये—"द्वितीयाऽपूर्वकरणे प्रथमस्तात्त्विको भवेत्

लभते च तदनन्तरकेवलज्ञानं केवलदर्शनं परमदानादिलब्धीः, अत एव ज्ञानध्यानविशाली यं न प्राप्नोति तं परमानन्दितः प्राप्नोति अत अत्र योग दर्शनज्ञानानुगत अभ्यस्यति पूर्णं स्यात्. आश्रयति शुक्लध्यानं, रमते निर्जने वने, तेन आत्म-विशुद्धयर्थं शमरसे उद्यतते ॥ ५ ॥

स्वयम्भूरमणस्पर्धि–वर्द्धिष्णुशमतारसः।
मुनिर्येनोपमीयेत, कोऽपि नासौ चराचरे ॥ ६ ॥

व्या०—स्वयंभू इति–स्वयंभूरमणः अन्त्यसमुद्रनामा मानस-[illegible] तस्य स्पर्धी स्पर्धाकारी, वर्द्धिष्णुः वर्द्धमानः, शमतारसः, समता रागद्वेषाभावः तस्या रसो यस्य स एवंविधो मुनिः, [illegible] अतीतकालानन्तजीवविषयस्य अभाववत्त्वात्, वर्तमान-[illegible] मुनिः येन उपमानेन उपमीयते चराचरे विश्वे असौ कोऽपि न अस्ति. [illegible] अचेतनपुद्गलस्कंधं मूर्तं च, तत्र [illegible] दुर्लभो हि समतारसः विश्वविश्वशुभाशुभभावे परत्वेन [illegible] इष्टानिष्टानुभवः। उक्तं च—

वंदिज्जमाणा न समुक्कसंति, हेलिज्जमाणा न समुज्जलंति। दंतेण चित्ते न चलंति धीरा, मुणी समुग्घाइयरागदोसा ॥ १ ॥

बालाभिरामे सु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं। विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणो सीलगुणे रयाणं ॥ २ ॥

गुरुत्वं स्वस्य नोदेति, शिक्षासात्म्येन यावता ।
आत्मतत्त्वप्रकाशेन, तावत्सेव्यो गुरूत्तमः ॥ ५ ॥

व्या० गुरुत्वमिति—यावता अस्य साधकस्य गुरुत्वं स्वस्य आत्मन एव न उदेति न जायते, केन ? शिक्षासात्म्येन स्वयमेव स्वस्य शिक्षादायको न भवति, पुनः केन ? आत्मतत्त्वप्रकाशेन आत्मधर्मप्राग्भावेन संशयविपर्ययरहितशुद्धात्मतत्त्वप्रकाशको यावत् भवति तावत् अयं उत्तमस्वपरोपकारी स्वरूपपरिणतः द्रव्यभावगुरुगुणोपेतो गुरुः तत्त्वकथकः सेव्यः, हे—गुरो ! अतीतानंतकालाप्राप्तं स्वात्मधर्मनिर्द्धारभासनरमणं तत्त्वोपदेशार्जनेन प्राप्तं आत्मानुभवसुखं भुक्तं अहो गुरूणां कृपा ! ! यया परमामृतास्वादनं भवति, अतो यावत् पूर्णानंदः तावत् तव चरणौ शरणं । उक्तं च—

नाणस्स होइ भागी, थिरयरो दंसणे चरित्ते अ । धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवासं न मुंचंति ॥ १ ॥

अत एव परित्यज्य चरत्रिनिच, इस्य-ओघस्य, गृह्णंति श्रमणत्वं, सेवंते गुरुचरणारविंदान् तत्त्वजिज्ञासवः ॥ ५ ॥

ज्ञानाचारादयोऽपीष्टाः, शुद्धस्वस्वपदावधि ।
निर्विकल्पे पुनस्त्यागे, न विकल्पो न च क्रियाः ॥६॥

व्या० ज्ञानाचारा० इति—ज्ञानाचारादयः कालविनयादि-निःशंकादिनिर्विचिकित्सादयः [illegible], आत्मनो गुणाः सर्वे ते आचाराः शुद्धस्वरूपपदावधि, [illegible] यावत् [illegible] आदिः [illegible], [illegible] यावत् आचाराः इष्टाः [illegible], यदा निर्विकल्पे चिन्मात्रे

गतं स्वरूप ज्ञानं स्वसत्ताभासनरूपं तत्प्राप्ता गताः तैः उत्तुंगा
उन्नता संगा स्वरूप स्थानं नटाः तुरंगा अश्वा यत्र ताः,
इत्यनेन मानसगजस्थानकल्लोलेन शान्तरसंतो निर्भयस्वरूप-
मुनस्य जयंति, अतः सम्यग्दर्शनज्ञानादिगुणीनां महाराजत्वं सैव जयति,
अतः शान्तत्वरता भावितत्वं इत्युपदेशः ॥८॥ इति व्याख्यानं
शमाष्टकम् ॥ ६ ॥

अथ इन्द्रियजयाष्टकम् ।

शमोत्तरफलम् इंद्रियनिग्रहः तेन इंद्रियजयादेव शमा-
वस्थानं अत इंद्रियजयाष्टकं निरूप्यते । तत्र इंद्रो जीवः सर्व-
परमैश्वर्ययोगात्, तस्य लिंगमिंद्रियं लिंगनात् सूचनात् प्रदर्शना-
दुपष्टंभनात् व्यंजनाच्च जीवस्य लिंगमिंद्रियं, इंद्रियविषयोपलंभात्
ज्ञानवत्त्वसिद्धिः यो मिलितो उपयोगलक्षणो जीवो इति जीवन-
सिद्धिः द्विविधानि इंद्रियाणि द्रव्येन्द्रियाणि भावेन्द्रियाणि च, तत्र
द्रव्येन्द्रियं द्विविधं, निर्वृतींद्रियं उपकरणेंद्रियं च; तत्र निर्वृतिः
अंगोपांगानां निर्वृत्तानि इंद्रियद्वाराणि कर्मविशेषसंस्कृताः शरीर-
प्रदेशाः निर्माणनामांगोपांगनामप्रत्ययाः उपकरणं बाह्यमभ्यंतरं च
निर्वृतिः तस्याः उपघातोपग्रहाभ्यां उपकरोतीति लब्धिः उपयोगस्तु
भावेंद्रियं भवति लब्धिः मतिज्ञानावरणीय-श्रुतज्ञानावरणीय-चक्षुर्दर्शनाव-
रणीयाद्यावरणकर्मक्षयोपशमजनितः स्पर्शादि-
ग्राहकशक्तिः लब्धिः स्पर्शादिज्ञानं उपयोगः स्पर्शादिज्ञानरूप-
स्तु उपयोगः । अत इंद्रियाणां वर्णादिग्रहणेन निरूपणं, किंतु
ज्ञानात्मकं हेतु स्पर्शादि सर्वेज्ञानगोचरेषु इष्टानिष्टतया स्वसा
इष्टानिष्टत्वप्रतिभासस्तस्याः इंद्रियलोलुपतेः विरक्ता इत्यत्र
तत्संबन्धेन द्विजानां सविषयार्थैः अतो रक्तद्विष्टतया प्रवर्ते-

तां कांक्षति अभिलषति, तदा इंद्रियजयं कर्तुं स्फारपौरुषं देदीप्यमानं पराक्रमं स्फोरय प्रवर्त्तयस्व, अतो महाकदर्थनारूपाद् भवकूपाद्युद्धिसः शुद्धचिदानंदाभिलाषी जीवो हालाहलोपमान् इंद्रियविषयान् त्यजति । उक्तं च उत्तराध्ययने—

सल्लं कामा विसं कामा कामा आसीविसोपमा ।
कामे पत्थेमाणा अकामा जंति दुग्गइं ॥ १ ॥

वृद्धास्तृष्णाजलापूर्णैरालवालैः किलेन्द्रियैः ।
मूर्छामतुच्छां यच्छन्ति, विकारविषपादपाः ॥ २ ॥

व्या०—वृद्धा इति । किल इति सत्ये, इंद्रियैः विषयभोगरसिकैः आलवालैः वृद्धा महत्त्वमापन्नाः, विकारविषपादपा विकारा एव विषवृक्षा अतुच्छां असंतां मूर्छां यच्छंति मुग्धतां ददति, इत्यनेन अनादिस्वरूपच्युतानां परभावरमणाभोग्याभोग्याचेतनानां विकारविषवृक्षा इंद्रियैः स्पर्शनादिभिः विषयग्राहकैः प्रवर्द्धमानाः महामोहं कुर्वंति, किंभूतैः आलवालैः ? तृष्णाजलापूर्णैः तृष्णा लोभविकल्पं, लालसा, तद्रूपेण जलेन आपूर्णैः भृतैः इत्यर्थः तृष्णाप्रेरिता एव इंद्रियाश्वा धावंति, तृष्णाया आनंत्यं—

सुवन्नरुप्पस्स य पव्वया, भवे सिया हु केलाससमा असंखया, नरस्स विलुद्धस्स न हुंति किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणंतया ॥ १ ॥

वारमणंतं भुत्ता वंता चत्ता य धीरपुरिसेहिं ।
ते भोगा पुण इच्छइ भोत्तुं तिण्हाउलो जीवो ॥ २ ॥

रित्रादर्वाक् चारित्राचारसेवना, परमशुक्लध्यानं यावत् तपआचार-सेवना, सर्वसंवरं यावत् वीर्याचारस्य साधनाऽवश्यंभाविनी, नहि पंचाचारमंतरेण मोक्षनिष्पत्तिः, दर्शनाद्धि स्वगुणानां प्रवृत्ति क्रियादर्शनादिगुणविशुद्धचर्यं "तन्निमित्तमवलंब्य प्रवर्त्तनं आचारः" इत्यतो गुणपूर्णतानिष्पत्तेः अर्वाक् आचरणा करणीया, आचरणातः गुणनिष्पत्तिः भवत्येव, पूर्णगुणानां तु आचरणा परोपकाराय इति सिद्धः अत एव उच्यते—

ज्ञानी क्रियापरः शान्तो, भावितात्मा जितेन्द्रियः।
स्वयं तीर्णो भवाम्भोधेः, परांस्तारयितुं क्षमः ॥१॥

व्या०—ज्ञानीति—ज्ञानी यथार्थतत्त्वस्वरूपावबोधी यदा क्रिया साधनकारणानुयायियोगप्रवृत्तिरूपा स्वगुणानुयायिवीर्यप्रवृत्तिरूपा तस्यां तत्परः उद्यतः, पुनः शांतः कषायतापरहितः; भावितात्मा भावितः ...स्वरूपरमणमयः आत्मा यस्य स भावितात्मा जितेंद्रियः पराजितेंद्रियव्यापारः भवसमुद्रात् स्वयं तीर्णः पारंगतः, परान् आश्रितान् उपदेशदानादिना तारयितुं क्षमः समर्थो भवति, यो हि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतः आत्मारामी आत्मविश्रामी आत्मानुभवमग्नः स स्वयं संसारात् निवृत्तः तत्सेवनपरान् निस्तारयति, अत्र द्रव्यज्ञानं भावनारहितं वचनव्यापारमनोविकल्परूपं संवेदनज्ञानं यावत्, तच्च भावज्ञानं तत्त्वानुभवरूपोपयोगस्य कारणं, द्रव्यक्रिया योगव्यापारात्मिका सापि भावक्रियायाः स्वगुणानुयायिस्वरूपप्रवृत्तिरूपायाः कारणं, अत्र 'ज्ञानस्य फलं विरतिः' तेन ज्ञानं विरतिकारणं । उक्तं च—तत्त्वार्थटीकायां "दर्शनज्ञाने चारित्रस्य कारणं, चारित्रं मोक्षकारणं" । उत्तराध्ययनेऽपि—

विसयविसं हालाहलं, विसयविसं उक्कडं पीयं ।
नाणं विसयविसया विव, विसयविसविसूइया हुंति ॥२॥

[illegible] दुष्टः कालकूटविषोपमः ।
[illegible]—[illegible]भावोऽमृतोपमः ॥ २ ॥

[illegible] वृत्ति कृत ॥ ३ ॥

आत्मानं विषयैः पाशैर्भववासपराङ्मुखम् ।
इन्द्रियाणि निबध्नन्ति, मोहराजस्य किङ्कराः ॥४॥

[illegible] ॥ ४ ॥

गिरि[illegible] धनं पश्यन्, धावतीन्द्रियमोहितः ।
अनादिनिधनं ज्ञानं, धनं पार्श्वे न पश्यति ॥ ५ ॥

[illegible]

रिवादर्वाक् चारित्राचारसेवना, परमशुक्लध्यानं यावत् तपआचार सेवना, सर्वसंवरं यावत् वीर्याचारस्य साधनाऽवश्यंभाविनी, नहि पंचाचारमंतरेण मोक्षनिष्पत्तिः, दर्शनादि स्वगुणानां प्रगटि क्रियादर्शनादिगुणविशुद्ध्यर्थं "तन्निमित्तमवलंब्य प्रवर्त्तनं आचार" इत्यतो गुणपूर्णतानिष्पत्तेः अर्वाक् आचरणा करणीया, आच रणातः गुणनिष्पत्तिः भवत्येव, पूर्णगुणानां तु आचरणा परोप काराय इति सिद्धः अत एव उच्यते—

ज्ञानी क्रियापरः शान्तो, भावितात्मा जितेन्द्रियः।
स्वयं तीर्णो भवाम्भोधेः, परांस्तारयितुं क्षमः ॥१॥

व्या०—ज्ञानीति—ज्ञानी यथार्थतत्त्वस्वरूपावबोधी यदा क्रिया साधनकारणानुयायि योगप्रवृत्तिरूपा स्वगुणानुयायिवीर्यप्रवृत्तिरूपा तस्यां तत्परः उद्यतः, पुनः शांतः कषायतापरहितः; भावि तात्मा भावितः [illegible]स्वरूपरमणमयः आत्मा यस्य स भावितात्मा जितेंद्रियः पराजितेंद्रियव्यापारः भवसमुद्रात् स्वयं तीर्णः पारंगत, परान् आश्रितान् उपदेशदानादिना तारयितुं क्षमः समर्थो भवति, यो हि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतः आत्मारामी आत्मवि श्रामी आत्मानुभवमग्नः स स्वयं संसारात् निस्तृतः तत्सेवनापर निस्तारयति, अत्र द्रव्यज्ञानं भावनारहितं वचनव्यापारमनोवि कल्परूपं संवेदनज्ञानं यावत्, तच्च भावज्ञानं तत्त्वानुभवरूपो पयोगस्य कारणं, द्रव्यक्रिया योगव्यापारात्मिका सापि भावक्रि यायाः स्वगुणानुयायिस्वरूपप्रवृत्तिरूपायाः कारणं, अत "ज्ञानस्य फलं विरतिः" तेन ज्ञानं विरतिकारणं। उक्तं च—तत्त्वार्थटी कायां "दर्शनज्ञाने चारित्रस्य कारणं, चारित्रं मोक्षस्य"। उत्तराध्ययनेऽपि—

विवेकद्विपहर्यक्षैः, समाधिधनतस्करैः ।
इन्द्रियैर्न जितो योऽसौ धीराणां धुरि गण्यते ॥८॥

व्या०–विवेकेति–विवेकः तत्त्वविवेचनं, स एव द्विपो गजः, तद्विघाते हर्यक्षतुल्यैः सिंहोपमैः, समाधिः स्वरूपानुभव-लीलाविश्रांतिः, स एव धनं सर्वस्वं, तद्हरणे तस्करोपमैः, एवं इंद्रियैः यः असौ पुरुषो नमि–गजसुकुमालादिना सह स न जित इंद्रियाधीनो न जातः स धीराणां धुरि आदौ गण्यते श्लाघ्यते । उक्तं च—

धन्यास्ते ये विरक्ता गुरुवचनरतास्त्यक्तसंसारभोगा
योगाभ्यासे विलीना गिरिवनगहने यौवनं ये नयन्ति।
तेभ्यो धन्या विशिष्टाः प्रबलवरवधूसङ्गपङ्काभियुक्ता
नेवाक्षोभ्य प्रमत्ताः परमनिजरसं तत्त्वभावं श्रयन्ति॥१॥

अहह !! पूर्वभवानुत्तरादिनिवासप्रसुखस्मरणेन भणपति अनुत्तर-विमानसुखलब्धसत्तमा इंद्रादयो हि विषयस्वादत्यागासमर्था लुठंति भूपीठे मुनीनां चरणकमलेषु, अतः अनाद्यनेकशो भुक्तविषया वर्णनीया., तत्संगोऽपि न विधेयः, न स्मरणीयः पूर्वपरिचयः, मनिसमयं जुगुप्सनीया एव एते संसारबीजभूता इंद्रियविषयाः, अत एव निर्ग्रंथा निवर्तयंति कालं वाचनादिना तत्त्वावलोकने-हादिषु । उक्तं च–"निष्कलनिष्कलनिरसंगसिद्धस्वभावप्रकाशणा स-ईपा" इत्यादिरुच्या रत्नत्रयपरिणताः तिष्ठंति स्थविरकल्पजिन-कल्पेषु, सर्वैरपि भव्यैः पुनरेव विधेयम् ॥ ८ ॥

॥ इति व्याख्यातं इंद्रियजयाष्टकं सप्तमम् ॥

रित्यादर्वाक् चारित्राचारसेवना, परमशुक्लध्यानं यावत् तपआचार-
सेवना, सर्वसंवरं यावत् वीर्याचारस्य साधनाऽवश्यंभाविनी, नहि
पंचाचारमंतरेण मोक्षनिष्पत्तिः, दर्शनाद्धि स्वगुणानां प्रगटि
क्रियादर्शनादिगुणविशुद्धयर्थं "तन्निमित्तमवलंब्य प्रवर्त्तनं आचारः"
इत्यतो गुणपूर्णतानिष्पत्तेः अर्वाक् आचरणा करणीया, आच-
रणातः गुणनिष्पत्तिः भवत्येव, पूर्णगुणानां तु आचरणा परोप-
काराय इति सिद्धः अत एव उच्यते—

ज्ञानी क्रियापरः शान्तो, भावितात्मा जितेन्द्रियः।
स्वयं तीर्णो भवाम्भोधेः, परांस्तारयितुं क्षमः ॥१॥

व्या०—ज्ञानीति—ज्ञानी यथार्थतत्त्वस्वरूपावबोधी यता क्रिया
साधनकारणानुयायि योगप्रवृत्तिरूपा स्वगुणानुयायिवीर्यप्रवृत्तिरूपा
तस्यां तत्परः उद्यतः, पुनः शांतः कषायतापरहितः; भावि-
तात्मा भावितः स्वरूपरमणमयः आत्मा यस्य स भावितात्मा
जितेंद्रियः पराजितेंद्रियव्यापारः भवसमुद्रात् स्वयं तीर्णः पारंगतः,
परान् आश्रितान् उपदेशदानादिना तारयितुं क्षमः समर्थो भवति,
यो हि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतः आत्मारामी आत्मानं-
भोगी आत्मानुभवमग्नः स स्वयं संसारात् निवृत्तः तत्सेवकजनं
निस्तारयति, अत्र द्रव्यज्ञानं भावनारहितं वचनव्यापारमनोवि-
कल्परूपं संवेदनज्ञानं यावत्, तत्र भावज्ञानं तत्त्वानुभवरूपो-
पयोगरूप कारणं, द्रव्यक्रिया योगव्यापारात्मिका सापि भावो-
पायाः स्वगुणानुयायिस्वरूपवर्त्तनारूपायाः कारणं, अत्र ज्ञानस्य
फलं विरतिः' तेन ज्ञानं विरतिकारणं। उक्तं च—तत्त्वार्थटी-
कायां "दर्शनज्ञाने चारित्रस्य कारणं, चारित्रं मोक्षकारणं"।
उत्तराध्ययनेऽपि—

पवित्रशरीरान्नपानस्वजनादित्याग इति । भावत आभ्यंतररागद्वे-
षानिष्पन्नाद्याश्रवपरिणतित्याग आत्मनः क्षयोपशमिकानां ज्ञा-
नादीनां परभावतो निवृत्तिः भावत्यागः, सम्यग्ज्ञानपूर्वकचारित्र-
वीर्यसंस्कारजन्य आत्मपरिणामः नामस्थापनो यावत् नैगमसंग्रहौ
व्यवहारविपर्यासानुष्ठानेन ऋजुसूत्रेण कटुविपाककर्मोदया शब्दसमभि-
रूढौ तद्धेतुतया एवंभूतत्यागः सर्वयावर्जनं वर्जनीयत्वेन अथवा
अशनादिबाह्यरूपं आसनपदचतुष्टये आभ्यंतरत्यागः शब्दादिन-
यत्रये इति भावना स त्यागः कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते—

संपतात्मा श्रयेच्छुद्धोपयोगं पितरं निजम् ।
धृतिमम्बां च पितरौ, तन्मा विसृजतं ध्रुवम् ॥१॥
युष्माकं सङ्गमोऽनादि बन्धवोऽनियतात्मनाम् ।
ध्रुवैकरूपान् शीलादिबन्धूनित्यधुना श्रये॥२॥युग्मम्॥

व्या०—संपतात्मा इति—संपतात्मा संयमाभिमुखो शुद्धो-
पयोगं निजपितरं श्रयेत्, रागद्वेषरहित आत्मज्ञानं श्रयेत् आश्र-
येत् धृतिं आत्मरतिरूपां अंबां जननीं श्रयेत्, येन आहारप-
र्याप्तिनामकर्मोदयात् यत्र उत्पन्नः सा माता, तद्भोगी पिता इति
लौकिकसंबंधः, तान् वक्ति तौ पितरौ मा विसृजतं त्यजतं नाहं
वां पुत्रः न युवां मम जनकौ इति अयं हि लोके एव मार्गः ।
अत्र दृष्टांतः—" जहा एगया भरहे खित्ते मगहजणवए सुर-
म्माए नयरीए आसिदमण नयरस्स (विहिकुसलो) "वयरंजवो"
राया, तस्स धारिणी देवी, तस्स उ " सुभाणु " नाम कुमरो
अमरव संदरो अणुक्कमेण विज्जाकुसलो जाओ लायन्नगुणओ
सहजेण सिणयम्मसाहुवंदणसुपमत्तपरो जाओ सो कमेण कंद-
प्पसमो जुव्वणवनगओ ता जणएण रूपलावन्नसीलकला-

हरूपां क्रियां आश्रयति; केवलज्ञानी सर्वसंवरपूर्णानंदकार्यावसरे योगरोधरूपां क्रियां करोति, अत एव उच्यते ज्ञानी क्रियां अपेक्षते, एवं तदर्थमेव आवश्यककरणं मुनीनां, तत्र दृष्टांतः यथा प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि तैलपूर्त्यादिकां क्रियां अपेक्षते एवं सम्यग्ज्ञानी अपि क्रियारंगी भवति; क्रिया हि वीर्यशुद्धिहेतुः अशुद्धवीर्यविहितास्रवः संसरति संसारे; स एव गुणी सेवनगुणप्राग्भावोद्यतः संवरीभवति, कर्मप्रदेशग्रहणं योगैः, योगा वीर्यप्रभवाः, तेन योगाः परमात्मवन्दनस्वाध्यायाध्ययनादियोजिताः न कर्मग्रहणाय भवन्ति; योगानां सत्प्रवृत्तिः क्रिया इति ॥ ३ ॥

बाह्यभावं पुरस्कृत्य, ये क्रियां व्यवहारतः ।
वदने कवलक्षेपं, विना ते तृप्तिकाङ्क्षिणः ॥ ४ ॥

व्या०–बाह्यभावमिति–बाह्यभावं बाह्यत्वं पुरस्कृत्य अंगीकृत्य ये नरा असेवितगुरुचरणा व्यवहारतः क्रियां निषेधयंति "किं बाह्यक्रियाकरणेन" ? इति उक्त्वा क्रियोद्यमं मंदयंति ते नरा वदने मुखे कवलक्षेपं विना तृप्तिकांक्षिणः तृप्तिवांछका इति ॥४॥

गुणवद्बहुमानादे–र्नित्यस्मृत्या च सत्क्रिया ।
जातं न पातयेद् भाव–मजातं जनयेदपि ॥ ५ ॥

व्या०–गुणवदिति–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रक्षमामार्दवार्जवादिगुणवंतः तेषां बहुमानं स्वतोऽधिकगुणवतां बहुमानं आदिशब्दात् दोषपश्चात्तापः, पापदुगंछातिचारालोचनं, देवगुरुसाधर्मिकभक्तिः, उत्तरगुणारोहणादिकं सर्वं ग्राह्यं, च पुनः नित्यस्मृतिः पूर्वगृहीतव्रतस्मरणं, अभिनवप्रत्याख्यानसामायिकचतुर्विंशतिस्तवगुरुवंदनप्रतिक्रमणकायोत्सर्गप्रत्याख्यानादीनां नित्यस्मृत्या सत्क्रिया भवति. । अत्र गाथा श्रीहरिभद्रपूज्यैर्विंशतिरूपां–

भवसमुद्दनिमज्जनप ! मम सामाइअं उवदिसह जेण कसायचाउ मयई एवं वुत्ते अरिहंतेण सामाइअं दिन्नं. गहिअवओ समणो जाओ. तत्त आउक्खयं जायं. मओ से कुमारसमणो, ता तस्स जणओ राया सहरिसणो आगओ, तुमं नवं पालिऊण विसओ जणणी वि विलवंती रुयमाणी सो सुभानुजीवो झत्ति देवत्तं लहिऊण समागओ जिणवयणे. ता अम्मा पिअरो विलवंतो पासिऊण भणइ. को पुत्तो तुम्हाणं जं जिणवयणे परमसुहदायगे लहिऊण रुयत्ति ? ते भणंति अम्हाणं सुओ परमवल्लहो बालओ, तस्स विओगो जाओ, सो दुक्खो दुस्सहो, ता सुरो भणइ राय ! भणसु तस्स सरीरं तुह इट्ठं जीवो वा ? जइ जीवो इट्ठो ता अहं, तुम्हाणं तणओ. जइ सरीरो इट्ठो ता कलेवरं रक्खह कहय तुम्ह पुत्तं तं कत्थ तस्सु जीवे वा ? कत्तयं दुक्खतीय कहं रुयसि ? ता जणओ भणइ, नो सो रागो वट्टइ. ता सुरो भणइ ममतो चेव एसा जं मे सुओ इमा जणणी इच्चाइ विकप्पा असंभूतास्ते संबंधे कह कुंचिया इय वयणेण पडिबुद्धा ते पव्वज्जागया, इअ लोगंमि संबंधो भवन्तयो। युष्माकमिति हे मातापितरौ ! हे बंधवः ! युष्माकं संबंधः अनादिसंतत्या अनादिनिधनात्मनां असंबंधानां मवर्गात्मर्थः वा अनियतात्मनां अनिश्चितस्वरूपाणां नित्यं सहुर्भवति, सहः पुनर्मित्रं भवति, अतुना युवा निश्चिता एकरूपा नानाभावरहिता तान् सौगादिबंधून् सौवस्वतानदर्शनोपादिबंधून् हितकारकान् नित्यं सदा अथ सात्स्वभावत्वरूपान् बंधून् भज ॥ २ ॥

कान्ता मे समतैवैका, ज्ञातयो मे समक्रियाः।
बाह्यवर्गमिति त्यक्त्वा, धर्मसन्न्यासवान् भवेत् ॥३॥

हरूपां क्रियां आश्रयति, केवलज्ञानी सर्वसंवरपूर्णानंदकार्यावसरे योगरोधरूपां क्रियां करोति, अत एव उच्यते ज्ञानी क्रियां अपेक्षते, एवं तदर्थमेव आवश्यककरणं मुनीनां, तत्र दृष्टांतः यथा प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि तैलपूर्त्यादिकां क्रियां अपेक्षते एवं सम्यग्ज्ञानी अपि क्रियारंगी भवति; क्रिया हि वीर्यशुद्धिहेतुः अशुद्धवीर्यविहितास्रवः संसरति संसारे; स एव गुणी सेवनगुणप्राग्भावोद्यतः संवरीभवति, कर्मप्रदेशग्रहणं योगैः, योगा वीर्यप्रभवाः, तेन योगाः परमात्मवन्दनस्वाध्यायाध्ययनादियोजिताः न कर्मग्रहणाय भवन्ति; योगानां सत्प्रवृत्तिः क्रिया इति ॥ ३ ॥

बाह्यभावं पुरस्कृत्य, ये क्रियां व्यवहारतः ।
वदने कवलक्षेपं, विना ते तृप्तिकाङ्क्षिणः ॥ ४ ॥

व्या०–बाह्यभावमिति–बाह्यभावं बाह्यत्वं पुरस्कृत्य अंगीकृत्य ये नरा असेवितगुरुचरणा व्यवहारतः क्रियां निषेधयंति "किं बाह्यक्रियाकरणेन"? इति उक्त्वा क्रियोद्यमं मंदयंति ते नरा वदने मुखे कवलक्षेपं विना तृप्तिकांक्षिणः तृप्तिवांछका इति ॥४॥

गुणवद्बहुमानादे–र्नित्यस्मृत्या च सत्क्रिया ।
जातं न पातयेद् भाव–मजातं जनयेदपि ॥ ५ ॥

व्या०–गुणवदिति–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रक्षमामार्दवार्जवादिगुणवंतः तेषां बहुमानं स्वतोऽधिकगुणवतां बहुमानं आदिशब्दात् दोषपश्चात्तापः, पापजुगुंछातिचारालोचनं, देवगुरुसाधर्मिकभक्तिः, उत्तरगुणगेहणादिकं सर्वं ग्राह्यं, च पुनः नित्यस्मृतिः पूर्वगृहीतव्रतस्मरणं. अभिनवव्रतप्रत्याख्यानसामायिकचतुर्विंशतिस्तवगुरुवंदनप्रतिक्रमणकायोत्सर्गप्रत्याख्यानादीनां नित्यस्मृत्या सत्क्रिया भवति । अत्र गाथा श्रीहरिभद्रपूज्यविंशतिकायां–

इति" तत्र सम्यक्त्वलाभकाले प्रथमापूर्वकरणः क्षपकश्रेणिनिःश्रेणिका-
दशगुणस्थाने, द्वितीयः अपूर्वकरणः तत्र द्वितीये अपूर्वकरणे प्रथमो
धर्मः अतात्त्विकः स तात्त्विको भवति। भावना च यद्यपि क्षयोपश-
मिकाः सम्यग्दर्शनादिगुणाः अरिहंत(अर्हन्)प्रवचनादिस्वजातिअ-
वायकविज्ञानिषद्रव्यमवलंब्य प्रवर्त्तते परावलंबनेन अतात्त्विकाः
तत्त्वस्वरूपं न तन्मया इति किंतु अरिहंतादिगुणावलंबिन इति
एषा परानुपातिना आत्मेन, इत्यनेन अतात्त्विका यस्य सम्यग्
दर्शनादिगुणक्षयोपशमः स्वरूपनिर्धारभासनरमणात्मकः अन्यनि-
मित्ताद्यवलंबनकृते स तात्त्विक इति, अत रत्नत्रयीस्वरूपे वीत-
रागसर्वज्ञोक्तयथार्थतत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं यथार्थतत्त्वावबोधो
ज्ञानं तत्त्वरमणं चारित्रं इति गुणत्रयी क्षयोपशमः अर्हद्वाक्या-
द्यवलंबनेन साधकत्वस्वगुणोऽपि क्रमकारणं करणात्, अनत्त्वं
विकल्पपूर्वकं अंतर्मुहूर्त्तं यथोपादेयत्वेन स्वतत्त्वनिर्धारभासनरूपं
इत्युद्भवा परभावत्यागनिर्धारभासनरमणयुक्तं रत्नत्रयीपरिणमनं
भवति तद्भेदरत्नत्रयीरूपं. यत्र सकलविभावदेयतयाप्यवलोकना-
दिरहितं विचारगस्मृतिध्यानादियुक्तं एकसमयेनैव संपूर्ण—आत्म-
धर्मनिर्धारभासनरमणरूपं निर्विकल्पसमाधिमय—अभेदरत्नत्रयीस्व-
रूपं । उक्तं च ध्यानप्रकारे—

जोयविपप्पो चिरकालीओ, सपरोभयावलंबनो होइ । जिहिय
पुरस्स चलणे, निमित्तगाही भवे वेई ॥ १ ॥

एग समएणतिपवयधम्मंमि, जं गुणतिगरमपदसामु—मउगी-
तिमत्तवाई अभेईसो ॥ २ ॥ (?)

ईदृग् अभेदरत्नत्रयीपरिणतेन भेदरत्नत्रयी परिणामसमयासः
सर्वांकः त्यज्यत एव ॥ ४ ॥

णानुयायिवीर्यप्रवृद्धि–अभिनवगुणवृद्धिरूपा संयमस्थानारोहणतत्त्वैकरूपा क्रिया प्रतिसमयं करणीया, साध्यसापेक्षत्वेन, अत एव "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" इति निर्द्धारणीयं द्रव्यक्रियोद्यतो भावक्रियावान् भवति ततश्च स्वरूपास्पदीभवति इति श्रेयः ॥ ८ ॥

इति क्रियाष्टकम् ॥ ९ ॥

॥ अथ तृप्त्यष्टकम् ॥

क्रियावंतो हि कदाचिन्मदलोभाविष्टाः सदभ्यासं निष्फलीकुर्वंति, तेन कषायत्यागरूपपूर्वकं स्वरूपभोगोत्पन्नतृप्तिरूपं अष्टकं निरूप्यते । तत्र तृप्तिर्नामादिभेदाच्चतुर्धा–तत्र नामतृप्तिः जीवस्य अजीवस्य तृप्तिरिति नाम क्रियते, शब्दोच्चारणरूपा च, स्थापनातृप्तिः अक्षन्यासरूपा, द्रव्यतृप्तिः आगमतः तत्पदार्थज्ञोऽनुपयुक्तश्च नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीतद्व्यतिरिक्तभेदात् तत्र तद्व्यतिरिक्ता द्रव्येण आहारधनोपकरणा तृप्तिः भावतृप्तिः आगमतः तत्पदार्थज्ञोपयुक्तश्च नोआगमतः स्वरूपज्ञानानंदपूर्णस्य सहजात्मानुभवाविच्छिन्नस्य भवति, नैगमे जीवाजीवात् तृप्तिः, संग्रहव्यवहाराभ्यां ग्रहणयोग्यद्रव्यप्राप्तौ, ऋजुसूत्रेण ईप्सितसंपत्तौ, शब्दादिनयैस्तु स्वस्वरूपानिरावरणपूर्णाविभ्रमोत्कृत्वेन तृप्तिः । इयं च पद्धतिः ओघनिर्युक्तिवृत्तिगताहिंसानयपद्धावर्णीया, अत्र कारणतो नामादिनिक्षेपविकल्पैर्नैगमादिनयसक्ता, वस्तुतो भावनिक्षेपशब्दादिनयरूपा एव ग्राह्या सा च साधनकालेऽपवादोद्भवा सिद्धत्वे उत्सर्गोद्भवा ग्राह्या । तमेवाह—

पीत्वा ज्ञानामृतं भुक्त्वा, क्रियासुरलताफलम् ।
साम्यताम्बूलमास्वाद्य, तृप्तिं याति परां मुनिः ॥१॥

[illegible] ॥ ६ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ७ ॥

[illegible] ॥ ७ ॥

स्पर्शरसवर्णगंधशब्दैः विषयैः किं ? न किमपि, यः स्वरूपानुभवी सविभावहेतुभूतान् इंद्रियविषयान् नावगच्छति, कथंभूता स्वगुणैः तृप्तिः ? आकालं सर्वमप्यनागतं कालं अविनश्वरी विनाशरहिता सहजत्वेन नित्या इत्यर्थः, स्पर्शज्ञानवतः यैः शब्दादिभिः इत्वरी अल्पकालीया औपचारिकी तृप्तिर्भवेत् तैः विषयैः परविलासैः किं ? न किमपि परविलासा बंधहेतव एव । अत्र भावना—अनेकशो भुक्ता एते तथापि नालं आत्मस्वरूपं, न च ते सुखहेतवः किंतु सुखत्वबुद्धिरेव कृतका, तेन तद्विषयाभिमुखत्वेन न स्वरूपरसिकानां अत्र आत्मगुणैस्तृप्तिर्विधेया ॥ २ ॥

तामेव भावयति ।

या शान्तैकरसास्वादाद्, भवेत्तृप्तिरतीन्द्रिया ।
सा न जिह्वेन्द्रियद्वारा, षड्रसास्वादनादपि ॥३॥

व्या० या शान्तैकेति, या तृप्तिः अतीन्द्रिया इंद्रियविषयग्रहणरहिता शान्तरसास्वादनात् भवेत् लभेत सा तृप्तिः षड्रसास्वादनात् तिक्ताम्लमधुरकषायकटुलवणरसभोजनात् जिह्वेन्द्रियद्वारा रसनेंद्रियद्वारा न भवति, रसनेंद्रियेण पौद्गलिकरसानुभवः, आत्मा च स्वरूपानुभवी पुद्गलगुणानां ज्ञाता, न भोक्ता, पुद्गलगुणा अभोग्या एव मोहोदयात् आहारसंज्ञातः रसास्वादनं न स्वरूपतः, स्वरूपं च ज्ञानानुभवलक्षणं अतः आत्मानुभवा तृप्तिः न पौद्गलिकी इति ॥ ३ ॥

संसारे स्वप्नवन्मिथ्या, तृप्तिः स्यादाभिमानिकी ।
तथ्या तु भ्रान्तिशून्यस्य, साऽवीर्यविपाककृत् ॥४॥

ता दंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मुक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं ॥१॥ इति

अतः ज्ञानं क्रियायुक्तं हिताय नेकमेवेत्याह—

क्रियाविरहितं हन्त!, ज्ञानमात्रमनर्थकम् ।
गतिं विना पथज्ञोऽपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम् ॥२॥

व्या०–क्रिया इति । क्रियाविरहितं क्रिया साधनप्रवृत्तिरूपा तया विरहितं ज्ञानमात्रं संवेदनज्ञानं अनर्थकं न मोक्षरूपकार्यसाधकं । तत्र दृष्टान्तः पथज्ञोऽपि मार्गज्ञाता अपि गतिं विना चरणविहारक्रियां विना ईप्सितं इच्छितं नगरं न आप्नोति चरणचंक्रमणेनैव ईप्सितनगरप्राप्तिः इति 'नाणचरणेण मुक्खो' इति वचनात् ।

सन्नाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी, उभासई सूरिएवंतलिक्खे ॥ १ ॥

॥ इति उत्तराध्ययने ॥ २ ॥

पुनस्तदेव दृढयन्नाह–

स्वानुकूलां क्रियां काले, ज्ञानपूर्णोऽप्यपेक्षते ।
प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि, तैलपूर्त्यादिकं यथा ॥ ३ ॥

व्या०–स्वानुकूलामिति–ज्ञानपूर्णोऽपि स्वपरविवेचनविशिष्टोऽपि काले अवसरे कार्यकरणक्षणे स्वानुकूलां तत्कार्यकरणरूपां क्रियां अपेक्षते, तत्त्वज्ञानी सम्यग्ज्ञानी प्रथमं संवरकार्यरुचिः देशविरतिसर्वविरतिग्रहणरूपां क्रियां आश्रयति, पुनः चारित्रयुक्तोऽपि तत्त्वज्ञानी केवलज्ञानकार्यनिष्पादनरसिकः शुक्लध्यानारो-

तृप्तिमन्यनारूपः न युज्यते न घटते । भावना च सम्यग्ज्ञानी तु यथार्थावबोधी तु आत्मधर्मे एव आत्मनि अंगीकरोति पौद्गलिकोपचये न रज्यते, पुद्गलास्वादनेन सुखावभास एव मिथ्याज्ञानं उक्तं च—

> नवइ नवं धरइ चरणं, सुअंपि नव पुव्वजाव अब्भसई,
> जा परगुहे रुहत्तं, ता नो सम्मत्तविन्नाणं ॥ १ ॥
>
> पुनः श्रीहरिभद्रपूज्यः—
>
> सुअवं सीलवं धाई, जिणमग्गापरणाई ।
> परं वा परसंगं वा, धम्मनई जो जडो ॥ २ ॥

यत्र आत्मनः स्वरूपं सहजं ज्ञानादिकं तदेव धर्म इति तत्त्वम् ॥ ५ ॥

मधुराज्यमहाशाका-ग्राह्ये बाह्ये च गोरसात् ।
परब्रह्मणि तृप्तिर्या, जनास्तां जानतेऽपि न ॥ ६ ॥

व्या०—मधुराज्य इति—या परब्रह्मणि शुद्धात्मनि अनन्तानंतज्ञानघने तृप्तिः स्वरूपावस्थानाविर्भूतानंदविलासरूपा जनाः तत्स्वरूपावलोकनपराङ्मुखाः तां शुद्धात्मस्वरूपावस्थानभासनभा-रूपां तृप्तिं जानतेऽपि न नैव जानते इति सा ज्ञानदृष्टेऽपि नास्ति, अतः कुतोऽनुभवः ? या तृप्तिः मधुराज्यमहा-शाकाग्राह्ये पुनः गोरसात् अग्रे भोजने न, मधुरं आज्यं घृत मधुराज्यं महान्तः शाका व्यंजनानि तेषामग्रे पुनः गोरसः दध्यादि तस्मात् अग्रे ग्राह्ये षड्विधे भोजने सा तृप्तिः न । अथवा वर्ण-यते महतिः ? मधुराज्यमहाशाकाग्राह्ये मधु मिष्टं राज्य, तत्र महती आशा इच्छा येषां ते मधुराज्यमहाशाकाः तैः ग्राह्ये-

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मुक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं ॥१॥ इति

अतः ज्ञानं क्रियायुक्तं हिताय नैकमेवेत्याह—

क्रियाविरहितं हन्त!, ज्ञानमात्रमनर्थकम्।
गतिं विना पथज्ञोऽपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम् ॥२॥

व्या०—क्रिया इति। क्रियाविरहितं क्रिया साधनप्रवृत्तिरूपा तया विरहितं ज्ञानमात्रं संवेदनज्ञानं अनर्थकं न मोक्षरूपफलसंपादकं। तत्र दृष्टान्तः पथज्ञोऽपि मार्गज्ञाता अपि गतिं विना चलनविहारक्रियां विना ईप्सितं इच्छितं नगरं न आप्नोति चरणचंक्रमणेनैव ईप्सितनगरप्राप्तिः इति 'नाणचरणेण मुक्खो' इति वचनात्।

सन्नाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी, ओभासई सूरिएवंतलिक्खे ॥ १ ॥

॥ इति उत्तराध्ययने ॥ २ ॥

पुनस्तदेव द्रढयन्नाह—

स्वानुकूलां क्रियां काले, ज्ञानपूर्णोऽप्यपेक्षते।
प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि, तैलपूर्त्यादिकं यथा ॥ ३ ॥

व्या०—स्वानुकूलामिति—ज्ञानपूर्णोऽपि स्वपरविवेचनविशिष्टोऽपि काले अवसरे कार्यकरणक्षणे स्वानुकूलां तत्कार्यकरणरूपां क्रियां अपेक्षते, तत्त्वज्ञानी सम्यग्ज्ञानी प्रथमं संवरकार्यरुचिः देशविरतिसर्वविरतिग्रहणरूपां क्रियां आश्रयति, पुनः चारित्रयुक्तोऽपि तत्त्वज्ञानी केवलज्ञानकार्यनिष्पादनरसिकः शुक्लध्यानारो-

कालभोगैः अतृप्ताः न च एते तृप्तिहेतवः असदारोप एवायं। लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मके अनंतसकर्मजीवात्मके एको भिक्षुः आहारागृध्नुः संयमयात्रार्थं भिक्षणशीलो निष्परिग्रहः सुखी अस्ति। ज्ञानं स्वरूपावबोधः तेन तृप्तः निरंजनः रागाद्यंजनश्यामतापरहितः स्वधर्मभोगवत्त्वात् यद्वस्तुनि यद्धर्मो न भवति ततो न जायते तृप्तिः। उक्तं च विशेषावश्यके—

जत्तो चिय पच्चक्खं, सोम्म सुहं नत्थि दुक्खमेवेदं।
तप्पडियारविभत्तं, तो पुण फलंति दुक्खंति ॥ १ ॥
विसयसुहं दुक्खं चिय, दुक्ख प्पडियारओ तिगिच्छिव्व।
तं सुहमुवयाराओ, न उवयारो विणा तच्चं ॥ २ ॥
सायासायं दुक्खं, तव्विरहम्मि अ सुहं जउ तेण।
देहिंदियेसु दुक्खं, सुक्खं देहेंदिआभावे ॥ ३ ॥

इति सातसातयोर्विपाकभेद एव नत्वावरणे अव्याबाधावरणत्वं तु उभयोरपि यच्च स्वगुणान् घातयति तद् दुःखं कः सुखत्वेनोररीकुरुते ? इति आत्मनः ज्ञानानंदाद्भवा तृप्तिः प्रशस्या नौपाधिकी इत्यनेन तया एव सम्यग्दर्शनिनः स्तुवंति अर्हंतं, पूजयंति परमात्मानं, देशविरता अपि सामायिकपौषधोपवासिनः, आत्मानुभवलवास्वादनार्थमेव तिष्ठंति एकांते मुनयः, तन्निष्पादनाय त्यजंति पंचाश्रवान्, तद्विवाताय गृह्णंति ग्रीष्मग्रीष्मतप्तशिलातापनां, शिशिरहिमनिशाकरकरानिवातक्षुब्धा वसंति अवसना वने, स्वाध्यायंति आगमव्यूहान् क्षमादिधर्मद्वारा, भावयंति अज्ञानं तत्त्वज्ञानेन, आरोहंति गुणश्रेणिशृंगे, चिंतयंति तत्त्वैकत्वं तत्त्वसमाध्यर्थमेव प्राणायामादिप्रयासो जिनकल्पादिकल्पः इति स्वस्वभावानुभवतृप्तिः सर्वैरम्यस्या ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं तृप्त्यष्टकं दशमम्।

ता दंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मुक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं ॥१॥ इति

अतः ज्ञानं क्रियायुक्तं हिताय नैकमेवेत्याह—

क्रियाविरहितं हन्त!, ज्ञानमात्रमनर्थकम् ।
गतिं विना पथज्ञोऽपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम् ॥२॥

व्या०—क्रिया इति । क्रियाविरहितं क्रिया साधनप्रवृत्तिरूपा तया विरहितं ज्ञानमात्रं संवेदनज्ञानं अनर्थकं न मोक्षरूपकार्यसाधकं । तत्र दृष्टांतः पथज्ञोऽपि मार्गज्ञाता अपि गतिं विना चरणविहारक्रियां विना ईप्सितं इच्छितं नगरं न आप्नोति चरणचंक्रमणेनैव ईप्सितनगरप्राप्तिः इति 'नाणचरणेण मुक्खो' इति वचनात् ।

सन्नाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी, उभासई सूरिएवंतलिक्खे ॥ १ ॥

॥ इति उत्तराध्ययने ॥ २ ॥

पुनस्तदेव द्रढयन्नाह—

स्वानुकूलां क्रियां काले, ज्ञानपूर्णोऽप्यपेक्षते ।
प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि, तैलपूर्त्यादिकं यथा ॥ ३ ॥

व्या०—स्वानुकूलामिति—ज्ञानपूर्णोऽपि स्वपरविवेचनविशिष्टोऽपि काले अवसरे कार्यकरणक्षणे स्वानुकूलां तत्कार्यकरणरूपां क्रियां अपेक्षते, तत्त्वज्ञानी सम्यग्ज्ञानी प्रथमं संवरकार्यरुचिः देशविरतिसर्वविरतिग्रहणरूपां क्रियां आश्रयति, पुनः चारित्रयुक्तोऽपि तत्त्वज्ञानी केवलज्ञानदर्शननिष्पादनरसिकः शुक्लध्यानारो-

संसारे निवसन् स्वार्थ–सज्जः कज्जलवेश्मनि ।
लिप्यते निखिलो लोको, ज्ञानसिद्धो न लिप्यते ॥१॥

व्या०–संसार इति—निखिलः समस्तो लोकः कज्जलवेश्मनि रागादिपापस्थानविभावतन्निमित्तीभूतधनस्वजनादिगृहे संसारे निवसमानः, स्वार्थसज्जः स्वस्य आरोपात्मना कृतः अर्थः अहंकारममकारादिरूपः स्वार्थः तत्र सज्जः सावधानो लिप्यते रागादिभावकर्माभिष्वंगतः समस्तात्मीयक्षयोपशमाभावपरानुगतः सर्वसत्तावरकत्वेन भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मलेपैर्लिप्यते । तथा ज्ञानसिद्धः हेयोपादेयपरीक्षापरीक्षितसर्वभावः स्वात्मनि स्वात्मा अन्यत्र परत्वोपयुक्तः स्वात्मारामी स्वरूपविलासी न लिप्यते. विविधकर्मोपचयैर्नावगुंठ्यते अतः आत्मधर्मावभासनतदुपादेयतया यतितव्यमित्युपदेशः ॥ १ ॥

नाऽहं पुद्गलभावानां, कर्ता कारयितापि च ।
नानुमन्तापि चेत्यात्म-ज्ञानवान् लिप्यते कथम्? ॥२॥

व्या०–नाहमिति—इति अमुना प्रकारेण यथार्थविभासनेन भेदज्ञानविभिन्नात्मस्वरूप आत्मज्ञानवान् कथं लिप्यते ? नैवेति, इति किं ? अहं विमलकेवलालोकमयः, स्वकीयपरिणामिकपर्यायोत्पादव्ययध्रुवत्वज्ञायकत्वभोक्तृत्वरमणत्वादिभावानां कर्ता पुद्गलभावानां द्रव्यकर्मनोकर्महिंसादिपापव्यापाराणां योगप्रवृत्तेश्च कर्ता न नैव पुद्गलग्रहणमोचनरूपं मम कार्यं वर्णादीनां ग्रहणास्कंदनानां नहि कर्ता च पुनः पुद्गलभावानां पूर्वोक्तानां अहं कारयिता यस्मात् कारयतीति कारयिता न च पुनः न अनुमंता पौद्गलिकवर्णादीनां शुभानां नानुमोदनशीलः यद-

न [illegible] विना न हुंति [illegible] ।
[illegible] सिद्धं ॥१॥ इति

अत्र ज्ञानं क्रियायुक्तं हितकरमित्याह—

क्रियाविरहितं हन्त!, ज्ञानमात्रमनर्थकम् ।
गतिं विना पथज्ञोऽपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम् ॥२॥

व्या०—क्रियेति । क्रियाविरहितं क्रिया स्वगुणसाधनलक्षणा तया विरहितं ज्ञानमात्रं [illegible] अनर्थकं न मोक्षफलसाधकं । यथा ज्ञातः पथज्ञोऽपि मार्गज्ञाता अपि गतिं विना चलनक्रियां विना ईप्सितं इच्छितं नगरं न प्राप्नोति [illegible] ईप्सितस्थानं इति [illegible] हन्तेति वचनात् ।

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥

॥ इति [illegible] ॥ २ ॥

पुनरेव द्रढयति—

स्वानुकूलां क्रियां काले, ज्ञानपूर्णोऽप्यपेक्षते ।
प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि, तैलपूर्त्यादिकं यथा ॥ ३ ॥

व्या०—स्वानुकूलेति—ज्ञानपूर्णोऽपि स्वकार्यसाधनविधियो- ति काले अवसरे कार्यसाधने स्वानुकूलां तत्कार्यसाधकां क्रियां अपेक्षते, [illegible] क्रियां आश्रयति, पुनः प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि तत्काले [illegible]-

च आत्मज्ञानमात्रसंतुष्टा रागद्वेषप्रविष्टाः सम्यग्दर्शनादिगुणप्रष्टाः आत्मानं अबंधतया जानंति ते निरस्ताः, उक्तं च उत्तराध्ययने–

भणंता अकरंता य, बंधमुक्खपइन्निणो ।
वायावीरियमित्तेणं, समासा संति अप्पयं ॥ १ ॥
न चित्ता तायए भासा, कओ विज्जाणुसासणं ।
विसन्ना पावकम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो ॥ २ ॥

अत एव तत्त्वश्रद्धानसम्यग्ज्ञानोपयुक्ता यदात्मनः क्षयोपशमिकचेतनावीर्यादिशक्तीन् परभावविभावान् आकृष्य आत्मगुणे प्रवर्त्तयंति तावती अबंधकता शेषा, यावती परानुगा विषयकषायचापल्यताशक्तिः तावती बंधकता एवं सर्वात्मशक्तिः स्वरूपविश्रामरमणरूपा तदा सर्वात्मना अबंधकः इति सिद्धांतः ॥३॥

लिप्तता ज्ञानसम्पात–प्रतिघाताय केवलम् ।
निर्लेपज्ञानमग्नस्य, क्रिया सर्वोपयुज्यते ॥ ४ ॥

व्या०–लिप्तता इति–निर्लेपज्ञानमग्नस्य शुद्धस्याद्वादात्मज्ञानमग्नस्य पुंसः क्रिया आवश्यककरणरूपा लिप्तता ज्ञानसंघातप्रतिघाताय ज्ञानं विभावचेतनोपयोगः तत्र संपातः पतनं तस्य प्रतिघाताय निवारणाय केवलं उपयुज्यते उपकारीभवति, इत्यनेन ध्यानारूढस्य न क्रियाकरणं, किंतु भावना चिंता ज्ञानवतः विघ्नवारणाय क्रिया उपकारिणी ध्यानाधिरूढस्याप्रच्युतात्मस्वभावानुभवस्थस्य विघातिनी आगमेऽपि पूर्वं यदमृतकुंभोपमं तदेवोपरि विषकुंभोपमं । उक्तं च—

जा किरिया सुद्धमरी, सा विसुद्धीए न अप्पयम्मोति ।
पुव्विं हीयाय पच्छा, अहिया जह निससहाइतिगं ॥ १ ॥
अत एव आत्मस्वरूपावबोधैकत्वं हितं ॥ ४ ॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ४ ॥

[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ६ ॥

[illegible] । [illegible]
[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible]

व्या०—अलिप्त इति–निश्चयरूपेण नयेन स्वरूपेण जात्या इत्यर्थः आत्मा चेतनः अलिप्तः पुद्गलाश्लेपरहितः. च पुनः व्यवहारतः बाह्यतमप्रवृत्तिसोपाधिकत्वतः अयं आत्मा लिप्तः अतः परसंसर्गजन्यव्यवहारत्यागे यतितव्यं, अत एव अलिप्तया दृशा शुद्धचिदानन्दावलोकनात्मकया आत्मानं आत्मतया परं च परतया अरक्तादिदृष्टया ज्ञानी वेद्यसंवेदकः स्वसंवेद्यज्ञानी शुद्ध्यति शुद्धो भवति सर्वविभावमलापगमनेन निर्मलो भवति । अन्यः क्रियावान् लिप्तया दृशा लिप्तोऽहं अशुद्धाचरणैः तेन शुद्धाचरणेन पूर्वप्रकृतीः क्षपयित्वा अभिनवाकरणेन आत्मानं मोचयामि इति दृष्ट्या क्रियां वंदननमनादिकां कुर्वन् शुद्ध्यति निर्मलो भवति इति निश्चयव्यवहारगौणमुख्यतां साधनक्रमः ॥ ६ ॥

ज्ञानक्रियासमावेश–सहैवोन्मीलने द्वयोः ।
भूमिकाभेदतस्त्वत्र, भवेदेकैकमुख्यता ॥ ७ ॥

व्या०—ज्ञान इति–द्वयोः दृष्ट्योः उन्मीलने उद्घाटने सहैव समकालमेव नह्येकांतज्ञानरुचिः सम्यग्दर्शनी, न ह्येकांतक्रियारुचिः सम्यग्दर्शनी, किंतु सापेक्षदृष्टिरेव सम्यग्दर्शनी, अतः ज्ञानक्रियासमावेशः उभयोः संयोग एव साधनत्वेन निर्धार्यः तत्र कचवरसमन्वितमहागृहशोधनप्रदीपपुरुषादिव्यापारवदिह जीवः स्वरूपकर्मकचवरभृतस्वरूपशोधनालंबनो ज्ञानादिना स्वभावभेदव्यापारोऽवसेयः । तत्रोक्तं श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ—

नाणं पगासगं सोहगो, तवो संजमो उ गुत्तिकरो ।
तिण्हंपि समाओगे, मुक्खो जिणसासणे भणिओ ॥ १ ॥

तथाप्युपदेशपदप्रकरणे–"क्रियाकृतकर्मक्षयः मंडूकचूर्णतुल्यः, ज्ञानकृतकर्मक्षयस्तद्भस्मकल्प एव ज्ञातव्यः। तु पुनः या च एके-

व्या०—वचोनुष्ठानत इति—वचनं अर्हदाज्ञा, तदनुयायिनी क्रिया धर्महेतुः; यतः—

> प्रशांतचित्तेन गभीरभावेनैवाप्तना सा सफला क्रिया च ।
> अंगारवृष्टेः सहसा न चेष्टा, नासंगदोषैक्र गुणप्रवर्षा ॥ १ ॥

विषांगारान्योन्यानुष्ठानत्यागेन श्रीमज्जिनागमवाक्यानुसारतः उत्सर्गापवादसापेक्ष्यरूपा क्रिया वचनानुष्ठानक्रियाकरणतः अंगक्रिया संगति संयोगिनां अंगति—प्राप्नोति, वचनक्रियावान् अनुक्रमेण असंगक्रियां एव निर्विकल्पनिष्प्रयासरूपां क्रियां प्राप्नोति, सा एव असंगक्रिया एव ज्ञानक्रिया, एव अभेदमसि ज्ञेया असंगक्रिया भावक्रिया शुद्धोपयोगशुद्धवीर्योल्लासतादात्म्यतां ज्ञाति. ज्ञानवीर्यैकत्वं ज्ञानक्रिया—अभेदः इत्यनेन यावद् गुणपर्णता न तावत् निरनुष्ठाना क्रिया करणीया, नहि तत्त्वज्ञाने क्रिया निषेधिका, [illegible] क्रियादिशुद्धरत्नत्रयीरूपवस्तुधर्मसाधनकारणेन धर्मः; धर्मत्वं आसम्पत्र । उक्तं च श्रीहरिभद्रपूज्यैः दशवैकालिकवृत्तौ "धम्मसाधनत्वाद् धर्म इति" अतो द्रव्यक्रियां धर्मत्वेन गृह्णंति तत्कारणे कार्योपचार एव न्याय्यः. एतत्श्रद्धानविकलानां क्रिया न धर्महेतुः ।

> बहुगुणविज्जानिलओ, उस्सुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो ।
> जह परमणीजुत्तो, विग्घकरो विसहरो लोए ॥ १ ॥

इति षष्टिशतप्रकरणे । तथा च आचारांगे "भयविचिकित्सायां न संयम इति, अतो निमित्तहेतुत्वेन क्रिया निरनुष्ठाना करणीया इयं असंगक्रिया, सा अनाहतनी[illegible] स्वाभाविकानंदामृतरसार्द्रा, अत आत्मतत्त्वावबोधानदीपूर्वकानिरनुष्ठाना सत्प्रवृत्त्यसत्प्रवृत्तिपरित्यागरूपा क्रिया द्रव्यतो भावतः स्याद्वादरत्न-

दानदायका अपि चरंति गोचरीं, मृदुनवनीतकुसुमशय्याशायिनोऽपि, शेरते धातोपलशिलाभूमौ एकात्मतत्त्वसहजस्वभावामूर्त्तानंदलीला-लुब्धा ज्ञानक्रियाभ्यासतः, साधयंति निरावरणात्यंतिकैकांतिकनि र्द्वंद्वनिरामयाविनाशि सिद्धस्वरूपं एतत्साधनोद्यताय भगवते नमः ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं निर्लेपाष्टकम् एकादशमम् ॥

अथ निर्लेपत्वदृढीकरणार्थं निःस्पृहत्वं विस्तार्यते, तत्र निःस्पृहत्वं सर्वपरभावानभिलापरूपं, इच्छा मूर्छानिरावरणं, स्पृहा नाम इच्छा, तदभावो निःस्पृहत्वं, तत्र नामनिःस्पृह उल्लापरूपः, स्थापनानिःस्पृहो मुनिप्रतिमादिः, द्रव्यनिःस्पृह इहपरत्राधिकाभिलाषेन अल्पानिच्छकः अथवा भावधर्मास्वादनमंतरेण तत्स्वरूपापरज्ञानेन धनादिषु अनिच्छुश्च तावन्निःस्पृहः अप्रशस्तः वेदांतादिकुतीर्थोपदेशेन एकांतमुक्तिरक्तः, धनादिषु निःस्पृहः स प्रशस्तः, स्याद्वादैकांतपरीक्षापरिच्छिन्नात्मतत्त्वानुभवरुचिपिपासिताः सर्वमपि हेयीकुर्वंति परभावं, भवंति स्वरूपलालितचेतसः, तत्र साधनार्थं आदिनयचतुष्टयेन सिद्धत्वं नयत्रयेण तथा जीवाजीवे निःस्पृहः नैगमेन अजीवे निस्पृहः संग्रहव्यवहाराभ्यां, ऋजुसूत्रेण स्वभोग्यभोज्येषु, शब्दसमभिरूढाभ्यां सन्निमित्तपरायत्तसाधनपरिणामेषु, एवंभूतेन आत्मीयसाधनपरिणामापन्नभेदज्ञानसविकल्पचरणशुक्लध्यानशैलेषीकरणादिषु निःस्पृहः । अत्र आद्यनयचतुष्टयनिःस्पृहस्यावसरः । भावना च अनादौ संसारे स्पृहाकुलितैर्बहुशः प्राप्तं दुःखलक्षं तेन परभावस्पृहानिरीहेन भवितव्यं—

स्वभावलाभात्किमपि, प्राप्तव्यं नावशिष्यते ।
इत्यात्मैश्वर्यसम्पन्नो, निःस्पृहो जायते मुनिः ॥ १ ॥

व्या०— पीत्वा इति-मुनिः सम्यग्भावी स्याद्वादनैक
लीन. परां उत्कृष्टां नैःकैवल्यभावधनिधेयतां तृप्तिं संतोषानन्द
यान्ति प्राप्नोति लभते इत्यर्थः, किं कृत्वा ? ज्ञानामृतं ज्ञा
यथार्थतत्त्वावबोधस्वरूपं तदेवामृतं पीत्वा शुद्धात्म
तत्त्वैकत्वपरिणतिसुधारसपानेन संतोषस्त्वेन पीत
क्रिया सदोद्यतवृत्तिः स्वस्वभावानुभवभावनया
तत्पूर्तिका या धर्मप्रवृत्तिः सा एव सुरलता कल्पवल्ली तस्य
फलं शिवत्वेन सर्वोपलब्धं भुक्त्वा साम्यं समता शुभाद्
येषु दुःखादिषु तुल्यत्वं तदेव ताम्बूलं रसादिगौरवस्यावलम्बनम्
मुनिः परां उत्कृष्टां तृप्तिं याति इत्यन्वयः । सांसारिकी
इत्येतत्प्रभावभावितात्मनोऽनादिमिथ्यात्वाज्ञानासंयमकषाय
प्रमत्तस्य अनादिविषयभोगपरंपराजन्यदुःखमन्वेन या
तृप्तिः न सा तृप्तिः, यतः तल्लाभादपि तृष्णा प्रवृत्तिर्भवति
न तृप्तिः सततानंदभोगेनैव तृप्तिः, अत एव सत्पुरुषाः
ज्ञानिनो यत्नात् ध्यानिनो निश्चयात्, शीलयंति उत्पतनात् सदुप
देशात्, निःसंगयंति संगाभिषंगसंगात्, विरागयंति अंगरागात्
विरमंति स्वाध्यायव्यसनेन तत्त्वश्रवणमनननिदिध्यासनपरिशीलने
धन्यं मन्यंते पराभवस्थां इति ॥ १ ॥

पुनरपि निश्चलां तृप्तिं व्याख्यानुमाह—

स्वगुणैरेव तृप्तिश्चेदाकालमविनश्वरी ।
ज्ञानिनो विषयैः किं तैर्यैर्भवेत्तृप्तिरित्वरी ॥ २ ॥

व्या० स्वगुणैरिति-चेत् यदि स्वगुणैः चैतन्यस्य स्वरू
स्वक्षेत्रस्वकालस्वभावमूर्तेः अमूर्तासंगानावृत्तचिदानंदरूपः
अव्ययोगप्यवच्छेदार्थः, तृप्तिः ज्ञानिनः सम्यग्ज्ञातवस्तुतत्त्वस्य

व्या०—छिंदंति इति—बुधाः तत्त्वज्ञाः ज्ञानदात्रेण स्पृहाविषलतां स्पृहा एव विषवल्ली तां छिंदंति । यस्याः फलं यत्फलं मुखशोकं च पुनः मूर्छा च पुनः दैन्यं यच्छति ददाति इत्यनेन स्पृहाविषलता मुखशोकादिकं वितरति । इच्छको दीनो भवति; तेन विषयविषोपमविषयस्पृहा निवारणीया इति ॥ ३ ॥

निष्कासनीया विदुषा, स्पृहा चित्तगृहाद् बहिः ।
अनात्मरतिचाण्डाली—सङ्गमङ्गीकरोति या ॥ ४ ॥

व्या०—निष्कासनीया विदुषा पंडितेन आत्मसमाधिसावनोद्यतेन स्पृहा पराशा चित्तगृहात् मनोनिकेतनात् बहिर्निष्कासनीया दूरीकरणीया । स्पृहा हि लोभपर्यायः लोभश्च कषायपरिणामः तन्निग्रह एव श्रेयान् या स्पृहा अनात्मरतिचांडालीसंगं अनात्मानः परभावाः तेषु रतिः रमणीयतापरिणतिः सा एव चांडाली तस्याः संगं अंगीकरोति । अतः स्पृहा त्याज्या । उक्तं च—

जे परभावे रत्ता, मत्ता विसयेसु पावबहुलेसु ।
आसापासनिबद्धा, भमंति चउगईमहारन्ने ॥ १ ॥

परभावरतिरेव विभावः आत्मशक्तिध्वंसनमुद्गरः अतो निरस्तपराशापाशा निर्ग्रंथाः स्वरूपचिंतनस्वरूपरमणानुभवलीनाः, पीनाः तत्त्वानंदे रमंते स्वरूपे, विरमंति विषयविरूपमवकूपपाततः ॥४॥

स्पृहावन्तो विलोक्यन्ते, लघवस्तृणतूलवत् ।
महाश्चर्यं तथाप्येते, मज्जन्ति भववारिधौ ॥ ५ ॥

व्या०—स्पृहावंत इति—स्पृहावंतः परेच्छानिम्नाः तृणतूलवत् लघवः तुच्छा अनिर्मला विलोक्यंते । उक्तं च—

गत्वरैः औपाधिकैः सुखैः सकाशात् मुनिस्वरूपजैः सहजानंदैः परमानंदसुखैः पूर्णः । यतो जातिभेद एवायं इंद्रियात्मसुखयोः इंद्रियजे सुखे सुखत्वं आरोपितमेव न च पुद्गलस्कंधे तु सुखं सुखहेतुत्वं च आत्मन्येवाविच्छिन्नसुखपरंपरासुखस्य कर्तृत्वादिकारकचक्रं आत्मन्येव अतो वास्तवं सुखं जिनाज्ञानिगृहीतपरभावस्य निःस्पृहमुनेरेव अतो निःस्पृहस्य महदिंद्रियागोचरं स्वाभाविकं सुखं इति ॥ ७ ॥

परस्पृहा महादुःखं, निःस्पृहत्वं महासुखम् ।
एतदुक्तं समासेन, लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ ८ ॥

व्या०–परस्पृहा इति–परस्य परवस्तुनः परत् वा स्पृहा आशा महादुःखं महत्कष्टं निःस्पृहत्वं निराशंसत्वं महासुखं महानंदः, इति सुखदुःखयोः समासेन संक्षेपेण एतद् लक्षणं उक्तं कथितं इत्यनेन पराशा एव दुःखं यस्य निर्विकाराखंडसच्चिदानंदस्य स्वाभाविकात्मधर्मभोक्तुः परभावाभिलाष एव दुःखं तर्हि किं पराशा इति अस्यात्मनः स्वपरविवेकनिर्द्धारणपरभावाविर्भावितात्मानंतानंदस्य निःस्पृहत्वं धर्मः तदास्वादनेन सुखमिति अत एव स्पृहा त्याज्या स्पृहा हि स्वसामर्थ्यशून्यस्य भवति. अयं तु पूर्णानंदसच्चिदानंदज्ञानवान् परमः पदार्थः सर्वपदार्थांतरगतस्वभावः शुद्धात्मीयानंदभोगी, तस्य अनादिभ्रमतत्त्वानुभवप्रयत्नेन परस्पृहा गतस्यापि सांप्रतं अध्यात्मात्मभावनया टंकोत्कीर्णन्यायेन आगतात्मस्वरूपस्य स्पृहा परस्य न भवति इत्युपदेशः ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं निःस्पृहाष्टकम् ॥ १२ ॥

क्षीणितस्तुरैः अप्राप्ते पूर्णानुभवरूपे गोचरात् वाग्गतात् यो ऽध्यात्मगोचरे 'अनाप्य मनसा सह' इति वचनात् 'अपयस्स पयं नत्थि' इत्याचारांगवचनात् । एवंविधे परब्रह्मणि परमात्मनि या तृप्तिः सा लोकेन ज्ञायते एव अतः पुद्गलोपभोगसहस्रैः सा तृप्तिर्न भवति ॥ ६ ॥

विषयोर्मिविषोद्गारः, स्यादतृप्तस्य पुद्गलैः ।
ज्ञानतृप्तस्य तु ध्यान–सुधोद्गारपरम्परा ॥ ७ ॥

व्या०–विषयोर्मि इति–अतृप्तस्य स्वरूपास्वादरहितस्य पुद्गलैः अंगनालिंगनादिकैः विषयोर्मिविषोद्गारः स्यात् भवेत्, विषयोर्मिः इंद्रियविलासः स एव विषस्योद्गारः प्रकाशः स्यात् । उक्तं च—

जह जह पुग्गलभोगो, तह तह वड्ढइ विसयंमि कम्माइं ।
इंदियसुहा इहा खलु, अणिज्जा नउ ठाणं ॥ १ ॥

ज्ञानतृप्तस्य स्वात्मस्वभावबोधतृप्तस्य ध्यानं तत्त्वैकत्वं तदेव सुधा अमृतं तस्य उद्गारः तस्य परंपरा श्रेणिर्भवेत् निरामयनिर्मलपरमात्मानुभवः तृप्तेः स्थानं पुनः तत्त्वभावना तत्त्वज्ञानतत्त्वध्यानामृतोद्गारसंस्कारवृद्धिः ॥ ७ ॥

सुखिनो विषयातृप्ता, नेन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्यहो ।
भिक्षुरेकः सुखी लोके, ज्ञानतृप्तो निरञ्जनः ॥ ८ ॥

व्या०–सुखिनो विषयातृप्ता इति–अहो इति आश्चर्ये इन्द्रोपेन्द्रादयः इंद्रः शक्रः, उपेंद्रः कृष्णः, इत्यादयः अनेके न सुखिनः सुखवन्तो न । कथंभूता इंद्रोपेंद्रादयः ? विषयातृप्ता विषयैः मनोज्ञेन्द्रियसंयोगैः अतृप्ता अनेकवनिताविलासप्रवरप्रासादसुरभिकुसुमताम्बूलपानादिभिः मृदुशय्याकर्णनवर्णवर्णाविलोकनासंस्प-

मुनेः निर्ग्रंथस्य इदं मौनं, एवेति निर्धारणे तत् सम्यक्त्वं यत् यथाज्ञातं तथाकृतं इति तत् सम्यक्त्वं एव मुनित्वं सम्यक्त्वं वा पुनः सम्यक्त्वं एव मौनं निर्ग्रंथत्वं । अत्र यत् शुद्धश्रद्धान-निर्धारितात्मस्वभावः तत्र अवस्थानं चरणं यच्च सम्यग्दर्शनेन निर्धारितं सम्यग्ज्ञानेन विभक्तं स्वरूपोपादेयत्वं तच्च तथैव भवति रमणं चरणं मुनित्वं अतः सम्यक्श्रद्धागृहीतकरणं तत् एवंभूतनयेन सम्यक्त्वं एवंभूतनयेन सम्यग्मुनित्वं सम्यक्स्वरूपं इति ज्ञपरिज्ञामत्याख्यानपरिज्ञाप्रातं एवं कार्यसाधकं तेन सम्यक्त्वमुनित्वे अभेदः । सम्यग्दृष्टिभिः पंचतुर्यगुणस्थानस्थैः साध्यत्वेन धारितं तथाकरणे यत्र मुनिभावे निष्पादितं सिद्धावस्थायां इत्यनेन शुद्धसिद्धत्वस्य धर्मनिर्द्धारः सम्यक्त्वं । आचारांगे–"जं सम्मत्तं पासह तं मोणं पासह जं मोणं पासह तं सम्मत्तं पासह णइ मं सक्क कामायरेहिं पन्नत्तेहिं गारवायरंतेहिं, मुणी मोणं समायाए धुणेकम्मसरीरगं पंतं लुहं च सेविति वीरा सम्मत्तदंसिणो" ॥१॥ नया च पंचास्तिकायेषु जीवः चेतनालक्षणः तत्र स्वीयात्मद्रव्योऽपि विभावधर्मोऽपि नतया निर्मलानंदी निर्धारणाय तदाचरणविगमाय मोहहेतु तत् द्रव्यात्मवान् हेयनयोपलक्षितान् हेयतया करोति इति सम्यक्त्वं मुनिस्वरूपम् ॥ १ ॥

आत्मात्मन्येव यच्छुद्धं, जानात्यात्मानमात्मना ।
सेयं रत्नत्रये ज्ञप्ति–रुच्याचारैकता मुनेः ॥ २ ॥

व्या०–आत्मा इति–अत्र ज्ञानादिगुणानामभेद[illegible]नां [illegible] [illegible] एव [illegible] [illegible] [illegible]–[illegible] । आत्मा स्वधर्म [illegible] [illegible]ऽपि [illegible]–दानादाना० विरमः १ पर्यंति स्याद्वाद [illegible] श्रीजिनभद्र-

॥ अथ निर्लेपाष्टकम् ॥

अथ अलिप्तस्य तत्त्वमग्नत्वं भवति, तथा निर्लेपवृत्तिरपि अलिप्तस्य तेन निर्लेपाष्टकं वितन्यते । तत्र लेपस्य सकलपरभावसंयोगाभावेन स्वात्मपरस्वग्राहकत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वादिशक्तीनां स्वभावस्थान निर्लेपः नामतो निर्लेपः, अलिप्त आत्मकजीवाजीवानां स्थापनानिर्लेपः, निर्लेपकाष्ठादि द्रव्यनिर्लेपः काम्यपाषाणादि, तदुपयोगिन शेषेषु एवं भावनिर्लेपः । जीवाजीवभेदाश्च अजीवो धर्मप्रमाणादि । जीवस्तु समस्तविभावाभिसंगरहितो मुक्तात्मा, नैगमव्यवहारादिरहितेन नैगमेन संग्रहेण जीवो सत्ता अलिप्त । व्यवहारकालेन द्रव्य योगा । शब्दनयेन सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानचेतनास्वभाववर्तमाना निर्विकल्पनाभिः धनघातिकर्मक्षयोपशम-... सन्, समभिरूढनयेन अरिहन्तादिनिर्मलैः ... क्षीणमोहो जिन केवली चारित्र । एवंभूतेन सिद्ध सर्वप्रदेशनिर्मलत्वात् । वाचनान्तरे तु नैगमालिप्त संग्रहेण नैगमनाश्रयेण संग्रहेण सम्यग्दर्शनात् तथा आत्मानं विभक्तत्वात्, व्यवहारेण तत्त्वरूपा अशान्तरागादिदोषरहितत्वात्, ऋजुसूत्रेण सर्वज्ञत्वादिगुणलक्षणत्वेनावलम्बनात्, शब्दनयेन ... गुणादिषु अवर्तमानत्वात्, समभिरूढेन चेतना सर्वजीवस्य विभाव प्रवर्तनत्वात्, एवंभूतेन पूर्णानन्दसच्चिदानन्दादिभावोपपन्नः हि सिद्धत्वम्, तत्र सिद्धस्य निर्लेपत्वम् । तन्निर्लेपत्वं नयत्रयस्य ... स्याद्वादित्वेन अनिमलवत् इति तत्त्वार्थवृत्तौ । अत्र भावनिर्लेपभावनानिर्देशविचारः—

व्या०—चारित्रमिति—आत्मचरणात् आत्मस्वरूपरमणात् परभावप्रवृत्तित्यागात् चारित्रं आत्मस्वरूपावबोधः ज्ञानं स्वीयासंख्येयप्रदेशव्यापकत्वेन सहजलक्षणज्ञानाद्यनंतपर्यायः अहं नान्यः इति निर्द्धारः दर्शनं इत्यनेन आत्मा ज्ञानदर्शनोपयोगगुणद्वयलक्षणः । एवं उक्तं च भाष्ये—आत्मनो गुणद्वयमेव व्याख्यानयंति इति तन्मते ज्ञाने स्थिरत्वं चारित्रं तेन ज्ञानचारित्रयोरभेद एव ज्ञानमेवात्मपरिणाममयी वृत्तिः सम्यक्त्वं आस्रवरोधः तत्त्वज्ञानैकता चारित्रं एवं व्यापारभेदात् ज्ञानस्यैवावस्थात्रयं । उक्तं च—

एवं जिणपणत्ते, सद्दहमाणस्स भावओ भावे ।
पुरिसस्सा भणिवा ए, दंसणसद्दो हवई जुत्तो ॥ १ ॥

तथा च क्रियानये क्रियालाभात् साध्यनिष्पादनाय इति प्रथमं च क्रियानयसाध्यं तत्त्वप्रागभावे च सर्वं ज्ञाननयसाध्यं अस्ति । वस्तुतः ज्ञानप्रवृत्तिरेव चरणं ज्ञानमयस्वात्मधर्मत्वात् अतः ज्ञानस्वरूप एवात्मा ॥ ३ ॥

यतः प्रवृत्तिर्न मणौ, लभ्यते वा न तत्फलम् ।
अतात्त्विकी मणिज्ञप्ति–र्मणिश्रद्धा च सा यथा ॥४॥

व्या०—यतः प्रवृत्तिरिति—अशुद्धज्ञाने निष्फलत्वं द्रढयति यथा अतात्त्विकी मणिज्ञप्तिः अमणौ मण्यारोपे मणौ मणिश्रद्धा तस्मिन् तत्फलं न लभ्यते न प्राप्यते यतः मणेः सकाशात् मणिप्रवृत्तिः विषापहारादिका न भवतीत्यर्थः । उक्तं च ।

पुल्लेव मुट्ठी जह से असारे, अयंतए कूडकहावणे वा ।
राढा मणि वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ जाणएसु ॥१॥

मिति तत्त्वस्फुरदैकालिकग्राहकभोक्तृत्वाकारकत्वात्मज्ञानवान् स न लिप्यते । हेयो हि पुद्गलानुपादिनः चेतनया भवति सर्वथा विधिनिषिद्धसंगस्य न हेयः । इति गाथार्थः ॥ २ ॥

लिप्यते पुद्गलस्कन्धो, न लिप्ये पुद्गलैरहम् ।
चित्रव्योमाञ्जनेनेव, ध्यायन्निति न लिप्यते ॥ ३ ॥

व्या०–लिप्यते इति—लिप्यते अन्योन्याश्लेषेण संक्रमादिना पुद्गलस्कंधः अन्यैः पुद्गलैः लिप्यते उपचयी भवति स्वजाति-द्रव्यतरेवर्धनपरिणामिकस्पर्शविकारोत्पत्तिबंधनधर्मत्वात्, पुद्गलानां संबंधः निर्गुणः पंचगुणेन बंधः पंचगुणः सप्तगुणेन एवं सर्वत्र द्विगुणः, चतुर्गुणेन चतुर्गुणः, षड्गुणेन षड्गुणोऽष्टगुणेन एवं बंधसंयोगो भवति । अत्र स्निग्धरूक्षौ स्पर्शस्थौ अपि एकत्वेन न स्कंधहेतुः स्पर्शस्य स्कंधकरण उपादानाभावात् न रसस्थौ रसस्य आस्वादनरूपत्वात् अतः पुद्गलगलनगुणविभागानामेव द्रव्यविरूपं स्निग्धरूक्षस्पर्शसंगपरिणतं स्कंधत्वहेतुः; अतः पुद्गलैः पुद्गला एव लिप्यंते । अहं निर्मलानंदचिद्रूपः न पुद्गलश्लेषी अतः शुद्धात्मा पुद्गलैर्न लिप्यते । वस्तुवृत्त्या पुद्गलात्मनोः तादात्म्यसंबंध एव नास्ति । संयोगसंबंधस्त्वौपाधिकः, चित्रांजनेन व्योम इव इति ध्यायन् न लिप्यते । यथा व्योम आकाशं चित्रः अंजनैः संलिप्यमानमपि न लिप्यते । तथा अहमपि अमूर्तात्मस्वभावः पुद्गलैः एकदेशावगाढैः न लिप्यते । यो हि आत्मस्वभाववेदी स्वकीयज्ञानादिशक्तिं आत्मनि व्यापारयन् अभिनवकर्मग्रहणेन लिप्यते यावती आत्मशक्तिः परानुपादिनी तावान् आस्रवः, स्वरूपानुभाविनी स्वशक्तिः संवरः इति रहस्यं । अत्र

देहादेवल जो वसै, देव अणाइ अणंत ।
सो परजाणहु जोईया, अन्न न तं तं नमंत ॥ १ ॥

आत्मज्ञानेनैव सिद्धिः सावपमपि पूर्णात्मज्ञानं तदर्थमेव विवदंति दर्शनांतरीयाः, प्राणायामयंति रेचकादिपवनं, अवलंबयंति मौनं, भ्रमंति गिरिवननिकुंजेषु, तथाप्यर्हत्प्रणीतागमश्रवणात् स्याद्वादस्वपरपरीक्षापरीक्षितस्वस्वभावोपयमंतरेण न कार्यसिद्धिः अतः भाक्षावसरे तदेवानंतगुणपर्यायात्मकमात्मज्ञानमात्मनात्मनि करणीयं । उक्तं च—

आत्माज्ञानभवं दुःख-मात्मज्ञानेन हन्यते ।
अभ्यस्यं तत्तथा तेन, येनात्मा ज्ञानमयो भवेत् ॥ १ ॥

यथा शोफस्य पुष्टत्वं, यथा वा वध्यमण्डनम् ।
तथा जानन् भवोन्माद-मात्मतृप्तो मुनिर्भवेत् ॥६॥

व्या०—यथा इति—यथा येन प्रकारेण शोफस्य पुष्टत्वं शरीरस्थौल्यं न पुष्टत्वे इष्टं, वाऽथवा यथा वध्यस्य मारणार्थं स्थापितस्य मंडनं कणवीरमालाद्यारोपणात्मकं एवंरूपं भवोन्मादं जानन् भवस्वरूपं एवंविधं जानन् मुनिः समस्तपरभावत्यागी आत्मनः आत्मस्वरूपे अनंतगुणात्मके तृप्तः तुष्टो भवेत् संसारस्वरूपममतानिष्फलं अभोग्यं तु तद् ज्ञात्वा मुनिः स्वरूपे मग्नो भवति ॥ ६ ॥

सुलभं वागनुच्चारं, मौनमेकेन्द्रियेष्वपि ।
पुद्गलेष्वप्रवृत्तिस्तु, योगानां मौनमुत्तमम् ॥७॥

व्या०—सुलभमिति—वागनुच्चारं वचनाद्यव्यापाररूपं मौनं सुलभं सुखाप्यं तत् एकेन्द्रियेष्वपि अस्ति । तन्मौनं मोक्षसाधकं नास्ति ।

तपःश्रुतादिना मत्तः, क्रियावानपि लिप्यते ।
भावनाज्ञानसम्पन्नो, निष्क्रियोऽपि न लिप्यते ॥५॥

व्या०—तप इति–क्रियावान् अपि जिनकल्पादितुल्यक्रियाभ्यासी अपि तपःश्रुतादिना मत्तः मानी अभिनवकर्मग्रहणैर्लिप्यते, न च स्या दयोत्कृष्टा क्रिया हितकारिणी । उक्तं चाचारांगे–" सेवनां कोहं च माणं च लोभं च एवं पासरस दंसणं उवरयसत्थस्स पलियंतकरस्स आयाणं संगडं, इति । तः "वंतो लोगस्स णसेमतिमं पडिक्कमज्जासितिबेमि । पुनः ः "परिजायलोगमंतं च बाले पुणणिहे कामसमणुन्ने असमिक्खे दुक्खाणमेवं अवट्टं अणुपरियट्टंति ।" अतः क्रियादिमत्तः आहाराधन्यातः उवलोकदुःखशोकवितिगिच्छामोहाभिधानपंचदशसंज्ञया धर्माभ्यासः 'प्रशस्तिर्न धर्मः' इत्याचारांगवृत्तौ । भावना अनुभेज्ञातद्ज्ञानमग्नः निष्क्रियः अपि तादृक्वीवनखीर्यावृत्तो न लिप्यते न बध्यते । उक्तं च सूत्रकृतांगे—

न कम्मणा कम्म खवंति बाला, अकम्मणा कम्म खवंति धीरा ।
मेहाविणो लोभमयावतीता, संतोसिणो नोपकरंति पावं ॥१॥
जहा कुंम्भो सअंगाइं, सए देहे समाहरे ।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेणं समाहरे ॥ २ ॥

इत्यनेन भावनाज्ञानं तत्त्वकल्पानुभवान्वित सम्यग्ज्ञानं, तेन युक्तः न लिप्यते सर्वः सत्क्रियाभ्यास शुद्धसिद्धात्मस्वरूपाविर्भावसाव्यनन्यज्ञानानुभवयुक्तस्य हिताय भवति ॥ ५ ॥

अलिप्तो निश्चयेनात्मा, लिप्तश्च व्यवहारतः ।
शुद्धत्यलिप्तया ज्ञानी, क्रियावान् लिप्तया दृशा ॥६॥

आकाशप्रदेशाः तावन्मात्रा वर्गणा समुदिता एकस्पर्द्धकं "स्पर्धते इवोत्तरोत्तरवृद्ध्या वर्गणा अत्रेति स्पर्द्धकं" पूर्वोक्तस्पर्द्धकगतचरमवर्गणायाः परतो जीवप्रदेशानैकेन वीर्याविभागेनाधिकाः प्राप्यंते नाऽपि द्वाभ्यां नाऽपि त्रिभिः नाऽपि संख्येयैः, किंत्वसंख्येयलोकाकाशप्रमाणैरभ्यधिकाः प्राप्यंते, ततस्तेषां समुदायो द्वितीयस्य स्पर्द्धकस्य प्रथमा वर्गणा ततः जीवप्रदेशानामेकेन वीर्याविभागेनाधिकानां समुदायो द्वितीया वर्गणा, द्वाभ्यां वीर्याविभागाभ्यां अधिकानां समुदायः तृतीया वर्गणा, एवं तावद्वाच्यं यावत् श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा वर्गणा भवंति, तासां च समुदायः द्वितीयं स्पर्द्धकं, ततः पुनरप्यसंख्येयलोकाकाशाःप्रदेशप्रमाणैः वीर्याविभागैरभ्यधिकाः प्राप्यंते, ततस्तेषां समुदायाः तृतीयस्य स्पर्द्धकस्य प्रथमा वर्गणा, ततः एकैकवीर्याविभागवृद्ध्या द्वितीयादयो वर्गणास्तावद्वाच्यं यावत् श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा भवंति, तासां च समुदायः तृतीयं स्पर्द्धकं, एवमसंख्येयानि स्पर्द्धकानि वाच्यानि. एवं पूर्वोक्तानि स्पर्द्धकानि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि जघन्यं योगस्थानं, एतच्च सूक्ष्मनिगोदस्य सर्वाल्पवीर्यस्य भवप्रथमसमये वर्त्तमानस्य प्राप्यते, ततः अस्य जीवस्याधिकतरवीर्यस्य येऽल्पतरवीर्या जीवप्रदेशाः तेषां समुदायः प्रथमा वर्गणा । ततः एकेन वीर्याविभागेन वृद्धानां समुदायो द्वितीया वर्गणा । द्वाभ्यां अधिकानां समुदायस्तृतीया वर्गणा । एवमेकैकवीर्याविभागवर्द्धमानानां यावत् श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा भवंति, तासां समुदायः प्रथमस्पर्द्धकं । ततः प्राक्तनयोगस्थानप्रदर्शितप्रकारेण द्वितीयादीनि स्पर्द्धकानि वाच्यानि, तानि च यावत् श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि भवंति, ततस्तेषां समुदायो द्वितीयं योगस्थानं ।



ग्रहरूपं स्वधर्मप्राग्भावकर्तृत्वभोक्तृत्वे व्यापारिताशेषवीर्यस्य कर्मविकरणापूर्वकरणकिट्टिकरणादिषु स्थापितवीर्यकरणस्य परभावाप्रवृत्तत्वेन–मौनं–योगचापल्यतावारणरूपं अनुत्तरं–सर्वोत्कृष्टं यस्य–क्रियागुणप्रकर्षप्रवर्त्तनावीर्यप्रवृत्तस्यापि चिन्मयी–स्वरूपज्ञानमयी आत्मानुभवैकत्वरूपा, तथा–प्रदीपस्य या क्रिया–उत्क्षेपणादिका या सर्वापि ज्योतिर्मयी–आत्मानुभवैकत्वरूपा, यथा दीपस्य या क्रिया उत्क्षेपणनिक्षेपणादिका या सा सर्वापि ज्योतिर्मयी ज्ञानप्रकाशयुक्ता, तथा यस्य वंदननमनादिगुणस्थानारोहरूपा क्रिया तत्त्वज्ञानप्रकाशिका तस्य अनन्यस्वभावस्य–न विद्यते अन्यः–परः स्वभावो यस्य स तस्य, परभावव्यापकचेतनाभिसंधिवीर्यरहितस्य साधोः मौनं अनुत्तरं, विपत्सुखभावानुरोधादेव तत्कारकात् विपत्संपूर्णता, तदुत्पत्तौ 'कुंभस्येव दशाऽऽत्मनः' इति न्यायात् ज्ञानिनः क्रिया ज्ञान्युपकारका ज्ञातव्या, ज्ञाननयस्यात्मनः तत्त्वैकत्वाध्यासिनः स्वरूपारोहका या क्रिया सा ज्ञानस्वरूपप्रकाशहेतुः आचरणानिमित्तमसत्क्रिया आचरणापगमाय सत्क्रिया निमित्तं भवति, तत्त्वमग्नस्य न कारणीभवति, अतः तत्त्वज्ञानस्वरूपैकत्वध्यानलीनानां मुनीनां तेषां एव नमश्चरणयोः ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं मौनाष्टकम् ॥ १३ ॥

अथ विद्याष्टकम् ॥ १४ ॥

अथेदम् मौनाष्टकं यथार्थविद्यातत्त्वोपयोगिबुद्धिवतो भवति, अतो विद्याष्टकमुपदिशति,–तत्र नामविद्या इति नाम जीवस्याभिधानं क्रियते सा नामविद्या, अक्षवराटककाष्टादि विद्या इति स्थाप्यते सा स्थापनाविद्या, द्रव्यविद्या लौकिका शिल्पादिरूपा, लोकोत्तरा द्विविधा–कुप्रावचनिका भारतरामायणोपनिषद्रूपा' लोको-

व्या०—स्वभाव इति—स्वभावः आत्मधर्मज्ञानदर्शनरमणात्मा-कात्मानन्दरूपाविच्छिन्नानिद्रन्द्वपारिणामिकलक्षणः तस्य ला-भात्। अन्यत्किमपि प्राप्तव्यं लब्धुं योग्यं न अवशिष्यते। अत्र सिद्धेऽस्ति अस्यानन्दस्वरूपलाभ एव लाभ इति आत्मैश्वर्य स्वरूप-साम्राज्यं तेन संयतः संयुक्तः मुनिः ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्या-ख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्यानरूपभावास्रवः साधुः निःस्पृहः सर्व-परद्रव्यपरभावविषयभोगमानादिषु स्पृहारहितः इच्छारहितो जायते भवति। तद्धनादितृष्णा स्वभावोपभोगमंतरेणोपशाम्यति॥१॥

संयोजितकरैः के के, प्रार्थ्यन्ते न स्पृहावहैः?।
अमात्रज्ञानपात्रस्य, निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥२॥

व्या०—संयोजित इति—स्पृहावहैः इच्छागर्भैः पुरुषैः के के जनाः परिग्रहभारभृता न प्रार्थ्यन्ते न याच्यंते? किंभूतैः? स्पृहावहैः संयोजितौ करौ येषां ते संयोजितकराः तैः, इत्यनेन विषयाशातो दुःखैः अनेकान्यदन्यपरिनम्रोद्यमैः भवितव्यं भवति। मात्रा मानं तेन रहितं अमात्रं च तत् ज्ञानं च तत् अमात्रज्ञानं तस्य पात्रं स्थानं तस्य साधोः निःस्पृहस्य स्पृहारहितस्य जगत् तृणं तृणमात्रं परभावेच्छारहितस्य निर्ग्रंथस्य जगत् तृणं निःसारं स्वात्म-स्वरूपं।
गाथा—

णिम्मंथागनिरतो, मुनिवरो भट्टरागमयमोहो।
जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तो तं चक्कवट्टीवि॥१॥
आवसहावविलासी, आयविसुद्धोवि जो निये धम्मे।
परसुक्खविरयविहासं, तुच्छं निस्सारमत्तंनि॥२॥

छिन्दन्ति ज्ञानदात्रेण, स्पृहाविषलतां बुधाः।
मुखशोषं च मूर्छां च, दैन्यं यच्छति यत्फलम्॥३॥

शुद्धात्मनि नित्यता शुचिना आत्मना इति ज्ञप्तिः विद्या–तत्त्वविवेकः । अत्र नित्यत्वं तु उत्पादव्ययध्रुवरूपेऽपि अर्पितानर्पितप्रकारेण द्रव्यार्थिककूटस्थनित्यता ज्ञेया, इयं विद्या परमार्थसाधनपटुः योगाचार्यैः योगः–ज्ञानश्रद्धानचरणात्मकमोक्षोपायः तस्य आचार्याः–तदाचरणकुशलाः तैः प्रकीर्तिता । अत्र भेदज्ञानं साधनं । उक्तं च अध्यात्मविंदौ " यावंतो व्यस्तबंधा अभूवन्, भेदज्ञानाभ्यास एवात्र मूलं, यावंतोऽव्यस्तबंधा भ्रमंति, भेदज्ञानाभाव एवात्र बीजं" ॥ १ ॥

यः पश्येन्नित्यमात्मानमनित्यं परसङ्गमम् ।
छलं लब्धुं न शक्नोति, तस्य मोहमलिम्लुचः ॥२॥

यः पश्येदिति–य आत्मार्थी आत्मानं 'नित्यं' सदा अचलितस्वरूपं 'पश्येत्' अवलोकयेत्, 'परसंगमं' शरीरादिकं 'अनित्यं' अध्रुवं पश्येत् तस्य–साधनोद्यतस्य मोहो–मौढ्यं मुग्धता–मिथ्यात्वादिभ्रांतिरूपा स एव मलिम्लुचः–तस्करः 'छलं' छिद्रं 'लब्धुं' 'न शक्नोति' न समर्थो भवति, इति अनेन यथार्थज्ञानवतः रागादयो न प्रवर्द्धंते, तस्यात्मा मोहाधीनो न भवति ॥ २ ॥

तरङ्गतरलां लक्ष्मी–मायुर्वायुवदस्थिरम् ।
अदभ्रधीरनुध्याये–दभ्रवद् भङ्गुरं वपुः ॥ ३ ॥

तरंगेति–'अदभ्रधीः' पुष्टबुद्धिः लक्ष्मीं तरंगवत्–जलधिकल्लोलवत् तरला–चपला तां तरंगतरलां अस्थिरां अनुध्यायेत्, 'आयुः' जीवितं याति तद् वायुवत् 'अस्थिरं' गत्वरं प्रतिसमयविनश्वरं अध्यवसानादिविघ्नोपयुक्तं 'अनुध्यायेत्' चिंतयेत् 'वपुः' शरीरं पुद्गलस्कंधनिचितं अभ्रवद्भङ्गुरं–भंगशील अनुध्यायेत्, इदं

तूलं तृणादपि लघु, तूलादपि हि याचकः ।
वायुना किं न नीतोऽसौ, ? मामपि प्रार्थयिष्यति ॥ १ ॥

तस्मादयं लघ्वोऽपि एते स्पृहादिना अपि भववारिधौ भव-समुद्रे मज्जंति । अन्यत्र लघुत्वं भवमज्जनहेतुरेव यद्यपि प्रार्थनादिजनस्पृहागः तथापि त्रिभुवनयजनस्वजनापिपासागरिष्ठा बुडंति इत्यर्थः ॥ ५ ॥

गौरवं पौरवन्द्यत्वात्, प्रकृष्टत्वं प्रतिष्ठया ।
ख्यातिं जातिगुणात् स्वस्य, प्रादुष्कुर्यान्न निःस्पृहः ॥६॥

व्या०—गौरवमिति—निःस्पृहः लौकिकस्पृहारहितः पौरवंद्यत्वात् नागरिकलोकवंद्यत्वात् गौरवं गुरुत्वं प्रतिष्ठया शोभया प्रकृष्टत्वं जातिगुणात् स्वस्य कुलसंपन्नादिख्यातिं न प्रादुष्कुर्यात् न प्रकटीकुर्यात् इत्यादि । निःस्पृहा महत्त्वं न स्थापयंति न विशदीकुर्वंति; निःस्पृहस्य न यशोमहत्त्वाभिलाषः ॥ ६ ॥

भूशय्या भैक्षमशनं, जीर्णं वासो गृहं वनम् ।
तथापि निःस्पृहस्याहो, चक्रिणोऽप्यधिकं सुखम् ॥७॥

व्या०—भूशय्या—इति भूः वसुंधरा एव शय्या पल्यंकः भैक्षं भिक्षया जातं भैक्षं अशनं भोजनं । उक्तं च—

अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिआ ।
मोक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥ १ ॥

तथा च वासो वस्त्रं जीर्णं, गृहं स्थानं वनं, तथापि अहो इति अद्भुते निस्पृहस्य साधोः सम्यग्दृष्टिकल्पस्यापि सुखं चारित्रिणः सकाशात् स्वं चक्रवर्तिनः सुखं अधिकं अस्ति इति चक्रवर्त्यादि-

अथ देहे आत्मत्वारोपोऽपि बहिरात्मदोषोपैव। अतः तन्निवार्य स्वरूपे आत्मनः पावित्र्यं करणीयं। तदुपदिशति—

यः स्नात्वा समताकुण्डे, हित्वा कश्मलजं मलम्।
पुनर्न याति मालिन्यं, सोऽन्तरात्मा परः शुचिः ॥५॥

यः स्नात्वेति—स अंतरात्मा देहात् भिन्नात्मज्ञानी स्वपरविवेकी 'परः' प्रकृष्टः 'शुचिः' पवित्रः ज्ञेयः पुरुषः, समता अरक्तद्विष्टता तद्रूपे कुंडे स्नात्वा 'कश्मलजं' पापोत्पन्नं मलं हित्वा पुनः मालिन्यं 'न याति' न प्राप्नोति सम्यक्त्वभावितात्मा परमः शुचिः 'बंधे ण वोलइ कयावि' इति वचनात्, सम्यग्दृष्टिर्नैनांशेन स्नातकः न पुनः उत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति, एतदेव सहजं पवित्रत्वम् ॥ ५ ॥

आत्मबोधो न वः पाशो, देहगेहधनादिषु।
यः क्षिप्तोऽप्यात्मना तेषु, स्वयं बन्धाय जायते ॥ ६ ॥

आत्मा इति—भो भव्याः ? वः युष्माकं आत्मबोधः आत्मज्ञानं न पाशः न बंधहेतुः केषु ? देहगृहधनादिषु य आत्मना क्षिप्तः स पाशः रागपरिणामः स्वस्य आत्मन एव बंधाय जायते इत्यनेन देहगृहादिषु यो रक्तः स सर्वभवपाशैः बध्नाति स्वस्य बंधहेतुः इत्यनेन परभावा रागादयः आत्मनो बंधवृद्धिहेतवः ॥६॥

मिथो युक्तपदार्थाना—मसंक्रमचमत्क्रिया।
चिन्मात्रपरिणामेन, विदुषैवानुभूयते ॥ ७ ॥

मिथो युक्त इति—परस्परं युक्तानां मिलितानां पदार्थानां-धर्मादिनामेकक्षेत्रावगाहिनां पुद्गलानां च स्वक्षेत्रपरिणतानां असंक्रमचम-

॥ अथ मौनाष्टकम् ॥

एते च गुणाः प्रोक्ताः मुनेर्निर्ग्रन्थस्य भवंति, अतो मुनिस्वरूपं निर्दिशति । सन्ति च लोके अनिर्ग्रन्था निर्ग्रन्थारोपमना आत्मोत्कर्षाभिमानतः तत्त्वविवेकविकलाः तेषामेवोपदेशाय निग्रन्थस्तत्त्वावबोधार्थं चाह । तत्र मन्यते त्रिकालविषयत्वेन आत्मानमिति मुनिः । तत्र नाममुनिः स्थापनामुनिः सुगमः द्रव्यमुनिः ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तभेदात् अनुपयुक्तो लिंगमात्रद्रव्यक्रियाप्रवर्तितात्मोपयोगशून्यस्य प्रवर्त्तनविकल्पादिषु कषायनिवृत्तस्य परिणतिचक्रे असंयमपरिणतस्य द्रव्यनिर्ग्रन्थत्वं भावमुनिः चारित्रमोहनीयक्षयोपशमज्ञानादिविशेषोपलम्भरूपगतपरभावनिवृत्तः परिणतिविकल्पनवृत्तिषु द्वादशकषायोदयमुक्तः नैगमसंग्रहव्यवहारनयैः द्रव्यक्रियाप्रवृत्तत्यागवत्त्वनिवृत्तस्य मुनित्वं. ऋजुसूत्रनयेन भावाभिलापसंकल्पोपगतस्य. शब्दसमभिरूढैवंभूतनयैः प्रमत्तात् क्षीणमोहं यावत् परिणतौ सामान्यविशेषचक्रे स्वतत्त्वैकत्वपरमरमणामृतगतस्य मुनित्वं अत्र सम्यग्दर्शनचारित्रभाववतो द्रव्यभावाश्रवविरमणरूपसंवरभाववतः ।

मन्यते यो जगत्तत्त्वं, स मुनिः परिकीर्तितः ।
सम्यक्त्वमेव तन्मौनं, मौनं सम्यक्त्वमेव च ॥१॥

व्या०—मन्यते इति—यः शमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्यलक्षणलक्षितो जगत् लोकं जीवाजीवलक्षणं मन्यते जानाति तत्त्वं यथार्थोपयोगेन द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकस्वभावगुणपर्यायैः निमित्तोपादानकारणकार्यभावोत्सर्गापवादपद्धतिः तां जानाति स मुनिः अवगृहीततत्त्वः परिकीर्तितः कथितः श्रीतीर्थंकरगणधरैः ।

संथरणम्मि असुद्धं, दोण्हवि गेण्हंतदिंतयाणहिअं ।
आउरदिट्ठंतेणं, तं चेव हिंयं अ संथरणे ॥ १ ॥

अन्ये त्वाहुः—कारणेऽपि गुणवत्पात्रायांभासुकादिदाने परिणामवशात् बहुतरा निर्जरा भवति अल्पतरं च पापं कर्म इति, निर्विशेषत्वात् सूत्रस्य परिणामस्य च प्रामाण्यात् । आह—

परमरहस्समिसीणं, समत्तगणिपिडगधरियसाराणं ।
परिणामिअं पमाणं, निच्छयमवलंबमाणाणं ॥ १ ॥

इमे पुनः—

"चरणकरणप्पहाणा, ससमयपरसमयमुक्कवावारा ।
चरणकरणस्स सारं, निच्छयसुद्धं न याणंति ॥ २ ॥

अहागडाइं भुंजंति, अण्णमण्णे सकम्मुणा । उवलित्ते वियाणिज्जा, अणुवलित्तेत्ति वा पुणो, ॥ १ ॥ एतेहिं दोहिं ठाणेहिं ववहारेण विज्जइ । एतेहिं दोहि ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ २ ॥ इति द्वितीयाः योगे २१ अध्ययने इत्यादि गीतार्थस्याकल्पं कल्पं, एषा लब्धिः तत्त्वज्ञानवतामेव ॥ ७ ॥

अविद्यातिमिरध्वंसे, दृशा विद्याञ्जनस्पृशा ।
पश्यन्ति परमात्मान–मात्मन्येव हि योगिनः ॥८॥

अविद्या इति–हि निश्चये 'योगिनः' समाधिदशावस्थाप्रवृत्तचक्रयोगिनः 'आत्मनि एव' स्वात्मनि एव 'परमात्मानं' उत्कृष्टनिष्पन्नसिद्धात्मानं 'पश्यंति' आत्मनि परमात्मत्वं निर्धारयंति, कया ? 'विद्यांजनस्पृशा दृशा, विद्या तत्त्वबुद्धिरूपा सा एव अंजनं तस्य स्पृशा दृशा–चक्षुषा, क सति ? अविद्या–अज्ञानं अबोधः अपयार्योपयोगो वा तदेव तिमिरं तस्य ध्वंसः तस्मिन्

क्षमाधर्मैः अत एव आत्मा जीवकर्त्तारूपः आत्मना आत्ममय-ज्ञानवीर्येण करणभूतेन आत्मानं अनंतास्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-सत्त्व-प्रमेयत्व-सिद्धत्वधर्मकदंबोपेतं स्यात्स्वात्मकं आत्मनि आधारभूते अस्तित्वाद्यनंतधर्मपर्यायपात्रभूते जानाति सा इयं जानातिरूपा प्रवृत्तिः सा एव रत्नत्रये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणे ज्ञप्तिः रुचिः आचारः भासननिर्द्धारणाचाररूपः एतेषां एकता अभेदपरिणतिः मुनेः अस्ति इत्यनेन आत्मना आत्मानं ज्ञात्वा तद्रुचिः तदाचरणं मुनेः स्वरूपं । भावना च मिथ्यात्वाज्ञानासंयमकत्वेन पौद्गलिकसुखं सुखत्वेन निर्धार्य ज्ञात्वा च तदाचरणप्रवृत्तस्या-नंतकाले तत्त्वानवबोधेन दावज्वरपरिगत इव मृत्तिकालेप इवाव-गुंठितः कर्मपुद्गलैः न बोधपलब्धः तत्त्वश्रद्धानज्ञानाम्...नुभवल-ब्धोऽपि तेनैव निसर्गाधिगमादिकारणेन अनादिनिधनोऽयं जीवोऽनं-तज्ञानादिपर्यायाविष्वामूर्त्तस्वभावोऽवगतः निर्द्धारितश्च साध्योऽहं, साधकोऽहं, सिद्धोऽहं, ज्ञानदर्शनाद्यनंतगुणमयोऽहं इति ज्ञप्तिरुचि आचरणरूपं मुनिस्वरूपं । उक्तं च—

आत्मानमात्मना वेत्ति, मोहत्यागाद् यदात्मनि ।
तदेव तस्य चारित्रं, तज् ज्ञानं तच्च दर्शनम् ॥ १ ॥

पुनः हरिभद्रसूरिभिः षोडशके—

बालः पश्यति लिंगं, मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ।
आगमतत्त्वं तु बुधः, परीक्षते सर्वयत्नेन ॥ २ ॥

अतः तत्त्वरत्नं चारित्र...॥

पुनस्तदेव द्रढयति

चारित्रमात्मचरणाद्, ज्ञानं वा ... न मुनेः ।
शुद्धज्ञाननये साध्यः, क्रियालाभ...ियानये ॥३॥

विवेकः शब्दादिनयनयेण विभावविभजनक्षयोपशमसाधनोपयोगा-
दिक्षायिकसाधकपरिणातिविवेकः इति यथाक्रममवगंतव्यं । तत्रा-
त्मनः कर्मसंयोगकृत्वं विवेचयन्नाह—

कर्म जीवं च संश्लिष्टं, सर्वदा क्षीरनीरवत् ।
विभिन्नीकुरुते योऽसौ, मुनिहंसो विवेकवान् ॥१॥

कर्म जीवं च इति–कर्म ज्ञानावरणादिकं जीवं च सच्चिदा-
नंदरूपं 'सर्वदा' सर्वकालं क्षीरं–पयः नीरं–जलं तद्वत् 'संश्लिष्टं'
एकीभूतं यः 'विभिन्नीकुरुते' लक्षणादिभेदैः पृथक् पृथक् कुरुते
असौ मुनिहंसः 'विवेकवान्' भेदज्ञानवान् जीवो नित्यः, पुद्गल-
संगा अनित्याः; जीवोऽमूर्त्तः, पुद्गला मूर्त्ताः; जीवोऽचलः, पुद्गलाः
चलाः; जीवो ज्ञानाद्यनंतचेतनालक्षणः, पुद्गला अचेतनाः; जीवः
स्वरूपकर्त्ता, स्वरूपभोक्ता, स्वरूपरमणाभावविश्रांतः, पुद्गलाः कर्तृ-
त्वादिभावरहिताः; इत्यादिलक्षणैः विभज्य यो विरक्तः स मुनि-
श्रेष्ठो विवेकवान् विवेकयुक्त इति शेषम् ॥ १ ॥

देहात्माद्यविवेकोऽयं, सर्वदा सुलभो भवे ।
भवकोट्यापि तद्भेद–विवेकस्त्वतिदुर्लभः ॥ २ ॥

देहात्मा इति–आत्मा त्रिविधः–बाह्यात्मा १ अन्तरात्मा २
परमात्मा ३ चेति, तत्र देहमनोवचनादिषु आत्मत्वभ्रमः, देह
एवात्मा एवं कायादिषु परभावेषु आत्मत्वेषु आत्मबुद्धिः
स बाह्यात्मा १ मिथ्यादृष्टिः, पुनः सम्यगदर्शनी
आत्मनि ज्ञानगुणोपयोगे गुणैकत्वध्याने महात्मत्वमेव
निर्विकल्पगुणानंदरसास्वादी समस्तपरभावमुक्तः आत्मबुद्धिः अंत-
रात्मा. स्वस्वरूपैकत्वध्यानः श्रेणिगतो यावत् अंतरात्मा उच्यते

तथा यतो न शुद्धात्म–स्वभावाचरणं भवेत् ।
फलं दोषनिवृत्तिर्वा. न तज् ज्ञानं न दर्शनम् ॥ ५ ॥

व्या०–तथा इति–तथा तेन प्रकारेण यत एकांतव्यवहारवादात् शुद्धात्मस्वभावाचरणं शुद्धः परभावरहितः योऽसौ आत्मस्वभावः स्वरूपलक्षणः तस्याचरणं तद्रक्तत्वं तन्मयत्वं न भवेत् तेन प्रवर्तनेन फलं शुद्धात्मस्वभावलाभरूपं न परमात्मपदनिष्पत्तिः न दोषाणां रागादीनां निवृत्तिः अभावः न वा अथवा तत्सर्वमपि प्रवर्तनं बाललीलावत्त्वं शुद्धात्मस्वरूपालंबनमंतरेण अवेद्यवेद्यरूपं ज्ञानं तत् ज्ञानं तथा सकलपरभावसंयोगविकारशुद्धात्मस्वसत्ताप्रयुक्तेनाविकारामूर्तचिन्मयानंदात्मीयपरमभाव एवाहमिति निर्विकल्पं तद्दर्शनं न तच्चर्य. अत एव श्रुतेन केवलज्ञानं तदंशज्ञानं उन्मत्तज्ञानं च श्रुताज्ञानवत्त्वेन [illegible] ते, तेन भेदज्ञानं सर्वास्मसंज्ञानं यावत् स्वपरभा- [illegible] ति । उक्तं च समयप्राभृते—

जो सुएणाभिगच्छइ, अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुअकेवलिमिसिणो, भणंति लोगप्पईवयरा ॥ १ ॥
जो सुअनाणं सव्वं, जाणइ सुअकेवलीं तमाहु जिणा ।
नाणं अप्पा सव्वं, जम्हा सुअकेवली तम्हा ॥ २ ॥

आत्मस्वरूपज्ञानं च प्राभृते ।

अहमिक्को खलु सुद्धो, निम्ममओ नाणदंसणसमग्गो ।
तम्मि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे एए खयं नेमि ॥ १ ॥
निर्मलनिष्कलंकज्ञानदर्शनोपयोगलक्षण आत्मा तज्ज्ञानं
नं । उक्तं च—

आत्मनः परभावकर्त्तृत्वाभावे परोपाधिजननशुद्धेऽपि व्योम्नि तिमिरात् रेखाभिर्मिश्रता, यथा विकारैः, अन्येन विकारेण विकृता कथमिति निवारयन् आह—

यथा योधैः कृतं युद्धं, स्वामिन्येवोपचर्यते ।
शुद्धात्मन्यविवेकेन, कर्मस्कन्धोर्जितं तथा ॥ ४ ॥

यथा योधैरिति—यथा 'योधैः' सुभटैः कृतं युद्धं समरम् इति नृपे उपचर्यते जयपराजयहर्षविषादशोकाशोकादिकं स्वामिनि एव 'अयं नृपः जितः अयं पराजितः' लोके इत्युक्तिर्भवति तत्र स्वामित्वांशे ममत्वैकत्वेन तथा संग्रहेण शुद्धे आत्मनि 'अविवेकेन' अज्ञानेन असंयमेन; कर्म ज्ञानावरणादि तस्य स्कंधः—समूहः तस्य ऊर्जितं—साम्राज्यं अस्ति इत्यनेन स्वस्वरूपकर्तृत्व—भोक्तृत्व—परावृत्तौ ग्राहकत्वादिशक्तिपरिग्रहणेन तदकर्तृत्वापत्तिर्जीवस्योपचर्यते—उपचारः क्रियते, असदारोप उपचारः परभावकर्तृत्वादिपारिणत्यभावेऽप्यौपाधिककर्तृत्वाद्युपचारोऽनादौ न इति ॥ ४ ॥

पुनस्तदेव कथयति; परमसत्त्वाघितत्पर्यामोहं दर्शयति—

इष्टकाद्यपि हि स्वर्णं, पीतोन्मत्तो यथेक्षते ।
आत्माभेदभ्रमस्तद्वद्—देहादावविवेकिनः ॥ ५ ॥

इष्टकाद्यपि इति—कश्चित् पीतोन्मत्तः पीतेन—कनकेन पीतः रसस्यायेनायं धत्तूरकेणोन्मत्तः—घूर्णितः 'इष्टकाद्यपि मृन्मयस्थानपि हीति निश्चितं स्वर्णं 'ईक्षते' विलोकते; तद्वत् 'अविवेकिनः, तत्त्वज्ञानविकलस्य 'देहादौ' शरीरादौ 'आत्माभेदभ्रमः' आत्मना—चेतनेन सह न भेदः—अभेदः तस्य भ्रमो भवति। स्वस्वगमाश्रयादज्ञानस्वपरविभेदः परं स्वात्मत्वेन जानन् आत्मानं परेणैकत्वं मन्यमानो भ्रमत्यनंतकालं, अतोऽपमविवेकस्त्याज्यः ॥ ५ ॥

पुद्गलेषु [illegible] [illegible]नादिषु येषां [illegible] वमनोवदनकायप्रयोगाणां च [illegible] यथा. [illegible] पदार्थं तत्सिद्धत्वं वीर्या[illegible] [illegible] रहितं मनः [illegible] भावना च [illegible] [illegible] उत्तमं उक्तं आद[illegible] [illegible] [illegible] मैन नतेव. श्रेयन। योगावृत्ता [illegible]। [illegible] साधोपसनानन्द [illegible] [illegible] स्थानं [illegible] [illegible] भवति। [illegible] [illegible] ठितत्वात [illegible] ते च [illegible] [illegible] तत्त्व[illegible] [illegible] एवा [illegible] [illegible]। [illegible] ते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्थानमेव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मार्गे यावत्

आत्मन्येवात्मनः कुर्यात्, यः षट्कारकसंगतिम्।
क्वाविवेकज्वरस्यास्य, वैषम्यं जडमज्जनात् ॥७॥

व्या०—आत्मन्येवात्मन इति—यः आत्मनः कर्तृकारक-विभक्तस्य आत्मनि एवं आत्मने एव आत्मनः सर्व-षट्कारकाणां कर्तृ-कर्म-करण-संप्रदानापादाना-धिकरणानां संगतिं एकत्वं कुर्यात्। अस्य पुरुषस्य [illegible] स एव तत्र अस्य वैषम्यं विषमता क्व कथं भवेत्? [illegible] हेतुमाह जडमज्जनात् 'अविकारात्' इति पदे [illegible] गम्य [illegible] तेन [illegible], अथवा जडमज्जनात् [illegible] महातापे[illegible] [illegible]। अत्र षट्कारकभावना श्रीजिनभद्र-[illegible] उच्यते—आत्मा कर्ता यथा च [illegible] कर्ता[illegible] [illegible]कर्तैव च। आत्मा कर्ता स्वगुण[illegible] [illegible]करणात्, ज्ञानादिअनंतगुणप्राप्तिः कार्यं, गुणाः कारणभूताः, गुणप-र्यायाणां उत्पादपर्यायाणां पात्रत्वात् संप्रदानं, पूर्वभूतपर्यायाणां [illegible]त्वात् अपादानं, तथानंतगुणपर्यायाणां आधारत्वात् आत्मा। आत्मनि आत्मा आत्मानं आत्मना आत्मने आत्मनः परिणमनरूपतां करोति। उक्तं च श्रीजिनभद्रपूज्यैः—

> कारणमहवा छद्धा, कत्ता सतंतोत्ति कारणं कत्ता।
> कज्जं पसाहगतमं, करणंति उ पिंडदंडाई ॥ १ ॥

व्याख्या—अथवा कारणं षोढा। तत्र स्वतंत्रः कर्ता यः स्वतंत्रः [illegible] कारणं स कर्ता यथा घटस्य कर्ता कुंभकारः, तथा आत्मनि व्याप्यव्यापकस्थितानामभेदरूपाणां गुणानां स्वस्वपरिणमन-कार्यव्यापारप्रवृत्तिरूपां क्रियां करोति तेनात्मा कर्ता १ कार्य प्रसाधकतमं कारणं करणं उपादाननिमित्तभेदात् द्विभेदं तत्र घटे

ततोऽन्यस्य जीवस्याधिकतरवीर्यस्योपदर्शनप्रकारेण तृतीयं योगस्थानं वाच्यं । एवमन्योऽन्यजीवापेक्षया तावत् योगस्थानानि वाच्यानि यावत्सर्वोत्कृष्टं योगस्थानं भवति । तानि च योगस्थानानि सर्वाण्यपि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि भवंति । श्रेणीस्वरूपं विस्तारात्सर्वमवसेयं । ननु जीवानामनंतत्वात् प्रतिजीवं च योगस्थानस्य प्राप्यमाणत्वात् अनंतानि योगस्थानानि प्राप्नुवंति; कथमुच्यते असंख्येयानि ? । उच्यते—यतः एकैकस्मिन् योगस्थाने सदृशे सदृशे वर्तमानाः स्थावरजीवा अनंताः प्राप्यंते, ततः सर्वजीवापेक्षयापि सर्वाणि योगस्थानानि केवलपरिज्ञया परिभाव्यमानानि असंख्येयान्येव प्राप्यन्ते नाधिकानि, एकस्मिन् योगस्थाने एको जीवः जघन्यतः एकं समयं उत्कृष्टतः अष्टौ समयान् यावत्तिष्ठति । एवं योगस्थानतारतम्ये सर्वजीवेषु बाहुल्यं गाथात्रयेण वक्तव्यं—

सुहुमनिगोआइखणप्पजोग बायर विगलअमणमणा ।
अपज्जलहू पढमदुगुरु, पजहस्सियरो असंखगुणो ॥
असमत्ततसुक्कोसो, पजजहन्नियर एव ठिइठाणा ॥ इत्यष्टाविंशतिभेदाल्पबहुत्वं अवगंतव्यं । योगबाहुल्ये कर्मग्राही, मंदत्वे अल्पपुद्गलग्राही इत्येवं या योगानां पुद्गलग्रहणरूपा प्रवृत्तिः तस्या रोधः मौनं उत्तमं, किं स्तृणस्य बाह्ययोगरोधेन ? । तस्मात् सकलविमलज्ञानाद्यनंतगुणमहामाहात्म्यपरमात्मभावरसिकैः आत्मनो योगप्रवृत्तिचंचलतागमनयो रोधनीया इत्युपदेशः ॥ ७ ॥

ज्योतिर्मयीव दीपस्य, क्रिया सर्वापि चिन्मयी ।
यस्यानन्यस्वभावस्य, तस्य मौनमनुत्तरम् ॥ ८ ॥

व्या० ज्योतिर्मयीवेति—तस्य—नर वक्तव्यपरिणतस्य मौनं योगनि-

कुंभस्य चिकीर्षतो मृन्मयकुंभः तद् बुद्ध्यावलंबनतया कारणं भवत्येव न च वक्तव्यमखिन्नत्वादसत्तन्नासौ तद्बुद्धेरपि कथमा-लंबनं स्याद् द्रव्यरूपतया तस्य सर्वदा सत्त्वादिति । ननु य एवेह मृन्मयकार्यरूपो घटः तस्यैव कारणं चिंत्यते इति प्रस्तुतं बुद्ध्य-वसितस्तु तस्मादन्य एवेति तत्कारणाभिधानमप्रस्तुतमेव । सत्यं भाविनि भूतवदुपचारन्यायेन तयोरेकत्वाध्यवसानाददोषः स्थास-कोशादिकारणकालेऽपि हि किं करोषीति पृष्टः कुंभकारः कुंभं करोमीत्येवं वदति बुद्ध्यवसितेन निष्पन्नस्यैकत्वाध्यवसायादिति। अथवा—भव्यो योग्यः स्वरूपलाभस्येति शक्य उत्पादयितुमतः सुकरत्वात्कार्यमप्यात्मनः कारणमिष्यते; अवश्यं च कर्मणः कार-णत्वमिष्टव्यं यतः तस्मात् समस्तकारणसंनिधानेऽपि नैव कोशा-र्थमारंभः किंतु विवक्षितः कार्यार्थमतस्तदविनाभावित्वात् तत्क्रि-यायाः कार्यमप्यात्मनः कारणमिति । एतदेव भावयति बाह्यानि कुलालचक्रचीवरादीनि यानि निमित्तानि तदपेक्षक्रियमाणकालेऽ संगबुद्ध्यालोचितं कार्यं भवति, स्वस्यात्मनः कारणं स्वकारणं नान्यथा, यदि बुद्ध्या पूर्वसंपर्यालोचितमेव कुर्यात् तदा प्रेक्षा-पूर्व ह्यपमनस्कारभावपर्यायो भवेत् घटकारणसंनिधावप्यन्यत् किमपि शरावादि कार्यं भवेदभावो वा भवेन्न किंचित्कार्यं भवे-दित्यर्थः। तस्माद् बुद्ध्यवसितं कार्यमप्यात्मनः कारणमेवेष्टव्यं । किं बहुना ! यत्र यत्र यथा यथा युक्तितो घटते तथा तथा सुधिया कर्मणः करणत्वं वाच्यं; अन्यथा कर्मणः कारकत्वे करोतीति कारकमिति यथार्थं कारकत्वानुपपत्तिरेव स्यादिति ।

देवेंं स जम्म तं संपयाणमिष्पत्ति कारणं जस्स ।
होई तदत्थिना नु कीरए तं विणा जं सो ॥ १ ॥

स अत्थिनयपदाणो यस्य देयः स तं प्रति संप्रदानं, तदर्थि

तत्र शुभाश्रवनिका विद्या आवश्यक[illegible]. नो
ज्ञशरीरभव्यशरीरस्य [illegible] अनुपयुक्त[illegible] विद्या
अथवाऽनुपयुक्तस्य हेयोपादेय[illegible]विकल्पस्य [illegible]
वर्तनायर्मकथाल्पा. अनेकभाविक[illegible] चेतनावि[illegible]रूपा
ज्ञेया, भावविद्या तु लोकान्[illegible]नागम[illegible] नित्या-
नित्यानंतपर्यायेनविद्योपादेयत्वाद्वि विभावाश्रव[illegible]भावपरि-
त्यागप्रजनितलक्षणा. भावविद्या[illegible] . तत्र मत्यादिज्ञानक्ष-
योपशमनिमित्ता इंद्रियादय [illegible] विद्या. सर्वज्ञ[illegible]
हेण, इत्यर्थं व्यवहारेण. [illegible]
यथार्थोपयोग . कारणकार्यादिभेद[illegible]
निर्भी साधनावस्था एवमनेन. [illegible]
तथा–केचित् केवलज्ञानं पसिद्धविद्या इति [illegible]
द्रव्यनिक्षेपानंतत्त्वेन कारणरूपा गृहीता [illegible] भाव-
रूपत्वेन कार्यरूपा [illegible] तत्र कारणोद्भवेन
कार्याऽऽश्रवना भावनाय ।

नित्यशुच्यात्मताख्याति–रनित्याशुच्यनात्मसु ।
अविद्यातत्त्वधीर्विद्या. योगाचार्यैः प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

नित्यशुच्येति–अनित्याशुच्यनात्मसु नि[illegible]
अविद्या इत्यन्वय. [illegible]
[illegible] पत्सोगे या नित्यता[illegible]
शरीरादिषु [illegible]
अनात्मसु पुद्गलादिषु [illegible]
'इदं शरीरं मम अहमेवं [illegible]
[illegible] ज्ञान तत्र रमणं इव [illegible] तत्त्वबुद्धि,

रिणानिकर्तृत्वरूपात्मशक्तिपरिणामः स च सदैव निरावरणोऽपि बंधकार्यकर्तृत्वेन कर्मरूपस्य कर्ता एव सम्यग्ज्ञानोपयोगगृहीतस्वरूपलाभाभिलाषी स्वगुणप्राग्भावस्वरूपस्वसाधनकार्यकर्ता स एव निष्पन्नः पूर्णानंदसिद्धत्वे स्वरूपगुणपरिणमनज्ञापकत्वादिशुद्धकार्यकर्ता इति ज्ञेयं ॥ ७ ॥

संयमास्त्रं विवेकेन, शाणेनोत्तेजितं मुनेः ।
धृतिधारोल्बणं कर्म, शत्रुच्छेदक्षमं भवेत् ॥ ८ ॥

संयमास्त्रं इति संयमः परभावनिवृत्तिरूपः तदेव अस्त्रं विवेकेन स्वपरविवेचनेन शाणेन 'शराणे' इति भाषा उत्तेजितं उत्कृष्टतेजस्विनां नीतं । धृतिः संतोषः तद्रूपा धारा तया उल्बणं तीक्ष्णं संयमास्त्रं ज्ञानावरणादि तदेव शत्रुः तस्य छेदः तस्मिन् क्षमं समर्थं भवति. इत्यनेन अनादिमिथ्यात्वासंयमाज्ञानाधिष्टः विशिष्टोत्कृष्टरूपस्वधर्मभ्रांत्या परभावैकत्वोत्पन्नविपर्यासकर्तृत्वभोक्तृत्वग्राहकत्वाद्यशुद्धपरिणत्या संगृहीतकर्मोपाधिः तद्विपाकशुभाशुभसंयोगभोगेन रागद्वेषपरिणतः संसारे संसरति जीवः स एव त्रिलोकीतलाहदुक्तपरमागमसंयोगतीनतत्त्वरहस्यः स्वपरविवेकेन परभावविभावाभ्यां निवृत्तः शुद्धात्मीयस्वभावरुचिः सर्वास्रवनिवृत्तः परमात्मभावको भवति । अत एव स्वपरभेदज्ञानरूपविवेकाभ्यासः कर्तव्यः ॥ ८ ॥

इति व्याख्यायां विवेकाष्टकं पंचदशमम् ।

अथ माध्यस्थ्याष्टकम् ॥ १६ ॥

अथ विवेकी रागद्वेषाभावपरो भवति, शुभाशुभसंयोगे मध्यस्थो भवति अतो माध्यस्थ्यं निरूपयति । अत भावना—धर्म-

च यथाविहितं भावना च. स्वानंदैकरसेन पूर्णीकृतसकल[illegible] [illegible] [illegible] न च ते [illegible], तेन जीव ज्ञानदर्श-[illegible] [illegible] [illegible] । अद्वैतेन तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible]. [illegible] [illegible], इत्येवं अविद्यमाने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] च [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करोति ? । [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३ ॥

शुचीन्यप्यशुचीकर्तुं समर्थेऽशुचिसंभवे ।
देहे जलादिना शौच—भ्रमो मूढस्य दारुणः ॥ ४ ॥

शुचीन्यपीति—[illegible] [illegible] पदार्थान्[illegible] देहे-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शौचम्. [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] न हि [illegible] [illegible] करोति ? कस्मिन् देहे ?—शुचीन्यपि—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] कस्मिन् देहे ? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तेन [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] । उक्तं च [illegible]—

शुक्रं पित्रो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] जीवो [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] च [illegible] च ।
देहस्मिन् [illegible] [illegible] च [illegible] ॥ २ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ४ ॥

द्वेषाभावेन अंतरात्मना साधकात्मना साधकत्वे अनुपालंभं स्था-पनां मध्यस्थस्य स्वभावोपयोगरूपोपालंभः ॥ १ ॥

मनो वत्सो युक्तिगवीं, मध्यस्थस्यानुधावति ।
तामाकर्षति पुच्छेन, तुच्छाग्रहमनः कपिः ॥ २ ॥

व्या०—मनो वत्स इति–मध्यस्थस्य मनो वत्सः चित्तनिसर्पः, युक्तिगवीं यथार्थवस्तुस्वरूपविभजनोपपत्तिः युक्तिः सा एव गौः तां युक्तिगवीं; अनुधावति अनुगच्छति पक्षपाताभावात् यथार्थोपयोगता एव भवति। तां सम्यग्ज्ञानतां गावं तुच्छा-ग्रहमनः कपिः तुच्छः स्याद्वादोत्सर्गापवादानयनतोपयोगशून्यः मनसः ग्रहः कदाग्रहः तन्मयं मनो यस्य स कपिः वानरः पुच्छेन आकर्षति गतिस्खलनाय भवति; न तादृग् यथार्थयुक्तिः प्रसरति कदाग्रहमनसां पक्षदृष्टिरेव न तत्त्वदृष्टिरिति ॥ २ ॥

नयेषु स्वार्थसत्येषु, मोघेषु परचालने ।
समशीलं मनो यस्य, स मध्यस्थो महामुनिः ॥३॥

व्या०—नयेषु इति–स महामुनिः मध्यस्थ उच्यते, यस्य नयेषु समशीलं नयांतरोक्तवस्तुधर्मेषु तत्प्रवर्तनेषु मनः सम-भावलक्षणं स्वपक्षपातरहितं, कथंभूतेषु नयेषु स्वार्थसत्येषु, स्वस्य अर्थः स्वार्थः, तस्मिन् सत्येषु स्वाभिमतस्थापनकुशलेषु, परचा-लने परस्थापने मोघेषु निष्फलेषु, परपक्षस्थापनासत्येषु स्वमतस्थापने धीरेषु यः शमः इष्टानिष्टतारहितोपयोगः यथार्थ-विभजनशीलः स मुनिः म[illegible]ः । नयस्वरूपं गीयते–अने-कधर्मभिन्नदर्शनोपेतस्य वस्तुनः [illegible] धर्मोन्नयनमवधारणात्मकं वस्तुनः एकांशपरिच्छेदकं ज्ञानं नयव्यपदेशमास्कंदति । नयस्य

अनेकविधः, नामनिक्षेपतो द्रव्यनिक्षेपवृत्तिः अंशोपलंभे सर्वारोपः, अन्यसमस्तसापेक्षः नैगमः सुनयः । अभेदेन वस्तुसामान्येन संग्रहणात् सर्वस्य संगृह्णातीति संग्रहः, वस्तुसत्ताग्राहकः संग्रहः, यदि भावनाभिः संबद्धरयैव भावत्वमभ्युपगम्यते ततः परिसमापिता(त)स्वरूपित्वात् भावस्य भ्रांतिसमुपपत्तिर्वचनघटादिविकल्पमानर्थक्यं, यदि घटादिविकल्पोऽपि भवनप्रवृत्तिः तत्रमेवेत्येवं सति भाव एव तदनर्थांतरत्वात् तत्स्वात्मवत् एतद्दर्शनपुरःसरा एवं च सर्वनित्यैकत्वाकारणमात्रवादाः कालपुरुषस्वभावादयश्चेति । अत्र द्रव्यास्तिकभेदा जीवाजीवयोग्यत्व–स्वद्रव्य उपचारद्रव्य–एकत्वाभेदागोचरभेदादनेकभेदः भावनिश्चयसामान्याभेदसंगृहीतानां विधिपूर्वकावस्थादिभेदेन विभजनभेदकरणलक्षणं तद्धर्मप्रवृत्तिभिन्नज्ञानरूपो व्यवहारः, यदि घटादिभेदश्रुत्या स्वसामान्यानुबद्धस्य निरस्तसामान्यांतरसंबंधस्य श्रूयमाणत्वाद्गुणमेव ग्रहणं न स्यात् किंतु सर्वव्यपदेशविशेषाभिव्यंगाभाव एव तेन तेन रूपेणाभिव्यज्यते । ततो घटादन्यतरभेदश्रुतौ सर्वरूपाभावप्रतीतिप्रसंगः, ततश्च घटपटकादिरूपव्यतिकरभावप्रसंगः, उपदेशक्रियोपभोगापवर्गव्यवस्थादीनां चाभावात्सर्वसंव्यवहारोच्छेदः, सर्वविशेषाव्याकरणे च तिर्त्ति (?) बंधनभवनाभावात् भावाभाव एव अविशेषत्वाभेदत्वानिरूप्यत्वादितश्च नैवासौ भावः खरविषाणादिवत् तस्माद् व्यवहारोऽपतितसामान्यो निर्वचनं तु यदा द्रव्यं पृथिवी घटादि व्यपदिश्यते; तदेव तत्तदा त्रैलोक्याविभिन्नरूपं सततमवस्थितापरित्यक्तात्मसामान्यं महासामान्यप्रतिक्षेपेण संव्यवहारमार्गमास्कंदतीति । एवंविधवस्तूपनिबंधनेनैव च वर्णाश्रमप्रतिनियमपमगम्यागम्यभक्ताद्विव्यवस्था कुंभकारादेश्च मृदानयनतावमर्दनशिवकस्थासकादिकरणं प्रवृत्तौ चेतनका-

इत्यनेन मिथ्यात्वतिमिरध्वंसे जाते सम्यग्दृष्टिः आत्मानं आत्मनि
पश्यति. अत एव अनेकोपयोगेन श्रुताभ्यासेन आत्मस्वरूपोप-
लंभाय तत्त्वपरीक्षणाय यतितव्यं, यथार्थ आत्मस्वरूपपरिज्ञानं
विद्या परमोपकारिणी इति ज्ञेयं ॥ ८ ॥

इति चतुर्दशं विद्याष्टकम् ॥ १४ ॥

अथ विवेकाष्टकम् ॥ १५ ॥

सा च तत्त्वविद्या विवेकेन—स्वपरविभजनेन स्फुटीभवति,
अतो विवेकस्याष्टकं कर्तव्यं, तत्र विवेचनं हेयोपादेयपरीक्षणं
विवेकः, तत्रात्मानात्मविवेको दुर्गमः, द्रव्यविवेक लौकिक. धनो-
पार्जनगमनादिवर्तनादिदक्षस्य भवति. लोकोत्तरस्तु धर्मानि-
दक्षस्य भवति, भावतो विवेक बाह्य स्वजनधनतनुपरिभ-
जनरूपः आत्मनश्च ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपुद्गलेनतोपात्तविभा-
वितादिभावकर्मस्वत्वविभजनरूपः. तत्स्वरूपश्चाय आगमे—
" एवि रागाइया विभावा सव्वओ विभजित्ता पच्छा इमा
कम्मा सव्वविभिन्नो नियो अप्पा ॥ १ ॥ " तथा च प्राज्ञे—
' तन्नन्तरायमनत्वहर्षितं न पयतको गृह्णाति एव
सम्यग्दृष्टिः सर्वविभावस्वभावरहितमध्यय आत्मानमधन्मन्त-
इमत्वं ज्ञानानन्दमय स्वत्वेन विभज्य उपादत्ते । मोहरि-
अन्तरंग प्रथम क्रुद्धादिदोषोपशम भावानतमानपृष्ठ तत्त्वजि-
ज्ञास, तत्त्वज्ञत्वमतवन अन्तरङ्गत्वेन धृतास्ति. यथार्थज्ञ-
पार्थोविवेचनेन. सर्वस्वभावविभावाभावत्वस्य तज्ज्ञानी भवति.
त च क्रमेणात्मना पर लक्षण तत्परभावत्यागा सिद्ध्यन्ति, तथा-
ज्ञानयनतेद लौकिकलोकोत्तरविवेक । अन्तरङ्गनयेन धर्मसाधन-

वस्तुनेतरत् नहि पुरुषः स्थाणुर्यदाख्यातवचनार्थहानिः
भेदार्थं हि वचनं, अतः स्वाति–तारा–नक्षत्रमिति लिंगतः
कदंब-वनमिति वचनतः स पचति, त्वं पचसि, अहं पचामि,
पचामः इति पुरुषतः एवमादि सर्वं परस्परविशेषं व्याव
स्तुपरस्परव्याघातत्वे एवमादि अवस्तु प्रतिपत्तव्यं । यथा
ज्वलनः तथा विरुद्धविशेषणत्वात् तटः, तटी, तटमित्यवस्त
नीलमिति तथा तथा यद्वस्तु तद्विरुद्धविरुद्धविशेषमभ्युपयं
यथा घटः कुंभः तथा चोच्यते यत्रार्थो न व्यभिचरति
धानं तदेवमयं समानलिंगसंख्यापुरुषवचनं शब्दः एत
नुगृहीतं चोच्यते अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्द एव निबंधनं
तत्त्वार्थे शब्दनयस्त्रिभेदः सांप्रतसमभिरूढैवंभूतभेदात्,
वर्तमानं भावाख्यमेव च स्वाश्रयत इति वर्तमानक्षण
वस्तुविषयोऽध्यवसायः तद्भवः सांप्रतः, स्वार्थे को वा
तिकः । अनुयोगद्वारादिषु भिन्नाख्यानेन भिन्नैव व्याख्
यां यां संज्ञां अभिधत्ते तां तां समभिरोहतीति
भिरूढः, सोऽभिदधाति यदि लिंगमात्रभिन्नवस्तु विसंवादि
नीलत्वादिवत् एवं सति मूलत एवं भिन्नशब्दं कथं वस्तु स्य
शब्देन हि अर्थनिरुक्तिः क्रियते एतस्मान्निरुक्तादेष इति
तद्भेदस्तदभिन्नमेव यथा तु पूर्वनयेनैकं कृत्वोच्यते. इंद्रशब्
तथा तदवस्तुवटज्वलनादिनिमित्तत्वात् अनयोरेकत्वेन अवस
एवं घटकुटयोरपि चेष्टाकौटिल्यनिमित्तभेदात्पृथक्त्वं तथा भव
मस्यापात्तनिमित्तभेदात् भिन्नौ शक्रेंद्रशब्दौ एकार्थिनौ न भ
विविक्तनिमित्तावयवत्वात्, गवाश्वशब्दवत्, प्रतीतिश्च लोके
निरूढत्वात् इंद्रशब्दस्य पुरंदरादयः पर्यायाः, इत्येतदनुत्पन्नं
हि सामान्यविशेषयोरपि पर्यायशब्दत्वं स्यादेव; यतः प्लक्ष इत्यु

२, यः केवलज्ञानदर्शनोपयुक्तः शुद्धसिद्धः स परमात्मा सयोगी केवली सिद्धश्च स परमात्मा उच्यते । सर्वत्र परमात्मत्वसत्ता समाना, अतो भेदज्ञानेन सर्वं साध्यं इति । देहात्मा देहः–शरीरं आत्मा–जीवः आदिशब्दात् मनोवाक्कायादिषु आत्मा अयं इत्यविवेकः 'सर्वदा' सर्वकाले 'सुलभः' सुप्रापः 'भवे' संसारे, तद्विदविवेकः–तस्य शरीरात्मना भेदविवेकः–भिन्नताविवेचनरूपः भवकोट्यापि 'अतिदुर्लभः' दुष्प्रापः अनादिकालैकत्वगृहीतपरमात्मना स्वस्वलक्षणभेदेन भेदज्ञानं–अतिदुर्लभः, सम्यग्दृष्टिरेव भेदज्ञानं करोति, आत्मना तन्निश्चयः दुर्लभः । उक्तं च समयप्राभृते—

> सुदपरिचिदाणुभूदा, सव्वस्सवि कामभोगबंधकहा ।
> एयत्तस्सुवलंभो णवरिण सुलहो विभत्तस्स ॥ १ ॥

आत्मा ज्ञानानंदमयः, परभावा रागादयः; तेषां विभजनरूपः आत्मस्वरूपास्तित्वोपयोगः दुर्लभः ॥ २ ॥

शुद्धेऽपि व्योम्नि तिमिराद्, रेखाभिर्मिश्रता यथा।
विकारैर्मिश्रता भाति, तथात्मन्यविवेकतः ॥ ३ ॥

शुद्धे इति–'यथा' येन प्रकारेण शुद्धे 'व्योम्नि' आकाशे 'तिमिरात्' चक्षुषि भ्रमकारकतिमिररोगात् रेखाभिर्नीलपीतादिभिः मिश्रता शबलता कर्बुरता दृश्यते: तथा तेनैव प्रकारेण अविवेकतः अनुपयोगतः विकारैः रागादशुद्धात्मपरभावैः 'मिश्रता' एकता 'भाति' शोभते इति, अनादिविकारविक्रियापरिणता दृश्यते इत्यनेन निश्चयनयेन निर्विकारसंदर्शिन्दृष्टिः तथापि एकत्वेन विकारमिश्रितो भासते इति ॥ ३ ॥

स्वभावं यतः सत्तातो न व्यतिरिच्यते विशेषः व्यवह
भिधित्सयाह—लौकिका विशेषाः तैरेव घटादिभिर्व्यवहर
उपचारप्राय इति "उपचारो नामान्यत्र सिद्धस्यार्थस्या
दयः" । यथा—कुंडिका स्रवति, पंथा गच्छति, उदके
स्रवति सति इत्युच्यते । पुरुषे च गच्छति पंथा गच
मुपचारबहुल इत्यर्थः । विस्तृतिविस्तीर्णानेकार्थो यो
विस्तृतार्थः अध्यवसायविशेषो व्यवहार इति निगद्यते
सूत्रलक्षणं व्याचिख्यासया आह—सतां विद्यमानानां
पुष्पादीनामसतां तेषामपि सतां वर्त्तमानानां अर्थानां
शब्दः परिज्ञानं अवबोधो विज्ञानं यावत्संभवति ऋजुसू
दुक्तं भवति—तानेव व्यवहारनयाभिमतान् विशेषानाश्रय
मातान् वर्त्तमानान् क्षणवर्त्तिनोऽभ्युपगच्छन् निधानमपि
नमेवाभ्युपैति, नातीतानागते तेन अनभिधीयमानत्वात
चिदर्थस्य तथा परिज्ञानमपिवर्त्तमानमेवाश्रयति न
गामि वा, तत्स्वभावानवधारणात्, अतो वस्त्वभिध
ज्ञानं चात्मीयं वर्त्तमानमेवेतीत्थं अध्यवसाय ऋजुसू
यथार्थाभिधानं । शब्दनयः यथेति येन कारणेन भावरूपे
स्थापना द्रव्यवियुते नार्थो घटादि यथार्थः तस्याभिधा
यथार्थाभिधानं तदाश्रयी योऽध्यवसायः शब्दनयः, तथा
वर्त्तमानमात्मीयं विद्यमानं भाववदेवाश्रयति नेतरा इति
अभिधेये यः प्रत्ययो विज्ञानं स सांप्रतो नयः, एतदुक्तं
नाम... प्रतिविशिष्टवर्त्तमानपर्यायापन्नेष्वपि प्रसिद्धो वाचक
यः शब्दः तस्मात् शब्दात् भावाभिधायिनः तद्वाच्येऽर्थे
रूपे प्रवृत्तोऽध्यवसायः सांप्रतादन्यानायति, यतो भा
[illegible] भवति, [illegible] ।

पुनः शुद्धतादेतुत्वोपदेशं कथयति ।

इच्छन् न परमान् भावान्, विवेकाद्रेः पतत्यधः ।
परमं भावमन्विष्यन्, अविवेके न मज्जति ॥ ६ ॥

इच्छन्न परमानिति—परमान् भावान् परमभावग्राहकनयेन संमतशुद्धचैतन्यानुगमसर्वधर्मपरिणमनेन 'परमान्' उत्सर्गशुद्धनयोपदिशन् नित्यानित्याद्यनंतान् 'न इच्छन्' न वाञ्छन् 'विवेकाद्रेः' तत्त्वज्ञानतत्त्वरमणगिरेः शृंगात् अधः पतति विवेकरहितो भवति, 'परमं' शुद्धं तादात्म्यतागतं सर्वविशुद्धात्मस्वभावं स्याद्वादोपयोगेन 'अन्विष्यन्' गवेषयन् शुद्धचैतन्यमुपादेयतया स्वतंत्र 'अविवेके' अज्ञाने असंयमे 'न मज्जति' न मग्नो भवति । अध्यात्मस्वरूपैकत्वानुभवकरणाभवतः परभावरमणचक्रवर्ती एव इति समस्तपरभावोन्मादमंथनपटुशुद्धात्मज्ञानरमणानुभवने यतितव्यं, नार्वाचीनपरिणतौ, अत एवापूर्वकरणप्रविष्टमुनिरनेकर्द्धिलाभे न संगतिसंगति । अपवर्गं च सर्वामितगुणभागी भवत्येव ।

संमदरसजोवविरई, अणंतसंजोयदंसखवगे य ।
मोहसमसंतखवगे खीणसयोगीयर गुणसेढी ॥ १ ॥

एवं एकादशगुणश्रेणिषु प्रथमगुणश्रेणौ करणत्रयं, शेषासु द्विसंख्यासु अपूर्वकरणानिवृत्तिरूपं करणद्वयं करोत्येव एव अपूर्वकरणारोहणेन कर्मस्थितिविगमो भवति । उक्तं च—

सानर्द्धिलोध्वगृहः, प्राप्यर्द्धिविमानमनन्तमानन्दैः ।
स्वतः सदामार्गनिमुरैः, न भजति नश्वरा मुनि मगम् ॥ १ ॥
या सर्वसुरसर्द्धिविस्मयनीयानगारर्द्धिनाथपति ।
सहसमानं कोटिशतसहस्रगुणितादि ॥ २ ॥ ॥ ६ ॥

वस्त्वेवानेकधर्मात्मकानेकाकृतिना ज्ञानेन निरूप्यते, एकवस्तुविषया ज्ञानविशेषाः ते चोदाहरंति । घट इत्युक्ते नैगमः, लोकप्रसिद्धकुंभकारचेष्टानिर्वृत्तः पृथुबुध्नादराकारः जलघृतक्षीरादीनां आहरणेन देशांतरसंचरणेन समर्थः पाकजादिक्रियानिष्पन्नः द्रव्यविशेषः कनकोपलजादिसमग्रसामान्यविशेषव्यक्तिभेदग्राहकः संकल्पयोग्यतत्सत्त्वादिदेशग्राहकविज्ञानविशेषेण घटः । एवं जीवोऽपि लोकप्रसिद्धचेतनायोगव्यापारचेष्टानिर्वृत्तः शरीराकारासंख्येयप्रदेशानेकसंस्थानरूपः आहारविहारक्रियासमर्थः नरनारकामरादिरूपः सन् ज्ञशरीराद्यपर्याप्तादिसमग्रतः पर्यायादिद्रव्यविशेषो जीवः । संग्रह एकस्मिन् घटे बहुषु वा घटेषु नामस्थापनाद्रव्यलक्षणेषु अतीतानागतवर्त्तमानेषु पर्यायेषु सामान्यजीवसत्ताग्राहकज्ञानविशेषः सूक्ष्मनिगोदात् सिद्धत्वपर्यंतेषु तच्छरीरेषु च ज्ञशरीरभव्यशरीररूपेषु च तुल्यजीवज्ञानविशेषसंग्रहाध्यवसायः आधिक्येनावसीयंते परिच्छिद्यंते ततो येन सोऽध्यवसायः । व्यवहारस्तु जलाहरणादिव्यवहारयुक्तो घटो घटः, सुखदुःखवेदृत्वादिव्यवहारपरो जीवो जीवः । ऋजुसूत्रस्तु वर्त्तमाननामस्थापनाद्रव्यभावघटानां चेष्टादिपर्यायाणां वाचके घटः, एवं चतुर्निक्षेपमयो जीवः द्रव्यभावप्राणाधारत्वजीवत्ववस्तुतया वर्तमानो ग्राह्यः, सांप्रतस्तु घटत्वशब्दवर्त्तमानसर्वपर्यायग्राही जीवत्वादिनामावयवाशान्यवर्त्ती जीव इति, समभिरूढस्तु घटे कुटत्वादिपर्यायासंक्रमरूपः यत्पर्यायप्रवृत्तिनसमुदितपर्यायाभिधायिजीवान्यतरपर्यायोऽसंक्रमस्वपर्यायवाचको जीवः, एवंभूतस्तु ज्ञानदर्शनसंपूर्णपर्यायप्रवृत्तिवर्त्तिजीव इत्यभिधायिका । उक्तं च तत्त्वार्थवृत्तौ–नैगमेन देशग्राहिणा, संग्रहेण सामान्यग्राहिणा, व्यवहारेण ।विशेषग्राहिणा, ऋजुसूत्रेण वर्त्तमानवस्तुग्राहिणा, शब्देन वर्त्तमानभावग्राहिणा, समभिरूढेन प्रतिशब्दं भिन्नार्थग्राहिणा,

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कार्य नव
[illegible] [illegible] कार्य नि-
मित्तमेव इति [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] निष्क्रियत्वं [illegible]
निमित्तं इति—

कर्म निश्चित कर्मे. निर्गुणी [illegible] न [illegible] ।
अहंता [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥
[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ॥ २ ॥
[illegible] [illegible] ।
होइ [illegible] [illegible] ॥ ३ ॥

क्रियते कर्म निरंतरे इति [illegible] कर्म मन्यते । याऽसौ
क्रिया ? [illegible] [illegible] [illegible] काश-
[illegible] [illegible] । आह—[illegible] एव कर्म [illegible]-
[illegible] क्रिया तु न [illegible] [illegible] दृश्यते ।
इत्याह—इह निश्चितं [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] क्रिया इति [illegible] [illegible] ।
अथवा—कर्तुं [illegible] [illegible] [illegible] नाहि
[illegible] [illegible] [illegible] मृत्प-
[illegible] [illegible] एव कारणमि-
[illegible] कुंभस्य कुतः
कुंभादिकार्यं करोति. इति [illegible] । ततो बुद्धचन्यपत्वितस्य

वंदिज्जमाणा न समुक्कसंति, हेलिज्जमाणा न समुज्जलंति ।
दंतेग चित्ते न चलंति धीरा, मुनी समा इ अरागदोसा ॥१॥

मनः स्याद् व्यापृतं यावत्, परदोषगुणग्रहे ।
कार्यं व्यग्रं वरं तावन्मध्यस्थेनाऽऽत्मभावने ॥ ५ ॥

व्या०–मनः स्याद् व्यापृतं इति–परदोषगुणग्रहणे यावत् मनः व्यापृतं व्यापारवत् स्यात्, तावत् आत्मभावने आत्मस्वरूपचिंतने व्यग्रं तदायत्तं वरं प्रधानं कार्यं, केन मध्यस्थेन पुरुषेण समभावास्वादनरसिकेन इत्यनेनात्मस्वरूपस्यामूर्त्तस्यागुरुलघुषड्गुणहानिवृद्धिपरिणमनोत्पादव्ययध्रौव्यतालक्षणस्वरूपचिंतनगुणप्रवृत्तिः गुणांतरसहकारप्रवृत्तिस्वरूपचिंतनादिकं तत्र चिंतने व्यग्रस्य सांसारिकगुणदोषचिंतनावकाश एव न भवति, अत एव निर्ग्रंथाः चिंतयंति भावनाचक्रं, घोषयंति द्रव्यानुयोगग्रंथं, प्रश्नयंति परस्परस्वभावविभावपरिणामं, विलोकयंति आत्मस्वरूपं साऽऽवरणं निरावरणं, विभजयंति हेतुगणपरिणामं, त्यजंति अशुद्धनिमित्तानि, विचारयंति निक्षेपं, संमीलयंति नयाऽनुयोगं, तन्मयीभवंति ध्यानादिषु, यतः अनादिविभावानुगतचेतनावीर्यप्रवर्तनगृहीतपरस्वरूपोपादेयतया परदोषगुणावलोकनाशुद्धचिंतननिवारणार्थं मनः स्याद्वादानंतपंचास्तिकायस्वरूपावलोकनाजीवहेयजीवोपादेयज्ञानं कार्यमिति ॥ ५ ॥

विभिन्ना अपि पन्थानः, समुद्रं सरितामिव ।
मध्यस्थानां परं ब्रह्म, प्राप्नुवन्त्येकमक्षयम् ॥ ६ ॥

व्या०–विभिन्ना अपि इति—विभिन्ना अनेकभेदभिन्ना अपि पंथानः पंच ध्यानमार्गाः साधनपद्धतयः साधनोपाया अनेके द्रव्या-

तस्य कारणं यद्वस्तु तदस्तित्वेतद्रूपत्वे भवति न असिनवपर्यायग्रहणं तर्हि न कार्योत्पत्तिः इदमुक्तं भवति—अभिनवपर्यायग्रहणेनैव कार्यसिद्धिः ।

मूपिंडावायाओ, पिंडो वा सक्करादवायाउ ।
चक्कमहवा वोपादाणं कारणं तं पि ॥ १ ॥

भूपिंडस्य अपायः शर्करादीनामपायः घटादीनां उत्पत्तौ एवमपादानं कारकं कारणं भवति, भूरपादानं पिंडापायेऽपि ध्रुवत्वात्, अथवा विवक्षया पिंडः अपादानं तद्वनशर्करादीनामपायेऽपि निवेकेऽपि ध्रुवत्वात् पृथ्वी घटापाया चक्रभाया कोवापादानमिति ।

वसुहा संचक्कमरूव मिघाई संनिहाणं तं ।
कुंभस्स तंपि कारणमभावओ तस्स जह सिद्धी ॥ २ ॥

घटस्य चक्रं संनिधानमाधारः, तस्यापि वसुधा, तस्या अप्याकाशमस्य पुनः स्वप्रतिष्ठत्वात् स्वरूपमाधारः, इत्येवमादि यत्किमपि आनंतर्येण परंपरया वा संनिधानमाधारो घटस्य विवक्ष्यते तत्सर्वमपि तस्य कारणं तदभावस्य घटस्य यद्यस्मादसिद्धिः, एवमात्मनोऽपि यथा आत्मा कर्त्ता स्वगुणानां स्वस्वज्ञप्तिदृष्टिरमणानुभवलक्षणानां प्रवृत्तिः कार्यं ते एव गुणाः सत्तास्या निरावरणाकरणरूपाः तेषामेवोत्पादपरिणतिपर्यायाभिनवाविर्भावलक्षणः संप्रदानः । तेषामेव पर्यायाणां ज्ञानादीनां पूर्वपर्यायव्ययलक्षणः अपादानः । आत्मनः असंख्येयप्रदेशरूपस्वक्षेत्रत्वं समस्तगुणपर्यायाणामाधारः इति स्वस्वरूपषट्कारकाणां सर्वकार्यनिष्पत्तिः परिणतानां ज्ञानं सद्विवेकस्तद्विवेकता सर्ववैपम्याभाव इति श्लोकार्थः । अथावसरायातमुच्यते, कारकता तु आत्मप-

मध्यस्थया दृशा सर्वे–ष्वपुनर्बन्धकादिषु ।
चारिसञ्जीविनीचार–न्यायादाशास्महे हितम् ॥८॥

व्या०–मध्यस्थया इति–वयं मध्यस्थया दृशा सर्वेषु मैत्री प्रमोदकरुणादिषु हितं कल्याणं आशास्महे इच्छामः, सर्वत्र रागद्वेषपरित्यागानुकूलभावनया हितं सिद्धयति, कस्मात्? चारिसंजीवनीचारन्यायात्। तत्रोदाहरणं यथा–कश्चित्पुरुषः अजानन्नपि पशुं संचारयन् पशुत्वपरित्यागचक्षुर्द्योतकहेतुः जातः, स च चारिसंजीविनीचारणरूपो दृष्टांतः तन्न्यायात्। तथा चरणादिषु मंदमत्रोऽपि अध्यात्मानुगसमभावपरिणतः आत्मानमनादिपशुत्वभावगतमपहाय स्वरूपोपलब्धिरूपं दक्षत्वभेदज्ञानरूपं चाक्षुषत्वं करोति। अत एव सर्वं साध्यसापेक्षस्य साधनं हितं साधनस्य बालक्रीडारूपं। उक्तं च वीतरागस्तोत्रे–

तथापि श्रद्धामुग्धोऽहं, नोपालभ्यः स्खलन्नपि ।
विशृंखलापि वाग्वृत्तिः, श्रद्दधानस्य शोभते ॥ १ ॥

पुनः केषु? अपुनर्बंधकादिषु, अपुनर्बंधकस्वरूपं श्रीहरिभद्रसूरिवचनात् ज्ञेयं, आदिशब्दात् मार्गाभिमुखमार्गपतिताविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतसर्वविरतादिषु सर्वत्र परभावरागद्वेषविनिर्मुक्तात्मस्वभावानुकूलता एव साधनं। उक्तं च योगशास्त्रे–

आत्मैव दर्शनज्ञानचारित्राण्यथवा यतेः ।
यत्तदात्मक एवैष, शरीरमधितिष्ठति ॥ २ ॥
आत्मानमात्मना वेत्ति, मोहत्यागाद् यदात्मनः ।
तदेव तस्य चारित्रं, तज् ज्ञानं तच्च दर्शनम् ॥ २ ॥
आत्माज्ञानभवं दुःख–मात्मज्ञानेन हन्यते ।
तपसाप्यात्मविज्ञान–हीनैश्छेत्तुं न शक्यते ॥ ३ ॥

ध्यानालंबनरूपा चतुष्प्रकारा, मैत्री १ प्रमोदा २ मध्यस्था ३ करुणा ४ । एवं च—

मा कार्षीत्कोऽपि पापानि, मा च भूत्कोऽपि दुःखितः ।
मुच्यतां जगदप्येषा, मतिर्मैत्री निगद्यते ॥ १ ॥
अपास्ताशेषदोषाणां, वस्तुतत्त्वावलोकिनाम् ।
गुणेषु पक्षपातो यः, स प्रमोदः प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥
दीनेष्वार्तेषु भीतेषु, याचमानेषु जीवितम् ।
उपकारपरा बुद्धिः, कारुण्यमभिधीयते ॥ ३ ॥
क्रूरकर्मसु निःशंकं, देवतागुरुनिन्दिषु ।
आत्मशंसिषु योपेक्षा, तन्माध्यस्थ्यमुदीरितम् ॥ ४ ॥

इति भावनालक्षणं योगशास्त्रोक्तं। व्यवहारनयेन निश्चयनयेन, सर्वजीवपुद्गलेषु शुभाशुभपरिणतेषु अरक्तद्विष्टताख्या परिणतिः मध्यस्था सा नामादिभेदतः चतुर्द्धा, तत्र द्रव्यमध्यस्था अनुपयुक्तस्य साध्यसाधनशून्यस्य, भावमध्यस्था मुनेः मध्यस्थपरिणतिः आद्यनयचतुष्टये द्रव्यमध्यमा अंत्यनयत्रये भावमध्यमा साधनकाले साधनारूपा वीतरागस्य सर्वान्यजीवपुद्गलसमूहे न रागो न द्वेषः । एषा सिद्धरूपा उत्सर्गैवंभूतरूपा मध्यमा सा प्रतन्यते—

स्थीयतामनुपालम्भं, मध्यस्थेनान्तरात्मना ।
कुतर्ककर्करक्षेपैस्त्यज्यतां बालचापलम् ॥ १ ॥

व्या०—स्थीयतामिति—भो उत्तमाः । बालचापलं बालस्याज्ञस्यैकांताज्ञानरक्तस्य चापल्यं वस्तुस्वरूपानपेक्षिवचनरूपं चापल्यं त्यज्यतां मुच्यतां । कैः ? कुतर्काः कुयुक्तयः ते एव कर्करा उपलाः तेषां क्षेपास्तैः तदा किं कर्तव्यमित्याह—मध्यस्थेन राग-

पुनर्निर्भयमूलभावनां दर्शयन्नाह—

भवसौख्येन किं भूरि–भयज्वलनभस्मना ।
सदा भयोज्झितं ज्ञान–सुखमेव विशिष्यते ॥ २ ॥

व्या०—भवसौख्येनेति–'भूरि' बहु भयं इहलोकपरलोकादि, तदेव ज्वलनं, तस्य 'भस्मना' [illegible] भयज्व-लनदग्धेन भवसौख्येन इन्द्रियजेन मन्यमानसौख्येन जात्या दुःख-रूपेण किं ? न किमपि इत्यन्वयः । ज्ञानं तत्त्वपरिच्छेदात्मकस्वरूपं तस्य सुखं निर्भयं एव आस्वाद्यते । [illegible] क्रियते सुखस्वरूपं च ज्ञाने एव, [illegible] सुखे सुखरोगो भव एव । उक्तं च—

जं पुग्गलजं सुक्खं, दुक्खं, [illegible] ।
सिद्धे [illegible], [illegible] ॥ १ ॥
अतः पुद्गलग्रहणं न सुखं [illegible] ॥ २ ॥

न गोप्यं क्वाऽपि नारोप्यं, हेयं देयं च न क्वचित् ।
क्व भयेन मुनेः स्थेयं, ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यतः ॥ ३ ॥

व्या०—न गोप्यमिति—मुनेः [illegible] 'गोप्यं' गोपनं [illegible] न किमपि. [illegible] कथं भवति ? [illegible] 'नारोप्यं' [illegible] न. [illegible] न [illegible]. [illegible] । [illegible] [illegible]. [illegible] न. [illegible]. [illegible]

स्वार्थग्राहकता नित्यमेवेदं, अनित्यमेवेदं इत्येकांतज्ञानं एकवस्-
त्वंशरूपं मिथ्याज्ञानं सर्वनयस्थापनपरं सर्वस्वभावात्मकवस्तु-
स्वरूपज्ञानेषु गौणमुख्यत्वेन अस्तिनास्तित्वोपयोगं एकांतज्ञानं
नयज्ञानं, तदन्यनयोच्छेदरूपं दुर्नयव्यपदेशं लभते । सर्वसापे-
क्षतया स्वरूपप्रतिज्ञानं सुनयः । उक्तं च सम्मतौ—

तम्हा सव्वे वि नया, मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।
अण्णोण्णणिस्सिया पुण, हवंति सम्मत्तसब्भावा ॥ १ ॥

ते च नयाः सप्त, नैगमः १ संग्रहः २ व्यवहारः ३ ऋजु-
सूत्रः ४ शब्दः ५ समभिरूढः ६ एवंभूतः ७ एव । एषु चत्वारो
द्रव्यनयाः, त्रयो भावनयाः, इति जिनभद्रगणिः, दिवाकरस्तु—आद्याः
त्रयः द्रव्यनयाः, तथा शेषाः चत्वारो भावनयाः । तत्र निगम्यंते
परिच्छिद्यंते इति निगमा लौकिका अर्थाः, तेषु निगमेषु भवो
योऽध्यवसायः   स नैगमः, स च सामान्येनापि व्यवहरति
सामान्यबुद्धिहेतुना सामान्यवचनहेतुना च अत्यंतभेदेभ्योऽन्यत्व-
रूपेण सत्तामात्रेण सामान्यबुद्धिचेतनया, अशोकवनादिषु सत्त्व-
मनेकजातिरूपेषु वनस्पतिसामान्यात् वनं इत्यवबोधः वचन-
हेतुना च द्रव्यं, इत्यादि जीवाजीवविभागैर्विकल्पः नहि विशेषे-
णापि बुद्धिवचनहेतुतारूपा अत्यंतसामान्यादन्यत्वरूपेण व्यव-
हरति परस्परभिन्नत्वेन तथा सामान्यविशेषेणापि गवादिना सर्व-
वस्त्वेकरूपेण व्यवहरति, यथा तेन व्यवहारेण
मिति । लोकरूढैः प्रकारैः सकलं व्यवहरति मन्यते च
हिति, मध्यनिर्देशद्वारेण विभक्तेन वस्तुग्रहणांतरेषु-
त्कांतर्यः, स एव अंशरूपनेरह द्विविधः, स च सत् अन्त्
सामान्यांशभेदात् अतीतानागतवर्तमानसंकल्पादिभेदात्

कृतमोहास्त्रवैफल्यं, ज्ञानवर्म बिभर्ति यः ।
क्व भीस्तस्य क्व वा भङ्गः, कर्मसङ्गरकेलिषु ? ॥६॥

व्या०–कृतमोहास्त्रेति–तस्य स्वरूपानंदभोक्तुः 'कर्मसंगरकेलिषु' कर्मक्षयकरणसंग्रामे 'भीः' भयं क्व ? भंगः क्व ? नैवेति, तस्य कस्य ? यः कृतमोहास्त्रवैफल्यं कृतं मोहास्त्रस्य वैफल्यं निष्फलत्वं येन एवंविधं ज्ञानवर्म ज्ञानसन्नाहं बिभर्त्ति धत्ते, सर्वमोहविदारणदारुणज्ञानसंनाहधरस्य, कर्मकृतस्वगुणघातभीः क्व? इदमुक्तं भवति–येन नयविभजनपरीक्षितः स्वपरपदार्थः तस्य मोहादीनां भयं न ॥ ६ ॥

तूलवल्लघवो मूढा, भ्रमन्त्य भ्रे भयानिलैः ।
नैकं रोमापि तैर्ज्ञान–गरिष्ठानां तु कम्पते ॥ ७ ॥

व्या०–तूलवदिति–'मूढा' स्तत्त्वज्ञानविकलाः तूलवल्लघवः अभ्रे आकाशे 'भयानिलैः' भयपवनैः प्रेरिता भ्रमंति, ज्ञानगरिष्ठानां एकं रोमापि तैः पवनैर्न कंपते इत्यनेन सप्तभयसंनिधाने मूढाः परभावात्मत्वज्ञानमुग्धाः तद्वियोगभयेन कंपमाना इतस्ततो भ्रमंति, ये चासंख्यातप्रदेशानंतज्ञानमयस्यात्मनः स्वरूपावलोकिनो ज्ञानगरिष्ठा अविनाशिचैतन्यभावरक्ताः तेषां अध्यवसायरूपं रोमापि न कंपते किं च गत्वरैः गतैरिति अध्यात्माभ्यासैकत्वानंदानंदिताः सदा निर्भयाः स्वरूपे स्थिराः तिष्ठंति ॥ ७ ॥

चित्ते परिणतं यस्य, चारित्रमकुतोभयम् ।
अखण्डज्ञानराज्यस्य, तस्य साधोः कुतो भयम् ॥८॥

व्या०–चित्ते इति–यस्य निर्ग्रंथस्य 'अकुतोभयं' न विद्यते कुतः कस्माद् भयं यस्य तत् चारित्रं स्वरूपस्थिरत्वलक्षणं

ज्ञानं, भावतः पुनः कुप्रावचनिकं अशुद्धं मोक्षाभिलाषपूर्वकं यत् तामिलस्य परित्यागतुल्यं, शुद्धं तु सम्यग्दर्शनपूर्वकतत्त्वविवेचनोपयुक्तं सम्यग्ज्ञानेन आत्मनः स्वद्रव्यस्वक्षेत्रस्वकालस्वभावात् भिन्नं उपाधिरूपं ततसर्वमपि पररूपं न मदीयं इति वासनत्वं भेदज्ञानं तदनात्मशंसनं तत्करणे तत्त्वज्ञानं भवति. तदपि अनिष्टेषु अजीवेषु जीवाश्रितकर्मपुद्गलेषु तद्विपाकेषु तन्निमित्तोत्पन्नाशुद्धविभावपरिणामेषु अनात्मत्वं यावद् व्यवहार नावदसन्निमित्तपरायत्तचेतनावीर्यपरिणत्या भावयोगचेतनाविकल्पेषु परत्वं ऋजुसूत्रः द्रव्यौदयिकसदाचारसत्यभाषासत्यमनोयोगादिषु साधनसंवरव्यवसायेषु सन्निमित्तावलंबिस्वात्मपरिणामेषु परत्वं शब्दः रूपातीतशुक्लध्यानशैलीकरणादिपरत्वं, समभिरूढः स्वात्मपरिणामिकभावानंतज्ञानदर्शनात् अन्यत्सर्वमपि परं इति, एवंभूतः एवं अनात्मत्वं सर्वत्र श्रद्धया सम्यग्दर्शनिनां भिन्नीकरणेन मुनीनां भिन्नीभावेन जिनानां सर्वथा अभावेन सिद्धानां विरतिश्रद्धया स्थाप्यं तत्करणीयं नहि परभावकर्तृत्वभोक्तृत्वाग्रपत्वसंयोगित्वं चेतनस्य कार्यं इति साधकावकाशः । आत्मैव सामायिकं सामायिकार्थं इत्याद्यहंकारस्यात्मारिभवितव्यं । उक्तं च योगशास्त्रे—

अमूर्तस्य चिदानन्द–रूपस्य परमात्मनः ।
निरञ्जनस्य सिद्धस्य, ध्यानं स्याद्रूपवर्जितम् ॥ १ ॥
इत्यजस्रं स्मरन् योगी, तत्स्वरूपावलम्बनः ।
तन्मयत्वमवाप्नोति, ग्राह्यग्राहकवर्जितम् ॥ २ ॥
अनन्यशरणीभूय, स तस्मिन् लीयते तथा ।
ध्यातृध्यानोभयाभावे, ध्येयेनैक्यं यथा व्रजेत् ॥ ३ ॥
सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं मतम् ।
आत्मा यदपृथक्त्वेन, लीयते परमात्मनि ॥ ४ ॥

आलम्बिता हिताय स्युः, परैः स्वगुणरश्मयः ।
अहो स्वयंगृहीतास्तु, पातयन्ति भवोदधौ ॥ ३ ॥

व्या०–आलंबिता इति—" स्वगुणरश्मयः " आत्मीगुणरज्जवः " परैः " अन्यैः " आलंबिताः " स्मरणचिंतनेन गृहीता " हिताय " कल्याणाय स्युः, स्वसुखाय भवंति, " अहो " इति आश्चर्ये स्वगुणाः स्वयंगृहीता भवोदधौ पातयंति. स्वमुखेन स्वगुणोत्कर्षः न कार्यः ॥ ३ ॥

उच्चत्वदृष्टिदोषोत्थ–स्वोत्कर्षज्वरशान्तिकम् ।
पूर्वपुरुषसिंहेभ्यो, भृशं नीचत्वभावनम् ॥ ४ ॥

व्या०–उच्चत्वदोष इति—अभ्यासात्प्राप्तज्ञानविनयतपोरूपगुणांतर्ज्वलितमहामोहोदयेन आत्मनि उच्चत्वं ' अहं गुणी मया प्राप्तमिदं, ज्ञानं विनयगुणवानहमिति उच्चत्वदृष्टिदोषेण उत्थो यः स्वोत्कर्षः स एव ज्वरः तस्य शांतिकं उपशमकारणं पूर्वपुरुषाः अर्हदादयः ते एव सिंहाः तेभ्यः आत्मन्यूनत्वभावनं मानोदयतापनिर्वापणं ज्ञेयं ।

धन्नो धन्नो वयरो, सालिभद्दो य थूलभद्दो अ ।
जेहिं विसयकसाया, चत्ता रत्ता गुणे नियए ॥ १ ॥

धन्याः पूर्वपुरुषा ये वान्ताश्रवा अनादिभुक्तपरभावास्वादनरामणीयकं त्यजंति, सद्गुपदेशज्ञातसत्तासुखेप्सया आत्मधर्मश्रवणसुखं अनुभूयमानाः चक्रिसंपदो विपद इव मन्यन्ते, स्वगुणेषु धन्यः स्थूलभद्रः योऽत्यंतातुररक्तकोशा प्रार्थनाऽकंपितपरिणामः, तु अहोस्वयंगृहीतास्तुपातयंतिभवोदधौ । उच्चत्वदृष्टिदोषोत्थः स्वोत्कर्षज्वरशान्तिकं, पूर्वपुरुषसिंहेभ्यो भृशंनीचत्वभावनम् । शरीर रूप लावण्य, ग्रामाराम् धनादिभि रुत्कर्षः परपर्यायै श्चिदानन्द-

[illegible]

स्यकार्तस्य दुर्गृहीतात्मस्वरूपस्य शुद्धाः पर्यायाः सम्यग् ज्ञानचरणध्यान प्रभावरूपा आत्मपर्याया न उत्कर्षाय भवंति। कथं न भवंती आह—मत्सात्मसाम्येन परिभाविता आत्मानं आत्मानं प्रति मत्यात्म तत्र साम्येन तुल्यत्वेन भाविताः। भावना च 'किमाधिक्यं मम जातं ? तेन एते ज्ञानादयो गुणाः सर्वात्मनि संत्येव सर्वसाधारणे क उत्कर्ष ? इति भाविताशयः सर्वजीवानां ज्ञानाद्यनंतपर्यायत्वं तुल्यं सिद्धसंसारस्थयोः न सत्ताभेदः। उक्तं च संवेगरंगशालायाम्।

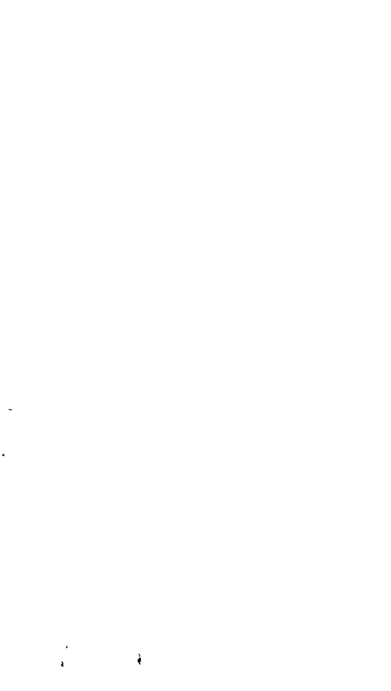
नाणाइणंतगुणोववेयं, अरूवमणहं च लोगपरिमाणं।
कत्ता भोत्ता जीवं, मन्नइसिद्धाणतुल्लमिणं ॥ १ ॥

श्रीपूज्यैश्च "जीवो गुणपडिवन्नो न यस्स दव्वट्ठियस्स सामाइअं"। तथा ठाणांगे 'एगे आया' इत्यादि पाठात् सर्वत्र तुल्यत्वे आत्मनः सद्गुणप्राकट्ये क उत्कर्षः अशुद्धाः पर्याया औदयिकाः शक्रत्वादयः अपकृष्टत्वात् तुच्छत्वाद् दोषत्वाद् गुणवानत्वज्ञानरमणोपघातत्वात् शोकरोगपुञ्जत्वात् उत्कर्षाय भवंति, किमेभिः पुद्गलोपचयरूपैः परोपाधिजैः संसर्गैश्च मे क्व निवृत्तिः एष्य इति संवेगनिर्वेदपरिणतानां नोन्माद इति ॥ ६ ॥

पुनः आत्मानमुपदिशति—

क्षोभं गच्छन्समुद्रोऽपि, स्वोत्कर्षपवनेरितः।
गुणौघान् बुद्बुदीकृत्य, विनाशयसि किं मुधा ॥ ७ ॥

व्या०—क्षोभं गच्छन्निति—हे हंस ! स्वात्मकल्याणंकर मानसनिवासप्रतिरूपं "समुद्रोऽपि" मुद्रा सागरेण्यन्ता तया युक्तोऽपि "स्वोत्कर्षपवनेरितः" स्वाहंकारपवनप्रेरितः क्षोभं गच्छन् अल्परमणैः पूर्वं भवन् गुणौघान् अल्पमात्मनां



तत्त्वं वस्तुस्वरूपं जीवे जीवत्वं तत्त्वं अनंतचैतन्यरूपं अजीवे अचैतन्यस्वरूपं तत्त्वं नाम अविपरीतस्याद्वादगोचरं जीवादिपदार्थस्वरूपं तत्रापि स्वस्वस्थाने धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवानां तत्त्वत्त्वं तथापि अस्य ममात्मतः मत्स्वरूपं शुद्धचिद्रूपं अनंतानंदरूपं असंख्येयप्रदेशानंतज्ञानादिपर्यायपरिणामिकोत्पादव्ययध्रौव्यात्वषड्गुणपरिणतागुरुलघुपारमार्थिकैकांतिकात्यंतिकनिरतिशयाबाधनिःश्रेयसरूपं स्वतत्त्वं तत्र दृष्टिः दर्शनं श्रद्धाप्रतिमेक्षणं वा तत्त्वावलोकनं यथार्थावबोधयुक्ता श्रद्धादृष्टिः तत्त्वदृष्टिः, सा च नामतः उल्लापः अनेकानां, स्थापनातः तद्विचारणा स्थिरचित्तानां मुद्रान्यासाद्यवलंबिनां, द्रव्यतः संवेदनज्ञानं विविक्तचत्त्वानां, भावतः अनुभावात्मस्पर्शज्ञाननिमग्नचित्तानां, संवेदनज्ञानं यावन्नयचतुष्टयं नयत्रयं स्पर्शज्ञानात्मकसम्यग्दर्शनसम्यक्चारित्रैकत्वव्यानैकतानिष्पन्नकेवलज्ञानिनां उत्सर्गतः तत्त्वदृष्टिबोद्धव्या सर्वोपायसमूहतः स्वतत्त्वे दृष्टिः कार्या तदर्थमुपदेशः ।

रूपे रूपवतीदृष्टि, र्दृष्ट्वा रूपं विमुह्यति।
मज्जत्यात्मनि नीरूपे, तत्त्वदृष्टिस्त्वरूपिणी ॥ १ ॥

व्या०—रूपे इति—" रूपवती दृष्टिः " पौद्गलिकापौद्गलिकात्मिका पुद्गलस्वरूपग्राहिणी ' दृष्टिः ' चक्षुः ' रूपं ' श्वेतादिभेदं दृष्ट्वा ' रूपे ' वर्णादौ वर्णगंधरसस्पर्शलक्षणे ' विमुह्यति ' मोहसाद्भवति पुनः ' अरूपिणी ' रूपरहिता दृग् ज्ञानरूपा आत्मचैतन्यशक्तिलक्षणा तत्त्वदृष्टिः ' नीरूपे ' निर्गतमूर्त्तधर्मिणि वर्णादिरहिते आत्मनि शुद्धचैतन्यलक्षणे ' मज्जति ' मग्नतां प्राप्नोति स्वरूपलीना भवति अतः बाह्यदृष्टित्वं अनादि विहाय स्वरूपोपयोगे दृष्टिः कार्या ॥ १ ॥

चन्तः शुक्लध्यानं यावत् सम्यग्दृष्टि-अपुनर्बंधकादयः, जिनकल्पाः स्थविरकल्पादयः, सत्स्वरूपभाववर्त्तिनां एकं अक्षयं परं ब्रह्म प्राप्नुवंति । इत्यनेन सर्वे साधनोपाया एकं शुद्धं आत्मस्वरूपं समवतरंति । तेषां मोक्षसाधकानां साध्यैकत्वात् । कस्मिन् ? समुद्रे सरितां इव, यथा नद्यः समुद्रं गच्छंति एवं तत्त्वैकत्वपरिणामानां सर्वं साधनं शुद्धात्मभावे अवतरति । अतो रागद्वेषाभावो हितः ॥ ६ ॥

स्वागमं रागमात्रेण, द्वेषमात्रात् परागमम् ।
न श्रयामस्त्यजामो वा, किन्तु मध्यस्थया दृशा ॥७॥

स्या०—स्वागमं इति—स्वागमं गणधरोक्तं आगमं, वयं न रागमात्रेण श्रयामः, यत्र अस्मत्परंपरागतैः इदं पूर्वाभिमतं, अस्माकं कल्पितं, इति रागानुरक्तेन न जिनागमे रागः वा अथवा परागमं कपिलादिशास्त्रं, न केवलद्वेषमात्रेण परकीयत्वात् न द्वेषः तेन न त्यजामः किन्तु परीक्षया यथार्थवस्तुस्वरूपनिरूपणेन सम्यग्ज्ञानहेतुत्वात्, नित्याऽनित्याद्यनंतस्वभावकथनेऽविरोधित्वात् मध्यस्थया दृशा जिनागमं श्रयामः । विपर्यासोपेतवस्तुस्वरूपपरीक्षणाऽक्षमत्वेन त्यजामः, न द्वेषमात्रेण त्यागयोग्यत्वात् त्यजामः । उक्तं च—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ १ ॥
न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो, न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु ।
यथावदाप्तत्वपरीक्षया तु, त्वामेव वीरप्रभुमाश्रिताः स्मः ॥२॥

इति ॥ ७ ॥

॥

सम्मदिट्ठी जीवो, तत्तरुह आयभावरमणपरा ।
विसये भुजंतो विहु, नो रज्जइ नो वि मज्जई ॥ २ ॥

अतः बाह्यावलंबिचेतनावीर्या कार्या च स्वरूपावलंबिनी ॥२॥

ग्रामारामादि मोहाय, यद् दृष्टं बाह्यया दृशा ।
तत्त्वदृष्टया तदेवान्तर्नीतं वैराग्यसम्पदे ॥ ३ ॥

व्या०—ग्रामारामादि इति–" बाह्यया दृशा " बाह्यदृष्ट्या यद् ग्रामारामादि दृष्टं मोहाय भवति अयंममत्वृद्धये भवति तदेव ग्रामादिकं "तत्त्वदृष्ट्या" स्वपरभेदकृत्रिमाकृत्रिमहंन्वया (दृशा) " अंतर " आत्मोपयोगमव्ये " नीतं " प्रापितं " वैराग्यसंपदे " वैराग्यं औदासीन्यं तत्संपदावृद्धये भवति । उदाहरणं । एगे आयरिआ नाणचरणप्पहाणा सुअरहस्सपारगा भव्वजीवाणं अणेगसमणगणपरिवुडा गामाणुगामं दुइज्जंता वायणाईहिं समणसंघं गायंता मग्गे पंचसमिइतिगुत्तिगुत्ता, अणिग्घाई-भावीयसजोगा, पत्ता एगं वणं अणेगलयाईणं नीलं नीला-भासं सउणगणनिवासं, तओवणस्स पुप्फफल लच्छीं पासिऊण निग्गंथाणं वयंति इअ वणं भो भो निग्गंथा पासह. एए पत्ता पुप्फाउला फुल्ला जे चेयणा लक्कणाणंतसत्ति आवरीऊण नाणावरणदंसणावरणाचरित्तमोहमिच्छत्तमोहांतराय उदयेण दीणाहीणाइद्धिया एगेंदियभावन्ना कंपंता सहा वत्तहया दुहया अत्ताणा, असरणा, जम्मणा मरणावगाढा अहो अणुकंपाइ-गए एए को एस अणुकंपं कुणई मणसवणनयणाविगलाणं, इअ भणिऊण जणिअसंवेगचलंति पुरओ ते निग्गंथावि नाणा-वरणाई बंधकारणे दुगंछंता पंथओ चलिया अहह–आयाआयं

सोऽयं समरसीभाव-स्तदेकीकरणं मतम् ।
आत्मा यदपृथक्त्वेन, लीयते परमात्मनि ॥ ४ ॥ ८ ॥
इति व्याख्यातं मध्यस्थाष्टकम् ॥ १६ ॥

अथ निर्भयाष्टकम् ॥ १७ ॥

माध्यस्थ्ये स्थिरत्वं निर्भयस्य भवति, भयमोहोदयात् परिणामचापल्यं भवति, अतो भयपरिहारः कार्यः, आत्मा हि शुद्धचिद्रूपाविनश्वरः तेन निर्भय एव, नामस्थापनानिर्भयौ सुगमौ, द्रव्यनिर्भयः सप्तभयरहितः, भावनिर्भयः कर्मबंधहेतुविभावपरिणतिरहितः, बंधहेतुपरिणामः आत्मसत्तारोधकाभिनवकर्मबंधकत्वान्महाभयं तत् च संवरपरिणामपरिणतानां न भवति । नैगमेन सर्वद्रव्याणां, संग्रहेण वस्तुसत्ताया, वस्तुवृत्त्या विनश्वरत्वात्, व्यवहारेण कर्मोदयाव्यापकस्य धीरस्य, ऋजुसूत्रेण निर्भयस्य, शब्दनयेन ध्यानस्थस्य, समभिरूढनयेन केवलिनः, एवंभूतनयेन सिद्धस्य, निर्भयत्वं अविनश्वरसर्वगुणप्राग्भावात् । अत्र च यथार्थात्मस्वरूपविज्ञातुरौदयिकभावनिर्ममस्य साधने निर्भयो भवति, अतो निर्भयाष्टकं व्याख्यायते—

यस्य नास्ति परापेक्षा, स्वभावाद्वैतगामिनः ।
तस्य किं नु भयभ्रान्ति-क्लान्तिसन्तानतानवम् ॥१॥

व्या०—यस्य नास्तीति—यस्य 'परापेक्षा' पराश्रया, पराशा वा, नास्ति तस्य 'स्वभावाद्वैतगामिनः' स्वभावस्य यत् अद्वैतं एकत्वं स्वभावाद्वैतं तत्र गमनशीलस्य 'भयः' त्रासः 'भ्रान्तिः' भ्रमः 'क्लान्तिः' खेदः तस्य 'तानवं' अविच्छेदो नु क्वास्ति? काक्वर्थः; इत्यनेन पावस्तुसंश्लेषे परापादिना भयं भवति, च परभावनिःस्पृहः तस्य परभावाभावेन खेदः कुत भवति ॥ २ ॥

भवस्य बीजं नरक-द्वारमार्गस्य दीपिका ।
शुचां कन्दः कलेर्मूलं, दुःखानां खानिरङ्गना ॥ २ ॥

अन्यशास्त्रेऽपि—

कान्ताकनकसूत्रेण, वेष्टितं सकलं जगत् ।
तासु तेषु विरक्तो यो, द्विभुजः परमेश्वरः ॥ १ ॥

इत्यादि तत्त्वज्ञस्य नारी मोहहेतुत्वात् भवबीजरूपा भाति ॥ ४ ॥

पुनः उपदिशति—

लावण्यलहरीपुण्यं, वपुः पश्यति बाह्यदृग् ।
तत्त्वदृष्टिः श्वकाकानां, भक्ष्यं कृमिकुलाकुलम् ॥५॥

व्या०—लावण्येति—" बाह्यदृग् " लोकानुगतदृष्टिः " वपुः " शरीरं " लावण्यलहरीपुण्यं " सौंदर्यलहरीपवित्रं पश्यति तत्त्वदृष्टिः सम्यग्ज्ञानी तत्तु " श्वकाकानां भक्ष्यं " कृमिकुलाकुलं कृमिमयं पश्यति । उक्तं च—

नवस्रोतः स्रवद्विस्ररसनिस्यन्दपिच्छले ।
देहेऽपि शौचसङ्कल्पो, महन्मोहविजृंभितम् ॥ १ ॥

अतः कर्मोपाधिजं शरीरमहितं बंधहेतुत्वात् तत्र रागाभाव एव वरम् ॥ ५ ॥

गजाश्वैर्भूपभुवनं, विस्मयाय बहिर्दृशः ।
तत्राश्वेभवनात्कोऽपि, भेदस्तत्त्वदृशस्तु न ॥ ६ ॥

व्या०—गजाश्वैरिति—"बहिर्दृशः" बहिर्दृष्टेः नरस्य "भूपभुवनं" नृपगृहं " गजाश्वैः " वारणाश्वगणैर्व्याप्तं " विस्मयाय "

स्वेदं? न स्फुरति. स्वरूपेण स्वस्य तत्त्वं समर्पयन्ति। कथंभूतस्य मुनेः? ईदृशं स्वस्वरूपलीनस्य स्तुहं ज्ञानेन अवबोधेन स्वस्य ज्ञायकस्य ॥ ३ ॥

एकं ब्रह्मास्त्रमादाय, निघ्नन्मोहचमूं मुनिः।
बिभेति नैव संग्राम–शीर्षस्थ इव नागराट् ॥४॥

व्या०—एकमिति—मुनिः. स्याद्वाद परमार्थज्ञः, न बिभेति न भयवान् भवति. किं कुर्वन्? मोहचमूं निघ्नन्. मोहसैन्यस्य ध्वंसं कुर्वन्, किं कृत्वा? 'ब्रह्मास्त्रं' ब्रह्मज्ञान आत्मस्वरूपावबोधः तदेवास्त्रं शस्त्रं आदाय गृहीत्वा. क इव? संग्रामस्य शीर्षं तत्र तिष्ठति संग्रामशीर्षस्थः. 'नागराट्' नागराजो गजेन्द्र इव, यथा गजेन्द्रः संग्रामे न बिभेति तथा मुनिः कर्मसंग्रामे प्रशस्तः न भयवान् भवति. यो हि स्वरूपरक्तः तस्य पराभवजनो-त्थितस्य भयं न, भयं हि परसंयोगिनां भवति तद्विनाशभयस्य क्रियमाण एव अतो न भयं ज्ञायकस्य शरीरादिपरसंयोगा-दिरहितत्वात् ॥ ४ ॥

मयूरी ज्ञानदृष्टिश्चेत्, प्रसर्पति मनोवने।
वेष्टनं भयसर्पाणां, न तदानन्दचन्दने ॥ ५ ॥

व्या०—मयूरी इति—'मनोवने' चित्तोद्याने 'चेत्' यदि 'ज्ञान-दृष्टिः' स्वभावपरभावविवेचनदृष्टिः मयूरी प्रसर्पति स्वेच्छया विचरति तदा 'आनन्दचन्दने' स्वरूपानन्दचन्दने भयसर्पाणां वेष्टनं न भवतीत्यर्थः। इदमुक्तं भवति—ज्ञानेन स्वपरयोर्विवेके कृते स्वस्वरूपैकत्वानन्दनिमग्नस्योपयोगस्य परत्वनिर्धारे जाते भय-स्योदयो न भवति ॥ ५ ॥

व्या०—न विकाराय इति—आचार्यैः गुरुभिः ग्रहणसेवना-शिक्षादानेन सूक्ष्मागमरहस्य शिक्षणेन यैः पाठकैः तत्त्वदृष्टयः पुरुषाः "निर्मिता" निष्पादिता "विकाराय न" रागद्वेषो-पाधिवृद्धये न किंतु "विश्वस्य" त्रिभुवनस्य "उपकाराय" सदुपदेशदानद्युद्धतत्त्वोपलंभाद्युपकाराय निर्मिता इति भावना यथाऽनादिमिथ्यात्वासंयमग्रस्तानां वयं निर्यामकास्तथान्येऽपि यथार्थभावनदक्षा उपकाराय भविष्यंति तेन एभ्यः श्रुतरहस्यं पाठितव्यं। उक्तं च विधिप्रपायां ॥ निज्जामउ भवणवत्ताणसवम्म-जाणवत्तंमि मोक्खपह सत्थवाहो अन्नाणंधा ण चक्खुय ॥ १ ॥ अत्ताणाणं ताणं नाहो, अनाहाणभवसत्ताणं, तेणं पुण्णसप्पुरिस-गुरुअगच्छभारे नियुत्तोऽसि ॥ २ ॥ इत्यादि। 'भद्दं बहुसुयाणं, बहुजनसहेह पुच्छणिज्जाणं'। बहुश्रुताध्ययने—

समुद्दगंभीरसमा दुरासया; अचक्किया केणइ दुप्पहंसगा।
सुयस्सपुणो विउ᳚स्स ताइणो, खवित्तुं कम्मं गईमुत्तमं गया ॥१॥

इति तत्त्वदृष्टित्वं हितं न अनेकशास्त्रव्यायामे बहुश्रुतत्वं निश्चितसमयज्ञो बहुश्रुतः। उक्तं च संमतौ—

जो हेउवायपक्खम्मिहेऊउ आगमे य आगमिओ।
सो समयपणओ, सिद्धंतविराहओ अन्नो ॥ १ ॥

इति नयप्रमाणप्रमाणीकृतस्वपरसमयसाराः स्वरूपासारा निरु-द्धमोहप्रचारारतत्त्वदृष्टयः किंभूता ? इत्याह स्फुरंती कारुण्यं भवसमुद्रतारणोपकारित्वलक्षणं यत् पीयूषं तस्य वृष्टिर्वर्षा यत्र ता इति जगज्जनतारणकरुणाऽमृतवृष्टिमया इत्यनेन कथं ते लोकाः तत्त्वविमुखाः विषयरक्ताः आत्मानं ध्वंसयन्ति ? जैना-गमे सति च अनंतगुणपर्यायसत्तात्मके आत्मनि स्वभ्रांत्या रमंते

परिणतं चेतनाचेतनादिवस्तुषु तन्मयीभूतं तस्य साधोः कुतः कस्माद् भयं ? न कस्मादपि । कथंभूतस्य मुनेः ? अलंज्ञान-दृष्टस्य अनुभवज्ञानदृष्टस्य, इत्यनेन वचनवर्गनियमादिवाङ्-वर्गरहितस्य शुद्धज्ञानानन्दस्य साधोः स्वस्वभावमुक्तियुक्तस्य परम किंचनस्य न भयं । यथा श्रीकेशिगौतमाध्ययने—

एगप्पा अजिए सत्तू-कसाया इंदियाणि अ ।
ते जिणित्तु जहा नायं, विहरामि अहं मुणी ॥ १ ॥
रागदोसादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा ।
ते छिंदित्तु जहनायं, विहरामि जहक्कमं ॥ २ ॥

तथा च नमिराजर्षिवचनं—

बहुं खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ ॥ १ ॥

इत्यादिसूत्रतत्त्वबोधे । यथार्थज्ञानवतो न भयं ॥ ८ ॥

॥ इति व्याख्यातं निर्भयाष्टकम् ॥

॥ अथ अनात्मशंसाष्टकम् ॥ १८ ॥

निर्भयत्वं सर्वपरभावत्यागे भवति, परभावत्यागश्च तेषु परमा-[illegible] अनात्मज्ञानेन भवति, तदर्थं स्वात्मव्यतिरिक्तं तदनात्म-[illegible]स्य शंसनं कथनं तत्स्वरूपं अनात्मशंसाष्टकं व्याख्यायते । [illegible]व नात्मश्लाघा कृता, इत्यतः अनात्मशंसनं द्विविधं, बाह्यं [illegible]कं च, तत्र बाह्यं लौकिकं धनस्वजनादिसंयोगज्ञानाद्ये प्रथ-[illegible]देहरूपादौ न ममेदं इत्यादिरूपं, तथा बाह्यं लोकोत्तरं यत् [illegible]शास्त्रज्ञानत्वनिपुणत्वं निरतिचारत्वेन पालने अप्रमत्तत्वेन इत्यो-[illegible]दिकेषु साधनविचक्षणत्वेषु यत् पर्तैश्वर्यविनयकरणत्वस्य

व्या०—बाह्यदृष्टिप्रचारेषु इति—"महात्मनः" स्वरूपपरू मेदज्ञानपूर्वकशुद्धात्मानुभवलीनस्य सर्वसमृद्धयः स्फुटाः प्रक " अंतरेव " आत्मनः एव स्वरूपमध्ये एव भास पनः स्वरूपानंदमयोऽहं, निर्मलाखंडसर्वप्रकाशकज्ञानवानहं, इ वृद्धय औपचारिकाः अक्षयानंतपर्यायसंपत्पात्रोऽहं, इ स्वसत्ताज्ञानोपयुक्तस्य स्वात्मनि भासंते, कीदृशेषु सत्सु बाह्यदृष्टिप्रचारेषु मुद्रितेषु सत्सु "बाह्या दृष्टिः" विषयसंचा त्मिका तस्याः "प्रचारा" विस्ताराः "मुद्रितेषु" रोधितेषु न इंद्रियप्रचारचलोपयोगैः कर्ममलपटलावगुंठिताप्यात्मसंपद् ज्ञाप इति इत्यनेन बहिर्गमनमुपयोगस्य न कर्तव्यमिति ॥ १ ॥

समाधिनन्दनं धैर्यं, दम्भोलिः समता शची ।
ज्ञानं महाविमानं च, वासवश्रीरियं मुनेः ॥ २ ॥

व्या०—समाधिरिति—"मुनेः" स्वरूपज्ञानानुभवलीनस्य साधे "इयं" उच्यमाना "वासवस्य" इंद्रस्य "श्रीः" लक्ष्मीः शोभ वर्त्तते । अत्र मुनेः पवित्ररत्नत्रयीपात्ररूपेंद्रस्य "समाधिः" ध्या नध्यानाध्येयैकत्वेन निर्विकल्पानंदरूपः समाधिः स एव नंद वनं, हरेः नंदनवनक्रीडा सुखाय उक्ता, साधोः समाधिक्रीड सुखाय, तत्राप्यौपाधिकात्मीयकृतो महान् भेदः, स च अत्या त्मभावनाज्ञेयः, अस्य धैर्यं वीर्याकंपता औदयिकभावाक्षुब्धता लक्षणं "वज्रं" दंभोलिः पुनः "समता" इष्टानिष्टेषु संयोगे अरक्तद्विष्टता सर्वेऽपि पुद्गलाः कर्करचिंतामण्यादिपरिणताः जीवाश्च भक्ताभक्ततया परिणताः ते सर्वे न मम भिन्नाः एतेषु क रागद्वेषपरिणतिरित्यवलोकनेन समपरिणतिः समता सा शची स्वधर्मपत्नी "ज्ञानं" स्वपरभावयथार्थावबोधरूपं "विमानं" सर्वा-

असद्रूपं [illegible] चिन्तयेत् ।
[illegible] निराकारं निर्मलं तत्त्वमात्मना ॥ ५ ॥

इत्यात्मस्वरूपदर्शनी सर्वं पश्यात्मत्वेन जानाति स आत्मवित्
प्रशंसां न करोति तदेवाह—

गुणैर्यदि न पूर्णोऽसि, कृतमात्मप्रशंसया ।
गुणैरेवासि पूर्णश्चेत्कृतमात्मप्रशंसया ॥ १ ॥

व्या०—गुणैरिति—" यदि गुणैः " केवलज्ञानादिभिः पूर्णः न असि तर्हि ' आत्मप्रशंसया ' स्वगुणस्तुत्या ' कृतं ' नाम भिन्ने निर्गुणात्मनः का प्रशंसा ? येऽतिशयेनाधिका गुणा इति कृत्वा वदन्ति नैव प्रशंसा ' चेद् ' यदि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र-तपोरूपैः क्षायकगुणैः क्षायिकज्ञानदर्शनचारित्ररूपैः सिद्धगुणैः पूर्णः तर्हि आत्मप्रशंसया कृतं भिन्नाभिन्नैः प्राग्भा-विता गुणा स्वतएव प्रकटीभवंति नैपुण्यैः परिणामतः विस्तृतं तिष्ठति इति का स्वगुणात्मगुणप्रशंसना ॥ १ ॥

पुनर्व्यवहारेण दर्शयति—

श्रेयोद्रुमस्य मूलानि, स्वोत्कर्षाम्भः प्रवाहतः ।
पुण्यानि प्रकटीकुर्वन्, फलं किं समवाप्स्यसि ? ॥२॥

व्या०—श्रेयोद्रुम इति—भो भद्र ! ' पुण्यानि ' पवित्राणि " श्रेयोद्रुमस्य मूलानि " कल्याणवृक्षस्य मूलानि " स्वोत्कर्षाम्भः प्रवाहतः " स्वस्य उत्कर्षः औत्सुक्यं स एव अंभः प्रवाहः तस्मात् " प्रकटीकुर्वन् " व्यक्तं कुर्वन् किं फलं समवाप्स्यसि ? अपि तु नैव यस्य द्रुमस्य मूलं उत्पाटितं तेन फलोत्पत्तिर्न भवति ॥ २ ॥

भूमयः केन धृता, उपमा तु महत्त्वज्ञापिका सामर्थ्यज्ञापिका च । पुनः कथंभूतो मुनिः ? नवं यद् ब्रह्मज्ञानं तदेव सुधा तस्याः कुंडः, "निष्ठा" स्थितिः तस्या अधिष्ठायकः, इत्यनेन तत्त्वज्ञानामृतकुंडस्थैर्यरक्षक इति ॥ ४ ॥

मुनिरध्यात्मकैलाशे, विवेकवृषभस्थितः ।
शोभते विरतिज्ञप्ति–गङ्गागौरीयुतः शिवः ॥ ५ ॥

व्या०–मुनिरध्यात्मेति, अत्र श्लोकत्रये महादेवकृष्णब्रह्मोपमानं औपचारिकं, नहि ते कैलाशगंगासृष्टिकरणोद्यताः, किंतु लोकोक्तिरेषा, तेन श्लेषालंकारार्थं हि वाक्यपद्धतिः, न सत्या । "मुनि" तत्त्वज्ञानी "अध्यात्मं" "आत्मस्वरूपैकत्वं" तद्रूपे कैलाशे आस्थाने, "विवेकः" स्वपरविवेचनं स एव "वृषभः" बलीवर्दः, तत्र स्थितः, "विरतिः" चारित्रकलास्रवनिवृत्तिः, ज्ञप्तिः ज्ञानकला शुद्धोपयोगता, एव गंगागौरी, ताभ्यां युतः 'शिवः' निरुपद्रवः, उपचारात् शिवः रुद्रो भासते, रुद्रस्य गंगायुतत्वं विद्याधरत्वे पार्वतीमनोरंजनाय विक्रियाकाले वाच्यम् ॥ ५ ॥

ज्ञानदर्शनचन्द्रार्क–नेत्रस्य नरकच्छिदः ।
सुखसागरमग्नस्य, किं न्यूनं योगिनो हरेः ? ॥ ६ ॥

व्या०–ज्ञानदर्शनेति–"योगिनः" रत्नत्रयपरिणतस्य "हरेः" कृष्णात् किं न्यूनं ?, न किमपि, किंभूतस्य योगिनः ? "ज्ञानदर्शनचंद्रार्कनेत्रस्य" ज्ञानं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषावबोधः, सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यावबोधः दर्शनं, ते एव चंद्रार्कौ नेत्रे यस्य स तस्य, हरेः चंद्रार्कनेत्रत्वं तु लोकोक्तिरेव, पुनः किंभूतस्य योगिनः ?–'नरकच्छिदः' नरकगतिनि-

[illegible] । [illegible]
[illegible] ।

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ॥ ४ ॥
[illegible]मालारामघनादिभिः ।
उत्कर्षः परमर्षे-श्चिदानन्दघनस्य सः ॥ ५ ॥

[illegible]

[illegible] ।

[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] पर्यायाः परिभाविताः ।
[illegible] महामुनेः ॥ ६ ॥

[illegible]

[illegible] ॥ ८ ॥

निर्वेशा अनवद्यमानन्तचिन्मात्रमूर्तयः ।
योगिनो [illegible]कल्पनाः ॥ ८ ॥

[illegible] ॥ ८ ॥

इति [illegible] ।

अथ [illegible]कम् ।

[illegible]

**दुःखं प्राप्य न दीनः स्यात्सुखं प्राप्य च विस्मितः।
मुनिः कर्मविपाकस्य, जानन्परवशं जगत् ॥ १ ॥**

व्या०–दुःखं प्राप्य न दीनः स्यादिति–"मुनिः" तत्त्वरसिकः "दुःखं" असातादि, प्राप्य दीनः न स्यात्, कृतभोगे का दीनता ?, करणकाले अविचारेण करणेन तद्विपाक ईदृश, एवं च पुनः "सुखं" सुतादिराज्यैश्वरराज्यादि प्राप्य विस्मितः न स्यात्, को विस्मयः ?, स्वगुणावरणभूते विपाकमिष्टे कर्मणि, "जगत्" लोकं "कर्मविपाकस्य" शुभाशुभोदयस्य "परवशं" पराधीनं जानन्, सर्वं जगत् कर्माधीनं तत्त्वज्ञानी एवं कर्मविपाकमवगणय्य तत्त्वसाधने यत्नवान् भवति ॥ १ ॥

**येषां भ्रूभङ्गमात्रेण, भज्यन्ते पर्वता अपि।
तैरहो कर्मवैषम्ये, भूपैर्भिक्षापि नाप्यते ॥ २ ॥**

व्या०–येषां भ्रूभंगेति–'येषां' पुरुषाणां 'भ्रूभंगमात्रेण,' भ्रूविक्षेपेण, 'पर्वता' गिरिवरा अपि भज्यंते, तैर्भूपैः कर्मणां वैषम्यं कर्मजनिता विषमता तस्मिन् कर्मोदये दुःखावस्थायां, भिक्षापि ' न आप्यते ' न प्राप्यते, इति शुभाशुभविपाकवैचित्र्यम् ॥ २ ॥

**जातिचातुर्यहीनोऽपि, कर्मण्यभ्युदयावहे ।
क्षणाद्रङ्कोऽपि राजा स्यात्, छत्रच्छन्नदिगन्तरः॥३॥**

व्या०–जातिचातुर्येति–कश्चित् रंकोऽपि 'क्षणात्' क्षणमात्रेण, 'अभ्युदयावहे' शुभोदर्के कर्मणि राजा 'स्यात्' भवेत्, कथंभूतः रंकः ?–जातिमातृका चातुर्य–दक्षत्वं ताभ्यां हीनः

रमवाटी बहिर्दृष्टिर्भ्रमच्छायान्तरीक्षणम् ।
रभ्रान्तस्तत्त्वदृष्टिस्तु, नास्यां शेते सुखाऽऽशया ॥२॥

व्या०—भ्रमवाटी इति—" बहिर्दृष्टिः " भ्रमोत्पन्ना भ्रमहेतु-
ति निवारणीया भवहेतुत्वात्। तत्त्वदृष्टिः श्रेयोऽभ्रमवाटी भो
च बहिर्दृष्टिः बाह्यभावावलोकने 'शोभनं इदं अशोभनं इदं
तं, इदं करोमि इदं कार्यं' इत्यादयवलोकनरूपा दृष्टिः भ्रमवाटी
रस्य वाटी रक्षिका दृष्टिः भ्रमविकल्पकर्त्री बाह्यावलोकनेन
देहनिष्ठतादिचिन्तनेन विकल्पकल्पना जायते, येनात्मा च परा-
गेयतन्त्याकुलिता स्वकार्यविमुखा तत्रैव रमते । उक्तं च ।

रागे दोसे रत्तो, इट्ठाणिट्ठेहिं भमसुहं पत्तो ।
कप्पेइ कप्पणाओ, मज्झेयं अहंपि एयस्स ॥ १ ॥

तदीक्षणं भ्रमकारः तादृगेकांतारोपजं ज्ञानं तु शुभ-
स्पर्शसंयोगे सुखारोपः तदभावे अशुभभावे दुःखारोपरूपं ज्ञानं
च्छाया भ्रमस्य शीतलता तत्र भ्रमालय एव रमते तु पुनः
तिः तत्त्वदृष्टिः यथार्थतत्त्वे स्याद्वादे स्वपरस्वभावदर्शने दृष्टिः
। तत्त्वज्ञः स्वरूपानुभवरक्तः अस्यां भ्रमच्छायायां सुखाशया
प्रार्थनीया न शेते किन्तु पूर्वकर्मोदयेन तत्र वर्तमानोऽपि
गेहशिलापातमोचनवत् सशंकः साशंकः च दुःखमेवेदमिति
न् निर्विण्णानेव भवति । उक्तं च—

पुरुविरया इट्ठा, ततोविन्नूणमिच्छदिट्ठीणं ।
विसाइंपततताणं, दुहमूलदुहफलाचेव ॥ १ ॥
जह चम्मयरो चम्मस्स, गंधं नो णायइ कट्ठे छुद्धो ।
तह विसयासी जीवा, विसये दुक्खं न जाणंति ॥ २ ॥

णामतः तीव्रक्षयोपशमभावावाप्तसाधनाः अपूर्वकरणबलेन : उपशमचारित्रपरिणतिं आरूढाः सर्वथा मोहोदयरहिताः, च पूर्व श्रुतकेवलिनः अपि 'दुष्टेन कर्मणा' सत्तागतेन मोहेन उदयात्स्थायोग्यभूतेन, अथवा आयुःकर्मप्रांतकरणेन प्रतिपातमापन्नाः अहो ? अनंतसंसारं भ्राम्यंते ते चतुर्गतिषु भ्रमंति, अतः कर्मायत्ता चेतना न करणीया, विपाककाले स्वकीयक्षयोपशमस्वरूपानुयायी रक्षणीयः, नहि विपाकः प्रतिपातामिनवकर्मबंधहेतुः किंतु स्वकीयचेतना वीर्यं च मोहोदयानुगतत्वेन हेतुत्वपरिणत्या बंधः, अतः हेतुत्वं वारणीया, तदा च परकृतेव कर्मकर्तृता आत्मशक्तेः अप्रवर्त्तमानत्वात्, न ह्यप्रवृत्ता शक्तिः कर्मकर्त्री, तेन नोदनाहेतुता, किंतु मिथ्यात्वादिहेतुभिरुदयमूर्तैः सम्यक्त्वादयो गुणा आच्छादिताः, पुनः चेतनावीर्यदानादयः क्षायोपशमिकगुर्विपरीतश्रद्धानभासनपररमणिकपरिणतामिनवकर्महेतुतामास्कंदंति, अतः अशुद्धतया परिणमितात्मापरिणतिरभिनवकर्महेतुः, निदर्शनं च सूक्ष्मैकेंद्रियाणां तु अशुद्धावगक्षयोपशमबाहुल्येन तीव्रबंधकता इत्यादि भाव्यं, उक्तं च-"अप्पा करेइ कम्माइं, अप्पा वेएइ परवसो एसो" इत्यादि । तथा च भगवतीप्रज्ञापनादौ-" अत्तकडा कम्मा बंधन्ति नो परकडा अप्पवगाढा नाप्पा नवगाढा" उत्तराध्ययने-"अता काना विकत्ता य सुहाण दुहाण य" इत्यादि । पुनः आचारांगे-"आयाणं सागडब्भि" इत्यादि स्वतो योज्यं, श्रेणिप्रतिपातविचारे आवश्यकनिर्युक्तौ—

> उवसामं उवणीया, गुणमहया जिणचरित्तसरिसंपि ।
> पडिवायंति कसाया, किं पुण सेसे सरागत्थे ।। १ ।।

इत्य अयं मोहमूढो चेव इत्थ विसए रमे यदइं नागइ मुत्तमे ।१। इय चिंतयंतो नाव पत्ते महानयरे अणे-गनरविमाणरूवेहिं विरायमाणेहिं देवलोगरूवेणाविव मुणणा अवरिसो मन्नतं भणइ—भो भो ! निग्गंथा ! अत्रे एयंमि नयरे मोहयमी निवड्इ. तेण पुष्ट कहंति लोगा उच्छलंति भवो-विग्गना अत्थाणं न हुज्जइ इच्चलोगो मा कोवियापविह-लोहविद्दारि पम्हट्ठा लोगा असुइरसिव्वा, मोहमूरमणा नो उवएण हुवत्ता अणेगनिग्गहेह, ता साहवो भणंति. याउ हरिसं मोहाय सम्मुहेमिमयरो सिले गमइ न हुज्जइ इंदवे-म्मत्ता विसइं तेणं अमयपुरीहिया जाणगणइं वेरग्गकारणं हवइ इति ॥ ३ ॥

बाह्यदृष्टेः सुधासार-घटिता भाति सुन्दरी ।
तत्त्वदृष्टेस्तु साक्षात्सा विण्मूत्रपिठरोदरी ॥ ४ ॥

व्या०—बाह्यदृष्टेरिति—" बाह्यदृष्टेः " चर्मचक्षुषः "सुंदरी" स्त्री " सुधासारघटिता भाति " अमृतमयी इव भाति तदर्थं मर्दयति धनं, स्वजीवितं भावनं. मोहयुक्ता ज्ञानयोऽनेके तु पुनः " तत्त्वदृष्टेः " निर्मलज्ञानचक्षुषयथार्थदर्शकस्य " सा " सुंदरी " विण्मूत्रपिठरोदरी " भाति " वि. " विष्टा "मूत्र" भस्त्रवत् " पिठरं " अस्थि तेषां उदरी भाजनरूपा भाति । उक्तं च ।

रसासृग्मांसमेदोऽस्थि-मज्जाशुक्रान्त्रवर्चसाम् ।
अशुचीनां पदं कायः शुचित्वं तस्य तत्कुतः ? ॥ १ ॥
वैरस्यं गर्भकत्वं, बन्धत्वं दुर्गन्धता ।
इति नैसर्गिका दोषा, यासां तासु रतेन कः ? ॥ २ ॥

साम्यं बिभर्ति यः कर्म--विपाकं हृदि चिन्तयन् ।
स एव स्याच्चिदानन्द मकरन्दमधुव्रतः ॥ ८ ॥

व्या०–साम्यमिति य आत्मार्थी 'कर्मविपाकं' शुभाशुभविपाकं चिंतयन्, 'हृदि' चित्ते 'साम्यं' तुल्यत्वं इष्टानिष्टतारहितं बिभर्त्ति, स एव योगी चिदानंदमकरंदमधुव्रतः, ज्ञानानंदस्य मकरंदः–रहस्यं तस्य मधुव्रतः–रसास्वादी 'स्यात्' भवति, आत्मानंदभोगी भवति, इत्यनेन आत्मानंदरसरसिकः शुभाशुभविपाकोदयेन रागद्वेषवान् न भवति, सर्वान् प्रति समवृत्ति र्मुनिः इत्येवं कर्मविपाके समानत्वचिंतनाष्टकं समाप्तं ॥ ८ ॥

इति कर्मविपाकव्यानाष्टकम् व्याख्यातं ॥ २१ ॥

अथ भवोद्वेगाष्टकम् ॥ २२ ॥

कर्मविपाकोद्विग्नभावात् संसारात् उद्विजति, अतो भवोद्वेगाष्टकं लिख्यते, तत्र नामभवः रुद्रादिः, अथवा–तन्नाम सर्वोच्चारूपं, स्थापनाभवः लोकाकाशः तदाकारो वा, द्रव्यभवः भवभ्रमणे हेतुरूपधनस्वजनादिः, भावभवः चतुर्गतिरूपः जन्ममरणादिलक्षणः, नयस्वरूपं च–द्रव्यनिक्षेपे यावत् नयचतुष्टयं, भावनिक्षेपे शब्दादिनयत्रयं ज्ञेयं । अत्र च भवमग्नानां जीवानां न धर्मेच्छा, इंद्रियसुखास्वादलीना मत्ता इव निर्विवेका भ्रमंति, दुःखोद्विग्ना इतस्ततः दुःखापनोदार्थं, अनेकोपायचिंतनव्याकुला भ्रमंति शूकरा इव, इति महामोवभवांभोधौ किमन्यत् सर्वसिद्धिकरं श्रीमद्वीतरागवंदनादिकं कुर्वंति, इंद्रियसुखार्थं च तपउपवासनादिकष्टानुष्ठानमाजन्मकृतं हारयंति निदानदोषेण, गणयंति

आश्चर्याय भवन्ति, " तत्त्वदृशः " तत्त्वज्ञानिनः तत्र राज-मंदिरे अश्वभवनात् करितुरगभवनात् कोऽपि भेदः न, अनंत-ज्ञानानंदाद्वैतात्मानुभवरक्तो वनं नगरतुल्यं जानीते ॥ ६ ॥

भस्मना केशलोचेन, वपुर्धृतमलेन वा ।
महान्तं बाह्यदृग् वेत्ति, चित्साम्राज्येन तत्त्ववित् ॥७॥

व्या०–भस्मनाइति–" बाह्यदृग् " बाह्यदृष्टिः " भस्मना केशलोचेन " केशाकर्षणेन " वपुषा " शरीरेण धृतो मलो येन तेन महत्त्वं साधुत्वं आचार्यत्वं वेत्ति. महत्त्वस्वरूपापरि-ज्ञानी जानाति " तत्त्ववित् " तत्त्वज्ञानी आत्मस्वरूपाव-बोधी " चित्साम्राज्येन ज्ञानपूर्णत्वेन स्वपर्यायपरिणमनेन शुद्धा-स्वज्ञानंदसाधनमहत्त्या स्वगुणतान्भावेन महांतं " वेत्ति " जा-नाति । उक्तं च षोडशके—

बालः पश्यति लिङ्गं, मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ।
आगमतत्त्वं तु बुधः, परीक्षते सर्वयत्नेन ॥ १ ॥

उत्तराध्ययनेऽपि—

नवि मुंडिएण समणो, न ॐकारेण बंभणो ।
न मुणी रन्नवासेण, कुसचीरेण न तावसो ॥ १ ॥
समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेण य मुणी होइ, तवसा होइ तावसो ॥ २ ॥

आत्मा सामायिकं भवति, इत्यादि व्याख्यायां अतः आत्म-ज्ञानरमणविश्रामानुभवलीना अदीना मुनयो भवंति ॥ ७ ॥

न विकाराय विश्वस्यो–पकारायैव निर्मिताः ।
स्फुरत्कारुण्यपीयूष–वृष्टयस्तत्त्वदृष्टयः ॥ ८ ॥

गंतुमशक्या भवंति, इत्यनेन अज्ञानतलातिगंभीरमध्यस्य संसारपारावारस्य रोगशोकवियोगादिकष्टपर्वतैः रुद्धमार्गस्य जंतोः सह गमनमशक्यं भवति । पुनः यत्र भवसमुद्रे कषायाः–क्रोधमानमायालोभरूपा पातालकलशाः तृष्णा विषयपिपासा तद्रूपैः महानिलैः भृताः, चित्तं–मनः तस्य संकल्पाः अनेकजलसमूहाः तद्रूपा वेला–जलप्रवाहरूपा तस्याः वृद्धिं वेलागमनं 'वितन्वते,' विस्तारयंति, इत्यनेन कषायोदयात् तृष्णावातप्रेरणया विकल्पवेलां वर्द्धयंति, भवजलधौ संसारांबुधौ इति ॥ २ ॥ यत्र जन्ममरणसमुद्रे स्मरः–कंदर्पः तद्रूपः अंतर्मध्ये और्वाग्निः–वाडवानलः ज्वलति, यत्राग्नौ स्नेहेंधनः स्नेहो–रागः स एव इंधनं–ज्वलनयोग्यकाष्टसमूहः यस्मिन् अन्यत्र वडवाग्नौ जलेंधनं इति, किंभूतः रागः ? यः घोररोगशोकादयो मत्स्यकच्छपाः तैः संकुलः व्याप्तः, इत्यनेन रागाग्निप्रज्वलनरोगशोकतापितप्राणिगणः एवंरूपो भवाब्धिः पुनः यत्र सांयात्रिकाः–प्रवहणस्था लोकाः, अत्रापि व्रतनियमादिपोतस्था जीवाः उत्पातसंकटे कष्टे पतन्ति, कैः ? दुष्टबुद्धिः मत्सरः असहनसंयुक्ताहंकारः, द्रोहः कापट्यं इत्यादयः एव विद्युद्दुर्वातगर्जितानि तैः दुर्बुद्धिविद्युता-मत्सरदुर्वातेन द्रोहगर्जितेन व्रतादिपोताः प्रवर्त्तमाना अपि पंकस्खलनाद्युत्पातान् लभंते, इत्यनेन महाभववारिधौ एते महान्यायानः सन्मार्गप्राप्तौ तस्मात् अतिदारुणात् महाभयात् नित्योद्विग्नः सदोदासीनः तस्य संतरणोपायं सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपं कांक्षति–अभिलषति, इति तीव्रभवभीत इव तिष्ठति, चिंतयति च–मम शुद्धज्ञानमयस्य, परमतत्त्वरमणचारित्रपवित्रस्य, रागद्वेषक्षयसमुत्थपरमशमशीतलस्य, अनंतानंदसुखमग्नस्य, सर्वज्ञस्य, परमदर्शस्य, शरीराहारसंगमुक्तस्यामूर्तस्य, कथं शरीरादिव्यसनसमू:

भवात्ययां अतः कथयतः धर्मरहस्यं इत्युपदेशपराः तत्त्वज्ञाः यति महात्मानः सेव्या इति बाह्यदृष्टित्वं परित्यज्य आंतरत्त्वावभासनरसिका भवंतु भव्याः ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं तत्त्वदृष्ट्यष्टकम् ॥ १९ ॥

अथ सर्वसमृद्ध्यष्टकं ॥ २० ॥ व्याख्यायते ।

सर्वा समग्रा समृद्धिः संपदा सर्वसमृद्धिः तत्र नामसमृद्धिः स्थापनरूपा जीवस्याजीवस्य, स्थापना समृद्धिः शक्तिरूपा, द्रव्यसमृद्धिः धनवत्यादिरूपा, शक्रचक्रवर्त्यादीनां लौकिका, लोकोत्तरा पुनः मुनिलब्धिसमृद्धिरूपा ।

आमोसहिविप्पोसहि, खेलोसहिजल्लमोसहीचेव ।
संभिन्नसोयं उज्जुमई, सव्वोसहि चेव बोधव्वा ॥ १ ॥
चारणआसीविसकेवलीय मणनाणिणोयपुव्वधरा ।
अरिहंतचक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा य ॥ २ ॥

इत्यादिलब्धयः ऋद्धयः, तत्र केवलज्ञानादिशक्तिर्लोकोत्तरा भावर्द्धिः, सं-सम्यक् प्रकारेण ऋद्धिः समृद्धिः सर्वासां समृद्धिश्च सर्वसमृद्धिः, अत्र साधनानवच्छिन्नात्मतत्त्वसंपन्नमग्नानां या तादात्म्यानुभवयोग्या समृद्धिः अवसरः तथाश्च ग्रन्थकृदांतभावनया तत्त्वज्ञानेषु तद्योग्येषु तदुच्यते तेषु तपोयोगिषु आद्याः तद्गुणेषु सापेक्षेषु अंत्या इति । अत्र प्रथमं आत्मनि समृद्धिपूर्णत्वं भासते तथा कथयति ।

बाह्यदृष्टिप्रचारेषु, मुद्रितेषु महात्मनः ।
अन्तरेवावभासन्ते, स्फुटाः सर्वाः समृद्धयः ॥ १ ॥

तैलस्थालं शिरसि धृत्वा सापेक्षयोगः अपतिततैलबिंदुः समागतः। तद्वन्मुनिः अनेकगुरुदुःखव्याकुले भवेऽपि स्वसिद्धयर्थं प्रमादरहितः प्रवर्त्तते, पुनः दृष्टांतयति, यथा–स्वयंवरे कन्यापरिणयनार्थं राधावेधोद्यतः स्थिरोपयोगयोगतया लघुतालाघविकः स्थिरचित्तो भवति, तथा मुनिः भवभीतः संसारसंसरणगुणावरणादिमहादुःखाद् भीतः क्रियासु समितिगुप्तिकरण सप्ततिकरणरूपासु अनन्यचित्तो भवति, न अन्यत्र अपरभावे चित्तं मनो यस्य स अनन्यचित्तः स्यात् एकाग्रमानसः भवति उक्तं च––

गाईज्जंति सुरसुंदरीहिं, वाइज्जंतावि वीणमाइहिं ।
तहविहुसमसत्ता वा, चिट्ठंति मुणी महाभागा ॥ १ ॥
पवत्तिगयलगया, भावत्तिएहिं कडुअफासेहिं ।
उज्जलवेयणपत्ता, समचित्ता हुंति निग्गंथा ॥ २ ॥
अमिसकुच्छेणबणे, सीहेण य वाव्वक्कसंगहिआ ।
तहवि हु समाहिपत्ता, संवरजुत्ता मुणिवरिंदा ॥ ३ ॥ ६ ॥

कथमीदृग्विपाके निर्भया निर्ग्रंथाः ? इत्युपदिशन्नाह ।

विषं विषस्य वह्निश्च वह्निरेव यदौषधम्।
तत्सत्यं भवभीतानामुपसर्गेऽपि यन्न भीः ॥ ७ ॥

व्या०–विष विषस्य इति यथा–कश्चिन् विषयार्त्तः विषस्य औषधं विषमेव करोति, यथा सर्वदष्टः निंबादिचर्वणेन विमेसति अथवा–कश्चिन् अग्निदग्धः पुनरपि अग्निदाहपीडावारणाय पुनः अग्नितापं अंगीकरोति, इति तत्सत्यंयत् यस्मात्कारणात् भवभीतानां मुनीनां उपसर्गेऽपि भयं न, कर्मक्षपणोद्यतस्य उपसर्गे बहुकर्मक्षपणत्वं मन्वानः साधुः तदपचयं विदन् न भयवान् भवति, साध्यकार्यस्य निष्पद्यमानत्वात् इति ॥ ७ ॥

वज्रीवक्रं महाविमानं, इत्यादिपरिवृतः मुनिः वज्रीव भासते ।
उक्तं च योगशास्त्रे—

पुंशामयकलम्पं ज्ञानवनामप्यपं पदं मृतम् ।
यद्यान्मन्यात्मज्ञानमात्रमेनत्तमाहितं ॥ १ ॥
श्रयते सुवर्णभावं, सिद्धिरसस्पर्शतो यथा लोहम् ।
आत्मध्यानादात्मा, परमात्मत्वं तथाऽऽप्नोति ॥ २ ॥

विस्तारितक्रियाज्ञान—चर्मच्छत्रो निवारयन् ।
मोहम्लेच्छमहावृष्टिं, चक्रवर्त्ती न किं मुनिः ?॥३॥

व्या०—विस्तारितेति—"मुनिः" सम्यग्ज्ञानविरतः द्रव्यभाव-संवरतः किं चक्रवर्ती न ? अपितु अस्त्येव. किं भूत ? विस्तारितक्रियाज्ञानचर्मच्छत्रः. क्रिया च ज्ञानं च क्रियाज्ञाने चर्म च छत्रं च चर्मच्छत्रे क्रियाज्ञाने एव चर्मच्छत्रे क्रिया-ज्ञानचर्मच्छत्रे, विस्तारिते क्रियाज्ञानचर्मच्छत्रे येन सः, विस्ता-रित इत्यनेन सक्रियोद्यतः सम्यग्ज्ञानोपयुक्तः । मोह एव म्लेच्छः तस्य महती वृष्टिः तां निवारयन् मोहम्लेच्छा उत्तर-संज्ञाद्यास्तत्प्रयुक्तमिथ्यात्वेत्यवृता कुवासनावृष्टिः स्वगुणरस-स्वपरस्मीननिवारितचक्रवाग्नायमः मुनिः भावचक्रवर्तीव भासते ॥३॥

नवब्रह्मसुधाकुण्ड—निष्ठाधिष्ठायको मुनिः ।
नागलोकेशवद्भाति, क्षमां रक्षन प्रयत्नतः ॥ ४ ॥

व्या०—नवब्रह्मेति—"मुनि" नवब्रह्मगुप्तिनाम्न्यानः, "नाग-लोकेशवत्" उरगपतिवत् भाति. किं कुर्वन् "क्षमा" पृथ्वी क्रोधापहरणपरिणतिः वचनधर्मात्मिका क्षमा तां रक्षन् धारयन् इति । उरगपतेः क्षमाधारत्व लोकोपचारात्. नहि तन्मात्रा

भावलोकः, द्रव्यगुणपर्यायपरिणमनरूपः पर्यवलोकः, इदं च सर्वमपि आवश्यकनिर्युक्तितः ज्ञेयं । अथवा-द्रव्यलोकः संसाररूपः अप्रशस्तभावलोकः परभाविकत्वजीवसमूहः, अत्र भवलोकाप्रशस्तभावलोकस्य संज्ञा त्याज्या, लोकसंज्ञा च नयसप्तकेन धर्मार्थिभिः परिहरणीया ।

प्राप्तः षष्टं गुणस्थानं, भवदुर्गाद्रिलङ्घनम् ।
लोकसंज्ञारतो न स्यान्मुनिर्लोकोत्तरस्थितिः ॥ १ ॥

व्या०-प्राप्त इति-'मुनिः' संयमी आस्रवविरतिः 'षष्टं' सर्वविरतिलक्षणं प्रमत्ताख्यं प्राप्तः 'लोकसंज्ञा' लोकैः कृतं तत्कर्तव्यं गतानुगतिकत्वानेनिग्स्यत्र 'रतः' रागी गृहीतग्रहः न स्यात् लोकैः कृतं तदेव करणीयं इति मतिं निवार्य आत्मसाधनोपायरतः स्यात्, किंभूतं षष्टं गुणस्थानं ? भवः संसारः स एव दुर्गाद्रिः विषमपर्वतः तस्य लंघनं, किंविशिष्टः मुनिः ? लोकोत्तरस्थितिः लोकातीतमर्यादया स्थितः, लोको हि विषयाभिलाषी, मुनिः निष्कामः, लोकः पुद्गलसंपत् ज्येष्ठत्वमानी मुनिर्ज्ञानादिसंपदा श्रेष्ठः, अतः किल लोकसंज्ञया किं तेषाम् ? ॥ १ ॥

यथा चिन्तामणिं दत्ते, बठरो बदरीफलैः ।
हहा जहाति सद्धर्मं, तथैव जनरञ्जनैः ॥ २ ॥

व्या०-यथा चिन्तामणिमिति-'यथा' येन प्रकारेण वणिक्, 'बठरः' मूर्खः बदरीफलैः चिन्तामणिं दत्ते, तथैव मूढः 'जनरंजनैः' लोकश्लाघाभिलाषैः सद्धर्मं द्रव्याचरणस्वात्मभावलक्षणं 'हहा' इति खेदे 'जहाति' त्यजति, दृश्यतेन जिनभक्तिश्रुतश्रवणमाहात्म्यमाद्दिकं यशः पूजादिना हारयति । उक्तं च—

वारकस्य, हरेस्तु—नरकाभिधानमहासुरनिवारकस्य, सुखसागरमग्नस्य, कृष्णार्थे इंद्रियजसुखलीलासमुद्रमग्नस्य. योगिनः सुखं सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रसमाधिनिष्पन्नं तस्य सागरः तत्र मग्नस्य, आध्यात्मिकसुखपरिणामभाजनस्य साधोः केन सह न्यूनता ?, न केनापि इति ॥ ६ ॥

या सृष्टिर्ब्रह्मणो बाह्या, बाह्यापेक्षावलम्बिनी ।
मुनेः परानपेक्षान्तर्गुणसृष्टिस्ततोऽधिका ॥ ७ ॥

व्या०—या सृष्टिर्ब्रह्मण इति—या "सृष्टिः" रचना "ब्रह्मणो" विधातुः सा "बाह्या" लोकोक्तिरूपा असत्या, पुनः बाह्या या अपेक्षा तस्या अवलंबिका, "मुनेः" स्वरूपसाधनसिद्धिमग्नस्य "अंतः" मध्ये आत्मनि व्यापकरूपा गुणानां सृष्टिः—रचना गुणप्रागभावप्रवृत्तिपरिणतिरूपा, बाह्यभावतः अधिका, " कथंभूता " गुणसृष्टिः ? परानपेक्षा, परेषां अनपेक्षा अपेक्षारहिता पराश्रयालंबनविमुक्ता स्वरूपावलंबनपरा गुणरचना सा सर्वतोऽधिका इति ॥ ७ ॥

रत्नैस्त्रिभिः पवित्रा या, स्रोतोभिरिव जाह्नवी ।
सिद्धयोगस्य साऽप्यर्हत्पदवी न दवीयसी ॥ ८ ॥

व्या०—रत्नैस्त्रिभिरिति—सिद्धयोगस्याष्टांगयोगसाधनसिद्धस्य साधोः, साऽपि अर्हत्पदवी ज्ञानाद्यनंतचतुष्टयात्मकाष्टप्रातिहार्यान्विता जगद्धर्मोपकारिणी न दवीयसी—न दूरा इत्यर्थः । किंभूता पदवी ?—त्रिभिः रत्नैः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रैः पवित्रा, का इव ? स्रोतोभिः—प्रवाहैः जाह्नवी—गंगा इव, इति त्रैलोक्याद्भुतपरमार्थसाधकत्वाद्यतिशयोपेता अर्हत्पदवी साधकपुरु-

लोकः बहुतरः यतः अनार्येभ्यः आर्याः स्तोकाः, आर्येभ्यः जैनाचाराः स्तोकाः जैनाचारवर्तिषु जैनपरिणतिपरिणताः स्तोकाः, अतः बहुलोकानुयायीन, भवनीयमिति ॥ ४ ॥

श्रेयोऽर्थिनो हि भूयांसो, लोके लोकोत्तरे न च।
स्तोका हि रत्नवणिजः स्तोकाश्च स्वात्मसाधकाः॥५॥

व्या०–श्रेयोऽर्थिनो हि भूयांस इति–'लोके' व्याप्रवाहे 'श्रेयोऽर्थिनः' धनस्वजनभुवनवनतनुकल्याणार्थिन 'भूयांसः' प्रचुराः संति, च पुनः ' लोकोत्तरे' अमूर्तात्मस्वभावाविर्भावलक्षणे मवर्तमानाः 'नच' नैवेति 'हीति' निश्चितं रत्नवणिजः स्तोका, तथा 'च' पुनः 'स्वात्मसाधकाः' स्व आत्मा तस्य साधकाः निरावरणत्वनिष्पादकाः स्तोका इति ॥ ५ ॥

लोकसंज्ञाहता हन्त ! ! नीचैर्गमनदर्शनैः ।
शंसयन्ति स्वसत्यागमर्मघातमहाव्यथाम् ॥ ६ ॥

व्या०–लोकसंज्ञेति–'हंत' इति खेदे, 'लोकसंज्ञाहता' लोकसंज्ञाव्याकुलाः ' नीचैर्गमनदर्शनैः ' वक्रीभूतशरीरभून्यस्तदृष्ट्या गमनस्य दर्शनैः, 'स्वसत्यागमर्मघातमहाव्यथां स्वीयो यः सत्यागः जैनवृत्तित्यागः स च लोकरंजनाव्यवसायबहुलेन मर्मणि घातं लभते, तस्य घातस्य महाव्यथां महापीडां शंसयंति ज्ञापयंति, 'वयं पीडितेन वक्रशरीरा भ्रमामः' इति शंसयंति कथयंति वेति उत्प्रेक्षा, लोकोक्तिमीतित्यागवंतो जीवा आत्मस्वरूपघातका इति ॥ ६ ॥

आत्मसाक्षिकसद्धर्म–सिद्धौ किं लोकयात्रया ? ।
तत्र प्रसन्नचन्द्रश्च, भरतश्च निदर्शनम् ॥ ७ ॥

विपर्केऽस्त्वदृष्ट इति दृष्ट एव सुखदुःखयोर्हेतुरस्ति, किमदृष्टस्य कर्मणस्तद्धेतुकल्पनेन ?. तदयुक्तं, व्यभिचारात् । इह यत्तु-ल्यसाधनयोरिष्टशब्दादिविषयसुखसाधनसमेतयोरनिष्टार्थ—साधनसं-युक्तयोश्च बहूनां वा फले सुखदुःखानुभवलक्षणविशेषस्तारत-म्यतो दृश्यते, नासौ अदृष्टहेतुमंतरेणोपपद्यते, अनुमानांतरं विशेषावश्यके।

किरियाफलभावाओ, दाणाईणं फलं किसीएव ।
तंव दाणाइ फलं, मणप्पसायाइ जइ बुद्धी ॥ १ ॥

किरियासामन्नाओ, जं फलमस्सावि तं मयं कम्मं ।
तस्स परिणामरूवं, सुखदुक्खफलं जओ भुज्जो ॥ २ ॥

इत्यादि अग्निभूतिवादस्थले ज्ञेयं । तत्र नामस्थापना सुगमा, द्रव्ये कर्मवर्गणागतपुद्गला बध्यमाना बद्धाः सत्तास्थाः, अथवा द्रोऽपि, भावतः कर्म ज्ञानावरणादिविपाकरूपा गुणरोधा-कार्यरूपाः, नैगमतः मिथ्यात्वादिबंधहेतुजनककषायपंडिपरिच-यादयः, संग्रहतः तद्योग्यताविशिष्टो जीवपुद्गलो, व्यवहारतो नवर्गणागतपुद्गलः, प्राणातिपातादयश्च, ऋजुसूत्रतः बंधहेतुप-; सत्तास्थाः कर्मदलिका वा. शब्दतः चलोदीरणादिपूर्वकाः गतदलिकाः; समभिरूढत. ज्ञानादर्शनगुणानां मध्ये यद्गुण-तत्तदावरणं, एवंभूततः स्वकर्तृता ग्राहकता वेत्तृता व्याप-कर्मकार्यकरणसमर्थता इति. सिद्धसेनास्तु—"कर्मकर्तृता शब्द-दकता व्यापकता समभिरूढनय. गुणावरणत्वं एवंभूतनये" भावना कार्या, तत्र विपाकप्राप्ते कर्मणि शुभाशुभोदये ं करणीयं तदर्थमुपदेश. ।

अथ शास्त्राष्टकम् ॥ २४ ॥

अथ क्रमायातं यथार्थोपयोगकारणभूतं शास्त्राष्टकं प्ररूप्यते तत्र शास्त्रस्वरूपं ऐकांतिकात्यंतिकनिर्द्वंद्वनिरामयपरमात्मपदसाधनस्याद्वादपद्धत्या यत्र शास्यते तत्र शास्त्रं शासनं, न भारतरामायणादयः इहलोकशिक्षारूपाः शास्त्रव्यपदेशं लभन्ते तथा-जैनागममपि सम्यग्दृष्टिपरिणतस्य शुद्धवक्तुरेव मोक्षकारणं, मिथ्यात्वोपहतानां तु भवहेतुरेव । उक्तं च–नंदीसूत्रे तच्चैवं–"दुवालसंगं गणिपिडगं सम्मत्तपरिगाहिअं सम्मसुअं, मिच्छत्तपरिगाहिअंमिच्छसुअं" ॥ तथा च पूज्यैः ।

सदसदविसेसणाओ, भवहेउज्जहाट्ठिओवलंभाओ ।
नाणफलाभावाओ, मिच्छादिट्ठिस्स अन्नाणं ॥ १ ॥

इत्यादिजीवाजीवादिगुणपर्यायविभजनसर्वास्रवत्यागकर्तुरपि तन्नैश्चयिकश्रद्धाकृतेन सम्यग्दर्शनं, तेन यथार्थस्वपरविभागविभक्तस्वरूपोपादेयत्वपरिहेयत्वविज्ञानपूर्वकनिमित्तोपादानकारणनिर्धारशुद्धाविनश्वरस्वसिद्धपरिणतौ धर्मत्वप्रतीतिः सम्यग्दर्शनं इत्येवं सम्यग्दर्शनयुक्तस्य रुचिकृतपरमात्मभावस्य तत्साधनोपायानवच्छिन्नकथनं शास्त्रं, तच्च नामादिभेदतः, नामतः आचारांगादि। स्थापनातः सिद्धचक्रादौ स्थापितं श्रुतज्ञानं । द्रव्यतः पुस्तकन्यस्तं, अथवा–अनुपयुक्तपुरुषस्य क्षयोपशमगतं जैनागमं। नयविचारे तु–नैगमेन वचनोद्वापव्यंजनाक्षरादिकं, संग्रहतः जीवपुद्गलौ–द्रव्येंद्रियभावेंद्रिये शास्त्रं तद्धेतुत्वात्, व्यवहारतः पठनपाठनश्रवणात्मकं, ऋजुसूत्रतो मननिदिध्यासनरूपं, शब्दतः तत् श्रुताधारात्मस्पर्शज्ञानपरिणामलक्षणं, भावक्षयोपशमोपयुक्तस्य, समभिरूढतः तन्मयस्य सर्वाक्षरलब्धिमतः शुद्धोपयोगं, एवंभूततः

–रहितः अपि भूपो भवति, किमन्यो राजा ?–'छत्रेण' आतपत्रेण, 'छत्रं' छादितं आक्रान्तं दिगंतरं येन स इति चक्री अखंडाज्ञावान् भवति, विपाकप्रभावेन, तत्र नाश्चर्यं दुर्लभं हि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रं शुद्धात्मधर्मम् ॥ ३ ॥

विषमा कर्मणः सृष्टिर्दृष्टा करभपृष्ठवत् ।
जात्यादिभूतिवैषम्यात्का रतिस्तत्र योगिनः ॥ ४ ॥

व्या०–विषमा कर्मण इति कर्मणः–"सृष्टिः" रचना करभपृष्ठवत् विषमा दृष्टा, कस्मात् ?–जात्यादिभूतिवैषम्यात् जातिः कुलं–उच्चनीचादिसंस्थानवर्णस्वरसंपदादिभेदात् तस्य महद् वैषम्यं तस्मात् । उक्तं च प्रशमरतौ—

"जातिकुलदेहविज्ञानायुर्बलभोगभूतिवैषम्यम् ।
दृष्ट्वा कथमिह विदुषां, भवसंसारे रतिर्भवति ? ॥ १ ॥"

इति । 'तत्र' शुभोदये ऐश्वर्यादिकाले अनेकाशुद्धाध्यवसाये परसंयोगोत्पत्तिरूपे, 'योगिनः' रत्नत्रयीपरिणतस्य का रतिः ? न कापि । उक्तं च—

सुहजोगो रइहेऊ, असुहजोगो अरइहेउत्ति ।
रागो वट्टइ तेणं, अवगे दोसं विवट्टेइ ॥ १ ॥
सिवमग्गविग्घभूया, कम्मविवागा चरित्तघाइकरा ।
वीयरागे समया नहिं, चायपरिणामओ हवइ ॥२॥ ४ ॥

कर्मस्वरूपस्य मोक्षमार्गघातित्वं दर्शयति—

आरूढाः प्रशमश्रेणिं, श्रुतकेवलिनोऽपि च ।
भ्राम्यन्तेऽनन्तसंसारमहा दुष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥

व्या०–आरूढा इति केचित् मुनयो निश्चयरत्नत्रयीपरि-

अतो निर्ग्रंथानां वाचनादिस्वाध्यायमुख्यत्वम् ॥ १ ॥

पुरःस्थितानिवोर्ध्वाधस्तिर्यक्लोकविवर्त्तिनः ।
सर्वान् भावानवेक्षन्ते, ज्ञानिनः शास्त्रचक्षुषा ॥२॥

व्या०–पुरःस्थितानिति–'ज्ञानिनः' 'शास्त्रचक्षुषा' आगमोपयोगेन 'ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्विवर्त्तिनः' त्रैलोक्यवर्तिनः 'भावान्' पदार्थस्वरूपान् 'सर्वान्' सूक्ष्मबादरान् सहजान् विभावजान् परोक्षानपि क्षेत्रांतरस्थानपि आगमबलेन पुरः स्थितानिव सन्मुखस्थानिव अवेक्षंते पश्यंति । अत्र दर्शनं श्रुतक्षयोपशमं ज्ञेयम् ॥ २ ॥

शासनात् त्राणशक्तेश्च, बुधैः शास्त्रं निरुच्यते ।
वचनं वीतरागस्य, तत्तु नान्यस्य कस्यचित् ॥३॥

व्या०–शासनादिति–'बुधैः' विद्वद्भिः च पुनः 'त्राणशक्तेः' भवभीनकर्मावगुंठीनविभावमग्नजीवानां त्राणं रक्षणं तस्य शक्तिः सामर्थ्यं यस्य सः, तस्य शासनात् शिक्षणात् शास्त्रं निरुच्यते व्युत्पाद्यते, मोक्षमार्गस्य शासनात् शास्त्रं इति तत्त्वार्थवृत्त, पुनः तद्वीतरागस्य सर्वमोहक्षयनिष्पन्नपरमशमरसभावस्य वचनं मोक्षमार्गोपदेशकम् । उक्तं च उमास्वातिपूज्यैः ।

> केवलमधिगम्य विभुः, स्वयमेव ज्ञानदर्शनमनंतम् ।
> लोकहिताय कृतार्थोऽपि, देशयामास तीर्थमिदम् ॥ १ ॥

तस्यैव वचनं मोक्षांगं अन्यस्य कस्यचित् अपरंजनस्य सर्वज्ञमानिनः वचनं न मोक्षहेतु. ॥ ३ ॥

शास्त्रे पुरस्कृते तस्माद्वीतरागः पुरस्कृतः ।
पुरस्कृते पुनस्तस्मिन्नियमात्सर्वसिद्धयः ॥ ४ ॥

जइ उवसंतकसाओ, लहइ अणंतं पुणोवि पडिवायं ।
न हु मे वीससियव्वं, थोवेवि कसायसेसंमि ॥ २ ॥
अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं कसायथोवं च ।
न हु मे विससिअवं, थोवंपिहु तं बहू होइ ॥ ३ ॥
दासत्तं देइ रिणं, अइरा मरणं वणो विसप्पंतो ।
सव्वसराहमग्गी, दिंति कसाया भवमणंता ॥ ४ ॥
इति कर्मोदयेन आत्मा दीनो भवति, ॥ ५ ॥

अर्वाक् सर्वापि सामग्री, श्रान्तेव परितिष्ठति ।
विपाकः कर्मणः कार्यपर्यन्तमनुधावति ॥ ६ ॥

व्या०—अर्वाक् सर्वेति—सर्वापि सामग्री अर्वाक् श्रांता एव परितिष्ठति, नहि कार्यकरणसमर्था, कर्मणः विपाकः 'उदयकार्यपर्यंतं' चरमकारणं 'अनुधावति' अनुप्रवर्त्तते, अतः बाह्यसामग्री उपकारकाऽस्ति हि कर्मोदयभिन्ना, तेन कर्मोदयो बलवत्तरः, अतः कर्मक्षयाय यतितव्यमिति ॥ ६ ॥

असावचरमावर्त्ते, धर्म हरति पश्यतः ।
चरमावर्त्तिसाधोस्तु, च्छलमन्विष्य हृष्यति ॥ ७ ॥

व्या०—असाविति "असौ" कर्मविपाकः "पश्यतः" पश्यत एव 'अचरमावर्ते' चरमपुद्गलपरावर्त्तादर्वाक् धर्मं 'हरति' चोरयति, तु पुनः 'चरमावर्त्ति' चरमपुद्गलपरावर्त्तान्तर्वर्त्तमानमार्गानुसारि, यस्य साधोःनिर्ग्रंथस्य छलं अन्विष्य गवेषयित्वा 'हृष्यति' हर्षं प्राप्नोति इत्यनेन मार्गानुसारिनिर्ग्रंथस्य क्षायोपशमिकगुणत्वात् प्रमादादिदोषान्, शंकायनिचारावसर हृष्यति, नाम वर्त्तते इत्युपचारः, अतः कर्मविपाके रक्तदिष्टिना न करणीया ॥ ७ ॥

निवारणमहितं, अत्र यथैकस्य शबरस्य जीवद् भौतपदस्पर्शनिवारणं स मयूरपिच्छार्थी भौतं हत्वा पश्चात् स्पर्शं चकार, तथा आत्मानं हत्वा पड्जीवनिकायान् रक्षन् तद्वत्करोति, अतो मौढ्यं निवार्य तत्त्वज्ञानवता भवनीयं, शुद्धाहारादिकं तदुपयोगः स्वरूपावलंबनं महदनुपयोगः, इति तेन स्वरूपाचरणमंतरेणाहारस्यैवात्मसाधनबुद्धयः भौतहिंसकवद् ज्ञेयाः ॥ ६ ॥

अज्ञानाहिमहामन्त्रम्, स्वाच्छन्द्यज्वरलङ्घनम् ।
धर्मारामसुधाकुल्यां, शास्त्रमाहुर्महर्षयः ॥ ७ ॥

व्या०–अज्ञानाहीति–'महर्षयः' महामुनीश्वराः अज्ञानमेव 'अहिः' सर्पः तदमने महामंत्रं, च पुनः 'स्वाच्छंद्यं' स्वेच्छाचारित्वं तदेव ज्वरः तदपगमाय लंघनं 'धर्मारामसुधाकुल्यां' धर्म एव आरामः तस्मिन् 'सुधा' अमृतं तस्य 'कुल्या नीकिः, तां अमृतं शास्त्रं उक्तवंतः, अतः शास्त्राभ्यासः महासुखायेति ॥७॥

शास्त्रोक्ताचारकर्त्ताच, शास्त्रज्ञः शास्त्रदेशकः ।
शास्त्रैकदृग् महायोगी, प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ८॥

व्या०–शास्त्रोक्तेति–एवंविधः महायोगी 'परमं' उत्कृष्टं पदं स्थानं प्राप्नोति, कथंभूतः 'शास्त्रोक्ताचारकर्त्ता, शास्त्रे जैनागमे उक्तः य आचारः तस्य कर्त्ता करणशीलः, 'शास्त्रज्ञः' शास्त्रं स्याद्वादागमं जानातीति शास्त्रज्ञः, पुनः 'शास्त्रदे॰ शास्त्रस्य देशकः कथकः पुनः कीदृशः ? शास्त्रे एका अद्वितीया रहस्यग्राहिणी दृग् दृष्टिर्यस्य स इति एवं शास्त्रोक्तमार्गकारी तत्त्वज्ञः तदुपदेशकः परमं उत्कृष्टं पदं प्राप्नोति, अतः सर्वादरेण जैनागमाभ्यासः करणीयः, येन तत्त्वावाप्तिः निखिलसिद्धिसाधकता,

मोहहेतुरूपंजैनशासनदेवादि सुखहेतुरूपं, ध्यायंति ऐश्
भवाब्धिमत्स्या इव मिथ्यावासिता जीवाः, तेन भवोद्वे
करणीयः, यस्मात्सुखहानिः तस्य कोऽभिलाषः सता
इत्येवोपदिशति—

यस्य गम्भीरमध्यस्याऽज्ञानवज्रमयं तलम् ।
रुद्धा व्यसनशैलौघैः, पन्थानो यत्र दुर्गमाः
पातालकलशा यत्र, भृताः तृष्णामहानिलैः ।
कषायाश्चित्तसङ्कल्प—वेलावृद्धिं वितन्वते ॥ २
स्मरौर्वाग्निर्ज्वलत्यन्तर्यत्र स्नेहेन्धनः सदा ।
यो घोररोगशोकादि—मत्स्यकच्छपसङ्कुलः
दुर्बुद्धिमत्सरद्रोहैर्विद्युद्दुर्वातगर्जितैः ।
यत्र सांयात्रिका लोकाः, पतन्त्युत्पातसङ्कटे
ज्ञानी तस्माद्भवाम्भोधेर्नित्योद्विग्नोऽतिदारुणा
तस्य सन्तरणोपायं, सर्वयत्नेन कांक्षति ॥ ५

यस्येति १ पातालेति २ स्मरौर्वेति ३ दुर्बुद्धीति ४
५ श्लोकसंबन्धः व्याख्यायते । ज्ञानी तस्य भवसमुद्रस्य
पायं पारगमनोपायं सर्वयत्नेन 'कांक्षति' इच्छति इत्यः
कस्य ? यस्य गंभीर मध्यं यस्य गंभीरमध्यस्तस्य अपा
भवार्णवस्य अज्ञानं जीवाजीवविवेकरहित तत्त्वबोधशून्यं
ज्ञानं, तदेव वज्रमयं तलं दुर्भेद्यं यत्र भवांभोधौ, व्यस
[illegible]

व्याख्या-न परावर्त्तते इति 'राशेः' अनादिराशितः परिग्रहो न 'परावर्त्तते' न निवर्त्तते, पुनः वक्रतां 'जातु' 'कदाचित्' न 'उज्झति,' न 'त्यजाति, अत एव हे आत्मार्थिन् अयं दुःख-मूलः परिग्रहग्रहकः विडंबितजगत्त्रयः त्रैलोक्यविडंबनाहेतुः इदृक् परिग्रहस्य दृढानुराग इति ॥ १ ॥

परिग्रहग्रहावेशाद्, दुर्भाषितरजःकिराः।
श्रूयन्ते विकृताः किं न? प्रलापा लिङ्गिनामपि ॥२॥

व्याख्या-परिग्रहेति 'लिंगिनामपि जैनवेषविडंबकानामपि 'प्रलापाः' असंबद्धव्यसनस्पृहाः किं न श्रूयन्ते अपि तु श्रूयंते एव । कथंभूताः प्रलापाः ? परिग्रहावेशात् परिग्रहस्य ग्रहः 'मन्यत्वं' तस्यावेशः, तस्मात् 'दुर्भाषितं' उत्सूत्रवचनं एव रजसः 'किराः' समूहाः, अत एव विकृताः विकारमया इति, एवं हि परिग्रहाभिलापमया ज्ञानपूजनाद्युपदेशेन परिग्रहमेलनासक्ताः उन्नयं वदंति, पोषयंति विषयान्, परिग्रहीकुर्वंति ज्ञानोपकरणानि, महांनयंति ज्ञानोपकरणैः । उक्तं च उपमितिभव प्रपंचायाम् । "सजातः कदाचिल्लब्धार्यकुलश्रावकसामग्रीसंयोगः श्रुततत्त्वोपदेशात्वैराग्यगृहीतव्रतः मुनिसंवसंयुतः श्रुतलाभेन संपूज्यमानः श्रावकवर्गैः ज्ञानभक्त्योपरचितोल्लोचादिसदुपकरणः तैरेव रमणीयकतामभत्वाहंकारदूषितः तीव्रज्ञानावरणीयकर्मवशात् पतितो निगोदे अनंतभवभ्रमणरूपे, इत्यावर्त्तस्वरूपं भावनीयमात्महिताय सद्भिः अतः निवारणीयमेव धर्मलिंगविषयपरिग्रहपोषणादिकम् ॥ २ ॥

यस्त्यक्त्वा तृणवद्बाह्यमान्तरं च परिग्रहम् ।
उदास्ते तत्पदाम्भोजं, पर्युपास्ते जगत्त्रयी ॥ ३ ॥

हंभारसुमना भ्रमस्वभावित्वं युज्यते ? नाहं सशरीरः सु-
द्रष्टा सकर्मा सकलभरया चेतना मम कथमयं महामोहावर्तः ?
इत्युद्विग्नाः स्वरूपभासनमैत्रस्वमनोहरं, सम्यग्दर्शनप्रतिष्ठानं
क्षान्त्यादिदशविधधर्मालंकृतसत्त्वविचित्रकलशनिबिडबन्धनाविराजितं,
सम्यग्ज्ञाननिर्यामकशान्तिनं, शुभाशुभसंसर्गरूपपटुनिबिडबंधनबद्धं,
संवरकूलस्तम्भमानैःसंपात्रवदारं, शुचितत्त्वनाथिकस्थेदोषस्थापनीय-
भेदविभिन्नात्मभूमिकाद्वयं, तदुपकल्पितश्रद्धासमाचारकरणमंडपं, स-
मंततो गुप्तिवप्रपरस्थूलं, अनन्यप्रभावयत्नावस्थानदृढपोतं,
पोतनहस्तसदृशस्वलोकं, सर्वतो निवेशितसद्गुरूपदेशावष्टम्भितरुत्तम-
प्रमत्तस्थानानन्तरस्थितिनिर्मलज्ञानवहुप्रसन्नभवाद्यिन्वस्तमहत्पुष्पभाव्य-
वतापराजितरद्वं, तन्मदमात्सर्यसंगतदुपयोगपंजरदौवारिकं, तरक्क-
द्यानमादनगरानिरसमायुक्तसर्वांगसंगतया प्रवहणं चारित्रपान-
पात्रं, तेन चारित्रमहापानपात्रेण संतरणोपायं कुर्वन्ति ॥ ५ ॥

तैलपात्रधरो यद्वद्, राधावेधोद्यतो यथा ।
क्रियास्वनन्यचित्तः स्याद्, भवभीतस्तथा मुनिः ॥६॥

व्या०—तैलपात्रधर इति—यथा तैलपात्रधरः मरणभयभीतः
अप्रमत्तः तिष्ठति, तथा मुनिः स्वगुणध्यानभयभीतः संसारे अप्र-
मत्तस्तिष्ठति । यथा केनचित् राज्ञा कंचन पुरुषं दूषणोपेतं
वधाय आज्ञापितं, तदा सभाजनैः विज्ञप्तः स्वामिन् क्षमस्वाप-
राधं, मा मारय पुनं, तेन सम्योक्तेन राज्ञा निवेदितं, यदा
महास्थालं तैलपूर्णं सर्वनगरचतुष्पथे अनेक नाटकवाद्यतूर्याकुले
तैलबिन्दुमपतन्तं सर्वतो भ्रामयित्वा आयाति तदा न मारयामि,
यदि च तैलबिन्दुपातः तदास्य शिरस्तत्क्षणमेव प्रहारः करणीय,
इत्युक्तोऽपि स पुरुषस्तत्कार्यं स्वीचकार तथैवानेकजनसंकुले मार्गे

त्यक्तपुत्रकलत्रस्य, मुर्छामुक्तस्य योगिनः ।
चिन्मात्रप्रतिवद्धस्य, का पुद्गलनियन्त्रणा ॥ ६ ॥

व्या०—त्यक्तपुत्रेति 'त्यक्ते' दूरं नीते 'पुत्रकलत्रे' संतानवनितासंयोगो येन सः, तस्य 'मूर्छा'सतः परिग्रहस्य संरक्षणा, तया 'मुक्तस्य' रहितस्य 'योगिनः' सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मनः, चिद् ज्ञानं 'तन्मात्रे एव ज्ञाने एव 'प्रतिबंधः' आसक्तता यस्य स, एवंविधस्य तत्त्वज्ञमुनेः 'पुद्गलानियंत्रणा पुद्गलैक्तता का? नकापीत्यर्थः । भावना च पुत्रवनितासंगरहितस्य पुद्गलसंगोपनाविकलस्य स्वरूपैकत्वकरणवद्धचेतनोपयोगस्य स्वभावानंदपरिभासवर्णिकारूपशुद्धज्ञानानुभवभोगिनः अचेतननश्वरोच्छिष्टानंदविमुक्तेषु पुद्गलेषु रागपरिणतिः न भवति, अत्र वृद्धसंप्रदायेन दृष्टांतः । अउजानयरे सिरिवरो राया, अच्चंतमिच्छदिट्ठी, तस्स सिरिकंतो कुमरो, रूवलावण्णसोहग्गकुसलो पुरंदरो इव सोभंतमाणसंठाणो, जीवाजीवाईतत्तविउ, सुत्तत्थसवणरसिओ, बालभावणभोगलालसाविमुत्तो, सो अणेगाहिंरायकन्नाओ भंति भाति ? कुमरेणुत्तं भो भद्दे ! कह तुम्मे पिउवरं विमुत्तूण इह समागयाओ ? ताओ भणंति तुह रागाभिलासणीओ, तुज्झं इट्टकंतरागपइमिच्छामो, ताहे कुमारो भणइ जिणंदवारियकम्मबंधणमूलं भवविवड्ढणं को कुणई ? लोलीभूए कारणेणं धम्मकरे एगत्तमागए देहे विनिवारिओ सव्वदंसीहिं, ता परदेहेरागो को करेइ सदक्खिन्नो ? निम्मलचरणाचरणं केवलनाणस्स रोहगं रागं अरिहंताई सुवरं, तंपि निच्छयपए तच्चेताव अनत्थपहाणं, विसयरागं कह करिज्जत्ति ? सुहिणो य वीयरायाया नियसहावेस

१ अत्रकिमपित्रुटितं

स्थैर्यं भवभयादेव, व्यवहारे मुनिर्व्रजेत् ।
स्वात्मारामसमाधौ तु, तदप्यन्तर्निमज्जति ॥ ८ ॥

व्या०–स्थैर्यं भवेति–मुनिःतत्त्वज्ञानी 'भवभयात्' नरक-निगोददुःखोद्वेगात् एव व्यवहारे एषणादिक्रियाप्रवृत्तौ स्थैर्यं व्रजेत् गच्छेत्, तु-पुनः स्वात्मारामसमाधौ स्वकीयात्मारामः स्व-चेतनः तस्य समाधौ ज्ञानानंदादिषु तद् भवभयं अंतर्मध्ये निमज्जति लीनीभवति, स्वयमेव विनश्यति आत्मध्यानलीलाली-नानां सुखदुःखे समानावस्थानां भयाभाव एव भवति, इत्यनेन संसारोद्विग्नः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राचाराभ्यासतो दृढीकृतयोगो-पयोगः स्वरूपानंतस्याद्वादसत्त्वैकत्वसमाधिस्थः सर्वत्र समावस्थो भवति, "मोक्षे भवे च सर्वत्र निःस्पृहो मुनिसत्तमः" इति एवं स्वरूपदर्शनसमाधिमग्नानां निर्भयत्वं इति वस्तुस्वरूपावधारणेन विभावोत्पन्नकर्मोदयस्वरूपे संसारे परसंयोगसंभवे आत्मसत्ताभिन्ने निर्वेदः कार्यः ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं भवोद्वेगाष्टकम् ॥ २२ ॥

अथ लोकसंज्ञात्यागाष्टकम् ॥ २३ ॥

अथ निर्वेदी जीवः मोक्षसाधनोद्यमवर्ती लोकसंज्ञायां न मुह्यति, लोकसंज्ञा हि धर्मसाधनध्यानावरणं अतस्त्याज्या, इति तदुपदेशरूपं लोकसंज्ञात्यागाष्टकं विस्तार्यते । लोकः सप्तविधः— नामलोकः शब्दालापरूपः, स्थापनालोकः अक्षरः लोकनाडि-संस्थानरूपः, रूप्यरूपिजीवाजीवात्मकः द्रव्यलोकः, ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लक्षणः क्षेत्रलोकः, समयावलिकादिकालपरिमाणलक्षणः काललोकः नरनारकादिचतुर्गतिरूपः भवलोकः, औदयिकादिभावपरिणामः

त्यागवतां जगदेव न परिग्रहः, तत्र रमणाभावात्। उक्तं च श्रीविशेषावश्यके। "तह्मा किमच्छिय यच्छं गंथोगच्छमच्छम मुच्छाईणिच्छयउवगच्छाई तेणं जं जं संजमसाहणमरागदोसस्स य तं तमपरिग्गहोवि य परिग्गहो जं तदुववाइ ॥" अत एव आत्मनः परभावरसिकत्वं परिग्रहः ततः तद्धर्मत्वाभावात् आत्मस्वरूपरमणं युक्तम् ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं परिग्रहत्यागाष्टकम् ॥ २५ ॥

अथ अनुभवाष्टकम् ॥ २६ ॥

अथ श्रुताभ्यासपरिग्रहत्यागादयोऽप्यनुभवयुक्तस्य मोक्षसाधकाः, अनुभवशून्यस्य नेति, तत्प्रतिपादनायानुभवाष्टकं निरूप्यते। अनुभवशून्यं ज्ञानं उदककल्पं अनुभवयुक्तं तु साउभवस्य। तथा च अनुयोगद्वारे। "वायणापुच्छणा परियट्टणा धम्मकहा सरअक्खरवंजणसुद्धा अणुप्पेहारहियस्स दवसुयं, अणुप्पेहाभावसुयं" इत्यनेन भावश्रुतं तु संवेदनरूपं न तत्त्वनिष्पादकं, स्पर्शरूपं तत्त्वनिष्पादकमिति, हरिभद्रपूज्याः तत्स्पर्शज्ञानं अनुभवयुक्तस्यैव, तल्लक्षणं च योगदृष्टिसमुच्चयानुसारेण लिख्यते। " यथार्थवस्तुरूपोपलब्धिपरभावारमणस्वरूपरमणतदास्वादनैकत्वमनुभवः हेयोपादेयज्ञानसुखास्वादरूपानुभवः, नामतः अभिधानं स्थापनातः स्थाप्यमानं, द्रव्यानुभवः भुज्यमानं शुभाशुभविपाकेषु अनुपयोगः " अणुवओगोदव्व " मिति वचनात्, भावानुभवनः अप्रशस्तःसांसारिकविषयकषायानामनुभवैकत्वं, प्रशस्तः अर्हद्गुणानुरागैकत्वं, शुद्धानुभवः स्वरूपानंतपर्यायपरिणतवैचित्र्यज्ञानास्वादनैकत्वविश्रांतिलक्षणः, अत्र भावानुभवावसरः स च

त्वन: सुद्धःसानन्दि मयदं, न्दवमं मरिमितमलेन ।
मनागनिद्रावमनो गर्न नवस्य मनो नावर ! पन्नेनि ॥१॥
वैगल्यह: पद्मनाय, धर्मोरेरो जन्त जनाय ।
[illegible] [illegible] प मेड्डर्मे रमह पुरे हास्यकर स्वर्मोग ॥२॥

लोकसंज्ञामहानद्यामनुस्रोतोनुगा न के ।
प्रतिस्रोतोऽनुगस्त्वेको, राजहंसो महामुनिः ॥ २ ॥

व्या०—लोकसंज्ञेति—'लोकसंज्ञा' लोकरीतिरूपा महानदी, तस्याः 'अनुस्रोतः' प्रवाहः तस्य 'अनुगा' अनुयायिनः के न भवंति ? अनेके इत्यर्थः तत्र प्रतिस्रोतानुग [illegible] एक एव महामुनिः [illegible] हंस. तेन लोक- [illegible] [illegible] न एव स्वरूपानुधर्मा । उक्तं च दशवैकालिके ।

> अनुसोयपट्ठिए बहुजणंमि, पडिसोयलद्धलक्खेणं ।
> पडिसोयमेव अप्पा, दायव्वो होउ कामेण ॥ १ ॥
> अनुसोयसुहो लोगो, पडिसोओ आसवो सुविहियाणं ।
> अनुसोओ संसारो, पडिसोओ तस्स उत्तारो ॥ २ ॥
> तेन मुनिर्लोकसंज्ञानुयायी न स्यात् ॥ ३ ॥

लोकमालम्ब्य कर्त्तव्यं, कृतं बहुभिरेव चेत् ।
तदा मिथ्यादृशां धर्मो, न त्याज्यः स्यात्कदाचन ॥४॥

लोकमिति—चेत् यदि यत् बहुभि कृतं तत् कर्त्तव्यं लोकं आलंब्य एवं क्रियते तदा मिथ्यादृशां धर्मः कदाचन कदापि न त्याज्यः स्यात्, तत्र बहुभिः विषमाप्तत्वात् स्वेच्छाचरणे.

भावनाज्ञानैकत्वरूपः करणीय इति ।.उक्तं च समुच्चये, मतिश्रुतोत्तरभावकेवलात् अव्यवहितपूर्वभावी प्रकाशोऽनुभवः ॥ १ ॥

व्यापारः सर्वशास्त्राणां, दिक्प्रदर्शन एव हि ।
पारन्तु प्रापयत्येकोऽनुभवो भववारिधेः ॥ २ ॥

व्या०–व्यापार इति–'सर्वशास्त्राणां' चतुनरनुयोगकथकानां, 'व्यापार' उद्यमः अभ्यासः 'दिक्प्रदर्शन एव' मार्गदर्शक एव, यथाहि–पथिकस्य मार्गदर्शकः मार्गं दर्शयति, परं पुरप्राप्तिः सुखचंक्रमणेनैव, एवं शास्त्राभ्यासः परमप्रयासा स्वतत्त्वसाधनविधिदर्शकः, 'भववारिधेः' भवसमुद्रस्य पारं तु एकः अनुभवः प्रापयति, नान्यः श्रीमरुक्कृताङ्गादिषु अध्यात्मभावेन सिद्धिरित्युक्तत्वात्, तेन सद्गुरुचरणचंचरीकैः आत्मस्वरूपभासनतन्मयत्वं निष्पाद्यम् ॥ २ ॥

अतीन्द्रियं परंब्रह्म, विशुद्धानुभवं विना ।
शास्त्रयुक्तिशतेनापि, न गम्यं यद्बुधा जगुः ॥ ३ ॥

व्या०–अतीन्द्रियमिति 'बुधाः' पंडिता इति जगुः इतीति किं ? 'शास्त्रयुक्तिशतेनापि' शास्त्रस्य युक्तयः तेषां शतेनापि अनेकागमरहस्यावबोधेनापि 'विशुद्धानुभवं विना निर्मलानुभवमंतरेण अतीन्द्रियं इंद्रियज्ञानागम्यं परं उत्कृष्टं ब्रह्म चैतन्यं न गम्यं न ज्ञातुं शक्यं । न घटपटादिपदार्थसार्थसमर्थनशब्दसाधनस्वस्वमतन्यासमुधाचिंतनविकल्पनलक्ष्याः सम्यग् ज्ञानिनः स्याद्वादानेकांतधर्मास्पदीभूतानंतपर्यायोत्पादव्ययपरिणमनास्वसंज्ञपावनोधामूर्तासंटानंदात्मस्वरूपज्ञानं तु तत्त्वानुभवलीना एवास्वादंते, न वचोयुक्तिव्यक्तोऽन्तर्गम्बिज्ञासा इति ॥ ३ ॥

व्या०–आत्मेति–हे उत्तम 'आत्मसाक्षिकः' आत्मा एव साक्षिकं आत्मसाक्षिकः, स चासौ 'सद्' शोभनः धर्मः, तस्य 'सिद्धौ' निष्पत्तौ लोकयात्रया किं ? न किमपि, लोकानां ज्ञापनेन किमित्यर्थः. तत्र भरतचक्रः चतुनः भग्न इति निदर्शनं दृष्टांतः सति द्रव्यलिंगे कायोत्सर्गे भरतचंद्रस्य नरकगतिबंधः, असति लिंगे मोहकलंकोन्मूलनसमितात्मगृहपरिवृत्तोऽपि भरतः संजातात्मसाक्षिकस्वस्वरूपधर्मपरिणतः केवली जातः इति आत्मसाक्षिको धर्म–धर्म इति दृष्टांतः, अतः आत्मसाक्षिक एव धर्मः कर्त्तव्य इति ॥ ७ ॥

लोकसंज्ञोज्झितः साधुः परब्रह्मसमाधिमान् ।
सुखमास्ते गतद्रोह–ममतामत्सरज्वरः ॥ ८ ॥

व्या०– लोकेति–'साधु' परमात्मसाधनोद्यतः, सुखं 'आस्ते' तिष्ठति, कथंभूतः साधुः ? 'लोकसंज्ञोज्झितः' लोकसंज्ञारहितः, पुनः किंभूतः ? परब्रह्मणः शुद्धात्मस्वरूपस्य 'समाधिः' स्वास्थ्यं तद्वान् तन्मयः, आत्मज्ञानानंदमग्नः पुनः कथंभूतः ? 'गतः' नष्टः 'द्रोहः' मोहगर्भितो ममता परभावेषु ममकारता, 'मत्सरः' अहंकारः एव ज्वरः तापो यस्य सः, इत्यनेन कषायकालुष्यरहितः स्वात्मारामः' स्वात्मज्ञानी तत्त्वानुभवयुक्तो मुनिः सुखं तिष्ठति । लोकसंज्ञात्यागेन स्वरूपयोगभोगसुखमग्ना निर्ग्रन्था औदयिकं इंद्रियसुखं दह्यमानस्वगृहनर्तनवत् मन्यते न सुखमस्ति ॥ ८ ॥

इति व्याख्यानं लोकसंज्ञात्यागाष्टकम् ॥ २३ ॥



सर्वाक्षरसंवरस्य, निर्विकल्पोपयोगकाले उन्मार्गभावशास्त्रपरिणमनो-प्रयुक्तत्वात् इति। अतः परमकारुणिकोपदिष्टं शास्त्रं हितं उक्तं च तत्त्वार्थभाष्ये—

> एकमपि जिनवचनाद्यस्मान्निर्वाहकं पदं भवति।
> श्रूयन्ते चानन्ताः सामायिकमात्रपदसिद्धाः॥ १॥
> तस्मात्तत्प्रामाण्यात्समासतो व्यासतश्च जिनवचनम्।
> श्रेय इति निर्विचारं, ग्राह्यं धार्यं च वाच्यं च॥ २॥
> न भवति धर्मः श्रोतुः, सर्वस्यैकान्ततो हितश्रवणात्।
> ब्रुवतोऽनुग्रहबुद्ध्या, वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति॥ ३॥
> श्रममविचिन्त्यात्मगतं, तस्मात् श्रेयः सदोपदेष्टव्यम्।
> आत्मानं च परं च, हितोपदेष्टानुगृह्णाति॥ ४॥

इति अत एव शास्त्रदृगेवात्मनामुपदिशति—

चर्मचक्षुर्भृतः सर्वे, देवाश्चावधिचक्षुषः।
सर्वतश्चक्षुषः सिद्धाः, साधवः शास्त्रचक्षुषः॥ १॥

व्या०—चर्मचक्षुर्भृत इति—सर्वे तिर्यग्मनुष्याः चर्मचक्षुर्भृतः, मतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमपञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मपर्याप्ति-नामकर्मशरीरनामकर्माङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयजन्यचक्षुर्भृतः सन्ति, च पुनः देवाः सुरा अवधिचक्षुषः अवधिज्ञानावरणीयावधिदर्शनावरणी-यक्षयोपशमसमुत्पन्नज्ञानदृष्टयः, सिद्धाः सर्वचक्षुषः सर्वप्रदेशकेवलो-पयोगमयाः, 'साधवः' निर्ग्रन्थाः शास्त्रचक्षुषः शास्त्रावलम्बिविज्ञा-नाः। उक्तं च।

> आगमचक्खू साहू, चम्मचक्खूणि सव्वभूयाणि।
> देवा य ओही चक्खू, सिद्धा पुण सव्वओ चक्खू॥ १॥

ज्ञासादियोगेन स्वरूपं निर्मलं निस्संगं परमानंदमयं संस्मृत्य तत्कथाश्रवणप्रीत्यादिकं करोति, स परंपरया सिद्धियोगी भवति, नहि मरुदेवावत् सर्वेषामल्पप्रयासात् सिद्धिः, तस्या हि अल्पाशातनादोषकारकत्वेन निष्प्रयासा सिद्धिः, अन्यजीवानां विराशातनाबद्धगाढकर्मणां तु स्थानादिक्रमेणैव भवति ॥ १ ॥

अथ योगपंचके बाह्यांतरंगसाधकत्वमुपदिशति—

कर्मयोगद्वयं तत्र, ज्ञानयोगत्रयं विदुः ।
विरतेष्वेव नियमाद्, बीजमात्रं परेष्वपि ॥ २ ॥

व्या०—कर्मयोगद्वयमिति तत्र मोक्षसाधने योगद्वयं, 'कर्मयोगद्वयं' क्रियाचरणा योगरूपं निरूप्यते, तत्र स्थापनस्वरूपं कायोत्सर्गादिजैनागमोक्तक्रियाकरणे. करचरणासनमुद्रारूपं, उक्तं च विंशतिकायां—

गणवन्नत्थमलंबण, रहिओ तं तंसि पवहिए ।
दुगमित्थकम्मयोगो, तहानियं नाणयोगो ओ ॥ १ ॥

एष पंचप्रकारो योगः, 'विरतेषु' देशविरतेषु नियमात् भवति। योगपंचकं हि चापल्यवारणं, तेन योगवता भवितव्यं, 'परेषु' मार्गानुसारिप्रमुखेषु 'बीजमात्रं' भवति, किंचिन्मात्रं भवति । उक्तं च—विंशतिकायां—

देसे सव्वे य तहा, नियमेण सो चरित्तिणो होइ ।
इयरस्स बीयमित्तं, इति चुअ केइ इच्छंति ॥ २ ॥ २ ॥

अत्र योगोत्पत्तिहेतवः प्रोच्यंते—

कृपानिर्वेदसंवेग—प्रशमोत्पत्तिकारिणः ।
भेदा प्रत्येकमत्रेच्छा—प्रवृत्तिस्थिरसिद्धयः ॥ ३ ॥

व्या०—शास्त्रे पुर इति—तस्मात्कारणात् 'शास्त्रे' सिद्धांते 'पुरस्कृते' मुख्ये कृते 'वीतरागः अर्हन्' 'पुरस्कृतः' अग्रेसरीकृतः, पुनः तस्मिन् वीतरागे पुरस्कृते 'नियमात्' निश्चयात् सर्वसिद्धयः भवंति। उक्तं च।

अस्मिन् हृदयस्थे सति हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनीन्द्र इति।
हृदयस्थिते च तस्मिन्, नियमात्सर्वार्थसंसिद्धिः ॥ १ ॥

पुनः आगमे—

आगमं आयरंतेण, अत्तणो हियकंखिणो।
तित्थनाहो सयंबुद्धो, सव्वे ते बहुमन्निया ॥ १ ॥

अतः आगमादरो अर्हन् भुनिः संसारत्याग इति ॥ ४ ॥

अदृष्टार्थे तु धावन्तः, शास्त्रदीपं विना जडाः।
प्राप्नुवन्ति परं खेदं, प्रस्खलन्तः पदे पदे ॥ ५ ॥

व्या०—अदृष्टेति—जडाः मूर्खाः, 'शास्त्रदीपं विना आगमप्रकाशं विना 'अदृष्टे' अनुपलब्धे 'अर्थे' कार्ये सवरनिर्जरामोक्षाभिधाने 'धावंतः' पदे पदे प्रस्खलंत. स्खलनां प्राप्नुवंतः 'परं' प्रकृष्टं 'खेदं' क्लेशं प्राप्नुवंति लभंते, अज्ञानरुद्धमार्गा अनेकोपायप्रवृत्ता अपि स्खलनां लभंते इति ॥ ५ ॥

शुद्धोञ्छाद्यपि शास्त्राज्ञा. निरपेक्षस्य नो हितम्।
भौतहन्तुर्यथा तस्य, पदस्पर्शनिवारणम् ॥ ६ ॥

व्या०—शुद्धोञ्छाद्यपि—'शास्त्रा..॥ निरपेक्षस्य' आगमोक्ताज्ञारहितस्य शुद्धोञ्छाद्यपि द्विचत्वारिंशद्दोषरहिताहारग्राहकत्वमपि नो 'हितं' न सुखं, यथा भौतहतुः तस्य स्वगुरोः पदस्पर्श-

स्थैर्यं। उक्तं च—"तह चेव पयपाहगचिंतारहियं थिरत्तणं नेयं।" शुद्धानां अर्थानां परमात्मरूपाणां साधनं स्वरूपावलंबनं सिद्धिः। उक्तं च—सव्वं परमट्ठसाहगं रूवं सुण होइ सिद्धत्ति"। एवं सप्रभेदं ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

"यावत् ध्यानैकत्वं न भवति तावत् न्यासमुद्रावर्णशुद्धिपूर्वकं आवश्यकचैत्यवंदनप्रत्युपेक्षणादिकं उपयोगयोगचापल्यवारणार्थमवश्यं करणीयं, महद्धितकरं सर्वजीवानां, तेन स्थानवर्णक्रमेण तत्त्वप्राप्तिरिति।

अर्थालम्बनयोश्चैत्य–वन्दनादौ विभावनम्।
श्रेयसे योगिनः स्थान–वर्णयोर्यत्न एव च ॥ ५ ॥

व्या०–अर्थालंबनयोरिति 'अर्थो वाक्यस्य भावार्थः, 'आलंबनं' वाच्ये पदार्थे अर्हत्स्वरूपे उपयोगस्यैकत्वं, अर्थश्च आलंबनश्च अर्थालंबनौ, तयोः चैत्यवंदनादौ अर्हद्वंदनाधिकारे 'विभावनं स्मरणं करणीयं श्रेयसे कल्याणार्थं, च पुनः स्थानं० वंदनककायोत्सर्गशरीराग्रस्थानं आसनमुद्रादि, वर्णः अक्षरादि, तयोः शुद्धौ यत्नः श्रेयसे कल्याणाय भवति। उक्तं चावश्यके—"जं वा इद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिन्नं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं" इत्यनेन द्रव्यक्षेत्रकालविशुद्धौ भावसाधनसिद्धिः तेन द्रव्यक्रिया हिता ॥ ५ ॥

आलम्बनमिह ज्ञेयं, द्विविधं रूप्यरूपि च।
अरूपि गुणसायुज्य–योगोऽनालम्बनं परम् ॥ ६ ॥

व्या०–आलंबनमिति इह जैनमार्गे 'आलंबनं द्विविधं ज्ञेयं'



स्वरसत एव मनः सहजधारायां वर्त्तते, न प्रयासो भवति। उक्तं च विंशतिकायां—

> आलंबणं पि एयं, रूविमरूवि य इत्यपरमोत्ति ।
> तग्गुणपरिणइमित्तो, सुहुमो आलंबणो नाम ॥ १ ॥

एकाग्रयोगस्यैवापरनाम अनालंबनयोग इति, एवं स्थानाद्याः पंच इच्छादेर्गुणिता विंशति (२०) र्भवंति, ते च प्रत्येकमनुष्ठानचतुष्कयोजिता अशीति (८०) प्रकारा भवंति तत्स्वरूपनिरूपणायोपदिशति—

प्रीतिर्भक्तिवचोऽसङ्गैः, स्थानाद्यपि चतुर्विधम् ।
तस्मादयोगियोगाप्ते–र्मोक्षयोगः क्रमाद्भवेत् ॥ ७ ॥

व्या०–प्रीतिर्भक्तीति एते स्थानादयः, 'प्रीतिः' 'भक्तिः' 'वचनं' 'असंगः' इति भेदचतुष्टयेनाशीतिभेदा भवंति, तस्मात् योगात्क्रमेण अयोगिनामा योगः, तस्याप्तिः प्राप्तिः भवति, अयोगियोगं । शैलेशीकरणं, सकलयोगचापल्यरहितो योगंप्राप्नोति, तेन पुनः क्रमान्मोक्षः सर्वकर्माभावलक्षणः "आत्मनः तादात्म्यावस्थानं मोक्षः" एवं योगसंयोगः क्रमात् अनुक्रमेण भवति ।

अथ–प्रीत्याद्यनुष्ठानस्वरूपं षोडशकतो लिख्यते—अस्य चानुष्ठानता सांसारिकपरिणतौ, सा च परावृत्य तत्त्वसाधने करणीया । यत्रादरोऽस्ति परमः, प्रीतिः स्वहितोदयात् भवेत्कर्तुः । शेषत्यागेन करोति यच्च तत्प्रीत्यनुष्ठानम् ॥ १ ॥ इति । प्रीतिलक्षणं । गौरवविशेषयोगाद् बुद्धिमतो यद्विशुद्धतरयोगं । क्रियते तत्तुल्यमपि ज्ञेयं तद्भक्त्यनुष्ठानम् ॥ २ ॥ अत्यंतवल्लभा खलु पत्नी तद्वद्धिता च जननीति । तुल्यमपि कृतमनयोर्ज्ञातं स्यात्प्री-

व्या०—यस्त्यक्त्वेति यः साधुः 'बाह्यं' धनादि, 'आंतरं' रागादि परिग्रहं, तृणवत् 'त्यक्त्वा' संत्यज्य 'उदास्ते' उदासीनः परिग्रहेण मोहकारणेन व्यासंगमूलेन आत्मावलितपंककल्पेन वस्तुतः निस्सारेण ! न एष मम नाहमनेन सुखी. मदिरामत्तपंकावलेपतुल्येन, अहं तु ज्ञानाद्यनंतगुणपूर्णः कथं पुद्गलेषु रमे ? इत्यादिभावनया त्यक्तपरिग्रहः, तत्पदांभोजं "जगत्त्रयी" असुरनरामरश्रेणिः पर्युपास्ते सेवते इत्यर्थः स त्रिजगद्वंद्यः भवति, तेन स्वरूपानंदरसिकानंदपरिग्रहासक्तिः ॥ ३ ॥

पुनः बाह्यभोगेन निर्ग्रन्थत्वमानिनं शिक्षयति—

चित्तेऽन्तर्ग्रन्थिगहने, बहिर्निर्ग्रन्थता वृथा ।
त्यागात्कञ्चुकमात्रस्य, भुजगो नहि निर्विषः ॥४॥

व्या०—चित्तेऽन्तर्ग्रंथिगहन इति 'अंतः' चित्ते चेतनापरिणतौ, ग्रंथिः तेन गहने परिग्रहलालसामग्ने. बहिः निर्ग्रंथता वृथा निष्फला, यथा—कंचुकमात्रत्यागात् भुजंगः सर्पः निर्विषो नहि भवति, एवं बाह्यत्यागेन त्यागी न भवति, अंतर्ममत्वपरिहारेण त्यागी भवति ॥ ४ ॥

त्यक्ते परिग्रहे साधोः, प्रयाति सकलं रजः ।
पालित्यागे क्षणादेव, सरसः सलिलं यथा ॥ ५ ॥

व्या०—त्यक्ते इति साधोः—परिग्रहे त्यक्ते सति 'सकलं' रजः कर्मसमूहः 'प्रयाति' गच्छति । दृष्टांतयति, 'सरसः सलिलं' सरःपानीयं 'पालित्यागे' पालिक्षये क्षणादेव क्षयं याति, अतः सामान्यपरिणतौ लोभपरित्यागेन अनुक्रमेण कर्माभावता भवति ॥ ५ ॥

सर्वज्ञो भूत्वा अयोगीभूय सिद्धो भवति । अतः क्रमसमाराधना श्रेयस्करी ।

इति व्याख्यातं योगाष्टकम् ॥ २७ ॥

अथ नियागाष्टकम् ॥ २८ ॥

'नियागः' कर्मदहनं तत्र 'नितरां' निश्चयेन 'यागः' यजनं नियागः । उक्तं च—"सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं इह जीवियं अणवकंखमाणा वोसट्ठकाया सुइचत्तदेहा महाजयं जयति जन्नसेट्ठं ॥१॥ के ते जोइ केव ते जोइठाणा का तेसु या किंचतेकारसंगं पहायते कयरा संति भिक्खू कयरेण होमेण हुणासिजोइं ॥२॥ तवो जोई जीवो जोइ ठाणंजोगासुआसरीरं करीसंगं कम्मंपहा संजमजोगसंतिहोमहुणामिइसिणं पसत्थं ॥ ३ ॥" उत्तराध्ययने नियागपहिवत्ते, श्रीआचारांगसूत्रे निर्युक्तितः निक्षेपादिकं ज्ञेयं तत्स्वरूपं निवेदयति—

यः कर्म हुतवान् दीप्ते, ब्रह्माग्नौ ध्यानध्यायया।
स निश्चितेन यागेन, नियागप्रतिपत्तिमान् ॥१॥

व्या०—यः कर्मेति यः ब्रह्माग्नौ आत्मस्वरूपैकत्वरूपाग्नौ ध्यानध्यायया ध्यानैंधनेन दीप्ते सति कर्म ज्ञानावरणादिकं 'हुतवान्' होमं कृतवान् स मुनिः 'निश्चितेन' आभ्यंतरेण यागेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकत्ववीर्यतीक्ष्णत्वरूपेण युक्तः नियागप्रतिपत्तिमान् उच्यते ॥ १ ॥

पापध्वंसिनि निष्कामे, ज्ञानयज्ञे रतो भव।
द्येः कर्मयज्ञैः किं ?, भूतिकामनयाविलैः ॥२॥



व्या०—ब्रह्माध्ययनेति ब्राह्मणो मुनिः श्रमणो द्रव्यभावब्र चर्ये रतः ब्राह्मणः अघैः पापैः न लिप्यते न लेपवान् भवति कथंभूतः ब्राह्मणः ? ब्रह्माध्ययनं आचारांगप्रथमश्रुतस्कंधनवमा ध्ययनं, तस्मिन् उक्ता निष्ठा मर्यादा तद्वान्, परिणतिपरिणत पुनः परब्रह्म शुद्धात्मस्वरूपं, तेन समाहितः समाधिमयः पुनः नियागः कर्मक्षपणं, तस्य प्रतिपत्तिः तद्रूपता तद्वान् परिणतः, भिक्षुः पापैर्न लिप्यते, नावगुंठनावान् भवति, अत एव स्वरूपभासनरमणपरिणतः अनादिकर्मपटलक्षयं कृत्वा सिद्ध- बुद्धः परमानंदमयो भवति, अतो भावनियागः कर्मदहनरू करणीय इति, तत्त्वम् ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं नियागाष्टकम् ॥ २८ ॥

अथ भावपूजाष्टकम् ॥ २९ ॥

अथ द्रव्यपूजोपस्काररूपं भावपूजास्वरूपभावनोपचाररूपं भावपूजाष्टकं वितन्यते । तत्र गृहस्थः अनेकसंसारभावग्रस्तः कदा- चिद् निर्विकारानंदरूपां जिनमुद्रां विलोक्य प्राप्तवैराग्यः भवो- द्विग्नः सर्वसंयमत्यागाभिलाषी परमसंवररूपं परमेश्वरं सद्भक्त्या पूजयति, स्वयोगसपरिग्रहादिकं सर्वथा त्यक्तुमसमर्थः सर्वमपि तीर्थंकरभक्तियुक्तं करोति, ततश्च आत्मा स्वगुणपरिणतः स्वरू- पसाधनारूपां भावपूजां करोति । तत्स्वरूपं नामतः पूजा इति कथनं । स्थापनातः तल्लिंगाचरणं । द्रव्यतः चंदनादिभिः ग्रन्थोपयोगेन च । भावतो गुणैकत्वरूपा सा व्याख्यायते—

दयाम्भसा कृतस्नानः, सन्तोषशुभवस्त्रभृत् ।
विवेकतिलकभ्राजी, भावना पावनाशयः ॥ १ ॥

ज्ञायेरन् हेतुवादेन, पदार्था यद्यतीन्द्रियाः ।
कालेनैतावता प्राज्ञैः, कृतः स्यात्तेषु निश्चयः ॥ ४ ॥

व्या०—ज्ञायेरन् इति—यदि [illegible] कालेनातीन्द्रिया अती-न्द्रियाः पदार्था यद्यतीन्द्रियाः हेतुवादेन युक्तिवादेन [illegible] केषां न कल्पनादर्वी [illegible] [illegible] स्यात् [illegible] [illegible] निश्चय [illegible] स्यात् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भवति, तेन [illegible] [illegible] [illegible] येन निश्चयात्म एव [illegible] [illegible] [illegible] इति [illegible] निवृत्ति ॥ ४ ॥

केषां न कल्पनादर्वी, शास्त्रक्षीरान्नगाहिनी ।
विरलास्तद्रसास्वादविदोऽनुभवजिह्वया ॥ ५ ॥

व्या०—केषामिति—केषां पुरुषाणां कल्पना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नास्ति [illegible] [illegible] न ? अपि तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विरलाः [illegible] [illegible] इति ॥ ५ ॥

[illegible]यन्ति ब्रह्म निर्द्वन्द्वं, निर्द्वन्द्वानुभवं विना ।
[illegible]थं लिपिमयी दृष्टिर्वाङ्मयी [illegible] मनोमयी ॥ ६ ॥

व्या०—पश्यन्ति इति—[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] निर्द्वन्द्वानुभवेन

'ध्याने' धर्मशुक्ले ते एव आभरणस्य सारं प्रधानं परमब्रह्मणि निवेशय । इत्येवं गुणपरिणमनरूपां पूजां कुरु ॥ ३ ॥

मदस्थानभिदात्यागैर्लिखाग्रे चाष्टमङ्गलम् ।
ज्ञानाग्नौ शुभसङ्कल्प–काकतुण्डं च धूपय ॥ ४ ॥

व्या०–मदस्थानेति–'मदः' मानोन्मादः तस्य स्थानानि तानि एव भिदाः तासां 'त्यागैः' वर्जनैः अष्टमंगलं अग्रे लिखच ज्ञानादौ 'शुभसंकल्पः शुभरागपरिणामः तद्रूपं 'काकतुण्डं' कृष्णागरुं धूपय । इत्यनेन रागाध्यवसायाः शुभाः पुण्यहेतवः सिद्धिसाधने त्याज्या एव अतो ज्ञानबलेन तत्त्यागो भवति ॥ ४ ॥

प्राग्धर्मलवणोत्तारं, धर्मसन्न्यासवह्निना ।
कुर्वन् पूरय सामर्थ्य–राजन्नीराजनाविधिम् ॥ ५ ॥

व्या०–प्राग्धर्मेति अत्रात्मस्वरूपार्चने 'धर्मसन्न्यासवह्निना' धर्मः स्वरूपसत्ता सहजपारिणामिकलक्षणः चंदनगंधतुल्यः तस्य सम्यग् न्यासः स्थापनं स एव वह्निः तेन प्राक् पूर्वसाधनरूपः धर्मः सविकल्पभावनारूपः तदेव लवणं तस्योत्तारं निवारणं निर्विकल्पसमाधौ साधकस्यापि सविकल्पधर्मस्य त्याग एव भवति, एवं भावरूपं अपवादसाधनरूपलवणोत्तारं कुर्वन् सामर्थ्यराजन्नीराजनाविधिं पूर्वसामर्थ्ययोगस्वरूपा राजंती शोभमाना नीराजना आरात्रिका तस्याः विधिः तं पूरय । सामर्थ्ययोगस्वरूपं च यत्र कर्मबंधहेतुषु प्रवर्त्तमानवीर्यस्य न तादृक् प्रवृत्तिः स्वात्मधर्मसाधनानुभवैकत्वे प्रवर्त्तमानः निष्प्रयासत्वेन प्रवर्त्तते स योगः समर्थ उच्यते ॥ ५ ॥

गम्य' ज्ञात्वा तदनंतरं मुनिः 'अनुभवेन' स्वरूपग्रहकदृष्ट्या 'स्वसंवेद्यं' स्वेन आत्मना संवेद्यं ज्ञानस्वादनयोग्यं 'परमब्रह्म' शुद्धा-त्मस्वरूपं 'अधिगच्छति' प्राप्नोति । अत्र उक्तं च आगमे—"स समयं जानेई, परसमयं जानेई, ससमयं परसमयं जाणित्ता अप्पाणं भावित्ता भवई ॥" अत एवं आगमाभ्यासपटुमतिः तत्त्व-ज्ञानानुभवेनात्मस्वरूपं प्राप्नोति तेनानुभवाभ्यासो विधेयः ॥८॥

इति व्याख्यातं अनुभवाष्टकम् ॥ २६ ॥

अथ योगाष्टकम् ॥ २७ ॥

अथ योगाष्टकं विवन्यते, अत्र मिथ्यात्वादिहेतुगतमनोवा-क्काययोगत्रयं तत्र कर्मवृद्धिहेतुत्वात् न ग्राह्यं, किं तु मोक्ष-साधनहेतुभूतं शुद्धात्मभावनाभावितचेतनावीर्यपरिणामसाधककार-कप्रवर्त्तनरूपं ग्राह्यं, द्रव्यभावभेदं बाह्याचारविशोधिपूर्वकाभ्यन्तरा-चारशुद्धिरूपम् ।

मोक्षेण योजनाद्योगः, सर्वोऽप्याचार इष्यते।
विशेषस्थानवर्णार्था–लम्बनैकाग्र्यगोचरः ॥ १ ॥

व्या०–मोक्षेणेति सकलकर्मक्षयो मोक्षः, तेन " योजनात् योगः " उच्यते स च सर्वोऽप्याचारः जिनशासनोक्तचरणसप्त-तिकरणसप्ततिरूपः, मोक्षोपायत्वात् योग इष्यते, तत्र तत्र विशे-षेण स्थानं १ वर्णः २ अर्थः ३ आलंबनं ४ एकाग्रता ५ इति पंचप्रकारः योगः मोक्षोपायहेतुः मनः, इत्यनेनानादिपरभाव-सक्तभवभ्रमणग्रहात् पुद्गलभोगमग्नानां न भवति, अयममिप्रायः—मतोऽस्माकं मोक्षः साध्योऽस्ति, स च गुरुवचनस्मरणतत्त्वजि-

व्या०—कृपानिर्वेद इति 'कृपा' अनुकंपा, दुःखितेषु दुःखमोचनलक्षणः आर्द्रतापरिणामः। 'निर्वेदः' भवोद्वेगः चतुर्गतिषु चारकत्वज्ञानं। संवेगः मोक्षाभिलाषः। 'प्रशमः' कषायाभावः। एते परिणामाः योगो मोक्षोपायः, तस्योत्पत्तिकारिणः कल्पशीलाः, एतत्स्वरूपपरिणामपरिणतस्य संवेगोद्भिन्नस्य, शुद्धात्मस्वरूपस्वरूपस्य, योगसाधना भवति। अत्र योगपंचके 'प्रत्येकं' एकैकस्य चत्वारो भेदा भवंति, ते च इमे—इच्छा १ प्रवृत्तिः २ स्थिरता ३ सिद्धिः ४ इत्येते भेदा ज्ञेया। उक्तं च विंशतिकायां—

इक्किक्को य चउद्धा, इत्थं पुन तत्तओ मुणेयव्वो।
इच्छा पवित्तिथिरसिद्धिभेयओ समयनीईए ॥ १ ॥

इत्यादि ॥ ३ ॥

इच्छा तद्वत्कथाप्रीतिः, प्रवृत्तिः पालनं परम्।
स्थैर्यं बाधकभीहानिः, सिद्धिरन्यार्थसाधनम् ॥४॥

व्या०—इच्छा तद्वदिति, 'इच्छा' साधकभावाभिलाषः, तत् योगपंचकं येषु विद्यते ते तद्वंतः श्रमणाः तेषां कथासु गुणस्तवनादिषु प्रीतिः इष्टता। उक्तं च हरिभद्रपूज्यैः—"तज्जुत्तकहापीईइ संगया विपरिणामिणी इच्छा" इति तस्य सम्यग्दर्शनादियुक्तस्याहेतुभूतं क्रियाश्रुतान्यतमपालनं परंपरा उपशमा सा प्रवृत्तिः। उक्तं च "सव्वत्थुवसमसारं, तप्पालणमो पवित्ती ओ" ॥ इति इत्येतद् योगद्वयं बाह्यरूपत्वात् क्रियामुख्यत्वात् साध्यावलंबिनो कारणरूपं। तेषामात्मा तु शुभवर्यानिबंधनं स्थैर्यं बाधकाशुद्धाध्यवसाया अतिचारा तेषां भाभय तस्या हानिः अभावनिरतिचारगुणपालनारूप यत्र क्षयोपशमोऽपि अविगुणसाधनापरिणमनेन सहजभावत्वात् निर्दोषगुणसाधना भवति यत्र तत्र

नार्वीर्यादीनां सर्वक्षयोपशमानां स्वरूपोपयोगलीनत्वं ध्यानं, तत्र ध्यातुः ध्येये तदेकाग्रतारूपे ध्याने समापत्तिः निर्विकल्पना तारतम्यरहिता चित्परिणतिः एकता ज्ञेया ॥ २ ॥

तत्र दृष्टांतेन कथयति—

मणौ विम्बप्रतिच्छाया, समापत्तिः परात्मनः ।
क्षीणवृत्तौ भवेद् ध्यानादन्तरात्मनि निर्मले ॥ ३ ॥

ध्या०–मणी विंबेति । यथा 'मणौ' रत्ने बिंबस्य प्रतिच्छाया तथा 'अंतरात्मनि' स्वस्वरूपे 'परात्मनः' निर्मलात्मनः 'ध्यानात् समापत्तिः' सिद्धात्मनः स्वात्मन्येकतारूपा भवेत्, कथंभूते अंतरात्मनि ? 'निर्मले' कषायविकल्पमलरहिते पुनः किंभूते ? 'क्षीणवृत्तौ' क्षीणा वृत्तिः पराजीविका यस्य स क्षीणवृत्तिः तस्मिन् एव समापत्तौ ध्यानसिद्धिः भवति इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण अन्यत्रोक्तं—

मणेरिवाभिजातस्य, क्षीणवृत्तेरसंशयम् ।
तात्स्थ्यात्तदंजनत्वाच्च, समापत्तिः प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

अंतरात्मनि परमात्मनः अभेदारोपः ध्यानफलं तच्च संसर्गारोपतो भवति, संसर्गश्चात्र निष्पन्नानंततात्त्विकसिद्धात्मनाउपयोगः तच्च चलचित्तानामिंद्रियरोधमंतरेण न भवति, इंद्रियरोधश्च जिनप्रतिमादिकारणमंतरेण न जायते; अतः स्थापना तत्त्वोपकारकारिका ॥ ३ ॥

आपत्तिश्च ततः पुण्य–तीर्थकृत्कर्मबन्धतः ।
तद्भावाभिमुखत्वेन, सम्पत्तिश्च क्रमाद्भवेत् ॥ ४ ॥

ध्या०–'आपत्तिश्चेति' च पुनः 'आपत्तिः' जिनभक्तिस्तन्म

द्विप्रकारं ज्ञेयं, एकं रूपि, अपरं अरूपि, तत्र रूप्यालंबनं—जिनमुद्रादिकपिंडस्थपदस्थपर्यंतं, यावदर्हद्देवस्यालंबनं तावत्कारणावलंबनं शरीरातिशयोपेतं रूप्यवलंबनं, तत्र अनादिपरभावशरीरधनस्वजनावलंबी, यत्र परिणतचेतनविश्लेषपर्यायर्थं तीर्थकराद्यवलंबनमपि भवहेतुः, तथैव यः स्वरूपानंदपिपासितः स्वरूपसाधनाप्रथमकारणरूपं जिनेश्वरं वीतरागादिगुणसमूहैः अवलंबते, यावत् मुद्राद्यावलंबनी तावत् रूप्यवलंबनी, स एव अर्हत्सिद्धस्वरूपं ज्ञानदर्शनचारित्राद्यनंतपर्यायविशुद्धशुद्धात्मधर्मं अवलंबते, इति अरूप्यालंबनी, तत्र भाव्यते अनादितो जीवो मूर्तपुद्गलस्कंधावलंबपरिणतः कथं ? प्रथमत एवामूर्तानंदरूपं स्वरूपमवलंबते अतः अतिशयोपेतवीतरागमुद्रादिकं परं मूर्तं चालंब्य विषयकषायवृद्धिकरं स्त्रीधनाद्यवलंबनं त्यजति, इत्येका परावृत्तिः, पुनः स एव अतिशयादिरूपमूर्तावलंबनीयः, अहं तु अमूर्तभावरसिकत्वेनोपयुज्यते, यद्यपि अर्हतः संबद्धं तथापि औदयिकं नालंबनं, मम तु गुणावलंबिनी मूर्तान् भवान् न रसिकत्वेन गृह्णाति, सापेक्षः परत्वेन पश्यति इति द्वितीया परावृत्तिः । एवं अमूर्तात्मगुणरसिको भवति तेन परमेष्ठिस्वरूपकारणेनावाप्यं स्वकीयासंख्यप्रदेशव्याप्यव्यापकभावावच्छिन्नद्रव्यानित्यपर्यायानित्यानंतस्वभावममलामूर्तानंदमयं ध्येयत्वेनालंबते, इति किं तृतीया परावृत्तिः, इति साधनपद्धतिः सर्वेषां तत्स्वरूपसाधनं अरूपिगुणाः सिद्धगुणाः तेषां भावनं सायुज्यं तदात्मता, तदा योगः. आत्मोपयोगयोजनं यद्यपि ईषदवलंबनं श्रुतादीनां, तथापि अनालंबनमेव यः उत्कृष्टो योगः, उक्तं च "यावत् नवावतिष्ठेत खलु मनः सू-सद्धलक्षणत्वेन सर्वोत्तमा मुनेः तेनानालंबनोऽस्तिनः ॥ ६ ॥

निरालंबनयोगेन भागमहा प्रधानमहिमा नाम चित्तं तस्य

लोके तिर्यग्नारकाग्रहणं तु तयोर्दुर्गतित्वात्, इत्यनेन त्रिभुवने उपमा सादृश्यं न, तत्त्वज्ञानानुभवलीनस्य सहजानन्दविलासकस्य तुलना केन क्रियते ? इति । किं कुर्वतस्तस्य अंतरे च आत्मांतरमध्ये एव अप्रतिद्वंद्वं बाह्याभ्यंतरविपक्षरहितं सर्वपरभावागम्यं साम्राज्यं स्वगुणसंपत् स्वभावपरिवारोपेतं राज्यं स्वाधीनं वितन्वतः विस्तारयतः स्वगुणानंदासंख्येयप्रदेशनिर्व्याघातं स्वराज्यमनुभवतः । अतः सर्वेऽपि पष्ठ्यंतया ध्यानिनो विशेषणे संयोज्याः । कथंभूतस्य ध्यानिनः ? 'जितेंद्रियस्य' जितानि स्वरूपोपयोगे क्लृप्तानि पौद्गलिकवर्णादिष्वपरिणमनात् जितानि इंद्रियाणि येन स तस्य, 'धीरस्य' स्ववीर्यसामर्थ्येन परीपहोपसर्गेऽकंप्रस्य, स्वरूपनिष्ठस्य, पुनः 'प्रशांतस्य' कपायनोकपायोद्रेकरहितस्य धीरः शांत एव आत्मानमास्वादयति, पुनः 'स्थिरात्मनः' स्थिरः आत्मस्वरूपरमणे आत्मा यस्य स, तस्य सुखासनस्य साधनपरिणतौ सुखमय आत्मा यस्य स तस्य, पुनः नासाग्रे चापल्यरोधनाय 'न्यस्ते' स्थापिते नेत्रे येन स तस्य, योगिनः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररत्नत्रयीपरिणतस्य, रुद्धा बाह्येंद्रियानुसारिणी मनसः वृत्तिर्येन स तस्य, इंद्रियानुयायिमनोवृत्तिनिवृत्तस्य, कस्माद् ? ध्येये चित्तस्य स्थिरबंधनं धारणा तस्या धारा तया धारणाधारया रयात् रुद्धमनसः तत्त्वज्ञानं सुनिश्चितं भवति, पुनः 'प्रसन्नस्य' कालुष्यरहितस्य 'अप्रमत्तस्य' अज्ञानाद्यष्टप्रमादनिवृत्तस्य पुनः 'चिदानंदसुधालिहः' चित् ज्ञानं तस्यानंदः स एव सुधा अमृतं तां लिह्यतीति तस्य लिहः, ज्ञानानंदास्वादकस्य, एतादृशस्य ध्यानिनः आत्मिकसाम्राज्यानुभवं विस्तारयतः तुल्यत्वं केन भवति ? न केनापि । अतः सर्वपरभावपरित्यागरूपावलोकनतत्त्वैकत्वध्यानामृतस्वभोग्यभोक्तुः परमसाम्राज्यं । अतः सर्वप्रकारेण तदेव कर-

विभक्तिगतम् ॥ ३ ॥ इति भक्तिलक्षणं । वचनात्मिका प्रवृत्तिः सर्वत्रौचित्ययोगतो या तु । वचनानुष्ठानमिदं चारित्रवतो नियोगेन ॥ ४ ॥ इति वचनलक्षणं । यत्त्वभ्यासातिशयात्सात्मीभूतमिव चेष्टते सद्भिः । तदसंगानुष्ठानं, भवति चैतत्तदावेधात् ॥ ५ ॥ चक्रभ्रमणं दंडात्तदभावे चैव यत्परं भवति । वचनासंगानुष्ठानयोस्तु तद् ज्ञापकं ज्ञेयम् ॥ ६ ॥ अभ्युदये फले चाद्ये निःश्रेयससाधने चरमे । एतदनुष्ठानानां विज्ञेये इह गतापाये ॥ ७ ॥ इति एवं क्रमेण योगमाचरन्नसौ सर्वयोगरोधं कृत्वा अयोगी भवति ॥ ७ ॥

स्थानाद्ययोगिनस्तीर्थोच्छेदाद्यालम्बनादपि ।
सूत्रदाने महादोष, इत्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ८ ॥

स्था०—स्थानाद्ययोगिन इति स्थापनादिमर्यादयोगरहितस्य सूत्रदानं महादोष इति आचार्या हरिभद्रादयः 'प्रचक्षते' कथयंति, कस्मात्? तीर्थोच्छेदाद्यालंबनात्, निरालंबस्य सूत्रदाने कदाचित् कुमरूपणाकरणेन तीर्थोच्छेदो भवति । उक्तं च विंशतिकायां—

तित्थे सुच्छेदाइ वि नालंबणमित्थ जं स एमेव ।
सुत्तकिरियाइनासो, एसो असमंजसविहाणा ॥ १ ॥
सो एस वंकओ चिय न य सयमयमारियाणमविसेसो ।
एयंपि भावियव्वं, इह तित्थुच्छेयभीरूहिं ॥ २ ॥
मुत्तूण लोगसन्नं, उड्ढूण य साहुसमयसब्भावं ।
सम्मं पयट्टियव्वं, बुहेण मइनिउणबुद्धीए ॥ ३ ॥

एवं प्रथमं स्थानादिविशुद्धिं कृत्वा इच्छादिपरिणतः क्रमेण स्वरूपावलंबनादि गृहीत्वा प्रीत्याद्यनुष्ठानेन असंगानुष्ठाने गतः

नयानां व्याख्या तु—नामतपः स्थापनातपः सुगमं, द्रव्यतपः आहारत्यागादि, भावतपः आत्मस्वरूपैकाग्रत्वरूपं, अत्र द्रव्यपूर्वकभावतपोग्रहणमिति ।

ज्ञानमेव बुधाः प्राहुः, कर्मणां तापनात्तपः ।
तदाभ्यन्तरमेवेष्टं, बाह्यं तदुपबृंहकम् ॥ १ ॥

व्या०—ज्ञानमेवेति । बुधाः पंडिताः 'कर्मणां' आत्मप्रदेशसंश्लिष्टानां तापनात् तीक्ष्णं ज्ञानं एव तपः प्राहुः, तत्तपः आभ्यंतरं अंतरंगं प्रायश्चित्तादिकं इष्टं बाह्यं अनशनादिकं तदुपबृंहकं आभ्यंतरतपोवृद्धिहेतु, द्रव्यनिक्षेपस्य कारणरूपत्वात्, द्रव्यतपसोऽपि भावतपसः कारणत्वमेव तेन इष्टं ॥ १ ॥

आनुश्रोतसिकी वृत्ति—र्बालानां सुखशीलता ।
प्रातिश्रोतसिकी वृत्ति-र्ज्ञानिनां परमं तपः ॥ २ ॥

व्या०—आनुश्रोतसिकीति—संसारप्रवाहपद्धतिः अनादि प्रवृत्तिः आनुश्रोतसिकी वृत्तिः बालानां मूढानां 'सुखशीलता' इंद्रियसुखमग्नता, सुखाभिलाषता 'प्रातिश्रोतसिकी' प्रवाहसंमुखता, संसारसंमुखत्वमपहाय संसारपराङ्मुखी प्रवृत्तिः तदेव परमं तपः ज्ञानिनामुक्तमिति, आत्मधर्मानुगसंसारप्रतिकूलप्रवृत्तिस्तप उच्यते, इत्यनेन प्रायश्चित्तादिभावतपः परिणामः स्वरूपतन्मयत्वं तत्तपसा एव सकलकर्मक्षयः ॥ २ ॥

धनार्थिनां यथा नास्ति, शीततापादि दुस्सहम् ।
तथा भवविरक्तानां, तत्त्वज्ञानार्थिनामपि ॥ ३ ॥

व्या०—धनार्थिनामिति । यथा धनार्थिनां शीततापादि दुस्सहं नास्ति, धनोपार्जनकुशलाः शीतादिकं सर्वमपि क्षमंते, तथा

व्या०—पापध्वंसिनीति—भो दक्ष! निष्कामे सर्वपरभावाभिलापरहिते 'पापध्वंसिनि' पापकर्मविनाशके आत्मस्वरूपे ज्ञाने स्वपरावभासकं, तस्मिन् यज्ञे रतो भव तन्मयो भव। किं 'भूतिकामनया' इहलोकसुखेच्छया 'सावद्यैः' पापसहितैः 'आविलैः' म्लानैः यज्ञैः किं? न किमपि न हिताय ते तत्करणं न युक्तं, आत्मस्वरूपे यागः तन्मयैकत्वपरिणतिः कर्माभावकरी तेन तत्र यतितव्यम् ॥ २ ॥

वेदोक्तत्वान्मनःशुद्ध्या, कर्मयज्ञोऽपि योगिनः।
ब्रह्मयज्ञ इतीच्छंतः, स्येनयागं त्यजंति किम्? ॥३॥

व्या०—वेदोक्तत्वादिति—वेदोक्तत्वात् मनःशुद्ध्या कर्मयज्ञोऽपि ब्रह्मयज्ञ इति इच्छंतः श्येनयागं किं त्यजंति? इति स्वमतकल्पनां कुर्वंति मूढाः ते निषेधनीयाः, नहि संसारकामनया हिंसा सुखकरी भवति, साम्यशुद्धिमंतरेण न प्रयासो हिताय, अतो नैव कर्तव्यं इति ॥ ३ ॥

ब्रह्मयज्ञः परं कर्म, गृहस्थस्याधिकारिणः।
पूजादि वीतरागस्य, ज्ञानमेव तु योगिनः ॥ ४ ॥

व्या०—ब्रह्मयज्ञ इति—'गृहस्थस्य' सावद्यप्रवृत्तस्य 'अधिकारिणः' योग्यस्य न्यायोपार्जितादिवित्तवतः, वीतरागस्य पूजादिकर्मकरणं परं उत्कृष्टं ब्रह्मयज्ञ इति ज्ञेयं, संवराभावे आस्रवाणां परावृत्तिः प्रशस्तकरणं युक्तं। उक्तं च—

अकसिणपवत्तगाणं, विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो।
संसारपयणुकरणे, दव्वथए कूवदिट्ठंतो ॥ १ ॥

इति रागवासनास्थानस्य प्रशस्तताकरणोपदेशः। आगमे सर्वा-

व्या०—इत्थं चेति। इत्थं यत्तपः कष्टं इति भासनपूर्वकं तत्तपः 'व्यर्थं' निष्फलं, कस्मात्? दुःखरूपत्वात् तपःकरणे एव दुःखोद्वेगो यत्र नादरः स कथं हिताय भवति। तथा 'इच्छतां' इति परभावसुखं इच्छतां वांछतां बौद्धानां बुद्धिः 'निहता' निश्चयेन हता, कस्मात् "बौद्धानंदः" बौद्धं ज्ञानं तस्य आनंदः तस्य परिक्षयः तस्मात् ज्ञानानंदधाराक्षयात् कष्टरूपं तपः निष्फलम् ॥ ५॥

यत्र ब्रह्म जिनार्चा च, कषायाणां तथा हृतिः।
सानुबन्धा जिनाज्ञा च, तत्तपः शुद्धमिष्यते ॥६॥

व्या०—यत्र ब्रह्मेति, यत्र यस्मिन् तपसि 'ब्रह्म' मैथुनत्यागः विषयानभिष्वंगः अस्ति। यत्र जिनानां 'पूजा' तत्त्वभक्तिर्वर्तते पुनः यत्र 'कषायाणां' क्रोधादीनां 'हृतिः' नाशः, च पुनः यत्र 'जिनाज्ञा' श्रीवीतरागोक्तप्रवचनपद्धतिः 'सानुबंधा' सापेक्षा तत्तपः शुद्धं इष्यते। भावना च प्रथमं इंद्रियाभिलाषनिरासे शांतपरिणत्या सिद्धांतोक्तविधिना निरभिलाषस्य तपो विशुद्धं भवति, अन्ना दिपरभावसुखस्पृहया किं केन न कृतं कष्टानुष्ठानं? यच्च स्वरूपनिरावरणार्थं निःसंगनिर्मोहकतत्त्वैकत्वरूपं व्याघातकपराभावाहारादिग्रहणनिवारणलक्षणं तपः तत् श्रेष्ठमिति। उक्तं च—

निरणुट्ठाणं मयमोहरहियं सुद्धंतत्तसंजुत्तं।
असब्भभावणा एवं तवं कम्म सुयहेउ ॥ १ ॥ ६ ॥

तदेव हि तपः कार्यं, दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत्।
येन योगा न हीयन्ते, क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि वा ॥७॥

व्या०—तदेव हीति। हीति निश्चितं, तदेव तपः 'कार्यं' करणीयं यत्र दुर्ध्यानं पुद्गलाशंसारूपमनिष्टतारूपं नो भवेत्। येन

यद्वा तत्फलमीप्सि। तर्हि त्वं तत्कृते स्वकृतत्वसमये स्वस्य जीवस्य यत्कृतं निर्मितं कर्म तस्मात्तत्त्वं तद्रूपो यः स्मयोऽहंकारस्तस्मिन् निमित्तभूते। इवे इन्धनमौ प्रक्षेपणं मया निर्मितमिति अहंकारहोमनिमित्त इति यावत्। कर्मणो ज्ञानावरणादिकस्य ब्रह्माग्नौ ब्रह्म शुद्धलीनोपयोगिज्ञानं निराशंसतपश्च तद्रूपो योऽग्निरूर्ध्वं गच्छतीति व्युत्पत्तिबलात्तस्मिन् आहुतिकरणं युक्तं घटमानं, न तु पश्वादेरित्यर्थः ॥ ६ ॥

अथ श्लोकद्वयेन स्वरूपफलदर्शनपूर्वकमुपसंहरति—

ब्रह्मण्यर्पितसर्वस्वो, ब्रह्मदृग्ब्रह्मसाधनः।
ब्रह्मणाजुह्वदब्रह्म, ब्रह्मणि ब्रह्मगुप्तिमान् ॥ ७ ॥

व्या०—ब्रह्मण्यर्पणमसीति 'ब्रह्मणि' आत्मनि अर्पितसर्वस्वः, अर्पितं स्थापितं सर्वस्वं सर्वात्मपरिणमनरूपं इत्यनेन ज्ञानवीर्यलाभभोगादयः स्वक्षयोपशमीभूता भावे आत्मनि एवार्पिताः स्थापिता येन सः। तथा 'ब्रह्म' आत्मज्ञानं वा 'दृग्' दृष्टिर्दर्शनं श्रद्धानं ब्रह्मणि साधने यस्य स ब्रह्मसाधनः, अथवा—'ब्रह्म' आत्मा एव साधने यस्य स एवंविधः साधकजीवः 'ब्रह्मणि' साधकावस्थापरिणतस्वात्मनि आधारभूते ब्रह्मणात्मज्ञानवीर्याभ्यां, अब्रह्म अज्ञानं पुद्गलकर्म चात्मनः भिन्नं अजुहवत् भस्मीचकार, कथंभूतः साधकपुरुषः ? 'ब्रह्म' ब्रह्मचर्य स्वरूपरमणरूपं तस्य गुप्तिमान् तद्गुप्तियुक्तः इत्यनेन चात्मा कर्त्ता आत्मस्वरूपेण करणभूतेन आत्मस्वरूपरोधकं ज्ञानावरणादि कर्म आत्मनि स्थितं निवारयति ॥ ७ ॥

ब्रह्माध्ययननिष्ठावान्, परब्रह्मसमाहितः।
ब्राह्मणो लिप्यते नाघैर्नियागप्रतिपत्तिमान् ॥ ८ ॥

दुर्लभः असंख्येयसमयेनापि देशज्ञायकत्वात्, तस्य ज्ञानं गौण मुख्यतारूपेण प्रवर्त्तते । उक्तं च तत्त्वार्थे-"अर्पितानर्पितसिद्धेः सूत्रस्य व्याख्याने, सर्वज्ञानां तु सर्वमपि एकसमयेनैव ज्ञातत्वा गौणमुख्यताज्ञानं वचसि क्रमवर्तित्वाद् भवति एवं न्यूनशक्त्य गौणमुख्यत्वं न रागद्वेषपरिणत्या रागद्वेषपरिणामो बंधहेतुः, अत नयस्वरूपेण यथार्थबोधाय वस्तुविवेचनं हितं न रक्तद्विष्टता तेन ज्ञानसाम्यं करणीयं ज्ञानसाम्यमेव चारित्रं तदर्थमेव निरूपयति-

धावन्तोऽपि नयाः सर्वे, स्युर्भावे कृतविश्रमाः ।
चारित्रगुणलीनः स्यादिति सर्वनयाश्रितः ॥ १ ॥

व्या०-धावंतोऽपि नया इति । सर्वे नयाः 'धावंतः' स्वस्वपक्षस्थापनपुरःसरा अपि 'भावे' शुद्धात्मधर्मणि कृतवि-श्रामाः स्युः स्थिरा भवंति, अतो मुनिः 'चारित्रगुणलीनः' चयरिक्तीकरणं चारित्रं तदेव गुणः तत्र लीनः वर्द्धमानपर्यायः 'सर्वनयाश्रितः' स्यात् द्रव्यनये कारणग्राहके भावनये तत्कार्य-त्वग्राहके 'क्रियानये साधनोद्यमरूपे' ज्ञाननये तद्विश्रामरूपे 'आश्रितः' आसक्तः स्यात् भवेत् इत्यर्थः । उक्तं चानुयोगद्वारे—

सव्वेसिं पि नयाणं बहुविहवत्तव्वयं निसामित्ता ।
जं सव्वनयविसुद्धं, तं चरणगुणट्ठिओ साहू ॥ १ ॥

अत्र उक्तं श्रीभगवतीटीकायां—

"जइ जिणमयं पव्वज्जह, ता मा ववहारनिच्छए मुयह ।
ववहारनओच्छेए तित्थुच्छेओ जओ भणिओ ॥ १ ॥

अतः साम्यं हितं ।

पुनस्तदेव द्रढयति—

भक्तिश्रद्धानघुसृणोन्मिश्रकश्मीरजद्रवैः ।
नवब्रह्माङ्गतो देवं, शुद्धमात्मानमर्चय ॥ २ ॥

व्या०—दर्शनम् इति भक्तिश्रद्धानेति—लोकद्वयस्य युक्ततो भावपूजनं दर्शयति । हे उत्तम ! एवंविधं 'शुद्धमात्मानं' अनेकत्वादिविमलं आत्मरूपं देवं, नव इति नवब्रह्मरूपं गतः अर्चय पूजां कुरु कीदृशो भूत्वा ? इत्याह—'देवा' द्रव्य-भावस्वरूपात्मकतारूपा सा एव 'अंशः' उक्तं पानीयं तेन कृतं स्नानं पवित्र्यं येन सः । संतोषः शुद्धभावविपाको शोभनाव-रूपः स एव शुक्लानि वस्त्राणि तेषां 'भृत्' धारकः । विवेकः स्वपरविभजनरूपं ज्ञानं तदेव तिलकं तेन भाली शोभमानः । पुनः कथंभूतः ? 'भावना' अर्हद्गुणैकत्वरूपा तथा 'पावनः' पवित्रः 'आशयः' अभिप्रायः यस्य स पुनः 'भक्ति' आरा-धना 'श्रद्धा' प्रीतिः 'एतत्द्वे' एतद्वे एवंरूपा तद्रूपेण घुसृणेन उन्मिश्रं कश्मीरजं तस्य द्रवाः तैः शुद्धात्मा परमेश्वरः स्वकी-यात्मानि दीप्यति स्वरूपे इति देवत्वं अर्चय पूजय तत्रीतिः स्तो भव इति ॥ १ ॥ २ ॥

अथ क्षमादिना पूजाप्रकारमाह—

क्षमापुष्पस्रजं धर्म-युग्मक्षौमद्वयं तथा ।
ध्यानाभरणसारं च, तदङ्गे विनिवेशय ॥ ३ ॥

व्या०—क्षमापुष्पस्रजमिति—हे भव्य ! तस्य आत्मस्वरूपे अङ्गे 'क्षमा' क्रोधोपशमनस्वरूपं धर्मस्रजाख्यां 'स्रजं' पुष्प-मालां 'निवेशय' स्थापय । तथा तथैव 'धर्मयुग्मं' श्रावक-साधुरूपं श्रुतचारित्ररूपं वा क्षौमवस्त्रद्वयं निवेशय । च पुनः

मपि व्याख्यातं । अथानेकनयात्मके जैनमार्गे एकांतता पक्षपातपरित्यागेन सर्वनयेषु समभावरूपपरिणामः रागद्वेषाभावलक्षणः स्वस्वस्थानसाधनविज्ञानरमणाध्यवसायः कार्यः । एकांतग्रह एव मिथ्यात्वं । सर्वत्र सापेक्षता सम्यग्दर्शनं तच्च यथार्थोपयोगिनां यथार्थप्रवृत्तिमतां च भवति, अतः एकताग्रहत्यागसर्वनयसनाश्रयणोपदेशकं द्वात्रिंशत्तममष्टकमुवाच श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायः परमरहस्यज्ञाता । अरे नास्ति धर्मः बाह्यपद्धत्या निमित्तकारणरूपा सा । श्रीपंचमांगे प्राणातिपातसंवरादयः सर्वे अमूर्ता जीवस्वरूपा उक्ताः, येन हि जीवस्वभावरूपः शुद्धनिर्विकल्परत्नत्रयीलक्षणः धर्मः प्रतीतः स एव सम्यग्दृष्टिः, नहि कुशकाशावलंबनेन समुद्रतरणं भवति । उक्तं च श्रीहरिभद्रपूज्यैः--

आयप्पभवं धम्मं, आयतियं अप्पणो सरुवं च ।
दंसणनाणचरित्तेगत्तं जीवस्स परिणामं ॥ १ ॥

रे भव्य ! हिताय वदामः सर्वागमेषु धर्म आत्मनः शुद्धा परिणतिरेव निमित्तस्योपादानप्राकट्यहेतुत्वात् बाह्याचरणादिकं साधकैरभ्यस्यते, तथापि धर्महेतुत्वेनोपादेयं श्रद्धावद्भिः, तस्यात्मक्षेत्रव्यापकरूपानंतपर्यायलक्षणं धर्मः उत्तराध्ययनावश्यकप्रदिसर्वसिद्धांताशय इति तत्त्वं रागद्वेषरहितानां भवति, रागद्वेषाभावपरिणतेषु गौणमुख्यताऽपरिहारः समः साध्यः, एवं मिथ्यात्वोदयेन मुख्ये मुख्यत्वबोधप्रवर्त्तनरादः स च सम्यग्दर्शनेन कारणत्वेन अयं मुख्यश्चायं गौणः, नन्वनंतपर्यायात्मके वस्तुनि जिणमय स्वपर्यायस्य गौणमुख्यत्वे क्षयोपशमज्ञानेन सर्वधर्माणां--रेच्छेए

एकम्महम्मि .., निच्छिणउ उभयवायपणवओ ।
मूलगयाणओ आणं पत्तेय विसेसियं दिंति ॥ १

स्फुरन्मङ्गलदीपं च, स्थापयानुभवं पुरः ।
योगनृत्यपरस्तौर्य-त्रिकसंयमवान् भव ॥ ६ ॥

व्या०—स्फुरन्मङ्गेति च पुनः 'स्फुरन्तं' देदीप्यमानं सर्वद्र-
व्यभावोद्योतवंतं मंगलदीपं भावकरूपं 'अनुभवं' स्वसंज्ञानं
स्वस्वरूपावभासनयुक्तं ज्ञाने 'पुरः' अग्रे स्थापय, योगाः
मनोवाक्कायव्यापाराः तेषां नावनप्रवर्तनरूपं "नृत्यं" ताण्डवं तत्र
'तत्परः' मोहनः सन् परमात्मध्यानधारणाध्यानसमाधिरूपसाधनयो-
गयोगधारणिकत्रयीदिकृज्ञानवानयो भव. इत्यनेन आभ्यन्तर-
पूजया तत्त्वानंदमयमैकत्वरूपं स्वात्मानं स्वरूपं कुरु ॥ ६ ॥

उल्लसन्मनसः सत्य-घण्टां वादयतस्तव।
भावपूजारतस्येत्थं, करक्रोडे महोदयः ॥ ७ ॥

व्या०—उल्लसन्मनस इति इत्थं भावपूजारतस्य तव 'महो-
दयः' मोक्षः 'करक्रोडे' हस्ततलेऽस्ति किं कुर्वतः ? उल्लसन्मनसः
भावोल्लासयुक्तचित्तस्य सत्यवचनरूपां घंटां वादयतः शब्दं कुर्वतः
इत्यनेन सहर्षस्तवनतल्लीनरूपां घंटां नादयतः सतः पूर्वोक्त-
पूजाकरणेन सर्वसमाप्तिप्रादुर्भावरूपो मोक्षो भवति ॥ ७ ॥

द्रव्यपूजोचिता भेदो-पासना गृहमेधिनाम्।
भावपूजा तु साधूना-मभेदोपासनात्मिका ॥ ८ ॥

व्या०—द्रव्यपूजेति 'गृहमेधिनां' गृहस्थानां "भेदोपासना-
रूपा" आत्मनः सकाशात् अर्हन् परमेश्वरः भिन्नः निष्पन्नानं-
दादिगुणवान् तस्योपासना सेवना निमित्तालंबनरूपा द्रव्यपूजा
'उचिता' योग्या तु पुनः साधूनां अभेदोपासनात्मिका परमा-

पुनः हेमाचार्यैः ।

तथापि न च द्वेषः, कार्यो विषयस्तु यततो मृग्यः ।
तस्यापि सद्वचनं, सर्वं च यत्प्रवचनादन्यत् ॥ १ ॥

इति विचार्य स्याद्वादोपयोगिसर्वनयज्ञता कार्या पुनः साम्यमवलंबनीयं पक्षपरिहारेण आत्मधर्मनिष्ठता हिता ॥ ३ ॥

लोके सर्वनयज्ञानं, ताटस्थ्यं वाप्यनुग्रहः ।
स्यात्पृथङ् नयमूढानां, स्मयार्तिर्वाप्यतिग्रहः ॥ ४ ॥

व्या०—लोके सर्वेति । 'लोके' दक्षजनसमूहे 'नयज्ञानां सर्वनयरहस्यविज्ञानां 'ताटस्थ्यं' तटस्थत्वं पार्श्ववर्तित्वं, 'वा' इति व्यवस्थायां । 'अपि' समुच्चये, 'अनुग्रहः' उपकाराय भवति, सर्वत्र परीक्षकत्वं हितं, पृथङ्नयमूढानां एकैकनयपक्षग्रहवर्तिनां स्मयार्तिः मानोन्मादपीडा वा अथवा अतिग्रहः कदाग्रहः स्यात् भवति । उक्तं च—

कालो सहाव नियइ, पुव्वकयं पुरिसकारणे पंच ।
समवाये सम्मत्तं, एगंते होई मिच्छत्तं ॥ १ ॥

अत्र पुरुषाकारस्य उपादानकारणत्वात् मुख्यत्वं, कालस्वभावपूर्वकृतानां तु निमित्तासाधारणापेक्षया कारणत्वं, नियतेश्च कारणत्वं औपचारिकं, अस्या अनित्यत्वं विचारामृतसंग्रहे उक्तमस्ति, इति नियतपक्ष आजीविकानां मिथ्याग्रहरूपः न जैनानां, एवं अंशस्यापि जैनमार्गे विवक्षितत्वात् समुच्चयवचनं ॥ ४ ॥

एवं सापेक्षा श्रद्धा कार्या इत्युपदिशन्नाह—

श्रेयः सर्वनयज्ञानं, विपुलं धर्मवादतः ।
शुष्कवादविवादाच्च, परेषां तु विपर्ययः ॥ ५ ॥

[illegible] ॥ १ ॥

ध्यातान्तरात्मा ध्येयस्तु परमात्मा प्रकीर्तितः ।
ध्यानं चैकाग्र्यसंवित्तिः समाधिस्तदेकता ॥ २ ॥

[illegible] । [illegible]—

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ४ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ५ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ६ ॥

इति [illegible] । [illegible]

सावज्जजोगपरिविज्जणाओ, सव्वुत्तमो जइवम्मो ।
बीओ सावगवम्मो, तइओ संविग्गपक्खपहो ॥ १ ॥
सुज्झइ जई सुचरणो, सुज्झइ सुस्सावगोवि गुणकलिओ।
ओसन्नचरणकरणो, सुज्झइ संविग्गपक्खरुइ ॥ २ ॥
संविग्गपक्खियाणं, लक्खणमेयं समासओ भणिअं ।
ओसन्नचरणकरणावि, जेणं कम्मं विसोहंति ॥ ३ ॥
सुद्धं सुसाहुधम्मं, कहेइ निंदई य नियमायारं ।
सुतवस्सियाण पुरओ, होई सव्वोमरायणिओ ॥ ४ ॥
वंदई न य वंदावई, किइकम्मं कुणई कारवइ नेव।
अतट्ठा नवि दिक्खई, देई सुसाहूण बोहेउं ॥ ५ ॥

इत्यादिगुणोपेतैर्यदुपदिष्टं तत्सत्यं, च पुनः इदं स्याद्वाद-गर्भिततत्त्वधर्मस्वरूपं येषां चित्ते परिणतं श्रद्धानभासनरमणाद-रतया व्याप्तं तेभ्योऽपि नमः प्रणामोऽस्तु, सर्वज्ञोक्तमार्गानुसा-रिणोऽपि धन्याः, किं तत्परिणामपरिणतानां ? नमः सर्वज्ञशास-नाय; नमः सर्वज्ञमार्गवर्तिपुरुषसंघाय ॥ ६ ॥

निश्चये व्यवहारे च, त्यक्त्वा ज्ञाने च कर्मणि ।
एकपाक्षिकविश्लेषमारूढाः शुद्धभूमिकाम् ॥ ७ ॥
अमूढलक्ष्याः सर्वत्र, पक्षपातविवर्जिताः ।
जयन्ति परमानन्द-मयाः सर्वनयाश्रयाः ॥ ८ ॥

व्या०–निश्चय इति, अमूढलक्ष्या इति । एवंविधाः पुरुषाः 'जयंति' सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते इति, कथंभूताः पुरुषाः ? 'निश्चये' शुद्धात्मपरिणतिरूपे, च पुनः 'व्यवहारे' वीर्यप्रवर्त्तनरूपे, च पुनः 'ज्ञाने' उपयोगलक्षणे, 'कर्मणि' क्रियापक्षे, 'एकपाक्षिकं

ध्यानं ततः पश्चात् 'तुर्यं०' तुर्यमहानिरूपं तीर्थकृत् विश्वोपकारि संवरपः नकर्मनिरूपकं नामकर्म तस्य बंधनः तद्भावानिबन्धत्वेन तदुपयोगेन क्रमात् संततिः भवेत्, परमैश्वर्यं भवेत्। इदं च निस्संगस्वरूपं फलं दर्शितम् ॥ ४ ॥

अथ ध्यानस्वरूपत्वेन सफलं नेति दर्शयति—

इत्थं ध्यानफलायुक्तं, विंशतिस्थानकाद्यपि ।
कष्टमात्रं त्वभव्यानामपि नो दुर्लभं भवेत् ॥ ५ ॥

व्या०—इत्थमिति। इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण 'ध्यानफलात्' विविक्तध्यानोपयोगात् विंशतिस्थानकादीनि विंशतिस्थानप्रमुखं मुनिबहुमानेन युक्तं कर्तुं उचितं, अभव्यानां तु अन्यत् सम्यग्दर्शनादिगुणनिर्गुणानस्थानोपयोगत्वं विंशतिस्थानादि तपोऽपूर्वं 'कष्टमात्रं' कायक्लेशरूपं 'भवे' लभते नो दुर्लभं तत्प्राचरणं जैनोक्तमपि यतः अभव्यैः कृतमस्तीति ॥ ५ ॥

अथ ध्यानकारकस्य स्वरूपं निर्दिशन् श्लोकत्रयमाह—

जितेन्द्रियस्य धीरस्य, प्रशान्तस्य स्थिरात्मनः ।
सुखासनस्य नासाग्र–न्यस्तनेत्रस्य योगिनः ॥ ६ ॥

रुद्धबाह्यमनोवृत्तेर्धारणाधारया रयात् ।
प्रसन्नस्याप्रमत्तस्य, चिदानन्दसुधालिहः ॥ ७ ॥

साम्राज्यमप्रतिद्वंद्वमन्तरेव वितन्वतः ।
ध्यानिनो नोपमा लोके, सदेवमनुजेऽपि हि ॥ ८ ॥

व्या०—जितेन्द्रियेति, रुद्धबाह्येति, साम्राज्यमिति। एवंवि ध्यानिनः 'हि' इति निश्चितं 'सदेवमनुजेऽपि लोके' स

व्या० पूर्ण इति । अनादिपरभावानंतग्रासग्रसनेऽप्ययं जीवः तृष्णाव्याप्तत्वादपूर्ण एव स स्वरसास्वादनेन स्वतत्त्वानंतरूपणः तदास्वादमायादिसर्वगुणनिष्पत्तौ पूर्ण इति पूर्णत्वस्वरूपाभिधायकं प्रथमाष्टकं । यः पूर्णः स एव मग्नः, तदनुभवलीनः स एव लीनतायाः स्वरूपी भवति, परभावलीनता हि अनंतसंसारभ्रमणमूलं, अत एव सा मग्नता अनादिना त्याज्या या स्वरूपमग्नता सा एव मग्नता, इति तत्प्रतिपादनारूपं द्वितीयाष्टकं । यः मग्नः स स्थिरो भवति, न्यूनस्य ग्रहणेच्छया चापल्यं, पूर्णस्य ग्राह्याभावात् स्थैर्यं (अतः स्थिराष्टकं) यः स्थिरः स अमोहः मोहरहितः (अतः अमोहाष्टकं) मोहरहितस्यैव तत्त्वज्ञता भवति, तेम तत्त्वज्ञानाष्टकं पंचमं । यः ज्ञानी स शांतः उपशमवान् भवति अतः शमाष्टकं । यः शांतः स एव इंद्रियाणि जयति अतः इंद्रियजयाष्टकं । यः इंद्रियविजयी स एव त्यागी परभावपरिहारी भवति च त्यागी (अतः त्यागाष्टकं) स एव वचनानुक्रमतोऽसंगः क्रियारहितो भवति अतः क्रियाष्टकं । उक्तं च—

बांधवधनेंद्रियत्यागात् त्यक्तभयविग्रहः साधुः ।
त्यक्तात्मा निर्ग्रंथस्त्यक्ताहंकारममकारः ॥ १ ॥

इत्युक्तलक्षणः अत एव तृप्तः आत्मसंतुष्टः तेन तृप्त्यष्टकं ।
यस्तृप्तः स निर्लेपः रागादिलेपरहितः तेन निर्लेपाष्टकं ।
निर्लेपः निःस्पृहो भवति तेन निःस्पृहाष्टकम् ।
(यः निःस्पृहः स मुनिः मौनवान् भवति तेन मौनाष्टकं) ॥१॥

विद्याविवेकसम्पन्नो, मध्यस्थो भयवर्जितः ।
अनात्मशंसकस्तत्त्व-दृष्टिः सर्वसमृद्धिमान् ॥ २ ॥

नीयं । यदर्थं रचयंति यमनियमप्रचारान्, संक्षेपयन्ति शरीरं आसनमुद्रादिभिः, साधयंति रेचकपूरककुम्भकप्राणायामान्, वसंति निर्जने वने, त्यजंति सर्वेंद्रियविषयान्, तत्साम्यसुखमूलं आत्मैकत्वोपयोगं साम्यं स्वहितार्थिभिः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं ध्यानाष्टकम् ॥ २० ॥

अथ तपोऽष्टकम् ॥ २१ ॥

अथ तपोऽष्टकं विवृण्यते । तत्र पौद्गलिकसुखाभिलाषंकाराणां पञ्चकष्टसहनं, अथवा लोकसंज्ञाभीतानां पराधीनानां दीनतया आहारत्यागरूपं न तपः, आस्रवमूलत्वेन कषायोदयाश्रितत्वात् कर्मबंधकत्वाच्च । पूर्वांतरायोदयासातावेदनीयविपाक एव श्रीप्रज्ञापनावृत्तौ निरूपित एव, आचारांगचूर्णौ चापि "अंगत्थसुत्तं सव्वभावविवागं" इति वचनात्, अतोऽखिलेंद्रियसुखाभिलाषरहितस्य निर्मलात्मद्रव्यसाधकस्य कष्टाचरणं तप इति, अत्र पंचवस्तुके "उपवासादिषु असातानिर्जरेति भोजने सातानिर्जरा साम्ये उपवासादिकरणं किमर्थमिति ?" तत्रोच्यते भोजनादिषु षट्कायपलिमंथः उपवासे च तदभावात् अशुभनवकर्मबंधाभावे संवरपूर्वकमकामनिर्जरामूलत्वात् हितं, तथा चास्यात्मनः साताविपाके सरागहेतुत्वेन इष्टसंयोगैकता अनादिसहजपरिणमनात् आतापनादिषु कर्मविपाकोपयोगत्वे तथा परिणमनात् असंगताकारणत्वात् एव साधनमूलं च भग्नादय निदर्शनं, तस्मात् अल्पकालसाधनासिद्धिवतां, नहि चिरकालसाधनावतां सातादि । शुभसंनिकर्षे अभ्यासत्वपरिणामः । उक्तं च विशेषावश्यके—"शक्तिक्षमत्वात्कल्पानां तेनातापनादिकरणमुचितं मुनीनां" । निक्षेप-

ध्येयैकत्वं तदेव तपः तेषां भूमिः स्थानं भवति, एतत्स्वरूपनिरूपकमष्टकद्वयं, ततः सर्वनयाश्रयणं सम्यग्ज्ञानं तन्निरूपकं द्वात्रिंशत्तममष्टकं ॥ ४ ॥

एवं कारणकार्यपूर्वकाधिकारद्वात्रिंशत्फलकोपेतं ज्ञानसारं नाम यानपात्रं, यदारूढाः मिथ्याज्ञानभ्रमणभीषणं अतत्त्वैकतारूपजलगंभीरमसंयमपयोधिमुल्लंघ्य सम्यग्दर्शनप्रतोलीमंडितं सम्यग्ज्ञाननिधानोपेतं सम्यक्चारित्रानंदास्वादमधुरं असंख्येयप्रदेशरसं स्वतत्त्वैकतासंपत्प्रवणं जिनप्रवचनप्राकारोत्सर्गापवादपरिखामंयुतं नियमनिक्षेपानेकगुणौघं लभंते स्याद्वादपत्तनं भव्या इति ज्ञानसारफलोपदेशकं ग्रंथस्य मौलिरूपं अन्याधिकारमाह–श्रीमदष्टकैः ॥ ४ ॥

स्पष्टं निष्टङ्कितं तत्त्वं, अष्टकैः प्रतिपन्नवान् ।
मुनिर्महोदयं ज्ञान–सारं समधिगच्छति ॥ ५ ॥

व्या०–स्पष्टं निष्टंकितमिति । 'मुनिः' त्रिकालविषयी अष्टैः स्पष्टं शब्दप्रकटं तत्त्वं वस्तुधर्मं आत्मपरिणमनरूपं 'निष्टंकितं' निर्द्धारितं 'प्रतिपन्नवान्' अंगीकृतवान् स मुनिः 'महोदयं' मोक्षरूपं 'ज्ञानसारं' ज्ञानस्य सारं 'चारित्रं' तथा परं मुक्तिं 'समधिगच्छति' प्राप्नोति । उक्तं च—

सामाइयं सुअनाणं, जाव बिंदुसाराओ ।
नस्सवि सारो चरणं, सारं चरणस्स निव्वाणं ॥ १ ॥

तं प्राप्नोति ॥ ५ ॥

निर्विकारं निराबाधं, ज्ञानसारमुपेयुषाम् ।
विनिवृत्तपराशानां, मोक्षोऽत्रैव महात्मनाम् ॥ ६ ॥

ज्ञानार्थिनां भवविरक्तानां अनशनादिकं तपो न दुस्सहं, इष्टार्थी कष्टे न प्रमाद्यति. अतः परमानंदरसार्थिनां अनशनादितपःकरणे न दुस्सहत्वं मन्यते ॥ ३ ॥

सदुपायप्रवृत्तानामुपेयमधुरत्वतः ।
ज्ञानिनां नित्यमानन्द-वृद्धिरेव तपस्विनाम् ॥४॥

व्या०—सदुपायेति । 'तपस्विनां' तीव्रतपोयुक्तानां साधिकस्वभावानां सर्वाहारपरिहारणतपस्यायोग्यादिजिनकल्पादिहारविशुद्धि 'ज्ञानिनां' ज्ञानिनां तत्त्वज्ञानेनानन्तपर्यायविवेकसमीकृतचेतसां 'नित्यं' परीषहादिकष्टसहनकालेऽपि आनंदवृद्धिरेव । तथाहि—कश्चिद्वणिक् स्वार्थोद्यतः उत्पन्नोऽपि कष्टं सहन् आत्मानं धन्यमेव मन्यते, अथवा दिव्यसिद्धार्थी पर्वतेषु आरुह्य अधोमुखादिमहाकष्टसहनमपि नलिकादिना आनिशं यथास्तं करोति. तथा हर्षेणेति मुवं परमानंदस्वरूपशुद्धात्मसिद्धिसाधनार्थी नलिकादिरत्नमपाप तनःकष्टादिषु आत्मानमानंदयति, कुतः ? इत्याह—उपेयमधुरत्वतः. ' उपेयस्य मोक्षस्य निर्द्वन्द्वस्य परमसुखत्वं माधुर्यं तस्मात्, सिद्धिमाधुर्यस्य तत्साधनोपायत्वं निष्पत्तिहेतुत्वादि सर्व हितं जानाति, कथंभूतानां तपस्विनां ? 'सदुपायप्रवृत्तानां. सत् शोभन उपायः साधनं संवरनिर्जरारूपं तत्र 'प्रवृत्तानां' उद्यतानां. इत्यनेन स्वधर्मसाधने साहजिकानंदः न दुःखं, यस्य साधने कष्टत्वबुद्धिः स न साधकः । उक्तं च षोडशके ॥ ४ ॥

इत्थं च दुःखरूपत्वात्,तपो व्यर्थमितीच्छताम् ।
बौद्धानां निहता बुद्धि-र्बौद्धानन्दापरिक्षयात् ॥५॥

'ज्ञानं' यथार्थस्वपरावबोधः तस्य सारं चारित्रं वैराग्यं तस्य 'गरिष्ठता' गरिमा गुरुत्वं तत्स्वरूपमचिंत्यं दुर्विचारं अन्या गुरुता अधोगमनहेतुः ज्ञानगुरुत्वं ऊर्ध्वताहेतुः अत एवाचिंत्यमिति यया गरिष्ठतया ऊर्ध्वगतिरेव स्यात् अधःपातः कदापि न भवति। ऊर्ध्वता द्रव्यतः जीवेभ्य उच्चत्वगोत्रोदयादिरूपा, क्षेत्रतः ऊर्ध्वलोकगमनरूपा, भावतः सम्यक्त्वाद्युत्तरोत्तरगुणादौ रोहणरूपा, तेन यो ज्ञानगरिष्टः स ऊर्ध्वत्वं स्वर्गापवर्गलक्षणं सम्यक्चारित्रादिगुणलक्षणं प्राप्नोति ॥ ८ ॥

पुनः ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः, न ह्येकस्यापि विरोधकः साधको भवति, क्रिया हि वीर्यविशोधिरूपा, ज्ञानं च चेतनाविशोधिरूपं चेतनावीर्ययोः शोधिप्राप्तयोः एव सर्वसंवरा तथापि क्रियातः ज्ञानस्याधिक्यं दर्शयति—

क्लेशक्षयो हि मंडूक—चूर्णतुल्यः क्रियाकृतः।
दग्धतच्चूर्णसदृशो, ज्ञानसारकृतः पुनः ॥ ९ ॥

व्या०—क्लेशक्षय इति। हीति निश्चितं 'क्रियाकृतः' क्रियोद्यमविहितः क्लेशक्षयः कर्मक्षयः मंडूकचूर्णतुल्यः ज्ञेयः, यथा मंडूकचूर्णः पुनः घनयोगतः तत्रानेकानिनवमंडूकोत्पत्तिहेतुर्भवति, तथा—क्रियया अशुभकर्म क्षयति, तथापि शुभानां प्रचुरा वृद्धिः, पुनः शुभोपयोगकाले अशुभानां वृद्धिः इति ज्ञेयं। पुरा पूर्व ज्ञानसारकृतः कर्मक्षयः दग्धतच्चूर्णसदृशः इति, इत्यनेन ज्ञानानंदकृतः कर्मक्षयः पुनः न प्रभवति, यथा—मंडूकचूर्णः दग्धो न मंडूकोत्पत्तिहेतुर्भवति, एतदुपदेशपदात्सर्वं ज्ञेयं, आगमेऽपि—"सीलं सेयं सुअं सेयं" इत्यालापकेन। तथा पंचनिर्ग्रंथशतके—

तपसा 'योगाः' मनोवाक्कायरूपा 'न हीयंते' स्वरूपरमणं तच्चानुभवतो न हीयते, यत्र इंद्रियाणि न 'क्षीयंते' धर्मसाधकस्वाध्यायाहिंसादि तत्कार्यप्रवर्त्तिनं 'क्षीयते' क्षयं न लभते, इत्यनेन साधनामृतचेतनावीर्याणां हानिः न स्यात्, तत्तपः शुद्धं 'कार्यं' कर्त्तव्यं इति ॥ ७ ॥

मूलोत्तरगुणश्रेणि-प्राज्यसाम्राज्यसिद्धये । बाह्यमाभ्यन्तरं चेत्थं, तपः कुर्यान्महामुनिः ॥ ८ ॥

व्या०—मूलोत्तरगुणेति–'महामुनिः' परमनिर्ग्रंथः इत्थं तपः कुर्यात् किमूतं तपः ? "मूलोत्तरगुणश्रेणिप्राज्यसाम्राज्यसिद्धये" मूलोत्तरा मूलभूता ज्ञानचारित्राद्यो गुणा 'उत्तराः' समितिगुप्त्यादयो गुणाः तेषां 'श्रेणिः' विशेषतः गुणप्राग्भावरूपा तया 'प्राज्यं' प्रचुरं यत् 'साम्राज्यं' प्रभुत्वं तस्य 'सिद्धिः' निष्पत्तिः तदर्थं इत्यनेन स्वकीयगुणप्रभुत्वनिष्पत्त्यर्थं बाह्यं लोकोल्लासकारणत्वात् प्रभावकतामूलं आभ्यंतरं अन्यलोकैः ज्ञातुमशक्यं स्वगुणिकतारूपं च तपः कार्यम् ॥ ८ ॥

इति व्याख्यातं तपोऽष्टकम् ॥ ३१ ॥

अथ सर्वनयाश्रयणाष्टकम् ॥ ३२ ॥

तपो द्विविधं संवरात्मकं (ज्ञानात्मकं च) तत्र संवरात्मकं ज्ञानचारित्रयोः तीक्ष्णत्वं सर्वेन्द्रियादीनां स्वरूपैकत्वं, द्वितीयं तु ज्ञानचारित्रवीर्यभोगगुणसंरंभं गुणात्वादैकत्वाद्भवयन् सर्वपरभावास्पृहतारूपं, जघन्यतः अंशत्यागादेकदेशतोऽनीहागुणैकत्वं, उत्कृष्टतः शुक्लध्यानपरमात्मपदनालक्षणं, परभाववचोधो

चारित्रं विरतिः पूर्णा, ज्ञानस्योत्कर्ष एव हि ।
ज्ञानाद्वैतनये दृष्टिर्देया तद्योगसिद्धये ॥ १२ ॥

व्या०—चारित्रमिति । 'पूर्णा विरतिः' चारित्रस्वरूपमर्थं तत् ज्ञानस्यैव उत्कर्षः हीति निश्चितं ज्ञेयं ज्ञानस्य उत्कृष्टतया चारित्रं ज्ञानेकत्वं चारित्रं आत्मनः मूलव्याख्यायां ज्ञानदर्शन-गुणद्वयमयत्वभेन । उक्तं च श्रीविशेषावश्यके—उवराइ उगांगेऽपि—असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणेयनाणेहिं " इत्यादिवचनात् । अतः ज्ञाने स्थिरत्वं चारित्रं ज्ञानस्यानंदः सुखं .ज्ञान-प्रकर्षावबोधः सुखं इति भाष्योक्तेः तथा ज्ञानस्यास्वादनं भोगः एवं भावना पृथग्गुणानां भावनापि विशेषावश्यके " यतः चारित्रज्ञानादयः पृथग्गुणा इच्छंति ।" इत्यादिकं तेन अतो-पयोगमयस्यात्मनः ज्ञानं मुख्यं तेनोच्यते ज्ञानाद्वैतनये ज्ञानेवात्मा ज्ञानमेव साध्यं ज्ञाननिरावरणता सिद्धिः, एवं दृष्टिः देया, किमर्थं ? तद्योगसिद्धये, ज्ञानयोगस्य सिद्ध्यर्थं निष्पत्त्यर्थं अतः ज्ञानपूर्विका क्रिया हिता, तेन ज्ञानं स्वशक्त्ये महान् अभ्यासो विधेय इति रहस्यं । ज्ञानत्यागे न सिद्धिः सर्वसाधने ज्ञानमेव प्रधानं इति ज्ञानसारस्यार्थितया भवितव्यम् ॥१२॥

अथ श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायैः एतद् ज्ञानसारमिति शास्त्रं रचितं तद्दर्शनादिप्रतिपादकं वृत्तमुच्यते—

सिद्धिं सिद्धपुरे पुरन्दरपुरस्पर्धावहे लब्धवान्,
चिद्दीपोऽयमुदारसारमहसा दीपोत्सवे पर्वणि ।
एतद्भावनभावपावनमनश्चञ्चच्चमत्कारिणां तैस्तैर्दी-
पशतैः सुनिश्चयमतैर्नित्योऽस्तु दीपोत्सवः ॥ १३ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ २६ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ २ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible]

पुनः विकारा इंद्रियकामाः तेषां भारः तेन रहितं ज्ञानसाराश्रितं ज्ञानसारे परमात्मस्वरूपे आश्रितं व्याप्तं मनः स्तोकानां अस्ति। इह खलु जगति कामोद्विग्नाः स्वरूपोपयोगलीनचित्ताः शुद्धसाध्यदृष्टयः पुरुषाः स्तोका एव ॥ १४ ॥

पुनः ग्रंथाभ्यासरूपं फलं दर्शयति ।

जातोद्रेकविवेकतोरणततेर्धावल्यमातन्यते,
हृद्गेहे समयोचितः प्रसरति स्फीतश्च गीतध्वनिः।
पूर्णानन्दघनस्य किं सहजया तद्भाग्यभङ्ग्या
भवन्नेतद्ग्रन्थमिषात्करग्रहमहश्चित्रश्चरित्रश्रियः॥१५॥

व्या०—जातोद्रेकेति । 'एतद्ग्रंथमिषात्' ज्ञानसारग्रंथाभ्यासव्याजात् चारित्रश्रियः 'करग्रहमहः' पाणिग्रहणमहोत्सवः भवति इति संबंधः, शेषं स्वत ऊह्यम् ॥ १५ ॥

भावस्तोमपवित्रगोमयरसैः सिक्तैव भूः सर्वतः,
संसिक्ता शमतोदकैरथ पथि न्यस्ता विवेकस्रजः।
अध्यात्मामृतपूर्णकामकलशश्चक्रेऽत्र शास्त्रे पुरः,
पूर्णानन्दघने पुरं प्रविशति स्वीयं कृतं मङ्गलम्॥१६॥

व्या—भावस्तोम इत्यादि वृत्तं। 'पूर्णानंदघने' शुद्धात्मज्ञाने प्रविशति स्वीयं कृतं मंगलं इति वाक्यं इत्यनादिसंसारसंसर्गाभ्यासमपास्य आपयोगहेतुचतुष्टयोपचितज्ञानावरणादिकर्माच्छन्न पर्यायस्य अध्यात्मभावनस्य विषमरोगशोकादिकंटका नाना अंतरायोदयाच्चाहारादिपोगलितानतया. महाध्यान सिद्धयोग्यतानां. कुमारपतिसंसारगार्हस्थ्य जिनमार्ग

तम्हा सव्वेवि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।
अण्णोण्णणिस्सिया उण हवंति सम्मत्तसब्भावा ॥ २ ॥

इत्यादि ॥ २ ॥

[illegible] स्वरूपमाह ।

नाप्रमाणं प्रमाणं वा सर्वमप्यविशेषितम् ।
विशेषितं प्रमाणं स्यादिति सर्वनयज्ञता ॥ २ ॥

नाप्रमाणमिति । सर्वं वाक्यं [illegible] न [illegible] न वा [illegible] [illegible], न [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] प्रमाणं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥

[illegible]—"[illegible]" इत्यादि सर्वं [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] प्रमाणं स्यात्, [illegible] प्रमाणं स्यात् [illegible] [illegible] [illegible] भवति, [illegible] [illegible] [illegible] । उक्तं च

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] होइ [illegible] ॥ १ ॥

[illegible] वचनं न प्रमाणं भवति । उक्तं च—

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥

संतो हि गुणग्राहका एव, न खलु पुनः मत्सरिणो भवंति, तेन सतां मौढानंदकरी एवैषा टीका समाप्ता इति ॥ १५ ॥

अत्र सूत्रकृतः श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायाः न्यायाचार्या वाग्वादिनो लब्धवरा दुर्वादिमदाभ्रपटलखंडनपवनोपमाः। तेषां प्रशस्तिः-

गच्छे श्रीविजयादिदेवसुगुरोः स्वच्छे गुणानां गणैः,
प्रौढिं प्रौढिमधाम्नि जीतविजयप्राज्ञाः परामैयरुः।
तत्सातीर्थ्यभृतां नयादिविजयप्राज्ञोत्तमानां शिशोः,
श्रीमन्न्यायविशारदस्य कृतिनामेपा कृतिः प्रीतये १६॥

इत्यध्यात्मज्ञानसारसूत्रं संपूर्णम् ।

(ग्रंथाग्रं २८१ सूत्रसंख्या.)

व्या०—गच्छेति। श्री 'विजयदेव' सूरिवराणां गच्छे श्री 'जीतविजय' प्राज्ञाः तेषां सातीर्थ्यधराः श्री 'नयविजय' प्राज्ञाः तेषां शिष्येण श्रीमद् "यशोविजयोपाध्यायेन" विहितोऽयं "ज्ञानसाराख्यः" द्वात्रिंशदष्टकप्रमाणो ग्रंथः सूत्रितः। तट्टीका च शुद्धमार्गदर्शकेन श्रीखरतरगच्छीयेन सदुपाध्यायश्रीदीपचंद्राणां शिष्येण देवचंद्रगणिना कृता ज्ञानमंजरी इति श्रेयः।

स्वप्रशस्तिं निवेदयति (टीकाकारः)

नमः स्याद्वादरूपाय, सर्वज्ञाय महात्मने ।
देवेंद्रवृन्दवन्द्याय, वीराय विगतारये ॥ १ ॥
श्रीगौतमाद् ज्ञानवरा मुनीशा, देवर्द्धिपर्यन्तमनेयवोधाः ।
तेषां सुवंशे वरभास्कराभः, श्रीवर्द्धमानो मुनिराट् बभूव ॥२॥
संवेगरंगशाला—ग्रंथार्थकथनमुक्तभरतुल्यः ।
सूरिर्जिनेश्वराख्यः, सिद्धिविधिविस्तारने धीरः ॥ ३ ॥

व्या०—श्रेयः शृणोति। धर्मवादकः केवलज्ञानोपलम्भात् शुक्ल
वादः यथार्थवादत्वं च तत्त्वोपदेशमात्रात् लाभ्यः, परवस्तुनानुप
कृत्वा स्वस्वरूपावलम्बनः विवादः, सोऽपि हेयः, तत्त्वज्ञानी
स्वस्वरूपावबोधेन तत्त्वार्थं मनि यद्दृष्टि स धर्मवादः, सर्व
तत्त्वज्ञानवान् धर्मवादकः वक्ता तत्त्वकथनशीलः, इति श्रोता
तत्त्वज्ञानशीलः उभयोरेकार्थत्वेन धर्मकथनतः श्रितं श्रेय
स्यात् यदि च न श्रोता तादृक् तथापि तत्त्वबोधेनैक
धर्मकथनं हिताय, न पुनः शुष्कवादात् न पुनः विवादात् परेष
तर्कवादिनां विपर्ययः अश्रेयः अकल्याणं, शुष्कार्थकथनं पाप
निबन्धनं धर्महितकरणं तु भावतुरंग ॥ ५ ॥

अथ स्याद्वाददर्शननामाह—

प्रकाशितं जनानां यैर्मतं सर्वनयाश्रितम् ।
चित्ते परिणतं चेदं, येषां तेभ्यो नमो नमः ॥ ६ ॥

व्या०—प्रकाशितमिति। यैः सर्वज्ञाचार्योपाध्यायैः सम्यग्दर्शन
ज्ञानचारित्रधारिभिः श्रीहरिभद्रादिभिः संविग्नपाक्षिकैः यथा
योगदेशकैः स्वनयाश्रितं सर्वनयगर्भितं स्याद्वादगर्भितं मतं इ
शासनं मोक्षमार्गं प्रकाशितं तेभ्यो नमः। शुद्धोपदेशदाता ए
विधे धन्याः। उक्तं च भक्तपरिज्ञायां—

> भरहम्मि सुअणं, पट्टजणदेहकुलनिलयं ।
> उज्जोइअसुवयणं, ज्ञानविवेकवदं नमंसे ॥ १ ॥
> ते धुन्ना जिणशासणे, सव्वन्धवि जाण निम्मलं नाणं ।
> पुन्नाणवि पुन्नयरा, नाणी चारित्तजुत्ता य ॥ २ ॥

तथा उपदेशमालायाम्—

तच्छिष्येण स्वबोधार्थं, देवचंद्रेण धीमता ।
व्याख्याता सुगमा शुद्धा, टीकेयं तत्त्वबोधिनी ॥ १६ ॥
स्याद्वादस्य रहस्यानां, ज्ञानालब्धोदयेन च ।
देवचंद्रेण बोधार्थं, सुटीकेयं विनिर्मिता ॥ १७ ॥
संवद्रसनिधिजलधिचन्द्रमिते (१७९६) कार्तिके सिते पक्षे ।
पंचम्यां नव्यपुरे, कृतेयं ज्ञानमञ्जरी ॥ १८ ॥
वाचनात् पठनादस्या, यो लाभो मे समागतः ।
तेनाहं भव्यसंवश्च, भवतां धर्मसाधकः ॥ १९ ॥
जयतु जिनराजस्य शासनं, दुःखनाशनम् ।
ज्ञानानंदविलासाढ्यं, सर्वसंपद्विवर्द्धनम् ॥ २० ॥
मंगलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमः प्रभुः ।
मङ्गलं स्थूलभद्राद्या, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥ २१ ॥

इति श्रीज्ञानसारटीका ज्ञानमंजरी संपूर्णा ।

श्रीशुभं भूयात् ।

विशेषं एकांतग्रहरूपं मतस्थानं 'त्यक्त्वा' अपहाय शुद्धभूमिक ज्ञानपरिपाकरूपां भूमिकां आरूढाः प्राप्ताः ज्ञानानुभवस्थानस्था पुनः अहङ्कारस्या लक्ष्यं वेद्यं अथवा—लक्ष्यं शुद्धात्मस्वरूपं त 'अन्धाः' मूढतादिदोषा अमूढाः 'लक्ष्ये' तत्त्वरूपे ये ते सर्व सर्वजीवहितशब्दितस्तुति पक्षपातः एकांतग्राहरूपः तेन 'वि वर्जिताः' रहिताः । परमः अपूर्वः आनंदो येषां ते तन्मयाः सर्वे ते नयाश्च सर्वनयाः तेषां 'आश्रयाः' आधाराः सर्वनयाश्रयाः, एवं स्वरूपाः पुरुषा जयंति सम्यग्दर्शनादिगुणवर्गाः, इत्यनेन स्वस सावर्णसाधनोदनस्वरूपतत्त्वादिपरिणतिकम्पककस्य साधनस्या परमहितस्य मोक्षः सम्यक्त्वपरमार्थलक्षणवर्तिनः स्याद्वादनयमार्गो पदेशिनयथार्थवस्तुस्वरूपा आचार्योपाध्याया जयंति, विश्वविश्व ध्यानोहनिवारणमवमनारथामृतज्ञानविस्तारादिमोहकाष्ठदग्धाः स्व तत्त्वानंदनंदितानलौनावृत्तिना निर्ग्रंथा अपि महाधनाः, अकिंच अपि अनंतगुणपर्यायसंपन्नाः, निरातुरा अपि स्वतत्त्व धनव्यापृताः, वनवासिनोऽपि स्वपर्यायलक्ष्यस्थानमग्नाः श्रीमत्स र्वज्ञोक्तआज्ञानिर्वाहधौरेयाः, मार्गानुसारिणोऽपि यथाशक्तिगुणस्व रूपनिवद्धलक्षाः इत्यभावनाऽनेन शुद्धपरमानन्दसाम्यस्वरूपः ते एव ज्ञानसाम्यहंसयुक्ता इति ॥ ७ ॥ ८ ॥

इति सर्वनयाश्रयणाष्टकं व्याख्यातं ॥ ३२ ॥

द्वात्रिंशदष्टकविवरणं निरूप्यते

सांप्रतमुपसंहाराय सर्वाष्टकानां भावनाविधानरूपमं निर्दिशति-

पूर्णो मग्नः स्थिरोऽमोहो, ज्ञानी शान्तो जितेन्द्रियः
त्यागी क्रियापरस्तृप्तो, निर्लेपो निःस्पृहो मुनिः ॥१॥

व्या०—विद्येति। पुनः 'विद्याविवेकसंपन्नः' विद्या शुद्धात्मभासः। विवेकः स्वपरविभजनात्मकः। तभ्यां संपन्नः तन्त्रयेर्थे विद्याष्टक-विवेकाष्टके। यो हि विद्याविवेकसंपन्नः स मध्यस्थः इष्टानिष्टे वस्तुनि रागद्वेषरहितो भवति तेन माध्यस्थ्याष्टकं। मध्यस्थो हि भयरहितः तेन भयवर्जनाष्टकम्। भयरहितस्य नात्मश्लाघा इष्टा इत्यनेन अनात्मशंसो भवति ततस्तत्त्वदृष्टिः तेन तत्त्वदृष्ट्यष्टकं। यः लौकिकश्लाघानिरपेक्षाद्यभिलाषरहितः स तत्त्वदृष्टिः तेन तत्त्वदृष्ट्यष्टकं। यस्य तत्त्वदृष्टिः स एव समृद्धः परमसंपदावान् भवति तेन समृद्ध्यष्टकं॥२॥

ध्याता कर्मविपाकानामुद्विग्नो भववारिधेः।
लोकसंज्ञाविनिर्मुक्तः, शास्त्रदृग् निष्परिग्रहः॥ ३॥

व्या०—ध्यातेति। यः समृद्धः स काले विचित्रविपाकोदये कर्मविपाकानां ज्ञाता ध्याता च भवति, अतः कर्मविपाकाष्टकं। यः कर्मविपाकध्याता स एव भवात् संसारात् उद्विग्नो भवति, अत एव भवोद्वेगाष्टकं। यः भवोद्विग्नः स लोकसंज्ञामुक्तो भवति, तेन लोकसंज्ञात्यागाष्टकं। स एव शास्त्रदृग् च पुनः निष्परिग्रहो भवति। अत एव तत्स्वरूपाष्टकद्वयं। (शास्त्राष्टकं परिग्रहाष्टकं च)॥ ३॥

शुद्धानुभववान् योगी, नियागप्रतिपत्तिमान्।
भावार्चाध्यानतपसां, भूमिः सर्वनयाश्रितः॥ ४॥

व्या०—शुद्धेति। यः निष्परिग्रहः स एव शुद्धात्मनस्त्वानुभववान् भवति, तेनानुभवाष्टकं। यः स्वरूपानुभवी स एव योगी योगध्यानमयः, यः योगी स एव निश्चयेन कर्मयागकर्ता तत्स्वरूपाष्टकद्वयं। स एव भावार्चा भावपूजा तथा ध्यानेन



व्या०—निर्विकारमिति । महात्मनां सम्यग् आत्मभावपरिण-तानां अत्रैव अस्मिन्नेव भवे मोक्षः वर्तते सकलकर्ममोक्षाभाव एव तथापि अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीनां स्वभावानुभवलीनानां वर्णितस्व-रूपेण मोक्षस्वरूपोऽयं कथितः । कथंभूतानां महात्मनां ? निर्विकारं विकाररहितं निराबाधं ज्ञानं यथा पुद्गलसंयोगजन्या तथा रहितं ज्ञानं तत्त्वबोधः तस्य सारं तत्त्वैकस्वरूपं चारित्रं उपेयुषां प्राप्त-वतां । पुनः कथंभूतानां महात्मनां ? विनिवृत्ता निवृत्ता परस्य आशा येषां विनिवृत्तपराशानां, सर्वथा पुद्गलाशारहितानां निर्ग्र-न्थानां इहैव मोक्ष इति ॥ ६ ॥

चित्तमार्द्रीकृतं ज्ञान-सारसारस्वतोर्मिभिः ।
नाप्नोति तीव्रमोहाग्नि-प्लोषशोषकदर्थनाम् ॥ ७ ॥

व्या०—चित्तमिति । ज्ञानसारमिति ग्रन्थः तस्य सारस्वती वाणी तस्या इव ऊर्मयः कल्लोलास्तैः येषां चित्तं आर्द्रीकृतं तेषां अत्यन्तं तीव्रो मोहाग्निः प्लोषः दाहः तेन यः शोषः तस्य कदर्थनां पीडनां नाप्नोति इत्यनेन ज्ञानसारग्रन्थेनार्द्रीकृतचि-त्तानां मोहाग्निपातो न भवति ॥ ७ ॥

पुनस्तदेव कथयति—

अचिन्त्या कापि साधूनां, ज्ञानसारगरिष्ठता ।
गतिर्ययोर्ध्वमेव स्यादधःपातः कदापि न ॥ ८ ॥

व्या०—अचिन्त्येति । भो भव्य ! साधूनां रत्नत्रयीपात्र-भूतानां काऽपि अचिन्त्या चिन्तयितुमशक्या ज्ञानसारगरिष्ठता अस्ति ।

३, सूक्ष्मसंपराय, ४ यथाख्यात, ५ ए पांच चारित्र स्वरूपरमण, पररूप त्याग, मन–महाव्रत पांच–प्राणातिपातविरमणादिक । पांच व्यवहार–आगम व्यवहार, चौद पूर्वथी मांडी अधिक ज्ञानीने श्रुतव्यवहार, बहु श्रुतने, आज्ञाव्यवहार शेषमुनिने, धारणा व्यवहार आलोयण प्रमुखे, जीतव्यवहार भद्रक संघने छे. । पांच आचार–ज्ञानाचारादिक. । पांच समिति इर्यासमित्यादिक. । पांच सज्झाय–वायणा, पुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहादिक, एटला कार्यमां रक्त पिण संवेग–मोक्षाभिलाष सहित, एटले ए छत्रीस बोलमें मग्न ते छे पिण ए निर्विकल्प परमानंदमयी जे मोक्ष तेहने अभिसंवेग कहीये ते मध्ये रक्त छे. एटले बीजी छत्रीसीएँ करी बिराजमानने जाणीने एहवा गुणवंत ते आचार्य गुरुतत्त्व करी सद्दहवा. ए बीजी छत्रीसी. ॥ २ ॥

इंदियविसयपमायासवनिद्दकुभावणापणगछक्को । छज्जीवेसु सजयणो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥ ४ ॥

टबार्थ—इन्द्रिय पांच । तथा पांच इन्द्रियना विषय जे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शब्द, ए पांच मूळ विषय । प्रमाद पांच–प्रमादकता अहंकारनो, विषय इन्द्रियना कषाय क्रोधादि, निद्रा आलस्यरूप, विकथा राजकथादिक ए पांच प्रमाद. । आश्रव पांच–प्राणातिपात १, मृषावाद २, अदत्तादान ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, ए आश्रव पांच. । निद्रा १, निद्रानिद्रा, २, प्रचला, ३ प्रचलाप्रचला, ४ थीणद्धी, ५ । कुभावना पांच–कंदर्पभावना, १, किल्बीषी भावना, २, आभियोगी भावना, ३ आसुरी भावना, ४, संमोही भावना, ५ । ए छ पांच त्रीस ३० बोलथी जे विरम्या अने छ कायना जीवनी जयणावंत छे एहवी त्रीजी छत्रीसीएं करी बिराजमान माहरा गुरु तत्त्व जाणवां. ३ ॥४॥

* पाठांतरम्–छसु कायेसु

मुनीनां अल्पश्रुतवतां आहारादिसंज्ञास्ति, बहुश्रुतानां आहारादिसंज्ञानिषेध इति सर्वत्र योज्यम् ॥ ९ ॥

ज्ञानपूतां परेऽप्याहुः, क्रियां हेमघटोपमाम् ।
युक्तं तदपि तद्भावं, न यद् भग्नापि सोज्झति ॥१०॥

व्या०—ज्ञानपूतामिति । 'ज्ञानपूतां' ज्ञानेन पवित्रां क्रियां शुभयोगव्यापारात्मकां 'हेमघटोपमां' सुवर्णकलशसदृशां, 'परेऽपि' अन्ययूथिका अपि आहुः, एतत् युक्तं तदपि हेमघटे भग्ने अपि तद्भावं. हेममौल्यं न उज्झति, तथा सद्ज्ञानयुक्ता क्रिया ततः पतितस्य भग्नस्यापि नाधिकस्थितिबंधः "बंधेण न वोलइ कयावि" इति वचनात् । ज्ञानी क्रियायुक्तः स्थितिक्षयं करोति ततः पतितोऽपि तत् स्थितिस्थानं नातिक्रमति; अतः ज्ञानपूर्वका एव । तथा च उववातिकोपांगे मिथ्यादृष्टिः एकांतेन द्रव्यलिलिंगक्रियायुक्तः नवमग्रैवेयकांतं गच्छति, तथापि स्थितौ पूर्णबंधक एव सम्यग्दर्शनप्रतिपत्तौ तत्पतितोऽपि मिथ्यात्वभावं गतोऽपि एककोटाकोट्यंतरस्थितिं बध्नाति नाधिकां बध्नाति अतः ज्ञानस्याधिकत्वम् ॥ १० ॥

पुनः दृढयति—

क्रियाशून्यं च यद् ज्ञानं, ज्ञानशून्या च या क्रिया।
अनयोरन्तरं ज्ञेयं, भानुखद्योतयोरिव ॥ ११ ॥

व्या०—क्रियाशून्यमिति । 'यद् ज्ञानं' तत्त्वावबोधः तत्त्वसंवेदनरूपं 'क्रियाशून्यं' द्रव्यक्रिया आस्रवनिरोधनात्मिका तया शून्यं च पुनः क्रिया 'ज्ञानशून्या' तयोः अंतरं भानुखद्योतयोरिव ज्ञेयं, भानुतुल्यं ज्ञानं, खद्योतप्रकाशतुल्या क्रिया ज्ञानशून्या ज्ञेया इति ॥ ११ ॥

भय, ६ आदानभय, ७ ए सात भय रहित छे। तथा पिंडेसणा ७ तथा पाणेसणा ७—संसट्ठा १ मसंसट्ठा २ उद्धिय ३ तह अप्पलेविया ४ चेव। उग्गहिया ५ पग्गहिया ६ उज्झिय धम्माय ७ सत्तमिहा. १—प्रथम पिंडेषणा—संसृष्ट खरडेला हाथ तथा पात्रादि २, असंसृष्ट हस्त असंसृष्ट पात्र एटले अखरडित दही एहवो पिंड ग्रहता अभिग्रह धारीने प्रथम पिंडषणा, १, संसृष्ट बीजी, २, गाथामां व्यत्यये आप्युं छे ते सुखोच्चारण मात्र माटे असंसृष्ट हाथ संसृष्टपात्र वा असंसृष्ट पात्र, संसृष्ट हाथ एहवी भीक्षा ग्रहताने त्रीजी पिंडषणा. ३, अल्पलेपा ते स्युं ? अल्प ते अभाववादी निर्लेप पृथनयादि ग्रहताने चतुर्थी पिंडषणा, ४ अवग्रहीता नाम भोजनकाति शरावलादिकने विषे थाप्युं जे भोजन जाति तेहवी भिक्षा लेवी ते पांचमी पिंडषणा. ५, गृहीता नाम—भोजनवनाइ देनाने ऊजमाल थाते करादिकथी पड्युं ते भोजन जात (च) ते, भोगववाने काजे करादिकें जे ग्रह्युं ते छट्ठी पिंडषणा. ६ उज्झीतमतिरयुं छांडवा योग्य भोजन जात द्विपदादिकें पण नवां छे ते वळी अर्द्धत्यक्तावशेषमात्र रहताने सातमी पिंडषणा. ७। पाणेषणा पिण इमज सात प्रकारें ते मध्ये चोथी पिंडषणा अप्पलेवा मांहे नानापणुं आयाम सोवीरकादि निर्लेप जांणवुं. इम १४ भेदना जांण.। तथा सात प्रकारना गुणें संयुक्त—१—संतोष, २, करण—इंद्रिय तेहनो जीपवो ते गुण बीजुं, ३—प्रसन्नचित्तता, ४—दयालुपणो, ५, मन्यपणो, ६—पवित्रपणो. ७—दुर्जनथी वेगळो रहेवो ते गुण मानसुं ए २८. तथा आठ मदना स्थानकथी रहित जातिमद १, कुलमद, २, लाभमद, ३, बलमद, ४ ऐश्वर्यमद. ५, रूपमद, ६ विद्यामद. ७ अने तपमद ८ अे आठ मदथी रहित. ए पांचमी छत्रीसी ए गुणवन्त रीतें बिराजमान ते माहरा गुरु जांणवा. ३ ॥६॥

अट्ठविहनाणदंसण चारित्ताचारवाइगुणकलिओ।
चउविहबुद्धिसमेओ, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥ ७॥

व्या०—सिद्धिं सिद्धपुरे इति । अयं ग्रंथः सिद्धपुरे
मुत्पत्तया सिद्धिं लब्धवान् 'उदाररसारमहसा' प्रधानसा
'दीपोत्सवे पर्वणि' दीपालिकादिने संपूर्णतां गतः, कथं
ग्रंथः ? 'चिरोदितः' ज्ञानप्रदीपः एतद्भावनमात्रपावनमनग्रं
त्तानिधां जीवानां एतस्य ग्रंथस्य भावना आत्मतन्मयना
भावा अर्थप्रामनमनन्दनशाला: तैः 'पावनं' पवित्रं 'मनः
न धेवन् मनोहारी चमत्कारो येषां ते तेषां तैः तैः
लोकयोगलक्षणैः दीपदर्शनैः शुष्ट निश्चयो वस्तुधर्मः तर
ज्ञानं तदेव मनं इष्टं तैः तेषां ज्ञानचमत्कारिणां दीप
नित्यः निरंतरः अस्तु भवतु, इत्यनेन यथार्थज्ञानगृह
रसमज्ञानां नित्यं दीपोत्सव एवास्ति ॥ १३ ॥

केषांचिद्विषयज्वरातुरमहो चित्तं परेषां विषा-
वेगोदर्ककुतर्कमूर्छितमथान्येषां कुवैराग्यतः।
लग्नालर्कमबोधकूपपतितं चास्तेऽपरेषामपि, स्तो
तु विकारभाररहितं तद् ज्ञानसाराश्रितम् ॥

व्या०—केषांचिदिति । 'अहो' इति आश्चर्ये, केषांचिज्
'चित्तं' मनः 'विषया' इंद्रियाभिलाषा एव ज्वरः तेन 'आतुरं
अस्ति । पुनः परेषां केषांचित् मनः 'विषावेगः' इति ।
मिथ्यात्वस्य 'आवेगः' त्वरा तस्य 'उदर्कः' उदयः तेन '
व्याकुलीभूतं अस्ति, अन्येषां जीवानां 'कुवैराग्यतः'
गर्भमोहगर्भवैराग्यतः 'लग्नालर्क' लग्नः आलर्कः 'हडक
इति लोकभाषा यस्य तत् मनः अस्ति । च पुनः अ
कुशास्त्रादिनानां कुबोधपतितं कुज्ञानपतितं मनः अस्ति

लीन ते समाधि. ८ ए आठ योगना अभ्यासी. ८ । वळी आठ महा सिद्धि अणिमादिक । तथा आठ योगदृष्टि— मित्रा १ तारा २ बला ३ दीप्रा ४ स्थिरा ५ कान्ता ६ प्रभा ७ परा. ८ इहां पेहेली ४ च्यार दृष्टि मध्ये मार्गानुसारीथी मांडीने ग्रंथी भेदी सीम पुहचे संवेग ज्ञानथी यद्यपि वेद्य संवेद्य पदने पुहचे नहीं, स्थिरादिमें आव्यो समकीत पामे, पछी ते स्पर्शना ज्ञानी थको—अनुभव ज्ञानी थको ते भेद रत्नत्रयी परिणमी अभेद रत्नत्रयीने वळे घनघाती खपावीने केवळी थाये तिहारे आठमी दृष्टि पहोत्यो कहीये. ए गुणे युक्त । तथा च्यार ४ अनुयोगमां निपुण—द्रव्यानुयोग १, गणितानुयोग २, चरणकरणानुयोग, ३ धर्मकथानुयोग, ४ ए सर्व मळी ३६ । ए सातमी छत्रीसी जाणवी । अथवा मूळ अनुयोग, उपक्रम जे ते पणे थवानो उद्यम (उद्योग) १. वस्तुने विषे समकालीद्योतक गुण ते निक्षेप. २, वस्तुनो स्वरूपार्थ–फलार्थ प्रमुख अर्थनो कहेवो ते अनुगम, ३. वस्तुना अवस्थांतरीभाव कथक ते नय. ४ ए पिणच्यार अनुयोग बीजा जांणवा. ७ ॥८॥

नवतत्तण्णू नवबंभगुत्तीगुत्तो नियाणनवरहिओ।
नवकप्पकयविहारो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥९॥

टवार्थ—हवे आठमी छत्रीसी कहे छे—नव तत्त्वना जाण। नववाड ब्रह्मचर्यनी तेना पालक. एकली स्त्री संघाते एकला ब्रह्मचारीयें एक वसतिमें रात्रे वसवो नहीं १. स्त्रीनां शृंगार विलास विलापनी कथा न कहेवी, २. जे पाट, बाजोटे स्त्री बेठी होय ते थानके बे घडी मांहें पुरुषे बेसवो नहीं, पुरुषने आसने स्त्रीयें बे तथा ४ घडी सीम बेसवो नहीं. ३. स्त्रीनो मनोहर गुह्य इन्द्री जोवो नहीं. ४ ज्यां स्त्री पुरुष भोगवतां हुवे ते कायना शब्दविलास सांभळवा नहीं, ५. ब्रह्मचारी पेहेलां भोग भोगव्या संभारवा नहीं ६. ब्रह्मचारीयें नीकळता आहार

दुरंतवेतालनाशिनां, इंद्रियविषये सुखबुद्धिलक्षणभ्रांतिमरुमरीचिका-
मूलिमूलानां, स्त्रीविलासादिविषवृक्षच्छायाप्लुतायां, महाटव्यां घना-
दिमिथ्यात्वपाटोल्लेभस्य, तद्वाभादियोजनादिन्दुरस्य, परिभ्रमतः
दीनस्य, कदाचित् जगदुपकारपरिचिन्तावतः गुरुः तस्य संयोगो
जातः, गुरुणापि मार्गभ्रष्टं इतस्ततः परिभ्रमंतं दीनमशरणमवलो-
क्योक्तं हे भद्र ! शृणु तत्रानंदकंदोपमं महोदयनगरस्य मार्गं,
यत्र सदागमसरांसि तत्त्वपीयूषपूर्णानि, आचार्योपाध्यायनिर्ग्रंथादयो
नागरिकाः, सम्यग्दर्शनज्ञानोपयोगनिर्द्धारितमार्गप्रचाराः, यत्र
क्षांत्यादिधर्मसम्यक्त्वादिगुणस्थानान्येव विश्रामभूमयः, स्वाध्याय-
विविधगीतवृन्दमनोहरा पद्धतिः, तत्त्वानुभवतत्त्वैकत्वादयः अनंतरेण
मार्गरक्षणोपायाः, यमनियमाष्टांगानि वाहनानि, श्रीमदर्हन्महा-
राजराजनीतिनिगृहीततस्करलुंटाकाः चारित्राचारप्रवीणसामायिका-
दिसंयमस्थानसंनिवेशाः, यत्र श्रद्धाचारणानिर्द्धारितसिद्धिपुरगमन-
निर्व्याघातप्रचारं रत्नत्रयीलक्षणं। प्रवर्त्तय तन्मार्गे, येन कर्माष्टशत्रु-
वृंदहननं कृत्वा निर्मलानंदशुद्धस्वभावमनुत्तरशक्तिसहितं अनंतज्ञा-
नदर्शनपूर्णस्वभावं अमूर्त्तलिंगनिरामयं निर्वाणनगरं निराबाधं द्र-
क्ष्यसि, तेन भव्येन अनन्यादिसहायेन गृहीतस्तन्मार्गः, ततो गुरुणापि
पाथेयोपमं दत्तं ज्ञानसाराख्यं यथार्थोपदेशमूलं शुद्धानुभवास्वाद-
मधुरतरप्रसादं समतारसप्रीतिलब्धं, तेन निर्विकल्पं प्रवृत्तो मार्गो-
ल्लंघनेन। अतः पाथेयोपमं ज्ञानसारं मोक्षमार्गं गच्छता सुख-
निर्वाहार्थं अभ्यस्यं, तस्य च चिरकालीनाशमत्वहेतुभूता तदा-
स्वादाह्लादकारणार्थं विहितेयं टीका तत्त्वार्थविशेषावबोधकस्वरूपसंदर्शिनी
कर्मनयादिविकल्पनपूर्वकं मया देवचंद्रेण स्वक्षयोपशमाय तत्त्व-
बोधिनी नाम्ना, सा च चिरं नंदतादाचंद्रार्कं। अत्र च यन्मया
स्वमतिदोषेण प्रासंगिकं भणितं, तच्छोधयंतु दक्षाः परोपकारनिरताः,

मिच्छाकार २ तहकार ३ छंदणा ४ निमंतणा ५ पुच्छणा ६ आपुच्छणा ७ आवस्सही ८ निसीही ९ उवसंपदा १० ए दस सामाचारी साधुनी नित्यनी। चित्तनी समाधिना स्थानक, नर यादि ९ दशनो परिचय, ए २० । अनंतानुबंधी आदि १६ सोळ कषायना त्यागी एवे दश समाधि लीन, सोळ कषायत्यागना उद्यमी ते गुण ३६ सी विराजमान म्हारा गुरु जागता. । ए दशमी छत्रीसी जांणवी. ॥११॥

पडिसेवसोहिदोसे, दसदसविणयाइचउसमाहीओ।
चउभेयाउँ मुणंतो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥१२॥

टवार्थ—दश प्रकारनी प्रतिसेवा–दर्पे १, प्रमादे २, अनाभोगे ३, आतुरताऐं ४, आपदायें ५, संकिए ६, सहसात्कारे ७, भये ८, प्रद्वेषें ९, विचारणाऐं १० ए दशे कारणे दोष लागे १०. ते लगाडता नथी. । दश शोधि दोष–" आकंपइत्ता १, अनुमाणइत्ता २, जं दिट्ठं ३ बायरं ४ च ५ सुहुमं ६ वा । छन्नं ७ सद्दाउलयं ८ बहुजण ९ अव्वत्त १० तस्सेवी ॥१॥ " ए दश एवं २० । विनय समाधिना भेद ४, तपसमाधिना भेद ४, श्रुतसमाधिना भेद ४, आचार समाधिना भेद ४. ए १६ मिळ्या ३६ ना जांण ते माहरा गुरु जयवंत ए १२ मी छत्रीसी. ॥१२॥

दसविहवेआवच्चं, विणयं धम्मं च पडु पयासंतो ।
वज्जियअकप्पछक्को, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥१३॥

टवार्थ—दश प्रकारनो वेयावच–"आयरिय १ उवज्झाए २, तवस्सि ३ सेहे ४ गिलाण ५ साहूसु ६ । समणुन्न ७ संघ ८ कुल ९ गण १०–वेयावच्चं हवइ दसहा ॥१॥" तथा दश प्रकारनो विनय–अरिहंत १ सिद्ध २ चैत्य ३, गुरु ४ च धर्म ५ च साहूवर्गे ६ य। आयरिय ७ उवज्झाए ८, पवयणे ९ दंसणे १०

तच्छिष्या जिनचंद्राख्याः, सूरयो गुणभूरयः ।
तच्छिष्याभयदेवार्या, गच्छे खरतरेश्वराः ॥ ४ ॥
येन नवांगी वृत्तिरुपपाति सोपांगवृत्तिविस्तारः ।
विदधे पञ्चाशकादिवृत्तिर्या बोधवृद्धिकरा ॥ ५ ॥
तत्पट्टे जिनवल्लभ-सूरिजिनदत्तसूरयोऽभूवन् ।
पट्टानुक्रमभानुर्जातो जिनकुशलसूरिगुरुः ॥ ६ ॥
तेषां वंशे जातो, गुणमणिरत्नाकरो महाभाग्यः ।
कलिकालपंकमग्नाँल्लोकानिस्तारणे धीरः ॥ ७ ॥
श्रीमज्जिनचंद्राह्वः, सूरिर्न्यायार्कदीधितिप्रतापः ।
तस्यावदातसंख्या, गण्यते नो सुराचार्यैः ॥ ८ ॥
तच्छिष्याः पाठकाः श्रीमत्पुण्यप्रधानसंज्ञिताः ।
सुमतेः सागराः शिष्यास्तेषां विद्याविशारदाः ॥ ९ ॥
तच्छिष्याः साधुरंगाख्या, राजसाराः सुपाठकाः ।
सर्वदर्शनशास्त्रार्थ-तत्त्वदेशनतत्पराः ॥ १० ॥
तच्छिष्या ज्ञानधर्माख्याः, पाठकाः परमोत्तमाः ।
जैनागमगह्वरार्थ-दायका गुणनायकाः ॥ ११ ॥
तेषां शिष्या महत्पुण्य-कार्यसंसाधनोद्यताः ।
पाठका दीपचंद्राख्याः, शिष्यवर्गसमन्विताः ॥ १२ ॥
येन शत्रुंजये तीर्थे, कुंथुनाथार्हतः पुनः ।
धन्ये शुभक्षणे, प्रतिष्ठा विहिता वरा ॥ १३ ॥
धनसुखे सोमजिना कृते यः पर्यन्तां व्यधात् ।
प्रतिष्ठां नवबिम्बानां, चक्रे सिद्धाचले गिरौ ॥ १४ ॥
अहम्मदावादमध्ये, सहस्रफणाद्यनेकबिम्बानाम् ।
चैत्यानां च प्रतिष्ठां, चकार यो धर्मरूपे ॥ १५ ॥

दसमी [illegible] -"इंगाल १ रस २ [illegible] इय ३, तांगार ४ पडिहर ५ अंईद ६ गाहिणि ७। अर्दद ८ देस ९, परिहरणाय, १० जलणमुह ११ स ॥१॥" [illegible] ११ [illegible] अगुरुं, २ [illegible] [illegible] [illegible] -"अग्गु १ अग्गु २ तिग ३ उक्कस ४ तिरि ५ म गीम ६ तिरि ७ म। मलाण ८ दाग ९ दिणं, १० बाला ११ मोरि १२ तिपारसिया १३ ॥१॥" [illegible] [illegible] १४ [illegible] ॥१५॥

पारसउंवअंगाविऊ, दसविहपच्छित्तदाणनिउणमई।
चउदसउवगरणधरो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥१६॥

दसार्थ [illegible] -"जे दुगसिरसाणीपत्त १ पडि- ग्गहो २ पप ३ तिरि ४ गहिर उच्चगो ५। गाह ६ छेद ७ मूल ८ अणवट्ठिय ९ पारंचिय १० धेर ॥१॥ ए दस १० [illegible] [illegible] [illegible] १४ [illegible] -"पत्तं १ पत्ताबंधो २, पायट्ठवणं ३ पायकेसरिया ४। पडलाइं ५, रयत्ताणं ६, गुच्छओ पायनिज्जोगो ॥१॥" ६ ७ [illegible] ७ [illegible] -" मुहणंत १ रयोहरणं २, कप्पा ३ कप्पत्त ४ चोलपट्टो य ५। उगगाहो छट्ठो ६ सत्तमो पायपुंछणओ ॥१॥" ए १४ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] एहवा गुणवंत ते [illegible] गुरु [illegible]. ॥१६॥

७ नियट्टि ८ अनियट्टि ९ सुहुम १०, उवसम ११ खीण १२ सयोगि १३ अयोगि १४ गुणा ॥१॥" ए १४। तथा प्रतिरूपादिक चौद गुण सहित-"पडिरुवी १ तेयस्सी २, जुगप्पहाणागमो ३ महुरवक्को ४। गंभीरो, ५ धीमंतो ६, उवएसपरो य ७ आयरिओ ॥ १ ॥ अपरिस्सावी ८ सोमो ९, संगहसीलो १० अभिग्गहमई अ ११। अविकत्थणो १२ अचवलो १३ पसंतहियओ गुरू होइ १४॥२॥ ए १४ मळी २८। तथा अष्टांग निमित्त-दिव्य १, उत्पात २, आंतरिक्ष ३, भोमं ४, अंग ५, स्वर ६, लक्षणं ७, व्यंजनं ८, ए आठ अंग निमित्तना जाण पण निमित्तने प्रकाशे नही. ८। ए सर्व मळी ३६ छत्रीसीना धरणहार ते माहरा गुरुतत्त्व जांणवा. । ए सत्तरमी छत्रीसी जांणवी. ॥ १८ ॥

पंचदसजोगसन्नाँ-कहणेण तिगारवाण चाएण।
सल्लतिगवज्जणेणं, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥१९॥

टबार्थ—पन्नर योग "सच्चेयरमोसअसच्चमीसमण ४ वय ४ विउव्व २, आहार. २, उरलं, २, मीस कम्मण १ इय योगा पन्नरभेएणं ॥१॥" १५। तथा संज्ञा पनर १५-आहारसंज्ञा १, भयसंज्ञा २, मैथुनसंज्ञा ३, परिग्रहसंज्ञा ४, क्रोधसंज्ञा ५, मानसंज्ञा ७, मायासंज्ञा ७, लोभसंज्ञा ८, लोकसंज्ञा ९, ओघसंज्ञा, १०, सुखसंज्ञा ११, दुःखसंज्ञा १२, मोहसंज्ञा १३, दुगंछासंज्ञा १४, शोकसंज्ञा १५, ए सर्व मळी १५ पनर संज्ञाए धर्मने धर्ममें गिणता नथी. एहवा प्ररूपणाना धणी छे। गारव तीन ३-सातागारव १, रिद्धिगारव २, रसगारव, ३ ए ३ ना त्यागी छे. ३३। तथा शल्य तीन ते मायाशल्य १, नियाणशल्य २, मिथ्यात्वशल्य ३ ए तीन शल्य रहित.। एह ३६ गुणे युक्त ते माहरा गुरुतत्त्व जांणवा.। १८ ए अढारमी छत्रीसी जांणवी.॥१९॥

॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥

अथ श्रीमद्देवचन्द्रकृत–

गुरुगुणषट्त्रिंशत्षट्त्रिंशिकाबालावबोधः॥

आर्यावृत्तम्.

वीरस्स पए पणमिअ, सिरिगोयमपमुहगणहराणं च।
गुरुगुणछत्तीसीओ. छत्तीसं कित्तइस्सामि ॥ १ ॥

स्वार्थकारकं मङ्गल–अभिधेयादि–

प्रणम्य परमात्मानं, शुद्धस्याद्वाददेशकम्।
श्रीवीरं शासनाधीशं, जिनेशं प्रणमाम्यहम् ॥१॥
श्रीमदाचार्यवर्याणां, गुणानां षट्त्रिंशिका।
स्वार्थः शिष्यबोधाय, देवचंद्रेण प्रोच्यते ॥२॥

श्रीवीर चोवीसमा परमेश्वर त्रिशलानंदन मोहमल्लजीपवाने महावीर अभये परीसहोपसर्गाने जेणे कर्या महावीर, एहवा श्रीमहावीर स्वामी तेहना 'पए' चरणारविंद प्रणमी–नमस्कार करीने तेहना प्रथम गणधर श्रीगौतम जेहना दीक्षित पचास ५०००० हजार मुनि मोक्षानंदने पाम्या ते प्रमुख अग्निभूति आदिक जे गणधर ते सर्वने प्रणाम करीने आत्माने परमानंदतत्त्व निष्पत्तिनो मूल शुद्ध श्रद्धान छे, ते शुद्ध श्रद्धान देवतत्त्व, गुरुतत्त्व, धर्मतत्त्व, एहनो शुद्ध ओलखाण प्रतीत करे थाय, तिहां देव ते श्रीअरिहंत सिद्धस्वरूपभोगी स्वगुणपर्याय प्रागभाव कर्ता निर्मलकृत स्वगतारंभ स्वरूपकर्ता, स्वरूपभोक्ता, जेहने अनंतो अनंता-

[illegible] ॥ १ [illegible] ११ [illegible] [illegible] ४, [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] अट्ठारसेव अट्ठार पंचठाणाई ॥
[illegible], छत्तीसगुणो गुरु जयउ ॥ २२ ॥

[illegible] १८ [illegible] ? [illegible] [illegible] ४ [illegible] [illegible] [illegible] १८ [illegible] [illegible], ३ [illegible], ४ [illegible], ५, [illegible], ६ [illegible], [illegible], ८ [illegible], १० [illegible], ११ [illegible] १२, [illegible], [illegible] १४ [illegible] १५, [illegible] १८ [illegible] ।

[illegible], [illegible] ।
[illegible], छत्तीसगुणो गुरु जयउ ॥ २३ ॥

[illegible]

ने अन्याने दोषथी अर्थात् उपजावी ने निर्वेदनी देशना कहेवी. २. सौंदनी ने शेष नि कर्मना फलथी, अवाय, आत्मानंदनी तथा उपजा- वनी ने उत्तम देवो ने मोक्षनी देशना जाणवी. ३. निर्वेदनी–जे देवना देव मनुष्यनां सुख ने औदयिक भाव अशरण रूप छे ते माटे ते सुखथी ने उदासीनपणे ने निर्वेद करावे. ४ ए देशनाओ कहेवाय। कथ ४. अकथा–जन उपजावनारी कथा. १, कामकथ–इन्द्रिय विषयनी कथा २. धर्मकथा ते दान, शील, तप, भावनानो स्वरूप कहेवो ते धर्मकथा. ३. अने ए सर्व भेळी कहेवो ते संकीर्णकथा. ए ४ कथामध्ये अर्थकथा, कामकथा ते त्यजवा योग्य, धर्मकथा ते कहेवा योग्य, संकीर्णकथा ते जाणवा योग्य. । भावना ४–ज्ञानभावना. १. जे अन्याने ज्ञाननी धारा माटे भणवो, भणाववो, विचारवो, वाचनादि पांच सज्झायनो करवो. ने ज्ञानभावना १. बीजी दर्शन भावना. २, त्रीजी चारित्र भावना, ३, चोथी वैराग्य भावना. ४ ए च्यार भावना. वळी मैत्री भावना, १. प्रमोद २. करुणा, मध्यस्था भावना ए च्यार। च्यार धर्म–दान, शील, तप, भा वना.। स्मरण १, वारण, २, चोयण, ३ पडिचोयणा, ४ ना नाम । च्यार ध्यान–आर्तध्यान १, रौद्रध्यान, २, धर्मध्यान, ३. शुक्लध्यान, ४. ए च्यार ध्यान. प्रथम बे ध्यान (आर्त रौद्र) त्यजवा अने धर्म- ध्यान, शुक्लध्यान करवा योग्य हेवा पाया ११ ए छत्रीस गुण विरा- जमान ते गुरु मानवा ॥ २ ॥

पणविहसम्मंचरणंववे–ववहारायारसंमिइसज्झोए।
तह संवेगे अ रओ, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥ ३ ॥

व्याख्यार्थ—'पणविहसम्म'–पांच प्रकारे समकित–उपशम, १ क्ष- योपशम, २ क्षायिक, ३ सास्वादन, ४ वेदक, ५ ए पांच समकित। पांच चारित्र–सामायिक १, छेदोपस्थापनीय, २ परिहारविशुद्धि,

इगवीससबलचाया, सिक्खासीलस्स पनरठाणाणि।
अंगीकरणेण सया, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२६॥

टबार्थ—एकवीस सबला त्यागी ते गाथा–"तं जहओ हत्थक-
म्मं कुव्वंते मेहुणं च सेवंते राइ भुंजमाणो आहाकम्मं च भुंजंते ॥१॥
तत्तो य रायपिंडकीयं पामिच्चयं, अभिहडं छिज्जं भुंजंते, सबलेउ अय-
विरय ॥२॥ छम्मासब्भिंतरओ, गणागणं संकमं करेमाणे; मास-
ब्भितरतिन्निउदग लेवाइ करेमाणे. ॥३॥ तिण्हंते अ अहिगं,
आउट्टि तहा अणंतवहीयाए; पुढवीपट्ठाण मिज्जं, निसहायं वा वि
चेयंत ॥४॥ मासब्भिंतर ओम्मायट्ठाण इनिसिहंतो पाणायवाइं
कुव्वंते, मुसावयं तेय. ॥५॥ एवं मसिसणद्धाए ससरक्खाणियमं
गसिलले लूकोलावासपइट्ठाकोलघुणा ते संया वासो. ६. गई-
सपाणस बीए जीवउवसंताणउ भवे तहयठाणाइ, वेयमाणे गसंते
आउट्टिआए अ ७. आउट्टि मूलकंदे, पुप्फंय फले अ बीयहरिए य
भुंजंति सबलेइ, तहेव संवच्छरस्संतो ॥८॥ दस दगलेवे तह
इट्ठाणाइ दसयवरिमनेचउदिपर्भाउगवच्चागयदव्वमंतणं. ॥९॥
इच्चाइ मायपणं, वंदिज्जसमयपाणाधिचूणं, भुंजइ सबलो
एसो, इगवीसमो होइ नायव्वो ॥१०॥" ए २१ तथा सिक्खासी-
लस्स स्थानक—* आइ दस स्सठाणेहिं–सुसिक्खीलत्ति, वुच्चइ निया-
त्तित्ति अनवले अमाइ अकुतूहले. ॥१॥ अप्पं चाहिक्खिवइ
पबंधं च न कुव्वइ. मित्तिज्जमाणो भयइ, सुयं लद्धुं न मज्जइ.
॥२॥ न य पावपरिक्खेवी. न य मित्तेसु कुप्पइ १०। अप्पि-
यस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाणभासइ ॥३॥ कलहडमरवज्जए, बुद्धे

* अह पनरसहिं ठाणेहिं, सुविणीएत्ति वुच्चइ।
नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥ इति पाठांतर.

दोसलेसाविस्सयसईवतक्कभासाणं ।
जाणणेणं, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥५॥

र्थ—हवे चोथी छत्रीशी कहे छे—तिहां छ दोष वचनना तेहथी
ाय, अलीक जे जुठुं बोलवा नथी १, हीलना थाय ते बोलवा
 खिंसित—जे बोल्ये लोक खिहाहिमा करे (खिसा) ते
थी. ३, कर्कश—कठोर जे बोल्याथी दुःख उपजे ते बोलवा
गर्हणीय, जे लोकमे गर्हा थाये ते बोलवा नथी. ५, शमितो
ेरणा रूप जे शम्यो उपशम्यो जे अधिकरण—कषाय ते थको
६ ए छ वचनथी निवर्त्या छे. । तथा लेश्या ६ कृष्ण, १,
कापोत. ३, ए त्रण अप्रशस्तलेश्याथी निवर्त्या छे. तेजो
५, शुक्ल. ६ ए तीन प्रशस्त मांणी प्रवर्ते छे । तथा छ ६
—सामायिक १, चोविसत्थय, २, वंदन, ३, पडिक्कमण, ४
 ५, पचखाण. ६ तेहना कारण कार्यपणे परिणमवावंत
त्य ६ छ धर्मास्तिकाय, १. अधर्मास्तिकाय, २, आकाशास्ति-
, पुद्गलास्तिकाय, ४. काल, ५, ए पांच अजीव, छट्ठो जीव ।
 ६ (दर्शन)—जैन, १, मीमांसक, २, बौध, ३ नैयायिक,
कर, ५, सांख्य, ६ । तथा भाषा ६ छ— संस्कृत, १. प्राकृत,
शो, ३, सौरसेनी, ४, मागधी, ५, पिशाची, ६ ए छ- छ
ोलना परमार्थना जांण ते माहरा गुरु तत्त्वनाणया. ४. ॥५॥

परहिओ सगपिंडेपाणएसणमुहेहिं संजुत्तो ।
मयट्ठाणरहिओ, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥६॥

वार्थ—हवे पांचमी छत्रीसी कहे छे। सातभय—इहलोकभय, १,
भय, २, अत्राणभय, ३ मरणभय, ४ वेदनभय, ५, अकस्मात्-

हणेगा, छउपक्खोडतिगतिगंतिरिया । अक्खोडपमज्जणाया, नव-नव * मुहपत्ति पणवीसं. १ ए पचवीस मुहपत्तीनी पडिलेहणाना करता ए सत्तावीसमी छत्रीसीगुणे करी सहित ते माहरा गुरु जाणवा २७ ॥२८॥

सत्तावीसविहेहिं, अणगारगुणेहिं भूसियसरीरो। नवकोडिसुद्धगाही, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥ २९॥

टबार्थ—साधु मुनिराजना २७ सत्तावीस गुणें युक्त–"वयछक्कमिंदियाणं च निग्गहो भावकरणछक्कं च । समणा विरागयावि य, मणमाईणं निरोहो अ ॥ १॥ कायाण छक्कजोगम्मिजुत्तयात्रियणादियासणया। तह मारणंति अहियासणा एए अणगारगुणा ॥२॥" एहवे साधुजीने गुणें करी शोभायमान छे शरीर जेहनो तथा नव ९ ते मन, वचन, कायाए करुं नही, करावुं नही, करतांने अनुमोदुं नहीं ए नवकोटि विशुद्ध आहार, वसति, पात्र, उपगरणना ग्राहक छे निर्दोष छे. ए छत्रीस २७–९ गुणें करी बिराजमान ते माहरा गुरु जाणवा २८॥२९॥

अडवीसलद्धिपयडण–पउणो लोए तहा पयासंतो। अडविहपभावगत्तं, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥ ३०॥

टबार्थ—अठावीस महालब्धि प्रगट करवा महा निपुण छे तेहना नाम–"सम्माणुसव्वविरइ, मल विप्पमोमखेल सव्वुसही विउव्वि आसीविसओही रिउविउल केवल संभिन्न, चक्कि जिण हरिवर चारण पुव्व गणहर पुलाए आहारग महु वय तीरे आसवा कुट्ठबुद्धीय बीयमइ पयाणुसारी २८. आठ प्रकारना प्रभावकना गुणें बिराजमान तद्यथा–"पावयणी १ धम्मकही २, वाई ३ नेमित्तिओ

* पाठांतरे–पणवीस पडिलेहा.

टबार्थ—अट्ठविह—आठ जातिना ज्ञानादिक आचार—काले १ विणए २ बहुमाणे ३ उवहाणे ४ तह, अनिन्हवणे, ५। वंजण ६ अत्थ ७ तदुभये ८ अट्ठविहो नाणमायारो ॥१॥ तथा दर्शनाचार ८— निस्संकिय १ निक्कंखिय, २ निवित्तीगिच्छा ३ अमूढदीठि अ ४। उववूह ५ थिरीकरणे ६ वच्छल्ल ७ पभावणे ८ अट्ठ ॥ २ ॥ ए १६ तथा चारित्राचारना ८ भेद ते पांच समिति, त्रण ३ गुप्ति, ए २४ बोल थया. वळी आचारवंत १, आहारवंत, २, व्यवहारवंत, ३ विहारवंत, ४ अपरिश्राविवंत, ५, निर्जरावंत, ६ अपायदर्शी, ७ एषणावंत ८ ए आठ गुणवंत गुरु. वळी च्यारबुद्धि ४ औत्पातिकी, १, वैनयिकी. २, कार्मिणिकी, ३ पारिणामिकी ४ ए सर्व मळी ३६ छत्रीस गुणे विराजमान म्हारा गुरु जाणवा. ए छठ्ठी छत्रीसी. गाथा ॥ ७ ॥

अट्ठविहकम्म, अट्ठंग जोगमहसिद्धिजोगदिट्ठि विउ।
चउविहअणुओगनिउणो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ८॥

टबार्थ—हवे सातमी छत्रीसी कहे छे—आठ कर्म ज्ञानावरणादिक तेहना सूक्ष्म भावना जाण. ८। वळी अष्टांगयोग—यम १, नियम, २, आसन, ३, प्राणायाम, ४ प्रत्याहार, ५, धारणा ६ ध्यान, ७, समाधि ८ ए अष्टांगयोग कहीये—तेमां यम ते प्राणातिपातविरमणादि महाव्रत १. नियम—शौच, संतोषादि. २, आसन—पद्मासनादि, ३ प्राणायाम श्वासनिरोधादिक चार अंग स्थिरता वधारवा माटे अभ्यास करवो. ४ पछी प्रत्याहार जे आत्माने विषयथी संवरीने स्वरूप सन्मुख करवो ते. ५, धारणा जे ध्येय अरिहंतादिक शुद्ध निमित्त अथवा आत्मस्वरूप ते ध्येय छे. तेहने विषे पोताना उपयोगनी एकाग्रता करवी ते धारणा ६ ते धारणाये अंतर्मुहूर्त्त सीम स्थिरता रहेवी ते ७ ध्याननें ध्यानना सुख मध्ये

पुणो पुणो अहिगरणं,उप्पाए तित्थभेयए १२॥६॥ जाणं आहम्मिए, जोए पउंजइ पये पये १३। कामे वमित्ता पत्थेइ, इहंमि भविये इय १४ ॥७॥ अभिक्खणं अ-बहुस्सुत्तं, जे भासंति बहुस्सुए १५ तह य अतवस्सी य, जे तवस्सित्ति अहं वए १६ ॥८॥ जायतेयेण बहुजणं, अंतो धूमेण हिंसई १७। अकिच्चमप्पणा काउं, कयमेएण भासइ १८ ॥९॥ नियडुवहि पणिहीए, पलिउंचे साइजोगजुत्ते य १९। बेइ सव्वं मुसं वयसि, अज्झीणं झंझए सया २०॥१०॥ अद्धा-णंमि पविसित्ता, जो धणं हरइ पाणिणं २१। वीसं भित्ता उवायणं, दारे तस्सेव लुप्पइ २२ ॥११॥ अभिक्खमकुमारेउ, कुमारोहि य भासए २३। एवमबंभयारीउ, बंभयारित्तिऽहं वए २४ ॥१२॥ जेणे विसरियं नीए, वित्ते तस्सेव लुब्भइ २५। तप्पभावुट्ठिए वावि, अंतराय करेइ से २६ ॥१३॥ सेणावई पसत्थारं, भत्तारं च विहिंसइ २७। इट्ठस्स वावि निगमस्स, नायगं सिट्ठिमेव वा २८ ॥१४॥ अपस्समाणे पस्सामि, अहं देवत्ति वा वए २९। अवण्णेणं च देवाणं, महामोहं पकुव्वइ ३० ॥१५॥ ए ३० त्रीस महामोहनां स्थानक रहित तथा अंतरंगवेरी छ ६ थी रहित—काम १, क्रोध २, लोभ ३, हर्ष ४, मान ५, मद ६ ए छना त्यागी ते एकत्रीसनी छत्रीसीना छत्रीसगुणे विराजमान ते माहारा गुरु जाणवा. ॥३२॥

इगहियतीसविहाणं, सिद्धगुणाणं च पंच नाणाणं।
अणुकित्तणेण सम्मं, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥३३॥

टबार्थ—श्रीसिद्धभगवंतना इगतीस ३१ गुण यथा—"पडिसेहग संठाणे, ५ वण्ण ५ गंध, २ रस, ५ फास, ८ वेए ३ य। पन पग दु पणट्ट निद्दा, इगतीसमकायसंगरुहा ॥१॥ अहवा कम्मे—"नव दंसणम्मि चत्तारि आउए पंच आइमे अंते। सेसे दो दो भेया,

बन्त नहीं. ७ स्त्रीयोंनि अंगिकाओ आहार करतो नहीं ८ सकना- रीनि सर्वनी शोभा न करवी. ९ ए नागवी पाळे. १८। ना निर्मोत्र विहार, तेज मारणा ८ महिनाना आठ विहार अे नव विहारे यति नहीं "वासगयंमि वसंता, मुणिणो आराहगा भणिया" इत्युक्त- मान बचनत्। ए अढमी छत्रीसीना धरनार ने मारा गुरु जाणवा. ॥९॥

दसभेअ अ संवरं, संकिलेसउवधायविरहिओ निच्चं। हासाइछक्करहिओ, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥ १० ॥

दवार्थ—हवे नवमी छत्रीसी कहे छे—दस १० प्रकारना संवर मंडुक—पांच इंद्रि वश ९ पांच संवर, तीन योग रोकवा ए ३, औधिर, उपगरिक, उपधिनो मान ९ दश संवर। दस १० प्रकारनो संक्लेश— १ उपधि संक्लेश, २ वसति संक्लेश, ३ कषाय संक्लेश, आहार संक्लेश, ५—६—७ तीन योगनी चपळता ते संक्लेश, ८ अज्ञान संक्लेश, ९ उत्दर्शन संक्लेश, १० अनादिप्रक्रियानो संक्लेश. ए १० दश संक्लेशथी रहित। तथा संकल्पना १० दश उपघात थी रहित. "दस संजमोवघाया, उग्गम १ उप्पायणे २ स ३ परिकम्मे ४। परिहरण ५ नाण ६, दंसण ७ चरित्त ८ अचियत्त ९ संरक्खे १० ॥ १ ॥ " वळी हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुगंछा. ए ६ छ थी रहित। ए नवमी ३६ सी गुणे युक्त म्हारा गुरु जाणवा. ॥१०॥

दसविहसामायारी, दसचित्तसमाहिठाणलीणमणो। सोलसकसायचाई, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥११॥

दवार्थ—दसमी छत्रीसी कहे छे. दस सामाचारी—इच्छाकार, १

अंकुस ६ कच्छभ ७ रिंगीय ८ मन्थु ९ च्वतं १० मणपउट्ट ११ वेइअ १२ वद्ध १३ भयंतं १४ भयगारव १५, मित्तकारणातिन्नं १६ पडणीय १७ रुद्द १८ तज्जीय १९ सढ २० हील, २१ विपलिअं २२ अंचिअं २३ दिट्ठमदिट्ठ २४ संगं २५ करतं २६ म्मोअण, २७ आलिद्धणालिद्धं, २८ ऊणं, २९ उत्तरचूलिअ, ३० मूअंडड्डर ३१ चुडलीअ, ३२ बत्तीसदोससुद्धं. ए ३२ दोषना टाळनार। तथा च्यार ४ विकथाना त्यागी ते राजकथा १, देशकथा २, भक्तकथा ३, स्त्रीकथा ४. एम ऐ ३२-४=३६ छत्रीसगुणे विराजमान ते माहरा गुरु जांणवा. ए रीतें ए चोत्रीसमी छत्रीसी जाणवी. ए पांत्रीसमी गाथानो अर्थ जाणवो. ॥३५॥

तित्तीसविहासायण—वज्जणजुग्गो अ वीरियायारं। तिविहं अणिगूहंतो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥ ३६॥

टवार्थ—तेत्रीस ३३ आशातनाना वर्जक छे—"पुरओ पक्खा सन्ने गंता चिट्ठण निसीयणायमणे। आलोयण पडिसुणणे, पुव्वालवणे अ आलोए ॥१॥ तहउवदंस निमंतण, अद्धायणे तहअपडिसुणणे। अद्धत्तिय तत्थगए, किंतु मतज्जायनो सुमणे ॥२॥ एवं एयं होउ कहकहं, तस्स न सुमणो हवइ। तज्जाएणं हीलइ, पुणो पुणो निठुरं भणइ ॥३॥ नो सिरसिकइं छित्ता, परिसंभिता अणुट्ठिआइ। कहे संथारपाय घट्टण, चिट्ठुच समासणे यावि ॥४॥ अहवा अरिहंताणं आसायणाए सिज्झाए किंचिनाहीयं। जा कंठ सुमुदिट्ठा तित्तीसासायणा इति ॥५॥" ए ३३ अने त्रीण प्रकारना वीर्य जिनशासनने कामे गोपवता नथी. ए छत्रीसी विराजमान ते परमोपकारी माहरा गुरु तत्त्व जाणवा। ए पांत्रीसमी छत्रीसी जाणवी. ॥ ३६ ॥

विणओ ॥ १ ॥" एवं २० । तथा दशविध यतिधर्मने विषे सदा उद्यमी छे–खंती १ मद्दव २ अज्जव ३, मुत्ती ४ तव ५ संजमे ६ य बोधव्वे । सच्चं ७ सोयं ८ आकिंचणं च ९ बंभं १० च जइधम्मो ॥" एवं ३० षड्त्रिंशक । तथा दशवैकालिके कह्यो जे अकल्प्य छह तेना वर्जनारा । ए ३६ गुणे युक्त म्हारा गुरु जाणवा. ए तेरमी छत्रीसी. ॥१३॥

दसभेयाइ रूईएँ, दुवालसंगेसुं वारउवंगेसुं ।
दुविहसिक्खाइ निउणो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ॥१४॥

टबार्थ—दश १० रुचिने–"निसग्गुवएसरुई, आणरुई सुत्त-बीयरुइमेव । अभिगमवित्थाररुई, किरिया संखेवधम्मरुई ॥१॥" १० । अंग बार–"आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवायो ४ विवाहपन्नत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पन्हावागरणं १० विवागसुयं ११ दिट्ठिवाओ १२" इति १२ बार अंग । तथा बार उपांग–उववाइ १, रायपसेणी २, जीवाभिगम ३, पन्नवणा ४ जंबूद्वीपपन्नत्ती ५, चंदपन्नत्ती ६, सूरपन्नत्ती ७, (निरयावलिय) कप्पीय ८ पुप्फचूलिया ९ (कप्पीआ १०) कप्पवडंसीया ११, वन्हीदसा १२ ए पांच सूत्र मिली एक निरयावली कहेवाय छे. एम १२ उपांगना जाण। तथा बे शिक्षा–ग्रहणशिक्षा जे सूत्रार्थनो भणवो १, आसेवना शिक्षा जे सत्क्रियानो करवो २. ए छत्रीस गुणे करी शोभित ते आचार्य गुणवंत जाणवा. ए चौदमी छत्रीसी युक्त म्हारा गुरु जाणवा. ॥१४॥

एगारसड्डपडिमा, वारसवयँ तेरकिरियट्ठाणेय ।
सम्मं उवएसंतो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥१५॥

टबार्थ—तो पिण यथासूत्र कह्यु छे गुरु जे शुद्धतत्त्वना कथक तेना गुणनी छत्रीसीओ कही ए कुलकने विषे पोताना गुणना संग्रह करवा निमित्ते तथा भक्तिएं गुणनी छत्रीस छत्रीसी करतां १२९६ बोल थया ते कह्या. इति ॥ ३९ ॥

सिरिवयरसेण सुहगुरु–सीसेणं विरइअं कुलगमेयं।
पढिऊणमसढभावा, भवा पावंतु कल्लाणं ॥ ४० ॥

इति गुरुगुणछत्तीसी समत्ता ॥

टबार्थ—श्रीयुगप्रधान दश पूर्वधर संपूर्ण सूत्र अर्थना धारक, आकाशगामिनी प्रमुख महालब्धिना पात्र श्रीवज्रस्वामिना शिष्य जगत्रय उपकारी श्रीवज्रसेनगणि तेहना शिष्य जे गुणरागीमतिपणे ए कुलक रच्यो ते भणीने असठभावी एटले जिनशासनभावितमती जीव भव्यात्मा पामे कल्याणनी परंपरा प्रत्यें. ए ४० मी गाथानो अर्थ. ॥४०॥

हवे टबाकारप्रशस्ति—

श्रीमत्खरतरगच्छे, पाठका राजसारसत्संज्ञाः ।
तच्छिष्यपाठकोत्तम–धीराः श्रीज्ञानधर्माह्वाः ॥१॥
तेषां शिष्यप्रवराः, पाठका दीपचंद्राभाः ।
तेषां शिष्येणायं, बालबोधो विनिर्मितः ॥ २ ॥
मुनिगुणस्मरणालंकृतः, विशुद्धचित्तेन देवचंद्रेण ।
भव्यजनानुग्रहकृते, कृतः सदभ्यासरसिकेन ॥३॥

इति श्रीगुरुगुणषट्त्रिंशिकाबालबोधार्थः समाप्तः ॥

बारसभेयंमि तवे, भिक्खू पडिमासु भावणासु य।
निच्चं च उज्जमंतो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥१७॥

टबार्थ—हवे सोळमी छत्रीसी कहे छे—बारभेदे तप–छ बाह्य तप–"अणसण १ मूणोयरिया २, वित्तीसंखेवणं ३ रसच्चाओ ४। कायकिलेसो ५. संलीणया ६ य बज्झो तवो होइ ॥१॥" तथा छ अभ्यंतर तप—"पायच्छित्तं विणओ २. वेयावच्चं ३ तहेव सज्झाओ ४। झाणं ५ उस्सग्गोवि य ६. अब्भिंतरओ तवो होइ ॥२॥" ए बार तप। तथा भिक्षुनी–साधुनी प्रतिमा बार–पहेली १ मासनी, बीजी बे मासनी, त्रीजी त्रण मासनी, इम यावत् सातमी सात मासनी, तहन्य एकंतरोपवास, उत्कृष्ट यथाशक्ति दीठे दंडासनादिक आसने आसनना रात्रि काउस्सग्ग, ए रीते करवानी आठमी सातअहोरात्रिनी, नवमी नव-मनरात्रीनी, दसमी दसनीया, इग्यारमी एकअहोरात्रिनी, तीनरात्रिनी बारमी, एक अहोरात्रिनी। अने बार १२ भावना—"पढममणिच्च १ मसरणं २, संसारो ३, एगयाय ४ अन्नत्तं, ५। असुइत्तं ६ आसव ७ संवरो य ८ तह निज्जरा नवमी ९ ॥१॥ लोगसहावो १० बोही ११ दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा १२। एआओ भावणाओ, भावियव्वा पयत्तेणं ॥२॥" ए सर्व मळी ३६ छत्रीस बोलना उद्यमी वे मह्या गुरु जाणवा। ए सोळमी छत्रीसी जाणवी. ॥ १७ ॥

चउदसगुणठाणनिउणो, चउदसपडिरूवपमुहगुण-
कलिओ।
अट्ठसुहुमोवएसी, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥१८॥

टबार्थ—चौद १४ गुणठाणाना नाम, ते गुणठाणानां नाम–मिच्छे १ सासण २ मीसे ३, अविरय, ४ देसे, ५ पमत्त, ६ अपमत्ते।

सोलससोलसउग्गम-उप्पायणदोसविरहिवआहा
चंडहाभिग्गहनिरओ, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२०

टबार्थ—सोल उद्गम दोष-१६-सोलस उग्गमदोसा आहा
कम्मु १ देसीय २ पूइयकम्मे ३ य मीसजाए ४ अ । ठवणा
पाहुडिआए ६ पाओयर ७ कीय ८ पामिचे ॥ १ ॥ परिअट्टि
१० अभिहडु ११-भिन्ने १२ मालोहडे १३ य अछिज्जे १
अणिसिट्ठ १५ ज्झोयरए, सोलस पिंडुग्गमे दोसा ॥२॥" १६
तथा सोल उत्पादना दोष १६-"धाई १ दूइ २, निमित्ते, ३, आजीव
४, वणीमगे ५, तिगिच्छा य । ६ कोहे ७ माणे ८ माया
लोभे १० अ हवंति दस एए ॥ १ ॥ पुव्विं पच्छा ११ संथ
१२ विज्जा १३ मंतेय १४ चुण्ण १५ जोगे अ, उप्पायणाइदोस
१६, सोलसमे मूलकम्मे य ॥२॥ " ए दोष रहित आहार
लेणहार. एम ३२ । तथा द्रव्य, १ क्षेत्र, २, काल, ३ भाव, ४
च्यारभेदे अभिग्रहना धरणहार ए ३६ गुणना धणी ते माहरा गुरुत
जागवा । ए ओगणीसमी छत्रीशी जांणवी. ॥२०॥

सोलसवयणविहिन्नू, सत्तरसविहसंजमंमि उज्जुत्ते
तिविराहणाविरहिओ, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२

टबार्थ—सोल वचन विधिना जांण, १६-कालतिअं ३ लि
निअं ३ वयणतिअं ३ सदपरखव १० पच्चक्खं ११ । उवयण
चउक्कं १५, अज्झत्थं १६ चेवसोलसमं ॥१॥ तथा सत्तरविधसंजम
१७-पंचाश्रवथी विरमन ए पांच, पंचेन्द्रियनिग्रह ए १०, कषाय ४
दंड ३ थी विरतिरूप ए १७; अथवा-पुढवि-दग-अगणि-मारु
वणस्सई बिति चउ पणिंदि अज्जीवे १० पेहापेह पमज्जण. प

* पाठांतरम्-(चउविह)

सुंदर संयम पाणी वरे, तीन जगत्त पवित्र ज करे;
शांतिनाथ स्वामि हूं नमुं, सरव विघन दूरे हूं गमुं. ४
श्रेय कुमुद विकसावण भणी, पूरण चंद्र समोवड गिणी;
वंद्ू महावीर भगवान, अक्षय लिषमि दायक दान. ५
पूरण श्रुत नभ चंद्र समान, संयम लिषमि तिलक प्रधान;
नमीये इंद्रभूति अणगार, ध्यानसिद्ध योगीस उदार. ६
सांतिरूप अति ही गंभीर, विद्या सकल धाम गुणधीर;
भव्यलोक सरणागत पाल, जय जिनसासन जगत कृपाल. ७
बोधि विवेक प्रसम हित भूप, सम्यक् तत्त्व कथन ए रूप;
ज्ञान ध्यान श्रुत तप ते सार, जिण निज रूप लह्यौ सुपकार. ८
इण दुपको संसार असार, जामि मूंझे कुणसु विचार;
मिथ्या ज्ञान प्रभव ग्रह जेह, निग्रह दक्ष सुजन सुप गेह. ९
एहवो कहूं ज्ञाननिधि ग्रंथ, दुत्तर जेम उदधिनो पंथ;
मुझसूं ए किम कहीयो जाय, जिणमें कोविद पिण मूंझाय. १०
समंतभद्रादिक कविनी वाणि, दीपंती प्रभवे सुप्रमाण;
तिहां ज्ञानलवधर जन कहे, पशुआ परि हासो ते लहे. ११
विविध कलंक जिनवाणि तणो, नासक देवनंदीये थुणो;
जपवंतो जिनसेन वचन्न, जाणे जोगी जिण निज धन्न. १२
श्रीजिनवाणि पवित्रित मती, अनेकांत नभ ससि दीपती;
भवि कलेसपीडित आतमा, जोगीपथ धरुं चितमां. १३

दूहा.

कविन तणौ अभिमान नहि, कीरति इच्छा कोई नांहि;
ग्रंथ उक्त जे माहरी, केवल बोधन चाहि. १४

ते–एवी प्रकार संभेदे उदार करीये ते ९ ३६ ना धन्नहार ते मारा गुरु जयवंता. ३२–॥२३॥

उस्सग्गेदोसगुणवीस–वज्जओ सत्तरभेअँमरणविहिं।
भवियजणे पयडंतो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२४॥

टबार्थ—उद्गमसगना १९ ओगणीस दोष रहित–घोटग १ लय २ खंभाई ३ माल; इत्यादि भाष्यथी जाणी लेवा. १९ । तथा मरण समाधिना सत्तर भेद १७ भगवतीथी जांणज्यो. इत्यादिक अर्थ भव्य जनने उपदेशे प्रगट करता ए तेवीस २३ मी छत्रीसी गुणे विराजमान ते गुरु जाणवा. ॥२४॥

वीसमसमाहिट्ठाणे, दसेसणा पंच गासदोसे य।
मिच्छत्तं च चयंतो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२५॥

टबार्थ—वीस असमाधि स्थानकना निवारक–"दवदवचारि १ पमज्जिय २, दुपमज्जियं ३ रित्तसिज्ज ४ आसणिए ५। रायणिय-परिभासी ६, थेर भूओवाई ८ य ॥ १ ॥ संजलण ९ कोहणे १० पिट्ठमंसिये ११ भिक्खभिक्खमोहारी १२ । अहिगरणकरो-दीरण १३, अकालसज्झायकारी १४ य ॥२॥ ससरक्खपाणिपाए १५, सद्दकरे १६ कलह १७ झंझकारी १८ य । सूरप्पमाणभोई १९, वीस इमे एसणासमिए २० ॥३॥" तथा दश एषणा दोष– "संकीय १ मक्खिय २ निक्खित्त ३ पिहिय ४ साहरिय ५ दायगु ६ म्मीसे ७। अपरिणय ८ लित्त ९ छड्डिअ १०, एसणदोसा दस हवंति ॥१॥" तथा ग्रासदोष पांच–धूमांगारक प्रमुख, एकविध मिथ्यात्व तेनो त्याग, ए छत्रीसगुणे सहित ते गुरु जाणवा. ए चोवीस छत्रीसी थइ. ॥ २५ ॥

चंद्रमा सहु भणी सुप करे जी, सूर्य पीडा करे सर्व;
ए गुण दोष सभावना जी, तेय करवो किसो गर्व. ८ उ०
एह आतम महामोहसुं जी, कलंकित होइ जिण शुद्ध;
तेह मंदिर निज हित भणो जी, तेह पर ज्योति प्रतिबुद्ध. ९ उ०
भुवन जम सर्प डंकित गणी जी, कुमति तजि ध्यान ग्रह दृढ;
जन्म मरणादि दुष वाणिने जी, सम गिणइ तेहि ज सिद्ध. १० उ०
इंद्रीय रक्ष स्मर सिंहयी जी, जन्म दुःष जाणिजे जाण;
घूमीया मोह निद्रायकी जी, जागे ए कोइ शुभ नाण. ११ उ०
कुमति कषाय विष मूंझिया जी, जीव सहु संत कोइ शांति;
मुक्ति लक्ष्मी मुख देषवा जी, उत्सुक तजि पर भ्रांति. १२ उ०
वह्नि दुष पीडिन जग गिणीजी, संत पामे भव तीर;
कर्मकलंक अनादिना जी, तुरत धोवें मतिधीर. १३ उ०
कर्मकलंक बाधा विना जी, सानंद शुद्ध स्वभाव;
संत जिन मोक्ष इम वर्णवे जी, जिहां नही जनम दुषराव. १४ उ०
जीविन सर्वनो सार ए जी, नरभव दुर्लभ जाण;
छोडि परमाद शुभमति धरीजी, आदरो आतम नाण. १५ उ०
सठ जन काल अहिलो गमे जी, वृद्ध फल लेइ दुरस;
दुष ज्वाला भर्यो गहन छे जी, एह सुष अंत विरस. १६ उ०
काम धन जीविन चल अछे जी, वीजली जेम ए फंद;
उत्तम जे तजे ते टळे जी, राजविमल सदानंद. १७ उ०

दूहा सोरठा.

संगी पर्का विषाद, देहि छीजे गेगषी;
और मरण प्रमाद, आपद दिन प्रति वृद्धवे. १

अनिवारए । दरिसे १४ पडिसंलीणे १५ सुविणीदपि बुद्ध. ॥४॥" ए ३६ छत्रीसगुणे विराजमान गुरु जाणवा. ए पच्चीसमी [illegible] ॥ २६ ॥

बावीसपरीसहहियासणेण, चाएण चउदसण्हं च ।
अब्भितरगंथाणं, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२७॥

टवार्थः—बावीस परीसह सहेवाने समर्थ होय. नाम-क्षुधा १ पिपासा २ शीत ३ उष्ण ४, दंश ५ अचेल ६ अरति ७ स्त्री ८ । चरिया ९ निसीहिया १० सिज्जा ११, अक्कोस १२ वह १३ जायणा १४ ॥१॥ अलाभ १५ रोग १६ तणफासा १७, मल १८ सक्कार १९ परीसहा । पन्ना २० अन्नाण २१ सम्मत्तं २२, इय बावीस परीसहा ॥२॥" तथा १४ चौद अभ्यंतर ग्रंथिनो त्यागी होय [illegible] "रागो दोसो ५ मिच्छत्तं ७ कसाया ४ हासछक्कं ६ । एगो वेउदिन गंथा, अंतरंगा चउद्दस ॥१॥" ए चौद प्रकारनी [illegible] ए छत्रीसमी छत्रीसी गुणे विराजमान ते सद्गुरु [illegible] ॥ २७ ॥

पणवेइयाविसुद्धं, छद्दोसविमुक्कं पंचवीसविहं ।
पडिलेहणं कुणंतो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२८॥

टवार्थ—पांच वेदिका दोषरहित [illegible] ए उर्ध्ववेदिका, ३ [illegible] ४ [illegible] ५ पांच वेदिकाए विशुद्ध । वळी ७ दोषनी विमुक्त— + आरभडा संमद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइया, पप्फोडणा चउत्थी विक्खित्ता वेइया छट्ठा ॥१॥ ए ६ छ दोष रहित वळी पचवीस पडिलेहणा करतो-[illegible]

+ [illegible] १ [illegible] २, [illegible] ३ [illegible] ४ ५ [illegible] ५ । ..
[illegible] ६ [illegible]

पुत्र स्त्री धन बांधव कारणें, स्यूं पीजे धरि भर्म. ६ भा॰
स्त्री किण साथ न आई आवइयै, तौ स्यौ इण स्यूं रे राग;
जे पूरव भव रिपु ते इण भवे, बांधव वधतै रे राग. ७ भा॰
जे बांधव ते बइरी आकरा, हणवा उच्छक हुइ;
वनिता पासे बांध्यो तूं पडै, भवकूपे बहु कष्ट. ८ भा॰
जे भव पाडै ते बांधव नही, बांधव हितकर साधु;
देह आयु तुटे षिण मोहथी, दीपे चित्र अगाधु. ९ भा॰
शीत जीवित भणी वह्नि विषाग्रहे, विषय थकी सुप नाहि;
जे काजे तुं पातक आदरै, तें वंचै तुझ साहि. १० भा॰
तेह परिग्रह सूप कहि किम करै, निज गुण हाणि ज थाय;
बाहिज दृष्टि कुमति प्राणीया, दुषीया नरके जाय. ११ भा॰
नरभव एणै तेहि ज आदरै, उभय लोक सुपकार;
वधारै विषपादप नवि करै, विहवे निज हित सार. १२ भा॰
रात्रे पंषी जिम नग आसरै, तिम प्राणि कुल थान;
परभाते ऊडे ते पंषीया, तिम करमवस मान. १३ भा॰
परभाते जिहा गहमह गीतनी, सांझे विरूई वात;
जे परभाते राज्ये थापीयौ, ते चिंता गृहे राति. १४ भा॰
जे अणुआ तुझ अंगे आज छे, ते पांड्या लपवार;
एहवो पुद्गल कोइ रह्यो नही, न ग्रह्यो वपु आहार. १५ भा॰
देव असुर नर धन सहू चल अछे, इंद्रधनुष सम भाय;
आवै जावै जलकल्लोल ज्युं, को पाटइ को पाय. १६ भा॰
नदीय तरंग गयावलि वाहुडे, न थिरै जोवन प्रेम;
आऊषो करजल ज्यूं नीगमे, कमल दहे जिम हेम. १७ भा॰
विषय संयोग सुपन सम क्षणक छे, सुपना वंचक पेष;
कुल मल राज्य कीरति धन ए सहू, मेघघटा सम लेख्य. १८ भा॰

४ तवस्सी ५ अ । विज्जा ६ मिंतो ७ अ कई ८. अट्ठेव पभावगा भणिया ॥१॥" ए. त्रीश गुणे बिराजमान ते गुरु जाणवा. २९॥३०॥

एगूणतीसभेए, पावसुंए दूरओ विवज्जंतो ।
सगविहसोहिगुणपणू, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥३१॥

टबार्थः—एगणत्रीश २९ पापश्रुतनी प्रवृत्तिना वर्जक छे–"अ-ट्ठनिमित्तंगाइं, दिव्वुप्पायंतरिक्खभोमं च । अंगं सरलक्खण वंजणं च तिविहं पुणिक्किं ॥१॥ सुत्तं वित्ती तह वत्तियं च पावसुअमउणती-सविहं । गंधव्वनट्टवत्थु–आउं धणुवेयसंजुत्तं ॥२॥" ए. ओगणत्रीश २९ पाप श्रुतना उपदेश रहित । अने सात ७ शुद्धिना गुणे गुणो. (तं)लहुया? ऽल्हादिजणणं २, अप्पपरानियत्ति ३ अज्जवं सोही, दुक्करकरणं ५ विणओ, ६ निस्सल्लत्तं च सोहिगुणा ७ ॥१॥" ए. छत्रीसमी छत्रीसी गुणे बिराजमान ते माहरा गुरु जाणवा ३० ॥३१॥

महमोहबंधठाणे, तीसं तह अंतरारिछक्कं च ।
लोए निवारयंतो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥ ३२ ॥

टबार्थ—मोहनीनी ७० कोडाकोडी सागरस्थितिबंधनां स्थानक जेणे वार्या छे–"वारिमज्झेऽवगाहित्ता, तसे पाणेवि हिंसइ १। छाए मुहं हत्थेणं, अंतोनायं गलेरवं २ ॥१॥ सीसावेढेण वेढित्ता संकि-लेसेण मारइ ३ । सीसंमिजे य आहंतु दुहमारेण हिंसइ ४ ॥२॥ बहुजणस्स नेयारं, दीवं नाणं च पाणिणं ५ । साहारणे गिला-णम्मि पहुकिच्चं न कुव्वइ ६ ॥३॥ साहूण धम्मकम्माओ, जो भंसेइ उवट्ठिय.। नेआउयस्स मग्गस्स, अवगारंमि वट्टइ ८ ॥४॥ जिणाणं अनंतनाणीणं, अवण्णं जे पभासइ ९। आयरिय उवज्झाए, खिसई दसुद्धिए १० ॥५॥ तेसिमेव य नाणीणं, सम्मं नो पडितप्पइ ११।

गरभ जनम मरणादि वलि, सुप दुष जोग वियोग;
जीव इकेलो भोगवे, आधि व्याधि सहु सोग. ३

ढाल–नायक मोह नचावीयो. एहनी.

भावो एकल भावना, संग न कोइ संसारो रे;
इंद्र चंद्र नागेंद्र को, अंते नहि आधारो रे. १ भा०
पाप करे परजन भणी, नरक दुष तूं पामे रे;
धावणवेला सहु मिले, दुष मंडे तुझ नामे रे. २ भा०
जन्म मरण तूं भोगवे, एक थको असणो रे;
आप सरूप जाण्या विना, जीव भमे विण नाणो रे. ३ भा०
मोहवसे ए एकलो, चंचल धन वर भ्रांतो रे;
बंधे आपोआपने, कुळीया वड दृष्टांतो रे. ४ भा०
एकपणो जे आदरे, पामी आपस्वभावो रे;
जन्म मरण दुष तो टले, तजि रागादि विभावो रे. ५ भा०
कोइ दिव्य सुप भोगवे, केइ नरक दुष धावे रे;
के क्रम बांधे क्रोधथी, के सहु कर्म षपाइ रे. ६ भा०

दूहा.

ए चेतन ए देहथी, ज्ञानरूप भिन्नत्व;
बंधादिक निजगुण नहीं, भावो भाव अन्यत्व. १

पुनरपि ढाल.

पुद्‌गल जीव अनादिनो, बंध ज एक ज होई रे;
कनक उपल जिम एकता, निश्चय जूआ दोय रे. ८
भावो अन्यत्व भावना. आंकणी.

[illegible] ॥ २३ ॥

तह बत्तीसविहाणं, जीवाणं रक्खणम्मि कयचित्तो।
सियचउविहविसंगो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२४॥

[illegible]

बत्तीसदोसविरहिय, वंदणदोसस्स निवनाहिगारी।
चउविहविगहविरत्तो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥२५॥

[illegible]

देह अशुचि रोगे भरी रे, पतनसरूप शरीर;
एहनो फल एहज ग्रहो रे, धारो धर्म सधीरो रे. ३ मा०
ए दुष वपुथी ऊपजे रे, देह अशुचिनो गेह;
जे भव भमतो तूं सहे रे, ते दुष कारण देहो रे. ४ मा०
केसर अगरने मृगमद रे, हर चंदन कपूर;
मइल ग्रहे वपुसंगथी रे, देह अशुचि भरपूरो रे. ५ मा०
अस्थि चरम पंजर अछे रे, कुथित मृतकसम वास;
जो पायम रोगादिना रे, प्रीति धरे नहि तासो रे. ६ मा०

दूहा.

मन वच काया जोग गुरु, कह्या ज आश्रवरूप;
ए तत्त्वज्ञानी परहरो, जाणी अवजल कूप. ७

ढाल–तेहीज.

जिम छिद्रे जल नीग्रहे रे, तिम योगे करि कर्म;
संयम प्रशमादिक करी रे, धरे शुभाशुभ भर्मो रे. ८ मा०
कर्म बीज रागादि छे रे, जन्मादिकनो जाण;
विण व्यापारयुत ज्ञानसूं रे, सत्यवचन शुभ वाणो रे. ९ मा०
नंदनीक दुष पंथ छे रे, पापाश्रवनो धाम;
कुड कठोर वचन तणो रे, मन को आर्त नामो रे. १० मा०
काउसग्ग तनुगुप्तथी रे, बंधाये शुभ कर्म,
आरंभ जंतु घातादिके रे, पाप तणो मर्म हम्मों रे. ११ मा०
क्रोध काम विषयादिके रे, मिथ्या पंथ प्रमाद;
अशुभकर्म चेतन ग्रहे रे, ते नहि आश्रवादो रे. १२ मा०

दूहा.

आश्रव तत्त्व निरोधनो, संवर अरूपो एह;
द्रव्य भाव दोइ भेदथी, मरिष्य भाखो तेह. १

गणिसंपयट्ठ चउविह, वत्तीसं तेसु निच्चमाउत्तो।
चउविहविणयपवित्तो, छत्तीसगुणो गुरू जयउ ॥३७॥

टबार्थ—गणिसंपदा ८–"आयार १ सुअ २ सरीरे ३ वयणे ४ वायण ५ मइ ६ पओग ७ सइ ८ ए संपया खलु अट्ठमि संगह परिन्ना॥१॥ ए एकेकना च्यार ४ भेद मिलवा ३२ बत्रीस भेद थाये ते ८×४=३२–आचारे, १ श्रुते, २ विनये, ३ व्याक्षेपे, ४ ए च्यार विनययुक्त इम छत्रीसनी छत्रीसीना धरणहार मोक्षमार्गना साधक, परमभवविरक्त निर्मल शुद्धात्मभावध्यानी संपूर्णानंदरमी सारणा–वारणा चोयणा–पडिचोयणा–दक्ष, साधु. साध्वी, श्रावक, श्राविकाना परम धर्माधारभूत वर्त्तमान आगमधर ते आचार्य माहरा गुरु जागता. एम छत्रीस छत्रीसीना १२९६ बारसें छन्नु गुण जाणवा. ॥ ३७ ॥

जइवि हु सूरिवराणं, सम्मं गुणकित्तणं करेउं जे।
सक्कोवि नेव सक्कइ, कोहं पुण गाढमूढमई?॥ ३८ ॥

टबार्थ—यद्यपि आचार्य यथार्थ धर्मस्वरूप यथार्थ मार्ग धरनता ने सूरि कहेतां आचार्य वर कहेतां प्रधान तेहना गुण क्षयोपशमी, क्षायकी, उपशमी, तथा औदयिक, सोपकारी, परोपकारीनो कांइ अंत नथी. ते गुणनो कीर्तन करवाने इन्द्र पण समर्थ नहीं तो हुं जे गाढ मूढता सहित छे मति जेहनी ते किम सघला गुण कही शकुं! तिम मोटकाना गुण कहेतां आत्मा गुणीगुणथी एकत्व पाम्यो ने गुणनो अर्थी थाये, गुणार्थी थयो आत्मा स्वगुणने प्रगट करे ते माटे येतना पोतानी गुर्वीना गुण गावा अभ्यासी–जागृत करवी. ॥ ३८ ॥.

तहवि हु जहा सुआओ, गुरुगुणसंगहनयाउ भत्तीए।
इअ छत्तीसं छत्तीसीआउ, भणियाउ इह कुलए॥३९॥

यतन थकी पोता थकी जी, दाख्यो फलनो पाक;
तिम ही जांणे कर्मनौ जी, तजि जाणी किंपाक. ७ भ०
कांचन सोझे अगनथी जी, तिम चेतन तप आगि;
धीर अध्यातम तप तपै जी, जाय जन्म दुष भागि. ८ भ०
षट विध बाहिज तप कह्यौ जी, उपवासादि प्रधान;
प्रायश्चित्त विनयादिए जी, अंतरंग षटमान. ९ भ०
पामी पदवी ज्ञाननी जी, करेय तपस्या साध;
तिम तिम तिणथी वेगला जी, नासे कर्म अगाध. १० भ०
ध्यान अगनि कर बालीयै जी, पूरव करम समूह;
तद प्राणी उज्जल हुवै जी, जाणे सोवन व्यूह. ११ भ०
तां लगि तप प्राणी करै जी, ध्यान धरै तां सीम;
कर्म षपावी ते लहै जी, ज्ञान परम सुष नीम. १२ भ०

दूहा.

जेण थकी ततु सुचि हुवे, धरे ज्योति तिहां तेह;
धरमकल्पतरु ते नमो, दया भावनो गेह. १
चिह्न धरमरा दस भला, दाख्या श्रीजिनराय;
जासु अंस सेव्यां थकां, शिव पामे मुनिराय. २
मिथ्याती न कही सके, तेहनो सुद्ध स्वभाव;
हिंसा पोषक जेहनो, सहू ग्रंथनो राव. ३
चिंतामणि निधि कल्पतरु, कामधेनुइं इत्यादि;
सेवक सगला तासु जिण, लाध्यो धर्म अनादि. ४
नर अहि असुर नराधिपति, पदवी आपे एह;
पूजनीक त्रय भुवन जे, ते छिधर्मनो गेह. ५



क्षांत्यादि दशविध धर्म ए, मन वच तन मन शोध;
मन शुद्धे वांछे पामणी, पहि ज धर्मनो पोष. १२ भ०
नागेंद्रनरनी सुखाकरु, ए धर्म नरभव सार;
देवलोक सुखनो गेह ए, ए शिवसुख दातार. १३ भ०
जो नरकदुःखथी ऊभगे, देवलोक सुखनी चाह;
जो सुगत सुख वांछा करे, तो करि धर्म उच्छाह. १४ भ०

दूहा.

जिहां सगला भाव छे, चेतन जड दे थोक;
तेह लोक पट द्रव्यनो, थानक शेप अलोक. १
धीरवो पवन त्रिलोकमय, तालरूप आकार;
न कर्यो न धर्यो नाश नहि, शाश्वत सहु साधार. २
अनादिकालनो शाश्वतो, अंतर हिन विण नाप;
जीव पदारथथी भर्यो, सर्व द्रव्य जसु आप. ३
वित्रासन आकार तल, मध्ये झालरि जेम;
अंते मादल सारिखो, लोक रह्यो छे एम. ४
जिहां कर्म वसि जीवडो, उपजे विणसे सर्व;
जिहां उत्पत्ति विनाशयुत, छए रह्या छे दर्व. ५
सर्व वस्तु परिपूर्ण ए, सिद्ध अनादि पुराण;
तजि उपाधि समभाव ग्रहि, भावना लोक वखाण. ६

ढाल—भरतनृप भावशुं ए एहनी.

दुख दोहग पीडित सदा ए, नरक तणी गति जोइ;
बोधि दुरलभ अछे ए, थावरमांहि भमे वली ए.
कामवशे वश होइ. १ दुरलभ समकित अछे ए. आ०

अथ श्रीमद्देवचन्द्रकृत–

ध्यानदीपिकाचतुष्पदी.

श्रीगुरुभ्यो नमः ।

परमज्योति प्रणमुं प्रगट, सहजानंद सरुप;
दरसें निज परिवारसुं, प्रणमुं चेतन भूप. १
श्रीजिनवाणी मन धरि, पाय नमी गुरुराजः
सारबुद्धिदाता सकल, तारण भवोदधि जहाज. २
परमातम समझाविवा, भविक जीव हित काजः
ज्ञानसमुद्र अगाध गुण, देखाड्यो जिनराज. ३
संस्कृतवाणी वाचनी, केइक जीव जाणः
ज्ञाता जननें हितभणी, भाषा करुं वखाण. ४
गुणनां भणनां गाववां, टलें मन विषवाद;
विकथा जांणी वारज्यो, मत को करो प्रमाद. ५

ढाल चउपई.

ज्ञान सोम आलिंगन करी, आनंदित परमारथ वरी;
प्रणमुं हूं अज सहज विचार, परमातम अप्पय गुणधार. १
तीन भूवन कमलाकर सूर, धरम अमृत वर जलधर पूर;
जोग ध्यान कल्पतरुदेव, प्रणमुं रिषभदेव नतदेव. २
भवभय वह्निपकी संभ्रांत, जंतु जातिने करवा शांत;
सुधासमान चंद्रप्रभुरवाणि, ज्ञानसमुद्र शोभानो खाणि. ३

अथ द्वितीयखंड.

दूहा.

किरिया ज्ञान मिल्यां थकी, द्रव्य अनें परजाय;
सोनो सुरहै गंधसूं, मिलियां शोभा थाय. १
प्रथम खंड वीय खंडसूं, मिलियां लहसी शोभ;
भवियण सुणज्यो नेह धरि, तजी क्रोधमय लोभ. २
इण अनादि संसारमें, दुरलभ नरभव एह;
काकातालीन्यायें लह्यो, सफलो कीजे तेह. ३
पुरुषारथ नर जनमफल, तेह कह्या चउ भेद;
काम धरमारथ नवनवा, चउथो मोक्ष अभेद. ४
तीन वरग व्यवहार छै, जन्मादिकना ठांम;
ज्ञानी आतम साधिवा, मोक्ष अपरव थांन. ५
ध्वंसे कर्म मिथ्यातमल, जन्मादिक प्रतिकूल;
मोक्ष नाम तेहिज कह्यौ, शुद्धातम अनुकुल. ६
दृग्वीर्यादि अनंत गुण, सहित रहित सहु क्लेश;
चिदानंदमय सासतो, दाख्यो मोक्ष अलेश. ७
विषयहीन उपमारहित, अविच्छिन्न सुपठाण;
स्वरूपसिद्ध नित सास्वतो, एह मोक्ष वषाण. ८

ढाल—करमपरीक्षाकरण कुमर चल्यो रे एहनी.

आतमरूप विचारौ प्राणिया रै, ध्यानतणें सहि नाण;
निरमल सांत कलंकविना अछे रे, सिद्ध कृतारथ भाण. १ आ०
जिण कारण बहु पंडित तप तपे रे, तजी बंध भ्रमभाव;
सम्यग्ज्ञानादिक जिनवर कह्या रे, शिवसाधनना दाव. २ आ०

एवा जाणी भ्रम नहीं, आणी मोक्ष निमित्त;
वहे मार्ग गुरुभावनो, संभारी निज चित्त. १५

वळी येण उपाय करि, जन्म जात हुवे जाय;
जिनना जिनवरनी भक्ति, मळशे येण उपाय. १६

पुन्य तेह गमावतां, वाग्या वळतां बंध;
करि उत्तम शासनो थयुं, बंध मोक्षनो पंथ. १७

उपर्यां स्थिति करि अविवेके, गुरु ते ए उपदेश.
जिण जाणे निज शुद्धता, ग्रहे न दुर्गति देश. १८

ढाळ ध्यानमाळा चोपाई.

त्रिभुवन पुन्य हुआ उपदिशे जी, हुआ पराभव. जिनचंद.
सुगमनो ज्ञान गुण सांभळो जी, मन धरि तप आनंद. १
उत्तम जिन भुवे सांभळो जी, सांभळो सम्यक्तो पद
गुरु उपदेश मर्म धरी जी, हारि दुरध्यान मनाय. २ ०
स्थूलनो मनोहर जगावो जी, निज पद बंधन मय.
कोटि बंधन धरा जाय हवे जी, मार विपुल आचरण. ३ ०
शास्त्र तिणे सांभळ्यां सहु हवे जी, मन धरे जेणे मनमाह.
आदि दीठो एम मुकद हे जी, जिनवरनो विधि सा हारि. ४ ०
आदीश्वर अंग मनमनो जी. जे धरे एकाग्र मुद्र.
ते माने साधु सारपरत्वं जी, नाहे भंग जिन गुरु देह. ५ ०
गुरु मा हृदय ए धरताले जी, बोध मन पूरण देह
दुर्गतिनो द्वेष को करताले जी, हृदय ए मेद्र मन देह. ६ ०
दास जिन आचरण गुण धरीने जी, हृदयमां ते जिनवर मन होय
सवे दुर्गति अतिक्रमे जी, आणो ए जिन होय. ७ ०

ज्ञान राज्य फल छे इण ध्यानने रे, सहज साहू भ्रममुक्त;
ध्यानगस्थ कह्यो संक्षेपथी रे, वंध मोक्ष फलयुक्त. १५ आ०
मिथ्याज्ञान चरित्र गुनयथकी रे, लोक भ्रमे भ्रम पामि;
छेदी ते गह तुम्न लहे मथी रे, शिवपद आनंदधाम. १६ आ०

दूहा.

च्यारे प्रकारे ते कह्यो, जिनवर पहिला ध्यान;
ते शुध करिवा दाखस्युं, गुण अवगुणनो थान. १
अन्वय वलि व्यतिरेकथी, गुण अवगुण परपंच;
हेयादेय सुभावथी. २
ध्याता ध्यान तरंगत्रय, दरसन ज्ञान चरित्र;
ध्येयनणा गुणओलरवण, फल तसु ज्ञान पवि. १
आगमथी पंडित कह्या, च्यार प्रकार ज एह;
ध्याता १ ध्यान २ सुधेय ३ फल ४, भविपण भावो तेह. ४
शांत चित्त मुनिवरजिको, संवरवंत सुधीर;
जन्म मरणथी ओसर्यो, ध्यानी गुणे गहीर. ५

ढाल—के केई वर लाव्यो एहनी.

ए तो उदयकर्मेधनथकी, ऊपनो दुष अनल अथाह रे;
भविपण सुविचारो तेण जगत दहे सहू, तिम रूंधे शिवपुर राह रे ॥१॥
भविपण सुविचारो.
दाहरूप इण जगतमें, वलि मोह अनलनो गेह रे; भ०
मद प्रमाद छोडी करी, हुवा जोगीसर तेह रे. २ भ०
पंडित जीप सके नही, ए व्यसन पड्या ग्रहवास रे; भ०
घरमें मन नवि थिर रहे, तिण छोड घरनी आस रे. ३ भ०

नरक भयानक दुख, भोग भुजंग सम जग अछे;
ऐसें जानी दुःख, पर स्वभाव निस्पृह थी. २
नवि परनै वल्लभा, आतम तत्त्व न ओळखे;
जनम निरर्थक जान, करमविडंबन नवि करे. ३
पोढे बुद्धि विनोद, करी दुःख जाणो ठगे;
एवन ए आलोक, कार्याकार्य न जाणशी. ४
सर्व जीव सम भांति, निर्ममता मनमें धरे;
एवी मननो सद्भाव शुद्ध मनमें धरी. ५
भविजन चित्त विचार, भाव शुद्धि कारण भावना;
मुनिजन मन आधार, कहीं संवेग सुहामनी. ६
भावी धर्मभगवंत, भावना बारह भावसुं;
नावी एवी भांति, मुक्ति गेह सोपान सम. ७

ढाल—आश्रव कारण ए जग जाणीये ॥ एहनी.

भाव अनित्यपणो चित्त भावीइं, ध्यावो आतम ध्यान;
इंद्रिय अर्थ विनश्वर जाणीये, सुख दुख अनुमान. १ भा०
भवनें भमतां रे सगपण ले कीया, नरक स्वरग आपद थान;
देह जोवन ते रोग जरा मर्यो, धन जीवित चल मान २ भा०
परभवे जे वस्तु निहाल पडे, ते मध्यानें रे जाय;
संसारे सुख दुःख वे बोलनो, दुख अनंत दिखाय. ३ भा०
भोग भुजंग मानहरण वल्या, सेवंतां संसार;
वस्तु विनश्वर सवे तूं जाणिनै, छोडि कदाग्रहहार. ४ भा०
निरयननो इम जाणिज अमरहद, घडीयाल दृष्टांत;
घडियाल जाये नावे ते फिरी, करि आतम हित शांत. ५ भा०
देह अशुच सम्बल जो हुवे, तो करिये अविकल्प;

के वलि कारण दोयसुं, भाषे शिवप्रापति वाण रे;
कल्पै नव नव कल्पना, ते नर मिथ्याती जाण रे. १६ भ०
ज्ञानहीन किरियाथकी, वांछे नर जे फल शुद्ध रे; भ०
चक्षुहीन चाहै तिकै, तरुछायाथी फल शुद्ध रे. १७ भ०
अंध क्रिया पंगु ज्ञान छै, श्रद्धा विण न सरे काज रे; भ०
ज्ञान क्रिया दर्शन थकी, पामे सहु आतमराज रे. १८ भ०
कारकक्रम सहु लोकमे, विवहार चले छे अद्य रे; भ०
एकांतवादी माने नही, निज पक्षग्रहंता सद्य रे. १९ भ०
जसु मति जिनमतवादनी, ध्यान सिद्ध भणी ते योग्य रे; भ०
चंचल मन मुनि ध्यानमें, जिनवचने कह्या अयोग्य रे. २० भ०
ध्यानयोग्य नही मुनिनाम जे, लिंगधारी सूत्र विरुद्ध रे; भ०
मन वच काया भिन्न जै, ते न लहे ध्यान विशुद्ध रे. २१ भ०
पूज्यपणो निजमे कहे, परने लघु जाणै जेह रे; भ०
कर्म विकलतामें पड्या, मतिहीन कह्या जिन तेह रे. २२ भ०

दूहा.

संयम भार धरी करी, शील वीना मदवंत;
इंद्रीवश मन चल थका, ध्यान न सावे तंत. १
कीरति पूजा वंदना, जे चाहै ज्ञानविहीन;
अंतर मन निरमल विना, न लहे तत्त्व नगीन. २
ध्यान नही दूसम और, के कहे एहवी वाणि;
कामी मिथ्यामें पड्या, साची न सके झाण. ३
मन चंचल अति जेहनो, परंजन जसु ज्ञान;
मौनपणे मार्जारसम, ते सावे किम ध्यान. ४

नर नारी बहु सुंदरता सहु, ते जलफेन समान;
ज्योतिचक्र ऋतुगति ज्युं थिर नही, तिम वस्तुनी थिति मान१९भा
पुत्र पुद्गल जे वल्लभ हुता, ते दुखदायक एष;
इंद्रजाल जिम जगमें सहु पडे, रेन न जागे तेष. २० भा०
जे जे तीन भुवनमें वस्तु छे, चेतनथी ते भिन्न;
ते ते सघली मुनिवर उपदिसे, क्षणक विनश्वर तन्न. २१ भा०
संध्या वान समो स्नेह छे, वादल सम योवन;
विनक स्वरूप जानी संसारनो, विषुनुत्युं परजन्न. २२ भा०

दुहो.

श्रीसद्गुरु इम उपदिसे, सुनिज्यो भविमन लोय;
असरण भावन भावनां, भवदुख कदे न होइ. १

ढाल—मेरे नंदनां एहनी.

एहवो मानी को नही रे हां, जे न पडे यह फंद; असरण भाविये
रखवालो यमसिंहथी रे हां, कोई न योगी इंद. १ अ०
ए संसार असार, सुर नर नागकुमार;
रहि न सके पलभार, तूटे आयु जि वार. २
जीती जग इम एहवडे रे हां, जिण जीगे हरि दीन; अ०
मृष शोक झुंझी करे रे हां, ए सहू करमाधीन. ३ अ०
भुवन यमसोंपे डस्या रे हां, वीता पुरुष प्रधान; अ०
देव उपाये नवि रहे रे हां, तो नरके हे ज्ञान. ४ अ०
नित्य प्रमाने जीवन रे हां, यम ल्यावइ निज गेह; अ०
यमभय रहित जिके अछे रे हां, धीरज धरि भजे तेह. ५ अ०
जे पतले ते तो भली रे हां, नृप रूप सम करी जोइ; अ०
जिम इक तरु अनळे बळे रे हां, तिम वन बळदवे सोइ. ६ अ०

पामी यतिवेष विशुद्ध, आरंभे कर्म विरूद्ध;
अहो ए अचिरजनी वात, देषो मन चंचलजाति. १३
भोगवीया बहु स्त्रीभोग, वलि मेली धनसंयोग;
वैरी जीता बहु आय, पांम्यां शिवकाज न थाय. १४
एहवा जन ध्यान न साधे, परमारथ निज विण लाधे;
तिण ध्यावो अजर अनन्त, परमातम देव महंत. १५
जिनवचनतणी रचनायी, वाषाणे देश्र अनायी;
अेसा पंडित धन वांछे, कोडे गाने जगमै छे. १६
आनंदसुधारस मीना, भवसंभवतापविहीना;
एहवा जोगीसर राय, तीन च्यारेक नीचु लहाय. १७
संयम स्वाध्याय विहीना, मद राग कदाग्रह पीना;
विषयी भंडावै वेष, पडीया शंकाने द्वेष. १८
एहवा न करी सकै ध्यान, नवि जाणै तप विज्ञान;
ग्रंथ चीरणनें सहि नाणे, मुनि देवचंद्र वाषाणे. १९

दूहा.

परमारथ निश्चय करी, वर्त्तै मन वैराग;
इंद्री सुख निरपृह थका, साधु इसा वड भाग. १
भावशुद्धि भवभ्रमणयी, छूटा जे जोगीस;
काम भोगयी उभग्या, तनरी स्पृहा न रीस. २
प्राण त्याग पिण ध्यानयी, छूटै नही लिगार;
परत्यागी मुनिवर तिके, ध्यानतणा आधार. ३
महा परीसह सापयी, जन निंदायी जास;
क्षोभ न पामे मन तनक, वसता निजगुण वास. ४

रूपी चंचळ देहमें, अमूर्तीक ए मूंझे रे;
अणु निष्पन्न शरीरने, ज्ञानी पर करि बूझे रे. ९ मा०
जन्म मरण दुष उपजे, अन्य सहू ए संगो रे;
चळ पुद्गलथी ऊपनो, तिणसुं केहो रंगो रे. १० मा०
एह शरीर न ताहरो, तो किम परजन घन्नो रे;
पंच द्रव्यनो संगते, चेतनथी सहू भिन्नो रे. ११ मा०
मित्र स्त्री सुत संपदा, मात पिता वळि देहो रे;
ज्ञान भाव चित्तमें धरी, भिन्न गिणे सहु एहो रे. १२ मा०
मिथ्या बंध्यो तूं भम्यो, भवमें दुष बहु पायो रे;
निश्चल भ्रम विण शाश्वतो, हिव चेतन घर आयो रे. १३ मा०

दूहा.

मंदलीक महलो सदा, जडविभर्यो ए देह;
शुक्रादिकथी ऊपनो, जाणि दुगंछा गेह. १
वसा मांस लोहीभर्यो, चूनो कीकस थान;
नशाबंध दुरगंध ए, इणरो किसो वषाण. २
नवे द्वार झरतां रहे, दुरगिगंध क्षण नीत;
रोग जरा कृमि गेह ए, इणसुं केही प्रीत. ३
जे देषे इण देहमे, वेह दुगंछा गेह;
धोवे ते जटथी तिको, सहज विगाडे एह. ४

ढाल–धरम हीये धरो. एहनी.

एह शरीर जे आपणो रे, वांटआउ धर्म न होइ;
तो मार्गी कृमि कलग्यां रे, राषि न सके कोयो रे. १
भावना भावीये, भावन दिव सुष लायो रे;
गुणनिधि सम अछे, इम आपे जगतापो रे. २ भा०

प्राण इंद्री वली देह संवर करी, रोकि संकल्प मन मोह भंजी;
धन्य निज ध्यान आनंद आलंब धरि, शुद्धपद आतमनी ज्योति रंजी. ७ म०

हेय आदेय त्रिभुवन गिणे साधु जे, क्षय करे पुण्यने पाप केरो;
आत्म आनंद स्याद्वादथी विषयने, विष गिणी भंजता कर्म घेरो. ८ म०

कार्य संसारना साधता ज्ञान विण, जगतमें एहवा बहुत दीसे;
काटी भव दुख बलि ज्ञान जल झीलता, एहवा साध दोय तीन दीसे. ९ म०

वडे मासादमें नरम-पल्यंक परि, राति जे पोढना नारिसंगे;
तेह गिरि कंदरा कठन शिला उपरे, रहे नित जागनां ध्यानरंगे १० म०

चित्त थिर रागने द्वेषनो क्षय करी, जीप इंद्रीय आरंभ छोडी;
ज्ञान उद्दीपना थकी आनंदमय, देपि निज देवने कर्म मोडी. ११ म०

छोडि परसंग आत्मा भणी सिद्ध समा, ध्यावनां सुमतिसुं मोह वारे;
आत्मस्वभावगत जगत सहु अन्य गिणि, ज्ञाननिधि मोक्षलक्ष्मी सुधारे. १२ म०

तत्त्वचिंता करे विषयने परिहरे, स्वहित निजज्ञान आनंद दरीयो;
सुमतिसंयुक्त तप ध्यान संयम सहित, एहवो साध थकीर मरीयो. १३ म०

एहवा पंडित वचनरचनापकी, निज गुणे आत्मने बहुत टेमाः
शुद्ध अनुभूति आनंदसूं राचीया, कटे भववास दुर्लभ तेमा. १४ म०

एहवा योगधारी जिके मुनिवरा, ध्यान निश्चल नि वेदना गं;
ध्याननें योग अगयोग्यनो ए कथा, ग्रंथ अनुसार मुनिचंद भाखे. १५ म०

वर्ने हनि तेन बडे. उत्पधनो हुनीगाव:
नर्हे हून मेनरुनी. मेनरुनाव रेहाप.
अवेिल्ल नय दने हर्दे. हनिमन विनेहाव:
देन हुन्द मेठने. निवहेनन्हो डाव.
मनेहे आध्रव ओऊे. ठे देवे हुनीदेव:
मोवतिरर्न वसोहै. बोन देके वर्ने नेव.

राग–बहिलो राहि न मकी तिनरुजी.

नहि किल्प मनतिनवको हे. मनविके मनपोव:
पिढे नन आजाने हे. मनल हर्दे उमपेव. १
दिने मेक भवन मव.
मेदे देके देह भौविक हे. दुहे द उनन रात. २ वि० मं०
अवेिल्ल दिव नर्दे हुनी हे. विरी हुवक पन:
मल न पने दे नहीं हे. बलक ममव सुजान. ३ वि०
होदे निरन्तर दाननें हे. दोंन मन विटूर:
देह हुतीयन जानीवें हे. मेक पन तत्व. ४ वि०
मन हुनी मन पेन हे हे. हरि दाम मम मन:
होक पन जम भवन हे. तव मेवनन आत. ५ वि०

दूहा.

वने तेहे विनाने नहन. बनन मन अंहुग:
हुनिन मते भवन. निर्हन नन मनह. १

राग–नेहोत.

वान आवन हुनेहनी हे. हरि निर्हन देव:
सदे मदान हुनेमें हे. निर्मोह मर वरे.
मविहनन निर्हन भवन पहू. २

संयोगनि ममता बहु दुःख देवे, नाम धरे बहु कर्म विशेषे, सां०
विकलेंद्री बळि पांचे प्रकार, चित विना तिरि गति दुःख अपार ५ सां०
ज्ञान अंश संकोच विचारी, कर्त्ता भोक्ता ए तनुधारी; सां०
जघन्यो उपकाल अनादिन, जीव कहे तिम कारण पीन. ६ सां०
एक भवी मांही दश पर्यन, जीव भेद जाणो मतिवंत, सां०
शुद्धनये करि एक महंत, निज निज भावे द्रव्य अनंत. ७ सां०
जीवराशि सहजे द्विप्रकारी, भव्य अभव्य रूपे गुणधारी, सां०
परमातम सिद्धिने जे वरिस्ये, भव्य कह्या ते श्रीजगदीशे. ८ सां०
कदापि न जाणे आतमराजे, तेह अभव्य कह्या जिनराजे. सां०
तीन काल ए भवमें थाय, न मिटे जनम मरण दुःख जाय. ९ सां०
भव्य मिटे शिवपुरने योग, दूर करी सब कर्म कुयोग. सां०
अनादि संयोगी कर्मने जाण, कनकोपल जिम जाणि सुजाण. १० सां०
भव्य भली भव सांत अनादि, अभव्य भली ते अनंत अनादि. सां०
जीव समास अने गुणठाण, भेद मारगणा जाण. ११ सां०
गुणठाणादिक गणाइ थानि, संसारीनी दशा वखाणि; सां०
शुद्धनये करि ए सहु हेय, एक शुद्धता छे आदेय. १२ सां०

दूहा.

अजीव नाम बीजो कह्यो, तेहना पंच प्रकार,
धर्म अधर्म नभ काल, अरु पुद्गल पंचम धार. १
[illegible]
[illegible] २
पंच अचेतन जीव बिन, [illegible]
[illegible] ३
[illegible]
[illegible] ४

ढाल—रमणि आठे अति भलि पृहनी.

जिनमतिमा जिनसरीषी वंदनीक.

जे पड्या विमल धर्मेद्र, इण चराचर जगमांहि;
ते सुप अमृन पूर्णपो, पोषे जगत उछाह. १
भविषण भावसूं धर्म धरो धरि हेत ओलखी.
घन वायु सूरज चंद्रमा, क्षोणी समुद्र सुरेंद्र;
ए जगत उपगारी कह्या, रक्षक धर्म नरेंद्र. २ भ०
ए सहू जनने पालिवा, दापीया अधिके तेजः
उपगारी निश्चय कह्यो, जिनवर धरमसुं हेज. ३ भ०
जगमांहि भुक्ति अरु मुक्तिनो, कारण कह्यो इक धर्म;
पाप नमे धर्मानगा, देवादिक गति धर्म. ४ भ०
गुरु मुक्ति स्वामी बंधु धर्म, सरणो अनाथां नाथ;
ए नरक पड़ता जीवने, काढे घाली बाथ. ५ भ०
पड्तां थकां प्राणी भणी, नरकांधकूप मझारः
ए धर्म अवलंबन अछे, शुद्ध स्वरूप उदार. ६ भ०
ए धर्म अतिशय बहु भर्यो, कल्याणमाला गेह;
सर्वज्ञ वैभव वे सही, ए नर विधन अछेह. ७ भ०
साथे रहे ए एह हित, छ एह रक्षावंत;
ऊधरे जन्म कर्दमथकी, थापे पंथ महंत. ८ भ०
जिनधर्म सरिषो को नहि, भवमांहि गुणनो ठाम;
आनंदपंकजरूप ए, पूजनीक हितधाम. ९ भ०
अहि अनल विष व्याघ्रादियी, गजराज राक्षस घोरः
ए धर्म टाले सहु भणी, राजादिक भय घोर. १० भ०
ए धर्मशक्ति न कही सके, सुरपति अहिपति कोइ;
सुहडे थकी धर्म सहु कहे, तत्त्व न जाणे न लोइ. ११ भ०

[illegible] જી, [illegible],
[illegible] જી, [illegible]. ૭ મ૦
[illegible] જી, [illegible].
[illegible] જી, [illegible]. ૮ મ૦
[illegible] જી, [illegible].
[illegible] છે જી, [illegible]. ૯ મ૦
[illegible] જી, [illegible].
[illegible] જી, [illegible]. ૧૦ મ૦
[illegible] છે જી, [illegible]
[illegible] છે જી, [illegible]. ૧૧ મ૦
[illegible] અછે જી, [illegible]
[illegible] જી, [illegible]. ૧૨ મ૦
[illegible] જી, [illegible]
[illegible] જી, [illegible]. ૧૩ મ૦
સમકિત [illegible] જી, [illegible],
[illegible] છે જી, [illegible]. ૧૪ મ૦
સમકિત વિન કિરિયા કહુ જી, હેય અછે [illegible]
[illegible] અછે જી, સમકિત [illegible]. ૧૫ મ૦
સમકિતવાસી તે અછે જી, [illegible].
જ્ઞાન [illegible] વિના જી, [illegible] નહી હોય. ૧૬ મ૦
અનુપમ સુખનો ગેહ છે જી, [illegible]
ધર્મરાજ પામી [illegible] જી, [illegible]. ૧૭ મ૦
હેય ઉપાદેય જાણીને જી, જાણીઇ નિજગુણ [illegible]
નિત્ય અબાધિત પામિસે જી, [illegible]. ૧૮ મ૦

मही पर्वतनी पुंठी ए, पंथेंठी निर्बंध.
नर नव गति प्राणी रहे ए, पाप पुण्यने बंध.
लग्भट पुन रात्काटिबे ए, पामे उत्तम योग:
बालस्नारी स्वादे रत्या ए, आठ वांध न योग.
विषय मर्ग सम अतर ए, पुण्य पाप समान:
निश्चय मयकलो नवि फर्ह ए, तो पुण्य मद सहु ज्ञान.
दर्शि दाल्भ जिन धर्म नहीं ए, ए बर्व प्रमादनी [illegible]
गमन सह कप्रा नहीं ए, मग रर्ह किरयात.
पाप सह पाके थर्ह ए, मन पाहंद देवाति.
नहि जिनेश मणिक धर्मा ए, आगर अपनी धार्टि.
आत्म भगवल किरया ओटे ए, आगमनाम्बा मर्यादा:
ज्ञान विना दुर्लभ ए, जिन भावे धर्म डीव.
जिन न भवउदधिने ए, नमें थोहिलो नहि:
स्वतउर्धि पहले आगले ए, बोहिलो लेम पहार.
सुगम मकर प्रभु जननी ए, अहि–सुर–नर–पति ग
धन धन ज्यो मुन गोहिला ए, दुर्लभ बोधि नसाय.
ज्ञानी भावना भावतो ए, पामे अविचल गल:
मोह मगादिक ध्रव गया ए, ज्ञान भाव पुनि भाव. १
पूरणी द्वादश भावना ए, निश्चय चित्त दाना:
जे चित्त मंगल लाग्यो ए, ते धरे भावना प्यार. १
मनन हृदय योगीनो ए, भावना बंध उदार;
शुभचंद्राचार्यदे कह्यो ए, भावनानो अधिकार. १२
देवचंद कहे संक्षेपे ए, ज्ञानार्णवे कहि नाना;
माहात्म्य शुभ भावना तणो ए, स्वंद घट्टो प्रमाण. १३

इति श्रीज्ञानार्णवे योगप्रदीपाधिकारे पंडितदेवचंद्रविरचिते
भाषाबंध–द्वादशभावनाप्रपंच–प्रथमखंडः संपूर्णः ॥ १

ज्ञान सुधारस पान करी तुम्हे रे, भाजो भवदुखराजि;
भवसमुद्र तरेवाने मानीया रे, माहां ध्यान जिहाज. ३ आ०
कर्म घणांनी नाश कहे मुनि रे, तेहनो साधन ध्यान;
छोडि कल्पना जग्जालसे भजी रे, ग्रहज्यो ध्यान सुज्ञान. ४ आ०
संग अविद्या तजि भजि स्वच्छता रे, ज्युं पामे शुभ ध्यान;
जन्म जलधि तारक ए जानना रे, ध्यानरूप कर मान. ५ आ०
ध्यान कहूं जो तुज विवेकलो रे, पयो हुवे थिर ठांउ;
मोहनिद्रा जो जाग्यो अछे रे, तो ध्यान सुधारस पीउ. ६ आ०
बाहिर अंतर पर मूर्छा अछे रे, विषय प्रमाद निवार;
तत्त्वरूप सुधारस आदरो रे, आनन्दध्यान उदार. ७ आ०
रागादिक मन जो तुज क्षय गया रे, तो थरि ध्याननो व्याप;
संवेगादिक योग्य थरि थशे रे, न बने शुद्ध ए आप. ८ आ०
काम भोग बहुनी ममता टले रे, ध्यान योग्यता थाय;
जन्म मरण दुखनो जो उभग्यो रे, तो थरि ध्यान उपाय. ९ आ०
चित्त पवित्र करे दे मोक्षने रे, योगी गोचर ध्यान;
ज्ञान ज रूपी मारक ज्ञाननो रे, साम्य रूप निज ज्ञान. १० आ०
के संक्षेपरुचि विस्ताररुचि रे, चित्र विचित्र प्रकार;
दाख्यो बहुनाहि संक्षेपथी रे, आतम तीन प्रकार. ११ आ०
पुन्य पाप उपयोगनी शुद्धता रे, दाख्या तीन प्रकार;
पुन्य शुद्धउपयोगथी ऊपजे रे, ध्यान द्रव्य सुविचार. १२ आ०
मिथ्या पाप कषाय अनादिथी रे, ऊपजे ध्यान अशुद्ध;
रागादिक क्षय आतम शांतता रे, हुवे शुद्धातम शुद्धि. १३ आ०
दिव्य सौख्य जन ध्यानथकी लहे रे, अनुक्रम तो शिव थान;
दुष्ट ध्यान दुर्गतिकार अछे रे, अंत कटुकफल मान. १४ आ०

अज्ञानी [illegible] करै, ज्ञानी [illegible]; भ०
कोटि [illegible] कर्मने, क्षणमांहि आगे अंत. ७ भ० शु०
[illegible] क्रिया [illegible], ज्ञान विना सहू झुठ; भ०
[illegible] कर्मने पूठ. ८ भ० शु०
[illegible] हणे तिमिर रवि एह; भ०
[illegible] दीप गुणगेह. ९ भ० शु०
[illegible] दिकथी सीम; भ०
[illegible] चीम. १० भ० शु०
[illegible] नहि; भ०
[illegible] ११ भ० शु०

[illegible]

[illegible] मुनिंद;
[illegible] जिनगुण चंद. १
[illegible] जिणंद;
पंच महा[illegible] गुणवंद. २
[illegible] त्यागी;
[illegible] जिनवर [illegible] ३
[illegible] काया [illegible] ४
[illegible]

ए तो गृहना धंधा लोभमें, पर आतमाए दुखधाम रे; भ०
खोलंगे गृहवासमें, न हुवे आतम हितकाम रे. ४ भ०
एनो नित नित चिंता नवनवी, मिथ्या अज्ञाननी अंध रे; भ०
अनल समें गृहवासने, किम थावे नित्य निज गुण संधि रे; ५ भ०
एनो धूमा आपदपंकने, रागज्वरपीडित एह जी; भ०
परिग्रहभाव डस्या थका, नवि पामे ज्ञान अछेह रे. ६ भ०
हित अहित आण्या विण आपनें, बंधावे गृहीस सदीव रे; भ०
बंधे निज कृत पापथी, जिम कुलिया बड जीव रे. ७ भ०
सेना राग वैरी तणी, विण संयम जीपे कोण रे; भ०
जिन संगे निरधर वडे, विण आगे मन तो गौण रे. ८ भ०
गगनकुसुम खरशृंग जो, गृहने होवे तो ध्यान रे; भ०
न हुवे गृहवासे वस्यां, निरखां काळ देश वळि थान रे. ९ भ०
सुपने पण मिथ्यामती, न करी सके ध्याननी सिद्ध रे; भ०
स्वेच्छा दृष्टि विकल थकी, देखे ते द्रव्यनी रिद्ध रे. १० भ०
मत पाषंड कदाग्रही, जिनलिंगी तो पिण मूढ रे; भ०
धर्म अनेक द्रव्यां तणो, नवि जाणे पडिया रूढि रे. ११ भ०
केइ अनित्य आदे वदी, केइ आतम नित्यरुप रे; भ०
मिथ्यात्वी जाणे नहीं, ध्रुव अध्रुव लोक अनूप रे. १२ भ०
भावना ध्येय जाण्या विना, दुखरूपी ध्यान अभ्यास रे; भ०
किरियावादी एक सौ असी, सतसठि अज्ञान निवास रे. १३ भ०
चोरासी अक्रियमत तणा, बत्रीस विनयमत धार रे; भ०
सिद्ध माने इक ज्ञानथी, ज्ञानवादि मतिनो सार रे. १४ भ०
के सिद्ध कहे दरसणपकी, काळ सहु थीजा छोड रे; भ०
के चारितथी सिद्ध कहे, छोडी दे ज्ञानरी जोड रे. १५ भ०

अज्ञानी आश्रव करे, ज्ञानी संवरवंत; भ०
कोटि भवार्जित कर्मनो, क्षणमांहि आणे अंत. ७ भ० गु०
तप जप ध्यान क्रिया जिको, ज्ञान विना सहू छुट; भ०
ज्ञानी ज्ञानबले करी, देवे कर्मने पूठ. ८ भ० गु०
शिवमंदिर पिण ज्ञान छे, दुरति तिमिर रवि एह; भ०
व्यसन विषय घन वायु ज्युं, तत्त्व दीप गुणगेह. ९ भ० गु०
भव वनमय बन्धन पड्या, क्रोधादिकथी सीम; भ०
मोहनीन अज्ञानथी, रडवडे चौगत सीम. १० भ० गु०
ज्ञानउ य निज गुण लहे, भंजी कर्म नरिंद; भ०
शुद्धनीति शिव निग्रहे, देवचंद्र सुपकंद. ११ भ० गु०

दूहा.

हिव चारित गुण वरणवुं, जसु सावे मुनिइंद;
परपुदगलनो त्याग मति, ग्रहिवा निजगुण चंद. १
सामायिक पण ग्रहभेदथी, चारित कह्यो जिणचंद;
पंच महाव्रत सुमति पिण, तीन गुपति गुणवंद. २
हिंसाऽनृत चोरि विरति, मैथुन परिग्रह त्यागि;
व्रत पंचे जिनवर कहे, अक्षय शिवसुखमाग. ३
भाषा मन काया थकी, चर थिर सगला जंत;
तेहनणी रक्षा करे, तेह अहिंसा संत. ४
तेव तृष्णा हणीयां विना, अज्ञानीने बंध;
ज्ञानी संवर भाव सुन, सदा हुवे निरबंध. ५
संरंभादिक तीन तिग, जोग करण त्रय वेद;
च्यार कषायथकी गुण्या, हिंसा–अठ सत भेद. १०८ ॥ ६

ढाल—[illegible] मन मीन न लागे आणी.

पंचमांहिन एम छेह, पंच्या घर वास उमेह;
बिन कीया इंद्रियदमन, नहिं जाणें अनवधान.
बिन धंध्या धंदहीन, एकलो बिन ज्ञाननिलीन;
निर्वेद जेम निर्दिन, बिन धर्म निरगुण धीन. २
ते मोहकर्म लवलीन, मन ध्यान स्वार्थी हीन;
पंजर पाने हूइ, बिन मावे ध्यान ते केइ. ३
नहि हवे जे मन वश, जे गमा इंद्री गमा;
ते भारी कर्मी भवे, ते निज गुन ध्यान न धांइ. ४
तनु मनमें दीने ध्यान, बिन क्रीया अन्य निहाट;
ते करीया करे जे मान, ते नावि न सकै ध्यान. ५
बहु पाप अज्ञान लीन, अज्ञानवसें करि मीना;
वहि मोह निद्रामां सूत्य, अति मोग धारविजा लश्या. ६
ते राग पच्चांगी, शोभित भय सीधी अनंत;
निज स्वारथ साथि न जाणे, भव सारे ध्यान अपांते. ७
तना मन रिद्धिना लोभी, बहु पाप करे महारंभी;
निज देव मर्मी नहि जोवे, बिन काज ए नरभव खोवे. ८
आरंभ करि हिंइप, मारन उच्चाटन पेथ;
मन परी अनरनो थंभ, जे भावे ए आरंभ. ९
ज्योतिष वैदिक इत्यादि, मन रंग करे निजवादि;
निज देव न देवे मरे है, ते कान पड्या भटके है. १०
मुनिवेष धरि घनकाजे, बहु पाप करत नहि लाजे;
जिनमार्ग विगवे हास्य, ते पड्यो नरक अवश्य. ११
अज्ञानी मूढ संग, गहवान आपनो ढंग;
परतितिनी परने वंधे, तस संग न कीजे संध. १२

सर्व ग्रंथनो सार छे रे, जीवदयाव्रत एह;
जग माता जग सुषकरु रे, कृषि उपरि जिम मेह.
कृषि उपरि जिम मेह सुहावै, स्वर्ग मोक्ष सुख बीज कहावै;
व्यसन विषय दहवट्ट गमावे, जिन वरया धरम गुण गावै जी. ५सां.

सप्त द्वीप भूदानथी रे, जाय न हिंसा पाप;
स्वर्ण कोडि धनने सटे रे, प्राण तजै न को आप.
प्राण तजै न को आपणो लोक, स्नेहवसै हिंसा करै फोक;
सूल चक्र असि धनुष ए थोक, राषे देव तिके सुत सोकजी. ६ सां.

सुष आपे मार्यां थकां रे; पांमै सिवपुर वास;
तो हणि निज परिवारने रे, पांमै ते सुष पास.
पांमै ते सुष पास समाज, दीन अनाथ हणो किण काज;
हिंसाथी नभ सम दुष साज, हिंसा एह कही जिनराज जी. ७ सां.

ज्ञान ध्यान तप जप तणी रे, जीवदया कही माता;
दयावंत इंद्री दमे रे, लहै ज्ञान शिव साता.
लहै ज्ञान शिव सात दयाथी, चित्त कठोर मधुर रसनाथी;
ते पिण दाख्यो हिंसक साथी, छेज्यो भविक दया जय हाथीजी. ८ सां.

नरक लहै झष तुं दली रे, हिंसाने परिणाम;
संयमथी अधिकी अछे रे, जीवदया सुषधाम.
जीवदया सुषधाम अपारु, जन्म मरण भय नगीय निवारु;
शिवपुर मारग साथ ए वारु, पर तनु पीडा दुष नीकारुजी. ९ सां.

मानव पिण राक्षस समो रे, जे छे हत्याकार;
जीवदया माता समी रे, विद्यानी दातार.
विद्यानी दातार ए वाणी, अभयदान द्यो करुणा आणी;
आने संपत जेम न भाणी, ते न कही सके इंद्र इंद्राणीजी. १० सां.

राग द्वेष राक्षस भक्ति, भय नवि पामे जेह;
नारिथी मन नवि चळे, अक्षय निवसत गेह. ५
तप दीपकनी ज्योतिथी, बाल्या कर्म पतंग;
ज्ञान राज्य जय लोकनो, विलसे जेह निसंग. ६
तत्वो तत्वने पांडवे, उपशम रस भंडार;
लोक सर्व सुखकारते, मोह अगनि जलधार. ७
निज स्वभाव आनंदमय, शांत सुधारस टान;
योग महागज ओपने, अंतधारी तनथान. ८

ढाल—तार कर तार संसारसागरथकी. एहनी.

महा समधार सुखकार मुनिराय जे, ध्यान ध्याता भणी जोग पावे;
देह आधार संसारसुख निस्पृही, तेह जोगीश निज देव पावे. १ म०
शुद्ध ज्ञानसंपन्नथी शांत मन, थावर जंगम दया धारी;
मेरु जिम अचल आकाश जिम निरमला, पवन जिम संग विण
दोस वारी. २ म०
अभ्यसांग सुधकार उपदेशथी, देह शोभा तजी मोह सावे;
ज्ञान शक्ति करी आतम निज ओटवे, शुद्ध निज ध्यान ते मुनि
आराधे. ३ म०
एम निज देवने मोक्षपद पहचने, वही सोपानतम साधु सेवा;
ध्यान ते साधुने मोक्षकारन कह्यो, विमल विख्यात निज गुन वहेवा. ४ म०
दांत मन विहग इंद्री भणी जे दमे, ज्ञानना गेह पातक विडारे;
कर्मदल गंज ने चित निरमळ थया, एम जोगीश शिव मग
सुधारे. ५ म०
गिरि नगर कंदरा गेह शून्या शिला, पंजर, दीप मृग संग धारी;
ज्ञान उठ तप अशन शांत आत्मा थया, धन्य निर्ग्रंथ मुनि हित
विहारी. ६ म०

ढाल—इडर आंबा आंबिली रे. एहनी.

मोह वसें श्रवणे सुण्या रे, बोल्या दुपनो धाम;
ध्वज कोलक इण संगथी रे, इण भव सावे काम. १
चतुर नर परिहर वचन अलीक, ए तो दुषदायक तहतीक;
चतुर नर प० ए आंकणी.
झूठ कथकनौ मुष कह्यौ रे, नगरनि छार समान;
तिरिय नरय गतिमै भमै रे, पामै दुष विण ज्ञान २ चतुर०
शीतल चंदन चंद्रथी रे, मीठी वाणि सुहाय;
दव दाध्या वलि पालवै रे, वचन दाह न षमाय. ३ चतुर०
मधुर बचन जग प्रिय छे रे, कटुक सत्य पिण छोडि;
मधुर सत्य भापीतणे रे, दरसणथी सुख कोडि. ४ चतुर०
सुचिवादी नर जे अछे रे, सफल जनम तसु धार;
झूठा बोला मानवी रे, किम उतरे भवपार. ५ चतुर०
व्रत श्रुत संजम भारनौ रे, सत्य वचन छै कोष;
देव दानव न करी सकै रे, ते ऊपरि तिल दोष. ६ चतुर०
आनंद करिए चंद्रसु रे, पाय नमै जसु देव;
रूप जाति धन हीन ज्युं रे, तेहनें एह ज टेव. ७ चतुर०
तापस योगी मूंडीया रे, नागा चीवर धार;
कूड वचन कहता थका रे, ते छै पातककार. ८ चतुर०
बाधे धन परिवार जौ रे, तोप न बौलै अलीक;
अन्य पुन्य सहु तोलतां रे, तो हि न ए सम ठीक. ९ चतुर०
बहिरौ सठनें बोबडो रे, ज्ञानहीन मुख रोग;
योनि वली पर स्वाननी रे, पामै कूडनौ योग. १० चतुर०
सातादिक गुणगणतणो रे, कूड केर छे हांणि;
सुहणे संग न कीजिये रे, झूठ वचन दुष पांणि. ११ चतुर०

दूहा.

सम्यग दर्शन ज्ञान गुण, वलि बीजो चारित्र;
तीन मिल्यां चेतन भणी, शिवमंदिर मापति. १
कर्म कठोर ज तोडिवा, कारण एहि ज तीन;
ध्यानसिद्धि गुणत्रय सहित, निफल गुण त्रय हीन. २
रत्न त्रय विण ध्यान जे, चाहें मूरख कांत;
कुसुम आकाशे सिल कमल, वंध्या सुत दृष्टांत. ३
दर्शण जे रुचि तत्त्वनी, तत्त्वकथक ते ज्ञान;
शुद्ध द्रव्य श्रद्धान जे, ते समकित कहवाय. ४
सहज थकी उपदेशथी, मापतिकारण दोय;
क्षायक उपशम मिश्र ए, समकित त्रय विधि जोय. ५
पंचेंद्री परयापतो, संज्ञी जीव सुभव्य;
काल लबधि पाम्या लहे, समकित श्रद्धा नव्य. ६
सात प्रकृतिनो क्षय थयां, क्षायक उपशम थीय;
उपशमीयां क्षय उपशम्यां, मिश्र लहे तव जीव. ७

ढाल–धरम सुणी राजा प्रतिबूझो ए ढाल.

सांभल ज्ञानी समकित वानी, उपशम आस्तानी सहि नागी; सांभ०
द्रव्य तणा गुण जाण्या पांमे, दोष पचीस मल्या जे नामे. सां० १ आं०
जीवादिक सग तत्त्व पिछांणे, हेयादेयपणो जे जांणे; सां०
जीव अनंता निजपना धारी, एक सिद्ध बीजो संसारी. २ सां०
नित्य अनंत चतुष्टय धारी, जन्म मरणग दुख निवारी; सां०
निज आत्मीक स्वभाव वहंता, जयवंता इम सिद्ध अनंता. ३ सां०
त्रस थावर आदिक बहुभेदी, जीव संसारी ए अनिवेदी; सां०
भू आदिक थिर पंचधा जाणो, वली अनेक त्रस भेद वखाणो. ४ सां०

विद्या गरुवाई गमे रे, निज रक्षा नवि थाय;
सज्जन पिण निंदा लहे रे, तस्कर संग पसाय. ५ ध०
घात करे तृणनी परे रे, चोर भणी सहु लोक;
पंडित पिण मूरख हुवे रे, मुनि पिण पामे शोक. ६ ध०
घोर नरक दुःख वैरा सही रे, चोरी केरी बुद्धि;
एहनी संगति ते तजे रे, जे चाहे निज शुद्धि ७ ध०
गिरवर नगरन परवतमें पड्या रे, परधन लीजे नाहिं;
तृण सम पिण परवस्तुनी रे, मत मन धरजे चाहि. ८ ध०
शिव सुखनी जे चाह छे रे, रायण चाहे धर्म;
सुख चाहे इण परभवे रे, तो तजि एह कुकर्म. ९ ध०
विरति मूल यम साप छे रे, संयम दल सम फूल;
पंडितजन पंथी अछे रे, फल ते ज्ञान अमूल. १० ध०
धर्म वृक्ष एहवो दहे रे, चोरी मत मन आणि;
परउपगारी आदरो रे. देवचंदनी वाणि. ११ ध०

दूहा.

ब्रह्मचर्य पाल्यां थकां, ब्रह्म लहे योगींद्र;
ब्रह्मप्रपंच ते वरणवुं, धरज्यो ए ब्रत चंद्र. १
ब्रह्मचर्य जगे सत्य छे, मोटो महिमावंत;
संयम जीवन एह छे, धर्मवंत गुणवंत. २
दीन हीन आचार विण. रागी संके नवि तेह;
अंत विरस दुःखदाय छे. दशविध मैथुन एह
तनु शोभा रस सेवना, तीजो नारिनु संग;
अशुभ राग चिंता विषय, करी देवे [illegible]. ४
ज्ञाने आदरमान दे. याद [illegible]
[illegible] विना आगमन. [illegible] ५

सापडस्या सगवेग पीड्यी तनु जले,
काम तणा दस वेग ते गक्षा नवि चलै;
पहिला वावे चित चीय दरसण इच्छे,
मेल्हे तीय निसास तूर्ये ज्वर आग छे. ५

पंचम दाहे अंग रंगयी नवि जिमे,
सप्तम मूर्छावंत कि उन्माद आठमे;
नवमे प्राणसंदेह देह दसमे गमे,
एह उदययी चित्त तत्त्वमे नवि रमे. ६

मन संकल्प विकल्प जल्पयी ए वढे,
काम अगनि संताप हृदयपद ए कढे;
गिरवर गवर मूल गुहाश्रित जनतणा.
मदन उतारे मान इणे जीत्या घणा. ७

कामवशे स्त्रीदास मूंज राजा भयो,
माव मुंडायो सीस भोज घोडो थयो;
धीरज श्रुत चारित्त घटे इण संगयी,
वालो भविपण चित्त ए कंदर्परंगयी. ८

वेठां सुतां निस कुरंग खेलारसुं,
देह न पामे सुख मदनने तापसुं;
घन लज्जा कुलनास मरण देखे नहीं,
पीडित काम विकार शरण जोवे सही. ९

मून दैत्य ग्रह इःरव जितो नवि दे सके,
[illegible]·पीडा [illegible] जगटे थके;
[illegible]नी [illegible] ते गमे,
[illegible] दढे [illegible] गुण ते समे.. १०

दूहा.

गुण पर्याय अनंत छुन, अंश ज्ञान उपयोग;
कीजियहल मन भावनें, जांणे जेह अजोग. १
कर्मग्रहने टालिवा, करिवा निज गुण ध्यान;
लोकालोक प्रकाश कर, जिनवर दाख्यो ज्ञान. २
मति श्रुति अवधि पर्याय मन, तीम सकल छत्रीस विध;
मतिज्ञान तूं जांणि. ३
अंगाविक बहुभेदथी, शब्द रूप श्रुति देषि;
देव नारकनें भवनिज, अवधिज्ञान संपेष. ४
गुण प्रत्यय नरतिरियमें, छहिह अविधि अनेक;
ऋजुमति विपुलमती गिण्यो, मनपर्यव दुय भेद. ५

ढाल—सुवर्त मोयन हिलरो पहुनी ॥

अनंत द्रव्य पर्यायनुं, प्रगट क्षायिक गुण धन; भविजन
... प्रकाशक नित्य छे, निरमल ज्योति अपार. १ भ०
... ज्ञान आदेय छे, आपदशा गुणगेह; भवि०
... टालिवा मन चन्चल, निजरूपमां गनरेह. २ भ० शु०
लोकालोक समस्त ए, ज्ञान अनन्त अंश; भ०
... दर्शन रवि चंद्रनी, ज्योति हतु निरंश. ३ भ० शु०
... परम उदिता, सम्य सकल ज्ञान. भ०
... रिता हतु अनुभवे, ज्ञान अनुभव मानि. ४ भ० शु०
... दृष्टि हुई, धर दुर्लभ मन नयन; भ०
... इन्द्रिय भली, ज्ञान हवे दशरूप. ५ भ० शु०
... निज आतम हतु, दर्शन नय उप दर्शन भ०
... वेदनाजनो. आत्मस्वरूप कीन. ६ भ० शु०

गुणगण्ह जाने नहीं, राग्नां गीनी यान।
नागिन पाया दुग नर, पाः कीपां खीजान.
उगनिगाहली निग अविर, पाडे नारीगंग।
नीच धीव चिन अति गुटिल, नेह सांडिनो रंग.
निज पुत्र गृह मंत्री करे, धूतनि ए नारि।
हृदय मट इत्यादि बहु, दूराग नारीमडार.
पिता पुत्र पति छंडिने, रमे अन्यसूं जाय।
नां आगे मन पंच ए, सागरा दुरा थाय.
जे काम्न नागि करे, वरि न मंगे ने कोय।
निश्चय नहा ताने कहु, [illegible] होय.
दान शील महता गुनाम, निन दिन करे जाद.
कुच्यो बाद दृग नहि करे, जे नारीनो धाय.
नरक दंडे वानां कीधां, नीआदीगन टेव।
नां विशाय उपि नहि करे, मेदनी थी बो हेत.
पंदलो जन दूर कीजने, [illegible] जाना नारि।
[illegible] पानगी, वीच न पाने पाक.

हाल—काफीनी.

[illegible] फिर वीनवी रे, [illegible] नुं काणि रे. ए नारी
[illegible] कारणुं रे, केडे [illegible] रे. ए नारी
[illegible] फिर नगर मट गडी, ए नो [illegible].
ए के फिर [illegible], नुं नहीं रे नुं नहीं
[illegible] रंग रे. ए नारी॰ [illegible]
[illegible] फिर [illegible] रे, नी रंगे [illegible] ए नारी
[illegible] रे, केडे न नहीं फिर देव रे. ए [illegible]

दूहा.

[illegible]
[illegible] १
[illegible]
[illegible] २
[illegible]
[illegible] ३
[illegible]
[illegible] ४
[illegible]
[illegible] ५

[illegible] जिनतें मानों उझल ॥

[illegible]
[illegible] १ अ०
[illegible] टे०
[illegible] २ अ० टु०
[illegible] अ०
[illegible] ३ अ० टु०
[illegible] अ०
[illegible] ४ अ० टु०
[illegible] अ०
[illegible] ५ अ० टु०
[illegible] अ०
[illegible] ६ अ० टु०

रावण पिण नरके गयो रे, लोभाणो इण नारि रे; ए नारी०
नारी भय कलि मूल छे रे, पापशोग दुपकारि रे. ए नारी०
नारी दोष अपार छे रे, कविजनथी न कहाय रे; ए नारी०
भवपासी जन बांधवा रे, ए नारी०
दृष्टे देखे अवरने रे, मुप बोलावे ओर रे; ए नारी०
सांग करे किण औरने रे, मन राखे बीय ठोर रे. ए नारी०
सुरपति सुरगुरु नवि कहे रे, नारी दूषण छेह रे; ए नारी०
नारी दुप क्यारी गिणी रे, सुगुण तजो स्त्रीनेह रे. ए नारी०
तापलता दुपकाल छे रे, विषय जलधिनी वेलि रे; ए नारी०
नरकपोलि विषनी कुडी रे, परिहरी स्त्रीनी केलि रे. ए नारी० १
कुडकपटनी कोथली रे, छोडो नारीनी टेक रे; ए नारी०
निजकुलमंडन काढुस्यै रे, शीलवती स्त्री एक रे. ए नारी० २
निजपदंत पंडित सती रे, पृथ्वीनें स्त्रीकाय रे; ए नारी०
पंडित निस्पृह सम धणी रे, ब्रह्मवती मुनिराय रे. ए नारी० २
अनुभवस्वादी जे हुस्ये रे, ते तजिस्ये स्त्रीपास रे; ए नारी०
देवचंद्र इम जाणिने रे, मति करी स्त्रीवेसास रे. ए नारी० २२

दूहा.

कामदाह मैथुनथकी, कहे उपशमे जेह;
आगि बुझावे मूढ नर, अन्तरनी तेह. १
नरकद्वारथी निंद्य छे, नारीनो भग एह;
मूढ काम ताप्या पडे, नारीपंके तेह. २
स्त्रीसुप मनमान्यो तुम्हे, ते अंते दुपगेह;
दृषद कनकमे यो गिणे, मैथुनसुप तिम तेह. ३

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], हरि [illegible];
[illegible] [illegible] हे, हुए अनंतनी धाम.	७
[illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] निगोदे [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] करे [illegible].	८

राग—[illegible].

न [illegible] [illegible] [illegible] गमे रे, [illegible] हे [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] रे, [illegible] [illegible] [illegible].
रे [illegible] [illegible] रे [illegible], नव नव [illegible] [illegible] [illegible];
न [illegible] [illegible] न [illegible], हुए अनंतनंत [illegible] जी.	१
[illegible] [illegible] रे, [illegible] [illegible] [illegible],
न [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] फेरवी रे. [illegible].
[illegible] [illegible] गमे रे, [illegible] [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible], निज [illegible] [illegible] [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पारे जी. २ [illegible]०
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रे, दे [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रे, [illegible] [illegible] नाम.
रे [illegible] नाम हे [illegible], [illegible] हुए [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जी.
[illegible]० ३
[illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] रे, [illegible] [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible].
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], मोह [illegible] [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible]० ४ [illegible]०

मैथुन सेवंना थका, जीव मरे लप कोडी रे भाई;
महानिसीथे दापीया, योनिलिंगने जोडी रे भाई. ९ ना०

दुरगंध मलधर भयकरुं, मंडूकी आकार रे भाई;
धम्मंध नारीतणे, गम किसो विण सार रे भाई. १० ना०

सर्व अशुचिमय निंद्य ए, दुरगंध नारी एह रे भाई;
गचे मूरप मानवी, पंडित विरमे जेह रे भाई. ११ ना०

कथितमृतक गंध जोनि छे, कृमिकुल पूरण एह रे भाई;
क्षर मूत्र झरती रहे, तिण उपर स्यो नेह रे भाई. १२ ना०

ए सरूप जाणी तजे, पंडित स्त्रीनो संग रे भाई;
मदन मोह झीपी लहे, देवचंद्र पदरंग रे भाई. १३ ना०

दूहा.

शिव प्राप्ति चाहे जीके, ते छोडे स्त्रीरंग;
असनि जेम गिरि गेडवे, तिम ज्ञानी स्त्रीसंग. १

व्रती तपस्वी नारिने, संगे लहे कलंक;
घोर तपीने चालवे, नारी ए निःसंक. २

व्रत तप संयम गुण सरव, स्त्रीसंगे क्षय थाय;
नारीमुख दरसण थकी, संयमगुण गल जाय. ३

संयम तां लगी थिर रहे, जां न मिले स्त्रीयोग;
माषणसम जनमन गले, वनिता आग संयोग. ४

काम ववे स्त्रीसंगथी, ज्युं अपथ्यथी व्याधि;
श्रुतथिर मनने चालवे, नारी वडी उपाधि. ५

तत्त्वदृष्टि तां थिर रहे, ज्यां न लगे [illegible]
तन मन दहे संकल्पथी, आदरियां उपराग. ६

तजि प्रमाद समभाव भजि, हरि हिंसा-परिणाम;
हिंसा भवभ्रमकार छे, दुप अनंतनो धाम. ७
हिंसक जावे नरकगति, वलि निगोदे जाहि;
क्षमा ध्यान तप फलतणो, नास करे क्षणमांहि. ८

ढाल—चंद्राउलीनी.

दान ज्ञान फल सहु गमे रे, हिंसारत वे जीव;
अनुमत देता लोकने रे, नरके करस्ये रीव.
नरके करस्ये रीव रे भाई, नव नव पीडा सहस्ये लाई;
हिंसा करतां धर्म न थाय, दुप अनंतानंत नीहाइ जी. १
सांभल समकिती रे, एनां दुरगतिनां दातार;
शिव मारग वट पार, दापी केवली रे. आंकणी.
निस्पृहता महला गमे रे, उदासीन तनु ताप;
हिंसकने सहु धूल छै रे, ए करे कुल संताप.
कुलसंतापे कीर्ति गमावे, निन प्रति विघन कोडि उपजावे;
शुभ मंगलने दूर नसावे, गति निगोद लघु आयुप पावे जी. २ सां०
शिला चढि जल तरवा वंछे रे, ते मूरखनो स्वामि;
धरम बुद्धि प्राणी हणे रे, कहे शास्त्रनो नाम.
कहे शास्त्रनो नाम ते गोला, परभवमें दुप सहसे बहुला;
चारित्र ज्ञान दया विण निचला, नासे हिंसाथी जिन शुकला जी.
सांभली० ३
भलो दया-अक्षर भण्यो रे, पापशास्त्र रुप कुड;
जीव हणे ओषध भणी रे, शुभफलने दे धूड निरंतर.
नासे शील दया शम शुण वर, मोह कषाय वधारे बहुपरि;
हिंसा जीवदया अंतर, जी० ४ सां०

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

अभयदान जंतु जिम दीधो रे, दीधा दान अनेक;
जिम जिम करुणा थिर हुंइ रे, ओर तेम विवेक आणो.
बहु परथां करुणा न विणसे. जीवदयाथी गुण जन सोहे;
अनेक भवार्जित कर्म निवारे जी. ११ सां०
भवमें बहु बहु दोहग जे रे, ते हिंसाथी होय;
ज्योतिर्मे रवि शशि यथा रे, सुमनसमी हरी जोय;
सुमनसमें हरि जोय सवाई, गिरि मंदिर तरु धन्न धवाई;
देवचंद जगनाथ वडाई, तेम दया धर्म सहुनी मांहे जी. १२ ग०

दूहा.

हिव बीजो मन सांभलो, जिनगुणनो दातार; १
सत्य वचन पालय तुम्हें, पालो संजम धार.
जीवतणी रक्षा भणी, मुनिवरने जिन साथ; २
जीव हणाय जिण थकी, दूर टाळ ते वाच.
तदपि जे दुख नवि गमे, तेह गमार एह; ३
हिंसा आकुलता रहित, सत्य वचन गुणगेह.
वतो मोनपणो भलो, जो बोले तो सत्य;
भव कारण वच झूठ ए, भविपण टाले नित्य.
मिथ्यात्व कदाग्रही, बोले झूठ खल लोप;
स्याद्वाद गुणि धर्म जे, दाखे मुनिजन सोय.
झूठ वचन विष सम कह्यो, मार भव भव एह;
असत्यो सुख कोई नहीं, बचे झूठथी जेह.
कहेवो सुणवो जिण नहीं, वचन पापनो धाम;
धर्म विरोधक नवि वदे, गुणी वचन बेकाम.
धन्य विवेकी ज मुनि थका, सत्यवचन भापंत;
जिन शासन कारिज पड्यां, मुखथी झूठ कहंत

ढाल—राग गोडी जीव जा गोरी एहनी.

दुप कारण परसंग छे, सुण मांणी रे, रागादिकनो हेतु.
समझी जिन वाणी रे;
सत्य क्षमा संतोपता, सु० नासकरण धूमकेतु; सम० मनआणीरे;
नाणी तजी धन संग. सम० ए आंकणी. १
देह पेह दुप गेह छे, सु० पंडित जाणे असार; सम०
लोभ वधे धनवृद्धियी, सु० वाधे कामविकार. सम० २
पर संगे विद्या घटे, सु० उवेडे सुविवेक; सम०
काम भोग अहि विप वढे, सु० परिग्रहकेरे टेक. सम० ३
धन संगे तृष्णा वधे, सु० मोह गांठि दृढ होय. सम०
उपसर्ग सहि न सके मुनी, सु० सुरते कायर सोय. सम० ४
परिग्रह संग न जे तजे, सु० निजगुण घातक तेह; सम०
संजम जप तप श्रुत घटे, सु० परिग्रहसुं जसु नेह. सम० ५
पुण्यकाज मनशुद्धिने, सु० धान करे छे एह; सम०
मूढ न जाणे धर्म थकि, सु० वाधे कर्म अछेह. सम० ६
शीत थाय रवि गीरगिडे, सु० तो संवर परसंग; सम०
कर्मतिको किम हणी शके, सु० जे नवि तजे कुसंग. सम० ७
कामराग प्रसंगनो, सु० धन जडतानो गेह; सम०
लव धन विण जडजन भणी, सु० लावे दोप अछेह. सम० ८
निसंगि नीभय सदा, सु० धनधारी भयवंत; सम०
मीन रहे सुत भ्रातनी, सु० राज चौर स्त्री नित. सम० ९
कर्म वधे धन आसयी, सु० भव भव दुप भंडार; सम०
निरसंगी ध्यानी परो, सु० आतम संवर धार. सम० १०
धन आशा जेहनी टली, सु० ते पामे सुप पेम. सम०
जे सगंन ए जन करे. सु० वाधे दुप जन नेम. सम० ११

सिपावसल सम भोग ए, आदि रम्य दुःख अंतः
दोष दसे प्रगुन भोग तजि, रच महीं मतिमंत. ६
प्रगुन वांक प्रकोपना, दोष जीव तजि नारिः
तत्त्वाग नीच्यो धस्यो, न रुचे कामविकार. ७
शीतम गविर्ग निज अधिक. उठे काम संतापः
गरत करे नत मन नहीं, वार्वार दुःख व्याप. ८
इम दिग एतसे जग लिनी, तजी जोगी हे ध्यान.
काम सरे मद गालिता. ग्रहि तुं गरुड सुज्ञान. ९

॥ नदी यमुनाके तीर उडे दोउ पंखीया. एदेशी ॥

एह मदन महाफन जगत जीतो जिसे,
मोटी धरनो शक्ति अवर नहु अवनिमेः
पांडे ए जगधाम काम संका नहीं.
एहवो घोर न दाव जाय जिणथी वही. १
कालकूट महाकृष्ट भर्यो औरव लगे,
कंदर्प विषनो नाग वरी नवि को गमेः
काम अगनि महाताप व्याप नर्तीया बहु,
पडे दीवा तनु कीच वीघ जग ए सहु. २
विमन धर मदनेशाने संगाने.
काम नाग दृग व्यापथकी तनु नीमने।
मंदनीक अहि दुर रूहि पापीक लहे.
मदन संताप्ये जाय मसहीर मेरुट सहे. ३
पावे ते मतिहीन दीन मन निज रहे;
वांछित धंदन काम मान फिरे नवि रहेः
देखन धावे ओर विहार रूप कहे.
दर्शित कंजर पार धारना हारुभे. ४

आशा विण सहु सत्य छे, श्रुत तप अने विवेक;
पाप तापना नवि मिटे, जो आशानल टेक. ६

ढाल—टोडरमल्ल जितो रे अथवा आदीश्वर तूठा रे. एहनी॥

निस्पृहता अमृतयकी रे, पावन करि निज चित्त;
भविक मन धारो रे, परिहर आश अनित्य सकल दुप वारो रे. १
जसु मन आशायी टल्यो रे, तसु फलीयो तरुज्ञान; भ०
आशायी सुरपति दुपी रे, आश हण्या शिव मान. भ० २
सहू आशा जसु क्षय गया रे, नसु सिध्या सवि काम, भ०
मन कषाय इंद्री दमे रे, नीरीसी सुपधाम. भं० ३
कासुं कहीये अतिवणुं रे, आशा दूर निवार; भ०
निराशी जन पूज्य छे रे, उभय लोक सुपकार. भ० ४
पर आशा भवभयकरु रे, आश गया शिवसार; भ०
ए आलोची आचरो रे, जे जाणे हितकार. भ० ५
चलचितकारि जन विसरे रे, तो किम ये शिव एह भ०
मारू विषय अरु त्यागनी रे, संकट घटि वटि गेह. भ० ६
अवसर लहि मुनिवर छले रे, आश पिशाची एह; भ०
सहू जग आशा जीपीयो रे, ए जीपे धन तेह. भ० ७
राजसार पाठकरि धूरे, जैनागम गुणजाण; भ०
ज्ञान धरम मानसतटे रे, राजहंस सुप्रमाण. भ० ८
तासु शिष्ये इम उपदिश्यो रे, देवचंद्र सुपदाय; भ०
प्रीतिवंत गुण आगरू रे, कुंभकरणसु सहाय. भ० ९

इति श्रीज्ञानार्णवे योगप्रदीपाधिकारे पंडितदेवचंद्रमुनिविरचिते ढालभाषाबंधे ध्यानसिद्धौ रत्नत्रयपंचमहाव्रतवर्णनो नाम द्वितीयः षंडः संपूर्णः ॥ २ ॥

शूर ते कायर थाय वृद्ध लघुता लहे,
पंडित थावे मूढ कामवशि दुःख सहे;
वनिताकाजे लाज बहुत कानी करे,
कंदर्पहठ्यो शूर मरण रणने वरे. ११
ल्हेडग भ्रमरस मदन गजतन अछे,
मथन गमावे देह मरण पाने पछे;
चोर करे जिम कोप भोर दिन उपरे,
तिम ब्रह्मचारी देषी द्वेष कामी धरे. १२
हरि हर ब्रह्मा देव इंणे मदने नड्या,
छोडि आपनी लाज नारी पाये पड्या;
घडी मात्र तिण छेक विवेक रहे नहीं,
लागा कंदर्प बाण प्राण तजस्ये सही. १३
पामी नरनो देह एह कंदर्प दमो,
छोडी विषय विकार सार निजगुण रमो;
बलतो कंदर्प ताप ध्याननी जग सुनी;
छोडे विषयासंग सत्त पंडित मुनी. १४
मारी मदननो मान ध्यान आतम धरो,
पामो भवनो पार सार संयम वरो;
देवेंद्र नागेंद्र मदनवशि सहु पड्या,
दीठ पडुता दुःख के भवने रडवड्या. १५

दूहा.

मदमाती ए कामिनी, ते ते साधा काज;
जेहनो थोडो अंश तिण, कही न सके यतिराज. १
दूष दुष्ट सुप लिह छे, ए नारि सहने नीच;
वज्रकाट मनदाहन, दुःखदायक भववीच. २

उपकरण शयनमूहे, देखीने यत्नी पडिलेह रे।
साधु गुणगणने ते वही, समितिआतन शुभ गेह रे. साधु० ६
मूत्र श्लेष्मादि मल नाखनां, मूरति सहज उपयोग रे।
सुमति उत्सर्ग नीति धरे, मुनिजन निःय निरोग रे. साधु० ७
छोडी संकल्प रागादिना, वसि करे चित निजरूप रे।
सार सिद्धांतमें मेरे, मननगी ते मनोगुप्त रे. साधु० ८
संवर मौनधारी वली, गोपवे आपणी जीह रे।
स्थिर करी देह उत्सर्ग सदे, कायगुप्ति मुनीसिंह रे. साधु० ९
मननगी आठ माता कही, संयमादिने कारणे।
पहेलो चारित्र आदरे, शुद्धमति मुनिराज रे. साधु० १०
पंचित्र उपशम आदरी, पामि पांचे समभाव रे;
त्रिभुवन पूज्य भली पद लह्यो, शुद्ध आतम गुणराय रे साधु० ११
मुक्तिनो हेतु हितु जीवनो, एह दाख्यो जिनराय रे।
जे गया शिवजिके आपरूपे, आप हे नाम ए राय रे. साधु० १२
अनंत गुण जाणवो ज्ञान ते, दर्शन चरित्र तेह रे,
आतम आत्मादर्शी मुनि छे, तिम आत्मा भगवंद रे. साधु० १३
दर्शन ज्ञान चारित्रनो, नाम छे ए तिम तेह रे,
आतम आत्मा वली थिर भणी, [illegible] ते [illegible] रे. साधु० १४
[illegible] मन [illegible] पुहवी, [illegible] [illegible] [illegible] रे।
[illegible] संवेग महु [illegible], आप [illegible] [illegible] रे. साधु० १५
आतम अनुभूतिमें [illegible] ए, [illegible] [illegible] [illegible] ए।
आप [illegible] आत्माने [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] । साधु० १६
दोहा [illegible] [illegible] [illegible] दे, [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] उपमा [illegible] [illegible] [illegible] । साधु० १७

[illegible] मानव [illegible] न करे [illegible] ए नारी०
भार्या ते [illegible] ए नारी० ३
[illegible] ए नारी०
[illegible] ए नारी० ४
[illegible] ए नारी०
[illegible] ए नारी० ५
[illegible] ए नारी०
पुरष [illegible] ए नारी० ६
[illegible] ए नारी०
अधम [illegible] ए नारी० ७
[illegible] ए नारी०
गुणवंत [illegible] ए गुणहीन रे. ए नारी० ८
[illegible] ए नारी०
अनाचार [illegible] जग [illegible] ए नारि रे. ए नारी० ९
दाता भोक्ता पति [illegible] नारी [illegible] ए नारी०
[illegible] जो अपन हुवे रे, तो [illegible] ए नारी० १०
वंध्या सुत [illegible] जो रे, यावे तो [illegible] ए नारी०
[illegible] ए नारी० ११
निश्चल [illegible] रे, [illegible] ए नारी०
रोगी दुर्बल धन विना रे, छोडे पतिने [illegible] ए नारी० १२
[illegible] अधिकी वही रे, [illegible] ए नारी०
[illegible] ए नारी० १३
[illegible] आवमे रे, [illegible] नारी [illegible] ए नारी०
[illegible] नही [illegible] ए नारी० १४

उपकरण शयनगृहे, देखीने वली पडिलेह रे;
साधु गुणपाणने ते कही, समितिआदान सुप गेह रे. साधु० ६
मूत्र श्लेष्मादि मल नाखतां, मूपरी सहज उपयोग रे;
सुमति उत्सर्ग नीते धरे, मुनिजन नित्य निरोग रे. साधु० ७
छोडी संकल्प रागादिना, वसि करे चित्त निजसत्य रे;
सूत्र सिद्धांतमे मेरवे, मनतणी ते मनोगुप्त रे. साधु० ८
संवर मौनधारी यती, गोपवे आपणी जीह रे;
स्थिर करी देह उपसर्ग सहे, कायगुप्ति मुनीसिंह रे. साधु० ९
व्रततणी आठ माता कही, संयमवृद्धिने काजरे;
एहवो चारित आदरे, शुद्धमति मुनिराज रे. साधु० १०
पंडित उपशम आदरो, पामि पांचे समवाय रे;
त्रिभुवन पूज्य भजी एह ल्यो, शुद्ध आतम सुपदाय रे साधु० ११
मुक्तिनो हेतु हितु जीवनो, एह दाख्यो जिनराय रे;
जे गया शिवजिके जायस्ये, जाय छे तास ए दाय रे. साधु० १२
आतम गुण जाणवो ज्ञान ते, दरसण चारित्त तेह रे;
आत्म जाण्यायकी मुक्ति छे, विगर जाण्या भवगेह रे. साधु० १३.
दरसण ज्ञान चारित्रनो, धाम छे ए निज देव रे;
आतम जाण्या पछी शिव भणी, चाहवी सी परसेव रे. साधु० १४
सिव भव कारण एहनी, शुद्ध अशुद्धता चाल रे;
शेष संयोग सहु कर्मना, आप निल्या लहि काल रे. साधु० १५
आत्म अनुभूतिथी सिद्ध ए, साधवा योग्य पिण एह रे;
आत्म इण लागवाने वल्या, ग्रंथ सवला गुणगेह रे. साधु० १६
छोडी संकल्प निज रूप ग्रहे, अनुभवो निज चिदानंद रे;
इंद्रिय उनमन्यां पामस्यो, आत्मदर्शी गुणचंद रे. साधु० १७

रोगी जेम कुपथ्यने. करे पथ्य तिम भोगः
फल विपाक मना अछे. वृद्ध मीठा नहु भोग.
मैथुन आचरतो थको. नव लाखे जी नाशः
तार्थी मैथुन दूर करे. धर्मी जेम इथवल.
अशुचि अंग नारीतणो. नाटे कृतक तेमः
तार्थी कष्ट बहु लहे. अप कौतुदिक तेम.

दाल—सांझ थई दिन आथम्यो पहेली.

कूड कपट घर ए तिया. तिनशे संग निवार रे भाईः
मैथुन दुःखदायक नहीं. आतम गुण संभार रे भाई. १ न
नारी संग नजो तुम्हे. नारी दुर्गती खाणी रे भाईः
नारी संगे दुख हुवे. ए श्रीजिनवरवाणी रे भाई. २ न
धन हरे लघु देहनी, शरदे बल करे जेम रे भाईः
तिन योनीनि अशुचि धरे, तिनसे नयो देह रे भाई. ३ न
मूत्रगेह दुर्गंध छे, नारी अंग दुःख पाणि रे भाईः
मूत्र संग करे जिहां, नवि गये इनु जानि रे भाई. ४ न
मान रुधिर निज जिन पीवे, नृप नजे नमनांडी रे भाईः
कार्मी तिन खोंभगनी, चित धरे उछाह रे भाई. ५ न
नारी योनि अशुचि अछे, नारी दुःखनिधान रे भाईः
आदर न दे शो इहने, तो तस्य ऊपर रह्यो गम रे भाई. ६ न
लहूली सोमन अछे, नारी जन्या नाम रे भाईः
चेतिकुरा दुष ढार छे. पंचिन नरकतो नाम रे भाई. ७ न
भोगवतां नहु कहीज. उसे ये दुःखनार रे भाईः
कूलीं वन्दी अछे. उदयकाल र [illegible] रे भाई. ८ न

ढाल—ओलगडीनी ॥

भावन भावन भविपण एहवी भावज्यो रे, भाजे भवदुष जेह;
करम करम पीडजे मुझनी ना गमे रे, शुद्ध सिव मुझ देह. भावन० १
घातक२ जे छे आतम गुणतणा रे, तीयां पोष्यां किम सुष;
उपशम२ आदरी तजि क्रोधादिने रे, जे शिवगम अभिमुष. भा० २
कुवचन२ परना सुपथी सांभली जी, मुनिवर ध्यावे एम;
न हण्यो२ मुझने जो हणीयो इणे रे, पिण न लीया गुणहेम. भा० ३
संयम२ गुणने दाहे क्रोवए रे, तो सी जीवत आस;
भोगवता२ निज कीवे कर्मने रे, सुप दुप कारण तास. भा० ४
मुझने२ रोष वधे तो फेरस्यो रे, पंडित अने अजाण;
उदयर२ करम आये दुष उपजे रे, रोप करे नवि जाण. भा० ५
भोगवि२ पूरव-दुप मन स्थिर करी रे, मत कर को आलोच;
उपसम२ नास करे अति क्रोधयी रे, अज्ञानी अति सोच. भा० ६
संकट२ अति आयां रूसे नही रे; जाणि कर्मनो घेर;
कंस्कर२ पीड्यां जो उपशम तजे रे, तो क्रोधी स्यो फेर. भा० ७
बंधन२ क्लेश मिल्यां सपरूं थयूं रे, थारये कर्मनो छेह;
पूरव२ उपसम ज्ञान परीपवा रे, आव्या छे दुप एह. भा० ८
उपसम२ छोड भजे जे क्रोधने रे, तसु स्यो ज्ञान सुजाण;
निर्जर२ करवा सहेजे कर्मनी रे, सह्यो परीपह थाण. भा० ९
पंडित २ क्रोध करे पर ऊपरे रे, तो स्यो मूरष दोष;
मानव २ मातो जे संसारमे रे, रागद्वेष दुप कोस. भा० १०
पर मति २ बोधक गुण तुममे नही रे, पिण मत मूझो आप;
परविप २ हर न सके पिण आपने रे, क्रोध करे विपवाप भा० ११
मानव २ दोषी परी रूठा थई रे, अरु धम्नां उपसम भाव;
उत्तम २ सुष दायक ते ओलपी रे, आदरिज्यो धरि चाव. भा० १२

ज्ञान नसे अज्ञान दे, लोपावे गुरु नीत;
इच्छा चाले विनय विण, माने उद्धत चीत. ३
निज चारित्त मैलो करे, नीचो झले काम;
गुण मानि तेहज परो, जेह लपे निजराम. ४
आपा परवातक अछे, मान सर्वथा हेय;
रंक करे राजा भणी, देय विडंबन केय. ५
मसे मनोरथ चिंतवन, गाले कीरतिवेल;
हणि त्रिवर्ग निज गुण हणे, मानत्र मदनी केल. ६

॥ ढाल—एक लहरि ले गोरलो एहनी ॥

गृह अपयश शस्त्र ज्ञाननो रे, पाप पाड ए माय रे;
निजगुण शिवपुर अरगला रे, शील दाहक दुपदाय रे. १
माया ममता परिहरो रे, कुगति कुमतिनी पाण रे;
मायायुत व्रत अफल छे रे, सुपनराज जिम जाण रे. माया॰२
मायायुत किरिया करे रे, राखे शिवनी चाह रे;
मायावी न टिकी सके रे, पल एक शिव मग माहि रे. माया॰३
साधु नि केइ जस लहीय रे, जेह हवे गनमाल रे;
भयकारी पंडित कह्यो रे, माया मोटो साल रे. माया॰४
अपजस दे दुरगति करे रे, उभय लोक दुपकार रे;
चितमें सोच रहे सदा रे, थावे करम अमार रे. माया॰५
संयम मारग नाग्रवे रे, भांजे शिवनी थाठि रे;
वकसम वंचक जग टगे रे, परभवनी भय टालि रे. माया॰६
लोभ न करज्यो मानवी रे, लोभ गमावे शोभरे, "ए आंकणी"
कष्ट करी भव नीगमे रे, करनो नव नव लोभ रे. लोभ॰ ७
पेट भराई नवि भीजे रे, तो निन धाटे राज रे;
मान विना गुरुने हणे रे, लोभी धननें काज रे. लोभ॰ ८

[illegible]
[illegible] ३
[illegible]
[illegible] ४
[illegible]
[illegible] ५
[illegible]
[illegible] ६
[illegible]
[illegible] ७
[illegible]
[illegible] ८

[illegible]

[illegible]
[illegible] १
[illegible]
[illegible] २
[illegible]
[illegible] ३
[illegible]
[illegible] ४
[illegible]
[illegible] ५

ढाल—मारो मन मोह्यो इण डूंगरे. एहनी.

इंद्रिय विषय तजिजो तुम्हे, विन्न आपद भय बीज रे;
अक्षसुष इंद्रिय ग्राह्य छे, कारवे पग पग षीज रे. इंद्रिय० १
विषय जग वंचिवा चतुर ए, दक्ष ए नरक दुपदेण रे;
सहज चंचल विषय दुषसमा, भाषीया जिनवर वेण रे. इंद्रिय० २
लालच दोष अति विस्तरे, विषयथी जाय विवेक रे;
विषयनेइं विषतणो अंतरो, मेरु सरिसव समो छेकरे. इंद्रिय० ३
रहित संवेग कामी पडे, जगतमे जन्म दुष जाल रे;
अक्षय उपशम नवि धर्यो, तो आत्म कीयो दुषमाल रे. इंद्रिय० ४
ध्यान शिव अक्ष जीतां लहे, साधु अध्यात्म सुष जेह रे;
आत्म आधीन अनंक्षइ, निरवधि अनंत अछेहरे. इंद्रिय० ५
साधु सेवे दमे अक्षने, आत्मथी आत्मने भाव रे;
तेह अध्यात्म सुष आत्मने, शुद्ध आदेय शिवदाव रे. इंद्रिय० ६
अक्ष तस्कर मनग चंद्या, हरे माणिक्य निधान रे;
विषय रमणीक आदेय छे, अंत्य विपपाक समान रे. इंद्रिय० ७
नीरथी जलधि शिषि इंधणे, तृप्ति पामे सुरजोग रे;
तो हि कामी विषय भोगथी, नवि लहे तृप्ति जगलोक रे. इंद्रिय० ८
विषय तुझ वंचिवा आवीया, थिर मन विषय तुं वंचि रे;
दुरगति तापदुष गेह छे रे, विषय तजि अनुभव संचिरे. इंद्रिय० ९
काम संकल्प जिम जिम वधे, वधे तृष्णा तिम व्याधि रे;
मोक्ष लहे नही तां लगे, जां लगे अक्ष उपाधि रे. इंद्रिय० १०
आपद बीज महा निंद्य छे, कटु विपाकी दुप टाण रे;
मूकी परपंच इंद्रियतणो, विषय सुष दुष सम जाण रे. इंद्रिय० ११
दुपनिधि धाम उपाधिनो, विषयथी जसु शिव चाह रे;
इन्द्र नागेंद्रना दांतथी, कुडय षणण उच्छाह रे. इंद्रिय० १२

ज्ञानसुधारसरसनथी, शांति विन सुखकार रे: से०
काम विषय शीतथी जिते. धन्य तिके अणगार रे. से० १८
नारी नयन कटाक्षथी, जसु नवि भेदे शील रे: से०
कामजाल व्यापे नहीं. ते पावे शिवलील रे. से० १९
विषय निशाची जे गया. मोह नींद गई भाजि रे: से०
जो नारी मनथी तजी, तो निज मारग लाग रे. सेवो० २०
काम तजावे जगतने. शील लहे जसु जागि रे: से०
देवचंद्र निज ज्ञानदं, मकरध्वज दंडपताप रे. सेवो० २१

दूहा.

परिग्रह फेरे आकरुं, भवसागर निबडंति:
ते परिग्रह दोय भेदथी, अंतर बाह्य कहंति. १
द्विविध परिग्रह बाह्य छे, अंतरंग अज्ञान:
इन प्रकार परिहरीनता, चवद भेद वीय मान. २
वस्तु क्षेत्र धन धान्य वळि, द्विपद चतुष्पद मान:
कुप्य भांड आसन शयन, दशविध बाह्य पान. ३
निष्परिग्रह मूर्छा रहित, ते ह परिग्रहवंत:
जिन कारण मूर्छा तजो, धरि निज आतम संत. ४
राग द्वेष मिथ्या दशा, हास्य कषाय त्रिवेद;
ए अंतर परिग्रह तजो, जो शिवमार्ग उमेद. ५
अर्थ संबंधी दुख लहे, [illegible] प्रसाद;
मोक्षार्थी परिग्रह तजे [illegible] विषवाद. ६
दुख पामे अ[illegible] परिग्रह छोडि;
पंथी ते क[illegible] [illegible]डि. ७
अंतरंगनी दु[illegible] [illegible]मन;
[illegible] [illegible] द. ८

पांचमतपविध सांभलो.

हिवे आतम गुण सांभलो, जिम पामो निजरूपो रे;
द्रव्य चतुष्क निज लही, बहि अंतर सुप मूपो रे. हिवे० १
लहि स्वभाव त्रय गुणतणो, जसु आवरण विनासी रे;
शुक्ल ध्यान ज्वाला बले, निजअतिशय शक्ति विकासी रे. हिवे० २
अनादि संबंधी जीवथी, त्रिविध कर्मनो बंधो रे;
तेह पपावी मूलथी, पाम्यो निजगुण सिंधो रे. हिवे० ३
अनंत चतुष्टय प्रगटीया, तम नासे जिम सूरो रे;
आतम परमातम हिवे, ए शिव तत्त्व सनूरो रे. हिवे० ४
अविरत प्रभा प्रकाशथी, दीपे जिम जग भाणो रे;
शूरवीर क्षत्रीप समो, सरव भूमीनो राणो रे. हिवे० ५
एरावण हाथी चड्यो, वज्र शस्त्र धरि हाथे रे;
सुर नर सुरपति ए सही, इंद्राणीने साथे रे. हिवे० ६
सर्व जीव सुप दुप लहे, जेत्ता इण जगमांहे रे;
पुण्य पाप रचना सहू, गरुड तत्त्वने मांहे रे. हिवे० ७
गगन गोचर भूपण अछे, जय विजय भुजंगो रे;
अनंत रूप परमीस ए, नभ चाले सुचंगो रे. हिवे० ८
रोगज्वर विषशाकनी, ग्रह किंनरने यक्षो रे;
मारि अरी द्विप हरि अनल, इत्यादिक भय लक्षो रे. हिवे० ९
यंत्र मंत्र दैत्यादिनी, टाले भीत समस्तो रे;
गारुड मुद्रारूप ए, आतम रूप प्रशस्तो रे. हिवे० १०
सरव तत्त्वनो सार ए, समय सार ए थायो रे;
कर्म नाग विप एह रे, निज अनुभव पंप वायो रे. हिवे० ११
अविनाशी अविकार ए, रतन त्रय गुण भूपो रे;
निज आतमसु ए ग्रहो, गरुड तत्त्वनो रूपो रे. हिवे० १२

निज पाले पंथी मूर्वा, सु० मन आवे अपतोस; सम०
निस्संगी वन नगरने, सु० निरभय रहे निरोस. सम०
एको डुवे दुष रापनां, सु० नाश हुवां दुष मूर; सम०
धन कजे दुरव्यां टहे, सु० भरव काज पग हूर. सम०
हिंसारंभ कराववे, सु० करे नरकने स्थान; सम०
सुपने जिम न करी सके, सु० धनवारी निज ध्यान. सम०
काट विषय दुष मूल छे, सु० नरक हेतु धन छोडि; सम०
धरि संतोष अनंद ए, सु० जो चाहे सिव थोडि. सम०
पाप वधे धन संगर्या, सु० गया वधे दुष दाह; सम०
इम जाणी आशा तजे, सु० पाप ताप टली जाय. सम० १[illegible]
धन पाम्यो स्थिर रात्ववा, सु० वे नित रहेप विचार; सम०
संतां मन दुष वधे, सु० धन दुष रूप अतार. सम० १७
री त्यागी वहु जन अछे, सु० धन त्यागी को एक; सम०
सा तची आतम भजे, सु० देवचंद्र धरि टेक. सम० १८

दूहा.

वहे अंतरता शुचि भर्गी, आशा छोडे संत;
धन तन ममता ज्यां टगे, त्यां टगे मोह महंत. १
ज्यां टगि आशा नवि घटे, त्यां नवि जाय मोह;
जो आशा दूरे गई, तो पावेस निज सोह. २
संपन श्रुत रवि उदय वडो, उत्तम अने विवेक;
निराशीने स्थिर रहे, शिवसुप टहे अनेक. ३
आशा विषवडीतणी, आशा छे दुषवास;
भवसागर तट तिण टह्यो, जिण छीनी परआश. ४
आरक्षुत मन थिर नहीं, आशा तजि भजि शुद्धि;
न वधे कर्म निराशना, न हुवे नसु भवशुद्धि. ५

राग अज्ञान वशे पड्यो, पामे भव दुप अपारो रे;
द्रपद कंचन सम न मानो तो, बंधे बहु कर्मनो भारोरे.हिवे० २५
सुप दुप परिणामे लहे, इष्ट अनिष्ट प्रभावे रे;
काम अर्थ लालच लगे ए,नव नव संकट जन पावे रे. हिवे० २६
काम अरथ लालच तजो,ध्यावो जिनधर्म स्वभावोरे;
निज अनुभव रस आदरो, ज्युं देवचंद पद पावो रे. हिवे० २७

दूहा.

हिवे केइ यम नियम वळी, आसन प्राणायाम;
प्रत्याहारने धारणा, ध्यान समाधि वसु नाम. १
यम नियमा द्वय टालिने, के अषे छे अंग;
के मुनि बीजा छ कहे, उत्साहादिक चंग. २
ए कारण मन थिर भणी, थीर मनथी द्वे सिद्धि;
क्लेशहीन मुनि मन दमे, यम नियमादिक लद्धि. ३
अष्ट योग मन थिर करी, शिवमग साधक थाय;
मन थिरथी शिव लहे, ... ५
मन विकार रूंध्या लहे, मुनि अक्षय सुप छोडि;
इण कारण मन वश करो, ज्युं नासे दुप कोडि. ६
चित्त दम्यां निज गुण वधे, जन्म मरण भ्रम जाय;
मन विण जीते अफल सव, मन जीते शिव थाय. ७

ढाल—नायकानी.

कुसल लाभ मन रोवथी रे, आतम तत्त्वनो लाभरे. सुगुण नर०
आपा पर वंचे जिके रे लाल,निजमन थिरता साहू रे. सुगुण० १

दूहा.

दातन दोष परिवजन, निर्दोषां भिक्षुक जेन;
पर खंड धातु लिव्या, अतन्न स्वाद लहंत.
तिन विध पुंड सुन्या धर्यां, वस्ले अज्ञानसान;
तत्वज्ञान यह सांभलो, तजे इच्छाते अभिमान.
शुभ शुल्लमहे देवना, ज्ञान रूप मन पंकः
आदरयो पंडित शुचे, अतप शुभ शुभ तेच.
भावना दाशी मन तनी, शुद्ध भावी पचवीस;
इर्यादिक पन सलीते नप, शुपती कहो जगदीस. ४
ते फरस्यो मन वड वली, शुने घाडे विध भला.
घटे देवे भग वालता, जनपोने जनतादः
इर्यासमीति तनो कहो, सरक शुने आहार. ५

ढाल—दान उदके दरो दोषीपे पहलो ॥ ६

उद्गम पहला सांभलो, निरदलो कर्नेहठ सूर रे;
घोर कर्मी दोषे लालसी, ते तजो वदन अति क्रूर रे. साधु० १
दोष दश रहित शुनिवन ले, एव माना भप दाह रे;
कर्म्म हुइ वह निठुर, सोवरातो उपकाह रे. साधु० २
दीन अतीवाच अतिभप वर्णे, शुनाहिता करो जेह रे;
दोष दश वस्नना ए तजी, रूप मावे शुनी वेह रे. साधु० ३
षोडश दोष उद्गमतना, तेल उपादना दोष रे;
च्यार अंगार द्यग करी, दोष दस बन्धानो पोस रे. साधु० ४
दोष ह च्याडतेह मलोने, हेय अहार अनगार रे;
कालवेला निज योग्य ते, मुनि सानिते उपकार रे. साधु० ५

५:

राग अज्ञान वशे पड्यो, पामे भव दुष अपारो रे;
दृषद कंचन सम न मानो तो, बंधे बहु कर्मनो भारोरे. हिवे॰ २
सुष दुष परिणामे लहे, इष्ट अनिष्ट प्रभावे रे;
काम अर्थ लालच लगे ए, नव नव संकट जन पावे रे. हिवे॰ २
काम अरथ लालच तजो, ध्यावो जिनधर्म स्वभावो रे;
निज अनुभव रस आदरो, ज्युं देवचंद पद पावो रे. हिवे॰ २

दूहा.

हिवे केइ यम नियम वली, आसन प्राणायाम;
प्रत्याहारने धारणा, ध्यान समाधि वसु नाम. १
यम नियमा द्वय टालिने, के अपे छे अंग;
के मुनि बीजा छ कहे, उत्साहादिक चंग. २
ए कारण मन थिर भणी, थीर मनथी द्वे सिद्धि;
क्लेशहीन मुनि मन दमे, यम नियमादिक लद्धि. ३
अष्ट योग मन थिर करी, शिवमग साधक थाय;
मन थिरथी शिव लहे, ... ५
मन विकार रूंध्या लहे, मुनि अक्षय सुष छोडि;
इण कारण मन वश करो, ज्युं नासे दुष कोडि. ६
चित्त दम्यां निज गुण वधे, जन्म मरण भ्रम जाय;
मन विण जीते अफल सव, मन जीते शिव थाय. ७

ढाल—नायकानी.

कुसल लाभ मन रोधवयी रे, आतम तत्त्वनो लाभरे. सुगुण नर॰
आपा पर वंचे जिके रे लाल, निजमन थिरता साद्द रे. सुगुण॰ १

...दर शुद्ध अनूपनी. देव निज सेव निर्लेव रे;
...स्तो आनन्दघननुं, अव्यनार्थीन निज देव रे. साधु० १८
...द्व अनंत दिसेह छे, निज अनंत निगोत रे;
...न तजि ए वस्तुना धर्मीना. तेहनो नाश नहीं होय रे. साधु० १९
...भुवन देव छे तेहने, देव छे सर्व परभाव रे;
...क अलोकने देखतो. अनुभवे निज शुद्ध भाव रे. साधु० २०
...न अतत्वने मानवुं. नहि दवे ते किशी रीत रे;
...दनवो आत्म अनुभूत्वी, परम आनंद गुणलीन रे. साधु० २१
...न्यमन शुक्र साहम धरी, धरजो शुद्ध गुण ध्यान रे;
...द्व निश्चय गुन आपदो, राजविजय सुख दान रे. साधु० २२

दुहा.

संयम उपशमने दहे, एह क्रोध वड आग;
ज्ञानादिक गुण फोडने, दूर गमावन दाग. १
संयम अमृतने धरे, विष सम एह कषाय;
ज्ञानादिक गुणने दहे, एह क्रोध दुखदाय. २
क्रोध दहे निज धर्मने, दहे अग्नि तरु जेम;
आप तपे पर तापवे, क्रोध अंध गजतेम. ३
क्रोधे मुनि नरके पडे, उभय लोक दुखदाह;
क्रोधे द्वीपायन ऋषी, कीधो द्वारिकादाह. ४
पाप नरक अवतरनो, वारक गुण रिपु रोष;
काल अनादि कषाय ए, रातु तनो दुख पोष. ५
क्रोध वीप शाम कह्यो, टाहि जिनागम वान;
क्रोध तजो समकत भजो, संयम गुणनो ठाम. ६
कीधे मुनिवर क्रोधने, उभय लोक दुखगेह;
दोषपोषने टालवा, भविजनो भावना एह. ७

मन वशे निगुण गुण लहे रे, जिण विण सहु गुण जाय रे; सुगुण॰
तिन भुवन जीत्या मने रे लाल, मन जयकारको थाय रे.
सुगुण॰ मन॰ १

श्रुतधर पिण मनवश विना रे, नवि जाणे निज रूप रे; सुगुण॰
शांति विषय विणु मन करी रे लाल, मुनि थाये शिव
मूप रे. सुगुण॰ मन॰ १

स्वर्ग मृत्यु पातालमे रे, द्वीपउदधी गिरसीस रे; सुगुण॰
तीन लोकमे नित भमे रे लाल, देवचंद्र गतराग रे. सुगुण॰ मन॰ १

दूहा.

तजे विकल्प मन थिरसु रे, शुद्धातमनो वास;
थिर मन पिण निज ज्ञानसुं, पडे मोहने पास. १

शांत चित्त रागादियुत, भ्रमसागर निवडंति;
ते उद्यम करी बापडा, जिणथी मोह गडंति. २

रागादिक स्वभावथी, हणे ज्ञान गुणराज;
त्यागी योगी ते छले, रागादिक भवसाज. ३

शंकित कंपित मूढ चित, रागादिकथी थाय;
अति यतने करी वारता, रागादिक नवी जाय. ४

रागादिक जीत्या विना, देहकष्ट वे काम;
राग द्वेषने जीपने, मुनि पामे शिवठाम. ५

मोहराग भ्रम क्षय गयां, मुनि देपे निजरूप;
शिव इच्छक पग ज्ञानथी, हणे मोह भव भूप. ६

॥ ढाल—मेलो थापि चल्यो वलि रावण. एहनी ॥

मोह दमो निज आतम बलथी, निश्चल मने करि सिंह रे;
ज्ञानरोह गिरथी चेतनने, पाडे मोह अबीह रे. मोह॰ १

तोषन २ परनेके तन धन तजे रे, रूसे किम तूं आजः
उत्तम २ धार्यां उत्तम शिव लहे रे, रोष कीधां दुखराज. मा० १३
मरन २ कष्ट आयां दिन ताहर्यां रे, धरे क्षमा शिवकाजः
करन २ परीक्षा कनकह ए तिजे रे, इन आनी ज्ञान धार. मा० १४
उत्तम २ शुद्ध ति कोइक जानज्यो रे, क्रोध भैट जिहां नांहि;
उपसर्गे २ आयां क्रोध जिको करे रे, तसु सरखो तन जाहि. मा० १५
संदन २ बांधा तन बरि जे जिने रे, शिव लायक मुनि तेहः
करन २ योगे उपसर्ग उपने रे, वस्तु मन मट न धरेह. मा० १६
पूरव २ कृत ए निर्जर थाय छे रे, कर्म शुभाशुभ रूपः
नरक २ छोडावी ले दे शिवपुरी रे, धरि वे उत्तम भूप. मा० १७
करन २ मुने भवभयनंक नसे रे, जिनवी ते धरी टेक;
दुर्गती २ लागी तने संसारने रे, वलतां दुख अनेक. मा० १८
उत्तम २ ज्ञानहिन रिसु दैनना रे, मोही निर्दय बुद्धि;
मुनिवर २ दोषी जो जन है नहीं रे, तो साधु कहे किम सिद्धि. मा० १९
मुनिवर २ ज्ञानध्यानी भव तजे रे, शुद्ध द्रव्य पिहचान;
उत्तम २ भाव भजे तजि क्रोधने रे, दुख दुख लेखा मान. मा० २०
करम २ परवत्त मुनि तप बहु करे रे, दुकर कष्ट अछेष;
सहज २ वरे आयां पत्ता भर्गी रे, धर्मी हितकारी देप. मा० २१
धरम २ द्रुम दाहक दव सोप्पर रे, नालाडे सुनीत;
उत्तम २ भजन निखट करज्यो सहू रे, देवचंद सुनीत. मा० २२

दूहा.

ईश्वर रुदना मद भर्यो, पाले नांदी पवत;
तन विवेक न हे तरे, वस्तु मन मदनो तांत. १
अहंबुद्धि गिरिशिर चढ्या, लोपे शुद्ध मरजादः
गले विवेक छांडीने, मान बडो परमादः २

मन वशे निगुण गुण लहे रे, जिण विण सहु गुण जाय रे; सुगुण०
तिन भुवन जीत्या मने रे लाल, मन जयकारको थाप रे.
सुगुण० मन० १०

श्रुतधर पिण मनवश विना रे, नवि जाणे निज रूप रे; सुगुण०
शांति विषय विणु मन करी रे लाल, मुनि थाये शिव
भूप रे. सुगुण० मन० ११

स्वर्ग मृत्यु पातालमे रे, द्वीपउदधी गिरसीस रे; सुगुण०
तीन लोकमे नित भमे रे लाल, देवचंद्र गतराग रे. सुगुण० मन० १२

दूहा.

तजे विकल्प मन थिरसु रे, शुद्धातमनो वास;
थिर मन पिण निज ज्ञानसुं, पडे मोहने पास. १
शांत चित्त रागादियुत, भ्रमसागर निवडंति;
ते उद्यम करी बापडा, जिणथी मोह गडंति. २
रागादिक स्वभावथी, हणे ज्ञान गुणराज;
त्यागी योगी ते छले, रागादिक भवसाज. ३
शंकित कंपित मूढ चित, रागादिकथी थाय;
अति यतने करी वारता, रागादिक नवी जाय. ४
रागादिक जीत्या विना, देहकष्ट वे काम;
राग द्वेषने जीपने, मुनि पामे शिवठाम. ५
मोहराग भ्रम क्षय गयां, मुनि देखे निजरूप;
शिव इच्छक पग ज्ञानथी, हणे मोह भव भूप. ६

॥ ढाल—मेलो थापि चल्यो वलि रावण. एहनी ॥

मोह दमो निज आतम बलथी, निश्चल मने करि सिंह रे;
ज्ञानरोह गिरथी चेतनने, पाडे मोह अबीह रे. मोह० १

तोषण २ परनेके तन धन तजे रे, रुसे किम तूं आजः
उपसम २ धार्यो आनम शिव लहे रे, रोषकीयां दुखराज. भा० १३
मरण २ कष्ट आयां विण साहस्सी रे, धरे क्षमा शिवकार;
करण २ परीक्षा कसवट ए मिली रे, इम जाणी शम धार. भा० १४
उपसम २ शुद्ध ति थोडुज जाणज्यो रे, क्रोध मैल जिहां नांहि;
उपसर्ग २ आयां क्रोध जिको करे रे, तसु सबलो तप जाहि. भा० १५
चंदन २ वांसा सम धरि जे मिणे रे, शिव साधक मुनि तेह;
कारण २ योगे उपसर्ग उपजे रे, जसु मन मल न धरेह. भा० १६
पूरव २ कृत ए निर्ज्जर पाप छे रे, कर्म शुभाशुभ रूप;
नरक २ छोडावी जे दे शिवपुरी रे, धरि ते उपसम भूप. भा० १७
करम २ मुंसे भवभयसंक नसे रे, जिणथी ते धरि टेक;
दुष्पनी २ आगी तपे संसारमे रे, वसतां दुख अनेक. भा० १८
उपशम २ ज्ञानहिन रिपु जैनना रे, मोही निर्दय बुद्धि;
मुनिवर २ दोषी जो जन है नही रे, तो साधु लहे किम सिद्धि. भा० १९
मुनिवर २ आतमध्यानी भव तजे रे, शुद्ध द्रव्य पिहचान;
उपशम २ भाव भजे तजि क्रोधने रे, सुप नृप सरिषा मान. भा० २०
करम २ षपावण मुनि तप बहु करे रे, दुकर कष्ट अछेप;
सहज २ उदे आयां षपवा भणी रे, धर्मी हितकारि देष. भा० २१
धरम २ धृष दाहक दव रोप्पए रे, नासाडे सनीत;
उपसम २ भजन निश्चल करज्यो सह रे, देवचंद्र सुमीत. भा० २२

दूहा.

ईश्वर तुल्यता मद धकी, पामे नीची जात;
रतन विवेक न छे सके, जसु मन मदनी तांत. १
अहंबुद्धि गिरिशिर चढ्या, लोपे कुल मरजाद;
गमे विवेक शीलादिने, मान बडो परमाद; २

मोह रागादिक भव कारण ए, तजिज्यो एहनो संग रे;
देवचंद्र सुपरूप पिछाणे, निज अनुभवरस चंग रे. मोह० १४

दूहा.

मोह वह्नि उपशमविना, उथेडण तस राग;
संयमथी थिर करणने, भजि उपशम वड भाग. १
इष्ट अनिष्ट संयोगथी, जसु मन थिर सोभंत;
काम भोग तसुराग तजि, उपशम भजि गुणवंत. २
भववागुरने छेदने, ग्रहि शिवपुरनो राज;
शम रवियी हरि राग तम, भजि आतम शिव ताज. ३
निज आत्मा निश्चय करी, जीव कर्म नित भिन्न;
ज्ञान राज्य सुप वेहने, जे शमवारी धन्न. ४
निज आतम गुण अनुभवो, तजि रागादिक भाव;
राग वाग भंजे मुनि, उपशम गजने दाव. ५
मोह राग बंधन गयां, वाधे उपशम कंति;
आश अविद्या नवि रहे, आयां उपशम शंति. ६

ढाल—पास जिणंद जुहारिये. एहनी ॥

उपशम नाव धरो मुनि, जिम छूटे कर्म अनंतो रे;
परम ध्यान संयम जिन दाख्यो, उपशम भाव महंतो रे. उप० १
शांतचित्त मुनि सुखीयो दाख्यो, ज्ञान ध्यान गुणधारो रे;
सहज सिद्धि सुप वांछे जे ते, धरस्ये उपशम सारो रे. उप० २
दोष जोग त्रय विण निज आतम, भावे उपशम भावे रे;
अन्य द्रव्य पर्यायथी आतम, भिन्न करण समदावे रे. उप० ३

जे जे कारण नरकना रे, ते सब लोभथी थाय रे;
श्रुतमे लोभ बुरो कह्यो रे, निरलोभी शिवराय रे. लोभ० ९
रोष दमो उपशमथकी रे, मद दमि मार्दव सोभ रे;
आर्जवथी माया दमो रे, निरपृहतार्थी लोभ रे. लोभ० १०
योग मिल्यां विण नवि करे रे, क्रोधभणी ते साधु रे;
क्रोधादिक जित्यां पछे रे, मोक्षमार्ग ते साधे रे. लोभ० ११
निज अनुभव प्रगट्यो हुवे रे, पामे आतमसिद्धि रे;
च्यार कषाय जीती लहे रे, देवचंद्र पदऋद्धि रे. लोभ० १२

दूहा.

इंद्रिय गण जीत्या विना, नवि उपशमे कषाय;
क्रोधादिक जय कारणे, अक्ष दमे मुनिराय. १
इंद्रिय विकरयांथी वधे, क्रोध गहन वट व्याधि;
तिम तिम इंद्रियवशु लहे, तेम वधे मद आधि. २
रिपु कषाय जयचाह जो, तो पहिलां इंद्रिय जीति;
अक्ष कषाय निग्रह भणी, एह अपूरव रीति. ३
इंद्रिय गुप दुपसम अछे, सर्व क्लेशनी संधि;
इंद्रिय गज मन रथ थकी, जोडि ज्ञान गुण बंधि. ४
इंद्रिय अहि विष टालिवा, मंत्र वीतजिन वाण;
संयमपंजरमे नवे, इंद्रिय हरि निज नाण. ५
शुद्ध बोध जसु मन अछे, तेहने न इंद्रिय जोर;
तेह न जायुं येण रिधि, राचे मूरष चोर. ६
जिम जिम इंद्रिय वश करे, त्युं त्युं वाधे ज्ञान;
विषय जेम गति आमरो, कीधा शिवसुष मान. ७
मोह तृपा दुप वीजसु, अक्ष सारथ्य मन धारि;
नरक पंथ संवल समो, साटक दिनदुखदारि. ८

वाचक आगम परमागमना, ज्ञानधर्म गुणज्ञाता रे;
आतम अनुभवरस मानससर, राजहंस विख्याता रे. उप० १६
शुद्धादेय अमोल अरूपी, देवचंद्र नित ध्यावो रे;
अक्षय निज परमातमनो शिव, आनंद सिंधु रस पावो रे. उप० १७

इति श्रीज्ञानार्णवे योगप्रदीपाधिकारे पं० देवचंद्रविरचिते बालभाषायंचे पंचसमितित्रिगुप्तिमोहजयवर्णनो नाम तृतीयः पंडः॥३॥

दूहा.

दान शील तप भावशुं, मीलियां जिम सुपदाय;
तिम आतम गुण साधवा, चोथो पंड कहाय. १
वस्तु सहज अणजाणता, जन छे अज्ञ अनेक;
आनंदी भवभय विना, दोय तीनके एक. २
उपशम मुनिने मन रह्यो, ध्यान विना थिर नांहि;
ध्यान थिरे शम थिर अछे, भेद नहीं इणमांहि. ३
शम थिर थाये ध्यानथी, कर्म कोटि कटि जाय;
धरे ध्यान समवंत मुनि, तजि विभाव पर्याय. ४
भवदव दाह शम्या विना, ध्यान पीरनिधि जेम;
ध्यान सिद्ध साधक भवर, दुर्गति काष्ट दव तेम. ५
अशुद्ध ध्यान दुप ध्यान तजि, मुक्ति बीज भजि ध्यान;
के मूरख माने इसो, नरक दायने ध्यान. ६
काम क्रोध पीडित करे, रिपु हणवाने ध्यान;
[illegible] शास्त्र कहि, निज पजा अभिमान. ७
[illegible] पापगति, ये अशुचि उपदेश.
[illegible] करे, शुद्ध ग्रंथ आदश. ८

सर्व इंद्रिय सुख मिलणथी, लोभ वाधे निरंतर रे;
दुःख बहुल नरकदायक कहे, तेह तजे मुनि चतुर रे. इंद्रिय० १३
रसन थकी मीन मरे फरसथी, नयन पतंग वळी भृंग रे;
गंधथी ने मृग गीतथी, ते वरे बंधन भंग रे. इंद्रिय० १४
मन्न थे आप इक मोकळे, तो किसी सर्वनी वात रे;
मूर्ख लिव आप जे मंदरे, नहु हुवे धर्मनी शांति रे. इंद्रिय० १५
विषयथी जनु मन ऊभरुयो, ते वरे मरे ने सुखकंद रे;
श्रीजिनवाणी अनुसारथी, एम भाखे मुनिचंद रे. इंद्रिय० १६

दूहा.

सुखकरि सागर सर्व मन. ए आतम साक्षात;
सर्व ज्ञान दर्शी महन्त, परम निरंजन जान. १
कर्म उदयवश आत्मनो, रूप न जाणे तंत;
पोतमग सुख आपदे, पुद्गल भाग अनंत. २
निर्मल गुण निज अनुभवी, मूर्छा विषय विकार;
ज्ञायक निज गुण नन्द, अनंत चतुष्टय धार. ३
शक्ति अनंत अगम्य छे, आतम अचल प्रताप;
कर्म पलावी ध्यानथी, परमातम हुं आप. ४
निज गुण चिंतने ध्यानथी, सर्व कर्म क्षय थाय;
सर्व दाव निज देखने, गुणनागर कहेवाय. ५
शुद्धातम चिद्रूप ए, गरुड तत्त्व निज एह;
परम तत्त्व ए आतमा, अणिमादिक गुणगेह. ६
निज स्वभावथी ऊपना, अनंत ज्ञान गुणधार;
इम गरुड वंदर्ष ए, आतम गुण भंडार. ७

वाचक आगम परमागमना, ज्ञानधर्म गुणज्ञाता रे;
आतम अनुभवरस मानससर, राजहंस विख्याता रे. उप० ११

शुद्धादेय अमोल अरूपी, देवचंद्र नित ध्यावो रे;
अक्षय निज परमातमनो शिव, आनंद सिंधु रस पावो रे.उप०१७

इति श्रीज्ञानार्णवे योगप्रदीपाधिकारे पं० देवचंद्ररचिते बालभाषाविवेचने पंचसमितित्रिगुप्तिमोहजयवर्णनो नाम तृतीयः खंडः॥३॥

दूहा.

दान शील तप भावसुं, मीठियां जिम गुणदाय;
तिम आतम गुण साधवा, चोथो खंड कहाय. १
वस्तु सहज अणजाणता, जन छे अज्ञ अनेक;
आनंदी भवभय विना, दोय तीनके एक. २
उपशम मुनिने मन रह्यो, ध्यान विना थिर नांहि;
ध्यान थिरे शम थिर अछे, भेद नहीं इणमांहि. ३
शम थिर थाये ध्यानथी, कर्म कोटि कटि जाय;
धरे ध्यान समवंत मुनि, तजि विभाव पर्याय. ४
भवदव दाह शम्या विना, ध्यान पीरनिधि जेम;
ध्यान सिद्ध साधक प्रवर, दुर्गति दाह दव तेम. ५
अशुद्ध ध्यान दुष ध्यान तजि, मुक्ति बीज भजि ध्यान;
के मूरख माने इसो, नरक दायने ध्यान. ६
काम क्रोध पीडित करे, रिपु हणवाने ध्यान;
चाहे [illegible] शास्त्र कहि, निज पूजा अभिमान. ७
उभ[illegible] [illegible] [illegible]ने, ए अशुचि उपदेश;
ध्यानी [illegible] कर. शुद्ध पंथ आदेश. ८

चन्द्रथी सहु जगतने, कुमुदनायक ए थाओ रे;
शिवगामी जे मुनि थया, अंतर आतम जाणो रे. हिते० १३
देवलक्ष्मी वालहा, सुंदर रूप सहाया रे;
श्री सहु राणी हूवे, ते ए चेतन राया रे. हिते० १४
अविनाशी नित चेतना, ज्ञान ज्योति नित नारी रे;
तसु ग्राहक ए आतमा, ध्यान तत्त्व सुखकारि रे. हिते० १५
ऋतु वसंत फूली सहु, वनराय उदारह भारे रे;
रस सरस वणीया, कंदर्प उदयना कारु रे. हिते० १६
सुंदर लोक विलासी, कंदर्प सुखकारी रे;
मुनिजन मनने चलाविवा, नारी धूतारी सारी रे. हिते० १७
रोदक लिवकुलना तणी, सहु जगनी जयकारी रे;
नारी गुणधारी घणी, ध्यान तत्त्व गुण धारी रे. हिते० १८
जे जे गुण छे जगतने, ते गुण इन ननमांहे रे;
ते सहु इन आतमतणा, गुण लाभ अंध निवारे रे. हिते० १९
जिन ए आतम वासीने, गुणगणमय स्वरूपो रे;
इंद्रियने जे गुणतणो, जिन ध्यान नयनो भूपो रे. हिते० २०
देव मानव आदि शक्ति छे, ते जग विस्मयकारी रे;
ते सहु आतम शक्ति छे, जिन आतम ध्यान धारो रे. हिते० २१
शक्ति अनंत चेतनतणी, ध्याने गुण शक्ति लहवो रे;
नव नव ध्यान पदे चढे, वधे रसनो धूनो रे. हिते० २२
परमर्षि छन शक्ति छे, तसु ज्ञान ज्योतीने आगे रे;
जगमति जगारव गुण, निजबल दर्शने जागे रे. हिते० २३
कर्म मने भेदो घणो, खेदइं दर्शने देवे रे;
नावे देवे निजदर्शने, अज्ञान पडदो छेदे रे. हिते० २४

काम भोग स्त्री राजस्युं, अन्य सरव आनंदो रे;
इंद्रिय सुप नित चिंतवे, तूर्य आर्त्त भवकंदो रे. आर्त्त० ८
जिन सुरपति पदपुण्यथी, रिपु कुल क्षय पण तेमो रे;
पूज्य लाभ चाहे हुवे, आर्त नियाणा एमो रे. आर्त्त० ९
सुख काजे रिपु मारिवा, जेह दुष्टपरिणामो रे;
आर्त्त नियाणा नाम ते, दाष्यो दुपनो धामो रे. आर्त्त० १०
एम संक्षेपथी चोविधे, कह्यो आर्त्त जिनरायो रे;
अनंत जीव परिणामथी, भेद अनंत कहायो रे. आर्त्त० १२
ए कुध्यान चउभेदथी, छे पांचे गुणधामो रे;
छठेमैं नय भेद छे, नहीं नियाणा नामो रे. आर्त्त० १३
निंद्य लेशथी उपजे, एह दुरित दव धामो रे;
पूर्वबद्ध संस्कारथी, वली थाये दुप धामो रे. आर्त्त० १४
फल तिरिगति छे एहनो, काल महूरत मानो रे;
मिश्र भाव बल ए हुवे, दुक्ख अनंतनो थानो रे. आर्त्त० १५
शंका शोक प्रमादता, भय कलि चिंता भर्म्मो रे;
विषयोत्सुक उन्मादता, भ्रांति नींद तनु सर्म्मो रे. आर्त्त० १६
वाह्य लिंग ए आर्त्तना, दाष्या श्रुतमें एमो रे;
हेय कुध्यान करी ग्रहो, देवचंद्र गुण हेमो रे. आर्त्त० १७

दूहा.

रौद्र ध्यान चउ भेद सुणि, रौद्र चित्त दुपनीम;
क्रूराशय करुणा विना, रौद्र कार्य करी भीम. १
हिंसानंद प्रथम पय, वीये मृषा आनंद,
तीय चौर्य आनंद सुणी, तुर्य संरक्षानंद. २

मन गज वस कर ज्ञानथुं रे लाल, मन वशि विण शिव नांहि रे; सुगुण०
ध्यान सिद्ध मन शुद्धथी रे लाल, भांजे भव दुप दाह रे. सुगुण० मन० २

तिन भुवन तसु दास छे रे लाल,जसु वशी मनमातंग रे; सुगुण०
मुक्ति गेह ते जन लहे रे लाल, जसु मन छे निःसंग रे. सुगुण० मन० ३

जिम मननी शुद्धि हुवे रे लाल, तिम तिम वधे विवेक रे; सुगुण०
शिव चाहे मन वश विना रे लाल, मृगतृष्णा सम मेक रे. सुगुण० मन० ४

ज्ञान ध्यान तप जप सहु रे, मन थिर कीयां साच रे; सुगुण०
जग दुप दायक मन अछे रे लाल, विषय ग्राममे राच रे. सुगुण० मन० ५

ज्ञान पराक्रम फोरिने रे, वश करी मन गजराज रे; सुगुण०
नव वन मन कपि जिण दम्यो रे लाल, तसु सिद्धा सवि-काज रे. सुगुण० मन० ६

मन गज वश न करी सके रे, तसु ध्यानादिक पेह रे; सुगुण०
जे न सवे श्रुत तप थकी रे लाल, मन थिर सावे तेह रे. सुगुण० मन० ७

अनंत कर्म चउ भेदना रे, मन थिर कियां जाय रे; सुगुण०
जसु मन वश ते शिव लहे रे लाल, दंडो स्यांने काय रे. सुगुण० मन० ८

श्रुत तप यम मन वश विना रे, तुस पंडन सम जाण रे; सुगुण०
मन वश विण शिव नवि लहे रे लाल, मन वशे शिव सुप टाण रे. सुगुण० मन० ९

कूडो बोल अकारज साधे, निजने वक्ता माने;
मृषा आनंद रौद्र ते कहीये, जूठ जल्प सुख जाने. चतुर० ५
चोरी कर्म वषाणे दापे, चोरीनी विधि याची;
चौर्यानंद रौद्र ते कहीये, दुप जल वापी साची. चतुर० ६
चौरी चित्त रहे नित मनने, चोरी करतो हरपे;
चौर्यानंद रौद्र कह्यो जे, तिण नित परवन निरपे. चतुर० ७
दुष्ट चौरमति करि निजसाथी, परपाट्या धन लूंटे;
दसविध परिग्रह आणे चोरी, दीन मानवने चूंटे. चतुर० ८
इत्यादिक चोरी विधि नव नव, नित नित मनमे ध्यावे;
तीजो रौद्र कह्यो दुपसागर, नरकनिगोद भमावे. चतुर० ९
बहु आरंभ परिग्रहरातो, मातो वीकल्प मोहे;
चोथो रौद्र संसारनो कारण, आठ मदे करी सोहे. चतुर० १०
रिपु पुर ग्राम हणी रिपु मारी, अति ईश्वरता वरस्युं;
जे मुझ जनपदनो तृण चोरे, तास कुलक्षय करिस्युं. चतुर० ११
मोटा सेवक धनमणिवहुला, सवि लोके शिर नाम्युं;
तरि सागर तट भेदि अरि हणि, जगत राज्य में पाम्युं. चतुर० १२
विषय प्रयोग विश्वास करीने, रिपु हणिने धन आणुं;
परिग्रह रक्षानंद इण नामे, तुर्य रौद्र दुप थाणुं. चतुर० १३
परिग्रह मेलण रापण काजे, जे मन नित आलोचे;
रौद्र करम उदयाचलि आव्या, नित भवभ्रम नो सोचे. चतुर० १४
क्रूर कठोर वंचक वचवादी, दंड दुष्ट निस्त्रंशी;
लिंग पांच ए रौद्र तणा गिण, कृष्ण लेश निरवंशी. चतुर० १५
लाल नयण वांका अति भीषण, दुष्टाशय भयकारी;
भिन्न मद्धरथमति चिति छेय जगु, निच मार्ग संचारी. चतुर० १६

मन वश तप जप आदर्यु रे लाल, मन वशि जिन शिव नांहि रे;
गुणु०
ध्यान विना मन दुर्जन रे लाल, नांहि प्रभु सत संग रे.
गुणु० मन० २
त्रिभुवन तणु दान दे रे लाल, तसु वशी मन मांहि रे; गुणु०
मुनि मेहु ते मन लहे रे लाल, तसु मन ते निरंत रे.
गुणु० मन० ३
जिन मननी शुद्धि हुवे रे लाल, तिम तिम करे विवेक रे; गुणु०
तिम धरे मन वश किया रे लाल, गुणरूप मन भेद रे.
गुणु० मन० ४
ज्ञान ध्यान तप जप सहु रे, मन थिर वांछा माग रे; गुणु०
जप तप साधक मन जडे रे लाल, शिव साधने भाग रे.
गुणु० मन० ५
ज्ञान परमध पोषिने रे, वश करी मन गजराज रे; गुणु०
नर धन मन वशि जिन दस्यो रे लाल, तसु शिवा शि-
राज रे. गुणु० मन० ६
मन गज वश न करी शके रे, तसु ध्यानादिक वेद रे; गुणु०
ते न लहे भूत तप धरी रे लाल, मन थिर साधे देह रे.
गुणु० मन० ७
अनंत वर्ग घड मेदना रे, मन थिर शिवा जाय रे; गुणु०
जसु मन वश ते शिव लहे रे लाल, देखो ध्यानि वाय रे.
गुणु० मन० ८
श्रुत तप यम मन वश विना रे, तुश खंडन सम जाण रे; गुणु०
मन वश विण शिव नवि लहे रे लाल, मन वशे शिव
सुख खाण रे. गुणु० मन० ९

निर्दय परस्त्रीलंपट, सप्तव्यसनी अतिदुष्ट;
मुनिनिंदक नास्तिकमति, निजरागी गुणभ्रष्ट.　　१
एहवा जनने संग पणि, रहे मध्यस्था सादि;
तेह उपेक्षा भावना, कही जिनागममांहि.　　१०

ढाल—धणरी चिंदली रंग लागो. एहनी.

हांरे मोरा लाल आनंदकर ए भावना, रागहीन शिवमाग मोरा लाल,
आत्मसौख्य मुनि अनुभवे, रमतो भावन बाग मोरा लाल. १
भावो जे गुणभावना, अध्यात्मगुणरूप मोरा लाल;
निरविषयी ज्ञानी मुनि; परमातम गुण भूप मोरा लाल. भावो० १
हांरे० मोह मिटे ए भावनां, योग ध्यान थिर थाय मोरा लाल,
परम सौख्य मुनि भोगवे, उदासीनता रोग मोरा लाल. भावो० १
हांरे० निरागी मुनि एहवा, करे ध्यान थिर काल मोरा लाल,
निष्कंप शुभ ध्यान छे, साधन ध्यान समान मोरा लाल भावो० १
हांरे० ठाम दोषवी विन ए, शुभ थाय स्थिरता मोरा लाल,
तेह ठाम एकांत लहि, धारे शांत गुणवास मोरा लाल. भावो० १
हांरे० पाखंडी मिथ्यामति, म्लेच्छ नीच जिहां वास मोरा लाल,
रुद्र मत देवीतणो, नास्तिक मंदिर पास मोरा लाल. भावो० १
हांरे० वेश्या व्यभिचारी वसे, जिहां कुदंभ वैभव मोरा लाल
मानी दुर्जनी जिहां, नट विट मेला थाय मोरा लाल. भावो० १
हांरे० कर्म भेद पंथादनो, गडाम हिंसाभ्यास मोरा लाल,
दुर्गम मसाननो, जे चंडाल ठाम मोरा लाल. भावो० ६
हांरे० नारी मनमथकामनी, वसे नपुंसक तेह मोरा लाल,
तेम काम वश रहेमे, न रहे ध्यानी तेह मोरा लाल. भावो० १

रागद्वेष तजि शिव साधन भजी, मुक्ती जनम क्षय मर्म रे;
रागद्वेष बंध्यो ए चेतन, नवि जाणे निज ब्रह्म रे. मोह० २
रागत्याग चित थिर वशितायी, मुनि जाणे सहु ज्ञेय रे;
वीतराग आनंदने जाणे, त्रिभुवन आनंद हेय रे. मोह० ३
घटे अज्ञान राग अभावे, राग वधारे ताहि रे;
सहज आतमसुख आगले भवसुख, अनंत भाग तिम नाहि रे. मोह० ४
रागद्वेष अनादि महारिपु, भवदुःख संतति बीज रे;
रागी बंधे छूटे विरागी, जिनवच निश्चय एहिज रे. मोह० ५
ज्ञान नाव आतमथी सोपो, रागद्वेष ए नीर रे;
रागद्वेष अणु मात्र थका तिम, नावे ज्ञान सुधीर रे. मोह० ६
निरालंबननी शिवसंतति, पामे श्रीवीतराग रे;
एक ठोड दो भाव अवरवे, जिहां द्वेष तिहां राग रे. मोह० ७
ज्ञान राज्य चाहे मानव जे, ते छोडे रागने द्वेष रे;
पंथ विना जिम पंथी निवटो, तिम मन विण रागद्वेष रे. मोह० ८
रागद्वेष तरु मूल नीकंदी, वसि करी मनि करि चाल रे;
मोहथी थावे रागद्वेष तिण, मोह भणी तुं टालि रे. मोह० ९
रागद्वेष तरु बीज मोह छे, दोष सेनापति मोह रे;
भवभ्रमणी दावानल सम ए, कर्मेंधन दृढ मोह रे. मोह० १०
मोह नींद रागादिक वशथी, जीव टहे दुख कोडी रे;
लोकालोक ज्ञानी ते देखे, ते हणे मोहनी जोडी रे. मोह० ११
मोह अनल जल श्रुत उपशमथी, शम पावे क्षणमांहि रे;
मोह सहित संसारी कहीये, मोह विना शिवसांहि रे. मोह० १२
अज्ञानी निज पर न पीछाने, मोहतने वसे लागि रे;
राग द्वेष मद मोह हणो ए, निश्चय शिवपुर माग रे. मोह० १३

निज धीरजथी मुनि भणी, भय नवि थाये कोय;
निर्विषयी संवेग धर, निज निज ध्यानी सोय. १०

ढाल—सीता अतिशोहे. एहनी.

थिर मन विघन निवारो, शुद्धातम ज्ञान संभारो हो०
मुनिवर ध्यान धरो १
थान आसन ए थोक, मन वश विण सवला फोक; मुनिवर०
थिर निरमल मन धीर, संवेगी ध्यायक वीर हो. मुनिवर० २
बहु जन थानक शस्य, जो एकम थाये वश्य हो; मुनिवर०
सनमुख पूरव उत्तर, ध्यानी छे सहग अंतर. मुनिवर० ३
त्रिगुण सहित गतमच्छर, पहिला सिध्या बहु मुनिवर; मुनि०
मुख्य गौण मुनि भाख्या, अप्रमत्त प्रमत्त दोय दाख्या. मुनि० ४
अप्रमत्तथि काया, ते ध्याता ध्यान सुहाया हो; मुनि०
अप्रमत्त लघुज्ञानी, मुनि थाये धर्मनो ध्यानी हो. मुनि० ५
तूर्यथी सपतम तांई, धर्मध्यानतणा गुण थाई हो, मुनि०
ध्याता ध्यान त्रिभेद, लेश्याथी फलउमेद हो. मुनि० ६
मुनि आसन जयकारी, सुसमाधि अखंड विहारी हो; मुनि०
आसन चल्यी चल अंग, तिण वाधे वेदनो संग हो. मुनि० ७
वात धूप अतिपाले, आसनधर मन नवि चाले हो; मुनि०
लहि अभिमत थिर थाने, पर्यंकासन धरे ध्याने हो. मुनि० ८
पर्यंक मध्य उत्तान, विकसन करकमल समान हो; मुनि०
नासाग्रदृष्टि थिर शांत, निश्चल तारानी कांति हो. मुनि० ९
भ्रू चालि विकार विहीन, थिर अधर पल्लव मनलीन हो; मुनि०
सुप्तमत्स्य सर जेम, थिर वदनकमल गतप्रेम हो. मुनि० १०

रागद्वेष तजि शिव साधन भजी, मुक्ती जनम क्षय मर्म्म रे;
रागद्वेष वंच्यो ए चेतन, नवि जाणे निज मर्म्म रे. मोह० २
रागतास चित थिर वशिवार्थी, मुनि जाणे सहु ज्ञेय रे;
वीतराग आनंदने आगे, त्रिभुवन आनंद हेय रे. मोह० ३
घटे अज्ञान राग अभावे, राग वधारे ताहि रे;
सहज आतमसुख आगले भवसुख, अनंत भाग पिण नाहिरे.मोह०४
रागद्वेष अनादि महारिपु, भवदुख संतति बीज रे;
रागी बंधे हरे विरागी, जिनवच पिण एहिज रे. मोह० ५
ज्ञान भानु आतापथी सोषो, रागद्वेष ए नीर रे;
रागद्वेष अग्र मान थका पिण, नावे ज्ञानसुधीर रे. मोह० ६
नित्यानंदमयी शिवसंतति, पावे श्रीवीतराग रे;
एक टोड दो घाय अवरये, जिहां द्वेष तिहां रागरे. मोह० ७
ज्ञान राज्य चाहे मानव जे, ते छोडे रागने द्वेष रे;
पंख विना जिम पंखी निबलो, तिम मन विण रागद्वेषरे. मोह० ८
रागद्वेष तरू मूळ नीर्स्दी, वसि करि मनि कपि चाल रे;
मोहथी वाधे रागद्वेष तिण, मोह भणी तुं टालि रे. मोह० ९
रागद्वेष तरू बीज मोह छे, दोष सेनापति मोह रे;
भवमार्गी दावानल सम ए, कर्मबंध दृढ मोह रे. मोह० १०
मोह नींद रागादिक वशथी, जीव लहे दुख कोडी रे;
लोकालोक ज्ञानी ते देखे, जे हणे मोहनी जोडी रे. मोह० ११
मोह अनल जल श्रुत उपशमथी, शम पामे क्षणमांहि रे;
मोह सहित संसारी कहीये, मोह विना शिवसाहि रे. मोह० १२
अज्ञानी निज पर न पीछाने, मोहतणे वसे लागि रे;
राग द्वेष मद मोह दमो ए, निश्चय शिवपुर माग रे. मोह० १३

किहां पवन विश्राम छे, नाडी संक्रम केयि;
कुण मंडल गति पवननी, सो हिव कहीइं एयि. १

ढाल—प्रभु प्रणमुं रे पास जिणेसर थंभणो. एहनी ॥

मन थिर करी रे प्राणायाम अभ्यासीये,
जिणपरतक्ष रे प्राणायाम प्रकासीये;
प्राणायाममे रे मंडल वांयु तपे करे,
तसु चिते रे ध्यानसिद्धि अति विस्तरे;
विस्तरे नासा विवरमांहे रच्या च्यारे मंडला,
जूजूया लक्षण लक्षभेदे कह्या पवनसु मंगला;
ते च्यार मंडल अति हि दुरगम जासु शक्ति अपार छे,
स्वसंवेदनपकी जाणे सहु जगमें सार छे. हां सहू० १

तिहां आवे रे पार्थिव वीय वरुण अछे,
तीय मारुत रे चोथो वह्नि कह्यो पछे;
धर मंडल रे भूमि वीज प्रभ हेमनी,
वज्रलांछन रे चोकूणक धर पेमनी;
ते पेमनी धर अरध चंद्राकार वारुणमंडलो,
चंद्राभ वारुण वरुण मंडित झरे अमृत अति भलो;
अति नील अंजन घनसप्रभ वृत्तबिंदु समाकुलो,
अति चपल दुरगम पवन मंडल लहे पंडित गुणनिलो. २

ज्वालायुत रे भीम त्रिकोण सुप्रीत छे,
वह्निमंडल रे स्वस्तिकबीज समेत छे;
पुर चोमेरे एह पवन नित संचरे,
तिणने नित रे प्रणिधान ज्ञानी अनुसरे;

[illegible] [illegible] [illegible] पद लेइने, ते उत्तम गुण धर्मी रे;
देव उत्तम [illegible] कर्म, [illegible] उत्तम गुण धर्मी रे. उत्त० ४
[illegible] जंतु पर वैरी नहीं निज, इनि उत्तम धर्मो रे;
[illegible] निज [illegible] करे, नहीं [illegible] विचारो रे. उत्त० ५
[illegible] जंतु मन [illegible] [illegible], मन [illegible] धन [illegible] [illegible] रे;
[illegible] [illegible] मन धरे करी, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रे. उत्त० ६
[illegible] [illegible] [illegible] मन [illegible], [illegible] [illegible] मन [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] रे. उत्त० ७
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] मन [illegible] रे. उत्त० ८
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], के [illegible] को [illegible] रे. उत्त० ९
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] रे. उत्त० १०
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] रे. उत्त० ११
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] मन [illegible] [illegible] रे. उत्त० १२
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], न [illegible] मन [illegible] [illegible] रे. उत्त० १३
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रे;
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] न [illegible] [illegible] रे. उत्त० १४
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] रे. उत्त० १५

जलने मध्यम वाम नाडे चलत दहन समीर ए,
जल भूमि दक्षण नाडि चलतां मध्य फल वक्ता धीर ए
शशि शूर नाडी दाहनय भय यही शरयुक्ष्मणा,
सितपक्ष वामा उदयकाले कृष्णपक्षे दक्षिणा. ४

चंद्रनाडे रे उदय अस्त रविमे भलो,
ए उवे रे पवन विपर्यय गुणनिलो;
सितपक्षे रे मासमे पडिवातणे,
वामनाडे रे पवन चार शुभ गण भणे;
गण भणे ते विपरीत वहती प्रथम दिन मन भय वर्गी,
धन हानि बीजे दिवस तीजे पंथ देशांतर थवी;
अतियुद्ध अर्थविनास विभ्रम दुःख थान विकार ए,
दे दिवस पांच लगे चलतो पवन पूठे चार ए. हां० ५

वाम नाडे रे अमृतमय हितकारणी,
प्राणीने रे रविनाडी दुखकारणी;
वामनाडी रे अमृत जेम तनु शुभ घरे,
निम दक्षण रे सितपक्षे पर शुभ करे;
शुभ करं ते संग्राम भोजन सुरतरोपे दक्षिणा,
मन इष्ट उत्तम धर्म कार्य वाम नाडि विचक्षणा;
जे काज महगन थकी न पावे तेह वामने कह्यो,
क्षितिवरुण तत्त्वे पवन राजा सर्व शुभ कारक कह्यो. हां० ६

कल्पितरुने रे पूर्ण नाडि पृच्छकनको,
जय सूचे रे नामे पर शिरो दिनो;
पंडितनो रे नाम भेद निज हे पछे,
तो संभर रे कामित सिद्धिमें न छे;

विरोध रे ध्यान हे, अगर भावना जाणः
अनेरा चित्त लगर. तरसो शास्त्र नहि मान.   ९
शुद्ध आत्म द्रु भेदथी, ध्यान भेद भव ध्यानः
लिख ध्यानी लिगत मुनि. ध्याने शुद्ध व ध्यान.   १०
आतमि गत दिठुन. ध्याने ध्यान अशुद्धः
आर्त रौद्र दुरध्यान हे. धर्म शुक्ल शो शुद्ध.   ११

ढाल—चौपदनी सकोनरा. पूर्ती ॥

आर्त रौद्र नहो सुणे. धर्म शुक्ल धरि ध्यान रे;
चउविध एकेक ध्यान हे, प्रथम ध्यान सुण प्रान रे.   आर्त० १
प्रथम अनिष्ट संयोग हे, बीजो इष्ट वियोगो रे;
त्रण प्रवेर बीजो वरणवो. तुर्य निदान संयोगो रे.   आर्त० २
रव वन गिर मलंग हरि, दुर्जन रिपु वर्ग गयो रे;
धन तन धातक देखीने, दरिहो अरत पायो रे.   आर्त० ३
उत्तम घर धिर मानवी, स्वजन दिठां वर्ग दृष्टो रे;
ते मन हेरत्ने अलभरे, टेरो ह आर्त अनिष्टो रे.   आर्त० ४
एह अनिष्ट गत्नडिक. चिठे नाम जाणो रे;
प्रथम आर्त मन सन्दर्शी, जिनवर देव दिखायो रे.   आर्त० ५
गान्ध वंदु भ्रो नामनी, होर मोह मन पायो रे;
चौद आर्त द्रुत्व आर्त ए. इष्टवियोग कहायो रे.   आर्त० ६
काम ध्यान उर विदूर्षी. श्लेष्म धान शुप धानो रे;
अन्ये ध्यविधी आर्त क. रोग चिंते द्रुत नानो रे.   आर्त० ७
स्वन्द रोग दिन उत्ता, चिठे बहुत वखाणो रे;
चित्त पद बहु अशुभरे, बीजो आर्त कहायो रे.   आर्त० ८

जो थाह नारी तणी तुजने साधि पूरण नाडिका,
रिपुयुद्ध चोरी दुष्टकाजे सही रिक्ता नाडिका;
रिपु घाउसेती पूर्ण नाडी गात्ररक्षा जे करे,
तसु अंग वीजे शस्त्र न लगे सर्व रिपुमे जय वरे. १२

भूजलमे रे गर्भमश्नयी सुत लहे,
अग्नि पवने रे पुत्री गर्भने नभ दहे;
मतमाखी रे पृच्छक जो येसे सही,
सुत पामे रे रिक्ता नाडि पुत्री कही;
कही पुत्री समुष नाडी पंढ उतपति जाणवी,
सुष्मणानाडे युगलसंक्रम गर्भहाणि वषाणवी;
श्रवण आपी अरु नासिका मुष ढांकी अंगुष्टादिथि,
जे वामदेला चले दक्षिण अंग पीडा तो कथी. हां० अंग० १३

शशि थानकरे वाम अग्रिम नाडी कही,
रवि थान करे दक्षिण पूठ नाडी लही;
संक्रमतो रे पवन जीव पंडित कहे,
विक्रमतो रे तेह पवन निरजीव है;
निरजीव पवने जगत मृतसम जीव पवने जीवतो,
सुष दुख लाभालाभ फल पिण कहो इण विधि दीपतो;
जे नाडि छोडे तिका रिक्ता पूर्ण संक्रम अवसरे,
पूर्णांग पगजे धरे आगे सर्व कारिज तसु सरे. हां० सर्व० १३४

विष वूस्या रे जीवे चंद्र नाडी करी,
रवि नाडे रे तेह मरे विष विस्तरी;
आकर्षण रे पूरक थिर कूंभक धरे,
उयान रे रेचकथी योगी करे;

जिनागमे ते ध्यान छे, अवर भावना जाणः
अनुप्रेक्षा चिंतन अछे, लाग्यो शास्त्र सरि नाम. ९
शुद्ध अशुद्ध द्वु भेदथी, ध्यान मोक्ष भव थानः
शिव ध्यानी निर्मल मुनि, ध्यावे शुद्ध ज ध्यान. १०
अज्ञानि रागादियुत, ध्यावे ध्यान अशुद्धः
आर्त्त रौद्र कुध्यान छे, धर्म शुक्ल दो शुद्ध. ११

ढाल—गौतमस्वामी समोसरया. एहनी ॥

आर्त्त रौद्र तजो तुम्हे, धर्म शुक्ल धरो ध्यान रे;
चउविध एहिज ध्यान छे, प्रथम ध्यान दुख थान रे. आर्त्त० १
प्रथम अनिष्ट संयोग छे, बीजो इष्ट वियोगो रे;
रोग प्रकोप त्रीजो कह्यो, तुर्य निदान संयोगो रे. आर्त्त० २
दव वन विष मातंग हरि, दुर्जन रिपु वळी गयो रे;
धन तन घातक देखीने, पहिलो आरत थायो रे. आर्त्त० ३
उपन्या पर थिर भावथी, स्वजन दिठां वळी द्वेषे रे;
जे मन क्लेशने अनुभवे, तेही ज आर्त्त अनिष्टे रे. आर्त्त० ४
एह अनिष्ट मळाविया, चिंते तास उपायो रे;
प्रथम आर्त्त मन कल्पना, जिनवर देव दिखायो रे. आर्त्त० ५
राज्य बंधु स्त्री नाशथी, शोक मोह भ्रम पायो रे;
बीय आर्त्त दुःख आर्त्त ए, इष्टवियोग कहायो रे. आर्त्त० ६
काम श्वास ज्वर पित्तथी, श्लेष्म वात दुख थायो रे;
आधि व्याधिथी आर्त्त ए, रोग चिंते दुख नाशो रे. आर्त्त० ७
स्वल्प रोग निज उपना, चिंते बहुत उपायो रे;
चित्त खेद बहु अनुभवे, त्रीजो आर्त्त कहायो रे. आर्त्त० ८

एकवीस सहस उच्छ्वास ए, षटसत तिहां मेळी;
स्वस्थ मनुज अहोरात्रिमे, आनपान सुमेळि. धारो॰ २
पवन चालि जाण्या विना, न लहे निज तत्त्व;
नाडिवेध हिव चिंतवुं, चित चित्र निमित्त. धारो॰ ३
करि निश्चल आलस तजी, ले श्वास सुगंध;
जाती फल मदुलादिने, मूकेयनि संधि. धारो॰ ४
कुंकुम अगर कपूरसम, छे वरुणनो वेध;
थूल वेध ओलप करो, सूषम संवेध. धारो॰ ५
भ्रमर शलभ मृग पक्षिमे, नर तुरंग शरीर;
धातु पक्ष पाषाणमे, मूत्रस तरु नीर. धारो॰ ६
इक मंडलथी निसरे, पेसे बीयठाम;
स्वेछाये चाले सदा, ए उत्तम धाम. धारो॰ ७
नवरपुरमे संचरे, ए कौतक काज;
प्राणायाम प्रसादथी, सीझे शिवकाज. धारो॰ ८
काम दर्प मन जय करे, सहु रोग विलाय;
तन थिरता जोगी करे, वायुतणे सहाय. धारो॰ ९
जन्म लक्ष कृत पापनो, क्षय करे तुरत;
दोय घडीमे मुनिवरु, प्राणायामनीसत्त. धारो॰ १
एक बिंदु जलनो पीये, मास दोयने छेह;
तो पिण प्राणायाम सम, नवि थाये तेह. धारो॰ ११
प्राणायामनी साधना, निश्चयथी हेय;
देवचंद्र जिनधर्ममे, ए नवि आदेय. धारो॰ १२

दूहा.

इंद्रिय सुषयी पाचने, शांत करे निज चित्त;
प्रत्याहार कह्यो तिके, इच्छातणी निवृत्ति.

पापकथक हिंसानिपुण, नास्तिक निर्दय मीत;
सहज क्रूर कपट मदी, कह्यो रौद्र दुधर्मीत. ३
हणे हणावे उपदिशे, चाहे शिवसुखगेह;
जीव हणे अरचे गुरु, हिंसानंदन तेह. ४
घर धिर जीव हण्या लहे, मनमे कौतक नेह;
मन चाहे रणमांहि ए, हारे जीपे एह. ५
वधवार्त्ता दीठां सुण्यां, हरपे ले दुखखाणि;
हुं मुज रिपु कदि मारिस्युं, एह रौद्रमति जाणि. ६
मुज वइरी जीइज छे, हणस्युं कलबल पामि;
हिंसानंदन रौद्रता, किना कहूं परिणामि. ७
परने दुषीयो देषीने, मन पामे संतोष;
परसुप देषी दुप लहे, एह रौद्रनो पोष. ८
द्ये हिंसाना उपगरण, पोषे हिंसक जीव;
वाछ लिग ए रौद्रना, निर्दयपणो सदीव. ९

ढाल—अधिका ताहरा हूंता अपराधी. एहनी ॥

चतुर नर रौद्रध्यानने छांडो, मोटो कर्म मपवासी;
बीजो रौद्र मृषा आनंदे, मृक उत्त मटवासी. चतुर० १
कूडा शास्त्र कुमत देषावी, लोकां व्यसन लगावे;
हय गय रथ पुर कन्या धन वन, कूड मसा देय ल्यावे. चतुर० २
भोला जनने धरमथी पाडे, जूठे पंथ चलावे;
साचो जूठ करे रिपु मारे, कूड रौद्र परिभावे. चतुर० ३
व्यसन संकटमें पाडुं जनने, कूड बोली धन जोडुं;
वचन युक्तिसुं भव कादममे, अज्ञानीजन बोळुं. चतुर० ४

आतमरूप पिछाणवा, ज्ञानदृष्टि धरि देखि; धो॰
पंच ध्येय अरु आतमा, ज्ञान गुणे इक लेखि. धो॰ ५
नित्य छतो छे सहज तो, केवल गुण मुजमांहि; धो॰
मोह दाह तिहां पिडवे, ज्ञान अपून जां नाहि. धो॰ ६
कर्म उदे चउगत भमूं, निश्चय शुद्धस्वरूप; धो॰
कर्म न भंजू केम हूं, अनंत चतुष्टय भूप. धो॰ ७
तजि आशा निज शक्तिस्युं, हुं आनंदस्वभाव; धो॰
छेद अज्ञान अनादिरो, आज लखो निज दाव. धो॰ ८
इम जाणी थिरता धरी, रागादिक मल धोय; धो॰
ध्यावे आतमशक्तिसुं, धर्म शुक्ल ध्यान दोय. धो॰ ९

ध्येयादेय स्वभेद ध्यान; धो॰

कर्मरहित सर्वज्ञता, निरमल शिव भगवान. धो॰ १०
जड चेतन जीवादि ए, ध्येय स्वभाव पिछाणि; धो॰
स्थान रहो मन थिर करो, ज्ञान ध्यावे आणि. धो॰ ११
परमेश्वर परमातमा, ध्येय अरूपी देव; धो॰
द्रव्यार्थिक नय सासतो, इक परमातम सेव. धो॰ १२
दर्शन ज्ञान आनंदमय, अक्षर विगत विकार; धो॰
इंद्रिय विण निकल गुणी, शांत जाण शिव धार. धो॰ १३
भवकर्म क्षय कर शुद्ध छे, ज्ञानतीपरा नित; धो॰
सकल सकल आदर्शस्युं, जाण ज्योतिमय चित. धो॰ १४
शुद्ध अगुरुलघु छे, निर्मल अमय अभेद; धो॰
परमातम अक्षय गुणी, ज्ञानीने अवेद. धो॰ १५
अरूपी पण जे सूक्ष्म छे, तनदर्श पण जे शुद्ध; धो॰
अनंत तत्व निर्मल सदा, परमातम नित सिद्ध. धो॰ १६

•.•

धर्मेध्यानमांहे दहे, ए कुध्यान सहाये;
गेर्गा विषय कषाय गृहीने, निंद्य ध्यान बहु थाये. चतुर० १७
दृढ संस्कार पृथक्कृतयोगे, मुनिने पण मस्तावे;
आवे पिण निज अनुभव आगली, कायर जिम नासी जावे. चतुर० १८
ध्यानयुगल कटुफल मलआगर, दुरति कुगतिनो स्वामी;
देवचंद्र ए हेय कह्यो छे, छोडो शिव विसरामी हो. चतुर० १९

दूहा.

उपशम धरी मन वश करी, तजी भोग अनुराग;
अनुक्रमथी वर्णवुं, धर्मध्यान मग लाग. १
मैत्र्यादिक चउ भावना, ध्यान तणी गत योग;
ते ज्ञानी मुनि शांतमन, तेह ध्यानने योग. २
थाय संगम जीव सर, के हिंसक के शांत;
के गुण के दुपवरक्के, के विषयी के दांत. ३
निज स्वभाव पाम्यो सकल, सहु पाम्यो गुण गेह;
समदर्शीभावे मुनि, मैत्रीभावन एह. ४
गेर्गा दीन सशोकमय, वध बंधनथी नद्ध;
गय तृषा भ्रमणे नड्या, शस्त्रघात भय रुद्ध. ५
मरणभये पीडित मर्णी, रक्षानी मति लेह;
अभयदान मति निरमली, करुणाभावन तेह. ६
दरशन ज्ञान चरित्रगुन, तत्त्वदर्शन सम धार;
जित कषाय मृष्णारहित, सुमति सुपति भंडार. ७
जिनशासन परि भावना, नित निज परणती देखी;
मन प्रमोद पामे अधिक, मुदिता भावन पेखी. ८

बहिरातम इक भेद सुनी, अंतर आतम बीय;
ध्यान ध्येय एक तत्त्व धर, परमातम प्रभु तीय. ४
आतमबुद्धि तन उपरा, परागी गुणहीन;
सो बहिरातम जाणज्यो, मोहनीदलय नीच. ५
देहराग प्रेमराग तजि, निज आतम पहिचान;
परमातम सम भावीनो, अंतर आतम जाण. ६
निर्विकल्प निर्लेप शिव, केवलज्ञान सुभान;
शुद्ध बुद्ध आदेय शुचि, परमातम गुणखानि. ७
देह राग परभाव तजो, भक्ति बहिर्मुख भाव;
निर्विकल्प मुनिभावयुत, शुद्धातम गुण ध्याव. ८

राग—म्हारे मीभजीयां नपणगो पाणी लागणो पाणी ...

चेतन पुद्गल भिन्न करो निज भावथी, ज्ञानीजी
तो सुख माने एक विवेक प्रभावथी; ज्ञानी०
इंद्रिय देहसुं नेह तजो परभावसुं, ज्ञानी०
सुर नर तिरियग योनि रहू भावसु ए. ज्ञानी० १
अज्ञानी नवि जाणे आतम आपणो, ज्ञानी०
परमातमसम जाणे जन तन सुणी ज्ञानी०
आतमबुद्धे शून्य अचेतन दाखवे. ज्ञानी० २
अज्ञानी धन पुत्र कलत्रने आपणा, ज्ञानी०
निज अचेतन रूपमां निज जाणतो, ज्ञानी०
पशु धनादिक काय निजने जाणतो. ज्ञानी० ३
देहमां निज बुद्धि अज्ञान अनादिनो, ज्ञानी०
देह जीव भिन्न एक हवे ते दाखवो; ज्ञानी०
देहनिय निज बुद्धि टळे मन मोह ए, ज्ञानी० ४

[illegible]रे० मोह क्षोभ मनने करे, अरिष रुधिर हुवे लेयी मोरा लाल;
[illegible]मशब्द जीहां जीवना, ध्यानी न रहे तेयी मोरा लाल. भावो० १०
[illegible]रे० ध्यानवंसना जगतमे, जिके कारण जाणि मोरा लाल;
ते निश्चयसुं मुनि तजे, देवचंद्रनी वाणि मोरा लाल. भावो० ११

दूहा.

शेत्रुंजादिक तीर्थ शीर, वली कल्याणक ठाम;
सागर गिर वन गव्हरे, नदी तीर गढ धाम. १
तरु कोटर उद्यानमे, गुहागर्भ समशान;
जिनगृह आदिक थानके, मुनि आंरंभे ध्यान. २
गनकोलाहल मन करी, निरुपद्रव सुप थान;
मुंहर मंडप शून्य गृह, मुनि आरंभे ध्यान. ३
घन तप वायु तुषारथी, जिण थानक नहि हाण;
जिहां मन धरे रागादि नित, मुनि आरंभे ध्यान. ४
काष्ट शिला भूपट्ट परि, आसन मंडे साधु;
वज्र वीर पर्यंक तिमः कायोत्सर्ग अगाधु. ५
जिन आसन मन थिर रहे, तेही ज आसन सार;
काउसग पर्यंक दो, आसन पंचम आर. ६
प्रथम संघयणी निर्भयी, थिर आसन मतिधीर;
शुद्धध्यान धरि आपणो, सिद्ध लहे मुनिवीर. ७
नवि चाले स्वभावथी, आय मिल्यां अति दुप;
सहे परिषह संवरी, निज आतम सनमुप. ८
हरि अहि हाथी असुर भय, भूमि भ्रमण विधान;
चक्र शूल दुप उपना, धीर न छोडे ध्यान. ९

ज्ञानी रहे अबंध कि ज्ञान प्रसादथी, ज्ञानी०
मिथ्यात्वि बंधाय अज्ञान प्रसादथी; ज्ञानी०
नव मे दीठा दुःख सहू परसंगथी, ज्ञानी०
न पडे भवमे कोय के ज्ञान उमंगथी. ज्ञानी० ॥

ए आतम निज पास अछे ज्ञानी लहे, ज्ञानी०
बाहिर देखे तेह निकामे दुख हे; ज्ञानी०
सोहं सोहं आपरम्यायी जेहु रे, ज्ञानी०
ते परमेष्टीरूप तत्त्व निज गुणवरे. ज्ञानी० ॥

सिद्धांतमे पण एह एह परमीश छे, ज्ञानी०
देखणहारो एह एह जगदीश छे; ज्ञानी०
इंद्रियथी मनथा धरो निज ज्ञानमे, ज्ञानी०
निज जाण्या विना दुख अछे तप दानमे. ज्ञानी० ॥

ज्ञानसुधारस युक्त खेद दुख नवि सहे, ज्ञानी०
राग द्वेष मलहीन वीन निज गुण लहे; ज्ञानी०
निर्विकल्प मन थापी करो निज काजने, ज्ञानी०
चंचल चित्त न देखे ते निजराजने. ज्ञानी० ॥

राग द्वेष अज्ञान हरो क्षण एकमे, ज्ञानी०
ज्ञानानंद सरूप स्व आत्मविवेकमे; ज्ञानी०
निज अज्ञानेज कर्म जाय निज ज्ञानथी, ज्ञानी०
कर्म न तूटे तपथी ते गले ध्यानथी. ज्ञानी० ॥

देह बुद्धिथी बंधमोक्ष आतमगुणे, ज्ञानी०
तीन लिंग विगु नित्य शुद्ध आतमगुने; ज्ञानी०
योगीने निज ज्ञानथकी परमम पदे. ज्ञानी० ॥

अंतर तजे वहेलेह तत्त्वविण मूढथी, ज्ञानी०
शुद्धातम शुभसहज गहे अतिशुद्धथी; ज्ञानी०

थिर मन ऋजु तन धारे, विश्रामभूरति आकारे हो; मुनि०
मन मल धोय विवेके, निज ज्ञानथी राग न रोके हो. मुनि० ११
सागर जेम गंभीर, कनकाचल जिम अति धीर हो;
शांत समस्त विकल्प, नाठी गहू भ्रमणा जल्प हो. मुनि० १२
दपद विश्रामसम जाणे, जसु सुरति सहू सम जाणे हो, मुनि०
थिर आसन गुणगेह, शुद्धातमध्यानी तेह हो; मुनि० १३
इण विधि ध्यान जे ध्यावे, ते देवचंद्रपदवी पावे हो. मुनि० १४

दूहा.

ध्यान सिद्ध निज शुद्धिने, मन धर प्राणायाम;
आगमरीति वर्णवुं, कारण शिवसुख टाम. १
मन थिर प्राणायाम विण, करि न सकेइ कोय;
पूरक कुंभक रेचके, तीन भेद सो होय. २
बाहर आंगुल पांचिने, ले पूरिजे वायु;
पूरक पवन कह्यो तिको, पवन स्थाणमे रायु. ३
रुंबे थिर करि पवनमे, नाभिकमल थिर पंति;
कुंभ तणी परि तेहने, कुंभक पवन कहंत. ४
हल्वे हल्वे नीसरे, कोठार्थी ले वायु;
चित्त शांन कारण तिको, रेचक पवन कहाय. ५
नाभिरंद हृदिपदम विचि, पवन नाथनो टाण;
आयु शुभ फल कहे, पवन चालिवा जाण. ६
जोगी पवनाभ्यास धर, जाणे चेतन चालि;
हृदयकमलमें आणीने, पवन सहित मन वालि. ७
विषयाशा मन जप्प सह, घट त्रवे निज नाण;
अक्ष कषाय नाने अलग, स्वांतभावना आण. ८

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ते हवे नागाविवर पुरि उष्ण पीले रंग जे,
अति स्वस्थ हलस्यो आठ अंगुल हृदय नासा संग जे;
अति शीघ्र शीतल श्वेतवरणे वरुण वायु वहे सदा,
अनुभवे पवन विहार जायक द्वादश अंगुलचर मुदा. ३
वहे तीछो रे छ अंगुल रंग श्याम ए,
शीत उन्होरे फरुस पवन पुर धाम ए;
चोंगुल रे अर्द्धवृत्त नवदवसमो,
अति उद्धोरे अग्नि तत्त्वथी मन दमो;
थिर कार्य पार्थिव तत्त्व दाख्यो वरुण उत्तम कामने,
चल मलिन काजे वायु वसिक जिनवह्नि तत्त्व सुधामने;
गज तुरग रामा राज्य धन शुभ लाभ भूतत्त्व उपदिसे,
स्त्री राज्यधन सुप सुजनअमिमन सिद्ध वरुण समादिसे. ४
भवपीडा रे शोकविघ्नपरंपरा,
दुम ताने रे वह्नि तत्त्व दुपकंदरा;
भप कलिकर रे वैरमगदायक अछे,
वायुतत्त्वे रे सिद्ध कार्य पण क्षय गछे;
क्षय गछे पमवेदाकाळे तत्त्व चारे सुपकरु,
ते पलणते अहित दुपकर तत्त्व च्यारे भयवरु;
ते पेसता रवि सोम नाडी सुप कारण जाणिज्यो,
जो नीकले द्वय नाडी सेती अछे दुपनो षाण तो. ५
वामनाडे रे तत्त्वभूमि जल सुप सुने,
नीसरता रे अग्नि पवन रविथी हणे;
चोमंडल रे गमनागमन पवनने,
तस दायूं रे भलो पूरो फल जमने;

दोय प्रमाण निक्षेपा चारथी रे, सातनये युत ए स्याद्वाद रे;
हेतु युकति करि ते हणत्रो नही रे, जिनवर न वदे कूडावाद रे.
ध्यान० २

स्वाभावि स्वाधीन त्रिकालमे रे, ए छे गुणपर्याय अनंत रे;
आज्ञाना सिद्ध द्रव्यने मानितू रे, व्यय उत्पादन ध्रुगुणवंत रे.
ध्यान० ३

श्रुत ज्ञान निरमल जिनवरदाषीयो रे, शब्द अर्थ यूं नित्यचितार रे;
शुद्धाशुद्ध द्रव्य जाणे सहु रे, तेह शक्ति जिन श्रुतनी
सार रे. ध्यान० ४

पूर्वापर अविरोधी शुद्ध ए रे, निकलंक अनादि गंभीर रे;
सर्व जाण नय उपनय युक्त छे रे, गहन अरथ मुनि वंद्य
सुधीर रे. ध्यान० ५

रत्नकर जिमे शोभे अतिघणो रे, पद अधिकार रंगथी युक्त रे;
कुमति सर्प्प मिथ्यातम गालवा रे; ग्रीष्म रविसम जेहनी
सक्त रे. ध्यान० ६

त्रिभुवन पूज्य शुद्धि कर आतमनो रे, जसु अनुयोगादिक चउ भेद रे;
द्रव्यार्थिक पर्यायनये करि रे, सादि अनादि अछे गत
छेद रे. ध्यान० ७

नय निक्षेप करी कसवटी समो रे, कुमति भुधर भंजणहार रे;
उत्तम संत मुनिने ध्येय छे रे, आगम जलधि अनंत
अपार रे. ध्यान० ८

त्रिभुवन पूज्य जन्म भय क्षय करे रे, स्यात्पद लक्षण युत ध्येय रे;
उत्पादादिक युत पद द्रव्य छे रे, जिन भाष्यो श्रुत ए
शिव देय रे. ध्यान० ९

गम नन्न टाँपे नाहि ग्राह पवन पन्नरहनो जय वहो.
नवि नाड देग विषम नाह शम्म मरानन टलोः
रोगानं मूनदृष्टीन गोड गम्म नानो रूर.
इनि नाहि धारी हटे मनी नो उभयनो दुष हर. हा० ३० ९
धान नाही रे वायु पूर्ण जन जो वने.
दृष्टिननी रे निंद्र नुन निद्रा उनदिने:
जय जीवन रे धन नन लाभादिक वह.
हनिष्टल रे पवननाड्यां मुग गहृ.
मुप सहू जाने पवनने वी पुष पाडे आपनो.
ठे पवी जाने मग्न जीवन मुप दूगनो चांपगोः
नदि धीम टाने वहन भूंम वहु दिने काग्न सरे,
प्र तुच्छ टाने पवन अंग छिद्रना विन क्षय करं. हा० सि
धीम जाने रे जलनच्चे दिर भूमिने,
वीप टाने रे वहे पवन मून अगनिनेः
वह्निनच्चे रे घोर युद्ध भय अनलने,
भूमिनच्चे रे युद्ध जय वर्दी वरुणनेः
वरुणने दोने अधिक दोवे मित्रु पावे रिपुपको,
कै शत्रुदलनो भंग पावे वने जगने जस वकिः
भूतत्वमांहे पाप वर्षा वरुणनच्चे अति सही,
झड पाप धन वित्रु पवननच्चे वह्निनच्चे धन न
भूजलने रे सस्य बहून अनि हे सही,
नभ पवने रे मव्य अग्निने हे नहीः
गुरु राजा रे वंध इन्द्र मिटवा भनी,
मने हिन रे सिद्धि चाह नारीतनीः



एक रे योगी सरव कारिज पवनने परभाववी,
जे करे नाडीतणो शोधन योग मारग दाखवी;
अति चपल ए छे पवन दुरगम वसत भवने वास
ते लघी जोगी तजी आलस करत नाडि अभ्यासमे. हां

दूहा.

हिव नाडीरी शुद्धिता, कहुं ग्रंथ अनुसार;
जसु अभ्यासे जाणिये, पवनतणो परकार.
कला सहित इक बिंदुयुत, रेफाक्रांत हकार;
नाभिकमलमे चिंतवे, अर्हं अक्षर सार.
शोडश वेण हकारथी, रविसम भासुरकांति;
अग्निज्वालयुत अग्निकण, मालाथी आक्रांत.
चपल बीजसम भ्रमथी, रुंध्या दसदिसी पंथ;
इंद्र चंद्रने साध्य नहि, नभचारि ग्रह मंथ.
शरदचंद्रसम धवलप्रभ, मंद मंद नभचार;
क्षरे सुधा लिलिनाडिमे, पूरे पवन उदार.
नाभिकमलमे आणिने, धरे पवन थिर देश;
करे चितवी पवनने, निक्रम अने प्रवेश.
नाभिकमल हृदय कुंज, आणे धारे वायु;
नाडिशुद्धि करे तिहां, दहन मंडले आयु.
रवि नाडीथी निसरे, चंद्रे पेसे वायु;
इम नाडीशुद्धि कीजतां, सहु इच्छा क्षय जाय.

ढाल—योग लियो राजा भरतरी. एहनी ॥

सात्रा च्यार घडी रहे, वायु एके माहि;
पीछे पीजी नाडिमे, जाने ते ढाहि ढांहि.



निःसंगी मन संवरी, कछु जेम दमि अंग;
मनवारी मुनि संवरी, धरे ध्यान सुचरंग. २
इंद्रिय दमि मन वश करी, धरे भाल धरी ध्यान;
तजि उपाधि मन स्वच्छ करी, चित्त धरे सम थान. ३
प्राणायाम अभ्यासथी, मन नवि पामे थान;
निज समाधि थिर साधिवा, प्रत्याहार प्रधान. ४
शांत संवेगी रागविण, मुनि नवि साधे वायु;
आतमज्ञानी मुनि तजे, प्राणायाम उपायु. ५
वायु धारणा दुक्कर करे, मन पामे बहु खेद;
अथिर सिद्ध नियमथी नहीं, तिण न कह्या बहु भेद. ६
इंद्रि दमि मन आदरी, धर्मध्यान थिर चित्त;
नेत्र श्रवण युग भाल मुख, नाभि हृदय मुख चित्त. ७
नासा अग्र तालुए, इत्यादिक तन अंक;
तिहां इक थानक मन करी; धरे ध्यान उमंग. ९
शांत चित्त मुनिने ठवे, ज्ञान ध्यान निज चित्त;
प्रत्याहार सुधारणा, दाखी ध्यान निमित्त. १०

ढाल—रंगीले आतम एहनी.

भ्रम अनंतथा जीवने, बंधे भवने कर्म; धरो निज भावना० १
राग द्वेष सुरदिसटला, सहु हणी धरि ध्यान; धरो०
आतम रूपो निजज्ञानथी, घाती कर्म अज्ञान. धरो० २
कर्म हणु निज ध्यानथी, जिम न पडुं भवमांहे; धरो०
भव भ्रम अज्ञाने नड्यो, नवि दीठो शिव राह. धरो० ३
परमानंद जगगुरु टल्यो, नैगम विषयने संग; धरो०
स्वयं आतम नवि लख्यो, मन अज्ञाने रंग धरो० ४

सुखसंपद सुरवामनी, उपमा कही न जाय;
पंचरंग मणी चैत्यगृह, वन वापि तिहां थाय. ९
गढ परिख्या तोरण सहित, पोळि चैत्यमणीरूप;
सामानिक तनुरक्षकर, सग अनीक इक भूप. १०
थिरशृंगार सुपीन कुच, शशीमुख सुरनी नारि;
कामकेळि गुणआगरु, लक्ष्मीने अनुहारि. ११
सुंदर गुण अणिमादियुत, भूषणयुत मतिधीर;
पंडित विनय सुजाण नर, जसु अम्लान शरीर. १२

ढाल—धारा म्होला उपर मेह झरूपे दामनी. हो लाल झरोपे दामनी. एहनी ॥

नही य दुषी को रोग को तिहां दीन छे हो लाल, नरो॰
थिर शोभा छे जास वास सुखमे अछे हो लाल; वास॰
सभ्य समानिक मंत्रलोक तनुपाल छे हो लाल, लोक॰
गायन नट्टपा एम विविध सुरमाळ छे. विवि॰ १
देवलोक सुखओक सदा सुखमे रमे हो लाल, सदा॰
शांतरूप गुणवंत सहज मनमे गमे हो लाल; सह॰
नितनित नवनव रंग गति जयजय सदा हो लाल, गति॰
सातधातु गुण देहरूप सुखकर सुदा हो लाल. रूप॰ २
अतिसुकुमाल शरीर चतुर पंडितवरु हो लाल, चतु॰
रोग शोग भयहीन शांत जिम निशाकरु हो लाल; शांत॰ ३
महाऋद्धि गुणवंत जिहां सुर अति घणा हो लाल, जिहां॰
देव सभा सोहाय इंद्र सरीषा बन्या हो लाल; इंद्र॰
[illegible] सुख सदा मन ऊमहे हो, सदा॰
[illegible] भूमि सदा सुप गुण गहे हो लाल. सदा॰ ४

ध्याने कर्म सहु गळे, जग गुरु अमर अनघ. धगे०
जिण जाणे सहु जाणिये, जाय अविद्या धूप. धगे० १७
तत्त्वदृष्टि निज थिर हुवे, जागे निज अनुभूतिः धगे०
हेय ज्ञेय आदेय ते, अंतर आतम भूत. धगे० १८
वचन अगोचर मन विना, चेतनवि सहज अनंतः धगे०
जाण ज्ञानने अंतरंग, भासे द्रव्य अनंत. धगे० १९
आत्मज्ञानथी आत्मने, जाण्यां पावे सिद्धिः धगे०
मुनि तत्त्वव गुण तिहां रहे, नहि इहिक प्रहि लद्धि. धगे० २०
लीन थई रहे एकता, ध्याता ध्यान मुनेय. धगे०
परमातम अंतरातम. [illegible] धगे० २१
कर्म कष्ट करतां [illegible] धगे०
जिण ध्यान हेय ए आतम. [illegible] धगे० २२
भवने भम्यो अज्ञानथी, जिण [illegible] निज [illegible] धगे०
परमज्योति जग दुपहन, नैहदिन अनुभव [illegible]. धगे० २३
भावे इम निज भावना, ध्यान बीज गुण धाम. धगे०
देवचंद्र सुपसागरू, ध्यान अमोलक पाम. धगे० २४

दुहा.

निज स्वरूप जाण्या विना [illegible]
तिम आतमराम [illegible]
आत्मज्ञान विन [illegible]
आवा परना [illegible]
तिण मुनि आतम [illegible] पनामुक्त
निर्विकल्प ते उपदिश. [illegible] गुण युक्त.

परमातम आदेय सदा थें आदरो हो लाल, सदा०
अक्षर त्रयगुणयुक्त देवमुनि मन धरो हो लाल. देव० ११

दूहा.

हिव पिंडस्थ पदस्थ वलि, रूपी रूपातीत;
और ध्यानविधि च्यार ए, ध्यावो धरि प्रतीत. १
तिहां पिंडस्थध्यानथी, पिण धारणा अनूप;
पार्थिव आग्नेयी पवन, वरुण तत्त्व स्वरूप. २
मुनि तत तीन छे लोकसम, जलधि जेम आकाश;
जंबूद्वीप सहस्रदल, मेरुसिंहासन भास. ३
तिहां बेठो यो सवर, ध्यावे आतमध्यान;
मन भमे ने वशी करे, सो पार्थिवगुण मान. ४
थिर अभ्यासे नाभिमे, कमल सोळ दल सार;
पत्रे सुरगण चिंतवे, अर्हं मध्य उदार. ५
तिण अर्हंथी अग्निगण, हृदय अष्टदल देह;
ऊंचे मुख अष्टकर्मने, दहे बल ध्यान तेह. ६
वह्नि बीज समकीतसहीत, मंडले अग्नित्रिकोण;
धूमरहित कलधौतद्युति, दहे कर्म भगोंण. ७
दही कर्म ले शांतता, तृण विन अग्नि समान;
धरे शुद्ध निज धारणा, ए आग्नेयी मान. ८

ढाल—कूमरी बुलावे कूवडो. एहनी ॥

ध्यान पिंडस्थ विचारीये, शुद्धातम गुणधामो रे;
आतमः स्वभाव ए, लोकालोकनो सामो रे. ध्यान० १
आतमशक्तिस्वभावथी, कर्मधूलि उडावे रे;
ते पिंडस्थ सुध्यानथी, वायुधारणा पावे रे. ध्यान० २

इंद्रिय विषय तजी रमो निज ज्ञानमुं. ज्ञानी०
नहि परिणमन लगो निज ध्यानमुं. ज्ञानी०
ते गुण दीसे एह रूप पर हेय छे. ज्ञानी०
ज्ञान स्वरूप अनुपम आतमज्ञेय छे. ज्ञानी० ५

ज्ञानी जेयज एह जुडे निज आनना, ज्ञानी०
तेह अज्ञानी जीव क्रीये पर्यानना. ज्ञानी०
निज गती पन्थणी ज्ञानी निज मनेः ज्ञानी० ६
वस्तु नायकन तेम देहतनना दले. ज्ञानी०

नयनने भ्रम भागे सांधडि तिम कही, ज्ञानी०
देहबुद्धीने त्यागथी चेतना रह लही. ज्ञानी०
एह. डोप रूप वचन रचनने प्रभु नहीं. ज्ञानी० ७
ज्ञानरूप पर ज्योति त्रिभुवने पु नहि. ज्ञानी०

तिनतुं जगनुन तजे जाणे मह्नुः ज्ञानी०
निज संवेदन गम्य पु आनन गुन मह्नुः ज्ञानी०
रागद्वेषनो नाश हुवे जिन ओटने, ज्ञानी० ८
नहीं शो गुन दिठ मीन न कोई मने टरे. ज्ञानी०

परवस्तु सव रीत शुभन लव तेहने. ज्ञानी०
शुद्ध निज मन रीत रहे ते निज मनेः ज्ञानी०
शुद्ध सांस ज्योति सनातन जानदू. ज्ञानी० ९
अरुप अनन्त रेखो अनन्त नानदू. ज्ञानी०

नहि परिणमन मन भजे निज आनना. ज्ञानी०
निरन्तर जाणो निज तिमो समनना. ज्ञानी०
पर संयोगे देव मोतवर त्यागवा. ज्ञानी०
देवचन्द्रसूरी करो मन रागवा.

९२

[illegible] [illegible]०
[illegible] [illegible]० १७
[illegible] [illegible]०
[illegible] [illegible]०
[illegible] [illegible]०
[illegible] [illegible]० १८
[illegible] [illegible]०
[illegible] [illegible]० १९

दुहा

[illegible]
[illegible] १
[illegible]
[illegible] २
[illegible]
[illegible] ३
[illegible]
[illegible] ४
[illegible]
[illegible] ५
[illegible]
[illegible] ६
[illegible]
[illegible] ७

आतम अनुभव[illegible], अशरण हवे सर्व हे [illegible],
[illegible], निश्चल [illegible] भवि [illegible] ॥
आतम आतमध्यानथी, निश्चयी [illegible] हे [illegible],
[illegible], मुनि धर्म [illegible] ॥
आतमज्ञान अनुभवथी, [illegible] मुनि [illegible] हे [illegible],
ज्ञान [illegible], ते गुण आतमनो [illegible] ॥
निर्मल थिर थया मुनि, निज आतमध्यानथी [illegible] हे [illegible],
निज स्वरूप गुणने अनुभवी, पावे [illegible] हे. [illegible] ॥
[illegible] अनन्त[illegible], मुनि पावे केवलज्ञान हे [illegible]
[illegible] हवे, [illegible] हे. [illegible] ॥
ए आतम [illegible], पावे निर्मल [illegible] हे [illegible]
एह [illegible], [illegible] ॥
[illegible], [illegible] हे [illegible]
ए [illegible] ॥
ए [illegible] ॥
[illegible] हवे [illegible] ॥

दूहा.

[illegible], मुनि धर्मे [illegible] १
[illegible], [illegible].
[illegible] २
[illegible], [illegible].
[illegible], [illegible] ३
[illegible], [illegible]
[illegible], [illegible] ४
[illegible], [illegible].

विबुधानंदन वियागेह छे रे, शिव प्रस्थान पडह सम एह रे;
तत्त्व कथक अज्ञान विना सहु रे, उत्तम मणज्यो ए श्रुत
एह रे. ध्यान० १०

कुमतिभंजक रंजक मुनितणो रे, मोह गमावी शिव दातार रे;
साधु वंद्य क्षय गुण घे जीवो रे, एम जिनागम आदरि
सार रे. ध्यान० ११

आज्ञाएन निज आतम भावज्यो रे, केवल ज्ञानादिक गुण खाणि रे;
सद्दहिज्यो निश्चय श्रद्धा करी रे, इम ए देवचंद्रनी वाणि रे.
ध्यान० १२

दूहा.

कर्म नाश करवा भणी, धरे मुनिवर ध्यान;
तेह अपाय विचय कह्यो, थाया रे निज ज्ञान. १
स्याद्वाद पाम्या विना, भवदुख लह्या अनंत;
जिनवच पेत समो कह्यो भवसायर बूडंत.
महा व्यसन दवदान ए, भव वन भमनां आज; २
आत्मज्ञान पामो तुम्हे, मीलण शिव सुख काज. ३

ढाल—लाल गमावे रे ढालची. एहनी ॥

ध्याननी विधि सांभलो, अपाय विचय जसु नाम;
जन्मअंध कूपे पड्या, काढि दे शिव ठाम. ध्यान० १
मिथ्या अविरत जोगथी, बांध्या कर्मकलंक.
ते मुज छूटे रे किणपरे, थाउ हुं य निकलंक. ध्यान० २
धर्मरत्ने किम दुरा सहु, हुं य सिद्धस्वरूप;
धर्मसंन्यसी वेगलो, हुं छुं निजगुण भूप. ध्यान० ३

सहज रौद्र भयकार जे, क्षेत्रादिक दुःख थान;
बहुत शीत तप घन रहिन, ते रीत शुद्ध करि मान. ६
दीन ताप वर्षा प्रबल, इनि भीति दुप हेतु;
कर्म किन निज भावयुत, प्रशम भाव सुर केतु. ७

ढाल—सुगुण सोभागी हो साहिब मारा एहनी.

कर्म विपाक विचारो इण परे, आतम मित अतार सोभागी;
मूल भेद आठ कर्मतना कह्या, जन्म मरण भयकार. सोभागी० कर्म० १
ज्ञानावर्ण कर्म अज्ञानमय, घाती पंच प्रकार; सो०
बीजो घाति नवविध कर्म छे, दर्शन ढांकणहार. सो० कर्म० २
मधुयुत असिधारा सम वेदनी, द्विविध वेदनीय जाण. सो०
सुन्तर उत्तम मद सुख अनुभवा, साता उदय प्रमाण सो० कर्म० ३
आधि व्याधिथी दुःखे प्राणीयो, तेह असाता रे कर्म; सो०
दर्शन मोह हणे समकित भणी, तीन भेद बहु भर्म. सो० कर्म० ४
चारित्र मोह उदे निज भावथी, न रहे चारित्र शुद्ध; सो०
लावो पण पाडे परमादथी, भेद पचीस विरुद्ध. सो० कर्म० ५
सुर नर तिर्यंग नरक योनिथी, आयुकर्म हडि जेम; सो०
तीन पुण्यने एक छे पापने, सुख दुख दायक तेम. सो० कर्म० ६
नाम करमथी नाम बहु लहे, गति जात्यादिक भेद; सो०
भेद प्रयाणुं विचारे समो, गोत्र करम दो भेद. सो० कर्म० ७
दानादिक पण शक्ति भणी हणे, तेह करम अंतराय; सो०
उत्तरभेद कह्या अडतालसो, चेतनने दुखदाय. सो० कर्मवि० ८
संवरवंत मुनिवर आगले, चडताशुणनी श्रेणि; सो०
कर्मवंदने भेद करे वली, क्षपककारी पिण तेण. सो० कर्मवि० ९
इहि समताप खपावे कर्मने, तुर्य ध्यान संयोग; सो०
ज्ञानि निर्मल कर्म खपावीने, दीपे शुद्ध निरोग. सो० कर्म० १०

निरवंध न छिजे तिहां, निरदय पापी सर्व;
हुंडाकृति कुध्यानगत, रौद्रप लिये दर्व. ११
वरे पूति दुर्गंध अति, क्रूरे रौद्र अति घूर;
रौद्रध्यान अति चिंतवे, निज पितापी भूप. १२
विभंगनने बल जाणिने, निजकृत कर्म स्वभाव;
अज्ञानी अति दुख धरे, ज्ञाता उपशमभाव. १३

ढाल—कुशलमाहा हो पोटि. पूढनी ॥

साथ मोक्ष मुनि सहो ज्ञानी, संवेगे नरभव लही; म्हारा वाल्हा०
तजि विषया सारी सहो ज्ञानी, कर्म हणे तप आदरी; हो० म्हा० १
सावे इच्छित देह, ज्ञानी० कष्ट पड्यां धर्म नवि तजे; म्हा० क०
देहिज ज्ञाननो गेह, हो० तजि प्रमाद निजगुण भजे. म्हा० क० २
हितवत्सल गुणवंत हो० तिण मुनिने बहु दुख दीयां; म्हा० क०
विगत दुख पड़त हो० दुख सहित प्राणी निज कीयां म्हा० क० ३
ने अज्ञानने टाग हो० चर थिर जीव हण्या घणा; म्हा० क०
परधन परस्त्री राग हो० व्यसन पड्यो परवशपणो. म्हा० क० ४
रौद्रध्यान वश एह हो० दुख स्या में नरकना; म्हा० क०
इंद्रिय सुखने नेह हो० टोक टम्पा में कूडणी. म्हा० क० ५
जे वे मार्यां पृष्ठ हो० वे नृप मारे न्यायथी; म्हा० क०
रोस म करि इहां जूठ हो० एतो वारो आपणी. म्हा० क० ६
निज हित नरभवमांहि हो० न कीयां तो हिव स्या हुवे; म्हा० क०
भंजी धर्मनो राह हो० नीच करम बांध्या घणा. म्हा० क० ७
ग्राम नगर दे दाह हो० निरवद्ध जीव हण्या घणा; म्हा० क०
ते सुख दुख दे साही हो० कर्म छोडे वदनी परे. म्हा० क० ८
स्युं करुं जाउं केम हो० परवश कर्मवशे पड्यो; म्हा० क०
हुं दुःख देखुं एम हो० अगुप्तिवश पारकाए. म्हा० क० ९

चढे गुणश्रेणि असंख गुण नित वधे, कर्मदल विहपिने तास नासन धरे;
दशम गुण लोभनो क्षय करी बारमे, गुण घडी कर्म घाति भणी
ते वमे. ११

तेरमे थानके केवलज्ञानने, दरसण चरण वीरज्ज अनंतने;
पूर्व नवि लद्ध ते गुणचतुष्टय लही, देव सर्वज्ञ भगवान ते गुरु मही. १२
जेहना नामथी कर्मबंधन गले, जन्ममरणादिविनु सिद्धसुखने मिले;
अगम अगोचर ज्ञानसंपद धरे, शेष अघाति चोकर्म हिव क्षय करे. १३
मास छ शेष आयुष थकां जे लहे, केवल ते समुद्घात निश्चय वहे;
आयुथी वेदनीकर्म जो अधिक छे, तो समुद्घातने आदरी
सिर गछे. १४

चवदह राजनो दंड पहिले समे, बीय कपाटमंथाण तीजे समे;
भुवन पूरे सहू आतमपरदेशथी, समे चोथे जगव्यापक आपथी. १५
कर्मचतुष्कने सम करी केवली, ते वली संहर आत्मप्रदेशावली;
अनुक्रमे च्यारविधि चोसमे संहरे, अड समयमांहि यय समय नो
आदरे. १६

दूहा.

कोय करे को नवि करे, समुद्घात विधि एह;
ज्ञानी धर्म वदे इसो, स्याद्वाद गुणगेह. १
द्रव्य क्षेत्र काल भावथी, निजरूपे सदि अग्नि;
पर द्रव्यादिक देखना, नाग्नि सदिन गह वस्तु. २
एकगमे दोउं अछे, अग्निनाग्नि तिण थाय;
अवक्तव्य चोथो भिने, जे एकगमे न कहाय. ३
अवक्तव्यपुन भंगत्रय, मेलवा भांगा सात;
[illegible] नगोदर्दा सिद्ध लगि, सप्त भंग थिर वात. ४

संग्रहनय दाख्यो भावे, ते विहचे करि विधि दाखे रे; निज०
विहचे गुण पर्याय भेदा, ज्यां लगि अविभागी छेदा रे. निज० ८
घट दाख्ये घटनी जाति, आवे सहु न पडे भांति रे; निज०
संग्रहनय भेद कहाय, चेतन जड भेद न पाये रे. निज० ९
पण जड एक चेतनरत्न, संसारी सिद्ध महंतो रे; निज०
दरशण नाण चरित्र, इकना त्रय नाम पवित्रो रे. निज० १०
इत्यादिक विभजनकारि, नय व्यवहार विचारी रे; निज०
ऋजुसूत्रे ऋजुमग साहे, गतागत काल न चाहे रे. निज० ११
विद्यमान कालनी साखे, सगारी अरु शिव आखे रे; निज०
दाखी ऋजुसूत्रनी वाणी, हिव सांभल शब्द कहाणी रे. निज० १२
लिंग संख्यादिक व्यभिचारो, न करे जिहां अर्थ विचारो रे; निज०
घट अक्षर दोय भासे, तव नीर आधार प्रकासे रे. निज० १३
जिहां चेतन शब्द कहावे, तिहां ज्ञानादिक गुण आवे रे; निज०
निशद मंज्ञाशब्द ग्रहीये, हिव समभिरूढनय कहीये रे. निज० १४
नाना शब्द इक अर्थ, आरोहे नांही अनर्थ रे; निज०
इन्द्र शक्र पुरंदर, ए नाम भेद कहेसो रे. निज० १५
[illegible] गुण [illegible] जिणग, केहेज दाखे ते निगग रे; निज०
[illegible] चेतन [illegible] नहीं जडना चेतनमांही रे. निज० १६
[illegible] नाम [illegible], तो शिव भाखे एक रे; निज०
समभिरूढ [illegible], हिव एवंभूतनय भाखीये रे. निज० १७
[illegible] आणे रे; निज०
[illegible] जाणि रे. निज० १८
[illegible] कहेता [illegible] रे; निज०
[illegible] सिद्ध [illegible] रे. निज० १९

करुणा धारणा [illegible] [illegible] र
आनन्दधान मुनीन्दे [illegible] र.
तान धातु नन मन बिन [illegible] र धान० ३
ज्ञानादिकअतिशयधर [illegible] र
निजकर्म निरुपाधिए [illegible] र. धान० ४
ध्यान नित्य हृदि [illegible] र.
उज्ज्वल निर्मल आनन [illegible] र धान० ५
धारक (गुण) अनन्तनो [illegible] र
ये मह रागस [illegible] र धान० ६
ये पूर्वकृत कर्मने [illegible] र
मांहि निज अनन्त [illegible] र धान० ७
[illegible] र धान० ८

दूहा

उत्तम पद [illegible]
नित्य [illegible]
पीडा [illegible] ५
हृदय पदम [illegible]
वदनकमल [illegible] २
हर्ष गेत मन [illegible]
[illegible] ३
[illegible]
[illegible] ४
[illegible] हरि [illegible]
जैन ध्यावे जिन [illegible] ५
[illegible] गुण अनन्तनो [illegible]

ढाल—वधावानी अयोध्या हे राम पधारिया. एहनी ॥.

परमातम निज घर आवीया, वलि पाम्या हे ज्ञानादिक गुणहेम;
कायजोग बादर दमी, वलि रुंधे हे सूक्ष्मवचने तेम. परमा० १
काययोग सूक्ष्म दमी, वलि रुंधे हो बादरमननी हो चालि;
सूक्ष्मकिरीया ध्यान जे, ते ध्यावे हो आतमनिहालि. परमा० २
प्रकृति बहुतर कर्मनी, तिहां क्षय करि हो शैलेशीनो काज;
समुच्छिन्नक्रिय ध्यानने, ते ध्याये हो निरमल शिवसाज. परमा० ३
तेरे प्रकृति खपाविने, शिव पावे हो सहू कर्म खपाय;
निरमल शांत निरामयी, निरंजन हो शिव विगतअपाय. परमा० ४
काल वरण पण तेर हे, चवदम गुण हे तजी होय ते सिद्ध;
अष्टानंतक गुणधणी, जगनायक हो वलि परम विशुद्ध. परमा० ५
उरधगति बललोकने, शिखरे ते हो जई वसेय उल्लास;
धरम द्रव्यनय अलोकमे, तिण कारण हो तेहनो तिहां वास. परमा० ६
लोकाकाश शिखरे रह्यो, ते देखे हो सहु लोक अलोक;
ते सुखनीय नवि को लखे, अतिइंद्री हो परमातम सुखओक. परमा० ७
इंद्रिय सुख त्रयकालना, जिण आगे हो अंश अनंत;
द्रव्यार्थिक पर्यायने, जाणे ते हो सहु द्रव्य महंत. परमा० ८
दोष अढारह विणु सदा, निरंजन हो नित्यानंदनो भूप;
परमेष्टी परज्योति छे, ते जाणे हो त्रयलोकनो रूप. परमा० ९
निज स्वभाव गुण देखतो, ते देखे हो सचराचर विश्व;
गुण अनंत धारक प्रभु, निकलंकी हो नहीं दीरघ ह्रस्व. परमा० १०
सुख जे नवि अनुभव्या, तेहिज सुख हो लहे सिद्ध जिनेश;
जाणे केवलज्ञानथी, वचने करि हो न कही शके लेश. परमा० ११
परनिरख लोकशिरोमणि, निर्द्वंद्वी हो निजसद जगनाथ;
निरूपम थिर अविच्छेदतो, ते विलसे हो सुखसंग अनादि. परमा० १२

ढाल—वधावानी अयोध्या हे राम पधारिया. एहनी ॥

परमातम निज घर आवीया, वलि पाम्या हे ज्ञानादिक गुणगेह;
कायजोग बादर दमी, वलि रुंधे हे सूक्ष्मवचने तेम. परमा० १
काययोग सूक्ष्म दमी, वलि रुंधे हो बादरमननी हो पालि;
सूक्ष्मकिरीया ध्यान जे, ते ध्यावे हो आतमनिहालि. परमा० २
प्रकृति बहुतर कर्मनी, तिहां क्षय करि हो शैलेशीनो राज;
समुच्छिन्नक्रिय ध्यानने, ते ध्याये हो निरमल शिवराज. परमा० ३
तेरे प्रकृति खपाविने, शिव पावे हो सहू कर्म खपाय;
निरमल शांत निरामयी, निरंजन हो शिव विगतअपाय. परमा० ४
काल वरण पण तेर हे, चवदम गुण हे तजी होय ते सिद्ध;
अष्टानंतक गुणधणी, जगनायक हो वलि परम विशुद्ध. परमा० ५
उरधगति बललोकने, शिखरे ते हो जइ वसेय उल्हास;
धरम द्रव्यनय अलोकमे, तिण कारण हो तेहनो तिहां वास. परमा० ६
लोकाकाश शिखरे रह्यो, ते देखे हो सहु लोक अलोक;
ते सुखनीय नवि को लखे, अतिइंद्री हो परमातम सुखओक. परमा० ७
इंद्रिय सुख त्रयकालना, जिण आगे हो अंश अनंत;
द्रव्यार्थिक पर्यायने, जाणे ते हो सहु द्रव्य महंत. परमा० ८
दोष अढारह विण सदा, निरंजन हो निज्यानंदनो भूप;
परमेष्टी परज्योति छे, ते जाणे हो त्रयलोकनो रूप. परमा० ९
निज स्वभाव गुण देखनो, ते देखे हो सचराचर विश्व;
गुण अनंत धारक प्रभु, निकलंकी हो नहीं दीसे दृश्य. परमा० १०
सुख जे नवि अनुभव्या, तेहिज सुख हो लहे सिद्ध जिनेश;
जाणे केवलज्ञानयी, वचने करि हो न कही शके लेश. परमा० ११
परमानंद लोकशिरोमणि, निरद्वंद्वी हो निजपद अमराय;
निरूपम पिर अविच्छेदनो, ते विलसे हो सुखभंग अनादि. परमा० १२

ढाल—वधावानी अयोध्या हे राम पधारिया. एहनी.॥.
परमातम निज घर आवीया, वळि पाम्या हे ज्ञानादिक गुणदेश;
कायजोग बादर दमी, वळि रुंधे हे सूक्ष्मवचने तेम. परमा० १
काययोग सूक्ष्म दमी, वळि रुंधे हो बादरमननी हो चालि;
सूक्ष्मकिरीया ध्यान जे, ते ध्यावे हो आतमनिहालि. परमा० २
प्रकृति बहुतर कर्मनी, तिहां क्षय करि हो शैलेशीनो काज;
समुच्छिन्नक्रिय ध्यानने, ते ध्यावे हो निरमल शिवसाज. परमा० ३
तेरे प्रकृति खपाविने, शिव पावे हो सहू कर्म खपाय;
निरमल शांत निरामयी, निरंजन हो शिव विगतअपाय. परमा० ४
काल वरण पण तेर हे, चवदम गुण हे तजी होय ते सिद्ध;
अष्टानंतक गुणधणी, जगनायक हो वळि परम विशुद्ध. परमा० ५
उरधगति बललोकने, शिखरे ते हो जई वसेय उल्लास;
धरम द्रव्यनय अलोकमे, तिण कारण हो तेहनो तिहां वास. परमा० ६
लोकाकाश शिखरे रह्यो, ते देखे हो सहु लोक अलोक;
ते सुखनीय नवि को लखे, अतिइंद्री हो परमातम सुखओक. परमा० ७
इंद्रिय सुख त्रयकालना, जिण आगे हो अंश अनंत;
द्रव्यार्थिक पर्यायने, जाणे ते हो सहु द्रव्य महंत. परमा० ८
दोष अढारह विण सदा, निरंजन हो नित्यानंदनो भूप;
परमेश्री परज्योति छे, ते जाणे हो त्रयलोकनो रूप. परमा० ९
निज स्वभाव गुण देखतो, ते देखे हो सचराचर विश्व;
गुण अनंत धारक प्रभु, निकलंकी हो नही दीरघ ह्रस्व. परमा० १०
पुग्व जे नवि अनुभव्या, तेहिज सुख हो लहे सिद्ध जिनेश;
जाणे केवलज्ञानथी, वचने करि हो न कही शके लेश. परमा० ११
परनिरख लोकशिरोमणि, निरद्वंद्वी हो निजसह जसवाद;
निरुपम थिर अविच्छेदतो, ते विलसे हो सुखसंग अनादि. परमा० १२

भविक जीव हितकरणी धरणी, पूर्वाचारिज वरणी जी;
ग्रंथ ज्ञानार्णव मोहक तरणी, भवसमुद्र जलतरणी जी. ध्यानक० ३
संस्कृतवाणी पंडित जाणे, सरव जीव सुखदाणी जी;
ज्ञाताजनने हितकर जाणी, भाषारूप वखाणी जी. ध्यानक० ४
ढाल अठावन षड् अधिकारू, शुद्धातमगुण धारू जी;
आखे अनुपम शिवसुखवारू, पंडितजन उरहारू जी. ध्यानक० ५
संवत लेश्या रसने वारो १७६६, ज्ञेयपदार्थ विचारो जी;
अनुपम परमातमपद धारो, माघमास उदारो जी. ध्यानक० ६
कृष्णपक्ष तेरस रविवासर, ए अधिकार प्रकास्यो जी;
भणतां गुणतां सुणतां सुखकर, ज्ञानगेहमे आस्यो जी. ध्यानक० ७
खरतर आचारिज गच्छधारी, जिणचंदसूरि जयकारी जी;
तसु आदेश लही सुखकारी, श्रीमुलतानमझार जी. ध्यानक० ८
अध्यातम श्रद्धाना धारी, जिहां वसे नरनार जी;
परमिथ्यामतना परिहारी, स्वपरविवेचनकारी जी. ध्यानक० ९
निजगुणचरचा तिहांथी करतां, मन अनुभवमे वरतां जी;
स्यादवाद निजगुण अनुसरतां, नित अधिको सुख धरतां जी. १०
भणसालि मिट्ठमल ज्ञाता, आतमसूरज ध्याता जी;
तसु आग्रह करी चउपई जोडी, सुणतां सुखनी कोडी जी.
ध्यानक० ११

निज शुद्धातम ध्यानने ध्यावो, युगप्रधान गुण गावो जी;
श्रीजिनचंद सूरनो दावो, महूरतमांहे पावो जी. ध्यानक० १२
निजगुणपाठक पुण्यप्रधाना, सुमतिसागर गुणथाना जी;
आतम साधुरंग वरवाना, वाचक शुभ ग्रंथाना जी. ध्यानक० १३
जयवंता पाठकगुणधारी, राजसार सुविचारी जी;
निर्मलज्ञान धरम संभारी, वाचक सहु हितकारी जी. ध्यानक० १४



अर्थ—प्रकृतिबंध-कर्मनो स्वभाव १, स्थितिबंध-कालनो मान २, रसबंध-चीकणाइ ३, प्रदेशबंध-दलनो मान ४, तं तिको कर्म च्यार भेदे छे. मोदकने दृष्टांते छे-जिम मोदक कोयक वायने हरे. कोयक पुष्ट करे, तिम कर्म पण ज्ञानावरणी ज्ञानने हरे, दर्शनावरणी दर्शननें हरे, इत्यादिक. स्थिति लाडूनी जेम दश दिन प्रमुख तिम कर्मनी स्थिति त्रीस कोडाकोडी आदि. रस लाड मेथी प्रमुखमां मीटो कडवो कल्पाय छे तिम एक-ठाणीयो प्रमुख. प्रदेश दलमान एवं तिहां प्रथम प्रकृतिबंध कहे छे. मूलप्रकृति आठ छे—कर्म आठ छे अने उत्तर प्रकृति-आठ कर्मना उत्तरभेद १५८ एकसो अट्ठावन छे, आप आपणो कर्मस्वभाव छे. ॥२॥

हवे इहां आठ कर्मनां नाम कहे छे—

इह नाणदंसणावरणवेयमोहाउनामगोयाणि।
विग्घं च पणनवदुअट्ठवीसचउतिसयदुपणविहं ॥३॥

अर्थ—प्रथमज्ञानावरणीय कर्म कहीए १. बीजो दर्शनावरणीय कर्म २. अने वेय त्रीजो वेदनीयकर्म ३. मोह चोथो मोहनीयकर्म आऊ पांचमो आउखा कर्म. नाम छट्ठो नामकर्म. गोयाणि सातमो गोत्रकर्म-ज्ञानावरणीयकर्म ज्ञानगुणने आवरे, दर्शनावरणीय दर्शनगुणने आवरे, वेदनीयकर्म अव्याबाध अनंतसुख गुणने रोके. मोहनीय कर्म सम्यक्त्व अने चारित्रगुणने रोके, आउखा कर्म अनवगाह गुणने रोके-(अक्षयस्थिति गुणने रोके) गोत्र कर्म अगुरुलघुगुणने रोके. आठमो अंतराय कर्म वीर्य गुणने रोके. ए आठ नाम कह्या. हवे एहनी उत्तरप्रकृतिनो १५८ नो [illegible] कहे छे-ज्ञानावरणीयनी पांच प्रकृति, दर्शनाव-

अर्थ—अत्थुग्गह–अर्थावग्रह–किंचित् ज्ञान ते अर्थावग्रह, तेहना भेद छ छे. इहा–विचारणा, तेहना भेद ६ छे अवाय–इहितज्ञाननो निश्चय ते अपायना भेद ६ छे. अविस्मरण ज्ञान ते धारणा, तेहना भेद ६ छे (पांच इंद्रि मन करी एक एकना छ भेद छे.) स्पर्शनेंद्रिय अर्थावग्रह १ रसनेंद्रिय अर्थावग्रह २ घ्राणेंद्रिय अर्थावग्रह ३ चक्षुरिंद्रिय अर्थावग्रह ४ श्रोत्रेंद्रिय अर्थावग्रह ५ मन अर्थावग्रह ६. स्पर्शनइहा १ रसनइहा २ घ्राणइहा ३ चक्षुइहा ४ श्रोत्रइहा ५ मनइहा ६. स्पर्शनअवाय १ रसनअवाय ३ चक्षुअवाय ४ श्रोत्रअवाय ५ मन अवाय ६. स्पर्शनधारणा १ रसनधारणा २ घ्राणधारणा ३ चक्षुधारणा ४ श्रोत्रधारणा ५ मनधारणा ६. (एम ए सर्व मळी २८ भेद मतिज्ञानना जाणवा.)

हवे श्रुतज्ञानना भेद कहे छे–चउदसहा १४ भेद छे–श्रवणेंद्रिय अने श्रुतज्ञानस्युं थाय ते श्रुतज्ञान कहीजे. वीसहा वळी वीस भेद पण छे. ॥ ५ ॥

तेमां पेहेला १४ भेद कहे छे.

अक्खर[1] सन्नी[2] सम्मं[3] साइयं[4] खलु सपज्जवसियं[5] च।
गमियं[6] अंगपविट्ठं[7] सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥६॥

अर्थ–अक्षरश्रुत–अक्षर वांचने करी अवबोध ते १. अक्षर विना ज्ञान थाय. अकारादिक थकीज ते अक्षरश्रुत. २. संज्ञीपंचेंद्रीने जे श्रुत ते संज्ञीश्रुत ३ हवे असंज्ञीनुं श्रुत ते असंज्ञीश्रुत ४ समकितीनुंश्रुत ते सम्यग्श्रुत ५ मिथ्यात्वीनुं श्रुत ते मिथ्यात्वीश्रुत ६ सूत्रे करी गणधर नवां रचे तिणे सादीश्रुत ७ महाविदेहमां अनंत श्रुतज्ञान ते अनादिश्रुत ८ तिमज सूत्रे करी तीर्थंकरे

दरसण ज्ञान चारित्र वली, सुख वीरज हो जसु प्रगट अनंत;
भवतमर्त्वसा भादन्युं, सिद्धांतमे हो अतिमहिमा महंत. परमा० १३
ज्ञान सुधारसरस सने, अविकारी हो परमानंदनो धाम;
देवचंद्र सुखसागरु, अक्षयरूप हो गुण निजराम. परमा० १४

दूहा.

श्रीजिनशासन अगमगुण, शिवसुखनो दातार;
स्यादवाद परिणाम धरि, आतमदरसक सार. १
मिथ्यातमभर भांजिवा, रविसम जिनमत एह;
सिद्ध शुद्ध परमातमा, धारक निजगुणगेह. २
सूक्ष्म निगोदी सिद्धिथिति, वहु द्रव्य पर्याय;
एकता थ्यपउत्पादनी, इण विण थीय न कहाय. ३
नामजैन जन बहुत छे, तिणथी सिद्ध न काय;
सम्यग्ज्ञानी शुद्धमति, भावजैन शिवराय. ४
सिद्ध साधिवा समकिती, आराधे निज ध्यान;
तेह बखाण्यो जनने, अगम अपार प्रधान. ५
सोकिरे इक आखरे, में वरण्यो छे एह;
सुधासम श्रिवेज्यो तुरत, ग्रंथ तणो गुण छेह. ६
पूरणध्यानतनी कथा, जाणे जिनवर देव,
निश्चय शिवसाधक पिणी, धरज्यो ते नितमेव. ७

ढल–राग धन्याश्री. इणपरि भाव भगत मन आणी. एहनी देशी॥
ध्यानकथाने एह वखाणी, आतमरूप पिछाणी जी;
पूरवसूत्रतनी सहि नाणी, जिम दीठि तिम आणी जी. ध्यानक० १
पंडितजन मनसागर टाणी, पूरणचंद्र समान जी;
सुभचंद्राचारिजनी वाणी, ज्ञानीजन मन भाणी जी. ध्यानक० २

[illegible]

ज्ञान दर्शन चारित्र दर्श, गुण कीरत हो तसु [illegible]
[illegible], सिद्धांतनी हो [illegible] ध्यान० १३
ज्ञान गुणसागर करी, [illegible] हो [illegible] धार.
देवचंद्र गुणसागर, [illegible] हो गुण [illegible] ध्यान० १४

दूहा.

[illegible] अनुभव, सिद्धपणानो [illegible].
[illegible] धरि, आतमध्यान [illegible]. १
[illegible], [illegible] जिनवर पूह।
[illegible] [illegible] २
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible].
[illegible], गुण [illegible] न [illegible] ३
[illegible] हे, [illegible] न [illegible]
[illegible], [illegible] [illegible]. ४
[illegible], आगले [illegible] ध्यान
[illegible] अनदे, अगम अगाध प्रधान. ५
[illegible] आसरे, [illegible] ते पूह;
[illegible] गुण, [illegible] गुण [illegible]. ६
[illegible], [illegible] जिनवर देव.
निश्चय [illegible], [illegible] ते [illegible] ७

[illegible] आतम [illegible] मन आनी. [illegible]॥
ध्यान [illegible] पूह [illegible], आतमरूप [illegible] जी,
[illegible] [illegible], [illegible] आनी जी. ध्यान० १
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] समान जी;
[illegible], [illegible] मन आनी जी. ध्यान० २

अर्थ—चक्षुदर्शन दृष्टि जे आंखथी सामान्य उपयोग १ अचक्षुदर्शन जे स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्ररूप च्यार इंद्रिये सामान्य उपयोग ते अचक्षुदर्शन कहीये २ अवधिज्ञानीने सामान्य उपयोग ते अवधिदर्शन कहीये ३ केवलज्ञानीने जे सामान्योपयोग ते केवलदर्शन कहीये ४ इहां मनःपर्यवदर्शन न कह्यो ते इण कारण दर्शन इहां सामान्यनो उपयोग अने मनःपर्यवज्ञान ते विशेष उपयोग ज छे तिरे दर्शन न कह्यो ते च्यार दर्शनने आवरे ते च्यार भेद छे, चक्षुदर्शनावरणी १ अचक्षुदर्शनावरणी २ अवधिदर्शनावरणी ३ केवलदर्शनावरणी ४ ए च्यार भेद छे. ॥१०॥

सुहपडिबोहा निद्दा निद्दानिद्दा य दुक्खपडिबोहा।
पयला ठिओवविट्ठस्स पयलपयला उ चंकमओ॥

अर्थ—हवे निद्रना पांच भेद छे ते कहे छे [illegible] [illegible] जागे [illegible] [illegible] जागे ते निद्रा कहीये १ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जागे ते निद्रानिद्रा कहीये २ अने बेठा उभां निद्र आवे ते प्रचला कहीये ३ [illegible] [illegible] [illegible] ते प्रचलाप्रचला कहीये ४ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ११ ॥

[illegible] थीणद्धी [illegible]।
[illegible] व दुहा उ वेअणिअं॥१२॥

अर्थ—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अर्थ—तिहां दर्शनमोहनीना त्रण भेद छे, त्रिणे गुण समकीतने रोके छे; यद्यपि समकितमोहनीना उदयथी क्षयोपशम-समकीत छे तोपण मिथ्यात्वनां शुद्ध दल वेदे छे (वेठिं छे) ते सम्यक्त्वमोहनी १ मिश्रमोहनी २ तेमज वळी मिथ्यात्व मोहनी त्रीजी कही. इहां ग्रंथिभेद करतां प्रथम यथाप्रवृत्ति-करण थाय. सात कर्मनी स्थिति एक कोडाकोडी बाकी रहे त्यारे. बीजो अपूर्वकरण एक अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण करे. त्रीजो अनिवृत्तिकरण करीने सम्यक्त्व फरसे इहां मिथ्यात्वने चरम समये त्रीण पुंज करे एक शुद्ध पुंज बीजो अर्द्धविशुद्ध पुंज त्रीजो अशुद्धश्याम पुंज ए स्थितिना त्रण पुंज करे शुद्ध पुंजनो दल वेदे ते सम्यक्त्व मोहनी १ अर्द्धविशुद्ध पुंज वेदे ते मिश्र-मोहनी. २ अशुद्धश्याम दलने वेदे ते मिथ्यात्वमोहनी. ॥१४॥

जियअजियपुन्नपावासवसंवरबंधमुक्खनिज्जरणा ।
जेणं सद्दहइ तयं सम्मं खइगाइबहुभेयं ॥ १५ ॥

अर्थ—जीवतत्त्व चेतनालक्षण स्वरूपमय १. अजीवतत्त्व चेतना रहित शुष्क काष्ठादि २. पुन्न–पुण्य शुभ कर्म ३. पाव–पाप अशुभ कर्म ४ आश्रव कर्मआवरणनो हेतु ५. संवर नवां कर्म आवतां रोके ६. बंध–जीव प्रदेश कर्म एकतारूप ७. सकल कर्म क्षय पावे ते मोक्षतत्त्व कहीये ८. पूर्वकृतकर्मनी निर्जरा ते निर्जरातत्त्व कहीये ९. ए नवतत्त्व सूधा जाणे–निश्चये करी जाणे व्यवहारे करी प्रवर्ते ते निश्चय सम्यक्त्व कहीजे ते समकीतना घणा भेद छे क्षायक १ क्षयोपशम २ उपसम ३ वेदकादि भेदें करी. ॥ १५ ॥

राजहंस सहु सुरसुपनाने, सुख मन सुख निज पावे जी.
एह सुजंप रच्यो शुभ भावे, भणतां अतिसुख पावे जी. १५
अमरचंद गुणवाहे सुसंगे, निजमननने उमंगे जी.
मित्र कुमरऋषिने संगे, देवचंद्र मनरंगे जी. ध्यानक० १६
कल्पवृक्ष ए प्रबंध कीधो, मानवभवफल लीधो जी.
आशीर्वाद एह मे दीधो, ज्ञान लहो सहु सिद्धो जी. ध्यानक० १७
ध्यानदीपिका एहवो नामो, अन्य अछे अभिरामो जी.
इंदिराशिवादि दिन्ना ए पामी, देवचंद्र कहे आमो जी. ध्यानक० १८

इति श्रीज्ञानार्णवे ग्रामभाषाबंधे पंडितदेवचंद्रमुनिविरचिते शुक्लध्याने स्याद्वादादिकवर्णनो नाम षष्ठमो खंड संपूर्ण ॥

इति श्रीध्यानदीपिकाचतुष्पदी समाप्तेय ॥

वंछित पूरण सुरतरु जेहा, शिवसुख रत्न समा जेहा रे.
चोवीसे जिनवर गुणगेहा, धुणतां थाये नेहा रे. वंछित० १
वासुपूज्य पद्मप्रभु राता, सुविधि चंद्रप्रभु धोला रे.
मुनिसुव्रत नेमिनाथ काला, सोवनवर्णे सोला रे. वंछित २
मल्लि पास प्रभु दोउ नीला, केई मानेक केई हीरा रे.
पंच वरणनी माला गुंथी, हियडे पहिर डोला रे. वंछित० ३
मणी जडियाने बेहनो मालिक, ध्यान कुशल चित्त धारे रे.
हियडे पहिरे सडसठनी दोक, पहिर्यांथी सुख आवे रे. वंछित० ४
भूत प्रेतनो रोग न व्यापे, गर चोर भय जावे रे
भावसहित भगवंत भजतां शिवसुखना सुख लेवे रे. वंछित० ५

इति श्रीचोवीसजिनवर्णमालास्तवन संपूर्ण. ॥

लोभ ४। संजलन ते यथाख्यात चारित्रने रोके-संजलनो क्रोध १ संजलनो मान २ संजलनी माया ३ संजलनो लोभ ४ ॥१७॥

जाजीववरिसचउमासपक्खगा नरयतिरियनरअमरा।
सम्माणुसव्वविरईअहक्खायचरित्तघायकरा ॥१८॥

अर्थ—हवे एहनो दृष्टांत स्थिति कहे छे-कर्मस्थिति तो सोलकषायनी जघन्य अंतर्मुहूर्त्तनी, उत्कृष्टी ४० कोडाकोडी सागर छे. ए परिणामरूप स्थिति जाणवी. अनंतानुबंधीनी जावजीव स्थिति अप्रत्याख्याननी वरस १ स्थिति, प्रत्याख्याननी चउमास ४ मास स्थिति छे, संजलननी पक्ष १ स्थिति छे, अनंतानुबंधीने परिणामे मरे तो नरकगतिए जाय. १ अप्रत्याख्यानना परिणामे मरे तो तिर्यंचगतिमांहे जाय. २ प्रत्याख्यानना परिणामे मरे तो मनुष्यगतिमांहे जाय ३ संजलनने परिणामे मरे तो देवगतिमांहे जाय. ४ अनंतानुबंधी समकीतने घात करे. १ अप्रत्याख्यान अणुव्रतनुं देशविरतिनो घात करे. २ प्रत्याख्यान सर्वविरतिनुं घात करे. साधुव्रतनुं घात करे आवण देवे नहीं ३ संजलन यथाख्यातचारित्रनुं घात करे. एटले इंणि कषाय उदय थकां इतला गुण प्रगटे नहीं. ॥१८॥

जलरेणुपुढविपव्वयराईसरिसो चउविहो कोहो।
तिणिसलयाकट्ठट्ठिय।सेलत्थंभोवमो माणो॥१९॥

अर्थ—संजलणो क्रोध जलरेखा समान छे. जिम जलनी रेखा तरत मिटे तिम संजलनो क्रोध तरत मिटे, प्रत्याख्याननो क्रोध रेणु—वेलनी रेखा समान वाय प्रमुखं लागे मिटे. तिम नमति खमति कीधां उतरे, अने अप्रत्याख्यानी क्रोध पृथ्वी—

अथ

श्रीमद्देवेन्द्रकृत.

कर्म्मग्रन्थस्य टवार्थ.

मूलगाथा—

सिरिवीरजिणं वंदिय, कम्मविवागं समासओ वुच्छं।
कीरइ जिएण हेउहिं, जेणं तो भण्णए कम्मं ॥१॥

अर्थ—प्रणिपत्य जगन्नाथ, वर्द्धमान जिनेश्वर ।
गणभृद्गौतम पदं. देवेन्द्रसूरिनमस्कृतम् ॥ १ ॥
सद्गुरु गुरु नत्वा, [illegible] ।
सुखार्थं कर्मग्रन्थस्य, टवार्थ. क्रियते मया ॥ २ ॥

श्री शोभीत अतिशये सहित वीरजिणं महावीर भगवन्त प्रते वंदिय वांदीने—शासननायक महावीर छे तेने [illegible] महावीर स्वामी प्रते वंदिय कहेतां वांदीने कम्म आठ कर्मनो विवागं विपाकफल समासओ संक्षेपे वुच्छं कहुं छुं जे कर्म ते किस्युं जे ते कहे छे—कीरइ करीए—समस्तपणे छे जिएण जीवे हेउहिं च्यार ४ हेतुए करीने ते हेतु कहे छे—मिथ्यात्व १, अविरति २, कषाय ३, योग ४ करीने जेणं तओ तिरो भण्णए कहीने कम्मं कहता कर्म ए प्रथमगाथार्थ.॥१॥

ते कर्मना च्यार भेद छे—

पयइठिइरसपएसा तं चउहा मोयगस्स दिट्ठंता।
मूलपगइट्ठउत्तरपगईअडवन्नसयभेअं ॥ २ ॥

रंग समान छे, अनंतानुबंधी लोभ किमिराग कृमजी–रंग समान छे, एटले सोले कषायना भेद कह्या ते सद्दहवा. ॥२०॥

जस्सुदया होइ जिए हासं रई अरइ सोगं भयं कुच्छा।
सनिमित्तमन्नहा वा तं इह हासाइमोहणियं ॥२१॥

अर्थ—हवे हास्यादिक छ भेद कहे छे–जे कर्मप्रकृतिने उदयथी होवे जीवने हास्य घणो ते हास्यकर्म उदयथी. १ रति–हर्षकर्म. २ अरतिकर्म ते दिलगीरी. ३ सोग–मरणादिक वरे, रुदनादि करे ते शोककर्म. ४ भयकर्म–डर घणो थाय. ५ कुच्छा –दुगंछा जे अशुभपुद्गलादिकथुं दुगंछा. ६ ए छए कार्ये निमित्तकारण मिळ्यां पण उदय आवे किण हीन निमित्त विना पिण उदय आवे ते इहां हास्यादिक मोहनी कहीजे. हास्य १ रति २ अरति ३ सोग ४ भय ५ दुगंछा ६. ॥२१॥

पुरिसित्थितदुभयं पइ अहिलासो जव्वसा हवइ सो उ।
थीनरनपुंवेउदओ फुंफुमतणनगरदाहसमो ॥२२॥

अर्थ—पुरुषनो अभिलाष थाय जेहने ते स्त्रीवेद कहीये १ अने जेने स्त्रीनो अभिलाष थाय ते पुरुषवेद कहीजे २ अने स्त्री पुरुष बिहुनो अभिलाष धरे ते नपुंसक वेद कहीजे. तिणे करी एटले स्त्रीने पुरुषसुं बिहु साथे विषयनी चाह थाय अने पुरुषने स्त्रीसेव्यानी चाह थाय, स्त्री अने पुरुषसुं विषयनी चाह घणी थाय, ए तीननो अभिलाष ते शायी थाय ? इम जे कर्मना उदयथी थाय ते कर्म वेद कहीये. तिहां प्रथमस्त्रीवेद १, बीजो पुरुषवेद २, त्रीजो नपुंसकवेद ३, एहनी तृष्णा–ज्वाला एहवी छे के स्त्रीवेदनी अगनि फुंफुम कोउनी दाह समान छे १ अने

णीयनी प्रकृति नव ९, वेदनीय कर्मनी बे प्रकृति २. मोहनीय कर्मनी अट्ठावीस प्रकृति २८, आउखा कर्मनी ४ च्यार प्रकृति, नामकर्मनी एकसो त्रण १०३ प्रकृति, गोत्रकर्मनी बे प्रकृति २, अंतरायकर्मनी पांच प्रकृति ५. एवं सर्वप्रकृति १५८ एकसो अट्ठावन छे. ॥ ३ ॥

मइसुयओहीमणकेवलाणि नाणाणि तत्थ मइनाणं।
वंजणवग्गहं चउहा मणनयणविणिंदियचउक्का ॥४॥

अर्थ—हवे प्रथम ज्ञानावर्णीय कर्म तेहना भेद केहेवा ते ज्ञानावर्णीय ज्ञानने रोके. तिने प्रथम ज्ञानना भेद मंगलिक रुप वखाने छे. ज्ञानना भेद पांच छे. मइ—मतिज्ञान. सुअ—श्रुतज्ञान, ओही—अवधिज्ञान, मण. मनःपर्यवज्ञान केवलाणि—केवलज्ञान. नाण णि ए पांच ज्ञान जाणीये. वस्तुस्वरूप जाणवाथी ते ज्ञान कहीजे. हवे तिहां मतिज्ञानना भेद २८ कहे छे. मननी विचारणारूप ज्ञान ते मतिज्ञान कहीजे. (इंद्रियोनी अपेक्षापूर्वक) व्यंजनावग्रह ते इंद्रियोना विषय मिल्यां थकां जे अव्यक्त उपयोग असंख्यसमयात्मक ते व्यंजनावग्रह कहीजे तेहना भेद ४ छे. मन नयन वर्जीनां आंख्य मन विना च्यार इंद्रियने व्यंजनावग्रह छे. जे कारणथी मन. आंख्य अप्राप्यकारी छे. अने च्यार इंद्रियने प्राप्यकारी छे. स्पर्शेंद्रियव्यंजनावग्रह १ रसनेंद्रियव्यंजनावग्रह २ घ्राणेंद्रियव्यंजनावग्रह ३ श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रह. ४ ॥४॥

अत्थुग्गहईहावायधारणा करणमाणसेहिं छहा।
इय अट्ठवीसभेयं चउदसहा वीसहा व सुयं ॥५॥

पिंडपयडित्ति चउदसपरघाऊसासआयवुज्जोयं ।
अगुरुलहुतित्थनिमिणोवघायमियअट्ठ पत्तेया ॥२५॥

अर्थ–पिंडप्रकृति ए चौद छे. पिंड–जेहनी एक प्रकृतिना घणा भेद थाय ते पिंडप्रकृति कहीजे. ते चउदभेदे परा घातनामकर्म १ ऊसासनामकर्म २ आतापनामकर्म ३ उद्योत नामकर्म ४ अगुरुलघुनामकर्म ५ तीर्थंकरनामकर्म ६ निर्माणनामकर्म ७ उपघातनामकर्म ८ ए आठप्रकृति प्रत्येक प्रकृति कहीजे. ए प्रकृतिनो उत्तरभेद कोइ थाय नहीं. ॥२५॥

तसबायरपज्जत्तं पत्तेअथिरं सुभं च सुभगं च ।
सुसरआइज्जजसं तसदसगं थावरदसं तु इमं ॥२६॥

अर्थ—त्रसनामकर्म १ बादरनामकर्म २ पर्याप्तनामकर्म ३ प्रत्येकनामकर्म ४ स्थिरनामकर्म ५ शुभनामकर्म ६ सुभग नामकर्म ७ सुस्वरनामकर्म ८ आदेयनामकर्म ९ जसनामकर्म १० ए त्रसदशक जाणवो. जाणणहारने हवे थावरदशक कहे छे बीजो. ॥२६॥

थावरसुहुमअपज्जं साहारणमथिरमसुभदुभगाणि ।
दूसरणाइज्जाजसमिय नामे सेयरा वीसं ॥ २७ ॥

अर्थ—प्रथम थावरनामकर्म १ सूक्ष्मनामकर्म बीजो २ अपर्याप्तनामकर्म त्रीजो ३ साधारणनामकर्म चोथो ४ अथिर नामकर्म पांचमो ५ अशुभनामकर्म छट्ठो ६ दुर्भगनामकर्म सातमो ७ दुःस्वरनामकर्म आठमो ८ अनादेयनामकर्म नवमो ९ अपजसनामकर्म दसमो १० ए थावरदशक कयुं बीजुं

[illegible] ॥ ६ ॥

पज्जय अक्खर पय संघाया पडिवत्ति तह य अणुओगो ।
पाहुडपाहुड पाहुड वत्थू पुव्वा य ससमासा ॥ ७ ॥

[illegible] दोय [illegible] इति [illegible] पर्यायश्रुत १ [illegible] पर्याय [illegible] पर्याय [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] ५ [illegible] ६ [illegible] ७ [illegible] ८ [illegible] ९ [illegible] १० उपक्रम, निक्षेप, अनुगम, नय, ए चार [illegible] अनुयोग [illegible] अनुयोग श्रुत कहीये ११ सर्व अनुयोग जाणे ते अनुयोग [illegible]

कह्युं तिहां थीणद्धी १ निद्रा २ प्रचला ३ ए तीन लेवी. विशे जाणवा माटे कहे छे—वर्णचतुष्क सामान्ये वर्णा ते वर्ण १ गंध २ रस ३ स्पर्शनाम ४ ए ४ ने वर्णचतुष्क कहीये अने अगुरुलघुनाम १ उपघातनाम २ पराघातनाम ३ ऊसासनाम ४ ए अगुरुलघुचतुष्क कहीये. त्रस १ बादर २ ए त्रसद्विक कहीजे. १ त्रस, २ बादर, ३ पर्याप्त ए त्रसत्रिक लीजे, अने त्रस १ बादर २ पर्याप्ता ३ प्रत्येक ४ ए ४ ने त्रसचतुष्क कहीजे. अने त्रस १ बादर २ पर्याप्त ३ प्रत्येक ४ स्थिर ५ शुभ ६ ए छने त्रसषट्क. एम जेटली प्रकृति होय ते त्रसादिनामथी जोइये. ॥२९॥

गइयाईण उ कमसो चउपणपणतिपणपंचछछक्कं।
पणदुगपणट्ठचउदुग इय उत्तरभेयपणसट्ठी॥३०॥

अर्थ—हवे १३ पांचु प्रकृति कहे छे—गति आदि १४ पिंडना उत्तरभेद कहे छे—गति ४ भेदे च्यार, जातिना पांच भेद ५, शरीरना पांचभेद, उपांगना तीनभेद ३, बंधनना पांच भेद ५, संघाननना पांचभेद ५, संघयणना छ भेद ६, संठाणना छ भेद, वर्णना पांच भेद ५, गंधना दो भेद २, रसना पांच भेद ५, फरसना आठ ८ भेद, आनुपूर्वीना च्यार भेद ४, विहायोगतिना बे भेद २. एटले करी उत्तरभेद मां लिख्यां पांसठ भेद थया. पिंडप्रकृतिना ए उत्तरभेद कह्या. ॥ ३० ॥

अडवीसजुया तिनवई संते वा पनरबंधणे तिसयं।
बंधणसंघायगहो तणुसु सामन्नवन्नचऊ ॥ ३१ ॥



अर्थ—हवे गतिनामकर्मना च्यार भेद कहे छे—नरकगति १ तिर्यग्गति २ मनुष्यगति ३ देवगति ४। एकेंद्री जाति १ बेंद्रीनी जाति २ तेंद्रीनी जाति ३ चौरेंद्रीनी जाति ४ पंचेंद्रीनी जाति ५. ए पांच जाति जाणवी. औदारिक शरीर १ वैक्रिय शरीर २ आहारक शरीर ३ तेजस शरीर ४ कार्मण शरीर ५. ए पांच शरीर जाणवां. ॥३३॥

बाहूरु पिट्ठि सिर उर उयरंग उवगं अंगुलीपमुहा।
सेसा अंगोवंगा पढमतणुतिगस्सुवंगाणि ॥ ३४ ॥

अर्थ—बांह्य दोय २, साथल दोय २, पुंठ १, सिर (मस्तक) १ हीयुं १ पेट १ ए आठ अंग छे अने आंगली प्रमुख उपांग छे. शेष–बाकी नख, केशादिक सर्व अंगोपांग जांणवा ते अंगोपांग पहेला त्रण शरीरनां छे.—औदारिक उपांग १ वैक्रिय उपांग २ आहारक उपांग ३. ए त्रण उपांग कह्यां. ३४

उरलाइपुग्गलाणं, निबद्धबज्झंतयाण संबंधं।
जं कुणइ जउसमं तं उरलाईबंधणं नेयं ॥ ३५ ॥

अर्थ—औदारिकादिक पांच शरीर पुद्गल केइक बांध्या पूर्वे शरीरपणे परिणमाव्या अने बीजां नवां बांधतां जे पुद्गल तेहने जे संबंध एकमेक करवो जेणे करीने ते बंधन कहीजे कर्मने उदय ते लाखनी पेरें जिम लाख लाकडीने एकमेक करे चोटाडे राखे तिम बंधन पुद्गलने ग्रहि राखे छे. ते बंधन औदारिक १ वैक्रिय बंधन २ आहारक बंधन ३ तैजस बंधन ४ कार्मण बंधन ५. ए पांच बंधन जाणवां. ॥३५॥

अर्थ—संवयण कहेतां हाडनो समूह–हाड मांहोमांहे सं-बंध ते संवयणना छ भेद जाणवा. वज्रऋषभनाराच पहेलो संवयण महाबलवंत खीली पाटो मर्कट बंधन छे १. तिम बीजो ऋषभनाराच. जे मांहे खीला नहीं, पाटो मर्कट बंधन छे २. त्रीजो नाराच. जेहने मर्कट बंधन छे ३. चोथो अर्द्धनाराच ४ जेहने एकपासे मर्कट बंधन छे. ॥ ३८ ॥

कीलिअछेवट्ठं इह, रिसहो पट्टो य कीलियावज्जं।
उभओ मक्कडबंधो, नारायं इममुरालंगे ॥ ३९ ॥

अर्थ—पांचमो कीलीका संवयण. जेहने खीली छे. ५ छट्ठो छेवटो संवयण. जिहां सर्वथा निर्बल छे. ६ ऋषभ-पाटो–पट्टो दोइ हाडनो संपुट मर्कटबंध उपरे पाटो छे, वज्र कहेतां खीली–मर्कट बंधने दोउ पासे कीली कहेतां खीली छे. उभओ–दोउ पासे हाडनो आंटो ते मर्कटबंध कहीजे. ए सर्व पहेले संवयणमें छे. महाबलवंत थाय, ए संवयण कर्म औदारिक शरीर धारीने उदय आवे. एटले तिर्यंच मनुष्यने छे; देवता नारकीने नथी. ॥ ३९ ॥

समचउरंसनिग्गोहे–साइखुज्जाइवामणं हुंडं ।
संठाणा वण्णा किण्ह–नीललोहियहलिद्दसिआ ॥४०॥

अर्थ—समचोरस संस्थान जे च्यार दोरी पर्यकासन बेठां बराबर थाय अति सुंदर छे. १ निग्रोध संस्थान उपर भाग सुंदर छे, हेटलो विक दुर्बल छे. २ सादि संस्थान बीजो नीचलो सुंदर छे. ३ कुब्जसंस्थान जे कुबडो होवे. ४ वामन संस्थान जे देहमान छोटो होवे. ५ हुंडक संस्थान सर्वदा लक्षण

रहु देखे दर्शनना अंत गये वस्तुना तिम निद्रावंती देहने वर्तीने ते दीवसनो चिंत्या पांचमी वर्तीने धुरनो बळ अर्ध-चक्रवर्ती के वासुदेव तिर्थी अधिक होय निद्रामांही बल-वंता करे.

हवे वेदनीय कर्मनो स्वरूप कहे छे—मधु लेपनी खेली खड्गनी धारा तेहनो जे चाटवो ते समान छे. जिम मीठास लागे ते सातावेदनी १ अने कटवा वडे जे ते असातावेदनी २ सुखांड—बेद बेडे वेदनीयकर्म छे. अव्याबाधगुणने रोके ते वेदनीयकर्मनो स्वरूप छे.॥१२॥

ओसन्नं सुरमणुए सायमसायं तु तिरियनरएसु ।
मज्जं व मोहणीयं दुविहं दंसणचरणमोहा ॥ १३ ॥

अर्थ—उसन्न-बाहुल्ये देवगतिने मनुष्यगतिमा सातावेदनीनो उदय छे. अने तिर्यंच नारकीने असाता प्रचुर छे. इहां जिन भगवानना जन्म समये नारकीने पण साता थाय छे अने मनुष्य अधम तिर्यंचने पण साता छे पण ते कदा काळे थाय छे सदा नही तेने न गणी.

हवे मोहनीयकर्मनो स्वरूप कहे छे—मदिरापान समान मोहनीयकर्म छे. जिम मदिरापान कीधा मानव गहेलो विह्वल थाय तिम मोहनीयकर्मनो पण जाणवो. ते मोहनीयकर्मना बे भेद छे—एक दर्शनमोहनी जे दर्शन सम्यक्त्वने रुंधाये ते दर्शनमोहनी १ अने चारित्रगुणने रुंधाये ते चारित्रमोहनी कहीजे.१३॥

दंसणमोहं तिविहं सम्मं मीसं तहेव मिच्छत्तं ।
सुद्धं अद्धविसुद्धं अविसुद्धं तं हवइ कमसो ॥१४॥

[illegible]

[illegible] ॥ ४३ ॥

[illegible]

अर्थ—श्रीगृहक-भंडारी समान अंतराय कर्म जा
जिम भंडारी अपूंठे थकां जिम राजानी दान देवानी
हवे पणि ते पाछितो दान देइ शके नहीं; इम अंतराय क
उदये जीव दानादिक देइ शके नहीं. ॥ ५३ ॥

हवे आठ कर्मबंधनां कारण कहे छे.

पडिणीअत्तणनिन्हव–उवघायपओसअंतराएण।
अच्चासायणयाए, आवरणदुगं जिओ जयइ ॥५४॥

अर्थ—तिहां पहेलां ज्ञानावरणी दर्शनावरणीनां बंध कारण
कहे छे–प्रत्यनीकपणें जिनमतनो अपूंठो करे, निन्हव सिद्धा
न्तनां वचन उथापे, उपघात–ज्ञाननी प्रति प्रमुख फाडे, भणता
होय ते उपरे द्वेष धरे, द्वेष करे ते पओस कहीये. वली
भणतां अंतराय करे, सिद्धांत, गुरु, प्रतिमानी अति आशातना
करे; तो जीव अंतराय बांधे. आवरण दोय ज्ञानावरण १,
दर्शनावरणी कर्म जीव इतरे कारणे बांधे. ॥ ५४ ॥

गुरुभत्तिखंतिकरुणा-वयजोगकसायविजयदाणजुओ।
दढधम्माई अज्जइ, सायमसायं विवज्जयओ ॥५५॥

अर्थ—गुरुभक्ति करतां, क्षमा करतां, दया पाळतां, व्रत
पाळतां, योग वश करे, कषाय वश करे, दान देवे, दृढधर्मि होवे,
धर्म उपरे स्थिर प्रतीत उपार्जे–बांधे सातावेदनी कर्म; अने एथी
विपरीत जे हित, अव्रत, कषायथी असातावेदनी बांधे. ॥ ५५ ॥

उम्मग्गदेसणामग्ग–नासणादेवदव्वहरणेहिं ।
दंसणमोहं जिणमुणि–चेइअसंघाइपडिणीओ ॥५६॥

माटीचीकणीनी रेखा समान छे, जे चीकणीमाटीनी रेखा मेह प्रमुख वूठे मीटे तिम घणे उपाये अप्रत्याख्यान क्रोध उतरे. अनंतानुबंधी क्रोध पर्वतरेखा समान छे. जिम पर्वतनी रेखा पडी पछी फरी मळे नहीं; तिम अनंतानुबंधी क्रोध जावजीव त्यांइ मिटे नहीं ते अनंतानुबंधि ४. संजलनो मान नेतरनी छडी समान. जे तरत नमे; प्रत्याख्यान मान ;काष्ट लाकडी समान छे जे किणही कारणे नमे, अप्रत्याख्यानी मान अट्ठी हाड समान छे—घणे जतन कीयां नमे तिम ते मानी पिण घणां जतन कीयां नमे. अनंतानुबंधी मान सेल पथ्थरना थांभा समान छे, जे किमही नमे नहीं; तिम अनंतानुबंधीमानवंत किमहि मान छोडे नहीं. ॥१९॥

मायावलेहिगोमुत्तिमिढसिंगघणवंसिमूलसमा ।
लोहो हलिद्दखंजणकद्दम किमिरागसारिच्छो ॥२०॥

अर्थ—संजलनीमाया वलेही वांसनी छोल समान जे* तरत वांक छोडे. प्रत्याख्यानी माया गोमूत्रिका समान जे किणही कारणे कपट छांडे, अप्रत्याख्यानी माया मिंढारा सिंग समान छे, किणही कारणे करी वांक छोडे, अनंतानुबंधी माया वंसमूल वांसनी जड समान छे, अति गूढ—वक्र छे, थक्यां पण वांक छोडे नहीं. एहवी माया अनंतानुबंधीनी. संजलणो लोभ हल्दरना रंग समान छे, जे ढालचे थाय ते, तरत लालच छोडे, प्रत्याख्यानी लोभ खंजण—गाडानी वागण रंग समान छे जे लेने कीयां ते रंग उतरे. अप्रत्याख्यानीयो लोभ नगर कर्दमना

* ' समाणो ' इति पाठान्तरम्.

अविरयमाइ सुराउ, बालतवोऽकामनिज्जरो जयइ।
सरलो अगारविल्लो, सुहनामं अन्नहा असुहं ॥५९॥

अर्थ—अविरतिथी लेइ करीने सातमे गुणठाणे तांइ जीव देवतानो ज आउखो बांधे, वळी अज्ञानतप करतो जीव, अकामनिर्जरा करतो जीव देवतानो आउखो बांधे. सरळचित्त होवे, गर्व न करतो होय ते जीव नामकर्मनी शुभ प्रकृति बांधे अने कपटी अहंकार करतो होय ते नामकर्मनी अशुभ प्रकृति बांधे. ॥ ५९ ॥

गुणपेही मयरहिओ, अज्झयणज्झावणारुई निच्चं।
पकुणइ जिणाइभत्तो, उच्चं नीयं इयरहा उ ॥६०॥

अर्थ—गुणग्राही-गुणरागी, मद अहंकार रहित, मानवी पक्ष नहीं, भणवाने भणाववानी रुचि घणी होवे जेहने एहवो सत्वबुद्धि जीव होवे वळी जे जीव जिन गुरु वचन वा श्रुतनी भक्ति करतो होय ते जीव उच्चगोत्र बांधे. अने एहथी विपरीतपणे नीच गोत्रकर्म बांधे. ॥ ६० ॥

जिणपूआविग्घकरो, हिंसाइपरायणो जयइ विग्धं।
इय कम्मविवागोयं, लिहिओ देविंदसूरिहिं ॥६१॥

अर्थ—जिनपूजा करतां जे अंतराय करे ते अंतराय कर्म बांधे वळी जे हिंसानां तत्पर-उद्यमाउ होवे ते जीव अंतरायकर्म बांधे, एटले करी कर्मनो विपाक कह्यो. एमां अट्ठावन प्रकृति कही अने एहना सिद्धांत देखीने देवेंद्रसूरि आचार्ये टाल्यो छे. ॥ ६१ ॥

इति कर्म्मविपाकनाम प्रथमकर्म्मग्रंथस्यार्थः संपूर्णः ॥१॥

पुरुषवेदनी अगनि तृणानी आग समान छे. ते शीघ्रति झाझा दिने पण टके थोडी; तिम पुरुषदाह नग्न मिटे अने नपुंसकवेदनी अगनि नगरदाह समान छे, जिम नगरनो दाह कदेइके बुझे नहीं; तिम नपुंसकवेदनी दाह कदी मिटे नहीं. एटले मोहनीयकर्मनी २८ प्रकृति कही. ॥२२॥

सुरनरतिरिनिरयाऊ हडिसरिसं नामकम्म चित्तिसमं।
बायालतिनवइविहं, तिउत्तरसयं च सत्तट्ठी ॥२३॥

अर्थ—हवे आउखाकर्मनी च्यार प्रकृति कहे छे—तिहां सुर देवतानो आउखो १ नर—मनुष्यनो आउखो २ तिर्यंचनो आउखो ३ नरय—नारकनो आउखो ४ ए च्यार भेद छे. हडिसरिसं—खोडा समान छे, जिम खोडामा पग पड्या पछी वरस्यो न नीसरे तिम आउखो वर्ष भोगव्यां छुटे.

हवे नामकर्मनो स्वरूप कहे छे—नामकर्म चीतारा समान छे—तेहना अनेकभेद अनेकप्रकारना छे ते आगला. हवे तिहां बेतालीस ४२ भेद पण छे, तिनवइ प्रकारे ९३ भेद पिण छे. अने १०३ एकसोतीन भेद छे, वली सडसठि ६७ भेद पण छे. ॥२३॥

गइजाइतणुउवंगा बंधणसंघायणाणि संघयणा।
संठाणवन्नगंधरसफासअणुपुव्विविहगगई ॥ २४ ॥

अर्थ—हवे प्रथम बेतालीस भेद कहे छे—गति १ जाति २ तनु—शरीरभेद ३ उपांगभेद ४ बंधनभेद ५ संघातनभेद ६ संघयणभेद ७ संस्थानभेद ८ वर्णभेद ९ गंधभेद १० रसभेद ११ फरसभेद १२ अनुपूर्वीभेद १३ विहायोगतिभेद ते १४. २४

धर्म उपर न राग न द्वेष ते मिश्र कहीजे ३, नवतत्त्व सुधा सद्दहे ते अविरति समकित कहीजे ४, समकीत सहित श्रावकव्रत पाळे ते देशविरति कहीजे. ५, साधुना पंच महाव्रत पाळे पिण प्रमाद सेवे ते प्रमत्त कहीजे ६, प्रमाद सेवे नहीं ते अप्रमत्त कहीजे ७, प्रति समय अध्यवसायो भिन्न भिन्न होवाथी निवृत्तिबादर कहीजे ८, ज्यां क्रोध, मान, माया, उपशमावे अथवा खपावे ते अनिवृत्तिबादर कहीजे ९, लोभ उपशमावे खपावे ते सूक्ष्मसंपराय कहीजे १०, मोह उपशमावे ते उपशान्त कहीजे ११, मोहनीकर्म खपावे ते क्षीणमोह कहीजे १२, च्यार कर्म खपावे, केवलज्ञान पामे ते सजोगी केवली कहीजे १३, अघाती च्यार कर्म खपावे, मोक्ष जाय ते अजोगी केवली कहीजे १४. हवे चौद गुणठाणानी स्थिति कहे छे–मिथ्यात्वगुणठाणानी स्थिति अभव्यने अनादि–अनंत, भव्य ग्रंथि भेदे नहीं तेने अनादि-सांत, समकीतथी पडी मिथ्यात्वमे पडे तेहनें जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनंतो काल १, सास्वादननी स्थिति ६ छ आवळी छे २. मिश्रनी स्थिति जघन्यने उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त३. सम्यक्त्व गुणस्थाननी उत्कृष्ट ३३ सागर. देशविरतिनी उ० देशून पूर्व क्रोड वर्ष. प्रमत्त एहनी जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशे ऊणी पूर्व क्रोड. (सर्व स्थिति एकत्र करतां) आठमे गुणठाणे (तथा अप्रमत्तना जघन्य समय ने उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्तने भवाद्यापेक्षाए देशूण पूर्व क्रोड वर्ष) थी मांडी बारमा तांइ (सुधी) पांच गुणठाणानी जघन्य एक समय. बारमानी जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट प्रत्येके अथवा सर्वनी एक अंतर्मुहूर्त, तेरमा गुणठाणानी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टी देशे ऊण पूर्वकोडी.

बांधे बीजा न बांधे तिणे सास्वादन गुणठाणे न बांधे तिारे सोले प्रकृति वळी काढी; तिवारे सास्वादनगुणठाणे एकसोरह प्रकृति रही ते बांधे छे.२ हवे मिश्रगुणठाणे कहे छे–तिरिनिग तिर्यंचगति १, तिर्यंचनी आनुपूर्वी २, तिर्यंचनो आउखो ३. थीणद्धीतिग–निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला २, थीणद्धी ३. दुर्भगतिग–ते दुर्भग १, दुःस्वर २, अनादेय ३. एवं ना ए उपरांत वळी ॥ ४ ॥

अणमज्झागिइसंघयणचउ निउज्जोअकुखगइरित्थि
पणवीसं नो मीसे, चउसयरि दुहाउअवंधा ॥ ५ ॥

अर्थ—अनंतानुबंधी क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४. मध्यसंस्थान च्यार न्यग्रोध १, सादि २, वामन ३, कुब्ज ४. मध्यसंघयण ४ रिषभनाराच १, नाराच २, अर्द्धनाराच ३, कीलिका ४ ए ४। नीचगोत्र १, उद्योतनाम १, अशुभविहायोगति १, स्त्रीवेद १. ए पचवीस २५ प्रकृति मिश्रगुणठाणे न बांधे त्यारे मिश्रगुणठाणे ए टाळवी. तिवारे मिश्रगुणठाणे ७४ चोहुंतर प्रकृति बांधे. १०१ माथी पचवीस काढ्यां तो छहोत्तर ७६ होय तिवार दोय आउखा मनुष्यनो आउखो १, देवतानो आउखो २. ए दोय वळी न बांधे तिवार ७४ रहे. ॥ ५ ॥

सम्मे सगसयरि जिणाउबंधि वइरनरतिगबिअकसाया।

उरलदुगंतो देसे सत्तट्ठी तिअकसायंतो ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे चोथे समकित गुणठाणे कहे छे–सम्मे गुणठाणे ७७ सगसयरि प्रकृति बांधे. इहां तीर्थंकरनामकर्म १,

अउखो खपावे सातमे गुणठाणे आवे तेहने अट्ठावन ५८ रहे. इहां नो दोय प्रकृति घटे छे; सत्तावन अथवा छप्पन्न थाय छे. जिणे आहारक शरीर १, आहारक उपांग २, ए दोय वळी घालीजे तिवारे गुणसठी ५९ तथा ५८ थाय. ॥ ८ ॥

अडवन्न अपुव्वाइम्मि निद्दुगंतो छपन्न पणभागे।
सुरदुगपणिंदि सुखगइ तसनव उरलं विणु तणुवंगा ॥९॥

अर्थ—एहिज अट्ठावन ५८ अपूर्वकरण आठमे गुणठाणे तेहने पहेले भागे बांधे, पछी बीजे त्रीजे चोथे पांचमे छठे ए पांच भागे छप्पन्न ५६ प्रकृति बांधे. निद्रा १, प्रचला २, ए दोय प्रकृति काढीजे. पछी देवगति १, देवतानुपूर्वि २. पंचेंद्री १. शुभविहायोगति १. त्रस १, बादर २, पर्याप्त ३, प्रत्येक ४, थिर ५, शुभ ६, सुभग ७, सुस्वर ८, आदेय ९. ए त्रस-नव तथा औदारिक विना ४ शरीर दोय उपांग—वैक्रिय शरीर १, आहारक शरीर २, तेजस ३, कार्मण शरीर ४. वैक्रिय उपांग १, आहारक उपांग २. ॥ ९ ॥

समचउर निमिण जिण वन्न अगुरुलहु चउ छलंसि तीसंतो
चरमे छवीसबंधो, हासरइकुच्छभयभेओ ॥ १० ॥

अर्थ— समचतुरस्र संस्थान १, निर्माण १, जिननाम १, वर्ण १, गंध १, रस १, फरस १, अगुरुलघु १, उपघात १, पराघात १, उश्वास १, छट्ठा भागने अंते ए त्रीस ३० प्रकृति काढीजे तिवारे चरम छेहल्ले सातमे भागे छवीस २६ प्रकृति बांधे. हवे नवमे अनिवृत्तिबादरगुणठाणे कहे छे—हास्य १, रति १, दुगंछा १, भय १. ए च्यार काढीजे. ॥ १० ॥

जं संघायइ उरलाइ–पुग्गले तणगणं व दंताली।
तं संघायं बंधणमिव तणुनामेण पंचविहं ॥३६॥

अर्थ—जे कर्मना उदयथी संघातनं कहेतां मेळा कर औदारिकादि पुद्गलोने जिम तृण गणना प्रते जिम दंताली मेळा करे तिम पुद्गलने मेळा कर, ते संघातन कहीइ छे. जिम बंधनना पांच भेद कह्या तिम संघातनना पांच भेद कहेवा औदारिक संघातन १, वैक्रिय संघातन २, आहारक संघातन ३, तेजस संघातन ४, कार्मण संघातन ५. ॥ ३६ ॥

ओरालविउवाहारयाणं सगतेयकम्मजुत्ताणं।
नवबंधणाणि इयर–दुसहियाणं तिन्नि तेसिं च ॥३७॥

अर्थ—हवे १५ बंधन कहे छे. औदारिक औदारिक बंधन १, वैक्रिय वैक्रिय बंधन २, आहारक आहारक बंधन ३ [illegible] सग पोताना बंधनथी जाणवा अने ३ शरीरथी तेजस औदारिक वर्गी कार्मणने जोडिये तिवार नव बंधन थाय. औदारिक तेजस बंधन ४, वैक्रिय तेजस बंधन ५, आहारक तेजस बंधन ६ औदारिक कार्मण बंधन ७, वैक्रिय कार्मण बंधन ८, आहारक कार्मण बंधन ९, ते ३ शरीरथी तेजस कार्मण जोडा[illegible] तेजस कार्मण बंधन १०, वैक्रिय तेजस कार्मण [illegible] तेजस कार्मण बंधन १२, कार्मण [illegible] तेजस तेजस बंधन १४, तेजस कार्मण बंधन [illegible] जाणवा. एवं १५ पंदर बंधन थया. ॥ ३७ ॥

संघयणमट्ठिनिचओ, त छद्धा वज्जरिसहनारायं।
तह य रिसहनारायं, नाराय अद्धनारायं ॥ ३८ ॥

अर्थ—हवे चौद गुणठाणे उदय कहे छे–उदय कहेतां कर्मनो विपाक फळ तेहनो भोगवणो शुभ सातादिक अशुभ असातादिक ते उदय कहीजे. अने उदय नाव्या कर्मने खेंची उदीरणकरणे करी जोरावरें करी उदय आणे ते उदीरणा कहीजे. इहां उदयमें उदीरणामें सामान्य एकसो बावीस १२२ छे. मोहनीना २८ भेद लीजे, मिथ्यात्व गुणठाणे ११७ एकसो सत्तरनो उदय छे. जे कारणे पांच प्रकृति काढीजे–मिश्रमोहनी १, सम्यक्त्वमोहनी २, जिननाम ३, आहारक शरीर ४, आहारक उपांग ५. ए पांच काढीजे. ॥ १३ ॥

सुहुमतिगायवमिच्छं, मिच्छत्तं सासणे इगारसयं।
निरयाणुपुव्विणुदया, अणथावरइगविगलअंतो॥१४॥

अर्थ—हवे सास्वादन गुणठाणे कहे छे–सुहुमतिक ते सूक्ष्म १, अपर्याप्त २, साधारण ३. आताप १. मिथ्यात्वमोहनी १. ए पांचनो उदय मिथ्यात्वमें छे, सास्वादनमें नहीं; तिवारे सास्वादनमें एकसो इग्यार प्रकृति उदय छे. सो एतो एकसो बारे रही तिवारे नरकआनुपूर्वि काढीजे तिवारे १११ रही. हवे मिश्रगुणठाणे कहे छे–अनंतानुबंधि क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, थावर ५, एकेंद्री ६, विकलेंद्री ते बेंद्री ७, तेंद्री ८, चौरेंद्री ९. ए नव काढीजे. ॥ १४ ॥

मीसे सयमणुपुवीणुदया मीसोदएण मीसंतो।
चउसयमजए सम्माणुपुव्वि खेवाबियकसाया॥१५॥

अर्थ—तिवारे मिश्रगुणठाणे एकसो प्रकृति उदय छे. एतो एकसो दोय १०२ रही; तिवारे मनुष्यानुपूर्वि १, तिर्यंचानुपूर्वि १,

[illegible] ॥ ४० ॥

[illegible] ४१

अर्थ—[illegible] १. [illegible] २. [illegible] १. [illegible] २. [illegible] ३. [illegible] ४. [illegible] ५. [illegible] १. [illegible] २. [illegible] ३. [illegible] ४. [illegible] ५. [illegible] ६. [illegible] ७. [illegible] ॥ ४१ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ४२ ॥

अर्थ—[illegible] १. [illegible] २. [illegible] ३. [illegible] ४. [illegible] ५. [illegible] ६. [illegible] ७. [illegible] ८. [illegible] ९. [illegible] ॥ ४२ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ४३ ॥

अर्थ—[illegible] १

विषे आताप नहीं. तो इय ने ते ' जे कारण अंग्रम प
उन्हो छे अने लोहित गतानामनो उदय छे. आतपनो
नहीं. ॥ ४५ ॥

अणुसिणपयासरूवं, जिअंगमुज्जोअए इहुज्जोआ
जइ देवुत्तरविकिअ–जोइसखज्जोअमाइव ॥ ४६

अर्थ—अनुष्ण उन्हो नहीं अने प्रकाशरूप
करे छे, जीव प्राणीनो अंग शरीर उद्योत कर ते उद्योत
नामकर्म कहीजे. यदि–जिवारे देवना उत्तरवैक्रिय कर, ज्योतिष
चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, ताराप्रमुखने यतिने आदि... मणि, मोती,
हीरा, माणिक्य प्रमुखने उद्योतनामकर्मनो उदय छे ते
तेज ज्योति छे. ॥ ४६ ॥

अंगं न गुरु न लहुअं, जायइ जीवस्स अगुरुलहु उदया।
तित्थेण तिहुअणस्स वि, पुज्जो से उदओ केवलिणो ॥४७

अर्थ—जे कर्मथी जिम जीवनो शरीर घणो
थाइ, न घणो हलवो पणि थाइ. मध्यम शरीर
ते अगुरुलघुनामकर्म उदयथकी जाणवो. तित्थ–
करनामकर्मना उदयथी जीव त्रिण भुवनने
चोत्रीस अतिशय, पांत्रीस वाणी आठ प्रातिहार्य
करनामकर्मनो उदय केवलीने केवलज्ञान उपन्या पछी
ते उदये आवे. ॥ ४७ ॥

अंगोवंगनियमणं, निम्माणं कुणइ सुत्तहारसमं।
उवघाया उवहम्मइ, सतणुवयवलंबिगाईहिं ॥४८॥

गुणठाणा तांइ एकसो अडताळीस १४८ नी सत्ता छे. इहां सत्तामे एकसो अट्ठावन १५८ छे. तिना नामकर्मना भेद १०३ एकसोतीन गुण्या छे अने जो बंधन १५ पन्नर न गणीजे ने पांच गणीजे तो नामकर्मना भेद ९३ थाय माटे. जिवारे नामकर्मना तिनवे ९३ भेद गणीजे; तिवारे १४८ एकसो अडताळीस थाइ. ॥ २५ ॥

अपुव्वाइअचउक्के अणतिरिनिरयाउविणुवियालसयं।
सम्माइचउसु सत्तगखयंमि इगचत्तसयमहवा॥२६॥

अर्थ—हवे बीजे पक्ष कहे छे. जे उपशमश्रेणिवंत आठमे गुणठाणे अनंतानुबंधी चोकडी खपावे, एटले आठमा गुणठाणाथी मांडी इग्यारमा उपशांतमोह गुणठाणा तांइ च्यार ४ गुणठाणे अनंतानुबंधी क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४. ए च्यार. तिर्यचनो आउखो १, नरकनो आउखो. ए छ खपावे; तेहने इणे च्यारे गुणठाणे एकसोबेताळीस १४२ नी सत्ता छे. हवे कोइ जीव चोथे गुणठाणे सात प्रकृति खपावे, एटले अनंतानुबंधी क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४, ए च्यार समकित मोहनी १, मिश्र मोहनी २, मिथ्यात्व मोहनी ३. एम ए ७ सात प्रकृति जेने खपावे छे तेने समकीतथी च्यारे गुणठाणे एकसो एकताळीस १४१ नी सत्ता छे. ए क्षायकसमकीती उपशमश्रेणि जीतने छे. ॥ २६ ॥

खवगं तु पप्प चउसुवि, पणयालं निरयतिरिसुराउविणा
सत्तगविणु अडतीसं, जा अनियट्टिपढमभागे ॥२७॥

अर्थ—क्षपकश्रेणिने मते च्यारे गुणठाणे अनियट्टि गुं

अथ द्वितीयः कर्म्मग्रंथः

तह थुणिमो वीरजिणं, जह गुणठाणेसु सयलकम्माइं
बंधुदयोदीरणया, सत्तापत्ताणि खविदाणि ॥ १ ॥

अर्थ—[illegible]–तेम स्तवुं छुं, मन वचन [illegible] करी, वीर महावीरजिन प्रत्ये नमुं, जह–जेम गु[illegible] ने [illegible] निरउदीरणाने, सत्ताने प्राप्त थया कर्म ज्ञानावरणादिक बंधने, उदयने, [illegible] [illegible] ते कर्म ते [illegible] [illegible] [illegible] ते महावीर प्रत्ये वांदीने नमाने. ॥ १ ॥

मिच्छे सासणमीसे, अविरयदेसे पमत्तअपमत्ते नियट्टि
अनियट्टि सुहुमुवसमखीणसजोगिअजोगि गुणा ॥२॥

अर्थ—हवे गुणठाणानो स्वरूप कहे छे–[illegible] मिथ्यात्व गुणठाणो १, सास्वादन गुणठाणो २. मिश्र [illegible] ३, अविरति गुणठाणो ४. देशविरति गुणठाणो ५. [illegible]–गुणठाणो ६, अप्रमत्त गुणठाणो ७. [illegible] निवृत्ति बादर गुणठाणो ८, अनिवृत्ति बादर [illegible] [illegible] [illegible] संपराय गुणठाणो १०, उपशान्तमोह गु[illegible] ११, क्षीणमोह गुणठाणो १२, सजोगी केवली [illegible] १३, अजोगी केवली गुणठाणो १४. हवे गुणठाणानो [illegible] परिणाम कहे छे. ते जिनधर्मथी विपरीत ते मिथ्यात्व १, समकितथी पडी मिथ्यात्वमें आवे ते पहेला काळने सास्वादन कहीजे २, जिन

चौदनी सत्ता छे. अनिवृत्तिकरणे चोथे भागे नपुंसकवेद खपे; तिवारे एकसो तेर ११३ नी सत्ता छे. पांचमे भागे स्त्रीवेद खपावे; तिवारे ११२ एकसो बारनी सत्ता छे. छट्ठे भागे हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, भय १, दुगंछा १, ए छ प्रकृति खपावे; तिवारे एकसो छ ६ नी सत्ता छे. सातमे भागे पुरुषवेद खपावे तिवारे एकसो पांच १०५ नी सत्ता छे. आठमे भागे संजलनो क्रोध खपावे; तिवारे एकसो च्यार १०४ नी सत्ता छे. नवमे भागे संजलनो मान खपावे; तिवारे एकसो तीननी सत्ता छे. ए नवमो गुणठाणो पूरो कह्यो पछी संजलनी माया खपावे तिवारे. २९

सुहुमि दुसयलोहं तो, खीणदुचरिमेगसयदुनिद्दखओ।
नवनवइ चरमसमये, चउदंसणनाणविग्घं तो॥३०॥

अर्थ–दशमे सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे एकसो दोय १०२ नी सत्ता छे. इहां क्षपकश्रेणि दशमे गुणठाणेथी बारमे गुणठाणे जाय. इग्यारमो न फरसे तिवारे बारमे गुणठाणे संजलनो लोभ खपावे; तिवारे क्षीणमोहने पेहेले भागे एकसो एक १०१ नी सत्ता छे. तिहां वळी निद्रा १, प्रचला १, ए दोय २, प्रकृति खपावे; तिवारे क्षीणमोहने बीजे भागे नवाणुं ९९ नी सत्ता छे. हवे दर्शनावरणी च्यार ४, ज्ञानावरणी पांच, ए चौदे प्रकृति खपावे तिवारे. ३०

पणसीइ सयोगी अयोगि, दुचरिमेदेवखगइगंधदुगं।
फासट्ठवण्णरसतणु–बंधणसंघायपणनिमिणं॥३१॥

अर्थ–तेरमे सजोगी केवळी गुणठाणे पंच्यासी ८५ नी

१४ चउदमे गुणठाणे स्थिति जघन्य उत्कृष्ट पांच लघु अक्षर प्रमाण छे. ए गुणठाणानो स्वरूप कह्यो. ए सिद्धांतमत छे.॥२॥

हवे चौद गुणठाणने विषे बंध कहे छे.

अभिनवकम्मग्गहणं, बंधो ओहेण तत्थ वीससयं।
तित्थयराहारगदुगवज्जं मिच्छंमि सतरसयं ॥ ३ ॥

अर्थ—नवां कर्मनो ग्रहण-लेवो, एटले जीवने नवां कर्म लगाववां ते बंध कहीजे. ते बंधे सर्व सामान्ये एकसोवीस प्रकृति छे. पांच ज्ञानावरणी, नव दर्शनावरणी, बे वेदनी, छवीस मोहनी, ४ आउखो, ६७ नामकर्मनी, बे गोत्रकर्मनी, पांच अंतरायकर्मनी एवं १२० प्रकृति बांधे; तिहमे तीर्थंकर नामकर्म १, आहारक शरीर २, आहारक उपांग ३, ए तीन प्रकृति शुभ छे. सम्यक्त्व सर्वविरति विना बंधाय नहीं; तिणे ए तीन प्रकृति मिथ्यात्व गुणठाने न बांधे, तिवारे बाकी मिथ्यात्वगुणठाणे ११७ एकसो सतर प्रकृति बंधी तेटली बांधे; तेमां ए तीन प्रकृति नामकर्मनी टाली छे. ॥ ३ ॥

नरयतिग जाइथावरचउ हुंडायवछेवट्ठनपुंमिच्छं।
सोलंतो इगहिअसयं सासणि तिरिथी गदुहगतिग ४॥

अर्थ—हवे सास्वादन गुणठाणे कहे छे—नरक [illegible] गति १, नरकानुपूर्वी २, नरक [illegible] ३, [illegible] ४, बेंद्री २, तेंद्री ३, चउरेंद्री ४। [illegible] सूक्ष्म [illegible] अपर्याप्त ३, साधारण ४. ए ११, हुंडक संस्थान १२, आतपनाम १३, छेवठो संघयण १४, नपुंसकवेद १५, मिथ्यात्वमोहनी १६, ए सोळे प्रकृति अशुभ छे. मिथ्यात्वगुणठाणे जीव ते होय ते

अर्थ—हवे पहेली नरकगति मार्गणाए बंधस्वामित्व कहे छे–जिनतीर्थंकर नाम १, देवगति १, देवानुपूर्वि २, वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपांग २, आहारक शरीर १, आहारक उपांग २, देवतानो आउखो १, नरकगति १, नरकानुपूर्वि २, नरक आयु ३, सूक्ष्मत्रिक–सूक्ष्म १, अपर्याप्त २, साधारण ३, विगलतिग–बेंद्री १, तेंद्री २, चौरेंद्री ३, एकेंद्रीजाति १, थावर नामकर्म १, आतापनामकर्म १, नपुंसकवेद १, मिथ्यात्वमोहनी १, हुंडकसंस्थान १, छेवट्ठो संघयण १. ॥ ३ ॥

अणमज्झागिइसंघयण–कुखगइनीइत्थिदुहगथीणतिगं।

उज्जोयतिरिदुगं, तिरिनराउनरउरलदुगरिसहं ॥४॥

अर्थ—अनंतानुबंधि क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४. मध्यसंस्थान ४. न्यग्रोध १, सादि २, वामन ३, कुब्ज ४. मध्यसंघयण ४, ऋषभनाराच १, नाराच २, अर्द्धनाराच ३, कीलिका ४, अशुभविहायोगति १, नीचगोत्र १, स्त्रीवेद १, दुर्भग १, दुःस्वर १, अनादेय १, निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला १, थीणद्धी १, उद्योत १, तिर्यचगति १, तिर्यचानुपूर्वि १, तिर्यंच आउखो १, मनुष्यआउखो १, मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वि २. औदारिक शरीर १, औदारिक उपांग २, वज्रऋषभनाराचसंघयण १, ए दोय गाथाए करी पंचावन प्रकृति ५५ कही. ॥४॥

सुरइगुणवीसवज्जं इगसंओ ओहेण बंधहिंनिरया।

तित्थविणा मिच्छिंसयं, सासणनपुचउविणा छनुई॥

अर्थ–सुरगति आदिक ओगणीस १९ प्रकृति वर्जीने-

मनुष्यनो आउखो २, देवनानो आउखो ३, ए तीन प्रकृति पहेलां पाडी ते पाछी मेळीजे तिवारे ७७ सत्तहत्तर बांधे. हवे पांचमे देशविरतिगुणठाणे कहे छे—वज्रऋषभनाराचसंघयण १, मनुष्यगति २, मनुष्य अनुपूर्वी ३, मनुष्यनो आउखो ४, बीजी चोकडी ते अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ ४. उरल-औदारिक शरीर १, औदारिक उपांग २. ए दश १० प्रकृति देशविरतिगुणठाणे न बांधे; तिवारे ए १० काढीजे तिवारे ६७ सत्तसठी प्रकृति बांधे. हवे प्रमत्तगुणठाणे कहे छे—त्रीजी चोकडी ते प्रत्याख्यानी क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४ ए च्यार काढीजे. ॥ ६ ॥

तेवट्ठि पमत्ते सोगअरइअथिरदुगअजसअस्सायं ।
वुच्छिज्ज छच्च सत्तव नेइ सुराउं जयानिट्ठं ॥ ७ ॥

अर्थ—त्यारे ६३ त्रेसठ रहे, ते प्रमत्त छट्ठे गुणठाणे बांधे. हवे सातमे अप्रमत्त गुणठाणे कहे छे—सोग १, अरति २, अथिर ३, असुभ ४, अजस ५, असातावेदनी ६, किसीक जीवने ए छ ६ काढीजे अने किणहिने तो सात काढीजे, ते देवनो आउखो काढीजे देवनानो आउखो खपावे होवे अथवा न बांधतो होवे तो सात काढीजे. ॥ ७ ॥

गुणसट्ठि अप्पमत्ते, सुराउ बंध तु जइ इहागच्छे ।
अन्नह अट्ठावन्ना, जं आहारगदुग बंधे ॥ ८ ॥

अर्थ—जो ए काढीने तो अप्रमत्तगुणठाणे गुणसट्ठि ५९ रहे, जिण कारणथी देवनानो आउखो जे जीव बांधतो थको सातमे गुणठाणे आवे छेहूने ५९ अने ते जीव देवतानो

आव्यो तीर्थंकरने थाय. मिथ्यात्वगुणठाणे सो १०० प्रकृतिनो बंध छे. सास्वादनमे ९६, मिश्रमे ७०, समकितने ७१, एक मनुष्यनो आयु भेळीजे. ॥ ६ ॥

अजिणमणुआउं ओहे[११],सत्तमिए नरदुगुंचविणु मिच्छे इगनवई सासीणे, तिरिआउं नपुंसचउवज्जं ॥७॥

अर्थ—सातमी नरके ओघमांहेथी जिननाम १, मनुष्यनो आउखो १, ए दोय काढीजे; तिवारे सातमी नरके ओघे नवाणुं ९९ नो बंध छे. अने मिथ्यात्वगुणठाणे मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वि १, उच्चगोत्र १, ए ३ तीन काढीजे; तिवारे मिथ्यात्वगुणठाणे ९६ छन्नुनो बंध छे. सास्वादन गुणठाणे एकाणुनो बंध छे. पांच प्रकृति काढीजे. तिर्यंचनो आउखो १, नपुंसकवेद १, मिथ्यात्व १, हुंडकसंस्थान १, छेवटोसंघयण १, ए पांच वर्जीजे—काढीजे एटले ९१. ॥ ७ ॥

अणचउवीसविरहिया, सनरदुगुंच्चाय सयरि मीसदुगे। सत्तरसओ ओहे[११७]मिच्छे, पज्जतिरियाविणुजिणाहारं॥८॥

अर्थ—अनंतानुबंधी ४, मध्यसंस्थान ४, मध्यसंघयण ४, अशुभविहायोगति १, नीचगोत्र १, स्त्रीवेद १, दुर्भग ३, थीणद्धी ३, उद्योत १, तिर्यंचगति १, तिर्यंचआनुपूर्वि १, ए चोवीस २४ काढीजे अने मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वि १, उंचगोत्र १, ए तीन मेळीजे; तिवारे मिश्रगुणठाणे ७० नो बंध छे, इहां नरकगति कही छे. पर्याप्ततिर्यंचने ओघे—सामान्ये एकसो सतर ११७, अने मिथ्यात्वगुणठाणे ११७ नो बंध छे; केमके तीर्थंकरनाम १, आहारक शरीर २, आहारक उपांग ३, ए त्रण काढीने तिर्यंचगतिमे ए ३ नो बंध नहीं. ॥ ८ ॥

अनियट्टिभागपणगे, इगेगहीणो दुवीसविहबंधो ।
पुमसंजलणचउण्हं, कमेण छेओ सतरसुहुमे ॥११॥

अर्थ—अनिवृत्ति गुणठाणाना पांच भाग छे. तिणमे पेहेले भागे बावीस बांधे, पाछले भागे सर्व एकेक घटाडीये बावीस मांहेथी घटाडीये अनिवृत्तिकरणने बीजे भागे पुरुषवेद काढीजे तिवारे एकवीस २१. त्रीजे भागे संजलनो क्रोध काढीजे तिवारे २० वीस. चोथे भागे संजलनो मान काढीजे तिवारे १९ ओगणीस. पांचमे भागे संजलनी माया काढीजे तिवारे अढार १८. हवे दशमो सूक्ष्मसंपराय गुणठाणो कहे छे—तिणमांहीथी संजलनो लोभ काढीजे; तिवारे सत्तर दशमे गुणठाणे १७ बांधे.

चउदंसणुच्चजसनाणविग्घं दसगं नि सोलसुच्छेओ।
तिसुसायबंधछेओ, सजोगि बंधंतणंतो य ॥ १२ ॥
बंधो सम्मत्तो ॥

अर्थ—हवे इग्यारमो उपशांतमोह कहे छे—च्यार दर्शनावरनि उच्चगोत्र, जसनामकर्म्म, पांच ज्ञानावरणि, पांच अनराय ए दश ए सर्व सोळे प्रकृतिनो छेद कीजेः तिवारे इग्यारमे बारमे तेरमे ए तीने गुणठाणे बाकी १ एक सातावेदनी प्रकृति बंधमे रहे, पछे तेरमे सजोगी केवळीने छेहे तेपण खपावे, अबंध होवे, सर्व कर्मनुं रहित होवे. चौदमे गुणठाणे पछी अनंतो काळ मोक्षपद पावे. १२ ए बंध अधिकार पूरो थयो छे.

उदओ विवागवेयणमुदीरणमपत्ति इह दुवीससयं ।
सतरसयं मीच्छे मीससम्मआहारजिणणुदया ॥१३॥

देवानुपूर्वी १. ए तीन वर्जी काढीजे; तिवारे नवाणुं ९९ रहे. वली मिश्रमोहनी मेळवीजे, तिवारे पूरा सो १०० थाय.

चोथे गुणठाणे कहे छे—मिश्रमोहनी काढीजे अने सम्यक्त्वमोहनी १, आनुपूर्वी ४ च्यार, ए पांच प्रकृति मेळवीजे; तिवारे चोथे गुणठाणे १०४ एकसोच्यार प्रकृतिनो उदय छे. पांचमे देशविरति गुणठाणे कहे छे—बीजी चोकडी कषायनी—अप्रत्याख्यानी क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ. ॥ १५ ॥

मणुतिरिणुपुव्वीविउवट्ठ-दुहगअणाइज्जदुगसतरछेओ
सगसीइ देसि तिरिगइआउनिउज्जोअतिकसाया॥१६॥

अर्थ—मनुष्यानुपूर्वी १, तिर्यंचनी आनुपूर्वी १, वैक्रियाष्टक ते वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपांग २, देवगति ३, देवानुपूर्वी ४, देवनो आउखो ५, नरकगति ६, नरकानुपूर्वी ७, नरक-आउखो ८, ए आठ, दुर्भग १, अनादेय १, अयश १, ए सत्तरे प्रकृति काढीजे; तिवारे देशविरति गुणठाणे सत्तासी ८७ प्रकृतिनो उदय छे. हवे छट्ठो प्रमत्त गुणठाणो कहे छे—तिर्यंचगति १, तिर्यंच आउखो १, नीचैर्गोत्र १, उद्योतनामकर्म १ त्रीजी चोकडी—प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ॥१६॥

अट्ठछेओ इगसीइ, पमत्ते आहारजुअलपक्खेवा ।
थीणतिगाहारगदुगछेओ छसयरि अप्पमत्ते ॥ १७ ॥

अर्थ—ए आठ प्रकृति काढीजे, तिवारे प्रमत्तगुणठाणे एकाशी ८१ प्रकृति उदये छे. इहां गुणठाणे ७९ थाय छे; तिवारे आहारक शरीर १, आहारक उपांग २, ए दोय प्रकृति मेळवीजे; तिवारे ८१ एकाशी थाय छे. हवे सातमे अप्रमत्त गुणठाणे

ननी पेरे १४ गुणठाणे बीजे कर्मग्रंथमे कह्या तिम जाणवा. एकसोवीसनो बंध कह्यो छे. गतित्रस ते तेउकाय, वायुकायमें जिणादि ११ इग्यार काढीजे. जिन १, देव २, वैक्रिय २, आहारक २, देवतानो आउखो १, नरक ३. ए ११. पछी मनुष्य २, उच्चगोत्र १. एम १५ काढवी; तिवारे ओघ मिथ्यात्वे एकसो पांच १०५नो बंध छे. एहनो गुणठाणो एक छे. मनोयोग १, वचनयोगमें १३ गुणठाणा १२० बंध बीजा कर्म ग्रन्थने परे जाणवी. औदारिक शरीरमें मनुष्यगतिनी पेरे जाणवी. एकसोवीस ओघ ११७ मिथ्यात्वे, १०१ सास्वादने, ६९ मिश्र, ७१ समकिते, इम १३ तेर गुणठाणे जाणवो. ॥१४॥

आहारछगविणोह, चउदससेंओ मिच्छि जिणपणगहीणं।

सासणि चउनवइ विणा, नरतिरिआउ सुहुमतेर॥१५॥

अर्थ—आहारक मिश्रकाय योगमें आहारक २ देवआउखो १ नरक ३, ए [illegible] काढीजे. तिवारे ११४ एकसो चौ[illegible] [illegible] अने मिथ्यात्व गुणठाणे जिननाम १, देव [illegible] [illegible] २ ए पांच काढीजे तिवारे १०९ नो बंध [illegible] [illegible] ते सास्वादन गुणठाणे चोराणुनो बंध छे. [illegible] [illegible] ३ एकेन्द्री १ थावर १ आताप १, न[illegible] [illegible] १ मिथ्यात्व १ हुंडक १ छेवटो १, एवं १३. [illegible] [illegible] [illegible] १५ [illegible] ॥१५॥

अणचउवीसाइ विणा, जिणपणजुअसम्मि जोगिणो सायं।

[illegible] कम्मे विणवमाहारगि ओहो॥१६॥

सगवास खीणदुचरमि निद्ददुगंतो चरमि पणपन्ना।
नाणंतरायदंसणचउछेओ सजोगिबायाला ॥२०॥

अर्थ—तिवारे देहेले क्षीणमोह गुणठाणाना उपान्त्यसमये सित्तावन ५७ प्रकृतिनो उदय छे अने बीजे भागे निद्रा १ प्रचला १ ए दोय प्रकृति काढीजे, तिवारे क्षीणमोहने छेहडे पंचावन ५५ प्रकृतिनो उदय छे. हवे तेमने सजोगी केवली गुणठाणे कहे छे—नाण—ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी ४ च्यार. ए १४ चौदे प्रकृति काढीये, तिवारे तेरमे गुणठाणे बायाला—बेतालीस प्रकृति उदये छे. जो के पाछ छे एकतालीस पण. ॥ २० ॥

तित्थुदया उरलाथिरखगइदुगपरित्तितिगछसंठाणा।
अगुरुलहुवण्णचउनिमिणतेअकम्माइसंघयण ॥२१॥

अर्थ—ए एकतालीस हती तिवारे तीर्थंकरनाम एमां भेळीजे. तीर्थंकरनामकर्मनो उदय ते केवलज्ञान उपन्या पछी ते माटे ४२. हवे चौदमे अजोगीगुणठाणे कहे छे. त्रीस प्रकृति खपे ते कहे छे—औदारिक शरीर १, औदारिक उपांग १, अथिर १, अशुभ १. ए अथिरद्विक तथा शुभविहायोगति अशुभविहायोगति १. ए खगतिद्विक. प्रत्येक १, स्थिर १, शुभ १. ए प्रत्येकत्रिक. छ संस्थान ६ ते समचतुरस्र १, निग्रोध २, सादी ३, वामन ४, कुब्ज ५, हुंडक ६. ए अ गुरुलघु १, उपघात १, पराघात १, उच्छ्वास १, वर्ण १, गंध १, रस १, स्पर्श १, निर्माण १, तेजसशरीर १, कार्मणशरीर १, वज्रऋषभनाराच संघयण १ ॥ २१ ॥

एसा पयडितिगुणा, वेयणीआहारजुअलथीणतिगं ।
मणुआउ पमत्तंता, अजोगिअणुदीरगो भयवं ॥२४॥

उदीरणा समत्ता ॥

अर्थ—ए तीन प्रकृति [illegible] प्रथम सातावेदनी १, असातावेदनी २, मनुष्यनो आउखो १ ए [illegible] वेदनी २, आहारक २, थीणद्धित्रिक, मनुष्यनो आउखो १, ए आठ [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] छे [illegible] [illegible] गुणठाणे ८ आठ [illegible] [illegible] [illegible] ७३ उदीरणा छे. [illegible] गुणठाणे ६९ छे. [illegible] [illegible] ६३ [illegible] छे [illegible] सत्तावन छे. [illegible] [illegible] ५६ छे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ५४ उदीरणा छे अने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे. [illegible] गुणठाणे [illegible] ४० [illegible] छे. अने [illegible] अजोगी गुणठाणे उदीरणा नथी [illegible] छे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे. [illegible] [illegible] गुणठाणे उदीरणा [illegible] [illegible]. ॥२४॥

सत्ता कम्माण ठिइ, बंधाइलद्धअत्तलाभाणं ।
संते अडयालसयं जाउवसमु विजिणु बीयतइए ॥२५॥

अर्थ—हवे [illegible] गुणठाणे सत्ता कहे छे [illegible] सत्ताने अर्थ कहे छे—जे कर्मनी [illegible] [illegible] [illegible] उदय विना [illegible] [illegible] सहित छे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] घणी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे सत्ता कहीए. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे सत्ता जाणवी. हवे [illegible] सत्ता कहे छे—जे [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]; तेहनी सत्ताने कांइ [illegible] घटे नहीं, तेहने [illegible] ११ [illegible]

ओहे अट्ठारसयं, आहारदुगूणमाइलेसतिगे।
तं तित्थोणं मिच्छे, सासणाइसु सव्वहिं ओहो॥२२॥

अर्थ—ओघे–सामान्ये ११८ एकसो अढार - प्रकृति छे. आहारक दोय काढीजे; तिवारे ११८ एकसो अढारेनो बंध छे. तीन लेश्या कृष्ण, नील, कापोतमे तीनमे तीर्थंकर नाम काढीजे; तिवारे मिथ्यात्वमे एकसोसत्तर ११७ नो बंध छे, सास्वादन प्रमुखमे बीजे कर्मग्रंथमे कह्यो तिम जाणवो. ॥ २२ ॥

तेऊ निरयनवूणा, उज्जोअचउनिरयबारविणुसुक्का।
विणु निरयबारपम्हा, अजिणाहारा इमा मिच्छे॥२३॥

अर्थ—तेजोलेश्यामे नरक ३, सूक्ष्म ३, विकलेंद्री ३, ए ९ नव काढीजे; तिवारे एकसो १११ इग्यारनो बंध छे. उद्योत १, तिर्यंच ३, ए च्यार ४. नरक ३, सूक्ष्म ३, विगल ३, एकेंद्री १, थावर १, आताप १, ए १२ मळीने १६ काढीजे; तिवारे शुक्ललेश्यामे १०४ एकसो च्यारनो बंध छे. अने नरकादिक १२ काढीजे; तिवारे पद्मलेश्यामे एकसो आठ १०८ नो बंध छे, ए तीने लेश्यामे जिननाम १, आहारक २, ए तीन काढीजे. मिथ्यात्वमे १०८, तेजोमे १११ एकसो इग्यार, शुक्लमे १०४, पद्ममे १०८ जाणवो. ॥ २३ ॥

सव्वगुणभव्वसन्निसु, ओहुअभव्वाअसन्नि मिच्छसमा।
सासणि असन्नि सन्निव, कम्मणभंगो अणाहारे॥२४॥

अर्थ—भव्यमार्गणामे, संज्ञीमार्गणामे सर्व गुणठाणा छे. बीजा कर्मग्रंथनी पेरे बंधप्रकृति जाणवी. अभव्यमार्गणाने एक इ-

अपूर्वकरण गुणठाणा तांइ एकसो पीस्तालीसनी सत्ता छे. नरकनो आउखो, तिर्यचनो आउखो ने देवायुष्य एम तीन आउखो खपावे; तिवारे १४५ एकसो पीस्तालीसनी सत्ता छे. पछी अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ४. समकीत मोहनी १, मिश्रमोहनी २, मिथ्यात्व मोहनी ३. ए ७ सात प्रकृति खपावे; तिवारे १४८ एकसो अडतालीसनी सत्ता रहे छे. अनिवृत्ति बादरने पेहेला भाग तांइ. अनिवृत्ति बादरना नव भाग छे. ॥ २७ ॥

थावरतिरिनिरयायव-दुगथीणतिगेगविगलसाहारं।
सोलखओ दुवीससयं, वियंमि वियतिअकसायं तो।२८।

अर्थ–हवे अनिवृत्तिबादरनो बीजो भाग कहे छे– थावर १, सूक्ष्म १, तिर्यचगति १, तिर्यचानुपूर्वि १, नरकगति १, नरकानुपूर्वि १, आताप १, उद्योत १, निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला १, थीणद्धी १, एकेंद्री जाति १, बेंद्री १, तेंद्री १, चौरेंद्री १, साधारण १, ए सोळ प्रकृति सत्ताने खपे; तिवारे एकसो बावीस १२२ नी सत्ता छे; ए अनिवृत्ति बादरने बीजे भागे १२२ नी सत्ता छे. हवे त्रीजे भागे कषायनी बीजी चोकडी अप्रत्याख्यान क्रोध १, मान २, माया ३, लोभ ४. प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ए ८ आठ काटीजे. ॥ २८ ॥

तइआइसु चउदसतेरबारछपणचउतिहिअसयकमसो।
नपुइत्थिहासछगपुंस तुरिअकोहमयमायखओ॥२९॥

अर्थ–तिवारे अनिवृत्तिबादरने त्रीजे भागे ११४ एकसो

ॐ नमः सिद्धम् ।

अथ चतुर्थः कर्म्मग्रंथः

॥ आर्य्यावृत्तम् ॥

नमिअ जिणं जियमग्गण-गुणठाणुवओगजोगलेसाओ
बंधप्पबहुभावे, संखिज्जाइ किमवि वुच्छं ॥ १ ॥

अर्थ—नमस्कार करी जिन वीतराग देव प्रत्ये ते [illegible] भगी जे अबोधजीवने बुझव्या. जीवना १४ भेद छे, मार्ग णाना ६२ बासठ भेद छे, गुणठाणां १४ चौद, उपयोग १२, योग १५ पंदर, लेश्या ते छ ६ छे, बंधादिक च्यार ४, बंध हेतु ५७, अल्पबहुत्व, भाव मूळ पांच, उत्तरभेदे ५३, संख्याते, असंख्यातो, अनंतो ए बोल विस्तारीने कहेवुं ते कहुं छुं. ॥१॥

नमिअ जिणं वत्तवा, चउदसजिअठाणएसु गुणठाणा ।
जोगुवओगो लेसा, बंधोदओदीरणासत्ता ॥

पाठान्तरम् ।

चउदसजिअठाणेसु, चउदसगुणठाणागि जोगा य
उवओगलेसबंधो-दओदीरणसंतअट्ठपए ॥ २ ॥

तह मूलचउदमग्गण-ठाणेसु बासट्ठिउत्तरेसु च ।
जिअगुणजोगुवओगा, लेसप्पबहुं च छट्ठाणा ॥

पाठान्तरम् ।

चउदसमग्गणठाणे-सु मूलपएसु बिसट्ठि इयरेसु
जिअगुणजोगुवओगा, लेसप्पबहु च छट्ठाणा ॥ ३ ॥

सत्ता छे. हवे अजोगी चौदमे गुणठाणाने पेहेले भ
पंचाशी ८५ नी सत्ता छे. अने बीजे भागे विहुतर ख
कहे छे-देवदुग देवगति १, देवानुपूर्वि १. खगइदुग-
हायोगति १, अशुभविहायोगति २, गंधदुर्ग-सुगंध १,
२, फास-फरस आट ८, वर्ण पांच ५, रस पांच ५,
पांच ५, संघातन ५, पांच अने निर्माण नाम कर्म ॥

संघयणअथिरसंठाणछक्कअगुरुलहुचउअपज्जत्तं ।
सायं च असायं वा, परित्तूवंगतिगसुसरनीयं ॥

अर्थ-संघयण छ ६, अथिर १, अशुभ १. दुर्भग
दुःस्वर १, अनादेय १, अजस ए अथिर छ ६. संस्थान
६, समचउरंसादि छ. अगुरुलघु १, पराघात १, उपघात
उस्सास १, अपर्याप्त १, साता अथवा असाता एक मत्ये
निम. उपांगत्रीन औदारिक उपांग १, वैक्रिय उपांग २, आ
रक उपांग ३. सुस्वरनामकर्म १, नीचैर्गोत्र ॥३२॥

विसयरिक्खओअ चरिमे, तेरसमणुअतसतिगजसाइज्ज
सुभगजिणुच्चपणिंदिय-सायासायेगयरछेओ ॥३३॥

अर्थ-ए बहोतेर ७२ प्रकृति खपावे; निवारे अजोगी
केवलीने छेहेले भागे तेर प्रकृतिनी १३ नी सत्ता छे, ते ते
१३ प्रकृतिनां नाम कहे छे-मनुष्यगति १, मनुष्य आनुपूर्वि
२, मनुष्य आउखो १, त्रस १, बादर १, पर्याप्त १, आदेय
१, शुभग १, जिननामतीर्थंकर १, उच्चैर्गोत्र १, पंचेंद्रीनी जाति
१, साता असाता मांहेली एक प्रकृति जे रही होय ते पन
ए तेर छेहेले समये खपावी मोक्ष पामे. ॥३३॥

छे. शेष बाकी सूक्ष्म अपर्याप्तो १, सूक्ष्म पर्याप्तो १, बादर एकेन्द्री पर्याप्तो, बेन्द्री पर्याप्तो, तेन्द्री पर्याप्तो, चौरेन्द्री पर्याप्तो, असंज्ञी पंचेन्द्री पर्याप्तो, ए जीवस्थानक एक मिथ्यात्व गुणठाणो छे. ॥ ६ ॥

अपज्जत्तछक्कीकमुरल, मीसा जोगा अपज्जसन्नीसु।
ते सविउव्वि मीसएसु, तेणु पज्जेसु उरलमन्ने ॥७॥

अर्थ—हवे १४ जीवस्थानके १५ योग कहे छे—सूक्ष्म अपर्याप्तो १, बादर अपर्याप्तो १, बेन्द्री अपर्याप्तो १, तेइंद्री अपर्याप्तो १, चौरेन्द्री अपर्याप्तो १, असंज्ञी पंचेन्द्री अपर्याप्तो ए छ ६. जीवस्थानकमें कार्मण १, अने औदारिक मिश्र १. ए बे योग छे. अने संज्ञी पंचेन्द्री अपर्याप्तामें [illegible] १, औदारिकमिश्र २, अने वैक्रियमिश्र ए त्रण ३ योग छे. अने शरीरपर्याप्ति कीधां पछी औदारिक काययोग [illegible] ए ४ च्यार योग छे. ॥ ७ ॥

सव्वे सन्निपज्जत्ते, उरलं सुहुमे सभासु तं चउसु।
बायरि सविउव्विदुगं, पज्जसन्निसु बार उवओगा ॥८॥

अर्थ—संज्ञी पंचेन्द्री पर्याप्तामें सर्व १५ योग छे. [illegible] पर्याप्तामें एक औदारिक योग छे. बेन्द्री पर्याप्तो, तेन्द्री [illegible], चौरेन्द्री पर्याप्तो, असंज्ञी पंचेन्द्री पर्याप्तो, ए [illegible] नकमें दोय २, योग छे. औदारिक काययोग १, [illegible] मृषा वचनयोग २, बादर पर्याप्तामें तीन योग छे. [illegible] १, वैक्रिय २, वैक्रियमिश्र ३, ए तीन योग छे. [illegible] कायआश्रीने वैक्रिय छे.

कृष्ण १, नील २, कापोत ३, एवं त्रण ३. हवे संज्ञीसू एकेन्द्रीयी मांडी संज्ञीपंचेन्द्री अपर्याप्तवे पर्यंत १३, जीव तांई सातकर्म आउखो न बांधे; तिवारे आठकर्म सहित दे बंध छे. इम उदीरणा पण सातनी अथवा ८ आठनी ज संज्ञीपर्याप्तामे मूळकर्म आठ बांधे. ॥ १० ॥

सत्तट्ठछेगबंधा, संतुदया सत्त अट्ठ चत्तारि।
सत्तट्ठछपंचदुगं, उदीरणा सन्निपज्जत्ते ॥ ११ ॥

अर्थ—आउखा विना सात बांधे. मोहनी आयु विना छ कर्म बांधे. दशमे गुणठाणे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, नाम, मोह नीय, अंतरायनो बंध विच्छेद करे माटे ते विना ११ १२ बारमे गुणठाणे एक वेदनी कर्म बांधे. संज्ञीपंचेन्द्री पर्या प्तामे उदय अने सत्ता आठनी, मोहनी कर्म विना सातनी ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय विना च्यार ४ नी जाणवी. संज्ञीपंचेन्द्रीपर्याप्तामे उदीरणामे आठनी, आउखा विना सातनी, आउखा वेदनी विना छनी, तिणमे मोहनी विना पांचनी, तिणमे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय काढीजे; तिवारे दोयनी उदी- रणा छे. ॥ ११ ॥

गइइंदिए अ काए जोए, वेए कसायनाणेसु।
संजमदंसणलेसा, भवसम्मे सन्निआहारे ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे १४ मार्गणा मूळ अने उत्तर मार्गणा ६२, तेनां नाम कहे छे—गति ४, इंद्रिय ५, काय ६, योग ३, वेद ३, कषाय ४, ज्ञान ८, इहां अज्ञानने लीधा ते मार्गणा एकने वारते संयम ७, दर्शन ४, लेश्या ६, भव्य २, सम- कीत ६, सन्नि २, आहारक २. ए मार्गणानां नाम कह्यां. ॥१२॥



तचारित्र ५, देशविरति ६, अविरति ७. हवे ४ दर्शन ना
कहे छे–चक्षुदर्शन १, अचक्षुदर्शन २, अवधिदर्शन ३, केव
दर्शन ४. ए च्यारे दर्शन अनाकार उपयोग–सामान्य उपयो
छे. ॥ १५ ॥

किण्हानीलाकाऊ–तेऊपम्हा य सुक्क भविअरा
वेअगखइगुवसममिच्छमीससासाण सन्निअरे ॥१६

अर्थ—हवे छ लेश्यानां नाम कहे छे–कृष्ण लेश्या १, नील
लेश्या २, कापोतलेश्या ३, तेजोलेश्या ४, पद्मलेश्या ५, शुक्ल
लेश्या ६. हवे भव्ये नाम कहे छे–भव्य १, अभव्य २. समकी
कहे छे–क्षयोपशम समकीत १, क्षायक समकीत २, उपशम ३
मिथ्यात्व ४, मिश्र ५, सास्वादन ६. संज्ञी १, असंज्ञी २. १

आहारेअरभेआ, सुरनिरयविभंगमइसुओहिदुगे।
समत्ततिगे पम्हा, सुक्कासन्निसु सन्निदुगं ॥ १७ ॥

अर्थ—आहारक १, अणाहारक २. ए बासठ मार्गणानां
नाम कह्यां. हवे बासठ मार्गणाए १४ भेद कहे छे–देवगति १,
नरकगति २, विभंग अज्ञान ३, मतिज्ञान ४, श्रुतज्ञान ५, अव-
धिज्ञान ६, अवधिदर्शन ७, उपशम ८, क्षायक ९, क्षयो-
पशम १०, पद्मलेश्या ११, शुक्ललेश्या १२, संज्ञी १३, ए
तेर १३ मार्गणामें संज्ञीपंचेन्द्री पर्याप्तो अने संज्ञीपंचेन्द्री अप-
र्याप्तो ए बे जीवस्थानके लाभे बीजा नही. ॥१७॥

तमसन्नि अपज्जजुअं, नरे सबायरअपज्जतेऊए।
थावरइगिंदि पढमा, चउबार असन्नि दुदु विगले॥१८॥



अर्थ—पुरुषवेद १, स्त्रीवेद १, नपुंसकवेद १, क्रोध १, मान १, माया १. ए छ ६ मार्गणामे मिथ्यात्वसु मांडी अनिवृत्तिबादर पर्यंत नव गुणठाणा छे. लोभ कशायमे मिथ्यात्व सूक्ष्मसंपराय पर्यंत १० गुणठाणा छे. अविरतिमार्गणाने मिथ्यात्वसु अविरति तांइ ए ४ च्यार गुणठाणा छे. मतिअज्ञान १, श्रुतअज्ञान १, विभंगज्ञान १. ए त्रण ३ मार्गणामे पेहेलां बे अथवा त्रण ३ गुणठाणा छे. अचक्षुदर्शन १, चक्षुदर्शनमे १, मिथ्यात्वसु क्षीणमोहतांइ बारे गुणठाणा छे. यथाख्यातचारित्रमे इग्यारमो बारमो तेरमो चौदमो ए च्यार ४ गुणठाणा छे. ॥ २३ ॥

मणनाणि सग जयाई, सामाइअछेअचउ दुन्नि परिहारे
केवलदुगि दोचरमा, जयाइ नवमइसुओहिदुगे ॥२४॥

अर्थ—मनःपर्यायज्ञानमे प्रमत्तगुणठाणेसु मांडी क्षीणमोह तांइ सात गुणठाणा छे. सामायिक १, छेदोपस्थापनीयमे छठ्ठे प्रमत्त गुणठाणें सुं मांडी नवमा तांइ ४ च्यार गुणठाणा छे. दुन्नि परिहारे-परिहारविशुद्धिमां प्रमत्त अप्रमत्त ए दोय गुणठाणा छे. केवलज्ञान केवलदर्शनमे सयोग-अयोग ए दोय छेहेलां गुणठाणा छे. मतिज्ञान १, श्रुतज्ञान १, अवधिज्ञान १, अवधिदर्शन १. ए च्यार मार्गणामे अजद अविरति गुनटाणे सु मांडीने क्षीणमोह तांइ नव गुणठाणा ९ छे. ॥२४॥

अड उवसमि चउ वेअगि,खइए इकार मिच्छतिग देसे।
सुहुमे सट्ठाणं तेरस, जोगआहारसुक्काए ॥ २५ ॥

अर्थ—उपशमसमकितमे अविरतिसुं मांडी उपशान्तमोह तांइ

४, सत्यवचनयोग ५, असत्यवचनयोग ६, मिश्रवचनयोग असत्याअमृषावचनयोग ८, वैक्रियकाययोग ९, आहारककाययोग १०, औदारिककाययोग ११, वैक्रियमिश्रकाययोग १२, आहारकमिश्रकाययोग १३, औदारिकमिश्रकाययोग १४, कार्मणकाययोग १५. ए पन्नर योगनां नाम कह्यां. अनाहारक मार्गणा एक १ कार्मण काययोग छे. ॥ २७ ॥

नरगइपणिंदितसतणु–अचक्खुनरनपुंकसायसम्मदु
सन्नि छलेसाहारग–भवमइसुओहिदुगे सवे ॥ २८ ॥

अर्थ—मनुष्यगति १, पंचेन्द्री १, त्रसकाय १, काययोग १, अचक्षुदर्शन १, पुरुषवेद १, नपुंसकवेद १, कषाय ४, क्षायिक समकीत १, क्षयोपशम समकीत १, सन्निमार्गणाने १, छ लेश्या मार्गणाए ६, आहारक १, भव्य १, मतिज्ञान १, श्रुतज्ञान १, अवधिज्ञान १, अवधिदर्शन १. एटली मार्गणामे सर्व १५ पन्नर योग छे. ॥ २८ ॥

तिरिइथि अजय सासण-अनाणउवसमअभवमिच्छेसु।
तेराहारकदुगूणा, ते उरलदुगूण सुरनरए ॥ २९ ॥

अर्थ—तिर्यंचगति १, स्त्रीवेद १, अविरति १, सास्वादन १, अज्ञान तीन ३ मे, उपशम समकितने १, अभव्य मार्गणामे १, मिथ्यात्वमे १, एनटी मार्गणामे १३ तेर योग छे. आहारक दोय आहारक श [illegible] १, आहारक उपांग २. ए वे काढीजे; तिवारे १३ तेर [illegible] वैमांर्द [illegible] औदारिक [illegible] औदारिक शरीर १, औदारिक उपांग २. [illegible] काढीजे तेरा देवगति १, नरकगति १. ११ अग्यार योग छे ॥ २९ ॥

ठाणे प्रकृति ११७ बंध छे. आहारीमार्गणामें मिथ्यात्वें ११७ नो बंध छे. सास्वादन गुणठाणे १०१ नो बंध छे. जिम संज्ञीनो कह्यो तिम जाणवो. अनाहारकमार्गणामें कार्मणशरीरनी परे जाणवो. ११२ सामान्ये, ११७ मिथ्यात्वे, ९४ सास्वादने, ७५ सम्यक्त्वे. तेरमे गुणठाणा १, अयोगिमें अबंध छे. ॥२४॥

तिसु दुसु सुक्काइगुणा, चउसगतेरत्ति बंधसामित्तं ।
देविंदसूरिरइयं लिहियं. नेयं कम्मत्थयं सोउं ॥२५॥

अर्थ—कृष्ण १, नील २, कापोत ३, ए तीन लेश्यामें पहेलां ४ च्यार गुणठाणा छे, तेजोलेश्या, पद्मलेश्यामें पहेला सात ७ गुणठाणा छे. शुक्ललेश्यामें पहेला तेरमु १३ मुं गुण-ठाणे छे. अयोगीगुणठाणे नहीं. ए बंधस्वामित्व त्रीजो कर्मग्रंथ पूर्ण थयो. देवेन्द्रसूरि आचार्ये लिख्यो छे. कर्मस्तव बीजो कर्मग्रंथ भण्याने पछी त्रीजो भणवो. ॥ २५ ॥

इति तृतीयकर्मग्रन्थ टबार्थसमेत समाप्त ॥३॥

चउदसगुणेसु जिअजो–गुवओगलेसा य बंधहेऊ य
बंधाइअचउअप्पा बहुं, च तो भावसंखाई ॥

पाठान्तरम् ।

चउदसगुणठाणेसु, जिअजोगुवओगलेस्सबंधा य।
बंधुदयुदीरणाओ,संतप्प बहुचदसट्ठाणा दारगाहाओ ४

हवे पेहेलां जीवना चौद भेद कहे छे.

इह सुहुमबायरेगिंदि, बितिचउ असन्नीपंचिंदी।
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियठाणा ॥ ५ ॥

अर्थ—सूक्ष्म एकेन्द्रिय ए एक भेद १, बादर एकेंद्रिय ए बीजो भेद २, बेंद्री ३, तेंद्री ४, चौरेंद्री ५, असंज्ञी पंचेन्द्री ६, संज्ञी पंचेन्द्री ए सात ७ पर्याप्ता, अने ए ७ सात अपर्याप्ता ए अनुक्रमे संसारी जीवनां १४ चौद स्थानक जाणवां. ॥ ५ ॥

हवे चौदे जीवस्थानके गुणठाणां कहे छे.

बायरअसन्निविगले, अपज्जिपढमबिअसन्निअपज्जत्ते।
अजयजुअसन्निपज्जे, सव्वगुणा मिच्छसेसेसु ॥ ६ ॥

अर्थ—बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तो १, असंज्ञी पंचेन्द्री अपर्याप्तो २, बेंद्री अपर्याप्तो ३, तेंद्री चौरेंद्री ५, अपर्याप्तो ए पांच जीवस्थानक भेदे पेहेलो मिथ्यात्व १, बीजो सास्वादन २, ए बे गुणठाणा छे अने संज्ञी पंचेन्द्री अपर्याप्तो रूप क जीवस्थानकमें तीन गुणठाणा छे. प्रथम मिथ्यात्व १, सास्वादन २, अने अविरति समकित ३ ए त्रण छे. संज्ञी पंचेन्द्री पर्याप्तामें इसे एक जीवभेदमांहे सर्व १४ गुणठाणा

हवे जीवस्थानके उपयोग कहे छे. संज्ञीपंचेन्द्रीपर्या
मांहे उपयोग छे १२. पांच ज्ञान, त्रिण अज्ञान, च्यार
दर्शन. ए बार उपयोग कह्या. ॥ ८ ॥

पज्जचउरिंदिअसन्निसु. दुदंसदुअनाणदसनु चक्खु
सन्नि अपज्जे मणनाण—चक्खुकेवलदुगविहूणा ॥९॥
विणा ।

अर्थ—चौरेन्द्री पर्याप्तामें, असंज्ञी पंचेन्द्री पर्याप्तामें दोय
दर्शन, चक्षुदर्शन १, अचक्षुदर्शन २. दोय २ अज्ञान—मति-
अज्ञान १, श्रुत अज्ञान २. ए ४ च्यार उपयोग छे. सूक्ष्म
पर्याप्तो १, सूक्ष्म अपर्याप्तो २, बादर पर्याप्तो ३, बादर अपर्याप्तो ४,
बेन्द्री अपर्याप्तो ५, बेन्द्री पर्याप्तो ६, तेन्द्री अपर्याप्तो ७, तेन्द्री
पर्याप्तो ८, चौरेन्द्री अपर्याप्तो ९, संज्ञी अपर्याप्तो १०. ए दस
जीवस्थानकभेदमें चक्षुदर्शनविना ३ त्रण ते मतिअज्ञान १,
श्रुतअज्ञान २, अचक्षुदर्शन ए तीन उपयोग छे. संज्ञी पंचेन्द्री
अपर्याप्तामें—मनःपर्यवज्ञान १, चक्षुदर्शन १, केवलज्ञान ३,
केवलदर्शन ४; ए च्यार ४ उपयोग नहीं; बाकी त्रण ज्ञान
३, त्रण अज्ञान ३, दोय दर्शन २. ए आठ उपयोग छे. ॥९॥

सन्निदुगिछलेसअप—ज्जबायरे पढमचउतिलेसेसु ।
सत्तट्ठबंधुदीरण—संतुदया अट्ठ तेरससु ॥ १० ॥

अर्थ—हवे जीवस्थानके लेश्या कहे छे—संज्ञी पंचेन्द्री
अपर्याप्तो ए दोयने ६, छ लेश्या छे, अपर्याप्त बादर एकेन्द्रीने
पहेली च्यार ४ लेश्या छे—कृष्ण १, नील २, कापोत ३, तेजो
४, ए च्यार छे. शेष ११, जीवस्थानके तीन लेश्या छे–



तेर योग छे. आहारक साधुने थाय.. अपूर्वकरण ८ मुं, अनिवृत्ति बादर ९ मुं, सूक्ष्मसंपराय १० मुं, उपशान्तमोह ११ मुं क्षीणमोह १२ मुं, ए ५ पांच गुणठाणे ४, मनना ४, वचनना १, औदारिक ए नवयोग छे. मिश्र गुणठाणे नव तेहीज तेमां वैक्रिय १, मेळीजे तिवारे १० दस योग छे. देसविरतिमें नव तेहीज अने वैक्रीय बे मेळीजे तिवारे ११, योग थाय. ४९॥

साहारदुग पमत्ते, ते विउवाहार मीसविणु इअरे।
कम्मुरल दुगंताइम, मणवयण सजोगि न अजोगि॥५०॥

अर्थ—ए इग्यार योग मांहे आहारदुग-आहारक शरीर १, आहारकमिश्र ए बे भेळीजे तिवारे प्रमत्त गुणठाणे ११ तेर योग छे. इण तेरमे वैक्रियमिश्र, आहारकमिश्र काढीये तिवारे अप्रमत्त गुणठाणे ११ इग्यारे योग छे. नवी लब्धि न करे सातमो अप्रमादी छे, लब्धि प्रमादी फोरवे, कार्मण १, औदारिक बे, अंत्य आदिम, मनवचने मेळवे-सत्य मनोयोग, असत्यामृषा मनोयोग, सत्य वचनयोग, असत्यामृषा वचनयोग, ए ७ सात योग तेरमे सयोगी केवळी गुणठाणे छे. समुद्घात करतां कार्मण योग छे. चौदमे अयोगि केवळी गुणठाणे योग एकपण नथी अयोगी छे. ॥ ५० ॥

ति अनाण दु दंसाइम, दुगे अजयदेसिनाण दंसतिगं।
ते मीसिमीस समणा, जयाइ केवलि दुगंत दुगा॥५१॥

अर्थ—हवे गुणठाणे उपयोग कहे छे-मिथ्यात्व १, सास्वादन २, ए बे गुणठाणे त्रण ३ अज्ञान, बे दर्शन-चक्षु अचक्षु ए पांच उपयोग छे. अविरति समकित, देशविरति

अने गुणठाणो छे. क्षयोपशमसमकितने विषे चोथेथी मांडीने सात
गुण एम गुणठाणा ४ छे. क्षायिकसमकितने अविरतथी मांडी
अयोगी केवली लगे ११ अगीयारे गुणठाणा छे. मिथ्यात्वने
मिथ्यात्व गुणठाणो छे. सास्वादनने सास्वादन गुणठाणो छे.
मिश्रने १ मिश्र गुणठाणो छे. देशविरतिने देशविरति गुणठाणो
छे. सूक्ष्मसंपरायने सूक्ष्मसंपराय गुणठाणो छे. मनोयोग १, वच-
नयोग १, काययोग १, अज्ञान १, शुक्ललेश्या १, ए पांच
मार्गणाने मिथ्यात्वथी मांडी सयोगीकेवली लगे १३ तेर गुण-
ठाणा छे. ॥ २५ ॥

असन्निसु पढमदुगं, पढमतिलेसासु छच्च दुसु सत्त।
पढमंतिमदुगअजया, अणहारे मग्गणासु गुणा ॥२६॥

अर्थ—असंज्ञीमार्गणाने मिथ्यात्व १, सास्वादन २, ए
बेय गुणठाणा छे. पेहेली त्रण लेश्याने मिथ्यात्वथी मांडीने प्रमत्त
लगे छ ६ गुणठाणा छे. तेजोलेश्याने, पद्मलेश्याने, मिथ्या-
त्वथी अप्रमत्त लगे ७ सात गुणठाणा छे. हवे अनाहारक
मार्गणाए—पेहेलां बेय छे—१ मिथ्यात्व, २ सास्वादन, छेल्ले
[illegible] बे सयोगीकेवली १, अयोगीकेवली १, (ए बन्ने
[illegible]) अने पांचमो अजय अविरति समकित ए
पांच गुणठाणा अनाहारक मार्गणाने छे. एम ए ६२ बासठ
मार्गणाने गुणठाणा कह्या. ॥२६॥

सच्चेअरमीस असच्चमोस मणवय विउव्वि आहारे।
उरलं मीसा कम्मण, इअ जोगा कम्म अणाहारे२७॥

अर्थ—हवे इहां पन्नरेयोगनां नाम कहे छे—सत्यमनोयोग
१, असत्यमनोयोग २, मिश्रमनोयोग ३, असत्यामृषामनोयोग

गुणठाणासुं मांडी तेरमा तांई १७ गुणठाणे [illegible]
छे. अयोगी गुणठाणे लेश्या नथी. [illegible]
४ हेतु छे—मिथ्यात्व १, अविरति २, कषाय ३, योग ४ [illegible]
च्यार कारणे करी जीवने कर्म लागे छे. ॥[illegible]॥

अभिगहिय मणभिगहिया, भिनिवेसिअ संसइय मणा[illegible]

पण मिच्छ बार अविरइ, मण करणानियमु छजिअ वहो ॥५०॥

अर्थ—मिथ्यात्वना पांच भेद छे—अभिग्रहिक मिथ्यात्व [illegible] मारो धर्म साचो [illegible] १ ([illegible]), [illegible] अनभिग्रह मिथ्यात्व ते सर्व धर्म साचा माने २, अभिनिवेशिक [illegible] [illegible] [illegible] ३, सांशयिक [illegible] [illegible] ४, अनाभोगिक मिथ्यात्व एकेंद्रियादि मांही [illegible] ५ [illegible] [illegible]. बार प्रकारनी अविरति छे—[illegible] अविरति १, [illegible] अविरति २, [illegible] अविरति ३, [illegible] अविरति ४, [illegible] ५, मन अविरति ६, पृथ्वीकाय हिंसा ७, [illegible] ८, तेउकाय हिंसा ९, वाउकाय हिंसा १०, वनस्पतिकाय हिंसा ११, त्रसकाय हिंसा १२, ए बार अविरति [illegible]. ॥५०॥

नव सोल कसाया पनर, जोग इअ उत्तरा उ सगवन्ना

इग चउ पण तिगुणेसु, चउ ति दु इग पच्चओ बंधो ॥५१॥

अर्थ—नव नोकषाय हास्यादि ६ [illegible] १६ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कम्मुरलदुगं थावर, ते सविउवि दुगपंच इगपवणे।
छअसन्नि चरमवयजुय, तं विउवि दुगूणचउविगले ३०।

अर्थ—पृथ्वीकाय १, अप्काय १, तेउकाय १, वनस्पतिकाय १, ए ४ थावर मार्गणामे कार्मण १, औदारिक २, औदारिकमिश्र ३. ए तीन योग छे. एकेन्द्री मार्गणामे, वायुकाय मार्गणामे पांच योग छे. ते कार्मण १, औदारिक २, औदारिक मिश्र ३, वैक्रिय ४, वैक्रियमिश्र ५. ए पांच योग छे. असन्नी मार्गणामे चरम वचनयोग असत्याअमृषा मेळीजे; तिवारे पांच योग तेहिज एवं ६ छ योग छे. वळी ए छ मांहेथी वैक्रियद्विक काढीजे; तिवारे (विकलेन्द्री) बेन्द्री, तेन्द्री, चौरेन्द्रीने ४ च्यार योग छे. औदारिक १, औदारिकमिश्र २, कार्मण ३, असत्याअमृषा ए च्यार योग छे. ॥ ३० ॥

कम्मुरलमीसविणु मण-वयसमइअछेअचक्खु मणनाणे
उरलदुग कम्मपढमंतिममणवयकेवलदुगंमि ॥ ३१॥

अर्थ—कार्मण १, औदारिकमिश्र ए दोय विना बाकी १३ तेर योग छे. च्यार मनना, च्यार वचनमा, दोय वैक्रिय, एक औदारिक, दोय आहारक. ए तेर योग छे. मनोयोग १, वचनयोग १, सामायिक १, छेदोपस्थापनीय १, चक्षुदर्शन १, मनःपर्यवज्ञान १. ए छ ६ मार्गणाए तेर योग १३ छे. उरलदुग—औदारिक १, औदारिकमिश्र २, कार्मण ए ३, तथा पहेलो अने छेलो मन अने वचनयोग ते सत्य मनोयोग १, असत्य मनोयोग १, सत्य वचनयोग १, असत्य वचनयोग १. ए सात योग ते केवळज्ञान १ अने केवळदर्शन १ ए बे मार्गणाए सात योग छे. ॥ ३१ ॥

गुणठाणासुं मांडी तेरमा तांइ ६ छ गुणठाणे एक शुक्ल लेश्या छे. अयोगी गुणठाणे लेश्या नथी. अलेशी छे. बंधना च्यार ४ हेतु छे–मिथ्यात्व १, अविरति २, कषाय ३, योग ४ ए च्यार कारणें करी जीवने कर्म लागे छे. ॥५३॥

अभिगहिय मणभिगहिया, भिनिवेसिअ संसइय मणा भोगं।
पण मिच्छ वार अविरइ, मण करणानियमु छ जिय वहो ॥ ५४ ॥

अर्थ—मिथ्यात्वना पांच भेद छे–अभिग्रहमिथ्यात्व परंपर मार्गज सत्य छे एम माने १ (आपणो कदाग्रह लेवे), वीजो अनभिग्रह मिथ्यात्व ते सर्व धर्म सत्य माने २, अभिनिवेश–वीतरागवचननी खोटी प्ररुपणा करीने कदाग्रह छोडे नहि ३, संसय–वीतराग वचन उपर मनमां संदेह आणे ४, अनाभोग–अज्ञानमिथ्यात्व एकेंद्रीसुं मांडी सर्व जीवने ए पांच मिथ्यात्व जाणवां. वार प्रकारनी अविरति छे–स्पर्श अविरति १, रसन अविरति २, घ्राण अविरति ३, चक्षु अविरति ४, श्रोत्र अविरति ५, मन अविरति ६, पृथ्वीकाय हिंसा ७, अपकाय हिंसा ८, तेउकाय हिंसा ९, वाउकाय हिंसा १०, वनस्पतिकाय हिंसा ११, त्रसकाय हिंसा १२, ए बार अविरति कही. ॥५४॥

व सोल कसाया पनर, जोग इअ उत्तरा उ सगवन्ना।
ग चउ पण ति गुणेसु, चउ ति दु इग पच्चओ बंधो ५५

अर्थ—नव नोकषाय हास्यादि ६ तीन वेद सोळे १६ कषाय अनंतानुबंधीयादिक ए पचीस २५ कषाय. १५ योग

अर्थ—अनाहारीने १, तीनयोग—मन १, वचन १, काय-योगने तीनवेद—पुरुष १, स्त्रीवेद २, नपुंसकवेद ३, शुक्ललेश्या १, आहारक २, अणाहारीने १, पंचेन्द्री १, संज्ञी १, भव्यने १, ए तेर १३, मार्गणाने सर्व १२, बारे उपयोग छे—चक्षु-दर्शनने, पांच लेश्याने—कृष्ण १, नील २, कापोत ३, तेज ४, पद्म ५, ने च्यार ४ कषायने दस १०, उपयोग छे—केवल-ज्ञान १, केवलदर्शन २, ए दोय उणा कीजे. ॥३४॥

चउरिंदि असन्निदुअन्नाण, दंस इग वितियावरि अचक्खू ।
नि अनाण दंसण दुगं, अनाणतिग अभविमिच्छदुगे ३५

अर्थ—चौरेन्द्रीने १, असंज्ञीने १, मतिअज्ञान १, श्रुतअ-ज्ञान १, चक्षुदर्शन १, अचक्षुदर्शन १, ए च्यार ४ उपयोग छे—एकेन्द्रीने १, बेन्द्रीने १, तेन्द्रीने १, पांच थावरने ५, ए आठ मार्गणाने दोय २, अज्ञान १, अचक्षुदर्शन ए तीन ३ उपयोग छे. अने त्रण अज्ञान ३ ते अभव्यने १, मिच्छदुगं मिथ्यात्वने १, सास्वादनने १, ए छ ६ मार्गणाने पांच उप-योग छे—३, अज्ञान अने बे दर्शन ए पांच मति अज्ञान १, श्रुतअज्ञान २, विभंगज्ञान ३, चक्षुदर्शन ४, अचक्षुदर्शन ५, ए पांच छे. ॥३५॥

केवल दुगे निअदुगं, नव ति अनाण विणु खईय अहक्खाए ।
दंसण नाणतिगं देसे, मीसिअन्नाण मीसं तं ॥ ३६ ॥

बंधाय छे ते कहे छे ते सांभळो—बीजी चोकडी ४, सोग २, अरति १, अथिर २, अयश १, असाता १, देवायु १, निद्रा २, देव २, पंचेन्द्री १, शुभविहायोगति १, त्रस ९, नवक, शरीर ३, उपांग १, समचउरस १, निर्माण १, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, हास्य १, रति १, भय १, दुगंछा १, पुरुषवेद १, संजलण ४ दर्शनावरणि ४, ज्ञानावरणि ४, अंतराय ५, जस १, उंचगोत्र १, ए ६५ पांसट प्रकृति त्रिण्य ३, प्रत्ययथी बंधाय छे. आहारकद्विक २, जिण १ ए त्रण्य ३ प्रकृति कषाय योगथी बंधाय छे ए १२० प्रकृतिनो बंध छे. ॥ ५६ ॥

पणपन्न पन्नतिय छहिय, चत्त गुण चत्त छ चउ दुग वीसा
सोलस दस नवनव सत्त, हेउणो नउ अजोगंमि ॥५७॥

अर्थ—हवे गुणठाणे हेतु कहे छे. मिथ्यात्व गुणठाणे ५५ पंचावन हेतु छे, सास्वादनमे पचास ५० हेतु छे. मिश्रमें त्रेतालीस हेतु छे. समकीत गुणठाणे ४६ छेतालीस बंधना हेतु छे. देशविरति गुणठाणे ३९ ओगणचालीस बंधहेतु छे. प्रमत्त गुणठाणे छवीस २६ बंधहेतु छे. अप्रमत्त गुणठाणे २४ चोवीस बंधहेतु छे. अपूर्वकरण आठमे गुणठाणे बावीस २२ बंधहेतु छे. अनिवृत्तिबादर गुणठाणे १६ सोळ बंधहेतु छे. सूक्ष्मसंपरायमे दश १० बंधहेतु छे. उपशांतमोहमे नव बंधहेतु छे. क्षीणमोहमे नव बंधहेतु छे. सयोगिकेवळीमे सात बंधहेतु छे, अयोगी गुणठाणु अबंधक छे, तेथी त्यां कोइ बंधहेतु नथी. ॥५७॥

पणपन्न मिच्छहारग, दुगुण सासाणि पन्नमिच्छविणा।
मिस्सदुगकम्मअणविणु, तिचत्तमीसे अहछचत्ता ५८

वचनयोग पूर्वे कह्यो ते मनोयोग सहीत पण कह्यो छे. इहां मनोयोग विना कहे छे तिहां जीवभेद ८, बेन्द्री २, तेन्द्रीना २, चोरेन्द्री २, असन्नी २, ए आठ ८, छे जे सन्नीने वचन छे पण इहां न गण्या ते मुख्यता वचनयोगनी छे. गुणठाणा बे छे. मिथ्यात्व १, सास्वादन २, योग ४ च्यार छे पंचेन्द्रीने कह्या ते ते पण उपयोग ४, च्यार छे ते इहां वचनयोग मनोयोग विना कह्यो छे. काययोग पूर्वे वचनसहीत मनसहीत लीधा छे. इहां एकलो काययोग लीधो छे तो एकेन्द्रीने हवे तिहां जीवभेद ४, च्यार एकेन्द्रीना योग पांच उदारिक बे, वैक्रीय बे, कार्मण १, गुणठाणा बे, मिथ्यात्व १, सास्वादन उपयोग तीन, बे अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन एवं ३ छे, मतांतरे ३ छे, अन्य आचार्य इम कहे छे. ॥ ३८ ॥

छसु लेसासु सठाणं, एगिंदि असन्नि भूदग वणेसु।
पढमा चउरो तिन्निय, नारय विगलग्गिपवणेसु॥३९॥

अर्थ—हवे बारमे मार्गणाए लेस्या कहे छे—तिहां छ लेस्या ६ ने आपआपनी लेस्या छे. कृष्णने कृष्ण १, नीलने नील २, कापोतनेकापोत ३, तेजनेतेज ४, पद्मनेपद्म ५, शुक्लनेशुक्ल ६ छे.

एकेन्द्रीने १, असन्नीने १, पृथ्वीकाय १, अपकाय १, वनस्पतिकाय १, ए पांच मार्गणाने पेहेली च्यार ४, ते कृष्ण १, नील २, कापोत ३, तेज ४ ए च्यार लेस्या छे. नारकीने १, बेन्द्रीने १, तेन्द्रीने १, चोरेन्द्रीने १, अग्निकायने, वाउकायने ए छ ६ मार्गणाने पेहेली तीन लेस्या छे, कृष्ण १, नील २, कापोत ३. ॥ ३९ ॥

७९

हेतु छे. आठमे अपूर्वगुणठाणे—आहारक दोय काढीजे तिवारे बावीस २२ बंध हेतु छे. ॥ ६० ॥

अछहाससोलबायरि, सुहुमेदस वेअसंजलणतित्रिणा॥
खीणुवसंति अलोभा, सजोगि पवुत्त सग जोगा ॥६१॥

अर्थ—हास्यपद्क ६ विना सोळ १६ बंधहेतु बादर संपराये होय. सूक्ष्मसंपरायगुणठाणे तीन वेद, तीन संजलणा—३—संजलण क्रोध १, संजलणमान २, संजलणी माया ३, ए छ काढीजे तिवारे दस १० बंधहेतु छे. उपशांत गुणठाणे अने क्षीणमोह गुणठाणे संजलननो लोभ काढीजे तिवारे नव ९ बंधहेतु छे. सयोगी गुणठाणे दोय मन, दोय वचन दोय औदारिक, अने एक कार्मण, ए पूर्वोक्त सात ७, योग छे अयोगि गुणठाणे बंधहेतु छे नहीं. ॥ ६१ ॥

अपमत्तंतासत्तट्ठ, मीसअपुव्वबायरासत्त ।
बंधइ छ स्सुहुमो एग, मुवरिमाबंधगाऽजोगी ॥६२॥

अर्थ—हवे चौद गुणठाणे बंध उदय सत्ता कहे छे—अप्रमत्त गुणठाणा तांइ सात ७, के आठ ८, कर्म बांधे. मिश्र गुणठाणे अपूर्वकरण गुणठाणे, अनिवृत्ति बादर गुणठाणे, सात-कर्मनो बंध छे. सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे मोहनीकर्म खपावे तिवारे छ ६ कर्मनो बंध छे. इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे एक वेदनी (साता) कर्म बांधे छे. अने अयोगी अबंधक छे. ॥६२॥

आसुहुमंसंतुदए, अट्ठवि मोह विणु सत्त खीणम्मि।
चउचरिमदुगेअट्ठउ, संते उवसंति सत्तुदए ॥६३॥

वचनयोग पूर्वे कह्यो ते मनोयोग सहीत पण कह्यो छे. इहां मनोयोग विना कहे छे तिणे जीवभेद ८, बेन्द्री २, तेन्द्रीना २, चौरेन्द्री २, असन्नी २, ए आठ ८, छे जे सन्नीने घ- घन छे पं. इहां न गण्या ते मुख्यता वचनयोगनी छे. गुण- ठाणा बे छे. मिथ्यात्व १, सास्वादन २, योग ४ च्यार छे चौरेन्द्रीने कह्या ते ते पण उपयोग ४, च्यार छे ते इहां वचनयोग मनोयोग विना कह्यो छे. काययोग पूर्वे वचनसहीत मनसहीत लीया छे. इहां एकलो काययोग लीयो वे तो ए- केन्द्रीने हवे तिने जीवभेद ४, च्यार एकेन्द्रीना योग पांच उदारिक बे, वैक्रीय बे, कार्मण १, गुणठाणा बे, मिथ्यात्व १, सास्वादन उपयोग तीन, बे अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन एवं ३ छे, श्रतांतर २ छे, अन्य आचार्य इम कहे छे. ॥ ३८ ॥

छसु लेसासु सठाणं, एगिंदि असन्नि भूदग वणेसु।
पढमा चउरो तिन्निय, नारय विगलग्गिपवणेसु॥३९॥

अर्थ—हवे बासठ मार्गणाए लेस्या कहे छे—तिहां छ लेस्या ६ मे आपआपनी लेस्या छे. कृष्णमे कृष्ण १, नीलमे नील २, कापोतमेकापोत ३, तेजमेतेज ४, पद्ममेपद्म ५, शुक्लमेशुक्ल ६ छे.

एकेन्द्रीमे १, असन्नीमे १, पृथ्वीकाय १, अपकाय १, वनस्पतिकाय १, ए पांच मार्गणामे पेहेली च्यार ४, ते कृष्ण १, नील २, कापोत ३, तेज ४ ए च्यार लेस्या छे. नारकीने १, बेन्द्रीमे १, तेन्द्रीमे १, चौरेन्द्रीमे १, अग्निकायमे, वायुकायमे ए छ ६ मार्गणामे पेहेली तीन लेस्या छे, कृष्ण १, नील २, कापोत ३. ॥ ३९ ॥

मोह गुणठाणाना जीव संख्यात गुणा छे. तिणसु सूक्ष्मसंपरायना जीव, अनिवृत्ति बादरना जीव, निवृत्तिना जीव अधिका छे. जे कारजे. कारजअर्थि उपशम, क्षपक, श्रेणे बेउ इंणे गुणठाणे छे अने मांहोमांहे बराबर छे. ॥ ६५ ॥

जोगि अपमत्तइअरे, संखगुणा देस सासणा मीसा।
अविरय अजोगि मिच्छा, असंख चउरो दुवेऽणंता ६६॥

अर्थ—तिणथी सयोगी केवळी जीव संख्यातगुणा छे, तिणसु अप्रमत्त गुणठाणाना जीव संख्यात गुणा छे, तिणसु प्रमत्त गुणठाणाना जीव संख्यात गुणा छे, तिणसु देशविरतिना जीव असंख्यात गुणा छे, तिणथी सास्वादनना जीव संख्यात गुणा छे. तिणसु मिश्र जीव असंख्यात गुणा छे, तिणसु अविरति समकीती जीव असंख्यात गुणा छे. तिणसु अयोगी सिद्ध अनंत गुणा, तेहथी मिथ्यात्वी जीव अनंतगुणा छे. ॥६६॥

उवसम खय मीसोदय, परिणामा दु नवट्ठारइगवीसा।
तिअभेय सन्निवाइअ, सम्मं चरणं पढमभावे ॥६७॥

अर्थ—हवे पांच भाव कहे छे—उपशमभाव १, क्षायिकभाव २, क्षयोपशमभाव ३, औदयिकभाव ४, पारिणामिकभाव ५, तिहां प्रथम उपशमभावना बे २, भेद छे. क्षायिक भावना नव भेद छे; क्षयोपशमभावना अढार भेद छे. औदयिकभावना एकवीस भेद छे. अने पारिणामिक भावना तीनभेद छे. ए पांच भाव मळ्यां छतां जे संयोगी भांगा उपजे ते सन्निपातिक भाव कहीजे. तिहां पेहेला उपशमभावना दोय भेद

अर्थ—मनोयोगी थोडा छे, तेथीजीव घणा छे, वचनयोगी असंख्यात गुणा बेइंद्रियादिक सर्व जीवकाय छे, वचनयोगीथी काययोगी अनंतगुणा छे, एकेन्द्री सर्व गण्या छे, पुरुषवेदी थोडा छे पुरुषवेदथी स्त्रीवेद संख्यात गुणा छे. ते तिर्यंचमें त्रिगुणी स्त्री छे. तीन वर्ग अधिकी मनुष्यने २७ गुणी छे अने २७ वर्ग अधिकी छे देवताने ३२ गुणी छे बत्रीस अधिकी छे. स्त्रीवेदथी नपुंसक अनंतगुणा छे. एकेन्द्रीयादिक सर्व लेवा. ॥४२॥

माणी कोही माई, लोभी अहिअमणनाणिणोथोवा।
ओहि असंखामइसुअ,अहिअसम असंख विब्भंगा॥४३॥

अर्थ—कषायने मानकषायी थोडा छे, मानकषायीथी क्रोधीतुं मायावी वली अधिका छे. मायाकषायीथी लोभी अधिका छे, मनः पर्याय ज्ञानी थोडा छे जे मनःपर्यायज्ञान मनुष्य मात्रनेज होवे. मनःपर्यायज्ञानीथी अवधिज्ञानी असंख्यात गुणा छे. ते च्यारगतिमें समकिती सर्व जीव छे. अवधिज्ञानीथी मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी अधिका छे, जे च्यार ४ गतिना समकिती सर्व लेवा अने मति श्रुत दोनुं बराबर छे. तिनथी विभंग ज्ञानी असंख्यातगुण छे. मिथ्यात्वी देवता नारकी सर्व थीजा पण वीभंगी ॥ ४३ ॥

केवलिणो णंतगुणा, मइसुअ अन्नाणि णंतगुणतुल्ला।
सुहमाथोवा परिहार–संख अहखाइ संखगुणा ॥४४॥

अर्थ—केवली अनंतगुणा छे. सिद्धभगवंतमांहे गण्या छे. तिनथीमति अज्ञानी श्रुतअज्ञानी अनंतगुणा छे. एकेंद्रियादि सर्व लेवा मांहोमांही बराबर छे. सूक्ष्मसंपराय चारित्रीया थोडा

मिथ्यात्व, २१ ए एकवीस भेद औदयिक भावना जाणवा. पांचमा पारिणामिक भावना ३, तीन भेद-भव्यत्व १, अभव्यत्व १, जीवत्व १ ए ३ भेद जाणवा. ॥ ६९ ॥

चउ चउ गईसु मीसग, परिणामुदएहिं चउ सखइएहिं
उवसमजुएहिं वा चउ, केवल परिणामुदय खइए॥७०॥

अर्थ—हवे सन्निपातिक भावना भांगा कहे छे–तिहां केवलाइक जीवने मिश्र कहेतां क्षयोपशम उपयोग १, परिणाम जीवपणो १, औदयिक गति लेश्या प्रमुख, क्षयोपशम १, परिणामिक १, औदयिक १ ए तीन भाव रूप १, एक ए भांगो मूळ छे. ए भांगो च्यार गतिना जीवमे छे. तिने उत्तर भांगा च्यार ४ थया. ४ अथवा किणही जीवमे क्षयोपशम १, औदयिक १, पारिणामिक १ ए तीन अने तिमहीज समकीत क्षायिक होवे तो ए ४ संयोगी मूळ भांगो बीजो थयो पण च्यार गतिना जीवमे छे तेने उत्तरभंग पहना ४ च्यार इनके आठ थया. तिर्यचगतिमे क्षायिकसमकितनो विसंवाद छे. पण इहां मान्यो छे. तथा क्षयोपशम औदयिक पारिणामिक तिनहीन जे जीवमे उपशम समकीत थाय तेहने पण चतुःसंयोगी ए त्रिजो भांगो थयो. ए पण च्यार गतिआश्रि ४ थया इनके उत्तर भांगा बारे थया. ए अने मनुष्यनी केवलीने परिणामिक जीवपणो, औदयिक लेश्यापणो १, क्षायिकज्ञान, दर्शन, चरित्र, ए त्रिकसंयोगी १ भांगो छे [illegible] भांगा ४ च्यार थया. उत्तरभांगा तेर १३ थया । ७० ॥

[illegible] मिच्छा, नरगइ[illegible]उवसमसंदोए।
इअ पनर सन्निवाइअ, भेया वीसं असंभविणो ॥७१॥

मनपर्यवी अनंतगुणा छे. तिनसुं मिथ्यात्वी अनंतगुणा छे. अनाहारक थोडा. आहारक असंख्यातगुणा. निगोदनो असंख्यातमो भाग सदा विग्रहगतिने छे. तिनसुं इति ६२, मार्गणाए अल्पबहुत्व कह्यो छे. ॥ ४७ ॥

सव्वजिअठाण मिच्छे, सग सासणि पण अपज्ज सन्नि दुगं
सम्मे सन्नि दुविहो, सेसेसुं सन्नि पज्जत्तो ॥ ४८ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणठाणे सर्व जीवना भेद छे. सास्वादन गुणठाणे ७ सात जीवना भेद छे. पांच अपर्याप्ता अने संज्ञि-द्विक मळी सात ७—बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्ता १, बेन्द्री अपर्याप्ता २, तेन्द्री अपर्याप्ता ३, चौरेन्द्री अपर्याप्ता ४, असंज्ञि अपर्याप्ता ५, संज्ञि पर्याप्तो १, अपर्याप्तो २, ए सात समकित गुणठाणे जीवभेद बे छे—संज्ञि पर्याप्तो १, संज्ञि अपर्याप्तो १, ए दोय छे. सेसेसु—देशविरति १, देशविरति पांचमुं प्रमत्त छठुं अप्रमत्त ७, अपूर्वकरण ८, निवृत्ति बादर ९, सूक्ष्मसंपराय १०, उपशान्तमोह ११, क्षीणमोह १२, सयोगी केवली १३, अयोगीकेवली १४, ए सर्व गुणठाणे एक संज्ञिपंचेन्द्री पर्याप्तो जीव भेद लाभे. इने गुणठाणे बीजो जीव भेद नहीं. हवे गुणठाणे पनर १५ योग कहे छे. ॥४८॥

मिच्छ दुगि अजइ, जोगाहार दुगुणा अपुव्वपणगे उ।
मण वय उरलं सविउव्व, मीसि सविउव्व दुग देसे ॥४९॥

अर्थ—मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति, ए ३, गुणठाणे १३, तेर योग छे—आहारकद्विक २, नहीं. च्यार ४, मनना च्यार वचनना ८, वैक्रियने १०, औदारिकने १२, कार्मण १३, ए

हियी एक कण द्वीपे पछे एक कण समुद्रमें नांखतो
तिवारे केतलाइक द्वीपमां नांखतां पेहेलो पल्य
द्वीपें पूरो खाली थयो ते द्वीपने प्रमाणे बीजो नवो
पल्य कल्पीइं ते पण सरसवें करी भरीजे तेपण एक कण
द्वीपें एक कण समुद्रे नाखीजे, जिवारें ते पल्य खाली थाय,
तिवारें एक सरसव सिलागापल्य मांहे घालीजे. तिहां कोइ कहेजे
तेमांहेयी एक घालीजे. केइक नवो १ एक घालीजे. ॥७७॥

खिप्पइसिलागपल्लेगु, सरिसवो इअसिलागखवणेणं।
पुण्णो बीओअ तओ, पुव्वंपि व तंमि उद्धरिए ॥७८॥

अर्थ—इम सिलागापल्यमें एक दाणो मुक्यो पछे वळी
बीजो अनवस्थित भरीजे, छेहेले द्वीप समुद्र प्रमाणे तेपण
खाली थाय तिवारे बीजो दाणो सिलाकामध्य घालीजे, वळी
जिणे द्वीपे समुद्रे बीजो अनवस्थित पूरो थयो छे तेटलो चोथो
अनवस्थित कल्पीजे, ते वळी एक कण द्वीपें एक कण समुद्रे
नांखतो खाली थाय, तिवारें एक बीजो कण सिलाकामे मेळीजे.
इणे भांते (एवी रीते) नवनवा अनवस्थित भरीने खाली
खाली करी एक कण सिलाकामें भेळतां सिलाकपल्य पूरो
भराणो, तिवार पछी ते शिलाकापल्य पण पूरो उपाडी जे
इमहीज द्वीप समुद्रे एक एक कण नांखतां खाली थाय तिवारें
एक कण प्रतिसिलाकापल्यमें घालीजे. वळी तिहांयी नवनवा
अनवस्थित करी भरीजे, खाली थाय तिवारे एक एक सिला-
कामें घालीजे, वळी अनवस्थित काजे एक कण सिलाकामांही
घालीजे, इम अनवस्थित नवनवा करी सिलाका बीजीवार भ-
रीजे तेपण उपाडी जे द्वीपे समुद्रे ठोलाइजे. ॥ ७८ ॥

४ मनना, ४ वचनना, ७ कायाना ए पनर योग ए सर्व मळी ५७ सत्तावन कर्मबंधनाहेतु छे. इणे प्रकारे जीव कर्म बांधे. एक मिथ्यात्व गुणठाणे च्यारे, मिथ्यात्व १, अविरति २, कषाय ३, योग ४, ए ४ बंधहेतु छे. ४ गुणठाणे—सास्वादन, मिश्र, अविरति, देशविरति ए ४ गुणठाणे तीन बंधहेतु छे, मिथ्यात्वविना कषाय, अविरति, योग, ए ३ तीन छे. अने पांच गुणठाणे—प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, निवृत्तिबादर, सूक्ष्मसंपराय ए पांच गुणठाणे दु—बे हेतु छे. कषाय अने योग ए बे बंधहेतु छे. अने उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवळी ए तीन ३ गुणठाणे १ योग बंधहेतु छे. ॥ ५५ ॥

चउ मिच्छमिच्छ अविरइ, पच्चइया साय सोल पणतीसा
जोगविणुतिपच्चइया, हारग जिण वज्ज सेसाओ ॥५६॥

अर्थ—एक सातावेदनी तो च्यारे प्रकारेकरी बंधाय छे. अने नरक ३, जाति ४, थावर ४, हुंडक १, छेवठो १, आतप १, नपुंसकवेद १, मिथ्यात्व १, ए सोळ १६ प्रकृति एक मिथ्यात्वनुं बंधाय छे. मिथ्यात्व विना बीजो कोई गुणनो बंध हेतु नथी. अने पांत्रीस ३५ प्रकृति—त्रिणद्धि ३, दुर्भग ३, अनंतानुबंधि ४, मध्यसंस्थान ४, मध्यसंघयण ४, कुखगइ १, नीचगोत्र १, उद्योत १, स्त्रीवेद १, वज्रऋषभनाराच १, मनुष्य त्रिक ३, बीजी चोकडी अप्रत्याख्यानी ४, औदारिक द्विक २, ए पांत्रीस प्रकृति मिथ्यात्वने अने अविरतिने बंधाय छे. [illegible] विना तीन [illegible] एटले मिथ्यात्वथी, अविरतिथी, कषायथी [illegible] प्रकृति

ॐ नमः सिद्धम्. ।

अथ शतकनामा पञ्चम कर्म्मग्रंथः

नमियजिणं धुववंधो–दय सत्ता घाइ पुन्न परियत्ता।
सेयर चउह विवागा, वुच्छं वंधविहि सामी य ॥१॥

टबाकार–मंगलम्

प्रणम्य वीरं सद्धारं ज्ञानामृतपयोधरं ।
टवार्थं शतकाख्यस्य, देवचंद्रः करोम्यहं ॥१॥

अर्थ—नमस्कार करीने जिनवीतराग प्रत्ये, निर्मोहीप्रत्ये, ध्रुवबंध हेतु सद्भावे च्यार ४ गतिमे नियमा बांधीये तेथी ध्रुवबंधी कहीये. १ जे हेतुहोते बंधाय अथवा न बंधाय ते अध्रुवबंधी कहीये. २ च्यार गतिमे मिथ्यात्व गुणठाणे थकां सर्व जीवने उदय होवे ते ध्रुवोदय कहीजे. ३ च्यार गतिमे सामग्री योगे पिण उदय होवे अथवा न हुवे ते अध्रुवोदयी कहीजे. ४ च्यार ४ गतिना जीवने सदा सत्ता पांमीये ते ध्रुवसत्ता कहीये. ५ कोइ गतिमे सत्ता हुवे न हुवे ते अध्रुव सत्ता कहीये. ६ जे आत्माना गुण अनंता छे पं मुख्य गुण आठ छे ते मध्ये ४ च्यार गुण ते प्रगट थयां सिद्धता पांमीए, पं अन्य गुण ते प्रगट करवाना कारण थाय नहीं अने ज्ञान १, दर्शन २, चारित्र ३, वीर्य ४ ए च्यार ४ गुण अनंतगुण प्रगट करवाना कारण छे ते माटे ४ च्यार गुणने आवरे तेहने घातिकर्म कहीजे. ७ शेषकर्मने अघाती

अर्थ—मिथ्यात्व गुणठाणे पंचावन हेतु छे, ते मूळे सतावन थाय तिणमांहे आहारक शरीर १, आहारकमिश्र २, कार्डीजे, तिवारे पंचावन बंध हेतु रहे ते छे. सास्वादन गुणठाणे पचास ५०, होय छे, ते पांच मिथ्यात्व काढ्या निवारे ५० पचास बंधहेतु छे. औदारिकमिश्र १, वैक्रियमिश्र २, कार्मण ३, अनंतानुबंधी ४, ए सात कार्डीजे तिवारे मिश्र गुणठाणे ४३ त्रेतालीस बंधहेतु छे. हवे छेतालीस होय छे ते कहे छे. ॥ ५८ ॥

सदुमीसकम्मअजए, अविरइ कम्मुरलमीस विकसाए।
मुत्तुगुणचत्तदेसे, छवीस साहार दु पमत्ते ॥५९॥

अर्थ—समकीत गुणठाणे-औदारिकमिश्र १, वैक्रियमिश्र २, कार्मण ३, ए त्रण्य मेळीजे तिवारे ४६, छेतालीस बंधहेतु समकीत गुणठाणे छे. देसविरति गुणठाणे त्रसवधनी अविरति १, कार्मण १, औदारिकमिश्र १, अप्रत्याख्यानी ४, ए सात ७, कार्डीजे तिवारे ३९ गुणचालीस बंधहेतु छे. हवे प्रमत्त गुणठाणे छवीस २६ बंधहेतु छे—आहारक दोय मेळीजे एटले २६. ॥ ५९ ॥

अविरइ इगार तिकसाय, वज्ज अपमत्ति मीसदुगरहिया।
चउवीस अपुवे पुण, दुवीस अविउवाहारे ॥६०॥

अर्थ—अविरति इग्यारे ११, त्रीजी चोकडी ४, (प्रत्याख्यानीय) कषाय रहित छवीस हेतु होय आहारक दोय मेळीजे तिवारे छवीसनो बंध छे. अप्रमत गुणठाणे वैक्रियमिश्र १, आहारकमिश्र १, ए दोय काढीजे तिवारे २४ बंध

कहेतां दुगंच्छा मोहनी २, मिथ्यात्व मोहनी १, कषाय १६ अनंतानुबंधीक्रोध, मान, माया, लोभ, ४ एम अप्रत्याख्यानी ४ पछी प्रत्याख्यानी ४ संज्वलन ४, ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ४, अंतराय ५, ए सर्व सडताळीस ४७ प्रकृति ध्रुवबंधि छे. ए मध्ये नव नामकर्मनी ९ ओगणीस मोहनीनी १९ पांच ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी च्यार ४, पांच अंतराय ५, एवं ४७ सुडताळीस ध्रुवबंधी जाणवी. द्वार १. ॥ २ ॥

तणुवंगांगिईसंघयण, जाई गई खगई पुंवि जिणसासं। उज्जोयां थवं परघा, तसवीसां गोयं वेयणियं ॥३॥

अर्थ—हवे अध्रुवबंधि ७३ कहे छे, तिहां तणु कहेतां शरीर १, औदारिक १, वैक्रिय २, आहारक ३ तैजस, कार्मण ध्रुवबंधिमे गण्या छे माटे इहां न कह्या. उपांग ३, अने संस्थान ६ संघयण ६, जाति ५, गति ४, खगति कहेतां विहायोगति २, आनुपूर्वी ४, जिननाम १, उश्वास १, उद्योतनाम १, आतप १, पराघात १, त्रस दशक थावरनी दस एवं वीस गोत्र २, वेदनीयकर्म २, हास्य रतिनो जोडो १, अरति शोकनो जोडो एवं जुगल. ॥ ३ ॥

हासाइजुयलदुगं, वेयं आउं तेवुत्तरीअधुवबंधी[७३]। दारं। भंगा अणाइ साइ, अणंत संतुत्तरा चउरो ॥ ४ ॥

अर्थ—हास्यादि जुगल बे, वेद ३, आउखां ४ च्यार ए ७३ अध्रुवबंधि ते कोइवार बंधाय कोइवार न बंधाय, ए मध्ये ७ प्रकृति मोहनीनी, २ वेदनीयनी, २ गोत्रनी, ४ आ-

अर्थ—सूक्ष्मसंपराय १०, गुणठाणा तांई सत्ता अने उदय
न आठ कर्मनो छे. सत्ता सर्व कर्म छे. मोहनी विना बाकी
गुणठाणे सात कर्मनी उदय सत्ता छे. छेल्ले चौदमे गुणठाणे
ए बे गुणठाणे वेदनी १, नाम १, गोत्र १, आउखो १, ए
च्यार कर्मनो उदयने सत्ता छे. उपशांतमोह गुणठाणे उदय सात कर्मनो
छे. सत्ता आठ कर्मनी छे. ॥ ६३ ॥

उइरंति पमत्तंता, सगट्ठ मीसट्ठ वेअ आउ विणा।
छग अपमत्ताइ तओ, छ पंच सुहुमो पणुवसंतो ॥६४॥

अर्थ—उदीरणा कहे छे—मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति,
देशविरति, प्रमत्त, ए पांच गुणठाणे सात अथवा आठकर्म
उदीरे छे. मिश्र गुणठाणे आठकर्म उदीरे छे, सदा उदीरणा छे
अप्रमत्त. अपूर्वकरण अने बादर गुणठाणे वेदनी, आउखोविना
६ कर्म उदीरे छे. सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे छ कर्म, पछी मोहनी
खपावे पछी पांच कर्म उदीरे छे. उपशांत मोह गुणठाणे
पांच कर्मनी उदीरणा छे. ॥६४॥

पण दो खीण दु जोगी, णुदीरगु अजोगि थोव उवसंता।
संख गुण खीण सुहुमा, अनिअट्टि अपुव्व सम अहिआ ॥६५॥

अर्थ—हवे क्षीणमोह गुणठाणे पेहेलां पांच कर्म उदीरे
छे. पछी ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय. ए ३ विना खसे
नाम गोत्र २. नी उदीरणा छे. सयोगी गुणठाणे दोयनी
उदीरणा छे. अजोगी गुणठाणे उदीरणा नथी. हवे गुणठाणे
अल्पबहुत्व कहे छे—उपशांत ११, अगीयारमे गुणठाणे थोडा
जीव छे. उत्कृष्टे ५४, चोपन जीव लाभे छे. तिथकी क्षीण-

अर्थ—निर्माण नाम १, स्थिरनाम १, अगुरुलघु नाम १, शुभ नाम १, अशुभनाम १, तैजसशरीर १, कार्मणशरीर १, वर्णनाम १, गंधनाम १, रसनाम १, स्पर्शनाम १, एवं १२, बार नाम कर्मनी प्रकृति पांच ज्ञानावरणी ५, पांच अंतराय ५, च्यार दर्शनावरणी ४, एक मिथ्यात्व मोहनी १, ए सत्तावीस २७, प्रकृति ध्रुवउदयी जाणवी. ते मध्ये वर्ण गंध रस, स्पर्श, ४, नी ए रीत छे, जे पांच वर्ण मध्ये कोइक वर्ण नियमा मुख्यताए उदय होवे, तिणे ध्रुवउदयी. इम गंधादिकनो जाणवो. ए सत्तावीस मध्ये ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी ४, मोहनी १, नाम कर्मनी १२, एवं २७ छे. ॥ ६ ॥

थिरे सुभिं अरं विणु अधुव–,बंधी मिच्छ विणुमोह धुववंधी ।
निदों वघायं मीसं, सम्मं पण नवइं अधुवुदया ॥ ७॥

अर्थ—हवे अध्रुवोदयी कहे छे–जे अध्रुवबंधि प्रकृति ७३, ते मध्ये थिर १, अथिर २, शुभ ३, अशुभ ४, ए ४, च्यारविना ६९ लेवी, अने मोहनीनी १९ ध्रुवबंधि कही छे, तेमांथी मिथ्यात्व मोहनी वरजीने शेष १८, रहे ते. पिण अध्रुवोदयमे गणी छे. शरीर ३, उपांग ३, संस्थान ६, संघयण ६, जाति ४, गति ४, विहायोगति २, आनुपूर्वी ४, जिननाम १, श्वासोच्छ्वास १, उद्योत १, आतप १, परावात १, थिर १, शुभविना त्रसादि ८, अथिर अशुभविना थावरादि ८, गोत्र २, वेदनीय २, हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, वेद १, आउ ४, ए ६९, सोळ कसाय भय १,

१, उपशम भावनुं समकीत ते सात प्रकृति उपसमावे अने २, उपसम चारित्र ते पूर्वे मोहनीय कर्मनी प्रकृति उपसमावी छे ते. ॥ ६७ ॥

बीए केवल जुअलं, सम्मं दाणाइ लद्धि पण चरणं।
तइए सेसुवओगा, पण लद्धि सम्म विरइ दुगं ॥६८॥

अर्थ—बीजा क्षायिक भावना नव ९ भेद छे ते कहे छे. तिहां केवल ज्ञान १; केवल दर्शन २, क्षायिक समकित १, दानादिक पांच लब्धि—क्षायिकदान १, क्षायिकलाभ २, क्षायिकभोग ३, क्षायिकउपभोग ४, क्षायिकवीर्य ५, ए पांच अने क्षायिकचारित्र १ ए नव ९ भेद क्षायिकना जाणवा. त्रीजा क्षयोपशमभावना १८ अढार भेद छे ते कहे छे. जे च्यार ४ ज्ञान, मतिज्ञान १, श्रुतज्ञान २, अवधिज्ञान ३, मनःपर्याय-ज्ञान ४, तीन अज्ञान—मतिअज्ञान ५, श्रुतअज्ञान ६, विभंग-ज्ञान ७, तीन दर्शन—चक्षुदर्शन ८, अचक्षुदर्शन ९, अवधि-दर्शन १० ए दस क्षायोपशमिक उपयोग कहीजे. पांच क्षयोप-शमिक लब्धि क्षयोपशमिक दान ११, लाभ, १२, भोग १३, उपभोग १४, वीर्य १५, क्षयोपशमनुं समकीत १६, देशविरति १७, सर्वविरति १८ ए अढारे क्षयोपशमभावना भेद जांणवा.॥६८॥

अन्नाण मसिद्धत्ता, ऽसंजम लेसा कसाय गई वेआ।
मिच्छं तुरिए भवा, भव्व जिअत्तपरिणामे ॥६९॥

अर्थ—चोथा उदयिक भावना २१ भेद छे ते कहे छे. अज्ञान १, असिद्ध संसारी २, असंजमी अविरति ३, छ लेस्या, ४ कसाय च्यार, १३ गति च्यार. १७ वेद त्रण, २०

अर्थ—खगतिदुग-शुभविहायोगति १, अशुभविहायोगति २, तिरिदुग कहेतां तिर्यंचगति १, तिर्यंचानुपूर्वी २, नीचगोत्र १, एकसोत्रीस ध्रुवसत्ता जाणवी. ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ९, वेदनी २, मोहनीय २६, नामकर्मनी ८२, गोत्र १, अंतराय ५, एवं १३० ध्रुवसत्ता जाणवी. ध्रुव जे च्यार ४ गतिना जीवमां सदा छती पांमीये ते ध्रुव कहीजे. हवे अध्रुवसत्ता २८ नां नाम कहे छे. समकीतमोहनी १, मिश्र मोहनी २, मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वी २ वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपांग २, वैक्रिय बंधन ३, वैक्रियतैजसबंधन ४, वैक्रियकार्मणबंधन ५, वैक्रियतैजसकार्मणबंधन ६, वैक्रिय संघातन ७, नरकगति १, नरकानुपूर्वी २, देवगति १, देवानुपूर्वी २, एवं ११, जिननाम १२, आयु ४, आहारक ७, आहारक शरीर १, आहारक उपांग २, आहारक संघातन ३, आहारक बंधन ४, आहारकतैजसबंधन ५, आहारककार्मणबंधन ६, आहारकतैजसकार्मणबंधन एवं ७ मिळ्यां २८ अट्ठावीस अध्रुवसत्ता. ए मध्ये २ मोहनी, २१ नामकर्मनी, ४ आउखो, १ गोत्र, एवं २८ अध्रुवसत्तानी प्रकृती जाणवी. ॥ ९ ॥

पढमतिगुणेसुमिच्छं, नियमा अजयाइ अट्ठगे भज्जं।
सासाणे खलु सम्मं, संतं मिच्छाइ दसगे वा ॥१०॥

अर्थ—हवे सत्तामें भांगा कहे छे-पढमतिगुणेसु-पेहेलां तीन गुणठाणा मध्ये मिथ्यात्व मोहनीनी सत्ता नियमा छे, एतले मिथ्यात्व गुणठाणे मिथ्यात्वनो उदय नियमा छे, तेहनी सत्तापिण नियमा छे, सास्वादन गुणठाणे २८ नी सत्ता नि-

अर्थ—अने सिद्धने ज्ञान क्षायिक भाव छे, जीवपणो पारिणामिक छे, ए सिद्धने द्विकसंयोगी एक भांगो छे. ए मूळ पांच भांगा थया अने उत्तर १४ चौद थया. अने कोइ मनुष्य उपशमश्रेने छे पण क्षायिक समकीती छे तेहने उपशमश्रेनिने एक भांगो थयो एतले मूळभेद छ ६ थया. उत्तरभेद १५ पन्नर सन्निपातिक भावे थया. अने बीजा पण वीस भांगा सन्निपातिक उपजे पण असंभावी भेद छे, ते कारने किण्ही जीवमे लाभे नहीं तेणे असंभावी छे. ॥ ७१ ॥

मोहे वसमो मीसो, घाइसु अट्ठ कम्मसु अ सेसा।
धम्माइ पारिणामिअ, भावे खंधा उदइएवि ॥७२॥

अर्थ—उपशम भावतो मोहनीनेज थाय बीजा कर्मने नही. क्षयोपशमभाव च्यार ४, घातिककर्मने छे बीजा केमां नही, अने औदयिक १, पारिणामिक १, क्षायिक १, ए त्रण भाव आठ कर्मने छे. इतले मोहनीकर्मने पांच भाव छे. ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय ए तीन कर्मने च्यार भाव छे. उपशम भाव न होय. वेदनी, नाम, गोत्र, आउखो, ए ४ च्यारे कर्मने तीन भाव छे. उपशम, क्षयोपशम नथी बाकी ३ तीन भाव छे. धर्मास्तिकायादिक ६ छ द्रव्यने एक पारिणामिक भाव छे. खंध, पुद्गलीक, शरीरमें १ एक औदयिक भाव ने १ पारिणामिक भाव पण छे. ॥ ७२ ॥

सम्माइ चउसुतिगचउ, भावा चउपणुवसामगुवसंते।
चउ खीणा पुवे तिन्नि, सेसगुणठाणगेगजिए ॥७३॥

अर्थ—खगतिदुग–शुभविहायोगति १, अशुभविहायोगति २, तिरिदुग कहेतां तिर्यंचगति १, तिर्यंचानुपूर्वी २, नीचगोत्र १, एकसोत्रीस ध्रुवसत्ता जाणवी. ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ९, वेदनी २, मोहनीय २६, नामकर्मनी ८२, गोत्र १, अंतराय ५, एवं १३० ध्रुवसत्ता जाणवी. ध्रुव जे च्यार ४ गतिना जीवमां सदा छती पांमीये ते ध्रुव कहीजे. हवे अध्रुवसत्ता २८ नां नाम कहे छे. समकीतमोहनी १, मिश्र मोहनी २, मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वी २ वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपांग २, वैक्रिय बंधन ३, वैक्रियतैजसबंधन ४ वैक्रियकार्मणबंधन ५, वैक्रियतैजसकार्मणबंधन ६, वैक्रिय संघातन ७, नरकगति १, नरकानुपूर्वी २, देवगति १, देवानुपूर्वी २, एवं ११, जिननाम १२, आयु ४, आहारक ७, आहारक शरीर १, आहारक उपांग २, आहारक संघातन ३, आहारक बंधन ४, आहारकतैजसबंधन ५, आहारककार्मणबंधन ६, आहारकतैजसकार्मणबंधन एवं ७ मिळ्यां २८ अट्ठावीस अध्रुवसत्ता. ए मध्ये २ मोहनी, २१ नामकर्मनी, ४ आउखो, १ गोत्र, एवं २८ अध्रुवसत्तानी प्रकृती जाणवी. ॥ ९ ॥

पढमतिगुणेसुमिच्छं, नियमा अजयाइ अट्ठगे भज्जं।
सासाणे खलु सम्मं, संतं मिच्छाइ दसगे वा ॥१०॥

अर्थ—हवे सत्तामें भांगा कहे छे–पढमतिगुणेसु–पेहेलां त्रीन गुणठाणा मध्ये मिथ्यात्व मोहनीनी सत्ता नियमा छे, एतले मिथ्यात्व गुणठाणे मिथ्यात्वनो उदय नियमा छे, तेहनी सत्तापिण नियमा छे, सास्वादन गुणठाणे २८ नी सत्ता नि-

दीपेसिलागतहुए, एवं पढमेहिं बीयपं भरसु ।
तेहिं तइयं तेहिय, तुरियं जा किर फुडा चउरो ७९॥

अर्थ—सिलाका खाली थाय तिवारें एक दांणो वली प्रति सिलाकाना मांहे मुकीजे, इम अनवस्थितें करी सिलाका भरी, सिलाका खाली करी एक दांणो प्रतिसिलाकामांहे घालीजे इम घणां प्रतिसिलाका भरीजे, ते प्रतिसिलाका उपाडीने द्वीपे समुद्रे खाली कीजे तिवारे एक दांणो महासिलाकामांहे घालीजे वली तेमना अनवस्थितें करी सिलाका भरीजे, सिलाका खाली करी एक दांणो प्रतिसिलाकामांहे मेलीजे, इम अनवस्थिते करी सिलाका भरीजे, सिलाका करी प्रतिसिलाका भरीजे, प्रतिसिलाका खाली करीने एक महासिलाकामें कण घालीजे इम अनवस्थितेथी सिलाका भरीजे, सिलाकाथी प्रतिसिलाका भरीजे, प्रतिसिलाकाथी महासिलाका भरीजे, इम च्यारे पल्य भराय ए प्ररूपणा जाणवी. ॥७९॥

पढमतिपल्लुद्धरिआ, दीवुदहीपल्लचउसरिसवाय ।
सव्वोविएसरासी, रूवूणो परमसंखिज्जं ॥ ८० ॥

अर्थ—हवे ते सर्व द्वीपे ३ पल्ये करी नांख्या हता, ते समस्त ते सर्व भेळा कीजे अने लाख लाख जोजनना ३ पल्य वली अनवस्थितनाम् ४ पल्यना सरसवना दांणा भरी माहे नांखीजे तिवारें ते भेळा करि कीजे ए सर्व रासी एकठी थाय तिवारें रासीमांहेथी एक सरसव काढीजे, तिवारें उत्कृष्टो संख्यातो थाय. ॥ ८० ॥

तेहने मिथ्यात्वे गुणठाणे छतां मिश्रमोहनीनी सत्ता नथी, अ
जे विपुंजीकरण करीने पड्या जे मिथ्यात्व गुणठाणे आ
छे. तेहने मिथ्यात्वनी सत्ता हुवे ए भजना, ए अविरति स
कीतथी मांडी उपशान्तमोह पर्यंत ८ गुणठाणे उपशम समकीत
मिश्रनी सत्ता होय. क्षायिक समकीतीने सप्तक क्षय थयो
ते माटे मिश्रमोहनीनी सत्ता नथी. ते माटे भजना जाणव
आईदुगे–मिथ्यात्व, सास्वादन ए बे गुणठाणे अनंतानुबंधीन
सत्ता नियमा होवे. अने मिश्रादिक नव गुणठाणे भजन
जाणवी. तिहां मोहनी कर्मनी २४ सत्तावाळो क्षयोपशमसमकीत
जीव चोथाथी पडीने मिश्रे आव्यो, तेहने मिश्र गुणठाणे अनं
तानुबंधीनी सत्ता नथी, अने जे २८ अट्ठावीस सत्तावंत क्षयो
पशमसमकिती चोथाथी पडी मिश्रे आव्यो, ते अथवा २८ सत्ता
वंत मिथ्यात्वी मिथ्यात्व मुंकी मिश्रे आव्यो, तेहने अनंतानु
बंधीनी सत्ता छे, तथा अविरतिथी उपशान्तमोह सुधी क्षायिक
समकीतीने नथी, तथा उपशमीने छे ए भजना जाणवी. ॥११॥

आहारगसत्तगंवा, सव्वगुणेबितिगुणे विणा तित्थं।
नोभयसंतेमिच्छो, अंतमुहुत्तं भवे तित्थे ॥ १२ ॥

अर्थ—आहारकसप्तकनी सत्ता सर्व गुणठाणे १४ गुण-
ठाणानेविषे वा कहेतां भजना. होय अथवा न होय. जे
जीव ७ तथा ८ गुणठाणे आहारक बांधीने ते पड्यो अथवा
चड्यो, तेहने तो आहारकनी सत्ता होय, अने जे जीव
आहारक बांधविना पडे अथवा चडे तेहने न होय. अथवा
आहारक बांधीने उद्वलनाकरणे करी उवेली काढ्यो तेहने

ए सर्व जघन्य कल्पा. एहमां एकरुप भेळीजे तिवारे सर्व मध्यय थाय, अने चोथे जघन्य अनंतेतु एकउणो कीजे तिवारे पेहेलो परीत्तअनंतो उत्कृष्टो थाय, तिवारे अने उत्कृष्टुं एकरुप काढतांइ तिम मध्यराशि कहीजे. ॥ ८२ ॥

इअसुत्तुत्तं अन्ने, वग्गिअमिक्कसि चउत्थयमसंखं ।
होउ असंखाऽसंखं, लहुरूवजुयं तु तं मज्झं ॥८३॥

अर्थ—इय-इतले ए सूत्रोक्त तिम ए मांन लघु थयो, तिने पूर्वोक्तानुसारे मान कहे छे-जे चोथे जघन्ययुक्त असंख्याताने एकवार वर्गित कीजे, तिवारे सातमो जघन्य असंख्यातअसंख्यातो थाय, इहां वर्गित कहेतां जे राशि छे ते राशिने तेटला गुणो कीजे ते वर्ग कहीजे, जिम च्यारनो वर्ग १६, तोळ एम जाणवो ए जघन्य असंख्यातअसंख्यातो कह्यो. ए जघन्य असंख्यातअसंख्याता मांहे एकरुप मेळीजे, तिवारे मध्यम असंख्यातअसंख्यातो थाय. ॥८३॥

रूवूण माइमं गुरु, तिवग्गिउं तत्थिमे दसक्खेवे ।
लोगागासपएसा, धम्माऽधम्मेगजियदेसे ॥८४॥

अर्थ—आगइ (ज्यांलुघी) पेहेलो अनंतो एकरूप उंगो होवे, तिवारे उत्कृष्टो असंख्यातअसंख्यातो थाय. जघन्य असंख्याताने तीन वर्ग कीजे, अने दश असंख्याताना चोळ मेळीजे, तिवारे पेहेलो जघन्य परीत्तअनंतो थाय नहीं, तिवारे लोकाकाशना प्रदेश १, धर्मास्तिकायना प्रदेश २, अधर्मास्तिकायना प्रदेश ३, अने एक जीवना प्रदेश ४, वळी ॥८४॥

संजलण नोकसाया, विग्घं इअ देसघाइँय अघाई ।
पत्तेय तणुट्ठाऊ, तसवीसा गोअदुग वण्णा ॥ १४ ॥

अर्थ–संजलणा ४, नोकषाय ९, अंतराय ५, एम पूर्वोक्त मेळवतां २५, पचीस ए देशघाती छे. तथा अघाती ७५, छे तिहां पराघात १, उश्वास १, आतप १, उद्योत १, निर्माण १, अगुरुलघु १, तीर्थंकर १, उपघात १, तणु आठनी प्रकृति ३५, शरीर ५, उपांग ३, संस्थान ६, संघयण ६, जाति ५, गति ४, खगति २, आनुपूर्वी ४, आउखां ४, त्रस १०, थावर दस १०, गोयदुग–बे गोत्र २, वेदनी बे २, वर्ण १, गंध, २, रस ३, स्पर्श ४, ए ७५, अघाती प्रकृति जाणवी, जे गुणनो घात न करे ते अघाती कहेवी. ॥१४॥

सुरनरतिगुच्चसायं, तसदस तणुवंग वइर चउरंसं ।
परघासग तिरिआउ, वन्नचउ पणिंदि सुभखगई ॥१५॥

अर्थ—हवे पुन्यप्रकृतिना ४२, भेद कहे छे–सुरत्रिक–देवगति १, देवायु २, देवानुपूर्वी ३, तथा मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वी २, मनुष्यायु ३, नरत्रिक मळी ६, उच्चैर्गोत्र ७, सातावेदनी ८, त्रसदशक, १८, शरीर पांच २३, उपांग त्रण २६, वज्ररुषभनाराच २७, समचोरस संस्थान २८, पराघात सप्तक पराघात २९, उश्वास ३०, आतप ३१, उद्योत ३२, अगुरुलघु ३३, निर्माण ३४, तीर्थंकरनामकर्म ३५, तिर्यंच आयु ३६, शुभवर्ण ३७, गंध ३८, रस ३९, स्पर्श ४०, पंचेन्द्री जाति ४१, शुभविहायोगति ४२, ए ४२, बेताळीस पुण्यप्रकृति जाणवी. जेहना विपाक भोगवतां मीठा लागे ते पुन्यप्रकृति. ॥ १५ ॥

कापना सर्वजीव ३, तीनकालना सर्वसमय ४, पुद्गल परमाणुआ सर्व ५, सर्व अलोकना आकाश प्रदेश ६, ए छ बोल मेळीने, वळी तीनवार वर्गितकीने, अने केवलज्ञान केवलदर्शनना पर्याय मेळीने. ॥ ८८ ॥

खित्तणंताणंतं, हवेइ जिट्ठंतु ववहरइ मज्झं ।
इअ सुहुमत्थविचारो, लिहिओ देविंदसूरीहिं ॥८९॥

अर्थ—एटला मेळ्यां उत्कृष्ट अनंतानंत नवमो थाय. उत्कृष्ट अनंतानंतो थाय छे, पण जगमयनी सर्व वस्तु मध्यम आठमा अनंताइ छे (व्यवहारमां प्रवर्त्ते छे), नवामा अनंता प्रमाणे वस्तु कांइ छे नही. (माटे निष्प्रयोजन छे) ए चोथो कर्मग्रंथ " सूक्ष्मार्थ विचार " नामे संपूर्ण थयो लिख्यो जोड्यो देवेन्द्रसूरि आचार्ये ज्ञान हेते. ॥ ८९ ॥

इति श्रीषडशीतिक (सूक्ष्मार्थ विचार) चतुर्थो कर्मग्रन्थ टबार्थसमेतं सुसमाप्तम ॥४॥ छ ॥

नामधुवबंधि' नवगं, दंसणं पणनाणं विग्घं परघायं।
भय कुच्छ मिच्छ सासं, जिणगुणतीसा अपरिगत्ता ॥१८

अर्थ—हवे अपरावर्तमान प्रकृति कहे छे—नामनी ध्रुवबंधी ९, वर्णादि ४, निर्माण १, अगुरुलघु १, उपघात १, तैजस १, कार्मण १, ए ९, तथा दर्शनावरणी ४, पणनाण-ज्ञानावरणी पांच, विग्घं—अंतराय पांच, पराघात १, भय, दुगंछा, मिथ्यात्व, उश्वास, जिननाम ए इगुणत्रीस २९, ए अपरावर्तमान जाणवी. अपरावर्तमान एटले जे प्रकृति कोनो बंध तथा उदय रोक्या विना पोताना हेतु सद्भावे बंधाय, तथा उदय आवे, ते अपरावर्तमान कहीये. ॥१८॥

तणुअट्ट वेअ दुजुअल, कसाय उज्जोअ गोअदुगनिद्दा।
तसवीसा उं परित्ता, खित्तविवागाणुपुव्वीओ ॥१९॥

अर्थ—परावर्तमान प्रकृति ९१, कहे छे, ते तनुअट्ट-शरीर ३, उपांग ३, संस्थान ६, संघयण ६, जाति ५, खगति २, आनुपूर्वी ४, एवं ३३, तथा वेद त्रण ३६, दुजुयल—हास्य रति, तथा शोक अरति ४०, कषाय सोळ ५६, उद्योत ५७, आतप ५८, गोत्र बे ६०, वेदनीय बे ६२, निद्रा पांच ६७, त्रस प्रमुख [illegible] ८७, चार आउखा ९१, ए एकाणुं परावर्तमान प्रकृति जाणवी. ते ए [illegible] बंध [illegible] कहीये. [illegible] क्षेत्रविपाकी—[illegible] [illegible] तेहनो [illegible] ते क्षेत्रविपाकी [illegible] ४, आनुपूर्वी छे, जे [illegible]

से. ८ उदये आव्यां जे कर्म शुभ मीठां आल्हादकारी होयने
प्रकृति कहीजे. ९ जे उदय आव्यां कडुआ दुःखकारी विपाक
ते पाप प्रकृति कहीजे. १० जे प्रकृति परावर्त्तनरूपे थाय
रावर्त्तन कहीजे. ११ अने जे न थाय ते अपरावर्त्तन.
एम मूलमां कहेल ६ ठ ने इतर पदे मेळवतां १२ द्वार
. च्यार ४ विपाक जे प्रकृतिओनो विपाक मुख्यताए
जीव भवें ते जीवविपाकी. १ जे प्रकृतिबंध बांधतां जे
, ते उदय आवतां नवां औदारिकादिक पुद्गल नवां लेइने
आवे ते पुद्गलविपाकी कहीजे. २ गतिना अंतरालमां
आवे ते क्षेत्र विपाकी कहीये. ३ जे भव-नारकादिक
उदये आवे, ते भवविपाकी कहीजे. ४ एवं सोळ द्वार
. बंधना विविभेद ४ प्रकृतिबंध १, स्थितिबंध २, रसबंध
प्रदेशबंध ४, इनके २० द्वार थयां. स्वामी-प्रकृतिबंध
मी १, स्थितिबंध स्वामी २, रसबंध स्वामी ३, प्रदेशबंध
मी ४ ए करेतां उपशमश्रेणि १, क्षपकश्रेणि २, एवं २६
स द्वारे करी शतकनामे कर्मग्रंथ कहीशुं. १ तिहां प्रथम
बंधि द्वार कहे छे. ॥ १ ॥

चउतेयकम्मो, ऽगुरुलहुं निमिणोवघाय भयकुच्छो।
च्छे कसायौ वरणौ, विग्धं धुवबंधि सगचत्तौ ॥२॥

अर्थ—वर्णादिक ४ च्यार, वर्ण गंध २, रस ३, स्पर्श ४
समुदाये ध्रुवबंधी छे. श्वेतादिक भिन्न वर्ण ते अध्रुवबंधी छे,
एक वर्ण हरकोइ नियमा बंधाय. तैजस शरीर १, कार्मण
र २, अगुरुलघुनामकर्म ३, निर्माण नामकर्म ४, उपघात-
नामकर्म ए नव नाम प्रकृति छे. भयमोहनी १, कुच्छा

अर्थ—नामकर्मनी ध्रुवोदयी १२, वर्णादि ४, तैजस १ कार्मण १, निर्माण १, अगुरुलघु १, थिर १, अथिर १ अशुभ १, ए १२ चउतणु–शरीर ३, उपांग ३, संस्थान ६, संघयण ६, ए १८ तथा उपघात १, साधारण १, प्रत्येक १, उद्योतत्रिक–उद्योत १, आतप २, पराघात ३ एवं ३६ छत्रीस प्रकृति पुद्गलविपाकी जाणवी. पुद्गलविपाकी कहेतां जे बंधकाले कार्मण वर्गणापणे बांध्यां, ते उदयकाले शरीरप्रत्ये विपाक देखाडे, ते पुद्गलविपाकी कहीजे. इहां कोई पूछस्ये जे कार्मणनी तो वर्गणा नथि लेवाये, ते पिण मोलगुणी छे, तो उश्वासनीपरें जीवविपाकीमें कां गणना नथी? तेहने उत्तर जे:–कार्मणवर्गणा तो आहारपर्याप्तिने बले लेवाये, ते माटे पुद्गल विपाकी छे. श्वासोश्वास, सुस्वर, ते तो उश्वासपर्याप्ति तथा भाषापर्याप्तिने उदयपणे ले छे ते माटे जीवविपाकी गणी छे. हवे बंधना भेद ४ च्यार कहे छे. प्रकृतिबंध १, स्थितिबंध, २, रसबंध ३, प्रदेशबंध ४ तिहां पेहेलां प्रकृतिबंधना भेद कहे छे. ॥ २१ ॥

मूलपयडीण अड सत्त, छेग बंधेसु तिन्निभूगारा।
अप्पतरा तिअ चउरो, अवट्ठिआ न हु अवत्तव्वा॥२२॥

अर्थ–मूळ कर्म आठ छे, तिहां मूळ आठ प्रकृति एक समे एक जीव बांधे. जे नवा भवनो आउखो बांधतो हुवे ते आठ बांधे, जे जीव आउखो न बांधतो हुवे ते सात बांधे, तथा दसमे गुणठाणे वर्त्तता मुनिने आउखो, मोहनी, न बांधे तिवारे छ ६ बंधाये, तथा इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे एक सातावेदनीय बांधे, ते माटे एकविध बंध छे.

युनी, ५८ नामकर्मनी छे. एवं ७३ छे. अने ध्रुवबंधि ४७ अध्रुवबंधी ७३ मिल्यां १२० एकसोवीस प्रकृति थइ, हवे चउ ४ भंगी जणाइ कहेतां अनादि १, साइ सादि २ तथा अनंत तथा सांत जोडीये, तिवारे अनादिअनंत १, प्रथमभंग अनादि सान्त ए द्वितीयभंग, सादि अनंत ए त्रीजो भंग सादिसान्त ए चोथो भंग, ए चोभंगी जाणवी. ॥ ४ ॥

पढमवियाधुवउदइसु, धुववंधिसु तइय वज्जभंग तिगं।
मिच्छंमि तिन्निभंगा, दुहावि अधुवा तुरिय भंगा॥५॥

अर्थ—तिहां ध्रुवउदयी प्रकृतिमध्ये प्रथम १, तथा २, बीजो ए बे भांगा छे—अनादि सान्त भव्यमे २, ए बे भंगा छे. तथा ध्रुवबंधि प्रकृतिनेविषे त्रीजो वर्जीने तीन भंग छे. तिहां अभव्य आश्रयि अनादि अनंत छे. जे कारणे अनादि-काल बांधे छे, अने ते सदाकाल बांधे तिणे अनंतबंध छे, भव्यजीवने अनादि सान्त छे, ए योग्यतानो सूत्र छे. सादि अनंत ए भंग कर्म स्वरुपे संभवे नही. अने सादिसान्त भंग जीव उपशम श्रेणिए चढी इग्यारमे गुणठाणे सर्व प्रकृतिनो अबंध थयो, ते वली पाछो पडीने सर्व बंध करे ते सादि, अने ते जीव वली कर्म क्षय करीने सिद्ध थाय तिवारे सान्त थाय, ए तीन भंग छे, मिथ्यात्वने ध्रुवोदये तीन पूर्विज भंग छे, तथा अध्रुवबंध तथा अध्रुवोदयनेविषे एक चोथो भांगो सादिसान्त ए छे. ॥ ५ ॥

निमिणं थिरं अथिरं अगुरुयं, सुहं असुहं तेअ कम्म चउवन्ना।
नाणं तराय दंसणं, मिच्छं धुवउदय सगवीसा ॥६॥

एक बांधे एहने अवक्तव्यबंध कहीये, कोयपी अधिको नथी तिणे भूयस्कार नही, कोयपी ऊणो नथी, तिणे अल्पतर नथी, तेनो ते पण नथी ते माटे अवस्थितपण नथी ए अवक्तव्य कहीये. ॥ २३ ॥

नव छ चउ दंसे दु दु, ति दु मोहे दु इगवीस सत्तरस।
तेरस नव पण चउ ति दु, इक्को नव अट्ठ दस दुन्नि ॥२४

अर्थ—हवे दर्शनावरणी कर्मनां बंधस्थानक ३ तीन छे. पेहेलो नवनो स्थानक छे, ए मिथ्यात्व, सास्वादन गुणठाणे छे. पछे सास्वादनने अंते थीणद्धी तीन काढीये तिवारे मिश्रथी मांडी आठमा गुणठाणा सीम छनो बंध स्थानक छे, तथा आठमाना बीजा भागथी मांडी दसमा गुणठाणाना अंत स्यार ४ नो बंध इम थानक च्यार ४ नो छे, दर्शनावरणी कर्मने भूयस्कार बे छे. जे दसमे गुणठाणे च्यार ४ बांधी हतो ते आठमे आव्ये ६ छ बांधे ते एक भूयस्कार, छट्ठी सास्वादनने आवी नव बांधे ते बीजो भूयस्कार, ए बे भूयस्कार जाणवा. अथवा नव बांधी छ बांधे ए पेहेलो अल्पतर, तथा ६ बांधी, ४ बांधे ते बीजो अल्पतर, तथा ९, तथा ६, तथा ४ ए तीन अवस्थित, तथा कोइ जीव इग्यारमे गुणठाणेथी पडी १० मे आवे ते अंतराल पदे च्यार ४ बांधे ते पेहेलो अवक्तव्य, अथवा इग्यारमे माण पामीने चोथे आवी ६ बांधे ए बीजो अवक्तव्य जाणवो.

हवे मोहनीय कर्मनां बंधस्थानक १० छे ते प्रथम २२ नो बीजो २१ नो, त्रीजो १७ नो, चोथो १३ नो, पांचमो ९ नो,

हुंडक १, निद्रा ५, उपघात १, मिश्र १, सम्यक्त्वमोहनी १, ए ९९ अनुदयमां सर्व गतिना जीवने सर्वकाळे उदय न हुवे ते माटे अनुदयनी. ए मध्ये दर्शनावरणी ५, वेदनीय २, मोहनीय २७, आयु ४, नामकर्मनी ५९, गोत्र २, ए ९९, अनुदयनी जाणवी. ॥ ७ ॥

तसवन्नवीसं–सगतेयकम्मं धुवबंधिसेसं वेयतिगं ।
आगिइतिगं वेयणियं, दुजुयलं सगउरलं सासचउ ८॥

अर्थ—हवे ध्रुवसत्ता-सत्तासि कहेता त्रस १०, थावर १०, वर्ण २०-१, वर्ण २, गंध ५, रस ८, स्पर्श, एवं २०, तेजसशरीर ७. तेजसशरीर, तेजसबंधन २, तेजससंघातन ३, कार्मणशरीर ४, कार्मणबंधन, ५. कार्मणसंघातन ६, तेजसका-र्मणबंधन ७, शेष ध्रुवबंधि ४१, ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी नव ९, मोहनीय १९. अगुरुलघु १, निर्माण १, उपघात १, अंतराय ५. एवं ४१, वेद ३, आकृतित्रिक ३, वेदनी प्रकृति १७ संस्थान ६, संघयण ६. जाति ५, एवं १७, वेदनीय २, हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, ए च्यार औदारिक सात—औदारिक शरीर १, औदारिकउपांग २, औदारिकबंधन ३, औदारिक तेजसबंधन ४, औदारिक तेजसकार्मणबंधन ५, औदारिक संघातन ६, औदारिककार्मणबंधन ए ७, एवं सात श्वासोच्छ्वासनी च्यार ४,—श्वासोश्वास १, उद्योत १, आतप १, पराघात १, ए च्यार ॥ ८ ॥

खगई तिरिदुगं नीयं, धुवसंतो सम्ममीसमणुयदुगं।
विउविक्कारजिणाऊ, हारसगुच्चा अधुवसंता ॥ ९॥

अर्थ—हवे नामकर्मनां स्थानक ८ आठ छे, तिहां पेहेलो त्रेवीसनो, बीजो २५ नो, त्रीजो २६ छवीसनो, चोथो अठावीस २८ नो, पांचमो २९ नो, छठ्ठो ३० नो, सातमो एकत्रीसनो ३१ नो, आठमो एक १ नो, ए भूयस्कार ६ छ जाणवा, त्रेवीसथी पचवीसनो पेहेलो भूयस्कार, पचवीसथी २६ नो बीजो, २६ थी २८ नो त्रीजो, २८ थी २९ नो चोथो, २९ थी ३० नो पांचमो, ३० थी ३१ नो छठ्ठो, भूयस्कार छे. अल्पतर ७ छे ते ३१ थी १ नो पेहेलो अल्पतर, ३१ थी ३० नो बीजो अल्पतर, इहां कोइक जीव ३० थी १ नो बंध करे, पिण ते एकला अल्पतर मलेज गणवो तिने जुदो गणवो नथी, तथा ३० थी २९ नो त्रीजो, २९ थी २८ नो चोथो, २८ थी २६ नो पांचमो, २६ थी २५ नो छठ्ठो, २५ थी २३ नो सातमो अल्पतर जाणवो, बंधस्थानक वेहज ८ अवस्थित जाणवां. इहां अवक्तव्य ३ तीन छे—ते जे मुनि इग्यारमे गुणठाणे नामकर्मनो अबंधक छे, ते इग्यारमाथी पडता १० मे आवी १ बांधे, ए पेहेलो अवक्तव्य, तथा जे इग्यारमें काल करे ते चोथे आवे ते देवप्रायोग्य २८ बांधे ए बीजो, अथवा कोइक जीव २९ जिननाम सहित बांधे ए त्रीजो अवक्तव्य, ३१ थी १ नो पहेलो, ३१ थी ३० नो बीजो, ३० थी २९ नो त्रीजो, ए नामकर्मना ३ अवक्तव्य जाणवा. शेष जे ज्ञानावरणी, आयु, वेदनीय, गोत्रकर्म अंतराय, ए पांच कर्मनो एकेक बंधस्थानक, वेदनीय विना ४ च्यार कर्मने अवस्थित तथा अवक्तव्य ए बे बंध छे, वेदनी कर्मने एक अवस्थित बंध छे, वेदनीयनो अबंधक थइ बंध करे नहीं, ते माटे अवक्तव्य नथी. ए प्रकृतिबंध कहिवा कह्यो, इति प्रकृतिबंध समाप्त. गा० १७.॥२३॥

त्ता छे. ते मिश्र गुणठाणे २८, २७ ने २४ ए त्रण सत्तानां मिथ्यात्व अवश्य होय माटे, तथा अप्रत करेतां चोथा गुणठाणाथी ११ मा गुणठाणा लगे आठ गुणठाणे भजना जाणवी. तिहां उपशम समकीतीने तथा क्षयोपशमसमकीतीने मिथ्यात्वनी सत्ता छे. अने क्षायिक समकीतीने सतक क्षय गयो छे तेहने ए मिथ्यात्वनी सत्ता नथी. सास्वादन गुणठाणे समकीत मोहनी नियमा सत्तायें होय. इवे मिथ्यात्वथी मांडी उपशान्तमोह पर्यंत दश गुणठाणे समकीत मोहनी सत्तानी भजना जाणवी. तिहां अनादि मिथ्यात्व तथा समकीत मोहनी उवेर्ली हुवे ते जीवने मिथ्यात्व गुणठाणे वर्तते समकीत मोहनीनी सत्ता नथी, अने जे त्रिपुंजीकरण करीने मिथ्यात्वे आव्या छे तेहने छे. सम्यक्त्वमोह उवेलीने जे मिश्र गुणठाणे आव्या छे, त्यां तेहने समकीत मोहनीनी सत्ता नथी. उवेल्या विना जे मिश्र गुणठाणे आव्या छे, तेहने सत्ता छे. अने चोथा गुणठाणाथी इग्यारमा पर्यंत, तथा उपशमीने समकीत मोहनीनी सत्ता छे. क्षायिकसमकीतीने ए मोहनीनी सत्ता नथी ते माटे भजना जाणवी. ॥ १० ॥

सासणमीसेसु धुवं, मीसं मिच्छाइ नवसु भयणाए।
आइदुगे अण नियमा, भइया मीसाइ नवगंमि ॥११॥

अर्थ—सास्वादन गुणठाणे, मिश्र गुणठाणे ध्रुव नीश्चयथी मिश्रमोहनीयनी सत्ता छे, जे कारणे इतरपुंजी जीव ए गुणठाणे आवे, अने मिथ्यात्व १, अविरति समकीतथी उपशान्तमोह सुधी एवं ९ नव गुणठाणे भजना जाणवी. तिहां अनादि मिथ्यात्वी छवीस सत्तावंत छे,

वरणी, आउखो तथा मोहनी, तथा अंतरायनी जघन्य स्थिति १ एक अंतर्मुहूर्त्तनी जाणवी. ॥ २७ ॥

विग्घावरणे असाए, तीसं अट्ठार सुहुम विगलतिगे।
पढमागिइ संघयणे, दसदुसुवरिमेसु दुगवुड्ढी ॥२८॥

अर्थ—हवे उत्तर प्रकृतिनी उत्कृष्ट स्थिति जणावे छे. अंतराय पांच ५, ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी नव एवं आवरण १४ असातावेदनीय १ ए वीस प्रकृतिनी तीस कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति जाणवी. तथा सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, ए छ प्रकृतिनी अढार कोडाकोडी, प्रथम संघयण वज्रऋषभनाराच, प्रथम संस्थान समचउरंसनी उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागर, पछी उपरले एक संघयणे एक संस्थाने दुग बेबेनां बे कोडाकोडी सागरनी स्थिति वधारवी, एटले ऋषभनाराच संघयणे तथा न्यग्रोध संस्थाने बार कोडाकोडी सागरनी स्थिति, तथा नाराच संघयणे, सादि संस्थाने चउद १४ कोडाकोडी सागरनी स्थिति, अर्द्ध नाराचसंघयणे, वामनसंस्थाने १६ सोळ कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति, कीलिकासंघयणे, कुब्ज संस्थाने अढार १८ कोडाकोडी सागरनी स्थिति, छेवट्टु संघयण, हुंडक संस्थाननी स्थिति वीस कोडाकोडीनी जाणवी. ए गाथा मध्ये ३८ प्रकृतिनी स्थिति कही. ॥ २८ ॥

चालीसकसाएसु, मिउ लहु निद्धुण्ह सुरहि सिय महुरे।
दस दोसड्ढ समहिया, ते हालिद्दंबिलाईणं ॥२९॥

अर्थ—सोळ १६ कषायनी स्थिति ४० चालीस कोडाकोडी

यमा छे. ने मिश्र गुणस्थाने २८, २७ ने २४ ए त्रण सत्तामां मिथ्यात्व अवश्य होय माटे, तथा अपत कहेतां चोथा गुणठाणाथी ११ मा गुणठाणा लगे आठ गुणठाणे भजना जाणवी. तिहां उपशम समकीतीने तथा क्षयोपशमकीतीने मिथ्यात्वनी सत्ता छे. अने क्षायिक समकीतीने समक क्षय गयो छे तेहने ए मिथ्यात्वनी सत्ता नथी. सास्वादन गुणठाणे समकीत मोहनी नियमा सत्तायें होय. हवे मिथ्यात्वथी मांडी उपशान्तमोह पर्यंत दस गुणठाणे समकीत मोहनी सत्तानी भजना जाणवी. तिहां अनादि मिथ्यात्व तथा समकीत मोहनी उव्वेली हुवे ते जीवने मिथ्यात्व गुणठाणे वर्त्तते समकीत मोहनीनी सत्ता नथी, अने जे त्रिपुंजीकरण करीने मिथ्यात्वे आव्या छे तेहने छे. सम्यक्त्वमोह उवेलीने जे मिश्र गुणठाणे आव्या छे, त्यां तेहने समकीत मोहनीनी सत्ता नथी. उवेल्या विना जे मिश्र गुणठाणे आव्या छे, तेहने सत्ता छे. अने चोथा गुणठाणाथी इग्यारमा पर्यंत, तथा उपशमीने समकीत मोहनीनी सत्ता छे. क्षायिकसमकीतीने त्रणे मोहनीनी सत्ता नथी ते माटे भजना जाणवी. ॥ १० ॥

सासणमीसेसु धुवं, मीसं मिच्छाइ नवसु भयणाए।
आइदुगे अण नियमा, भइया मीसाइ नवगंमि ॥११॥

अर्थ—सास्वादन गुणठाणे, मिश्र गुणठाणे ध्रुव नीश्चयथी मिश्रमोहनीयनी सत्ता छे, जे कारणे कृतत्रिपुंजी जीव ए गुणठाणे आवे, अने मिथ्यात्व १, अविरति समकीतथी उपशांत ८ उपशान्तमोह सुधी एवं ९ नव गुणठाणे भजना जाणवी. ...वे न होवे. तिहां अनादि मिथ्यात्वी छवीस सत्तावंत छे,

शोकमोहनी १, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय उपांग, ए बे, तिर्यंचगति तिर्यंचानुपूर्वी, ए बे, औदारिक शरीर, औदारिक उपांग ए बे, नरकगति, नरकानुपूर्वी ए बे, नीचैर्गोत्र १. तैजस पांच–तैजस १, कार्मण २, अगुरुलघु ३, निर्माण ४, उपघात ५, ए पांच अथिरछक्क ते अथिर १, अशुभ २, दुर्भग ३, दुःस्वर ४, अनादेय ५, अजस ६, ए छ. त्रस ४, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक ए च्यार ४, थावर १, एकेन्द्री १, पंचेन्द्री १. ॥ ३१ ॥

नपुकुखगइसासचउ, गुरु कक्खड रुख्खसीय दुग्गंधे।
वीसं कोडाकोडी, एवइआबाहवाससया ॥ ३२ ॥

अर्थ—नपुंसकवेद १, अशुभविहायोगति १, श्वासोश्वास चतुष्क–४, उश्वास १, उद्योत १, आतप १, पराघात १, गुरु–भारेफरस १, कर्कश फरस १, रुक्ष–लखो फरस १, शीत–टाढो फरस १, दुर्गंध १, ए ४२ बेताळीस प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति वीस २० कोडाकोडी सागरनी जाणवी. एवइया एटलां **वरस सय**–सो वर्ष अबाधा जाणवी. एटले जे कर्मनी जेटली कोडाकोडी स्थिति तेटला सो वरसनी अबाधा. बांध्या पछी तेटला सो वरस सीम (सुधी) उदय न आवे ते अबाधा कहीये. ॥ ३२ ॥

गुरु कोडि कोडिअंतो, तित्थाहाराणभिन्नमुहुबाहा।
लहुठिइसंखगुणूणा, नरतिरियाणाउपल्लतिगं ॥३३॥

अर्थ––गुरु केहेतां उत्कृष्टी अंतो केहेतां मांही एटले कांइक उणी एक कोडाकोडी सागर तीर्थंकर नामनी तथा

पन आहारक ७ मी सत्ता नथी. तथा जिनेश्वर–तीर्थंकर नामनी सत्ता बीजे सास्वादने त्रीजे मिश्र गुणठाणे सर्वथा नथी. मिथ्यात्व तथा अविरति सम्यक्‌ती प्रमुख अयोगी पर्यंत १२ बार गुणठाणे भजना जाणवी. जिहां चौथ ४, तथा ५, तथा ६, तथा ७ मे ने ८ मे गुणठाणे जिननाम बांध्यो ए १२ गुणठाणे आव्या होवे, तेहने जिननामनी सत्ता पामीये. जिहां बांध्यो न होय अथवा बांधीने उवेली आव्यो होय, तेहने जिननामनी सत्ता न होवे. तथा जिननाम, आहारकनी युगपत् सत्ता जेहने होय. ते उभय सत्तावंत मिथ्यात्व गुणठाणे न आवे. तथा जेहने तीर्थंकर नाम विनाही सत्ता होय, ते जो मिथ्यात्व गुणठाणे (नरकायुना) निकाचित उदय माटे आवे, ते अंतर्मुहूर्तमात्र मिथ्यात्वपणे रहे, तिन भवनो बंध रहे नही इम जाणवो. ॥ १२ ॥

केवलजुयलावरणां, पणनिद्दां वारसाइमकसायां।
निच्छें ति सवघाई, चउनाणं ति दंसणावरणां ॥१३॥

अर्थ—हवे घातीमध्ये २०, सर्व घाती कहे छे–केवलद्विक केहेनां २, केवलज्ञान १, तथा केवलदर्शन २, तेहना आवरण–केवलज्ञानावरणी १, तथा केवलदर्शनावरणी २, पांच निद्रा ५, आदि धुरला १२, कषाय अनंतानुबंधी ४, अप्रत्याख्यानी ४, प्रत्याख्यानी ४, ए १२, मिथ्यात्व १, ए २०, वीस सर्वघाती जाणवी, तथा देशघाती २५, पचीस प्रकृति छे ते कहे छे, च्यार ४, ज्ञानावरणी ४, त्रण दर्शनावरणी. ॥१३॥

अर्थ—जे संज्वलन लोभ १, तथा पांच अंतराय तथा पांच ज्ञानावरणी तथा दंसेसु च्यार ४, दर्शनावरण १५ पंनर, प्रकृतिनी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्तनी जाणवी तथा जसनामकर्म, उंचगोत्र १ नी आठ मुहूर्त्तनी जघन्य स्थिति जाणवी. सातावेदनीयनी जघन्य स्थिति बार मुहूर्त्तनी दे दसमे गुणठाणे बांधे, इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे साता बंधाय ते बे समयनी बंधाय. ॥ ३५ ॥

दो इग मासो पक्खो, संजलणतिगेपुमट्ठवरिसाणि ।
सेसाणुक्कोसाओ, मिच्छत्तठिईए जं लद्धं ॥ ३६ ॥

अर्थ—संज्वलनना क्रोधनी जघन्य स्थिति मास बेनी छे. संज्वलननामाननी १, एक मासनी छे, संज्वलन मायनी पक्ष १, ते पंदर दिवसनी छे, तिहां जे प्रकृति नवमे गुणठाणे वेदेली खपे तेहनी स्थिति जघन्यपणे करी हवे जे थोडी रहे तेहनी जघन्य स्थिति थोडी जाणवी. पुरुषवेद खपे तिहां ए प्रकृतिनी स्थिति एटलीज बंधाय छे, पुरुषवेदनी स्थिति जघन्य छे, हवे शेष जे एकेकेक प्रकृति यथोक्त [illegible] उत्कृष्टी स्थितिने मिथ्यात्वनी उत्कृष्टी स्थितिथी भाग आपवो ज्यां जे आवे ते त्यां प्रकृतिनी जघन्य स्थिति जाणवी. तिहां निद्रा पांचनी जघन्य स्थिति सागर १ एकना त्रण भाग एहवा तीन भागनी जाणवी असातावेदनीय तिम [illegible] इम तीन भागनी जाणवी, बार कषायना जघन्ये [illegible] ४ च्यार भागनी जाणवी हास्य १, रतिनी [illegible] बे भाग, भय, दुगंछा, अरति, शोक ए च्यार ४ प्रकृतिनी जघन्य स्थिति बे भाग, नपुंसकवेदनी स्थिति [illegible] बे भाग,

घायाल्पुन्नपयँई, अपढम संठाणं खगंइ संघयंणा
तिरिदुंग असायं नीओ-वंघायं इगं विगंल निरयंति

अर्थ—४२, पुण्यप्रकृति थइ. हवे ८२, पाप प्रकृति क
छे, अपढम-पेहेलुं संस्थान, पेहेली खगति-विहायोगति
संघयण ए २ वर्जीने बीजी सर्व पाप प्रकृति छे. न्यग्रोध सं
स्थान १, सादि, २, वामन, ३, कुब्ज, ४, हुंड ५, ए पांच
संस्थान, तथा अशुभविहायोगति ६, तथा ऋषभनाराच संघयण
७, नाराच ८, अर्धनाराच ९, कीलिका १०, छेवट्ठो ११,
निरिदुग-तिर्यंचगति १२, तिर्यंचानुपूर्वी १३, असातावेदनी
१४, नीचगोत्र १५, उपघात १६, एकेन्द्रीनी जाति १७,
विगलतिग द्वीन्द्रिय १८, त्रीन्द्रिय १९, चौरेन्द्रीनी जाति
२०, नरकत्रिक ते नरकगति २१, नरकानुपूर्वी २२, नरकायु
२३, ॥ १६ ॥

थावर दसं वन्नचउक्क, घाइपणयालँसहिअ वासीई ।
पावपयडित्ति दोसुवि वन्नाइगहा सुहा असुहा ॥१७॥

अर्थ—थावरनो दशक ३३, अशुभवर्ण ३४, रस ३५,
गंध ३६, स्पर्श ३७, तथा घातीनी ४५, ते ज्ञानावरणी ५,
मोहनी २६, अंतराय ५, एवं ४५, सहीत करीये, एटले ८२,
प्रकृति पापनी जाणवी. इहां पापना ८२, भेद, तथा पुण्यना
४२ भेद, ते भेळ्यां १२४, प्रकृति थइ, ते बंधनी तो १२०,
छे तेहनो उत्तर-जे शुभवर्णादि ४, पुन्यमे गवेष्या, अशुभवर्णादि
पापमे गवेष्या, ते माटे द्वारे (बेवार) गणतां १२४, थाय
प्रकृति. ॥ १७ ॥

अयमुक्कोसो गिंदिसु, पलियाऽसंखंस हीणलहुबंधो।
कमसो पणवीसाए, पन्ना सय सहस्स संगुणिओ॥३७॥

अर्थ—एक भाग छ भाग तीनभाग प्रमुख स्थिति कही ते एकेन्द्रीने उत्कृष्ट स्थिति जाणवी, बादर पर्याप्तो उत्कृष्टी बांधे, ए जे एकेन्द्रीयनी उत्कृष्ट स्थिति कही, ते मांहेथी पल्योपमनो असंख्यातमो भाग हीण कहेतां ओछो करीये, तिवारे एकेन्द्रीयनी जघन्य स्थिति जाणवी. कमसो अनुक्रमे पणवीसाए एकेन्द्रीयथी बेन्द्री पचवीस गुणी स्थिति बांधे, तेन्द्री पचासगुणी स्थिति बांधे, चोरेन्द्री १०० सोगुणी बांधे, अने असंज्ञि पंचेन्द्री हजारगुणी स्थिति बांधे. ॥ ३७ ॥

विगलि असन्निसुजिट्ठो, कणिट्ठओ पल्लसंखभागूणो
सुर निरयाउ समादस, सहस्स सेसाउ खुड्ड भवं ॥३८॥

अर्थ—विकलेन्द्री (बेन्द्री, तेन्द्री, चैरेन्द्री) ने, असंज्ञिने ए स्थिति उत्कृष्टी जाणवी. कणिट्ठओ–जघन्य स्थिति पल्यनो संख्यातमो भाग ऊणी, करवी ते पल्यनो संख्यातमो भाग ऊणो कीजे तिवारे बेन्द्रीयादिकनी जघन्य स्थिति जाणवी. सुर देवतानो आउखो, नरय–नारकीना आउखानी जघन्य स्थिति हजार १० दस हजार वरसनी जाणवी. शेष जे मनुष्य तिर्यंचना आउखानी जघन्य स्थिति क्षुल्लक भव प्रमाण, क्षुल्लक भव २५६ आवलीनी छे ते जघन्य जाणवी. ॥३८॥

सव्वाणवि लहुबंधे, भिन्नमुहु अबाह आउजिट्ठेवि।
केइ सुराउसमंजिण, मंतमुहू विंति आहारं ॥३९॥

उदय पामीने हीये, जो प्रदेशोदय न पामीयेनो पहनी रिपती हिहां भोगवने ते माटे. ॥ १९ ॥

घणघाई दु गोअ जिणा, तसिअरतिग सुभग दुभग चउ सासं।
जाइ तिगं जियविवागा ७८, आऊ चउरो भवविवागा ॥ २० ॥

अर्थ—हवे जीवविपाकीनी ७८, प्रकृति कहे छे. जिहां जे कार्मण वर्गणाने जे बांध्यो कर्म, ते मुख्यपने जीवनेज विपाक देखाडे, ते जीवविपाकी कहीये. तिहां घनघाती ४७, जे ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी नव, मोहनी अठ्ठावीस, अंतराय पांच, ए ४७, दुगोय वे गोत्र, बे वेदनीय ४, जिननाम १, त्रसत्रिक त्रस १, बादर २, पर्याप्त ३, इअर–थावरत्रिक थावर १, सूक्ष्म २, अपर्याप्त ३, सुभगचउ–सुभग १, सुस्वर २, आदेय, जस ४, दुभगचउ–दुर्भग १, दुःस्वर २, अनादेय ३, अजस ४, श्वासोश्वास १, जातित्रिक कहेतां—जाति ५, गति ४, खगति २, ए ११ इग्यार ए सर्व मिली ७८ प्रकृति जीवविपाकी जाणवी. तथा आउखां च्यार ४ भवविपाकी जाणवां. आउखां पोताना भवनेज उदये आवे, पन बीजे भवे संक्रमन तथा [illegible]शने निज उदय न आवे, ते माटे भवविपाकी कह्यां. ॥ २० ॥

नामधुवोदय चउतणु, वघाय साहारणियर जोयतिगं।
पुग्गलविवागि बंधो, पयइट्ठिइ रस पएसत्ति ॥२१॥

पणसट्ठि सहसपणसय, छत्तीसाइगमुहुत्त खुड्डभवा।
आवलियाणं दोसय, छप्पन्ना एग खुड्डभवे॥४१॥

अर्थ—एक मुहूर्त ते बे घडी प्रमाणमे पेंसठहजार पांचसे छत्रीस भव थाये, सूक्ष्मनिगोदीयाथी मांडी समुर्छिम मनुष्य पर्यंत ए प्रमाण जाणवो, तथा क्षुल्लक भव मध्ये आवली, २५६ जाये एटले मुहूर्तमे एक कोडि सडसठ लाख सित्तोत्तर हजार दोयसेने सोळ आवली जाणवी. ॥ ४१ ॥

अविरयसम्मोतित्थं, आहारदुगामराउ अपमत्तो।
मिच्छद्दिट्ठि बंधइ, जिट्ठठिइ सेस पयडीणं ॥४२॥

अर्थ—हवे उत्कृष्टी स्थितिबंधना स्वामी कहेछे. तीर्थंकर नामनी उत्कृष्टी स्थिति अविरति समकीतीबंधक, समकितथी मांडी अपूर्वकरणना छठ्ठा भाग पर्यंत छे, ते सर्व जीवथी अधिक कषायी अविरति समकीती छे, ते अधिक कषायी तेथी स्थिति ते उत्कृष्टी बांधे आहारकदुग–२ आहारक शरीर तथा उपांग ए बे अमर–देवतानो आउखो उत्कृष्ट स्थिति अप्रमत्त गुणठाणे बांधे, तिहां आहारक अप्रमत्त अति संक्लेशना अध्यवसाये बंधक उत्कृष्ट स्थिति बंधे देवायु अप्रमत विशुद्धाध्यवसाये उत्कृष्ट स्थिति बांधे, शेषप्रकृति वर्णादिक वीस मिलगवेखेतो, १३२, तथा वर्णादि ४, गवेखीयेतो ११६, नी उत्कृष्टी स्थिति संज्ञीपंचेन्द्री पर्याप्तो मिथ्यादृष्टि बांधे ॥ ४२ ॥

विगलसुहुमाउतिगं, तिरिमणुया सुरविउवि निरयदुगं
एगिंदिथावरायव, आईसाणा सुरुक्कोसं ॥ ४३ ॥

पछे एक बंधनां स्थानक ४ प्रकार छे. इहां तीन ३ भूय-
स्कार जाणवा. इग्यारमे गुणठाणे एक बंधक हतो, ते इग्यार-
मथी पडी दशमे आवी ६ छ बांधे, तिवारे १ भूयस्कार,
वळी नवमे गुणठाणे आवे तिवारे ७ सात बांधे, ते बीजो
भूयस्कार, तथा ते वळी आवतो आठ बांधे तिवारे त्रीजो भूय-
स्कार जाणवो, अल्पतर तीन छे, ते जे आठनो बंधक ते सात
बांधे तिवारे एक अल्पतर, सातथी छ बांधे ते बीजो अल्प-
तर, अने छ थी एक बांधे तिवारे त्रीजो अल्पतर, ए तीन अल्पतर
जाणवा. तथा आठनो १, अवस्थित सातनो बीजो अवस्थित,
छनो त्रीजो अवस्थित, एकनो चोथो अवस्थित; ए ४ प्रकार
अवस्थित जाणवा. मूळ बंधे अवक्तव्य बंध नथी, जे सर्वथी
अबंधक थइने पछो बंधक थतो नथी. ॥ २२ ॥

एगादहिगे भूओ, एगाईऊणगम्मि अप्पतरो ।
तम्मत्तोऽवट्ठिअओ, पढमे समये अवत्तव्वो ॥ २३ ॥

अर्थ—एकादिक अल्पबंधथी जे अधिको बंध बांधे ते भूयस्कार
बंध कहीये. जिम एक बंध करतो तिवे वळी एक अधिको बांध्यो, तिवे
पहेले समये भूयस्कार कहीये, अने जे पूर्व बंधथी एक बेआदि घणा थिर
ओछा बांधे ते अल्पतर. जिम आठनोबंध करतो ते सात बांधे
ए अल्पतर जाणवो, अने जे पहेलो बांधतो हतो तेहिज
बीजे समये बांधे, ते अवस्थित कहीये, ते मात्र ते ते मनानेज
बांधे ते अवस्थित बंध जाणवो, अने अबंध थइ प्रथम समये
बांधे तेहने अवक्तव्य कहीये, जिम दशमे, इग्यारमे, मो-
हनी कर्मनो अबंधक हतो, ते पडतां नवमे गुणठाणे आवे

सांय जसुच्चावरणा, विग्घं सुहुमो विउवि छ असन्नि।
सन्नीवि आउ बायर, पजेगिंदी उ सेसाणं ॥४५॥

अर्थ—सातावेदनीय १, जसनाम २, उच्चैर्गोत्र १, ज्ञानावरणी पांच ५, दर्शनावरणी ४, अंतराय पांच ५, ए १७ प्रकृतिनी जघन्य स्थिति सूक्ष्मसंपराय दसमे गुणठाणे बांधे. देवद्विक २, नरकद्विक २, वैक्रियद्विक २, ए ६ छ प्रकृतिनी जघन्य स्थिति असंज्ञिपंचेन्द्री पर्याप्तो बांधे, जे कारणे एहनो प्रथमबंध एहिज छे, आउखा ४, नी जघन्य स्थितिनो बंधक संज्ञीपण छे असंज्ञीपिण छे. एहनो बंध परिणामनी तीव्रमंदताये छे, शेष १०१, अथवा ८५, प्रकृतियोनी जघन्य स्थितिना बंधक बादरपर्याप्ता एकेन्द्री जाणवा. स्थितिबंधमें सूक्ष्मसंपरायी साधुयी बीजे बोले स्थितिबंधक एकेन्द्री पर्याप्तः छे. ॥४५॥

उक्कोसजहण्णीयर, भंगासाई अणाइ धुवअधुवा।
चउहा सग अजहन्नो, सेसतिगे आउ चउसु दुहा॥४६॥

अर्थ—हवे स्थितिबंधना भांगा कहे छे–तिहां उत्कृष्ट १, जघन्य १, इतर अनुत्कृष्ट अजघन्य १, ए ४, च्यार भांगा छे. तिहां जे प्रकृतिनी जे उत्कृष्टि स्थिति छे ते बांधे ते उत्कृष्टबंध कहेवाय, उत्कृष्टबंध एक जीवने लागट रहे तो अंतर्मुहूर्त रहे ते माटे ए सादि अध्रुव छे, तथा जे प्रकृतिनी जघन्य स्थिति जे बांधे ते जघन्य बंधक कहीये. ते एकएक समयमांज बांधे, एहने पिण सादि अध्रुव भेदज लागे, तथा उत्कृष्टी नही ते अनुत्कृष्ट, ते इहां

[illegible]

छे. ॥ २४ ॥

नि' पर्ण हँ अट्टंट नवंहिचा, गीसा तीसंगंतीस इंग नामे
छंस्संण अट्टटं तिं बंधा, सेसेतु प ठाण सिदिकं ॥२५॥

पयडिबंधो समत्तो ॥

कहीये ए पिण उत्कृष्ट बंधक थया पछी बांधे ते माटे सादि अध्रुव लाभे, तथा जघन्यबंधक थइने एक समय अधिक अधिक बंधाय ते अजघन्य गणीये तो ॥ ४६ ॥

चउभेओ अजहन्नो, संजलणावरणनवगविग्घाणं।
सेस तिगिसाइ अधुवो, तहचउहा सेसपयडीणं ॥४७॥

अर्थ—अजघन्यबंध च्यार भेदे पामीये, संजलण च्यार ४, ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी ४, ए नव, अंतराय पांच, ए १८ प्रकृतिनी अजघन्य स्थिति च्यार ४, भेदे छे, जे ए १८ प्रकृतिनो जघन्यबंध नवमे, दसमे, गुणठाणे छे तेहथी बीजा जीव सर्व अजघन्यबंधक छे, तेहमां जे ए गुणठाणे चढी पड्या छे तेहने सादि अध्रुव छे, अभव्यने अनादि ध्रुव छे एहिज अढार प्रकृतिना, शेष तिग–शेष ३ भांगा सादि १, अध्रुव २, भेदे छे, भावना पूर्ववत्. शेष १०२ प्रकृतिनी, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, ए च्यार ४ प्रकारनी स्थिति सादि अध्रुव भांगे बंधाय, तिहां ७३ प्रकृति तो अध्रुव बंधिज छे. ते माटे किवारे बंधाये किवारे न बंधाये ते माटे सादि अध्रुव छे, २९ ध्रुवबंधिमांहेली छे ते सदा बंधाय, पिण ए २९ नो जघन्यबंधक पिण एकेन्द्रीय छे, ते एकेन्द्रीयपणामे जघन्यबंध करे ते माटे जघन्य कर्या पछी अजघन्यबंध ते पिण सादि अध्रुव छे, ते माटे ए २९ प्रकृतिने सादि अध्रुव छे. ॥ ४७ ॥

साणाई अपुव्वंते, अयरंतो कोडि कोडिओ नहिगो,
बंधो न हु हीणो नय, मिच्छे भवियर सन्निंमि ॥४८॥

वीसयरकोडिकोडी, नामे गोएय सत्तरी मोहे ।
तीसयरचउसुउदही, निरय सुराउंमि तित्तीसा॥२६॥

अर्थ—हवे मूळ कर्म आठ तेनी उत्कृष्ट स्थिति छे ते कहे छे-वीसयर-वीसकोडाकोडी सागर नामकर्म तथा गोत्र-कर्मनी उत्कृष्ट स्थिति छे ते जाणवी, मोहनीकर्मनी ७० सीत्तेर कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति छे, चउसु-ज्ञानावरणी, १ दर्शनावरणी २, वेदनीय ३, अंतराय ४, ए च्यार ४ कर्मनी ३० कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति जाणवी. नरकना आयु तथा देवताना आउखानी उत्कृष्टी स्थिति, तेत्रीस सागरोपमनी जाणवी. उत्कृष्ट स्थिति उत्तर प्रकृतिनी पिण इहांथी गणज्यो. हवे मूळ कर्मनी जघन्य स्थिति कहे छे, मुत्तु-अकषायवेदनीयनी स्थिति, वर्जिने शेष सकषायीजीव, वेदनीयकर्मनी स्थिति जघन्यें अंतमुहूर्तनी बांधे छे. अथवा १२ मूहूर्तनी बांधे छे. ए दसमे गुणठाणे बांधे. इहां दसमा गुणठाणाना आदि अध्यवसायें.॥२६

मुत्तुंअकसायठिइं, वारमुहुत्ता जहन्न वेअणिए ।
अट्ठट्ठनामगोए-सु सेसएसु मुहुत्तंतो ॥ २७ ॥

अर्थ—अकषायी ते ११ मुं, १२ मुं, १३ मुं, ए ३ गुणठाणामां कषायिक स्थिति जे छे तेने मुकीने एटले १० दसमे गुणठाणे जे जीव छे ते जीवने वेदनीयनी स्थिति १२ बार मुहूर्त जघन्यथी होय, दसमा गुणठाणाना पेहेले अध्यवसाये मुहूर्त मोटो लेवो, अंत्यअध्यवसायें मुहूर्त न्हानो लेवो, तथा क्षपकथी उपशमश्रेणिमां बिमणो बंध जाणवो, नामकर्म, गोत्रकर्मनी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्तनी छे, शेष जे ज्ञानावरणी तथा दर्शना-

तेहथी बादर पर्याप्तो उत्कृष्टबंधक स्थिति अधिकी बांधे. एकेन्द्रीपणामे एज उत्कृष्टबंधक छे ९. ॥ ४९ ॥

लहु बिअ पज्ज अपज्जे, अपज्जेयर बिअ गुरु हिगो एवं। तिचउ असन्निसु नवरं, संखगुणो बिअ अमणपज्जे ५०

अर्थ—लहु–जघन्यबंधक बेन्द्री पर्याप्तो संख्यातगुणी बांधे १० तेहथी बेन्द्री अपर्याप्तो जघन्यबंधक अधिकी बांधे, ११ तेहथी बेन्द्री अपर्याप्तो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे. १२ तेहथी बेन्द्री पर्याप्तो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे. १३ इहां एकेन्द्रीथी बेन्द्रीने २५ गुणो बंध, ते माटे पेहेले बोले संख्यातगुणो कह्या पछी ते पल्यना असंख्यातमे भागे वृद्धि छे, ते माटे अधिकी बांधे. एवं–ए रीते च्यार ४ बोल कहेवा. तिहां १४ मे बोले तेन्द्री पर्याप्तो जघन्यबंधक स्थिति अधिकी बांधे, तेहथी १५ मे बोले तेन्द्री अपर्याप्तो जघन्यबंधक स्थिति अधिकी बांधे, तेहथी तेन्द्री अपर्याप्तो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे. १६ तेहथी तेन्द्री अपर्याप्तो उत्कृष्टबंधक ते अधिकी बांधे. १७ तेहथी चौरेन्द्री पर्याप्तो जघन्यबंधक अधिकी बांधे. १८ तेहथी चोरेन्द्री अपर्याप्तो जघन्यबंधक अधिकी बांधे, १९ तेहथी चोरेन्द्री अपर्याप्तो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे. २० तेहथी चोरेन्द्री पर्याप्तो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे, २१ तेहथी असंज्ञि पंचेन्द्री पर्याप्तो जघन्य बे० संख्यात गुणबंधक छे. ते २२. ए हजारगुणी बांधे ते चोरेन्द्रीथी नवगुणी साधिक थइ छे ते माटे तेहथी असंज्ञि पंचेन्द्री अपर्याप्तो जघन्यबंधक अधिकी बांधे. २३ तेहथी असंज्ञि पंचेन्द्री अपर्याप्तो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे. २४ तेहथी असंज्ञि पंचेन्द्री पर्याप्तो उत्कृष्ट

सागरनी स्थिति जाणवी. मिश्र—हरिद्रपर्ण वर्ण—उजळो वर्ण, मधुर—मीठो रस. ए छ प्रकृतिनी दस कोडाकोडी सागरोपमनी उत्कृष्टी स्थिति जाणवी. तथा हवे एक वर्णे एक रसे अढी कोडाकोडी वधारवी एटले हारिद्र—पीळोवर्ण, अंबिल—खाटो रस तेहनी साडाबार १२॥ कोडाकोडी सागरनी स्थिति जाणवी, रातो वर्ण, कसायलो रस, तेनी पंनर कोडाकोडि स्थिति, नीलोवर्ण, कडवो रस तेहनी १७॥ साडासत्तर कोडाकोडी सागर स्थिति, काळोवर्ण, तीखोरस तेनी वीस कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति जाणवी. ॥ २९ ॥

दसमुहविहगइ उच्चे, सुरदुगथिरछक्कपुरिसरइहासे।
मिच्छे सत्तरि मणुदुग, इत्थीसाएसु पण्णरस ॥३०॥

अर्थ—शुभ विहायोगति १, उच्चगोत्र १, सुरदुग—देवगति, देवानुपूर्वी २, थिरछक्क—थिर १, शुभ २, सुभग ३, सुस्वर ४, आदेय ५, यश ६, ए छ थिरछक्क. पुरुषवेद १, रति १. हास्य १, ए १३, तेर प्रकृतिनी दस कोडाकोडी सागर उत्कृष्टी स्थिति छे. मिथ्यात्व मोहनीनी सित्तेर ७०, कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति छे, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, स्त्रीवेद, सातवेदनी ए ४ नी पनर १५ सागर कोडाकोडी स्थिति छे. ॥ ३० ॥

भयकुच्छ अरइ सोए, विउवि तिरि उरल निरयदुग नीए।
तेयपण अथिर छक्के, तस चउ थावर इगपणिंदि ३१

अर्थ—भयमोहनी १, कुच्छा—दुगंछा १, अरति १,

अर्थ—सर्व प्रकृतिनी जिह्व–उत्कृष्टी स्थिति ते अशुभ जाणवी, जे साई–ते अति संक्लेश परिणामे एटले जिननामनो बंध चोथा गुणठाणाथी मांडी आठमा गुणठाणा लगे छे, पिण चोथे स्थिति उत्कृष्टी बांधे तेमें शुद्ध परिणाम छे ते माटे जघन्य बांधे. ए सर्व प्रकृतिनी ईअरा–जघन्य स्थितिने विशुद्ध परिणामे बांधे, एक तीन प्रकृति नर–मनुष्यायु, देवायु, तिर्यचायु, ए तीन प्रकृति मूकीने, एटले ए तीन प्रकृतिनी जघन्य स्थिति संक्लेश परिणामे बांधे, उत्कृष्टी स्थिति विशुद्ध परिणामे बांधे. ॥ ५२ ॥

सुहुमनिगोआइखणप्प-जोगबायर य विगलअमणमणा
अपजलहु पढमदुगुरू, पजहस्सिअरो असंखगुणो।५३॥

अर्थ—हवे २८ बोलना योगबलनो अल्पबहुत्व कहे छे. सूक्ष्मनिगोदादि प्रथम क्षणे प्रथम समये उपनो अपर्याप्त पणाथीज आव्यो तेहनो सर्वथी योगबल अल्प जाणवो. १ तेहथी बादर एकेन्द्री अपर्याप्तो प्रथम समय उपनो अपर्याप्तो अपर्याप्तपणाथीज आव्यो, तेहनो सर्वथी योगबल अल्प जाणवो. १. तेहथी बादर एकेन्द्री अपर्याप्तो प्रथम समय उत्पन्न जघन्ययोगीनो योगबल असंख्यातगुणो, २, तेहथी बेन्द्री अपर्याप्ता जघन्ययोगीनो योगबल असंख्यातगुणो, ३ तेथी तेन्द्री० ४ तेथी चोरेन्द्री० ५ तेहथी अमण–असंज्ञि अपर्याप्तानो जघन्य योगबल असंख्यातगुणो, ६ तेहथी मणा–संज्ञि अपर्याप्तानो जघन्य योगबल असंख्यातगुणो ७, तेहथी पढम–पेहेला बे बोल गुरु–उत्कृष्टबंधक एटले सूक्ष्म अपर्याप्तानो उत्कृष्ट योगबल असंख्यातगुणो, ८ तेहथी बादर अपर्याप्तानो

अहारक दुगनी स्थिति उत्कृष्टी जाणवी. तथा अबाधा मुहे-
सेडनी भिन्नमुहूर्त—अंतर्मुहूर्तनी जाणवी. जघन्य स्थिति
संख्यात गुण ओछी छे ते अंतः कोडाकोडी स्थिति छे.
तेहने संख्यातगुणी ओछी करीये. तेटली पाव तेटली ओछी
जघन्य स्थिति जाणवी. एटले अंतर्मुहूर्तना अबाधमानो फेर
पडे छे. नर—मनुष्यनुं आयु तथा तिर्यंचायुनी उत्कृष्टी स्थिति
तीन ३ पल्योपमनी जाणवी. ॥ ३३ ॥

इगविगलपुव्वकोडिं, पलियाऽसंखंस आउचउ अमणा।
निरुवकमाण छ मासा, अबाह सेसाण भवतंसो ३४

अर्थ—हवे जे जीवो आवता भवनो आयु जेटलो बांधे ते
कहे छे. एकेन्द्रि तथा विकलेन्द्रिय आवता भवनुं आयुः उत्कृष्ट
बांधे तो पूर्वकोडि १ एकनो बांधे पण अधिक न बांधे.
तथा अमणा असंज्ञी पंचेन्द्रितिर्यंच पर्याप्ता च्यार ४ गतिनो
आउखो बांधे तो उत्कृष्टो पल्योपमने असंख्यातमे भाग प्रमाण
बांधे, निरुपक्रम आउखावाळा देवता तथा नारकी तथा युग-
लिया एटला छ मास शेष थके नवा भवनो आउखो बांधे.
शेष जे सोपक्रमी तथा निरुपक्रमी मनुष्य तिर्यंचनुं आयुष्य ते
भवने त्रीजे भागे शेषे बांधे तिम पेहेंटा ते भाग मळे न
बांधे, जो त्रीजे भागे न बंधाय तो नवमा भागे, अथवा
२७ मे भागे इम विभाग करतां शेष अंतर्मुहूर्ते तिम बांधे.
वर्णादिक चौदनी एटली स्थिति कही. तिहां एकसो उनत्रीस प्रकृ-
तिनी उत्कृष्टी स्थितिकही. हवे जघन्य स्थितिकहे छे. ॥३४॥

लहु ठिइबंधो संजलण, लोहपणविग्घनाण दंसेसु।
भिन्नमुहुत्तं ते अट्ठ, जसुच्चे बारस य साए ॥३५॥

पर्याप्तानो उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणो २८. ए रीते स्थिति स्थानकनो अल्पबहुत्व २८ बोलनो जाणवो, वीर्यनी वृद्धिए स्थितिनी तीव्रमंदताना भेद पडे ते इहां लेज्यो. अपर्याप्ताथी इअर–पर्याप्तानां स्थितिस्थानक असंख्यातगुण छे, इहां जीव भेद एकें स्थिति जघन्य मिथ्यात्वनी एकसागर पल्यने असंख्यातमे भागें ऊणी बांधे, पिण कोइक तीव्र बांधे, कोइक जीव मंद तथा मंदतर रीतें एक स्थितिस्थानकमें ते स्थिति बांधवाना अध्यवसाय स्थानक असंख्यात थाये. एहवा एक जीवभेद सूक्ष्म अपर्याप्ताने बांधवानां अध्यवसाय स्थानक असंख्यात छे तेहथी सूक्ष्मपर्याप्तताना बंधाध्यवसाय संख्यातगुणा छे, तेथी बादर अपर्याप्ताना संख्यातगुणा छे, तेथी बेइन्द्रि अपर्याप्ताना बंधाध्यवसाय असंख्यातगुणा छे, तेथी बेन्द्रिपर्याप्ताना बंधाध्यवसाय संख्यातगुणा छे. इम १४ जीवभेदें कहेतां पण एटले भेद जे बेइन्द्रि अपर्याप्तानां असंख्यातगुणांज. त्रसपणानो वीर्य तेहने वाध्यो ते माटे. तथा इहां स्थिति अपेक्षाए पहेला (?) ॥५४॥

पइ खण मसंखगुणविरिय, अपज्जपइठिइमसंखलोग-समा।

अज्झवसाया अहिया, सत्तसु आउसु असंखगुणा ५५॥

अर्थ—हवे जीवने क्षयोपशमी वीर्य जे उपजवाने प्रथम समये छे ते असंख्यातो छे. ते पछी पइखण–प्रतिसमये एटले समय समयमे असंख्यातगुणो वीर्य वधे. पण अपर्याप्तावस्थालगी इम वीर्यवृद्धि जाणवी. एटले पेहेला समयथी बीजे समये असंख्यातगुणो वीर्य वधे, त्रीजे समये असंख्यातगुणो

स्त्रीवेदनी स्थिति सातइयो दोड भाग, नामकर्ममध्ये देवगति देवानुपूर्वीनी एक हजार भाग नरकगति, नरकानुपूर्वीनी सातइया बे हजार भाग, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वीनी दोड भाग एकेन्द्री जाति, पंचेन्द्री जातिनी जघन्य स्थिति सातइया बे भाग, विकलत्रिकनी सातइया पोणा बे भाग झाझेरा, औदारिक शरीर, औदारिक उपांगनी बे भाग, वैक्रिय शरीर वैक्रिय उपांगनी बे हजार भाग, तैजसकार्मणना बे भाग, प्रथम संघयण प्रथम संस्थाननी सातइयो १, एक भाग, बीजो संघयण बीजा संस्थाननी स्थिति ३५ सीया छ ६ भाग, त्रीजो संघयण त्रीजो संस्थान ३५, सीया ७, भाग चोथे संघयणे चोथे संस्थाने पांत्रीसीया (३५ या) ८, भाग पांचमो संघयण पांचमो संस्थानना पांत्रीसीया नव ९ भाग, छट्ठो संघयण, छट्ठो संस्थानना पांत्रीसीया दस भाग, एटले सातइया बे भाग श्वेतवर्ण मधुररसनी १, भाग पीतवर्ण खाटारसनी सवा भाग रातावर्ण कसायला रसनी दोढ भाग नीलोवर्ण, कडुयो रस पोणाबे भाग, कालोवर्ण, तीखारसनी बे भाग सातइया, सुरभिगंध, मृदुस्पर्श, लघुस्पर्श, स्निग्धस्पर्श, उष्णस्पर्श, नो सातइयो १, भाग शुभविहायोगतिनो जघन्य सातइयो १, एक भाग अशुभविहायोगति, पराघात, उश्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, त्रस, अथिरछक्क, थावरनाम ए सर्वना सातइया बे भाग, आहारक शरीर, आहारक उपांगनी, जिन नामनी एक कोडाकोडी सागर केटलाएक सागरोपमना सेंकडा ओछा, सूक्ष्मत्रिकनी सातइया पोणा बे भाग झाझेरा, थिर. ५ नो सातइयो १, भाग जघन्य स्थिति जाणवी. ॥ ३६ ॥

आउखे युगलिया तेहने बीजी गति जावो नथी ते माटे निरंतर ए ४ प्रकृति बांधे. ॥ ५८ ॥

समयादसंखकालं, तिरिदुगनीएसुआउअंतमुहू।
उरलि असंखपरट्टा, सायट्ठिइ पूवकोडूणा ॥५९॥

अर्थ—समया-जघन्ये १ समय उत्कृष्ट असंख्यातोकाल, तिरिदुग २, नीचगोत्र, ए ३ तीन प्रकृति निरंतर बंधाय, जे कारणे सातमी नरकनो नारकी ३३ सागर सीम ए प्रकृति निरंतर बांधे, जे मिथ्यात्वी होय तेहने बीजी गति, ऊंचगोत्रनो बंध नथी, आउखो जघन्ये तथा उत्कृष्टे अंतर्मुहूर्त्त सीम निरंतर बांधे, जघन्य मुहूर्त्तथी उत्कृष्ट मुहूर्त्त मोटो जाणवो, औदारिक शरीर, असंख्याता पुद्गलपरावर्त्त सुधी निरंतर बांधे, सूक्ष्म, बादर, निगोद, प्रत्येक, एकेन्द्रि मळीने गवेखी जोज्यो. जांसीम (ज्यां सुधी) वेदनीयनो बंध तांसीम अंतर्मुहूर्त्तथी अधिककाल ए बे मांहेली प्रकृति बंधाय नहां परावर्त्तन छे ते माटे, सातावेदनी देशेऊंणी पूर्वकोडि सीम निरंतर बांधे ए सयोगी केवळी गुणठाणानी अपेक्षाए छे. ॥ ५९ ॥

जलहिसयं पणसीयं, परघुस्सासे पणिंदितसचउगे।
बत्तीसं सुहविहगइ, पुम सुभगतिगुच्च चउरंसे ॥६०॥

अर्थ—पूर्व रीते १८५ एकसोपंच्यासी सागर, पल्य ४ नरभव अधिक कालमान सीम, पराघात, उश्वासनाम, पंचेन्द्रि जाति, त्रसच्यार ४, (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक) एम ए ७ प्रकृति निरंतर बंधाये. तथा आगळ कहेशे ते प्रकृति एकसोबत्रीस कालमान निरंतर बांधे. १३२ सागरोपम पूर्वोक्त रीते

अर्थ—सर्व प्रकृतिना जघन्य स्थितिबंधे जघन्य अबाधा अंतर्मुहूर्त्तनी जाणवी. एटले सर्वजघन्य स्थितिनी जघन्य अबाधा अंतर्मुहूर्त्तनी ते उपर स्थिति कंडक एक वधे एक समय अबाधा वधे. इम उत्कृष्ट स्थितिमां उत्कृष्ट अबाधा जाणवी, अने आउखा स्थानकी उत्कृष्टी स्थिति जघन्य अबाधा हुवे, इहां चौभंगी छे, आउखो उत्कृष्टे अबाधा उत्कृष्टी १, आउखे उत्कृष्टे अबाधा जघन्य २, आउखो जघन्य अबाधा उत्कृष्ट ३, आउखो जघन्य अबाधा जघन्य ४ जाणवी. वळी वाचनान्तर कहे छे. कोइक आचार्य जिन नामनो जघन्य स्थितिबंध देवताना आयु प्रमाण जाणवो, एटले आठमा गुणठाणाना छट्ठा भागना चरम समये जीननामकर्मनो जघन्य स्थितिबंध १० हजार वर्ष प्रमाणनो होय छे. आहारक दुगनी विपाकनी जघन्य स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त्त छे, ते आठमा गुणठाणाना छट्ठा भागना चरम समये—आहारकनो जघन्य स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त्त होय छे. ॥ ३९ ॥

सत्तरसमहियाकिर, इगाणुपाणुंमिहुंतिखुड्डभवा।
सगतीस सयतिहुत्तर, पाणू पुण इग मुहुत्तंमि ॥४०॥

अर्थ—हवे क्षुल्लकभवनो मान कहे छे. एक आणपाण श्वासोश्वास मध्ये सत्तर भव पुग अढारमा भवना १३९५ भाग अधिक एटले सत्तर भव झाझेरा एक श्वासोश्वास मांहे थाय. क्षुल्लक भव जाणवो, क्षुल्लक एटले सर्वथी न्हानो भव ए भाग उश्वासना ३७७३ भाग करीये तेहवा १३९५ भाग लेवा, सडत्रीससे तिहुत्तर ३७७३ पाणू, पुण कहेता श्वासोश्वास गये एक मुहूर्त्त थाय. ॥ ४० ॥

तिव्वो असुहसुहाणं, संकेसविसोहिओविवज्जयओ।
मंदरसो गिरिमहिरय, जलरेहा सरिसकसाएहिं॥६३॥

अर्थ—तिव्वो-तिव्र उत्कृष्टो अशुभनो तीव्ररस संक्लेश परिणामे बांधे, शुभनो तीव्ररस विशुद्ध परिणामे बांधे, विपर्ययपणे मंदरस बांधे, जिहां अशुभनो तीव्ररस बांधे तिहां शुभनो मंदरस बांधे, जिहां शुभनो तीव्र बांधे तिहां अशुभनो मंदरस बांधे, इहां दृष्टांत जे अनंतानुबंधि कषाय गिरिरेखा समान तेथी चोठाणीयो रस, तथा अप्रत्याख्यान कषाय महीरेखा समान एथी त्रिठाणीयो रस, प्रत्याख्यानी रजरेखा समान एथी बेठाणीयो रस, संज्वलनो जलरेखा समान तेथी एकठांणीयो रस जाणवो. ए दृष्टान्ते जाणवो. ॥ ६३॥

चउठाणाई असुहो, सुहन्नहा विग्घ देसघाइआवरणा।
पुम संजलणिग दुति-चउट्ठाणरसासेस दुगमाई६४

अर्थ—चउट्ठाणी-चोठाणीयादि (प्रमुख) रस अशुभनो तेथी अन्यथा बीजी रीते शुभ, एटले जिहां अशुभनो चोठाणीयो तिहां शुभनो बेठाणीयो, जिहां अशुभनो त्रिठाणीयो तिहां शुभनो बेठाणीयो, जिहां अशुभनो बेठाणीयो तिहां शुभनो त्रिठाणीयो, जिहां अशुभनो एकठाणीयो तिहां शुभनो चोठाणीयो एम भाववुं.

तिहां विग्घ-पांच अंतराय, तथा देशघाती आवरण ज्ञानावरणी ४, दर्शनावरणी ३, ए सात, पुरुषवेद १, संजलण-कषाय ४ ए १७ प्रकृति तेनो एकठाणियो रस बांधे, तथा बेठाणीयो बांधे, तथा त्रिठाणीयो बांधे, चोठाणीयो बांधे,

अर्थ—हवे मिथ्यात्वे च्यार ४ गतिना छे ते ते मध्ये जे बांधे ते लिखीये छे. विगल ३ सूक्ष्म ३ तिर्यंचायु १, मनुष्यायु १, नरकायु १, ए ३ आउखा देवगति १ देवानुपूर्वी, १ ए देवद्विक, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय उपांग, ए बे वैक्रियद्दुग, नरकगति, नरकानुपूर्वी, ए नरकद्विक, ए १५ प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति संज्ञिपंचेन्द्रीपर्याप्तमिथ्यात्वी तिर्यंच मनुष्य बांधे एना बंधक एज छे. तथा एकेन्द्रीजाति, थावरनाम, आतपनाम, ए तीन प्रकृति आइसाणा–भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, सुधर्म, इशान देवलोक पर्यंतना देव उत्कृष्टी स्थिति बांधे, आकरे तीव्र अशुद्धता ए परिणम्यो ए जीव एकेन्द्रीपणो उपार्जे. बीजी हीणी गतिमां एने जवुं नथी ते माटे. ॥ ४३ ॥

तिरिउरलदुगुज्जोअं, छिवट्ठ सुरनिरय सेसचउगइया।
आहारजिणमपुव्वो, अनियट्टि संजलण पुरिसलहुं।४४।

अर्थ—तिर्यंचद्दुग, औदारिकद्दुग, उद्योतनाम, छेवटो- संघयण, ए ६ प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति मिथ्यात्वी देवता अथवा मिथ्यात्वी नारकी बांधे, शेष १०८ एकसो आठ, प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति च्यार गतिना मिथ्यात्वी बांधे, संज्ञि- पर्याप्ता बांधे.

अथ जघन्य स्थितिना स्वामी कहे छे. आहारक तथा जिननामनी जघन्य स्थिति अपूर्वकरण गुणठाणे बांधे, ए प्रकृतिना बंधक मध्ये अति निर्मल परिणाम अहिंज छे. अनिवृत्ति गुणठाणे संजलना कषाय च्यार, पुरुषवेद, ए पांच प्रकृतिनी जघन्य स्थिति बांधे ॥ ४४ ॥

प्रकृतिनो सुरमिच्छा-मिथ्यात्वी देवता उत्कृष्ट रस बांधे, तथ विगल ३, सूक्ष्म ३, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ए ३, नरक गति १, नरकानुपूर्वी २, नरकायु ३, ए नरकत्रिक तथा तिरिआयु १, मनुष्यायु १, ए ११ प्रकृतिनो उत्कृष्टो रस तिर्यंच तथा मनुष्य मिथ्यात्वी बांधे, तथा तिर्यंच दुग-तिर्यंच गति १, तिर्यंचानुपूर्वी ए बे अने छेवठो संघयण ए ३ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस देवता, नारकी मिथ्यात्वी बांधे. ॥ ६६ ॥

विउवि सुराहारग दुग, सुखगइ वन्न चउ तेय जिण सायं
समचउपरघा तसदस, पणिंदि सासुच्च खवगा उ ॥६७

अर्थ—वैक्रिय दुग-वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपांग २, देवद्विक २, आहारकद्विक २, शुभ विहायोगति १, वर्णादि ४, तैजस शरीर १, कार्मण १, अगुरुलघु १, निर्माण १, जिननाम १, सातावेदनीय १, समचौरस संस्थान १, पराघात १, त्रसनो दशको १०, पंचेन्द्री जाति १, श्वासोश्वास १, उच्चगोत्र १, ए बत्रीस ३२ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस खवगाउ-क्षपकश्रेणिमां बांधे तिहां साता वेदनीय १, उच्चगोत्र १, यशनाम १, ए ३ तीन प्रकृतिनो सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे उत्कृष्ट रस बांधे, शेष २९ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस अपूर्वकरण गुणठाणे बांधे.॥६७

तमतमगा उज्जोयं, सम्मसुरा मणुय उरलदुग वइरं।
अपमत्तो अमराउं, चउगइमिच्छा उ सेसाणं ॥६८॥

अर्थ उद्योतनामकर्मनो उत्कृष्ट रस तमतमगा-तमतमा नरकना नारकी बांधे, मनुष्यदुग २, औदारिकदुग २, वज्र ऋषभनाराचसंघयण १, ए पांच प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस तम-

[illegible]

विग्घावरणे सुहुमो, मणुतिरिआ सुहुम विगलतिगआउ
वेउवि छक्कममरा, निरया उज्जोय उरलदुगं ॥ ७१ ॥

अर्थ—विग्घ-अंतराय पांच, आवरण-ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी ४, ए ९, एम बधी मळी १४, चौद प्रकृतिनो सुहुमो-सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे जघन्य रस बांधे, तथा सूक्ष्मत्रिक ३, विकलत्रिक ३, आउखां ४, वैक्रियछक-देवद्विक २, नारकद्विक २, वैक्रियद्विक २, ए ६, छ मळी सर्व १६, प्रकृति मणुतिरिय-मनुष्य ने तिर्यंच जघन्यरसे बांधे, उद्योतनाम, औदारिक २, अमरा-देवता निरया-नारकी जघन्य रसे बांधे॥७१

तिरिदुग निअं तमतमा, जिण मविरय निरयविणिग थावरयं ।
आसुहु मायव सम्मो, वसाय थिर सुह जसा सियरा७२

अर्थ—तिर्यंचद्विक २, नीचगोत्र १, ए ३ प्रकृतिनो जघन्य रस तमतमानारक ७ मीना नारकी बांधे. जिननामकर्मनो जघन्य रस अविरति समकिती बांधे, एकेन्द्री जाति थावरनामकर्म, नरकगतिविना तीन गतिना जीव जघन्य रसे बांधे, आतपनामकर्म आसुहुमा-सौधर्म देवलोक पर्यंतना देवता, जघन्य रसे बांधे, सौधर्म कहेवाथी इशान पिण ग्रहवो, सम्मोयमाय-शातावेदनी १, थिरनाम १, शुभनाम १, जश १, ए ४, प्रकृति समकिती पडतो जघन्यरसे बांधे सियरा-एहथी इतर अशाता, अथिर, अशुभ, अजश, ए ४, प्रकृति समकिती पडतो होय त्यारे जघन्यरसे बांधे ॥ ७२ ॥

अर्थ—हवे [illegible] लिने करे छे. [illegible]

[illegible] अपर—[illegible] अने—[illegible]

[illegible] ६ ७ [illegible]

[illegible] लिने बांधे, [illegible]

[illegible] ७० [illegible] बांधे ६ [illegible] करे छे. ॥ ५८ ॥

अड़ छहुवंधो बायर, पज्जअतंवउण सुहुम पज्जहिगो।
एति अपज्जाण छहू, छहुनेअर अपज्जपज्जगुरु ॥ ८३॥

अर्थ—हवे [illegible] करे छे.

[illegible] १ [illegible] १ [illegible] छे. [illegible]

[illegible] ४. [illegible] ६, [illegible] ७, [illegible] ८,

अने अबंध थशे ते माटे अध्रुव छे, ने घाती ध्रुवबंधी जे १९ ओगणीस अने मोहनी पांच, ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी ९, अंतराय पांच ए ३० नो, अजघन्यरस ४, च्यारेभेदे बंधाय, इहां पण जघन्यथी बीजो ते सर्व अजघन्य, ते ए २८ प्रकृतिनो जघन्य बंध जिवारे प्रकृतिनो बंध टळे तेहथी प्रथम समये छे, तेतो एक समये बंध छे, तेहथी पेहेलां अजघन्यरस बंध छे, ते अभव्यने अनादि ध्रुव छे, भव्यने घोलना परिणामे सादि छे, अने अबंध थये अध्रुव छे, तथा गोत्रकर्ममध्ये उच्चगोत्रनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, पूर्वनीपेरे जाणवो, नीचगोत्र अजघन्यरसे सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, ए च्यार ४ भेदे छे, घातीनीपेरे भावना करवी. तथा इहां पयडीने आशये अर्थ लिखीये छीये–जे वेदनीय नामकर्म ए मूळकर्मनी अपेक्षाये अनुत्कृष्ट रस च्यार ४, प्रकारे कहेवो. पण–उत्तर प्रकृतिमां वर्णादि ४, तैजस च्यार ४, ए आठनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, कहेवो, ध्रुवबंधी छे ते माटे पण जशनाम सातावेदनीयना कोईमांगे च्यार ४, प्रकार न कहेवा अध्रुव बंधी छे ते माटे. बे सादि, अध्रुवपणोज पामीये, इम गोत्रकर्मनो पिण मूळकर्मनी अपेक्षाये च्यार ४, भेद कहेवा पिण उच्चगोत्र, नीचगोत्र, ए बे अध्रुव बंधी छे ते माटे सादि अध्रुव बे भेदे पामीये इम जाणवो, एटले सात मूळकर्ममां च्यार भेद कह्या इम जाणज्यो. ॥७४॥

सेसम्मि दुहा (अनुभाग बंधो समत्तो) इग दुग, णुगाइजाअभवणंत गुणिआणू । खंधा उरलोचिअवग्गणाउ, तह अगहणंतरिया ॥७५

बंधक अधिकी बांधे. २५ नवरं-विशेष एटलो फेर छे जे बेन्द्रि
तथा असंज्ञी पर्याप्तो तेनो पाठ ते संख्यातगुणो कहेवो. ॥५०॥

तोजइ जिट्ठो बंधो. संखगुणो देसविरयहस्सिअरो ।
सम्मचउ सन्निचउरो, ठिइबंधाणुकम संखगुणा ५१

अर्थ—तेहथी नमत्त गुणठाणे वर्तमान ते मुनिपणाने उत्कृष्ट बंधक छे संख्यात गुणी स्थितिबांधे २६ ॥ केटलाएक सागर कोडी पृथक्त्व कोडाकोडीना बंधक छे, तेहथी देशविरतिने जघन्यबंधकनो संख्यातगुणी स्थिति प्रवृत्ति नो थोडी छे ते पं चवे छे ते माटे असंख्यातगुणसने टोवी छे २७ । तेहथी देशविरतिने उत्कृष्ट बंधक असंख्यात गुणीबांधे २८ । तेहथी समकितीना च्यार भेद कहेवा, तिहां समकिति पर्याप्तो जघन्य बंधक संख्यातगुणी बांधे २९ । तेहथी समकिती अपर्याप्त जघन्यबंधकने संख्यातगुणी बंधाय ३० । तेहथी समकिती अपर्याप्तो उत्कृष्ट बंधक संख्यातगुणी बांधे ३१ । तेहथी समकिती अपर्याप्तो उत्कृष्टबंधक संख्यातगुणी ३२ । तेहथी समकिती पर्याप्तो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे, तेहथी संज्ञी पर्याप्तो जघन्यबंधक संख्यातगुणी बांधे ३३ । तेहथी संज्ञी अपर्याप्तो जघन्यबंधक संख्यातगुणी बांधे ३४ । तेहथी संज्ञी अपर्याप्तो उत्कृष्टबंधक संख्यातगुणी बांधे ३५ । तेहथी संज्ञी पर्याप्तो उत्कृष्टबंधक संख्यातगुणी बांधे ३६ । एम स्थितिबंध संख्यातगुणा छे. ।५१।

सव्वाणवि जिट्ठठिई, असुहा जं साइ संकिलेसेणं ।
इअरा विसोहिओ पुण, मुत्तुं नरअमर तिरिआउं ५२

५, श्वासोश्वासवर्गणा ६, मनोवर्गणा ७, कार्मणवर्गणा ८, ए आठवर्गणा कमा–अनुक्रमे–सूक्ष्म छे–एटले औदारिकथी वैक्रिय सूक्ष्म, भाषाथी उश्वास सूक्ष्म, उश्वासथी मन सूक्ष्म, मनथी कार्मण सूक्ष्म जाणवी, अवगाहना एक वर्गणानी अंगुलने असंख्यातमे भागे छे, एकथी बीजी वर्गणानी तेहथी ऊणी अवगाहना छे, एक एक परमाणु वधारतां जे औदारिक जघन्य ग्रहणयोग्य वर्गणा तेहने अनंतमे भागे जेटला परमाणुआ तेटला परमाणुआ वधे, तिवारे औदारिक उत्कृष्ट ग्रहणयोग्य वर्गणा थाय, ते वर्गणामध्ये एक परमाणु वधे ते वर्गणा औदारिकने मोटा पडे, वैक्रियादिकने न्हाना पडे ते माटे अग्रहणयोग्य जाणवी, इम औदारिक उत्कृष्ट ग्रहणयोग्य वर्गणाथी अनंतगुणा परमाणु वधे एहवो जे खंध ते वैक्रीयनी जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा जाणवी. ते वैक्रिय जघन्य ग्रहणयोग्य वर्गणा एक एक परमाणुए वधतां (वधारतां) जिवारे वैक्रिय जघन्य वर्गणाथी अनंतमा भाग जेटला परमाणुआ वधे ते वैक्रीयने उत्कृष्ट ग्रहणयोग्य वर्गणा थाये. तेहथी उपरांत ते अग्रहणयोग्य जाणवी. ते वैक्रीय उत्कृष्ट ग्रहण वर्गणाथी अनंतगुण परमाणुआ वधे, तिवारे आहारकनी जघन्य ग्रहणयोग्य वर्गणा थाये. आहारक जघन्य ग्रहणयोग्य वर्गणाथी अनंतमे भागे वधे तिवारे आहारकनी उत्कृष्ट ग्रहणयोग्य वर्गणा थाये, ते जिवारे अनंतगुणी वधतां सीम अग्राह्य पछी तैजसनी ग्रहण योग्य थाये,ए रीते ते कार्मणपर्यंत वर्गणा केहेवी. ए मध्ये औदारिक १, वैक्रिय २, आहारक ३, तैजस ४, ए च्यार वर्गणा बादर वीसगुणी छे, अने भाषा, उश्वास, मन, कार्मण, ४ ए च्यार वर्गणा सूक्ष्म, सोलगुणी छे, स्पर्श–रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्ण,

उत्कृष्ट योगवद असंख्यातगुणो. ९ सूक्ष्म पर्याप्त जघन्य यो-
गीनो योगवद असंख्यातगुणो. १० तेहथी बादर पर्याप्त ज-
घन्य योगीनो योगवद असंख्यातगुणो, ११ तेहथी सूक्ष्म
पर्याप्त उत्कृष्ट योगीनो योगवद असंख्यातगुणो. १२ तेहथी
बादर पर्याप्त उत्कृष्ट योगीनो योगवद असंख्यातगुणो. १३ ॥५३॥

असमत्ततमुक्कोसो, पज्जजहन्नियर एव ठिइठाणा ।
अपज्जेयर संखगुणा, परमऽपजबीए असंखगुणा ॥५४॥

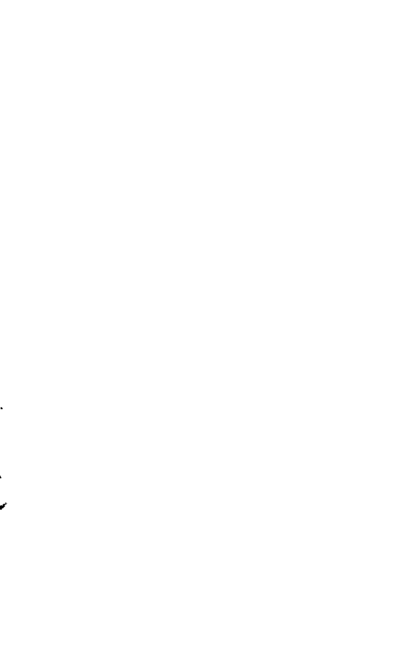
अर्थ—असमत्त-अपर्याप्त ५, नो उत्कृष्ट योगीनो योग-
वद असंख्यातगुणो. ते पछी त्रस ५, पर्याप्ता जघन्य योगीनो
योगवद असंख्यातगुणो, तेथी त्रसना ५, पर्याप्ता उत्कृष्टयोगीनो
असंख्यातगुणो योग छे ते कहे छे—बेंद्रने बोडे अपर्याप्त
तेन्द्रि उत्कृष्टयोगीनो योगवद असंख्यातगुणो १५, तेहथी अप-
र्याप्त चौरेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असंख्यातगुणो, १६, तेहथी अप-
र्याप्त असंज्ञिपंचेन्द्रिनो उत्कृष्ट योगवद असंख्यातगुणो १७
तेहथी अपर्याप्त संज्ञिपंचेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असंख्यातगुणो १८,
तेहथी पर्याप्त बेइन्द्रिनो जघन्ययोग असंख्यातगुणो १९, ते-
हथी पर्याप्त तेइन्द्रिनो जघन्ययोग असंख्यातगुणो २०, तेहथी
पर्याप्ता चौरेन्द्रिनो जघन्ययोग असंख्यातगुणो २१, तेहथी पर्याप्ता
असंज्ञिपंचेन्द्रिनो जघन्ययोग असंख्यातगुणो २२, तेहथी पर्याप्ता
संज्ञिपंचेन्द्रिनो जघन्य योग असंख्यातगुणो, २३ तेहथी पर्याप्त
बेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असंख्यातगुणो, २४ तेहथी तेन्द्रियपर्याप्ता-
नो उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणो, २५ तेथी चौरेन्द्रि पर्याप्ता-
नो उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणो, २६ तेहथी असंज्ञिपंचेन्द्रि
पर्याप्तानो उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणो, २७ तेथी संज्ञिपंचेन्द्रि

एगपएसागाढं, निअसव्वपएसओ गहेइ जिओ।
थोवो आउ तदंसो, नामे गोए समो अहिओ ॥७९॥

अर्थ—एक प्रदेश अवगाह्यो जे कर्मदल तेने आत्मा सर्व प्रदेशने बले करीने ग्रहण करे, एटले एक प्रदेशे ले तो असंख्याते लेवराय, अने एक प्रदेशनो कर्म ले तो वीर्य चलनानो कंपन सर्व प्रदेशनो थाय, ते माटे सर्व प्रदेशे ग्रहे इम कह्यो छे. ते जे आकाशप्रदेशे कर्मदल ते प्रदेशे जे आत्मप्रदेश हुवे (होये) ते आत्मप्रदेशे ग्रहे, भिन्न प्रदेशी दल न ग्रहे, हवे ते जीव एक समये आठ कर्म बांधे, ते कर्मदलिकनो वेहेंचण कहे छे. जे सर्वथी थोडा दल आउखाने भागे आवे, तेथी नाम कर्म तथा गोत्रकर्मने अधिका दल आवे पिण बेने मांहोमांहे समान आवे. ॥ ७९ ॥

विग्घावरणे मोहे, सव्वोवरिवेअणीइ जेणप्पे।
तस्स फुडत्तं न हवइ, ठिई विसेसेण सेसाणं ॥८०॥

अर्थ—नाम गोत्रथी विग्घ-अंतराय तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरणीने अधिक आवे, ए तीनने परस्पर समान आवे, एहथी मोहनीकर्मने दल अधिक आवे. सर्व सात कर्मथी उपरि कहेतां अधिका दल वेदनीय कर्मने आवे, जे कारणे तस्स-ते वेदनीय कर्मनो फुड-प्रगट उदयपणो थोडे पुद्गले थाय नहीं, जे बीजा कर्मथी वेदनीनो विपाक-व्यक्त छे, शेष जे सात कर्म तेहने जे दलनो भाग आव्यो ते स्थितिने विशेषे एटले आउखानी स्थिति थोडी तिणे सर्वथी थोडा दल आवे. तेथी



सुधीनां बंधस्थानमां जेटली प्रकृतिनुं बंधस्थान वर्ते तेटला भाग पडे, तेमां बंधन संघातनने शरीर नामकर्ममांथी भाग मले, तथा वर्णादि मूल प्रकृतिना भागमां आवेलां दलिक ते पोतानी उत्तर प्रकृतिमांज वहेंचाय. कारणके एक समये सर्व वर्णगंधादि बंधाय छे. तथा गत्यादि पींड प्रकृतिओना भागमां आवेलुं दलिक ते सर्व एकेक प्रकृतिनुंज होय, कारणके एक समयमां गत्यादि एकज प्रकृति बंधाय छे. तथा गोत्र वेदनीयने आयुष्य ए त्रण मूलकर्मनो भाग बंधाती एकेक प्रकृतिनेज मले. ए सर्व वहेंचण जे समये बांधे तेज समये करे छे एटले बंधसमयेज वहेंचे छे ते सर्व कार्य एक समये थाय छे.

सम्म देस (दर) सवविरई, उअणविसंजोअ दंस खवगेअ ।
मोह सम संत खवगे, खीण सजोगीअर गुणसेढी ८२

अर्थ—हवे ११ श्रेणि कहे छे—तिहां प्रथम सम्म—समकितनी श्रेणि १, बीजी देशविरतिनी श्रेणि २, त्रीजी सव्वविरइ—सर्व विरतिनी श्रेणि ३, चोथी अण—अनंतानुबंधी सत्तामांथी काढवा खपाववानी ते श्रेणि ४, पांचमी दंस—दर्शनमोहनी ३ खपाववा रूप श्रेणि ५, तथा छट्ठी ते मोहनीनी २१ प्रकृति शमाववा रुप आठमागुणठाणाथी दसमाना अंतलगें मोहशमक श्रेणि ६, सातमी सर्व मोह उपशमी रह्यो एहवी ११ गुणठाणा रूप श्रेणि ७, आठमी खवग—मोहनीनी २१ प्रकृति खपाववारूप आठमाथी दशमापर्यन्त श्रेणि ८, नवमी सर्वमोह खप्यो ते रुप क्षीणमोह गुणठाणारूप श्रेणि ९, दशमी सयो-

निरंतर बांधे. शुभविहायोगति १, पुरुषवेद १, शुभगत्रिक ३, उंचगोत्र १, समचौरंस १. ॥ ६० ॥

अशुहखगइ जाइ आगिइ, संघयणाहारनिरयजोयदुगं।
थिरसुभजसथावरदस, नपुइत्थीदुजुअलमसायं ॥६१॥

अर्थ—अशुभविहायोगति १, एकेन्द्रि. विकलत्रिक. ए जाति ४ अशुभ संस्थान पांच. अशुभ संघयण पांच. आहारकद्विक, नरकद्विक. २ उद्योत, आतप. २, स्थिरनाम १, शुभनाम १, जसनाम १, थावरदसक १०, नपुंसकवेद १, स्त्रीवेद १, हास्य. रति, २. अरति. शोक. २. ए ४ असातावेदनीय १. ॥६१॥

समयादंतमुहुत्तं, मणुदुगजिणवइरउरलुवंगेसु,
..चीसपरा परनी, अंतमुहु लहु वि आउ जिणे ॥६२॥

अर्थ—ए मुहूर्तातम (स्थानां ४१ कही छे) प्रकृति जघन्य एक समय बांधे. उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तमान काल बांधे, मनुष्य दुग–मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी २, जिननाम १, वज्रऋषभनाराच संघयण १. औदारिक उपांग १, ए पांच प्रकृति देवोने सागरोपम तीस निरंतर बांधे, समकिती सर्वार्थसिद्ध विमाने रह्यो निरन्तर बांधे ते अपेक्षाए उत्कृष्ट काल जाणवो, जघन्य बंधकाल. आउखा ४, जिननाम १, ए पांच प्रकृति, जघन्य पण एक अंतर्मुहूर्त कालमान जाणवो. शेष प्रकृति ६८ नो जघन्य बंधकाल एक समय जाणवो. ॥ ६२ ॥

ए स्थितिबंध अधिकार पूर्ण थयो. हवे रसबंध अधिकार कहे छे. इति स्थितिबंधः द्वा० १८.

त्व ने मिश्रपुंज अवश्य सत्तामां होय, ते बन्ने पुंजने मिथ्या त्वे प्रथम समयथी उवेलवा मांडे ते यावत् पल्योमना असंख्यातमे भागे उवेली रहे, ने ज्यांसुधी ए बे पुंज सत्तामां होय त्यां सुधी पुनः उपशम पामे नहि, ने सास्वादने पण न आवी शके, ते माटे जघन्य अंतर पण पल्योपमनो असंख्यातमो भाग पडे, तथा इयरगुण–बीजां जे गुणठाणां–मिथ्यात्व १, मिश्रादिक उपशान्तमोह पर्यंत नव १० गुणठाणे जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्तनो पडे, जे कारणे ए गुणठाणे चडतो तथा पडतो पिण आवे ते माटे तथा गुरु–उत्कृष्टो अंतर *मिथ्यात्व गुणठाणानो बे छसट्ठी–१३२ एकसोबत्रीस सागरोपमनो* उत्कृष्टो अंतर पडे, जे कारणे छासठ सागर क्षयोपशम समकितपणे रहे, पछी अंतर्मुहूर्त्त मिश्रपणे रही वळी छासठ सागरोपम क्षयोपशम समकितपणे रहे तिवारे मनुष्यभव साधिक १३२ सागर काल पर्यंत मिथ्यात्व स्पर्श्यो नही, ते मिथ्यात्वनो अंतर इयर–सास्वादनादिक दश गुणठाणानो उत्कृष्ट अंतर अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तकाल देश ऊंणो जे एटलो काल समकीतथी पड्यो मिथ्यात्वमें रही पछी पाछो समकित पामी मोक्षे जाय ते माटे अंतर कह्यो. ॥ ८४ ॥

उद्धार अद्ध खित्तं, पलिय तिहा समयवाससयसमए।
केस वहारो दीवो, दहि आउतसाइ परिमाणं ॥८५॥

अर्थ—हवे पुद्गल परावर्त्तननो मान कहेवा माटे पल्योपमनो स्वरुप कहे छे. पल्योपमना ३ त्रण भेद छे. उद्धारपल्योपम १, अद्धापल्योपम २, क्षेत्रपल्योपम ३ ए पल्योपमना ३ तीन भेद छे, तिहां उद्धार पल्योपमनो मान समये

वेद—वर्जी नहीं जे १०२ प्रकृति, तेहनो द्विस्थान–के टाणीओ, त्रिठाणीओ, चोठाणीओ, ए ३ जातिनो रस बांधे. ॥ ६४ ॥

निंबुच्छुरसो सहजो, दु तिचउ भाग कड्डिक भागंतो ।
इगठाणाई असुहो, असुहाण सुहो सुहाणं तु ॥६५॥

अर्थ—अशुभ प्रकृतिनो रस लींबडाना रससमान जाणवो. तथा शुभ प्रकृतिनो रस इक्षु शेलडीना रससमान जाणवो, तिहां सहज स्वाभाविक रस ते इकठाणीओ जाणवो, ते मध्ये बे भाग कढीये–उकाळवो एटले अर्द्ध उकाळवो, अर्द्ध रहे ते बेठाणीओ रस जाणवो. तथा त्रिठाणीओ रस ते तीन भाग करी उकाळवो ने १ भाग रहे ते त्रिठाणीओ रस, अने चउभाग–ते मध्ये च्यार ४ भाग उकाळवो अने एक भाग रहे ते चोठाणीओ रस जाणवो, ए अशुभ कर्मनो जेम रस वधे तेम अशुभ थाय, शुभ कर्मनो रस शुभ थाय, ए सर्व अशुभ कषाये अशुभ रस बांधे, शुभ कषाये शुभ रस बांधे. ॥ ६५ ॥

तिरिदुग थावरायव, सुरमिच्छा विगल सुहुम निरयतिगं ।
तिरि मणुआउ तिरि नरा, तिरि दुग छेवट्ट सुरनिरया ॥ ६६ ॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसबंध स्वामी कहे छे—तीव्र उत्कृष्ट संक्लेशे ... १, थावर नाम १, आतप नाम, ए तीन

उरलाइ सत्तगेणं, एग जिओ मुअइ फुसिय सव्वअणु जित्तिअ कालि स थूलो। दव्वे सुहुमो सगऽन्नयरा॥८७॥

अर्थ—हवे द्रव्य पुद्गल परावर्त्तननो मान कहे छे. उरलाइ-औदारिकादिक सात वर्गणा, आहारक विना, ते एक विना ते एक जीव सर्व पुद्गल ए ७ सात वर्गणाए फुसीय-स्पर्शीने मुइय-मूकया जे सर्व परमाणु पिण अनुक्रमे नहीं जिवारें जे फरसे ते तिवारे गणीये तेहनो जे काल लागे ते द्रव्ये बादर पुद्गल परावर्त्तन थाये. तथा सर्व परमाणु सगन्नयरा-सात वर्गणापणे अन्यतर एक एक वर्गणापणे फरसे ते विचें बीजी वर्गणापणे फरसे ते स्पर्शना गणवी नही, इम अनुक्रमें एक एक वर्गणापणे सर्व पुद्गल फरसी मुके तिवारे द्रव्यथी सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तन थाये. ॥ ८७ ॥

लोगपएसोसप्पिणि, समयाअणुभागबंधट्ठाणा य। जह तह कममरणेणं, पुट्ठाखित्ताइथूलियरा ॥८८॥

अर्थ—लोकप्रदेश सर्व स्पर्शे क्षेत्रपुद्गलपरावर्त, उत्सर्पिणी अवसर्पिणीना समय स्पर्शे ते काल पुद्गल परावर्त, अनुभाग बंधनां स्थानक स्पर्शे भावपुद्गलपरावर्त्त, ते जहतह-जेम तेम स्पर्शे तो ए ३ तीने थूल-बादर पुद्गलपरावर्त्त, अने अनुक्रमे स्पर्शे तो सूक्ष्म थाये ते देखाडे छे. जे लोकना प्रदेशनां लोकना अंतप्रदेशे मरण पामे, इम जेम तेम आगल पाछल करीने सर्वो लोक मरणे करी स्पर्शे तिवारें क्षेत्रथी थूल-बादर पुद्गलपरावर्त्तन थाये, तेहज जे लोकने अंतप्रदेशे मरण करी वली ते प्रदेशथी टगते प्रदेशे मरण करे ते मरण गणवो, इम

किनी सुरा-देवना उत्कृष्ट रस बांधे, तथा अमराउ-देवनाउ आउखो उत्कृष्टरसे अप्रमत्त गुणठाणे बांधे, शेष ६४ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस च्यार ४ गतिना मिथ्यात्वी तीनकषायी बांधे. ए उत्कृष्ट रसना स्वामी कह्या. ॥ ६८ ॥

थीणतिगं अण मिच्छं, मंदरसं संजमुम्मुहो मिच्छो।
बियतियकसाय अविरय, देसपमत्तो अरइ सोए॥६९॥

अर्थ—हवे जघन्य रसना स्वामी कहे छे—थिणद्धी तीन निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला २, थिणद्धी ३, ए तीन, अनंतानुबंधी ४, मिथ्यात्वमोहनी १, ए आठ प्रकृति मंदरसे संयमने सन्मुख मिथ्यात्वी बांधे, एह प्रकृतिना बंधकमें विशुद्ध परिणामी एहिज जीव छे, बियकषाय-बीजो कषाय अविरय-अविरति समकीती बांधे, त्रीजो कषाय जघन्य रसे देशविरति बांधे, अरति, शोक, ए बे प्रकृति प्रमत्त गुणठाणे मुनि जघन्यरसे बांधे. ॥ ६९ ॥

अपमाइ हारगदुगं, दुनिद्द असुवन्न हास रइ कुच्छा।
भयमुवघायमपुव्वो, अनियट्टी पुरिससंजलणे॥७०॥

अर्थ-अप्रमत्त गुणठाणाना आदि समये आहारकदुग जघन्यरसे बांधे, बे निद्रा, निद्रा १, तथा प्रचला २, अशुभवर्णादि ४, हास्य, रति, दुगंछा, भय, उपघात, ए इग्यार ११ प्रकृतिनो अपूर्वकरण गुणठाणे जघन्यरस बांधे, पुरुषवेद, संजलणा ४, ए पांच प्रकृति अनिवृत्तिबादर गुणठाणे जघन्यरसे बांधे. ॥ ७० ॥

पर्याप्तो कुणई–करे, प्रदेशबंध उत्कृष्टपणे बांधे, एटले थोडी प्रकृति बांधे तेहने भाग थोडा. उत्कृष्ट योगबलवंत प्रदेश लेवे, घणा ते माटे, उत्कृष्टयोग वाला जे जीव ते अने अतिशवे अल्प प्रकृति बंध करे, जहन्नयं–तेहथी विपर्यासे जघन्य प्रदेश बांधे, जे प्रकृति घणी बांधतो हुवे, योग मंद हुवे, असंज्ञि पर्याप्तो हुवे ते प्रदेशबंध जघन्य बांधे इम भाववो. ॥८९॥

मिच्छ अजय चउ आऊ, बि ति गुणविणु मोहि सत्त मिच्छाइ ।
छण्हं सतरस सुहुमो, अजया देसा बि ति कसाए॥९०॥

अर्थ—हवे प्रदेशबंध उत्कृष्टना स्वामी कहे छे–मिथ्यात्व गुणठाणे अजयचउ–चोथा गुणठाणाथी मांडी ४ च्यार गुणठाणा एटले मिथ्यात्व १, अविरति १, देशविरति १, प्रमत्त १, अप्रमत्त १, ए पांच गुणठाणे आउखा कर्मनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे, बीजा त्रीजा गुणठाणाविना मिथ्यात्व १, अविरति १, देशविरति १, प्रमत्त १, अप्रमत्त १, अपूर्व १, अनिवृत्ति १, ए ७ सात गुणठाणे मोहनीकर्मना उत्कृष्ट प्रदेश बांधे. मूल कर्म छन्नो, तथा उत्तर प्रकृति ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी ४ च्यार, अंतराय पांच, सातावेदनी १, उच्चगोत्र १, यशनाम १, ए १७ सत्तर प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्म संपराय गुणठाणे बांधे, तथा अविरति गुणठाणे बीजी चोकडीनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे, देशविरतित्रीजी चोकडीनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे. ॥ ९० ॥

पणअनिअट्टी सुखगइ, नराउ सुर सुभगतिग विउविदुगं
समचउरंस मसायं, वइरं मिच्छो व सम्मो वा ॥९१॥

तस वन्न तेअ चउ मणु, खगइ दुग पणिंदि सास परघुच्च
संघयणा गिइ नपु थी, सुभगिअर ति मिच्छचउ
गइआ ॥७३॥

अर्थ—त्रस, बादर, प्रत्येक, ए ४, तथा वर्णादि ४, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ४ मणुअदुग-मनुष्यद्विक २, खगइदुग-शुभ, तथा अशुभविहायोगति, पंचेन्द्रीजाति, श्वासोश्वास, पराघात, उच्चैर्गोत्र, संघयण ६, संस्थान ६, नपुंसकवेद १, स्त्रीवेद १, सुभगत्रिक ३, इअर-दुर्भगत्रिक ३, एवं ४० चालीस प्रकृति मिच्छ-मिथ्यात्वी च्यार गतिना जघन्य रसे बांधे इहां भावना करीये छीये-शुभ प्रकृति जिहां प्रथम बंधाय तिहां उत्कृष्टरसे बांधे, अने अशुभप्रकृति प्रथम बंधाये तिहां उत्कृष्टरसे बांधे. अने जिहां रसे तिहां जघन्यरसे बांधे, ए रीते विचारवो. ॥ ७३ ॥

चउ तेय वन्न वेअणि, अनामणुक्कोस सेस धुवबंधी।
घाईणं अजहन्नो, गोए दुविहो इमो चउहा ॥७४॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसबंधना भांगा कहे छे-चउतेय तैजस च्यार ४ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ए ४, तथा वर्णादि ४, च्यार ४, वेदनीय शब्दे साता वेदनीय, नाम कहेतां यशनाम अणुक्कोस-अनुत्कृष्ट बांधेनो चउहा-च्यारभेदे-सादि १, अनादि २, ध्रुव ३, अध्रुव ४, ए च्यार भेदे बांधे. तिहां ए प्रकृतिनो उत्कृष्टरस क्षपकश्रेणि ए चतो जीव बांधे, तथा बीजा जीव सर्व अनुत्कृष्टरस बांधे, ते अभव्यने अनादि ध्रुव छे. भव्यने पोतना परिणामे सादि छे,

प्रकृतिनो जघन्य प्रदेशबंध सूक्ष्म निगोदियो अपर्याप्तो बांधे एहने बंध स्वामीत्वे पण १०९ नो बंधज, शेषनो बंध नथी, जघन्ययोगी माटे जघन्य प्रदेश बांधे. ॥ ९३ ॥

दंसणछग भय कुच्छा, बि ति तुरिअ कसाय विग्घ-नाणाणं।

मूलछगे ऽणुक्कोसो, चउह दुहा सेसि सव्वत्थ ॥९४॥

अर्थ—दर्शनावरणी ६–चक्षु दर्शनावरणी १, अचक्षु दर्शनावरणी २, अवधि दर्शनावरणी ३, केवल दर्शनावरणी ४, निद्रा ५, प्रचला ६, ए छ भय १, दुगंछा २, बीजी चोकडी ४, त्रीजी चोकडी ४, चोथी चोकडी ४, पांच अंतराय ५, पांच ज्ञानावरणी ५, ए उत्तर ३० त्रीस मूळ ६ छ कर्मनो अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध चउहा–सादि १, अनादि २, ध्रुव ३, अध्रुव ४, ए ४ च्यार भेदे जाणवो. एहीज ३० त्रीस प्रकृतिनो जघन्यबंध, अजघन्यबंध, उत्कृष्ट प्रदेशबंध, सादि, अध्रुव, ए बे भेदे जाणवो, तथा शेष ९० नेवुने प्रकृतिनो, जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, ए ४ च्यार प्रकारनो प्रदेशबंध सादि, अध्रुव, भेदे पामीये, तिहां ७३ तो अध्रुवबंधी छे ते माटे बे बे पामीये, अने मिथ्यात्व १, अनंतानुबंधी ४, थीणद्धी ३, नामनी ध्रुवबंधी नव ९ ए १७ प्रकृति ध्रुवबंधी छे पिण प्रदेशबंध उत्कृष्टादिक कोइ ध्रुव नथी. ३० त्रीस प्रकृतिनो अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध, गुणठाणे चड्या विना जीवने ध्रुवबंध छे ते माटे. ॥ ९४ ॥

अर्थ—नेनम्मि-नैनमादि १०, प्रकृतिनो उत्कृष्ट, सप्त-द, ए तीन दे, भांगे रस बांधे, ते दुवा सादि, अध्रुव, ए बे भेदे बांधे, जे एहनो बंधकाल अल्प छे ते माटे, तथा घाती ३८ नो उत्कृष्ट. अनुत्कृष्ट, जघन्यरस. सादि, अध्रुव बे भेदे बंधाये. तथा उच्चगोत्रनो, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य-रस सादि अध्रुव बे प्रकारे बंधाय छे, तथा नीचगोत्रनो उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य ए तीन भांगे रस बांधे ते सादि अध्रुव बांधे. तथा शेष प्रकृति ७२ नो जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट ए च्यारे ४, प्रकारनोरस ते सादि, अध्रुवभेदे बांधे, इहां पचडीने आगदे शेषप्रकृति ७४ कहे छे, गोत्रनी प्रकृति नि अध्रुव बंधी छे ते माटे. तथा उपघात १, ध्रुवबंधी छे, पं ए प्रकृतिबंधे ध्रुवबंधी छे ते माटे ए अनुभाग रसबंधनो अधिकार कह्यो.

हवे प्रदेशबंध अधिकार कहे छे—तिहां प्रथम वर्गणानुं स्वरूप कहे छे—इग—एकपरमाणु दुग—बे परमाणुआनो स्कंध, इम अनंतक, इम संख्यातप्रदेशक, असंख्यातप्रदेशक, अनंतपरमाणु मिले ते अभव्यथी अनंतगुणा मिले जे स्कंध नीपजे तिवारे उरलोचिअ—औदारिकने उचित कहेतां ग्रहेवा योग्य वर्गणा जघन्य थाय, नह—निश्चीज अंतरिन—पूर्वी पाछली ते सर्व अग्रहण जाणवी. ए औदारिक वर्गणा ग्रहण योग्य वीसगुणी छे. ॥ ७५ ॥

एमेव विउव्वा हार, तेय भासा णुपाण मण कम्मे।
सुहुमा कमावगाहो, ऊणूणंगुल असंखंसो ॥७६॥

अर्थ—एमेव—इमही विउव्व—वैक्रिय वर्गणा, बीजी २, ने त्रीजी आहारक वर्गणा ३, तैजस वर्गणा ४, भाषावर्गणा

अर्थ—हवे श्रेणिनो स्वरुप कहे छे–चौदराज . प्रमाण लोक छे, बुद्धियें करीये तिवारें सातराज प्रमाण घन थाय. तेहनी दीर्घ लांबी एकप्रदेशनी श्रेणिने सेढी कहीये, ते सेढीनो वर्ग एटले तद्गुणो–गुणाकार करीये ते प्रतर थाय, तेहने वर्ग करे घन थाय. ॥ ९७ ॥

अणदंस नपुंसि त्थी, वेअ छक्कं च पुरिसवेअं च।
दो दो एगंतरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥९८॥

अर्थ—हवे उपशम श्रेणि कहे छे–इहां उपशम श्रेणि उपशम समकिती लीधो छे, ते कहे छे–प्रथमथी चोथाथी मांडी सातमा गुणठाणा सीम अनंतानुबंधी ४ उपशमावे, पछे दर्शन मोहनी ३ तीन उपशमावे, पछी आठमे गुणठाणे आवी स्थिति घातादिक पांच ५ करण करीने नवमे गुणठाणे आवी नपुंसकवेद उपशमावे, १ पछी स्त्रीवेद उपशमावे १, पछी हास्यषट्क ६ उपशमावे, पछी पुरुषवेद उपशमावे, पछे बे बे कषाय उपशमावे, पछे एक उपशमावे (?) आंतरे अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी क्रोध २, उपशमावे, पछे संजलणो क्रोध, १ उपशमावे पछे अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मान उपशमाव्या पछी संजलनमान उपशमावे पछी अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी माया उपशमावे, पछी संजलननी माया उपशमावे, पछी प्रत्याख्यानी अप्रत्याख्यानी लोभ उपशमावी, संजलना लोभनी स्थिति करे, तेहनो अनंतमो भाग संजलना लोभनो ते दसमे गुणठाणे उपशमावे ए रीते सरखुं सरखुं उपशमावे पछी उपशांतमोही थाय. इहां उपशमश्रेणिनो क्रम कहे छे. ॥ ९८ ॥

ए ४ छे शेष ४ नथी. तैजसवर्गणा किहांएक सूक्ष्म कही छे. ॥ ७६ ॥

इक्किक्कहियासिद्धा–णंतंसो अंतरेसु अग्गहणा।
सवत्थ जहन्नुचिया, नियणंतंसाहिआ जिट्ठा ॥७७॥

अर्थ—जे वर्गणा मोटी थाये ते पिण सिद्धने अनंतमे भागे जेटला परमाणुआ थाये एक वर्गणाना, एम अनंती-वर्गणा जे एक समयमां अनंत प्रमाण दलिक थाय एह अनंता दलिक एक समय मध्ये जीव ग्रहण करे, ग्रहणने आंतरे विचाले ते अग्रहण जाणवी, कार्मण उत्कृष्ट थाय पिण अधिका ते अग्रहण जाणवा. सर्व जघन्य वर्गणाथी निय–पोताने अनंतने अंशे अधिक ते उत्कृष्ट वर्गणा जाणवी. ॥ ७७ ॥

अंतिम चउफासदुगंध, पंचवन्नरस कम्मखंधदलं।
सवजियणंतगुणरस, अणुजुत्त मणंतयपएसं ॥७८॥

अर्थ—हवे कर्मपने जे परमाणुआ ग्रहवाये तेहनो स्वरूप कहे छे—अंतिम छेहला जे च्यार स्पर्श—उनो, ठन्हो, लूखो, चीकणो. स्निग्ध ते गंध तथा पांच वर्ण तथा पांच रस संयुक्त गोल गुणी खंध तेहनो समूह ते कर्मपने लेवा योग्य दल जाणवो. ते दलना जे परमाणुआ तेमांहे जे रस कषायथकी ते सर्व जीवथी अनंतगुणो रस एक एक परमाणुमां हुवे. ते अणुयुत्त–परमाणुआयुक्त. अनंत प्रदेशी कहेतां अनंता परमाणुआनो खंध ते कर्मपने लेवाने योग्य जाणवो. ॥ ७८ ॥

खपावे, पछी बारमाने अंते अंतराय पांच, ५, ज्ञानावरणी, ५; दर्शनावरणी च्यार, ४, ए १४ चौदने खपे आत्मा नाणी-केवलज्ञानी थाये-लोकालोक प्रत्यक्ष देखे, ए देवेन्द्रसूरि आचार्य महाराजे लिख्यो शतक नामे कर्मग्रंथ पिण आप-पोताने सरणहा-संभारवाने अर्थे. इति पंचम कर्मग्रंथ टबार्थः समाप्तः १००

अथ टबाकार प्रशस्तिकार काव्यम्.

श्रीमत् पाठक राजसारकृतिनां शिष्या जिनाज्ञापराः।
श्रीमत् पाठक ज्ञानधर्मप्रवरां श्रीदीपचन्द्राह्वयाः।
अर्हन् मार्गसुपाठका गुणलया तद्वाक्यसेवानुगः।
सचार्थं गणिदेवचन्द्रमतिमान् संदर्शयन् शोभते॥१॥ इति॥५॥

संवत् १८६८ श्रावण शुक्लाष्टम्यां (श्रावण सुदि ८) रविवासरे लिपिकृते सकल पंडित सिरोमणि भट्टारक तपागच्छाधिराज पुरंदरप्रभु भट्टारक श्रीश्रीश्री १०८ श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री कीर्तिरत्नसूरीश्वरान् चिरंजीवी तत्शिष्य पं० बुद्धिरत्नेन लिपिकृते तत् शिष्य मुनि कान्तिरत्न पठनार्थं पठितः श्रीमूर्यपुरवरे श्री शान्तिनाथचरणप्रसादात् श्रीकल्याणमस्तु. (ए जे उपरथी प्रेसकॉपी थइ ते प्रति लिख्यानी शाल विगेरे तेमांथी लीधेल छे.)

इतिश्रीपंचम शतकाख्य कर्मग्रंथस्यटबार्थः समाप्तः॥

नाम गोत्रनी स्थिति घणी ते माटे घणा दल आवे, इहां कोई पूछरो जे आउखानी नामनी स्थिति संख्यातगुणी छे तो ते संख्यातगुणो भाग कां न कह्यो ? इहां उत्तर जे ए दलिक भोगवनां काल घणो लागे, आउखाना दलिक भोगवनां काल थोडो लागे ते माटे, तथा संक्रम्या दल ७ मध्ये घणा छे, घणी स्थिति सीम पहोंचे पण दलिक अधिका होवे पण संख्यातगुणा न होवे एम सर्व भाववो ए अर्थ. ॥ ८० ॥

निअजाइलद्धदलिआ–णंतंसो होइ सवघाईणं ।
बज्झंतीण विभज्जइ, सेसं सेसाण पइसमयं ॥८१॥

अर्थ—हवे उत्तरप्रकृतिनो वहेंचवो कहे छे. तिहां निय–पोतानी जे जाति ज्ञानावरणी आदिक तेहने भाग प्रमाण लीधा जे दल तेहनो अनंतमो भाग ते सर्वघातीने आवे, शेष रहे ते घातनी प्रकृतिने आवे, तिहां जे ज्ञानावरणीने भागे आव्या जे दल तेहनो अनंतमो भाग अति रसवंत ते केवलज्ञानावरणीपणे परिणमे, शेष रह्या जे दल ते च्यार ४ भागे मतिज्ञानावरणी प्रमुखने आवे, तथा दर्शनावरणीने ६ भागे आवे, शेष रह्यो ते चक्षुदर्शनावरणी प्रमुखने ३ भागे आवे. मोहनीने जे भाग आव्यो तेहना बे भाग थाय, ते-मांथी एक भागनो तेने मळे तथा मोहनीनुं अर्थ दल मिथ्या-त्वने मळे छे, ए प्रमाणे तेमांहे जे स्थानके जेटला बंधाता हुवे तेटले भागे आवे, शेष रह्यां जे ते जेटली देशघाती बं-धहुना ५ भाग पडे, अंतरायने सर्वघाती नथी, तिने एहना ५ भाग पडे. नामकर्मनो भाग जे वाडे २३ थी ३१

परंतु पुण्यानुबंधी पुण्य विना श्रीजिनवाणी सांभळवानी रुचि जीवने थती नथी, केम जे सुठाम, सुगाम, सुजात, सुभ्रात, सुतात, सुमात, सुव्रात, सुकुल, सुबल, सुस्त्री, सुपुत्र, सुपात्र, सुक्षेत्र, सुदान, सुमान, सुरुप, सुविद्या, सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, सुवेश, सुदेश, ए बावीश प्रकारनी उत्तम जोगवाइ सुपुण्य विना न पमाय, अने ते पुण्यबंध तो सत्संगसेवन तथा कुसंगना त्यागवडेज थाय छे; माटे सुमति, शीलवंत, संतोषी, स्वजन, साचाबोला, सत्पुरुष, सुमेला, सुलक्षण, सुकुलीन, गंभीर, गुणवंत, गुणज्ञ, एहवा पुरुषोनो संग करीए तो धर्म पामीए; तथा चुगल, चोर, छलग्राही, अधर्मी, अधम, अविनीत, अधिकबोला, अनाचारी, अन्यायी, अधीर, अधुरा, निःस्नेही, कुलक्षणा, कुबोला, कुपात्र, कूडाबोला, कुशीलिया, कुशासनी, कुलखंपण, मूंडा, मूंछ एहवा पुरुषोनो संग न कीजे.

प्रश्नोत्तर रत्नसार.

१ प्र०—जीव धर्म केम पामे ?

उ०—जीव त्रण प्रकारे धर्म पामेः—१ गुरुना उपदेशथी, २ पूर्वभवना अभ्यासथी, ३ सहज स्वभावे वैराग्यादि संयोगे पामे एम उपदेशसार नंदीपच्चीशीमां कह्युं छे.

२ प्र०—अभ्यास केटला प्रकारना छे ?

उ०—चार प्रकारनाः—१ सूत्रअभ्यास, २ अर्थ अभ्यास, ३ वस्तु अभ्यास, ४ अनुभव अभ्यास.

गीकेवली तेरमागुणठाणा रुप श्रेणि १०, इग्यारमी अयोगीकेवलीमें चौदमा गुणठाणारुप श्रेणि ११ ए इग्यारे श्रेणि जाणवी. ॥ ८२ ॥

गुणसेढी दलरयणा, णुसमयमुदया दसंखगुणणाए।
एअगुणा पुण कमसो, असंखगुण निज्जरा जीवा ॥८३॥

अर्थ—गुणसेढी—गुणश्रेणि ते दलरचना कहीये, दलनो वहेंचवो एटले दलसंचयपणे हतो ते चल करी जुदा जावा योग्य करवा ते दलरचना कहीजे, तथा श्रेणिमध्ये जे दल उदय आवे ते प्रथम समयथी बीजे समये असंख्यातगुणा दल उदय करे अने श्रेणि वर्त्तते जीवने ज्ञानादिकने असंख्यात गुणा वधारे निरावरण थावे. वळी श्रेणि चड्यो जीव प्रतिसमये असंख्यातगुण निर्जरा करे, इम श्रेणि पेहेलीथी बीजीए असंख्यातगुणी निर्जरा थाय, इम सर्वश्रेणिमां जाणज्यो. हवें गुणठाणानो अंतर कहे छे—१४ चौद गुणठाणामे बारमो, तेरमो, चौदमो गुणठाणो जीव एकवार पामे, बीजीवार कोइ जीवने रपर्शवो न पडे, तिणे तेहने अंतर न कहेवाये, अने ११ गुणठाणा एक जीव अनेकवार पामे ते माटे ते इग्यार गुणठाणानो अंतर कहुंछुं. ॥ ८३ ॥

पलियासंखंसमुहू, सासणइअरगुणअंतरंहस्सं।
गुरुमिच्छि बे छसट्ठी, इयरगुणे पुग्गलद्धंतो ॥८४॥

अर्थ—पलियासंखंस—पल्योपमनो असंख्यातमो भाग मासाणि—सास्वादन गुणठाणानो अंतर हस्सं—जघन्य आंतरो छे जे कारने सास्वादनथी मिथ्यात्वे आवेला जीवने सम्यक्-

उ०—ज्यां मिथ्यात्वनी पुष्टि न थाय, मार्ग विरुद्ध न प्रकाशे, आत्मस्वरूप उपादेयरूपे प्रकटे, तथा शुभ क्रियाने अत्यादरपणे प्ररूपे, शुभ क्रियाना फलनी वांछा न करावे, पापनी आलोयणा टाळे, [illegible] करावे इत्यादि आगमोक्तरीते शुद्ध प्ररूपणा ते देशना कहीये.

६ प्र०—शुभ क्रिया अत्यादरपणे सेवनी, पण तेना फलनी वांछा न करवी तेनुं रहस्य शुं ?

उ०—जो पुण्यादिक शुभ व्यापार शुभयोगे न आदरे तो मार्ग विरुद्ध थाय, [illegible] पण [illegible] मार्गे न जोडाय. अने जो पुण्यना फलनी वांछा करे तो निदान (नियाणा) रूप मिथ्यात्व परिणमे, [illegible] शुभ क्रिया [illegible] [illegible] मुनिराज पासे; ए रहस्य छे.

७ प्र०—हेय, ज्ञेय, उपादेय एटले शुं ?

उ०—[illegible] हेय, यथार्थ ज्ञेय, [illegible] उपादेय [illegible] [illegible]

८ प्र०—[illegible] विषे [illegible] कहो ?

दये) वेदीने खेरवे; पण दृष्टिमान् ज्ञानी तो, ते कर्मोने समभावे भोगवतां थकां उदयने निष्फळ करे छे; आलोइ, निंदी, पश्चात्ताप करे, तेवारे अल्पबंध थाय, बहु निर्जरा करे; ते माटे बंध निवारवाने अर्थे उदय निष्फळ करे, एटले कर्मनो विपाक समभावे भोगवे; अने शुद्धोपयोगे स्वरूप विचारे त्यारे बंध अल्प करे.

११ प्र०—धर्म कथा केटला प्रकारनी ?

उ०—चार प्रकारनी:—१ आक्षेपिणी, २ विक्षेपिणी, ३ निर्वेदिनी ४ संवेदिनी; त्यां सत्य मार्गने विषे जीवने जोडावे ते आक्षेपिणी, अने मिथ्यात्व मार्गथी निवर्तावे ते विक्षेपिणी, तथा निर्वेदिनी ते वैराग्य उपजावे एटले संसार जे विषयकषायनी मलीनपरिणति ते थकी जीवने उद्विग्न रखावे, अने संवेदिनी ते मोक्षाभिलाष उत्पन्न करावे.

१२ प्र०—भावथकी नव निधान कयां ?

उ०—केवळीआश्रिने नव क्षायिक लब्धि उपजे ते नव निधान जाणवां; अने मुनिआश्रि पांच इंद्रियना विषयना विकारथकी, तथा क्रोधादिक चार कषाय थकी जे निवर्त्या ते महाभागने भाव थकीअखुट नव निधान प्रगट्यां जाणवां.

१३ प्र०—पांच इंद्रियोना विकार मटे त्यारे कया गुण निर्मळ थाय ?

उ०—चक्षु इंद्रियनो विकार मटे त्यारे हृदयने विषे निर्मळ

णति वधे, चतुर्गति भ्रमण विस्तार पामे एवी सावद्य देशना ते गति देशना, जे उपदेशथकी जीवने नाना प्रकारनां कर्मोनो बंध पडे एवी प्रवृति करवानुं मन थाय ते बंध देशना, जे सांभळवाथी जीव वैराग्य परमरस पामी, यथार्थ बोध लही पोतानुं शुद्ध आत्मस्वरूप जे सकळ कर्मथी रहित मोक्षरुप छे, ते निपजाववानी तीव्र रुचि प्रगटे ते मोक्ष देशना कहिए.

१७ प्र०–अनर्थ दंडना चार प्रकार कया ?

उ०–१ अपध्यान एटले आर्त अने रौद्र ध्यान, २ प्रमादाचरण, ३ हिंसकशस्त्रप्रदान, अनर्थ दंड एटले जीव हिंसानां साधनो शस्त्रादि पूरां पाडवां ते, ४ पापनो उपदेश देवो.

१८ प्र०–आठ प्रकारना वचन परिसह कया ?

उ०–१, हीलणा परिसह ते मुनिनी पूर्व गृहस्थाश्रम अवस्था हीन जात्यादि दूषणो काढी कठोर मर्म वचने साधुने हीले निंदे ते; २ खिंसणा परिसह ते साधुना पूर्व कृत कर्म (जनित) अवगुण उघाडा पाडी निंदे, ३ निंदण परिसह ते साधुपुरुषनो निरादर करे दुगंछादि दर्शावे, ४ गर्हणा परिसह ते साधुओना समक्ष छता अछता अवगुणो बोले, ५ ताडणा परिसह ते साधुने मारे, कुटे, ६ तर्जना परिसह ते साधु प्रत्ये अतिशय आक्रोश करी अत्यंत कठोर वचन कहे, भयंकरता दर्शावे, ७ पराभव



तन्मय ध्यान करतां थकां शुं? शुं? गुण निपजे ते भिन्न भिन्न कहो?

उ०—अरिहंतादि पंचपरमेष्ठिमहाराजनुं स्मरण करतां उपकर्मनुं निवारण थाय; अरिहंतादिनुं द्रव्यथी ध्यान करे तो द्रव्यथी उदय आवतां सर्व पाप निवारण थाय, विपाक वेदना पण अल्प थाय, इत्यादि घणो गुण निपजे, सर्व द्रव्यपापनो नाश थाय, एम आत्मा आत्मानुं स्मरण करे, ध्यानगत [illegible] पोताने स्वरूपे परिणमे, त्यारे सर्व कर्मनो नाश करे, एम आत्मस्मरण तथा निमित्तस्मरणनुं [illegible] जाणवुं; हवे अरिहंतने संभारतां, समरतां, परिणमता आत्माने जे गुण निपजे ते कहिए छीए, १. श्री [illegible] रागद्वेषरूप भावशत्रु तेनो नाश थाय, अने वीतराग स्वरूप प्रगट थाय, २ तेम सिद्धपदनुं [illegible] ध्यान धरतां आत्मा निर्मल [illegible] पामे, ३ तेम आचार्यपदनुं ध्यान धरतां [illegible] [illegible] मरतंन शुद्ध उदय आवे, [illegible] गणधरादिक पामे, ४ उपाध्यायपदनुं ध्यान धरतां [illegible] सूत्रनुं सुगम थाय, [illegible] [illegible] तरे, साधुपदनुं ध्यान धरतां [illegible] साधना सुगम थाय, [illegible] [illegible] [illegible] सुगम थाय, [illegible] पद पामे; ६, [illegible] [illegible] करे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अणमिच्छ मीससम्मं. तिआउ इग विगल थीण तिगुजोअं।
तिरि निरय थावर दुगं, साहारायव अड नपुं त्थी ॥९९॥

अर्थ—जे कोइ जीव लावे स्वरूप रूमे संभावेतिम आ-त्मलंबी पहेलो चोथे तथा पांचमे, छट्ठे, सातमे गुणठाणे क्षपो-पशम, अनंतानुबंधी ४ खपावे, पछी मिथ्यात्वमोहिनी खपावे, पछी मिश्रमोहिनी खपावे, पछी समकितमोहनी खपावे, पछी देवता १, नारकी १, तिर्यंच १, नां आउखां खपावे, खपावीने नवमे गुणठाणे चढे पछी नवमाने पहेले भागे इग-एकेन्द्री जाति, विगल ३, थीणद्धी ३, उद्योत १, तिर्यंचद्विक २, नरक-द्विक २, थावर, सूक्ष्मद्विक २, साधारण १, आतप १, ए १० सोल प्रकृति नवमाने पहेले भागे खपे, अट्ट-आठ कषाय खपावे, बीजे भागे, तेवार पछी चोथे भागे नपुंसकवेद खपावे, पांचमे भागे स्त्रीवेद खपावे. ॥ ९९ ॥

छग पुं संजलणा दो, निद्दाविग्घावरण खए नाणी।
देविंदसूरि लिहिअं, सयगमिणं आय सरणट्ठा ॥१००

इति शतकनामा पंचमकर्मग्रंथः समाप्तः ॥ ५ ॥

अर्थ—पछे छट्ठे भागे हास्य ६ छ खपावे, पछी पुरुष-वेद खपावे, पछी आठमे भागे संज्वलन क्रोध खपावे, नवमे भागे संज्वलन मान खपावे, नवमा गुणठाणाने अंते संज्वल-ननी माया खपावी दसमे सूक्ष्मसंपरायगुणठाणे आवी संज्वल-ननो लोभ खपावी बारमे गुणठाणे आवे तिहां बे निद्रा

श्रीमद् देवचंद्रजी कृत

विचार रत्नसार.

प्रणम्य श्रीमहावीरं, शंकरं परमेश्वरं ।
विचाररत्नसारस्य, क्रियते बालबोधकं ॥ १ ॥

श्री जीनवाणीमहिमा वर्णन.

श्रीवीतरागनी वाणी भव्यचेतकपाली, संसारसमुद्र तारिणी, महामोहान्धकार दिनकरानुकारिणी, क्रोधदावानलोपशमिनी, मुक्तिमार्गप्रकाशिनी, कठिनमलप्रटायिनी, मिथ्यात्वछेदिनी, वनपाटिनी, पापविशोधिनी, मन्मथस्तंभिनी, अमृतरस आस्वादिनी, त्रिभु-हृदय आल्हादिनी, आगमोद्गारिणी, चतुर्विध संघमनोहारिणी, भव्यजनकर्णामृतस्राविणी, सकल कुमतिनिवारिणी, सर्वसंशय निवारिणी, योजनप्रमाण विस्तारिणी, एहवी श्रीवीतरागनी वाणी महा प्रभाविक अतिशयवंत जाणवी.

ते वाणी भव्य प्राणीओए अवश्य सद्गुरु पासे सांभळवी, केमके १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बंध, ९ मोक्ष, १० धर्म, ११ अ-धर्म, १२ हेय, १३ ज्ञेय, १४ उपादेय, १५ निश्चय, १६ व्यवहार, १७ उत्सर्ग, १८ अपवाद, १९ आस्रव, २० परि-स्रव, २१ अतिचार, २२ अनाचार, २३ अतिक्रम, २४ व्यतिक्रम, इत्यादि सांभळ्या विना शासना भेद न जणाय.

३ प्र०—जीवने पुन्य, पाप, अने वैर केवी रीते बंधाय छे, अने ते केवा फळरूपे परिणमे छे ?

उ०—जीवने दयावडे पुन्य उपजे छे, अने हिंसावडे पाप निपजे छे; हरायना जीवने हणवाना परिणाम थाय, त्यां पाप निपजे, ते हरायना जीवने विकल्प योगे हणतां, वैर अने पाप बे निपजे; त्यां पापना उदये अशाता, आकुळता, उद्वेगता, अरतिना उपजे; तथा वैरना योगे ते जीव आवी दबावोने पीडे.

४ प्र०—धर्म, पुन्य, अने पाप कर्म शाथी उपजे ?

उ०—त्रण प्रकारे:—१ दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशमथी धर्म उपजे, २ चारित्रमोहनीयना उदयथी पुन्य पाप उपजे; तेमां अविरतिनो उदय मंद थाय तथा क्षयोपशम थाय त्यारे विरतिनो उदय थाय, ते वारे पटरायना जीव उपर दया परिणाम उपजे; तेथी पुन्य उपजे, ३ अविरतिना तीव्र उदये पाप निपजे.

हवे जे पुन्य पाप छे, ते चारित्रमोहनीयना उदयना मंदपणाए तीव्रपणाए होय; अने धर्म, दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशम के क्षयथी होय; तथा पुन्य पापना फळ भोगवावे, ते वेदनीय कर्म तेना उदय वेदावे (फळ देखाडे); तथा पुन्य पापनो बंध पडे ते मोहनीय कर्मनी मुख्यताए; पुन्य पाप परिणमे ते अंतराय कर्मने क्षयोपशमे.

ज्यां राजा न्यायी अने सम्यग्दृष्टि होय, अने आचार्य निस्पृही होय, त्यां जैन धर्म विशेष प्रकारे प्रवर्ते छे.

५ प्र०—देशना कोने कहिये ?

रता, दृढता छे; एम ए बे नयो आत्मद्रव्यने समारवामां समकाळे गौणता मुख्यताए गुणकारी छे; माटे एमांथी एकपण नयने उत्थापे के एकांते निषेधे तो जीव एकांतवादी मिथ्यात्वी जाणवो, एम श्री जिनेश्वर भगवंतनी वाणी छे, ते यथार्थ सद्दहवी.

४५ प्र०–निश्चय अने व्यवहारनुं सम्यक् स्वरूप स्पष्ट समजावो?

उ०–श्री जिनवाणी प्रतीते ग्रहिने षट् द्रव्यना यथार्थपणे गुणपर्याय धारे, अनुभव प्रत्यक्षे स्वरुपने वेदे, तथा गुणपर्यायसुं बिलेखन करे, तथा पुद्गलादिक कर्म पर्यायमां तदाकार न परिणमे, पांच इंद्रियना भोग विषयो इष्टानिष्टरूप न वेदे, पोताना स्वरूपने भेद रत्नत्रयीरूपे आराधे, तेने व्यवहार सम्यक्त्वी कहिये; तथा पोताना गुण गुणी पर्याय अभेदरूपे रत्नत्रयरूपे, निर्विकल्प समाधि परिणमे तेहने निश्चयसम्यक्त्वी कहीए; त्यां व्यवहार सम्यक्त्व ते निश्चय सम्यक्त्वनुं कारण छे; अने निश्चय सम्यक्त्व ते केवळज्ञाननुं कारण छे.

४६ प्र०–पूर्वोक्त उभय सम्यक्त्वीने व्यवहार प्रतिए शुं लाभ थाय?

उ०–नवतत्त्व, षड्द्रव्यादिकनुं अनुक्रमाते दृढ श्रद्धान, देव गुरु धर्मनुं यथार्थ श्रद्धान, तत्त्व [illegible] विशेष प्रकाशे करी तत्त्वानंदनुं [illegible] [illegible] मार्ग विशेष रीते अवलंबन थता [illegible]

उ०–काउस्सग्ग द्रव्य अने भाव बे प्रकारे कह्यो छे. उत्त-वाइ सूत्रमां द्रव्य काउस्सग्ग चार प्रकारना छेः—१ शरीर काउस्सग्ग, २ उपधि काउस्सग्ग, ३ भत्तपाण काउस्सग्ग, अने क्रोधादि चार कषायना त्याग रूप काउस्सग्ग. (कषायकायोत्सर्ग.)

भाव काउस्सग्ग त्रण प्रकारे छेः–१ कषाय काउस्सग्ग, २ संसार काउस्सग्ग, ३ कर्म काउस्सग्ग, ते मध्ये कषाय काउस्सग्ग क्रोधादि चार प्रकारना छे, संसार काउस्सग्गने (देव, मनुष्य, तिर्यंच, अने नरक ए गतिनी इच्छा रहितपणा रूप) चार प्रकारनो जाणवो, कर्म काउस्सग्ग आठ प्रकारनो; ते ज्ञाना-वर्णीयादि आठ कर्मना भेदे आठ प्रकारनो जाणवो.

९ प्र०–विधि अने अविधिए करेली क्रिया यथाक्रमे केवा फळ रूपे परिणमे ?

उ०–शुभ क्रिया जे विधिनी छे ते स्वभावरुपे परिणमे, त्यां निर्जरा निपजे, तथा शुभ क्रिया जे अविधिनी छे ते बंधरुपे परिणमेः ते लौकिक यश सौभाग्यादि फळरुप परिणमे; तथा पुण्यरुप परिणमे ते बंधरुप थाय, अने तेथी संसार भ्रमण विशेष निपजे.

१० प्र०–जीवने खेद उपन्यो केम टळे ?

उ०–जीवने खेद निवारवाने अर्थे पूर्वकृत कर्म संभारीए. जेवां जीवे पूर्वे कर्म बांध्यां छे, तेवां उदये आवे छे; ते मध्ये केटलांएक कर्म प्रदेशथी वेदीने खेरवे छे; केटलांएक निविड कर्म बांध्यां ते विपाके (रसो-

४८ प्र०—अल्प पापबंध अने अल्प कर्मबंध शी रीते थाय? ते तेनी चौभंगी सहित कहो.

उ०—पांच इंद्रिय अने त्रण योगना अशुभ व्यापारमां तदाकारपणे न परिणमे, सखेद प्रवर्ते तो अल्प पापबंध थाय; ते आलोयणे निंदागर्हा करतां छूटे; तथा शुद्धोपयोगे जे कर्म बंध नीपजे ते भोगवे छुटे; पाप प्रवृत्ति करतां तीव्र मलीन परिणामे तन्मय थतां तीव्ररसे घणां निविड कर्म बांधे; अने घणी अशुभ योगनी हलचले पाप पुद्गल घणां मेळवे, पण तदाकारपणे तीव्र कषाय अनुबंध न होय तो शिथिल बंध करे; एम कोइ जीवने पाप घणुं अने कर्मबंध अल्प, कोइने कर्मबंध बहु अने पाप अल्प, कोइने पाप घणुं अने कर्मबंध पण घणो, अने कोइने पापबंध कर्मबंध एके नहि; एम कर्मबंध अने पापबंध आश्रि चौभंगी जाणवी.

४९ प्र०—धर्म, कर्म अने भर्म शायी नीपजे?

उ०—शुद्धोपयोगे धर्म अने क्रियाए कर्म अने मिथ्यात्वे भर्म निपजे.

५० प्र०—पाप, पुण्य अने धर्म ए एक वस्तु छे के जुदी?

उ०—धर्म, पुण्य अने पाप ए त्रणे वस्तुभिन्न, गतिभिन्न, उपयोगे भिन्न अने फळपणे भिन्न भिन्न छे; धर्म क्षमादि दशविध यति धर्मरूप छे, शुद्धोपयोग परिणति ए संवररूप छे, अने तेनुं फळ मोक्ष छे; पुण्य नव प्रकारे बंधाय छे शुभ परिणामे करी, ते

ज्ञानचक्षु प्रगटतारूप गुण निपजे; श्रोत्रेन्द्रियनो विकार मटतां जिन वचन श्रवण प्रीतिसहित प्रतीति पूर्वक थाय. जीव्हा इंद्रिय विकार मटतां आत्मिक अनुभव रसास्वाद प्रगटः घ्राणेन्द्रिय विकार मटतां आत्मिक गुण सुवासना प्रगटे, स्पर्शेद्रिय विकार गये आत्मप्रदेशे स्वभाव परिणति स्पर्शन गुण प्रगटे.

१४ प्र०—क्रोध, मान, माया, लोभ गये कया गुण प्रगटे ?

उ०—क्रोध गये समता गुण प्रगटे, मान गये मार्दव गुण प्रगटे, माया गये आर्जव गुण प्रगटे, लोभ गये संतोष गुण नीपजे.

१५ प्र०—चार प्रकारे मिथ्यात्व छे ते केवी रीते ?

उ०—१ प्रदेश मिथ्यात्व, २ परिणाम मिथ्यात्व, ३ प्ररूपणा मिथ्यात्व, ४ प्रवर्त्तन मिथ्यात्व, ते मध्ये जीव व्यवहार समकित पामे त्यारे प्ररूपणा तथा प्रवर्त्तन मिथ्यात्व टळे, अने ग्रंथिभेद थई उपशम, क्षयोपशम, समकित पामे त्यारे परिणाममिथ्यात्व टळे, अने क्षायिक समकित पामे त्यारे प्रदेश मिथ्यात्व टळे.

१६ प्र०—देशना केटला प्रकारनी छे ?

उ०—१ धर्म देशना, २ गति देशना, ३ बंध देशना, ४ मोक्ष देशना, ते मध्ये धर्म एटले जीवनी शुद्धात्मपरिणति तेनी सन्मुख जीव जेथी थाय, तत्त्वाभिलाष जेथी प्रगटे, एवो उपदेश ते धर्म देशना, ते थकी जीवने विषय कषायनी मलीन परि-

४८ प्र०—अल्प पापबंध अने अल्प कर्मबंध शी रीते थाय? ते तेनी चौभंगी सहित कहो.

उ०—पांच इंद्रिय अने त्रण योगना अशुभ व्यापारमां तदाकारपणे न परिणमे, सखेद प्रवर्ते तो अल्प पापबंध थाय; ते आलोयणे निंदागर्हा करतां छुटे; तथा शुद्धोपयोगे जे कर्म बंध नीपजे ते भोगवे छुटे; पाप प्रवृत्ति करतां तीव्र मलीन परिणामे तन्मय थतां तीव्ररसे घणां निविड कर्म बांधे; अने घणी अशुभ योगनी हलचले पाप पुद्गल घणां मेळवे, पण तदाकारपणे तीव्र कषाय अनुबंध न होय तो शिथिल बंध करे; एम कोइ जीवने पाप घणुं अने कर्मबंध अल्प, कोइने कर्मबंध बहु अने पाप अल्प, कोइने पाप घणुं अने कर्मबंध पण घणो, अने कोइने पापबंध कर्मबंध एके नहि; एम कर्मबंध अने पापबंध आश्री चौभंगी जाणवी.

४९ प्र०—धर्म, कर्म अने मर्म शाथी नीपजे?

उ०—शुद्धोपयोगे धर्म अने क्रियाए कर्म अने मिथ्यात्वे मर्म निपजे.

५० प्र०—पाप, पुन्य अने धर्म ए एक वस्तु छे के जुदी?

उ०—धर्म, पुन्य अने पाप ए त्रणे वस्तुभिन्न, गतिभिन्न, उपयोगे भिन्न अने फळपणे भिन्न भिन्न छे; धर्म क्षमादि दशविध यति धर्मरूप छे, शुद्धोपयोग परिणति ए संवररूप छे, अने तेनुं फळ मोक्ष छे; पुन्य नव प्रकारे बंधाय छे शुभ परिणामे करी, ते

परीसह है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो, [illegible], [illegible], [illegible], ८ [illegible] परीसह है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परीसह, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं.

१९ प्र०—१ मिथ्यात्व. २ कुगुरु. ३ कुदेव. ४ [illegible] किसे कहते हैं?

उ०—१ मिथ्यात्व उसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. २ कुगुरु उसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. ३ कुदेव उसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] है. ४ [illegible] उसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है.

२० प्र०—[illegible], [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कहते?

उ०—१ [illegible] उसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. २ [illegible] उसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. ३ [illegible] उसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है. ४ [illegible] उसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है.

ए सामान्यपणे रत्नत्रयीनुं वस्तुगते लक्षण जाणवुं, विशेष प्रकारे तो, वस्तु अनंत धर्मात्मक सामान्य अने विशेष स्वभाववंत समकाळे छे, तेमां जे विशेषात्मक धर्म एटले वस्तुने जाति क्रियादि अनेक विशेषणोयुक्त यथार्थ जाणवी ते ज्ञानगुण; अने वस्तुगते सामान्यावबोध ते दर्शन गुण; तथा स्वपर वहेंचण भेदज्ञानरूप जे विवेक, सदाचरण, अपि तु, स्वरूपाचरण ज ज्ञानना फलरूप विरति परिणति गुण छे ते चारित्र लक्षण जाणवुं.

९३ प्र०—धर्म सांभळवो, जाणवो, अने आदरवो ते केवी रीते ?

उ०—वीतरागनी वाणी स्याद्वादरूपे छे तेने आत्मस्वरूप प्ररुपणानी मुख्यताए, जे धर्मनो सद्‌गुरु महाराज उपदेश करे छे, ते धर्मने अत्यादर सहित सांभळवो, स्वसमय एटले स्वशास्त्रानुसार अने परसमय एटले परशास्त्रावबोध एम स्वपरज्ञान परीक्षापूर्वक जेम शुद्धाशुद्ध धर्मनो प्रकाश भासन थाय, तेम ते शुद्ध रत्नत्रयी आराधनरूप धर्मने विवेक बुद्धिए जाणवो, तथा जेने पोताना द्रव्यगुण पर्याय पोतानाज शुद्धात्म द्रव्य गुण पर्यायपरिणतिरूपे परिणम्या छे, तेनो प्ररुपेलो धर्म आदरवो इतिभाव.

९४ प्र०—चेतना एटले शुं ?

उ०—ज्ञान दर्शन स्वभावरूप आत्मलक्षण एटले सुखदुःखनुं जे भान थवुं, चेतवुं एटले सुखे दुःखे जे चेते तेने चेतना कहिये ते जीवनुं लक्षण छे. हवे ते चेतनाना

पर मरुतने यथाशक्ति मतिनिय सेवन करी बीह
पण्यमा हहेशाय नहि. एम जे ज्ञान मानी यथार्थ
व्याजाइ रीते जाणीने पछी ते गुरुभक्तीवी पद चहेडो
किटि देहे प्रमाण रीते जे मानी क्रियाविधि आदरे,
धामनेक उपयोग शुद्ध रहे. ते मानीना सर्वे
मनोवांछित फल पता लागे धीम परमानंदस्वरूपने
पामे.

२२ प्र०—जैन मतमां कर्मनुं स्वरूप समजावो ?

उ०—द्रव्य कर्म ते ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मोनी पुद्गल-
वर्गणा, २ नोकर्म ते औदारिकादि पांच
शरीर. ३ भावकर्म ते आत्मानो अनादि कालनो
प्रेरेलो लागेलो रागद्वेषनो अशुद्ध परिणतिः ते मध्ये
द्रव्यकर्म तथा नोकर्म पुद्गलाश्रित छे, भावकर्म
आत्माश्रित छे; पहेलां बे कर्म विनाशी छे केमके
अनादि अनंत अभव्याश्रि अने भव्याश्रि अनादि
तथा सादि सांत भांगे आत्मप्रदेशस्थ होवाथी छे,
तथा हर्षोल्लास ते भावकर्म आश्रित छे. आहि
दृष्टांतथी आ वात विशेष स्पष्ट थशे तेथी कहीए
छीए:—के जेम एक चोखा नामना धान्यनो कोठी
छे, तेमां धान्य ते छे ते द्रव्य कर्म, अने कोठी
ते नोकर्म, अने चोखाने लागेलो जे मिलो ते
समान भावकर्म चोकसपणे आत्मानी अशुद्ध परि-
णति जाणवी.

२३ प्र०—अरिहंतादि नव पदनो भावार्थ तथा ते मध्येकयुं

टले ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मपुद्गलोनुं आत्मप्रदेशे अवस्थान छे ते जाणवो, ४ उपचरित असद्भूत व्यवहार ते लौकिक मान्यतारूप देशाचार रुढिरूप, ज्ञाति, पंच विगेरेना कल्पित कायदा, नियमरूप, तथा अनादिकाळथी जीवने लागेली परवस्तुनेविषे मारापणानी बुद्धिरूप स्त्री, पुत्र, बंधु, माता, पिता, स्वजनपरिवार, मित्र, शत्रु, घर, हाट, वस्त्रादि सर्व परिग्रह ममतानी मिथ्या कल्पनारूप उपचरित असद्भूतव्यवहार जाणवो.

९७ प्र०—त्रिविध कर्मनुं स्वरूप समजावो ?

उ०—१ द्रव्यकर्म ते ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मपुद्गलो जे आत्मप्रदेशे लागेलां छे ते, २ भावकर्म ते रागद्वेषादि आत्मानी अशुद्धविभाविक परिणति, ३ नोकर्म ते औदारिकादि पांच शरीररूप जाणवां.

९८ प्र०—चतुर्विध दयानुं स्वरूप कहो ?

उ०—१ द्रव्यदया ते मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीवने होय ते परपौद्गलिकभावरूप परहस्ते वेचाणी, रागद्वेषे हणाइ ते नथी जाणतो एवी जे अनुपयोगरूप नाम मात्र दयास्वरूप ते द्रव्यदया एक रीते परदयामां पण अंतर्भवे छे, २ परदया ते स्वट्काय जीवरक्षारूप विरतिवंत जीवने होय ते सम्यग्दृष्टि अने मिथ्यादृष्टि बंनेने संभवे छे, ३ भावदया ते शुद्धात्मोपयोगरूप सम्यग्दृष्टिने ज होय, केम जे पोतानो आत्मा दयारूपज छे एम जाणीने ते मवर्ते छे, ४ स्वदया ते सम्यग्दृष्टि मुनि, क्षपकश्रेणि आरूढने होय छे.

आवरण छेदी पर्याय निपजे. ७ ज्ञानवड जगतनां देवगुरु धाय. सकलगत प्रकाश निपजे, ८ चरित्रवड जगतना निर्विकल्पी पंच महाव्रतनी शुद्ध प्रतिपालना करे. सकल जगतने पाप अकर्तव्य परिहरि धाय. सकल जगतना सुलभ थाय. ९ तपवड जगतनां इच्छा निरोध थाय. सकल पौद्गलिक वासना टळे, तृष्णा नाश उपजे. अने समताभाव वड गर्भी जाय इति भाव.

२४ प्र०—कर्मनो उदय तथा बंध जीवने केवी रीते थाय छे? ते स्पष्ट समजावो.

उ०—जोया कर्म उदय आवे छे; जेवे रसे बांध्यां होय, तेवेज रसे तथाविध द्रव्य क्षेत्र काल भाव पामीने, प्रदेशे तथा विपाके भोगवे; ते भोगवता जेवा नवां बंधाय पण समभावे वेदेनो निर्जरा थाय, अने विषम भावे एटले रागद्वेषादि कर्दमभावे वेदे तो नवां बंधन तथा विषमभावे भोगवीने पछी पश्चात्ताप करे तो कर्मबंधनो स्वभाव करी शीतल मंदाडे, ते उदयकाले सुगमताथी खपी जाय, अने जो कर्म विषमभावे भोगवे, दुर्ध्यान करे तो, उदयकाले अत्यंत दोहिलां भोगवीने खपावे; वळी वेदतां थकां नवां कर्मनो गाढ बंध करे.

२५ प्र०—मोक्ष अने सम्यक्त्वनुं स्वरूप समजावो.

उ०—सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपनी शुद्ध प्राप्ति ते मोक्ष; अने अहिं देव भवान्तरने विषे निर्वेद-

सना आवी जवारुप पुद्गलानंद होय पण भवाभिनंदिपणुं टळ्युं छे. माटे सम्यग्दृष्टि जीवने पुद्गलानंदि कहिये, ३ आत्मानंदि जीव ते जेने केवळ आत्मिक आनंद, शुद्ध रत्नत्रय धर्मे, तन्मयपणे, स्वरूप लीनताए, समस्त व्याकुळता रहित, सहजस्वभाव विलासिपणारूप मुनि महात्माओने–योगीश्वरोने होय छे.

६२ प्र०–सद्गति अने दुर्गति ते शाथी थाय छे ? ते विस्तारथी स्पष्ट समजावो.

उ०–शुभोपयोगे सद्गति, अने अशुभोपयोगे दुर्गति, अशुभोपयोगे संसार लाभ अने शुद्धोपयोगे एटले स्वभाव परिणतिए तन्मयपणे परिमणतां मुक्ति थाय, कारण के शुभ प्रकृतिने उदये जीवना योग शुभ वर्ते, तेथी धर्म हेतु शुभ क्रिया साधना करे, तेथी पुण्य बांधे अने तेथी सद्गति थाय छे; तथा अशुभोपयोगे अशुभ कर्मनो उदय थतां योग अशुभ वर्ते, तेथी अशुभ क्रिया विषयादि सेवे तेथी पाप बंधाय छे, अने तेथी दुर्गति थाय छे; ते माटे पुण्य पाप शुभाशुभयोगने आयत छे, अने धर्माधर्म ते शुद्धाशुद्ध उपयोगने आयत छे, अर्थात् राग, द्वेष, मोहजनित अशुद्धोपयोगे अधर्म छे, तेज मिथ्यात्व छे; अने अशुद्धोपयोग ते रत्नत्रयरूप शुद्धात्म परिणति, वीतरागभाव तेज धर्म छे, अने तेज सम्यक्त्व छे.

३ प्र०–रोगातंक ते शुं ? अथवा रोग अने आतंक एटले शुं ?

प्रथमनी मिथ्यात्वमोहनीयनी त्रण प्रकृति छे, ते निर्मळ सम्यक्त्व गुणनी घातक छे, अने बीजी चारित्रमोहनीय कर्मनी पचीस प्रकृतियो छे, ते मध्ये क्रोध मान ए बे चार चोकडीनी होतां आठ थाय, अने नव नोकषायमांथी अरति, शोक, भय अने दुगंछा ए चार गणतां सर्वे मळी ए बार प्रकृति द्वेषना घरनी वा अथवा रागद्वेष जनित छे, अने शेष माया लोभादि आठ कषाय अने हास्य, रति, अने त्रण वेद ए पांच मळीने तेर प्रकृतिओ रागना घरनी छे.

३८ प्र०—शरीरगति, परिणामगति, श्रद्धागति, जे रीते परिणमे छे ते रीते कहो ?

उ०–१ शरीरनीगति औदयिकभावे वेदनीय मध्ये छे, २ परिणामगति, विषय कषायनी प्रवृत्ति मध्ये इष्टानिष्टरूपे छे, श्रद्धानी गति, तत्त्व अतत्त्व विवेचन कर्णरूपे छे.

३९ प्र०—जीवना द्रव्य, गुण, अने पर्याय शाथी समरे एटले सुधरे ?

उ०—दर्शन, ज्ञान, अने चारित्र गुणे करी अनुक्रमे समरे.

४० प्र०—ते शी रीते छे, ते विस्तारथी स्पष्ट समजावो ?

उ०—आत्मा द्रव्य असंख्यात प्रदेशी छे, तेनो जिन वचन प्रतीते तथा अनुमाने करी अनुभव करे ते दर्शन; तथा परोक्ष अने प्रत्यक्षे जे प्रतीतात्मक धर्म भासन थयो, जे आत्मद्रव्य दर्शन द्वाराए

कर्मरूप जड अजीवज कहेवाय; ते ज्यारे सम्यक्त्व पामे त्यारे पोतापणुं ओळखे, पछी पोताने न्यारो लखे अने तेथी ते परंपराये अकर्मरूप थाय छे, माटे तेने पुद्गलकर्म पुद्गल प्रत्ययथी उदयआश्रि रह्यां पण आत्मप्रनष्टयां गयां ए भाव जाणवो.

६७ प्र०–चार प्रकारे नव तत्त्वनुं स्वरुप विस्तारथी कहो ?

उ०–१ नामथी एटले जीव अजीव पुण्य पापादि नव तत्त्वनां नाम सूत्रथी गाथानुसार जाणे, २ गुणथी एटले जीवाजीवादि नव तत्त्वना गुण भेदादिक अर्थथी जाणे; लक्षण, स्वरूप लक्षणथी एटले जीवनुं लक्षण चेतना, अजीवनुं लक्षण अचेतनपणुं इत्यादि लक्षण स्वरूपे नव तत्त्व ओळखे; ४ परिणामथी एटले जीव जीवरूपे परिणमे, अजीव अजीवरूपे परिणमे इत्यादि नवे तत्त्व आप आपरूपे परिणमे ते परिणामथी चोथो भेद जाणवो.

६८ प्र०–नवे तत्त्वोनुं टुंक लक्षण स्वरूप कहो.

उ०–१ जीव असंख्यात प्रदेशी, अनंत गुणमय ते शुद्ध चेतनागुण ते जीवनुं लक्षण जाणवुं, २ धर्मादि पांच अजीवना गुण ते जेम धर्मास्तिकायनो गुण चलण सहायकता, आकाशास्तिकायनो गुण अवगाहन दान समर्थता, काळनो गुण समयवर्तना लक्षण अने पुद्गलास्तिकायनो सडण, पडण, नाश, मिलण, विखरणादि वर्ण गंध रसादिरूप जाणवो, ३ तथा ऊर्ध्वगति, इंद्रियसुख, शाता आदि ते पुण्यनो

४१ प्र०—योगस्थविर, गतागत, मिथ्यात्वस्थविर अने अविरतिस्थविर, कर्मो केवी रीते टळे ?

उ०—अशुभ योगे बांधेलां कर्म शुभ संयमादि शुभ क्रिया व्यापारवडे, गतागत कर्मो शुद्धोपयोगे, स्वरूप पर्याय परिणाम वडे, स्वभावाचरण शुद्ध ध्यानालंबनवडे निर्जरे; सम्यक्दर्शनवडे मिथ्यात्व मत्थइयां टळे, अने अविरति मत्थइयां, विरति परिणामे टळे, ते विषे कह्युं छे के:—

दुहा.

आतमे अध्यातमरता, पडे पाप प्रबंध;
द्रव्यगुणपर्याये परिणमे, तो सोनुं अने सुगंध.

४३ प्र०—कषाय, प्रमाद, इंद्रियविषयराग, अने योग मत्थइयां बांधेलां कर्म टाळवाना उपाय कया ?

उ०—कषाय मत्थइयां, उपशमादि समताभावे टळे; प्रमादे बांधेलां अप्रमाद दशावडे टळे; विषय राग मत्थइयां तपस्यावडे टळे; अने योग मत्थइयां अयोगी दशाए शैलेशीकरणे प्रवर्त्तता टळे.

४४ प्र०—निश्चयनय अने व्यवहारनय जीवने शुं गुणकारी छे ?

उ०—सम्यक्दृष्टि जीव श्री जिनभगवान स्याद्वादना जाण, जैनशैलिना उपयोगी बोधवान अध्यात्मीओने निश्चयनय हेतुना, आत्मिकना कारणहेतु छे; अने व्यवहारनय ते जीवना पर्याय शुभाशुभ कर्मरूपे जे थया छे, तेने संभाळवाना हेतुरूप छे; व्यवहारनय केडे उद्यम छे, अने निश्चयनय केडे चित्तनी स्थि-

माटे श्री जैन दर्शन, उपयोगे तथा अक्रियभावे छे. जैन दर्शन श्रद्धान शुद्धोपयोगे छे, अने शुद्धोपयोग आत्मभावे छे, अक्रियभावे छे, अने बीजा योगे क्रिया धर्म छे, एम स्याद्वाद शैली पूर्णतारूप सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्तम रीते महा कल्याणदायक श्री जिनशासन जयवंतुं वर्ते छे, तेने हे चेतन !!! तुं अत्यंत आदरपूर्वक स्विकार !

७१ प्र०—संवरतत्त्वनुं स्वरूप द्रव्यथी अने भावथी कहो ?

उ०—योग प्रत्ययिक कर्मने मुनि तप संजमादिके करी निर्जरावे छे, अने बीजां आवतां कर्मनो रोध करे छे; तथा अशुद्धोपयोग प्रत्ययिक कर्मने रत्नत्रयीरूप आत्मिकधर्मने विषे प्रणमावी शुद्धोपयोगे करी आत्मसत्ताने शुद्ध करी कर्म मळथी मुक्त थाय छे. एम योगसंवर आराधक मुनि, उदय आवतां कर्मने निष्फळ करे, रोके ते द्रव्यसंवर; अने उपयोग संवरे करी मुनि आत्मसत्ता शोधे एटले प्रदेशथी कर्म क्षय करे ते भावसंवर, अर्थात् योग संवर ते द्रव्य अने उपयोग संवर ते भाव.

७२ प्र०—छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि, प्रत्यक्ष स्वरूप केम देखे ?

उ०—परोक्ष प्रत्यक्ष अनुभवगोचर अनुमान प्रमाण प्रतीते प्रत्यक्ष वस्तु स्वरूप देखे एटले माने, ते आवी रीतेः—पोताना परिणाम जे शुभाशुभ कर्म जनित छे ते रागद्वेषद्वारे, सम्यक् बुद्धिमार्गे ते परिणामने पोते यथार्थ लखे; ते प्रत्यक्ष देखवुं कहिये ते परिणाम आत्मद्रव्यथी शाथी उठे छे ? तो के

वस्तु व्यवहारसम्यक्त्व जे पूर्वे कह्युं छे, ते रूपे जेहवी जाणे.

४७ प्र०—धर्म, कर्म, पुन्य अने पाप केवी रीते थाय छे, अने तेना भिन्न भिन्न फळ शा शा छे ? ते सविस्तर कहो.

उ०—जीव शुद्धोपयोगे वर्त्ततां थकां पोताना द्रव्यगुण पर्यायनी तन्मयताने परिणमे त्यां ते धर्म करे, अने रागद्वेषमय अशुद्धोपयोगे वर्त्ततां कर्म बांधे, एम शुद्धोपयोगे धर्म अने अशुद्धोपयोगे कर्म निपजे छे, तथा शुद्धोपयोगे शुभयोगे पुन्य बांधे, अर्थात् मन वचन कायना योग प्रशस्तभावे तथाविध शुभरागने पूजा, सामायिक, प्रतिक्रमण, पोसह, सिद्धांत श्रवण, अभ्यास, मनन, दानादि शुभ योगे प्रवर्त्ततां जीव पुन्यानुबंधी पुन्यनो रस ऊठे तेमज कर्म अशुभ मन वचन कायना योगे विषयादि प्रवृत्ति, अप्रशस्तभावे, दुराचार आदिमां प्रवर्त्ततां जीव निबिड पापबंध करे, हवे तेनां फळ कहिये छीए—पुन्यथी शुभ गति, शुभ सामग्री, सत्ता, ऋद्धिलक्ष्म्यादि शुभ संयोग जीव पामे, तथा शुद्धोपयोगी धर्मवडे कर्मो निर्जरा करी मुक्तिपद पामे; तथा अशुद्धोपयोगे वर्त्ततां पाप बांधे, तेथी जीव संसारमां घणो रखड रहे, घणा भव करे, अशुभोपयोगे वर्त्तता पापबंध करीने जीव ज्यां त्यां घणी असाता पामे; माटे जे पाप असाता, दुःखने माटे, कर्म संसार अने धर्म मोक्ष थाय छे.

बैमानीक मेरे अनेरुकने आनायकने भोग-
वय छे, पण पौद्गलिक छे तथु सोनानी बेडी
समान जिनाजी शरुर शुभ होवाथी मुनिने निश्च-
यनय स्वरूप छे पण शुभ परिणामे अशुभ प्र-
कारे बंधाय छे, बीजाओ प्रकारे मतिरुपने अ-
शाता रुकने उत्पत्तिने लोढानी बेडी समान
भोगवाय छे, ते तो सर्वथा प्रकारे हेय छे. पुण्य
धर्म प्रकार जनित आत्मिक छे अने पुण्य पाप
कर्म जनित पौद्गलिक छे. धर्म उपादेय छे सर्वथा
प्रकारे, शुभ कर्म व्यवहारे अवसरे उपादेय छे,
निश्चय प्रकारे हेय छे; अने अशुभ कर्म तो स-
र्वथा प्रकारे हेय नरे हेय पुण्य त्यागवा योग्य छे.

५१ प्र०—धर्म शेनाथी थाय निपजे ?

उ०—ज्यां सुधी आत्मा परिणाम संकल्प विकल्पमां वर्ते
छे, त्यां सुधी शुभाशुभ कर्मबंध निपजे, अने ज्यारे
निर्विकल्प दशामां परिणमे, वर्ते त्यारे शुद्ध धर्म
प्रगटे; एम विकल्पे कर्मलाभ अने निर्विकल्पे धर्म-
लाभ जाणवो.

२ प्र०—स्वाभाविक रत्नत्रयी शुद्धनुं लक्षण स्वरूप कहो ?

उ०—चेतनशक्ति अने विज्ञान विलक्षणात्म ज्ञाननुं
स्वाभाविक लक्षण जाणवुं; हवे आत्मिकता, सर्व-
तात्त्विक श्रद्धानरूप ते स्वाभाविक दर्शन लक्षण
जाणवुं तथा चित्तनी स्थिरता, अनाकुलता, स्वरूप
रमणता ते स्वाभाविक चारित्र लक्षण जाणवुं; एम



बेंतालीश भेदे अनुकुळपणे शाताफळरूपे भोगवाय छे, पुण्य पौद्गलिक जड वस्तु सोनानी बेडी रूप विनाशी संसार हेतुरूप होवाथी मुनिने निश्चनय त्याज्य छे; पाप अशुभ परिणामे अढार प्रकारे बंधाय छे, बीयासी प्रकारे प्रतिकुळपणे अशाना फळरूपे दुःखदायिपणे लोढानी बेडी समान भोगवाय छे, ते तो सर्वथा प्रकारे हेय छे. एम धर्म स्वभाव जनित आत्मिक छे; अने पुण्य पाप कर्म जनित पौद्गलिक छे; धर्म उपादेय छे सर्वथा प्रकारे, शुभ कर्म व्यवहारे अपवादे उपादेय छे, निश्चय स्वरूपे हेय छे; अने अशुभ कर्म तो सर्वथा प्रकारे केने नवे हेय एटले त्यागवा योग्य छे.

५१ प्र०—धर्म जीवने शाथी निपजे ?

उ०—ज्यां सुधी चेतना परिणाम संकल्प विकल्पमां वर्ते छे, त्यां सुधी शुभाशुभ कर्मबंध निपजे, अने ज्यारे निर्विकल्प दशामां परिणमे, प्रवर्ते त्यारे शुद्ध धर्म प्रगटे; एम विकल्पे कर्म लाभ अने निर्विकल्पे धर्मलाभ जाणवो.

५२ प्र०—स्वाभाविक रत्नत्रयी गुणनुं लक्षण स्वरूप कहो ?

उ०—चौदप्रकाश अने विलक्षण विचक्षणताए ज्ञाननुं स्वाभाविक लक्षण जाणवुं; दृढ आस्तिकता, प्रतीतात्मक श्रद्धानगुण ते स्वाभाविक दर्शन लक्षण जाणवुं; तथा चित्तनी स्थिरता, अनुकुळता, स्वरूप रमणता ते स्वाभाविक चारित्र लक्षण जाणवुं; एम

शुभ क्रिया होय पण शुभोपयोग नहि; केमजे शुभोपयोग तो शुद्धना घरनो छे, ते तो सम्यग्दृष्टिने अणइच्छकरूपे निर्वछकभावे होय छे, अने मिथ्यात्वीने शुभोपयोग शुभ क्रियारूप, शुभाचाररूप होय पण नियाणारूप एटले पौद्गलिक सुख वांछारूप होय, ते माटे अशुभ जाणवो. (प्रत्यन्तरमां प्र. ६९)

७८ प्र०—सम्यग्दर्शननुं स्वरूप अनुमाने तथा लक्षणे सिद्ध करो.

उ०—श्री वीतराग देवना वचननी दृढ प्रतीति एटले श्री जिने भाख्युं तेज सत्य. ते कदापि काळे अन्यथा न होय, भले मारी बुद्धिमां नथी आवतुं तोपण वीतराग देवने मिथ्या कथन करवानुं कंइ पण प्रयोजन दिसतुं नथी, जेवुं पोते केवळज्ञाने दीठुं छे, तेवुंज योग्य प्राणियोने केवळ हित बुद्धिए परमकरुणाभावे प्रकाश्युं छे, माटे सुइनी अणी जेटला प्रदेशमां अनंता जीवो पण तेज वचन प्रतीतिरूप आगम अने अनुमान प्रमाणे सम्यक्त्वी माने छे, तेवीज रीते आत्मा पण साक्षात् दीटो माने छे, वळी जीव चेतना लक्षणवंत छे, चेतना ते सुख दुःखनुं भान, अने सुख दुःखनो अनुभव वेदनीय कर्म द्वारे प्रत्यक्ष छे, तेथी ते लक्षणे सुख दुःखनो जाणनार आत्मा छे, एम प्रतीति करे छे. एम अंश प्रत्यक्षे सर्व प्रत्यक्ष थयो; जेम एक मोटा टोपमां एक खांडी भात रंधायेल तैयार थयो छे, ते काचो

मुख्य बे भेद छे १ ज्ञानचेतना, २ अज्ञान-
चेतना, ते मध्ये अज्ञानचेतना बे प्रकारे छे ते
१ कर्मचेतना, २ कर्मफळ चेतना, तेमां कर्मचेतना
ते रागद्वेषादिके विषे जीवनुं परिणमन जाणवुं, अने
शुभाशुभ कर्मफळनुं वेदवुं ते कर्मफळ चेतना जा-
णवीः ज्ञानचेतनानो कोइ भेद छे नहि, ते आ-
त्माना शुद्धोपयोगरूप शुद्ध परिणति स्वदर्शन ज्ञानरूप
छे, ते सम्यग्दृष्टि आत्माने होय छे, अने अज्ञान-
चेतना अशुद्धोपयोगना घरनी विभाविकपरिणतिरूप
मोहितमिथ्यादृष्टि जीवने होय छे, ज्ञानचेतना जीवने
प्रगटे त्यारे ते कर्मचेतना तथा कर्मफळ चेतनारूप
अज्ञानचेतना टळे.

५५ प्र०—त्रणे काळे जीव जे पापकर्मनो बंध करे छे तेना
निवारण हेतु कया ?

उ०—गया काळना पापकर्म ते प्रतिक्रमणे मटे; अने वर्त-
मानकाळना पापकर्म ते आलोयणे मटे; अने अना-
गतकाळना पापकर्म पच्चख्खाणे टळे.

५६ प्र०—चार प्रकारे व्यवहार छे ते कया ?

उ०—१ अनुपचरित सद्भूतव्यवहार ते अनंत ज्ञान,
अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य आदे देइने
आत्मानी अनंत गुणात्मक शुद्धतारूप जाणवो, २
उपचरित सद्भूत व्यवहार ते क्षयोपशमिकज्ञान-
दर्शन, चारित्रादिरूप जाणवो, ३ अनुपचरित अ-
सद्भूत व्यवहार ते जीवना अनादि कर्मसंबंध ए-

उ०–छद्मस्थने प्रथम देखवुं एटले दर्शन उपयोग अने पछी जाणवुं एटले ज्ञानोपयोग होय; छउमथ्थाणं दंसणपुव्वनाणं ॥ दर्शन ते सामान्यअवबोध, अने ज्ञान ते विशेषावबोध जाणवो; दर्शन ते सामान्यावबोध छे. झात्काररूप प्रतिभास थाय थोडो काल रहि पछे ज्ञान मांहे मले. ज्ञान विशेषावबोध छे घणो काल रहे ते माटे. आत्मदर्शन जेणे कर्युं "तेणे मुंद्यो भवभय कूपरे" एम श्रीयशोविजयजीए पण कह्युं छे. तथा "प्रवचन अंजन जो सद्गुरु करे तो देखे परमनिधान जिनेश्वर. एवुं श्री लाभानंदजीए पण कह्युं छे. छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि आत्मस्वरूपने देखे, पण साक्षात् करामलकवत् एटले हाथनी हथेळीमां रहेला पाणीमांजे हथेळीनी रेखाओ स्पष्ट देखाय तेम साक्षात् असंख्यात प्रदेशी, अरूपी आत्माने केवळदर्शनी ज देखे, पण छद्मस्थ तो प्रतीते, अनुमाने अनुभवे, स्वरूपे देखे एटले जिनवचनप्रतीते आत्मद्रव्य स्वरूप दिठुं, अनुमाने चेतनालक्षणगुणे प्रत्यक्ष दिठो, अनुभवे ते परिणमनपर्यायरूपे अने स्वरूपे ते अभेदरत्नत्रयात्मकनिजपदवृंद दिठो. ए रीते आत्मस्वरूपनुं दर्शन छद्मस्थ सम्यग्दृष्टिने संभवे छे.

८२ प्र०–मुनिने त्रणयोग रत्नत्रयरूपे केवी रीते परिणमे छे?

उ०–मनयोगे दर्शन श्रद्धानरूपे छे, ते वस्तुना निर्धारथी चळे नहि; वचनयोगे ज्ञान भणवुं, यथार्थ उपदेश करे छे, सत्य प्ररूपणा ज्ञानरूप परिणमन होय;

५९ प्र०—त्रिविध मोक्षभेद समजावो?

उ०—१ भावमोक्ष सम्यग्दृष्टिने होय, २ द्रव्य मोक्ष साधुने होय, ३ गुणमोक्ष ते तेरमा चौदमा गुणस्थानि केवली भगवंतने होय.

६० प्र०—त्रिविध चेतना केवी रीते कोने होय? ते कहो.

उ०—१ कर्मचेतना सर्वजीवने, २ कर्मफळ चेतना एकेंद्रियादिकने, ३ ज्ञान चेतना सम्यग्दृष्टिनेज होय.

६१ प्र०—त्रिविध संसारी जीवनुं स्वरूप समजावो?

उ०—१ भवाभिनंदी जीव ते जेने संसारने विषे देह, गेह, स्त्री, पुत्र, धनादि परिग्रह उपर तन्मय राग आनंद वर्तनारूप संसारविमुखपणुं मग्नपणे होय, विषय कषायादिमलीनपरिणतिमां अरचना थवे, अने धर्मध्यानादि साधनमां भेदभाव रहे एवुं भवाभिनंदीपणुं मिथ्यादृष्टि मोहमूढ जीवोने होय छे, तेनां नामः—लोभि, कृपण, दयाभयो, कपटी, मत्सरी एटले अदेखो, विकल एटले सदा भयवान, अज्ञानि जेनां सघळां आरंभ कामो निष्फळ थाय छे एवो ते कठोर जाणवो, २ पुद्गलानंदि जीव ते सम्यग्दृष्टिने कहीये, केम जे तेने शुभाशुभ कर्मोदये पुद्गलोविषे रति वेदाये एटले उपरथी सारुं लागे, पण अंतरमां सुखरूप वेदनापणुं न होय, खेद थाय, केम जे संसारमां तेने कांइपण खरेखरा आनंदरूप नथी, एम एने जिनवचनानुसार अंतरंग प्रतीतिपूर्वक जाण्युं छे माटे तेने संसार प्रवृत्ति करतां अनादि भवना-

प्रत्यक्ष फळ देखीए छीए; इत्यादि जाणवुं, ए मानतां आत्माने भववैराग्यता गुणनी पुष्टि थाय, विषय कषायथकी निवर्ते. एणी रीते चार प्रमाणे आत्माने गुण नीपजे.

८५ प्र०—त्रिविध कर्मरोग कयो ?

उ०—१ द्रव्यकर्म ते आठ कर्मनी वर्गणा, २ भावकर्म ते अशुद्धोपयोग एटले आत्मानी रागद्वेषादि अशुद्ध परिणति; ३ नोकर्म ते औदारिकादि पांच शरीर, द्रव्यकर्मनी समीपे कारण कार्यभावे रह्यां माटे तेने नोकर्म कहिये; ते त्रण कर्मरोगना वैद्य श्री परमात्मा तथा गणधरादि महात्माओ छे; तेओ पण त्रिविध औषधरूप त्रण प्रकारनी देशना आपे छे— १ यथार्थवाद, २ विधिवाद, ३ चरितानुवाद; तेनो अर्थः—१ यथार्थवाद देशनामध्ये जीवाजीवादिक स्वरूप धार्यां, परिणम्यां तेथी वस्तु तत्त्वनो प्रकाश थाय, तेणे करी, भावकर्म रोग मटे, रागद्वेषादि विपर्यासपणुं टळे, अज्ञाननो उच्छेद थाय, २ विधिवाद देशना मध्ये देशविरतिपणुं, सर्वविरतिपणुं इत्यादि क्रियानो आदर, शुभोपयोगे आचरतो, प्राणीनो द्रव्यकर्म रोग नाबुद थाय, अनादि कर्मकाट उतरे, आत्मप्रदेश निर्मळता निपजे, तेथी जीवने घणी शांति प्रवर्ते, ३ तथा चरितानुवाद देशना मध्ये शरीर संबंधी काम भोग विषयकषायादि मलिनतानुं निवर्तन थाय, जेम जंबुस्वामी, सुदर्शन

उ०—घणो काळ रहे ते रोग कहिए, अने तत्काळ
घात करे ते आतंक.

६४ प्र०—बळ, वीर्य, अने पराक्रमनां शुं फेर?

उ०—शारीरिक शक्ति ते बळ, अने आत्मिक शक्ति
वीर्य अने शुभाशुभ कर्मोदयानुसार पराक्रम जाणवु

६५ प्र०—सम्यक्त्वी अने मिथ्यात्वीने मोहादिकर्मबंध स्थि-
तिमां शो फेर छे?

उ०—सम्यक्त्व ते जीवनी सत्तारूप स्वरूप तत्वमग्न छे,
ते ज्यारे पोतानो समय पामीने पडे तोपण तेने
मिथ्यात्व पर्याय, उत्पन्नरूपे न परिणमे तेथी तेने
मोहादिकर्मनी उत्कृष्ट स्थिति बंधाती नथी, माटे
तेने मिथ्यात्व पर्याय परिणमतां तीव्रकषायोदये
पण सम्यक्त्व मानने एक कोडाकोड सागरोपम माठेरो
स्थितिबंध थाय छे, एम समजाएल छे, पछीनो
ज्ञानवंत बहुश्रुत कहे ते सत्य, अने अनादि गाढ
मिथ्यादृष्टिने तो तीव्रकषायोदये उत्कृष्ट सित्तेर कोडा-
कोडी सागरोपमनो मोहनीयबंध पडे छे.

६६ प्र०—हवे पुद्गल ते कर्म छे, अने जीव ते पण कर्म छे,
ते शी रीते?

उ०—पुद्गल परमाणु विभावरूपे परिणमे त्यारे द्व्यणुकादि
स्कंधरूपे निपजे; अने जीवपण पोतानो स्वभाव
मेलीने विभावरूपे परिणमे त्यारे ते पण कर्मरूप
थइ पुद्गल कर्मवर्गणाने ग्रहे, तेथी जीव पण परमार्थे

रागद्वेष परिणामे जे मंदबुद्धिथी छकाय जीवोने हणे ते तरतमअध्यवसाये महाकर्मबंध करे तेना अशुभ विपाक उदये आवे ते अनुबंध हिंसा जाणवी. अनुपयोगे द्रव्यहिंसा अने तीव्र परिणामे भाव हिंसा थाय. स्वरूप हिंसामांहे बाह्य हिंसा तथा योग हिंसा भळे छे. तथा एक जीवमे हिंसा अल्प पण उदयकाळे दुःख विशेष पामशे ते शेणे ? दुष्ट अध्यवसायना अभावे उदय आव्यां कर्म निष्फल करे छे. दृढ प्रहारीनी पेठे. इत्यादि चोभंगीओ अहिंसा अष्टक ग्रन्थमध्ये विस्तारे छे. यथा एकस्याल्पाहिंसा ददाति काले तथा फलमनल्पं अन्यस्यमहाहिंसा स्वल्पफला भवतिपरिपाके इत्यादि ॥

उ०-१ स्वरूप अहिंसा, ते जीववध न करवो, तेनुं बीजुं नाम बाह्य अहिंसा के योग अहिंसा पण छे, २ हेतु अहिंसा ते जयणाए प्रवर्तन, छकाय जीवनी रक्षा प्रवृत्ति, ३ अनुबंध अहिंसा ते रागद्वेषादि मलिन अध्यवसाय, तीव्र विषय कषायना परिणामे हिंसानो त्याग जेथी फळ विपाकरूपे आकरो कर्मबंध न पडे ते, ४ द्रव्यअहिंसा एटले अनुपयोग हिंसानो त्याग, ५ परिणाम अहिंसा के भाव अहिंसा ते उपयोग पूर्वक परिणामनि इच्छाथी जे हिंसा करवी तेनो त्याग इत्यादि अनेक भेद जाणवा, हवे क्रिया फळ भेदरूप चोभंगी देखाडे छे. १ हिंसा अल्प, फळ विपाक अल्प, २ हिंसा अल्प, फळ विपाक तीव्र, ३ हिंसा तीव्र, फळ विपाक अल्प,

गुण, ४ अधोगति. संक्लेशरूप असातादि
आवे ते पापनो गुण. ५ शुभाशुभ कर्मनुं आव
आस्रवनो गुण. ६ शुद्धोपयोगे शुभाशुभ कर्म
श्रवनो निरोध ते संवरनो गुण, ७ नवां कर्म
कर्मनी साथे नवीने बंधाय ते बंधनो गुण, ८ शु
भाशुभकर्म, आत्मप्रदेशथी खडन थाय, देशथकी
निर्जरे ते निर्जरानो गुण, ९ आत्मप्रदेशथी सर्वथ
कर्म पुद्गलोनो क्षय ते मोक्षनो गुण जाणवो.

प्र०—केवा श्रावकने स्वसमय परसमयना जाण कहिये?

उ०—जीवाजीवादिक नवतत्त्वने यथार्थ जाणे एटले
जीव निर्जरा, संवर अने मोक्षने उपादेयरूपे जाणी
आदरे, अने अजीव पुन्य, पाप, आस्रव, अने
बंधने हेयरूपे जाणी तेनो त्याग करे तथा नव
तत्त्वने चार प्रमाण, साते नये, चार निक्षेप, द्रव्य-
भाव भेदे. स्याद्वादशैलिए घट इत्यादि तेना गुण
पर्यायना यथार्थ स्वरूप भासन पूर्वक जेणे भले
प्रकारे जाण्या छे तेने ज्ञानी श्रावक कहिये.

७० प्र०—कर्त्ताए कर्म अने क्रियाए बंध ते शी रीते?

उ०—जेवो कर्त्ता होय तेवुं कर्म निपजे, तथा ज्यां जेवा
हेतु त्यां तेवी क्रिया थाय; अने ते शुभाशुभ क्रियाए
शुभाशुभ कर्म बंध नीपजे; कह्युं छे के:—

दूहो.

कर्त्ता परिणामी द्रव्य, कर्मरूप परिणाम;
क्रिया पर्यायनी फेर, वस्तु एक त्रय नाम.

८९ प्र०–द्रव्य, गुण, पर्याय, शायी बगड्या छे ?

उ०–द्रव्य, ज्ञानावरणीदि कर्मना आवरणे, तथा गुण, रागद्वेष विभावपरिणतिए, अने पर्याय, मनोयोग कल्पनाए विकारभावने पाम्या छे.

९० प्र०– मति तथा श्रुतज्ञानी अने अज्ञानी जे जिनवाणी सांभळे तेने शी रीते परिणमे ?

उ०–मति अज्ञानीने विकल्परूपे तथा डामाडोळपणे परिणमे, तथा मतिज्ञानीने निर्विकल्पपणे तथा निर्धारतारूपे परिणमे, श्रुत ज्ञानीने वैराग्यरूपे तथा आस्तिकपणे परिणमे, श्रुत अज्ञानीने विषयरूप तथा नास्तिकरूपे परिणमे, एटले (माटे) सम्यग्दृष्टि जीवो जिनवाणी सांभळवाना अधिकारी जाणवा.

९१ प्र०–जीव कर्म साथे केवी रीते मळेल छे ? ते दृष्टांत सहित समजावो.

उ०–द्रव्यार्थिकनये जीव, तुंबीमृत्तिका न्याये कर्म संगाथे मळेल छे, एटले जेम तुंबडी उपर माटीनो थर लाग्यो होय पण तुंबडीनी अंदर कंई बगाड न होय तेम आत्माने कर्मनो संबंध जाणवो, तथा पर्यायार्थिकनये आत्मा, कर्म संगाथे खीरनीरपरे, एकरूपे लोलिभूत थयो थको चतुर्गति भ्रमण करे छे.

९२ प्र०–सोळ संज्ञा ते कइ अने तेमांथी कया जीवने केटली होय ते कहो ?

उ०–१ आहार, २ भय, ३ मैथुन, ४ परिग्रह, ५ क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ, ९ ओघ, १० लोक,

९६ प्र०—द्रव्येंद्रिय तथा भावेंद्रियनो भेद समजावो तथा ते शायी भरेल छे ? ते कहो.

उ०—द्रव्येंद्रिय ते आकार विशेष जाणवी ते मळ, मूत्र, रुधिर, मांसादि अशुभ पुद्गलथी भरी छे; भावेंद्रिय ते इंद्रियद्वाराए उपलब्ध विकारी ज्ञान ते रागद्वेषादि विकारोथी भर्युं छे.

९७ प्र०—आहारादि चार संज्ञानुं स्वरूप सविस्तर कहो.

उ०—१ आहारसंज्ञायकी जीव अनादिकाळनो पुद्गल खानपानादि वासनायी निरंतर भरेलो अतृप्त वर्ते छे, २ भयसंज्ञाए चारे गतिमां सदा कंपतो रहे छे, ३ मैथुनसंज्ञाए इंद्रिय विषयमिलाषिपणे भमतो फरे छे, ४ परिग्रहसंज्ञाए धन, स्त्री, पुत्रादिनी निरंतर ममताए मेळवुं मेळवुं करी रह्यो छे, तेणे करीनेज सदा कषायतापे तपेलो, संसारमां ढोकळांनी पेठे सीजाय छे, छतां सुख मानी रह्यो छे, ए चार संज्ञामध्येथी पहेली आहारसंज्ञा ते वेदनीय कर्मजनित छे, शेष त्रण मोहनीयजनित छे, वळी आहारसंज्ञाए शरीरपरत्वे हिंसादि अनेक पापकर्म हेतु प्रवर्ते छे, हिंसायी कर्मो घणां थाय छे, एथी पापबंध वधे छे, अने तेथीज अशाता वेदनीय प्रबळ पामे छे; तथा भयसंज्ञाए कल्पना कर्मयोगे व्यक्ताव्यक्तकर्म बंधाय छे; तथा मैथुनसंज्ञाए विषयना अने परिग्रहसंज्ञाए कषाय वृद्धिना घणा तीव्र कर्म बंधाय छे; एम चारने जोरे जीव अधोगतिए

जीव परिणामे द्रव्य छे, तेने संगे जीवने बुद्धि पूर्वक निज परिणाम देखायाः—वादळे ढांकेलो सूर्य मेघ घटाए आच्छादित छे, तोपण सूर्यप्रभा प्रगट अनुमाने करी जाणी लोको दिवस अने रात्रिनो विभाग समजी शके छे, तेथी सूर्य दीठो जेम कहिए. तेम आत्मा पण जिन वचन प्रतीतरूप अनुमान परिणामद्वाराए निर्मळ बुद्धिगम्य दीठो कहिए; वळी जेम धूम्र दिठे अग्नि दिठो कहीए तेम परोक्ष प्रत्यक्ष आत्मा, सम्यग्दृष्टि, वीतराग वचननी प्रतीते यथार्थ अनुभवरूपे देखे छे, तेनी शुद्धि, प्रतीति, श्रद्धान छे; एवीज रीते आत्मानुं जे यथार्थ भासन जाणपणुं थाय तेने सम्यग्ज्ञान कहिये; अने जेवो निज स्वरूपे एकांते वस्तुगते जीव द्रव्य निष्कलंक जाण्यो, तेवोज रागद्वेष विकल्प रहित परिणमे तेवारे स्वरूपाचरण चारित्र प्रगटे;

पूआइसु वयसहियं पूण्णं जिणेहि निद्दिठं,
मोहंकोहविहीणो, परिणामो अप्पणोधम्मो ॥ १ ॥

ए स्वरूप चोथा गुणठाणेथी मांडीने आगळ विशुद्ध, विशुद्धतर, विशुद्धतम यथायोग्य पामीये. पाठान्तरे (६३ प्रश्न)

७३ प्र०—निर्जरानुं स्वरूप, द्रव्यथी तथा भावथी सम्यग्दृष्टि अने मिथ्यादृष्टिने जेम होय तेम कहो.

उ०—निर्जरा एटले कर्मनुं साटन करवुं, खपाववुं; ते मध्ये मिथ्यादृष्टिने निर्जरा, आस्रवबंधपूर्वक होय; सम्यग्-

मूळ ज्ञान, दर्शन अने चारित्र ए मुख्य गुण छे; तेमां दर्शन तो सामान्य अवबोधरूप होवाथी ते विशेष अवबोधरूप ज्ञानगुणमां समाय छे, तेथी ज्ञान अने चारित्र बे रह्यां, तेमां ते निमित्त कारण, अने चारित्र ते उपादान कारणरूप छे; ते उपादान कारण सेवनरूपे चार संज्ञानी मंदताए जीव उंचो चढे छे.

९८ प्र०—सिद्धना जीवने अनंता गुण छे, ते समपणे छे के विषमपणे छे ?

उ०—निरावरणआश्रयी समगुणे छे, पण आप आपणा गुणना पर्याय धर्माश्रयीविषमपणे छे.

९९ प्र०—प्राणेकरी जे जीवे तेने जीव कहिए तो सिद्धने जीव केम कहेवामां आवे छे ?

उ०—सिद्धने द्रव्यप्राण नथी, पण भावप्राण चार छे, तेनां नामः—१ अनंतज्ञान, २ अनंतदर्शन, ३ अनंतसुख, अने ४ अनंत वीर्य; ए चार भावप्राणे सिद्ध जीवे छे, तेथी सिद्धने जीव कहीए, ए भावप्राण आवरणे द्रव्यप्राण सांपडे छे, ते कर्मजनित छे. केम जे स्वाभाविक अनंतदर्शनरूप भावप्राणने आवरणे इंद्रियप्राण थया, तेमज स्वज्ञानरूप भावप्राणने आवरणे श्वासोश्वास प्राण उपज्यो, स्वाभाविकसुखरूप भावप्राणने आवरणे आयुप्राण उपज्यो; स्वाभाविक अनंतबळ. वीर्यप्राणने आवरणे मनोबळ, वचनबळ, कायबळ, ए विभाविक प्राण उपज्या. ए अधिकार अध्यात्मसार ग्रन्थ मध्ये कह्यो छे,

उ०–आत्मद्रव्यमां द्रव्यनी शक्ति ते सम्यग्दर्शन, गुणनो प्रकाश ते सम्यग्ज्ञान, अने पर्यायनुं टरणपणुं अर्थात् स्थिरता ते सम्यक्चारित्र जाणवुं, एमज दर्शन गुणे द्रव्य शक्ति प्रगटे, ज्ञानगुणे गुणो प्रकाशे अने चारित्रगुणे स्थिरता गुण एटले स्वरूप रमणता प्रगटे, वधे.

७६ प्र०–उपयोग एटले शुं ? ते केटला छे, वगेरे फळ भेद स्वरूप स्पष्ट कहो.

उ०–चेतनानुं शुद्धाशुद्ध परिणमन, तेने उपयोग कहिये. ते बे प्रकारे छे, एक शुद्ध अने बीजो अशुद्ध; शुद्धोपयोगे सिद्धिगति एटले मोक्ष थाय; अने अशुद्धोपयोगना बे भेद छे, एक शुभ अने बीजो अशुभ; त्यां दान पूजादि परिणाम ते शुभोपयोग कहिये. तेने करी पुण्यबंध थाय, अने तेथी सद्गति पामे, अने हिंसादि पापपरिणाम ते अशुभोपयोग कहिये, तेथी पापबंध थाय, अने तेथी जीव दुर्गति पामे. (प्र. ६८)

७७ प्र०–पूर्वोक्त शुद्धाशुद्धोपयोग सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि आश्रि केवी रीते होय ? ते समजावो.

उ०–शुद्धोपयोग सम्यक्त्व पाम्या पछी होय छे, माटे ते सम्यग्दृष्टिने जाणवो, ते चोथा गुणठाणाथी बारमा सुधी शुभोपयोग मिश्रित होय छे, पछी तेरमे पूर्ण पद थाय छे; अशुद्धोपयोग सर्व संसारी मिथ्यादृष्टि जीवोने होय छे, ते मध्ये मिथ्यादृष्टिने

गाथा–सत्तरिसयमुक्कोसं, जहन्नयं वीस विहरमाण जिणा; समयखित्ते दस वा, जम्मपइ वीसदसगं वा ॥ ए प्रवचन सारोद्धार ग्रन्थनी गाथा जाणवी. तथा दोहराथी गाथानो भाव जाणवो.

विहरमान जिन चैत्यवंदन.

विवरो ए गाथातणो, कवि लेज्यो संभाल;
सित्तरिसो जिनवर हुवे, कहे के अइ काल. १
चउते काळ उत्सर्पिणी, वारे अष्टम जिन;
एकसो सित्तर जिनवर हुवे, एणीपरे सुणो सज्जन. २
पांच विदेहे मेळवी; साटसो विजय उप्पन;
भरतैरवत दस मीळे, सित्तेरसो होय जिन. ३
पडते काळे अवसर्पिणी, सोळम जिन लगे हुंतः
भरतैरवते जिन हुवे, साटसो विदेह रहंत. ४
केवळी कइ याळ परण्या, वयणे एहज सोय;
आठमा जिनथी सोळम लगे, विरह विदेह न होय. ५
सोळमा जिन सावे सहू, मुक्ते जाय जिन भाग;
विरहसमे सहू क्षेत्रमां, अन्तर एह विभाग. ६
सत्तरमा जिन होय भरह, पंच ऐरवत मही दस;
समयक्षेत्र दश कह्या, छेहवा एह अवदय. ७
सत्तर अढारह जिन वचे, जन्मे वीस विदेह;
वीस एकवीसमा वचे, संपन केवळ देह. ८
भरतैरवत दश म्हटे, मध्यम सांमत मीस;
चोवीसमा जिन शिव ग्ये, विदेह विचरे वीस. ९
अनागत चोवीसी सातमा, आठमा वचे निर्वाण;
विरह पडे सहू क्षेत्रमां, अन्ने न होय जिनमान. १०

छे के घटी गयो छे, ते जाणवा माटे ते ढोपमांथी एक चोखो तपासी जोतां सर्वनी खात्री थाय छे, तेम लक्षनेलक्षिन सम्यग्दर्शननुं स्वरूप जाणवुं.

७९ (पा. प्र. ७०) प्र०—सम्यग्दृष्टि देशविरति तथा सर्वविरति महात्माओ सम्यग्दर्शनवडे आत्मानो अनुभव केवी रीते करे ?

उ०—जेम वस्तु विचारतां, ध्यान धरतां मन विश्राम पामे छे, रस स्वाद सुख उपजे छे, परिणाम टरे छे, ते अनुभव प्रत्यक्ष जाणवुं, जेम साकरना एक गांगडाने चाखी जोतां हजार मण साकरनो अनुभव थाय छे, तेम सम्यग्दृष्टि जीव अंशे आत्माने वळी केवळी सदृश प्रत्यक्ष अनुभवे. तेथीज कह्युं छे केः—

अंशे होय इहां अविनाशी पुद्गल तमाशीरे;
चिदानंद घन सुजस विलासी, केम होय जगनो आशीरे.
ए गुण वीरतणो न विसारुं, संभारुं दिन रातरे;
पशु टाळी सुररूप करे जे, समकितने अवदातरे. १

८० (पा. प्र. ७०) प्र०—मुनिने सम्यग्दर्शनना वडे आत्मा स्वरूप प्रत्यक्ष अनुभवगोचर केवी रीते होय ?

उ०—ज्यां द्रव्य गुण पर्याय एकीभूत अभेद रत्नत्रयरूपे मुनि भणने, त्यां स्वरूप निजपद वंद प्रत्यक्ष देखे, स्वरूप रमण सुखास्वादन अनुभवे.

८१ प्र०—दर्शन अने ज्ञानमां मुख्य शुं फेर छे ? तथा छद्मस्थ सम्यग्दर्शनी अने केवळदर्शनी ए बेना देखवामां शो फेर ?

रत्न ते राजकुळे उपजे, गजरत्न अने अश्वरत्न ए ये वैताढ्य पर्वत उपर उपजे.

१०३ प्र०—नव निधान ते कया अने ते क्यां प्रगटे ?

उ०—गंगानदीने तटे नवनिधाननी नव पेटी प्रगटे छे, ते प्रत्येक पेटी १२ योजन लांबी, नव योजन पहोळी, अर्थ योजन उंची, ते योजन आत्मांगुल प्रमाण जाणवा, अने नवनिधि मंजुसने आकारे छे, वैडूर्यमणिरत्नमय कमाड छे, तेना तथा तेमांनी वस्तुनां नाम कहे छे:—१ नसर्पिक, तेमां नगर निवेस ग्रामादि उत्पादक विधि छे; २ पांडुक, तेमां धान्य बीजादिकनी सर्व संपत्ति छे; ३ पिंगळ, तेमां नर नारी हय गयनां विविध आभरणो छे; ४ महापद्म, तेमां चउदे जातिनां रत्नो छे; ५ मलि, तेमां विविध प्रकारनी सुगंधि पुष्पादि विगेरे वस्तुओ छे; ६ काळ, तेमां त्रिकाळ ज्ञाननां पुस्तको छे; ७ महाकाळ, तेमां सोनुं, रुपुं, झवेरात, लोह विगेरे सर्व द्रव्य अखूट छे; ८ माणक नामे तेमां राजनीति, युद्धनीति अने सर्व हथीयार युद्धनी नीति छे; ९ सुखनिधि, तेमां चतुर्विध नाटकादि संगीत शास्त्रादिना ग्रंथो छे; ते प्रत्येक निधाने एक हजार व्यंतर देवो अधिष्ठायक छे, तेनुं आयु एक पल्योपमनुं छे.

१०४ प्र०—प्रभु ज्यां पारणुं करे त्यां धनवृष्टि देवताओ केटली करेछे ?

तथा कायचोगे परकार्यनी दयारूपे जयणापूर्वक
प्रवर्तन छे. जयंचरेजयंचिट्ठे, इत्यादि.

८३ प्र०—मुनि. रत्नत्रयना उपयोगवतनी जन्म जरा अने मर-
णना भय शी रीते टळे ?

उ०—सम्यग्दर्शनथी घणा जन्म मटे, सम्यग्ज्ञानथी जरा
दुःख जे वेदना ते मटे, तथा सम्यक्चारित्र गुणे
मरण भय टळे. एम त्रण गुणे जन्म जरा मरणना
भय मटे.

८४ (७१) प्र०—आगमप्रमाण, अनुमानप्रमाण, उपमानप्रमाण, अने
प्रत्यक्षप्रमाणे, आत्मानी सिद्धि करवी. अने ते
प्रत्येक प्रमाण मानतां जे फळ थाय ते कहो.

उ०—१ आगमप्रमाणे, षड्द्रव्य, परस्परवस्तुरूपे जे वीत-
रागे भाख्या छे ते वचनोने सहित करी मानवां,
पण मेरु के कुत्काकुत्कपणुं न करवुं; ते मानतां
आत्माने प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन धर्मनी पुष्टि थाय;
२ अनुमानप्रमाणे लक्ष्य लक्षने निर्धार थाय, जेम
सुख दुःख वेदनां आत्मानुं चेतना लक्षण जणाय
छे. तथा जेम धूम दीठे अग्नि होयानी प्रतीति
थाय छे, त्यांहि आत्माने वस्तुगते अनुभवीने वस्तु-
ना गुणनो अंशे प्रत्यक्ष अनुभव थाय, ३ उपमा
करेली छे, जेम " आजने काळे सम्यक्त्व पाम्यो
ते जाणे केवळज्ञान पाम्यो " एम; ए मानतां
आत्माने विनयगुणनी पुष्टि थाय, ४ प्रत्यक्ष प्रमाणे
जेनां परमात्माए कह्यां छे, तेमांज अने पुण्य पापनां

१०७ प्र०–जीवने मिश्रगुणठाणुं चढतां के पडतां कोने केवी रीते आवे ते कहो.

उ०–अनादि मिथ्यात्वी होय तेने चडतां न आवे. केमजे ते प्रथम उपशम सम्यक्त्व पामे, ग्रंथिभेद करी चोथे आवे, माटे अनादि मिथ्यात्वी पहेलेथी चोथे आवे, माटे तेने त्रीजुं मिश्र चढतां न आवे, अने सादि मिथ्यात्वी जीव सम्यक्त्व पामीने पडयो होय ते पाछो क्षयोपशम सम्यक्त्व पामे, तेने त्रीजुं चढतां पडतां आवे.

१०८ प्र०–समोहिया, असमोहिया, मरण ते कोने कहीए ?

उ०–समोहिया मरण ते जीव अहींथी नीकळे त्यारे समकाळे सर्व प्रदेशे नीकळी परभवे जाय, जेम सीधो दडो फेंकतां दडाना प्रदेश एक वखते दडा साथेज जाय छे तेम जाणवुं; अने असमोहियामरण ते जीवना प्रदेश श्रेणिबद्ध आगळथी जाय, एटले अहिं तथा परभवे आत्म प्रदेशनी मरणावसरे श्रेणि मंडाय ते जेम पतंगनी दोरी हाथने अने पतंगने लागेली छे तेवी पेठे जीव प्रदेश नीकळे ते.

१०९ प्र०–जीवनो शुद्धोपयोग गुण जे सम्यक्त्व, तथा चरण गुण ते चारित्र तेने आवरवाने कोण बळवत्तर छे ?

उ०–आत्मोपयोग गुण, आत्मवस्तु जीवन गुण जे सम्यक्त्व छे, तेने आवरवाने मिथ्यात्व समर्थ छे; अने एवुं परिणमनसुख एटले स्थिरता गुण आवरवाने अविरति समर्थ छे; माटे मिथ्यात्वोदये समकित न

शेठ, मेतार्यजी आदि महात्माओना चारित्र सांभळे थके परम वैराग्य शांत रस प्रगटे, तेथी नोकर्मनो रोग टळे.

८६ प्र०—दर्शनादि अनंत चतुष्क प्राप्तिना कारण तथा स्थान कहो.

उ०—१ धर्म रुचिथी सांभळवो, तथा ज्ञानाभ्यासमां उद्यम रुचि होय तेटलाथी सम्यग्दर्शन गुण प्रगटे; २ तत्त्वातत्त्वगवेषक बुद्धि होय तेथी सम्यग् ज्ञानगुण प्रगटे, ३ पांच इंद्रिय विषय विकार, क्रोधादि कषाय, पांच प्रमाद इत्यादिनो जे त्याग बुद्धि होय तेथी चारित्रगुण निपजे, ४ वस्तुगते, स्वरूपानुभव रमणता तल्लीनता होय तेथी वीर्यगुण प्रगटे; हवे ते चारेनां स्थान कहे छे:—दर्शनगुणनुं स्थान चक्षु, ज्ञानगुणनुं स्थान हृदय, चारित्रगुणनुं स्थान चरण, अने उत्साह इच्छादिरूप वीर्यगुणनुं स्थान बाहु छे.

८७ प्र०—अहिंसानुं स्वरूप तथा तेना विविधभेदो दृष्टांत सहित समजावो. उ० मूळ जूनी हस्तलिखित प्रतिमां हिंसाना भेदो संबंधी प्रश्न छे. स्वरूप हिंसा, अनुबंध हिंसा, द्रव्य हिंसा, भाव हिंसा, बाह्य हिंसा, परिणाम हिंसा, योग हिंसा, इत्यादि हिंसाना घणा भेद छे. साधुजी नदी उतरे छे पण मोहवर्ति (बुद्धिपणाए) हिंसाना परिणाम नथी तेथी ते स्वरूप हिंसा जाणवी. तथा सम्यग्दृष्टिने देव पूजा, गुरुवंदना, साधुने आहारदान इत्यादि कार्ये हिंसा अनुबंधरूप छे ते माटे ते स्वरूप हिंसा कहेवी.

पूर्व तेना नव क्रोड पद छे, १४ लोक बिंदुसार वेमां साडावेर क्रोड पद छे, त्यां एक पदमां ५१८८८४० अक्षर छे.

११२ प्र०–बीजे गुणठाणेजिननामकर्मसत्तावंत जीव केम न आवे ?

उ०–क्षयोपशम समकिती, जिननाम बांधी पडतां पहेले आवेछे, तेने सत्ताए १४८ प्रकृति होय छे, कर्मग्रंथनी अवचूर्णिमध्ये कह्युं छे. संतेअडयालसयं जाउवसमविजिण वियतइय.–अस्यार्थ. सत्ता ए कर्मनी प्रकृति. १४८ मिथ्यात्व गुणठाणामांडी यावत ११ अगियारमा सुधी होय, पणं बीजे त्रीजे गुणठाणे जिन नामकर्म विना १४७ प्रकृति सत्ताए होय ते केम ? तेनो अभिप्राय कहे छे. चोथे गुणठाणे क्षयोपशम समकित छे ते जिन नामकर्म बांधे ते बांधीने पाछो पडे. समकितथी पडेतो ते मिथ्यात्वे आवे पण बीजे त्रीजे गुणठाणे नावे. तेमाटे मिथ्यात्व गुणठाणे १४८ प्रकृति होय अने सासादन गुणठाणुं ते उपशम भाव आश्रयी छे, अने उपशम समकित छतां जिन नामकर्म न बांधे. चोथे गुणठाणे ज्यां सुधी उपशम समकित होय त्यां सुधी जिन नामकर्म न बांधे. स्तोतकाल माटे, क्षयोपशम तथां क्षायिकसमकित छते जिननाम बांधे ते पाछो वमे ते क्षयोपशम समकितथी पडतो जिन नामकर्मवाळो प्रथम गुणस्थानके आवे पण बीजे त्रीजे नावे, तिहां १४८ प्रकृति सत्ताए होय तेथी

४ हिंसा तीव्र, अने फळ विपाक तीव्र, ए भेद जीवना अध्यवसाय भेद विशेषे, विपाक फळनो पण भेद जाणवो, अहिं जमाली, दृढप्रहारी, चिलाती पुत्र कुमारडुजो इत्यादि दृष्टांतो यथासंभवे भाववां.

८८ प्र०—इच्छादिक त्रण योगनुं स्वरूप समजावो.

उ०—१ इच्छायोग ते शुभ करणी व्रतादि आदरवानी उत्कृष्ट इच्छा, दश प्रकारे यतिधर्म आदरवानी इच्छा २ शास्त्रयोग ते हेय, ज्ञेय अने उपादेय मध्येथी उपादेय ते अंगीकार करवुं ते प्रमाणे शास्त्रानुसार विधिपूर्वक व्रतादि पाळवुं ते, ३ सामर्थ्ययोग ते कोइ आत्मा, ज्ञान अने वैराग्यनी प्रबळ शक्तिये अनंत काळ भोगववा योग्य जे कर्म तेने थोडा काळमां भोगवी क्षय करे; योगदृष्टिसमुच्चय ग्रन्थे त्रण योगनी व्याख्या करी छे. श्री गजसुकुमालजीनी पेठे, कयुं छे जे:—

दुहा.

क्रियायोग अभ्यास है, फळ है ज्ञान अबंध;
दोनुंकुं ज्ञानी भजे, एकमति मतिअंध. १
इच्छा शास्त्र समर्थना, त्रिविध योग है सार;
इच्छा निज शक्ति करी, विकल योग व्यवहार. २
शास्त्रयोग गुणठाणको, पूरण विधि आचार;
पद अतीत अनुभव कह्यो, योग तृतीय विचार ३
इहे यथारुच योगमें, कही सकळ नय सार;
भावसेनता तो टरे, परे न मिथ्याचार. ४

मिथ्यात्वमोहनीनी छे. ते मध्ये छ पहेली ते बावण जेहवी छे, एक सम्यक्तमोहनी ते कुतरी सरीखी छे. तेहनो विवरो. ए सात प्रकृति जिहां उपशमे तिहां उपशम समकित कहिए. ए साते प्रकृति सत्तामाहिंथी क्षय करे तिहां क्षायिक समकीत. ए सातमांहियी कांईक खपे कांई उपशमे तिहां क्षयोपशम समकित कहिए. ज्यां ए सातमांनी चार खपे, बे उपशमे, अने एक वेदे ते पहेलो भेद; तथा ए सातमांनी पांच खपे, एक उपशमे अने एक वेदे ते बीजो भेद; एम बे प्रकारे क्षयोपशम वेदक छे; तथा हवे त्रण प्रकारे क्षयोपशम समकित छे, ते कहे छे ते आवी रीतेः—१. चार खपे त्रण उपशमे, २ पांच खपे बे उपशमे, ३ छ खपे एक उपशमे; एम ए त्रिविध क्षयोपशमसमकित अने पूर्वोक्त द्विविध वेदक भावनौं मळी क्षयोपशम पंचविध स्वरुप कयं; हवे क्षायिकवेदकनो एक भेद ते किम ? छ खपावे, एक वेदे ते क्षायिकवेदक कहिये. तथा छ उपशमावे अने एक [illegible] उपशम[illegible] कहिये; तथा सातने क्षये क्षायिक अने सातने उपशमे, उपशमिक एम सम्यक्त्व नव प्रकारे कयुं.

११४ प्र०—मोहनीयकर्मनुं लक्षणस्वरूप कहो.

उ०—१ जे विभ्रमपणे आत्मस्वरूपने विपरीत जाणे, जेम [illegible] रूपं कहे ते मिथ्यात्व मोहनी, २ मिश्र-

११ सुख, १२ दुःख, १३ मोह, १४ वितिगिच्छा, १५ शोक, १६ धर्म, ए सोळ संज्ञाओमांथी पेहेली दस संज्ञा एकेन्द्रियने, तथा ओघ सिवाय बाकीनी पंदर बेन्द्रियादिकने होय अने पंचेन्द्रियने सोळे संज्ञा होय.

९३ प्र०—क्रोधादि दोषोनी मुख्यता जीवभेद विशेषताए कहो.

उ०—चारगतिमां, क्रोध, नरकमां, मान मनुष्यमां, माया तिर्यंचमां अने लोभ देवगतिमां मुख्य होय छे; हवे मनुष्य जातिमां क्रोध रजपुतने, मान क्षत्रियादि कुळवानने, माया गणिका तथा वणिकने, लोभ ब्राह्मणने, राग स्नेही मित्रादिने, खेद तथा द्वेष ते कायर छेल्ली, अदेखा, तथा दीनदुःखीआ लोकोने होय, शोक जुगारीने, चिन्ता चोरनी माताने, भय ते कायरने तथा कृपणादिने विशेष होय.

९४ प्र०—धर्म अने कर्म विषे यथायोग्य खुलासो करो.

उ०—धर्म ते आत्मभावे शुद्धोपयोगे होय, अने कर्म ते अशुद्धोपयोगे करणी क्रियाए तथा शुभाशुभभावे भविनव्यताए थाय; कर्म ते क्रियाए अने धर्म ते अक्रियारूपे होय. जेवी शुद्धोपयोगनी तीव्रता तेवी धर्मनी वृद्धि जाणवी.

९५ प्र०—जिनना चार निक्षेपाना स्थान शरीरमां क्यां छे?

उ०—नाम जिननुं स्थान जीभमां छे; स्थापना जिननुं चक्षुमां; द्रव्यजिननुं मनोयोगमां, केम जे श्रद्धा मनमध्ये छे तेथी; अने भावजिननुं स्थानक हृदयमां छे.

पूर्वे तेना नव क्रोड पद छे, १४ लोक बिंदुसार तेमां साडाबेर क्रोड पद छे, त्यां एक पदमां ५१८८८४० अक्षर छे.

११२ प्र०–बीजे गुणठाणेजिननामकर्मसत्तावंत जीव केम न आवे ?

उ०–क्षयोपशम समकिती, जिननाम बांधी पडतां पहेले आवेछे, तेने सत्ताए १४८ प्रकृति होय छे, कर्मग्रंथनी अवचूर्णिमध्ये कह्युं छे. संतेअडयालसयं जाउवसमविजिणु वियनइय.–अस्यार्थः सत्ता ए कर्मनी प्रकृति. १४८ मिथ्यात्व गुणठाणामांडी यावत ११ अगियारमा सुधी होय, पण बीजे बीजे गुणठाणे जिन नामकर्म विना १४७ प्रकृति सत्ताए होय ते केम ? तेनो अभिप्राय कहे छे. चोथे गुणठाणे क्षयोपशम समकित छे ते जिन नामकर्म बांधे ते बांधीने पाछो पडे. समकितथी पडेतो ते मिथ्यात्वे आवे पण बीजे त्रीजे गुणठाणे नावे. तेमाटे मिथ्यात्व गुणठाणे १४८ प्रकृति होय अने सास्वादन गुणठाणुं ते उपशम भाव आश्रयी छे, अने उपशम समकित छतां जिन नामकर्म न बांधे. चोथे गुणठाणे ज्यां सुधी उपशम समकित होय त्यां सुधी जिन नामकर्म न बांधे. एतोतावता माटे, क्षयोपशम तथा क्षायिकसमकित छते जिननाम बांधे ते पाछो वमे ते क्षयोपशम समकितथी पडतो जिन नामकर्मवाळो प्रथम गुणस्थानके आवे पण बीजे त्रीजे नावे. तिहां १४८ प्रकृति सत्ताए होय तेनी

प्राप्त छे, संज्ञा परिग्रह घणो थाय छे; वळी
दीर्घी जेने विषयोनी जे आहारसंज्ञाए करीपुष्टि
जेने वळी हितरूप मानि. तेने वळी दुःख मानि.
तेथी उत्कृष्टपणानो करीने तेथी दुर्गतिमां अनंतोकाळ
संसार भमे छे, माटे उत्तम जीवोने आहार अने
निद्रा अल्पज होय छे. एमज भयसंज्ञाए कल्पना-
जाळ करे छे. तेथी मनोयोगादि मलिनपरिणतिने वधे
छे. तेथी आठकर्मोनो निविडबंध थाय छे, चतुर्गति-
भ्रमण वधतुं थाय छे; तेमज मैथुनसंज्ञाए विषय
सेवे. तेथी पोतना स्वरुपना गुणने आवरे, तेथी
जीव संसारमां सदैव हीनअंग, मूर्ख, दरिद्री थयो
थको घणो अशाता सर्वत्र पामे; एवी रीते
परिग्रह संज्ञाए कर्मबंध घणो थाय, तेथी संसार
वधे छे. एम आ संसारना मूळ हेतुरुप जीवने
आ महा बादरवशी अनादिकाळनी लागेली भव-
वासना हाळमोहन चार संज्ञाओ छे, तेने जेम बने
तेम उत्तम जीवे ज्ञान ने वैराग्य धारीने, परमात्मा-
ना स्मरणे करीने वश करवानो प्रयत्न करवो; ए
चारमांथी पहेली बे आहार अने भय संज्ञा सातमे
प्रमत्त गुणठाणाथी निवर्ते छे. मैथुनसंज्ञा नवमे
गुणठाणे निवर्ते छे; अने परिग्रह, लोभ, ममतादि
दशमे गुणठाणे निवर्ते छे; माटे गुणठाणानी विशुद्ध
परिणति पामवा माटे ए चार संज्ञानी मंदता थवी
जोइए; तेनी तीव्रताए जीव निगोद सुधी जाय छे;
अने मंदताए ऊर्ध्वगतिए चढे छे; तेम ते जीवने

१२० प्र०—गुणग्राही, गुणगवेषी, सहजकारी (सहायकारी) ते शुं?

उ०—१ गुणग्राही एटले जे जीव सद्गुरू पासे सूत्र सिद्धांन्त सांभळीने घणी प्रशंसा करे, कीर्ति करे, गुर्वादिकना कोइ कर्म औदयिक अवगुण देखीने तेने द्वेष न उपजे, केमके जो खेद के अरूचि थाय तो भक्ति विनयादि रूचिकर मन भग्न थइ जाए, तेथी आगळ गुण थतो अटके, अने होय ते पण कदाच वमी नांखे; २ *गुणगवेषी* एटले गुर्वादिमांहे कोइपण उपकारादि गुण होय ते संभारीने आक्रोशादिकने लीधे खेदाय नहि; कदाच माडुं लागे पण पाछुं तेमथी हित बुद्धि, प्रीति, विश्वास, कृपादि अनेक निस्पृहिपणे करेला उपकारने संभारी मन निर्मळ थाय, अवगुण, दृष्टिमां न आवे, तेथी विनयादि भक्ति चूके नहि; ३ सहायकारि ते गुर्वादिकने अन्न, पाणी, वस्त्र; औषधादिथी घणी सहाय करे; पोते गांठथी, खरचे, गांठे न होय तो कोइ योग्य जीव पासेथी लावीने गुरुनी सहाय करे; तथा सेवा, भक्ति, वैयावच्च, पोते जाते त्रिकरण शुद्धिए करी महा शाता उपजावे, प्रसन्नता करावे, जेने परिणामे पोताने अनंत पापनी निर्जरा अने ज्ञानादिकनी परम शुद्धि तथा वृद्धि थाय; जेम शिष्योमां गुर्वादि उपर अंतरंग प्रेम, भक्ति, रुचि, विशेष रसिकता सहित दीप्तिमान् दिन प्रतिदिन अधिकने अधिक थतां जाय. तेम उत्तम

१०० प्र०—लेश्या कया कर्मयोगे छे ?

उ०—लेश्या, योग प्रत्ययिक नामकर्मजनित छे, अने शुभाशुभ परिणामरूप लेश्या भावकर्मजनित छे.

१०१ प्र०—वीस विहरमान तीर्थकरो संबंधी जघन्य, मध्यम, अने उत्कृष्ट, समकाळे जन्म दीक्षा, ज्ञानादि हकीकत सविस्तर समजावो.

उ०—महाविदेहक्षेत्रमां श्री विहरमान तीर्थंकरो केवळीपणे विचरे छे, वळी कोइ बाळकपणे, कोइ राज्यावस्थाए, कोइ गर्भमां होय, त्यारे जघन्यकाळे अढीद्वीपमां १६० विजयमां १६८० होय, हवे हाल वीस प्रभु छे, ते ज्यारे जन्मथकी एक लाख पूर्व आयुना थाय त्यारे बीजा प्रभु जन्मे, वळी गर्भमां पण होय, एम गर्भना तीर्थंकर प्रभु न गणाय, तेथी चोराशी लाख पूर्वायुमां तीर्थंकरना जीवो बाल्यावस्थामां, युवास्थामां, राज्यावस्थामां तथा श्रमणावस्थामां तथा केवळी अवस्थामां सर्व मळी ८३ तीर्थंकरो होय, ते संख्याने वीसगुणा करीए त्यारे १६६० थाय, ते मध्ये वीस विचरता मेळीए त्यारे १६८० थाय, अने ज्यारे उत्कृष्टपणे अढी द्वीपमां १७० प्रभु केवळिपणे विचरे छे, त्यारे एकएकना अवतारमांहे ८३ तीर्थंकर उपजे, तेने १६० गुणा करीए त्यारे १३२८० थाय तेमां १७० वर्तता मेळीए त्यारे १३४५० थाय. एहवुं अंचलगच्छ नायके कह्युं छे, जिम सांभळ्युं तिम लख्युं छे. पछे तो जेम केवळज्ञानीए प्रकाश्युं तेम सत्य.

करे तो फरी तेवांज शाता अशातारूप वेदनीकर्म बांधे, ते बंध उपादान कारण जाणवुं, अने पूर्वोक्त हर्ष शोकादि प्रवृत्ति ते निमित्त थयुं जाणवुं, एम कारण कार्ये निमित्तथी उपादान अने उपादानथी निमित्त एम जेवां वृक्ष तेवां फळ तथा जेम बीज-मांथी वृक्ष अने वृक्षमांथी बीज नीपजे छे तेम कर्मथी शाता अशातादि जीव पामे छे, अने फरी अज्ञानपणे समभावे न रहेवाथी एवांज बांधी संसार परंपरामां भमे छे; शाता अशाता आत्माश्रित जीवविपाकी प्रकृति छे, अने सुख दुःख पुद्गलाश्रित होवाथी पुद्गलविपाकी प्रकृति छे.

१२२ प्र०—वेदना केटला प्रकारनी; कइ, तेनुं स्वरुप दृष्टांतथी समजावो.

उ०—१ वेयणादुविहा, अब्भोवगमिया उवक्कमिया; स्वयमभ्युपगम्यते वेद्यते यथा साधवः केशलुंचनातापना-दिभिः वेदयन्तीति अभ्युपगमिकी वेदना, उपक्रमिकी तु स्वयमुदीर्णस्योदीरणाकरणेन च उदयं उपनीतस्य वेद्यस्य अनुभव इत्यर्थः, जे वेदनीयकर्म काळ परि-पाके स्वयमेव सहज उदय आवे ते समभावे वेदीने खपावे ते उपक्रामिकी, अने २ जेम साधुमहाराजा केशलोच आतापनादि परिषह वेदनाने पोते उदीर-णाए उदीरी समभावे वेदी कर्मनी निर्जरा करे छे ते वेदनाने अभ्युपगामिकी कहिये. तथा पाठान्तरे ज्ञूनी प्रतिमा नीचे प्रमाणे छे—एक वेदनीकर्मस्थिति पाकीस्वभावे उदय आवे ते समभावे वेदीने खपावे

[illegible] करी, एम [illegible];
[illegible] तेम करी, [illegible] एम [illegible]. ११
[illegible] एम करे, जिनवर [illegible] महान.
[illegible] दिन [illegible], [illegible] गान. १२
[illegible] [illegible], [illegible];
[illegible] होय, [illegible] [illegible]. १३
[illegible] तेम [illegible];
[illegible] पहिले, [illegible] उत्तर [illegible]. १४
[illegible] एम [illegible] करे, [illegible] पीन;
[illegible] [illegible] सन्मे [illegible]. १५
[illegible] [illegible] करी, [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible] तन, [illegible] [illegible]. १६
[illegible] पडते करे, [illegible] धर्म [illegible];
[illegible] करी, [illegible] धर्म सहाय. १७
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible], आनंदरुचि [illegible]. १८
जिनवर [illegible], [illegible] [illegible];
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible]. १९

०२ [illegible]—[illegible] १४ [illegible] [illegible].
उ०—१ [illegible], २ [illegible], ३ [illegible], [illegible]
[illegible] [illegible], ४ [illegible], ५ [illegible],
[illegible], ७ [illegible], [illegible],
८ [illegible] ९ [illegible] [illegible], १०
[illegible], ११ [illegible] [illegible], १२
१३ [illegible].

होप; तथा अलाभ ते अंतरायना उदये होय
सर्वे मुनिमहाराजा शुद्धात्मोपयोगस्वरूप विचारी मह
वैराग्यभावने भावतांपक्कां सम्यक्प्रकारे सहे प
अस्थिरता के खेदादि कांई न करे; त्यां परिषह
एटले समस्त प्रकारे समभावे सहवुं, जे कर्मोदय
आवे ते; अने उपसर्ग ते स्वकृत या परकृत पीडा
जे प्रगटे ते समभावे सहेवी, अथवा मतांतरे उप
एटले समीपे अने सर्ग एटले आवीने उपजे जे ते
उपसर्ग स्वाश्रित छे अने पराश्रित परिषह छे.

१२५ प्र०—बंध, उदय, उदीरणा अने सत्ता ए चारमां केटली आत्मिक अने केटली पौद्गलिक छे ?

उ०—उदय अने सत्ता पौद्गलिक; बंध अने उदीरणा आत्माश्रित छे.

१२६ प्र०—अष्ट पुद्गल वर्गणानुं अल्प बहुत्व कहो.

उ०—आठ वर्गणामांहे औदारिकना थोडा; तेथी अनंतगुणा वैक्रिय, तेथी घणा आहारक, तेथी घणा तैजस, तेथी घणा भाषाना, तेथी घणा श्वासोश्वासना, तेथी घणा मनना अने तेथी घणा कर्मणवर्गणाना पुद्गलो जाणवा.

१२७ प्र०—बावीस परिषह पैकी कया कया परिषहो कया कया कर्मथी उपजे छे ?

उ०—ज्ञानावरणीथी २, मोहनीना ८, वेदनीना ११, अंतरायनो १, ए कर्मथी उपजे. अत्र गाथा

...नं। 'ति दंसण परिसहोस्नाणनाणं प्रथमंमि।
दंसणमोह... तम परिसहमतेर चरित्तमोहंमि ॥ १ ॥

उ०—जघन्यथी साडाबार लाख अने उत्कृष्टथी साडीबार क्रोड सोनैया वरसावे.

अद्धतेरस कोडी, उक्कोसा तत्थ होई वसुधारा।
अद्धतेरस लक्खा, जहन्निया होई वसुधारा ॥ १ ॥

प्र०—चउद मोटी विद्यानां नाम कहो ?

उ०—१ नभोगामिनी, एटले आकाशमां गमन करवानी विद्या, २ परशरीर प्रवेशिनी, ३ रूप परावर्तिनी, ४ स्तंभिनी, ५ मोहिनी ६ सुवर्ण सिद्धि, एटले सोनुं बनाववानी विद्या, ७ रजत सिद्धि. एटले रुपुं बनाववानी विद्या, ८ रससिद्धि, एटले रसकूपिकादि रस करवानी विद्या, ९ बंध मोक्षिनी, एटले गमे तेवा बंधनमांथी मुक्त करवानी विद्या, १० शत्रु पराभविनी, ११ वश्य करणी, १२ भूतादि दमिनी, एटले सर्व अग्निना उपद्रवने समाववनारी विद्या, १३ सर्व संपत्करी, १४ शिवपद प्रापिनी.

१०६ प्र०—आचार्य महाराज आत्मस्वरूप पंच प्रस्थानने ध्यावे एटले शुं ?

उ०—ध्याननी पांच अवस्था साधवामां सावधान आचार्य भगवंत, पंचपद आराधे छे, तेनां नाम. १ अभय, ते अरिहंतनुं ध्यान, २ अकरण, ते सिद्धनुं ध्यान, ३ अहमिंद्र, ते आचार्यनुं ध्यान, ४ तुल्य एटले उपाध्यायनुं ध्यान. ५ कल्प एटले साधुनुं ध्यान. ते समान अवस्थाए पंच प्रस्थानमय आचार्यनी छे.

ते जिननी कीधी इम 'कारणे कार्योपचार' [illegible] जिननी स्थापनाथी आज प्रत्यक्ष प्रमाणे [illegible] मल्या कहीए 'अत्र संदेहोनास्ति' इति [illegible] तथा छापेली प्रतिमां नीचे प्रमाणे पाठ छे.

अविरोध, अस्खलित, अविसंवादि, [illegible] एकांत, दयामय, संपूर्ण सत्य, मधुर, प्रिय, [illegible] अमर्म प्रकाशक, सर्वज्ञ अने सर्वदर्शिपणाना [illegible] णोए पूर्ण, तथा मुद्राकारे शांत सुधारसमय [illegible] यादि चिन्ह रहित इत्यादि अनेकप्रमाण गोचर वीरपरमात्मा आगमपणे सिद्ध [illegible] अनुमान प्रमाणे जेम धूम दिठे अग्निनो [illegible] थाय तेम पूर्वापर महात्माओना अनिवार्य [illegible] तेना विविध उत्कृष्ट सदाचार प्रवर्तक [illegible] प्रमाणोए ज्यारे एंमी नेयुं थानो अनुभवी [illegible] सिद्ध थाय तो तेनी [illegible] [illegible] थानो [illegible] [illegible] मानी लेवाय छे, अने होय [illegible] [illegible] तेमज [illegible] रीते श्री वीर परमात्माना अनेक वचनो [illegible] [illegible] अन्य दर्शनिना वचनो [illegible] [illegible], [illegible] अने प्रमाणतन [illegible] [illegible], तो [illegible] सूक्ष्म, [illegible] अगोचर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] माने ते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वचनो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सिद्ध [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]



उ०—त्रसनाडी बहार एकेंद्रियथावरकायजीव विदिशीए उपजनारने पांच समय लागे छे.

१२२ प्र०—अभिसंधिवीर्य अने अनभिसंधिवीर्य ते शुं ?

उ०—अभिसंधि वीर्य ते उपयोग पूर्वक आत्मवीर्य; अने अनुपयोग आत्मवीर्य ते अनभिसंधिवीर्य.

१२३ प्र०—समकिती श्रावकने गृहस्थपणे छठुं गुणठाणुं स्पर्शे के नही ?

उ०—सम्यग्दृष्टिए देशविरति गृहस्थावास छतां कोइ जाणश्ये जे ते चोथा पांचमां गुणठाणावालाने निर्मल अध्यवसाए ध्यानदशाए शुभयोगे शुभ धर्मध्याने छठा सातमा गुणठाणाना परिणाम आवे पछे ते कालान्तरे अंतर्मुहूर्तमात्र रहीने पछे मटी जाय. पोताना गुणठाणा माफक परिणाम रहे एवुं कहे वे असत्य स्वमति कल्पना पण कोइ ग्रन्थोक्त नहीं. तत्रोत्तरं चोथा पांचमाथी भावचारित्र गुण आवे चढते १३ मा १४ सुधी चढीने मरुदेव्यादिनीपरे पुण्याढ्यराजानीपरे सिद्धिवरे पाछो ते गुणठाणा फरसीने पडे नहि. गृहस्थवासी गमे तेवो उत्कृष्ट श्रावक होय, तोपण तेने गुणठाणुं पांचमुंज होय छे; पण छठुं सातमुं न कहेवाय; केमजे गुणठाणानी प्राप्ति कषायना क्षयोपशमने आधीन छे, अने अध्यवसायनी निर्मळता ते निज परिणतिने आधीन छे, ते परिणति पोताना अध्यवसायनी निर्मळताए कषायनो क्षयोपशम करीने अधिक उंचा गुणठाणानी परिणतिरूप

ते तेमज क्षायिकसमकीतीने तथा क्षयोपशमसमकितीने त्रीजुं चोथुं न होय पण उपशमसमकीती पडतां बीजे त्रीजे आवे तेने जिननामनो बंध नथी; बीजे त्रीजे सत्ताए १४७ प्रकृति होय, उपशम समकित आखा भवनां पांच वखत आवे छे, तेमां चारवार श्रेणिगत अने पांचमीवार पडतां आठमे गुणठाणे अटकी क्षपकश्रेणि मांडीने केवलज्ञान पामे.

११३ प्र०—क्षयोपशम, उपशम अने क्षायिक सम्यक्त्वनुं स्वरूप तेना भेद सहित टुंकमां कहो.

उ०—क्रोधादि चार अनंतानुबंधी चारित्रमोहनी प्रकृति अने मिथ्यात्वमोहनीनी त्रण प्रकृति, ए सातने उपशमावे त्यारे उपशमसमकित अने सातेनो क्षय करे त्यारे क्षायिक अने सात प्रकृतिना उदयनो क्षय करे अने उदयमां न आवेलां उपशमावे तेने क्षयोपशम सम्यक्त्व कहे छे. हवे ते विषे जे कांइ विशेष जाणवा योग्य छे ते कहे छे:—

दुहो.

चार खपे त्रण उपशमे, पंच क्षय उपशम दोय;
षट् उपशम एक खय, क्षयोपशम त्रिक होय.

अथवा

क्षयोपशम वर्ते त्रिविध, वेदक चार प्रकार;
क्षायिक उपशम युगल युत, नवधा समकित धार.

दुहानो खुलासो:—

सात प्रकृति मध्ये चार चारित्रमोहनीनी छे. त्रण प्रकृति

१३६ प्र०—दीवा प्रमुख ज्योतिमय पदार्थोना प्रकाश पडे छे, ते दीवामध्ये रहेला अग्निकाय जीवना पर्याय छे ?

उ०—दीवा मध्ये जे अग्निना जीव छे, ते मांहेज परिणमी रह्या छे, पण दाहकरूप पर्याय छे ते बाहेर नीकळे नहि, तथा दीवाना प्रकाशरूप पुद्गल जे बाहेर दीसे छे, तेतो विस्रसा पुद्गलनी पर्याय छाया छे. तथा दीवानी बाहेर जे प्रकाशरूप पुद्गल दीसे छे ते, तथा प्रकाशरूप पुद्गलना निमित्ते, अपर विस्रसा पुद्गल श्रेणिबद्ध जमाव थाय छे ते अचित्त दीसे छे. पण ते अग्निकाय जीवना पर्याय नहि, तेना (अग्निना) गुण पर्याय तो दाहक रूपे छे, ते ज्यां व्यापे त्यां बाळी भस्म करे; माटे बाहिर् पडतो प्रकाश विस्रसा पुद्गल पर्याय (अचित) जाणवा; जेम आरसीमां मुख जोतां आपणा शरीर समान सर्व प्रतिबिंबित पुद्गल दीसे छे, ते कांइ आपणा शरीरना पर्याय, आरसीमां जतां नथी, पण ते आरसीनुं निमित्त पामीने त्यां शरीर मुखादि जेवा विस्रसा पुद्गल, तत्काल श्रेणिबद्ध तद्रूप परिणमिने जमाव थाय छे, पण ते जीवना पर्याय न जाणवा; एवीज रीते शरीरनी छाया विगेरे विस्रसा पुद्गलजमाव जाणवो, तेम दीवा प्रमुखना प्रकाशादिमां पण जाणवुं. *

* श्रीमद् देवचन्द्रजीए दीवाना प्रकाशने विस्रसा पुद्गल मानी अचित कह्यो छे. आ बाबतमां बे मत छे. केटलाक मुनियो श्रीमद् देवचन्द्रजीनी पेठे दीपकना प्रकाशने विस्रसा पुद्गल मानी अचित गणे छे

ते तेमज क्षायिकसमकीतीने तथा क्षयोपशमसम-
कीतीने चोथुं थीजुं न होय पण उपशमसमकीती
पडतां त्रीजे बीजे आवे तेने मिश्रमनो बंध नथी;
त्रीजे बीजे सत्ता १४७ प्रकृति होय. उपशम सम-
कित आखा भवमां पांच वखत आवे छे, तेमां
चार वखत श्रेणिगत अने पांचमीवार पडतां आठमे गुण-
ठाणे अटकी क्षपकश्रेणि मांडीने केवळज्ञान पामे.

११३ प्र०—क्षयोपशम, उपशम अने क्षायिक सम्यक्त्वनुं स्वरुप
तेना भेद सहित टुंकमां कहो.

उ०—क्रोधादि चार अनंतानुबंधी चारित्रमोहनी प्रकृति अने
मिथ्यात्वमोहनीनी त्रण प्रकृति, ए सातने उपशमावे
त्यारे उपशमसमकित अने सातेनो क्षय करे त्यारे
क्षायिक अने सात प्रकृतिना उदयनो क्षय करे अने
उदयमां न आवेलां उपशमावे तेने क्षयोपशम सम्य-
क्त्व कहे छे. हवे ते विषे जे कांइ विशेष जाणवा
योग्य छे ते कहे छेः—

दुहो.

चार खपे त्रण उपशमे, पंच क्षय उपशम दोय;
षट उपशम एक एम, क्षयोपशम त्रिक होय.

अथवा

क्षयोपशम वर्ते त्रिविध, वेदक चार प्रकार;
क्षायिक उपशम जुगल जुत, नवधा समकित ...

दुहानो खुलासो:— नीचेथी कहो.
सात प्रकृति मध्ये चार चारित्रमोहनीयनी हलकदमाए

व्ला उपर रुचिवंत, ५ चपळता रहित एकाग्र चित्त
सांभळीने धारे, ६ जेवा सांभळ्या तेवा प्रगट अक्षर
करी देखाडे तेवो स्मरण शक्तिवंत, ७ प्रश्ननो जाण, ८
विस्तारित शास्त्रार्थ रहस्य समजे, ९ धर्म कार्ये आळसु
न होय, १० धर्म सांभळतां निद्रारहित होय, ११
तात्त्विक बुद्धिवंत होय, १२ दातार होय, १३ धर्म
सांभळनारा उपर प्रेम होय तथा तेनी पछवाडे तेना
गुण प्रशंसे, १४ निंदा, विकथा, वाद, विवाद,
कदाग्रह, ममतादि रहित विनयी सुशील होय.

१३८ प्र०—पुराणो केटलां छे ते जणावो.

उ०—पुराण अढार छे तेना नाम. १ ब्रह्मपुराण, २ पद्म-
पुराण, ३ विष्णुपुराण, ४ शिवपुराण, ५ भागवत-
पुराण, ६ नारदपुराण, ७ मार्कंडपुराण, ८ अग्निपुराण
९ भारतपुराण, १० ब्रह्मावर्तपुराण, ११ लिङ्गपुराण,
१२ वराहपुराण, १३ स्कंधपुराण, १४ वामनपुराण
१५ कूर्मपुराण, १६ मत्स्यपुराण, १७ गरुडपुराण,
१८ ब्रह्मांडपुराण. ए पुराणना नाम जाणवा.

१३९ प्र०—पुद्गल परमाणुमां वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शब्दादि गुणो
छे; तेमां शब्दगुण ते क्यांथी आव्यो, शक्ति होय
तेनी व्यक्ति संभवे छे पण अहिं शक्तिरूपेज पर-
माणुमां शब्दगुण देखातो नथी, छतां शब्दवडेज
काने सांभळीए छीये ते जीवनो गुण छे के
पुद्गलनो ?

उ०—परमाणुमां बे स्पर्श छे, कर्मवर्गणामां चार स्पर्श छे

मोहनुं दरिद्रपणुं जाय, परम ह्रस गुण प्रगटे. तथा कर्मनुं देवुं फुटने करज टळे. ते आवी रीते के– दर्शनगुणे जन्म करवा रूप भयसंगम मटे, ज्ञानगुणे जरानी वेदना मटे, चारित्रगुणे मरण भय मटे, तेथी अमरपद पामी सिद्धिवरे, एम दर्शनगुणे ज्ञान चारित्र बेउ अनुक्रमे प्रगटे अने ए रत्नत्रयना लाभे जन्मजरामरणादि भय टळे, जेम कोइ निर्धनने लक्ष्मी घणी मळे, त्यारे तेनुं देवुं अने दरिद्रपणुं बंने टळे छे, रत्नत्रय मानिंदी आत्मधर्मरूप धन प्रगटे, रागद्वेष मोहरूप दरिद्रपणुं जाय, अने जन्म जरा मरणरूप करजना भय टळे.

११८ प्र०–मोहराजानो मूळ मंत्र कयो ? अने तेथी जीव छ प्रकारे घणा कर्मो बांधे छे ते केवी रीते ?

उ०–रागद्वेष ते जीवना परिणाममां वर्ते छे, तेथी कर्म बांधे, ते उदय आवे त्यारे आर्त्त अने रौद्र ध्यान थाय; तेथी विषय कषाय सेवे, तेथी तेने घणा कर्म बंधाय, तेथी भव परंपरा जीवने टळे नहि; ए मोहनो मूळमंत्रबीज जाणवो.

११९ प्र०–सम्यग्दृष्टिनो शब्दार्थ तथा लक्षण कहो.

उ०–सम्यक् कहेतां यथार्थ, दृष्टि कहेतां श्रद्धान, सम्यग् ज्ञान ते यथार्थ जाणवुं, सम्यक् चारित्र ते यथार्थ आचरवुं, तथा उदयकाळे सम्यक् प्रकारे सहन करे अने स्वरूपे जोवुं ए लक्षण. सम्यग्दृष्टि श्रावक साधुना जाणवां.

माण, ३ काळथी अनादिअनंत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण चलणसहायक.

२. अधर्मास्तिकायः–१ द्रव्यथी एक, २ क्षेत्रथी लोकप्रमाण, ३ कालथी अनादिअनंत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण स्थिरतासहायक.

३. आकाशास्तिकायः–१ द्रव्यथी एक, २ क्षेत्रथी लोकालोकप्रमाण, ३ कालथी अनादिअनंत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण अवकाशदानसमर्थ.

४. काळः–१ द्रव्यथी अनेक एटले अनंताअनंत, २ क्षेत्रथी मनुष्य लोक मध्ये, ३ कालथी अनादिअनंत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण नवा, पुराणा, वर्तना लक्षण.

५. पुद्गलास्तिकायः–१ द्रव्यथी अनेक एटले अनंता, २ क्षेत्रथी लोक मध्ये, ३ काळथी अनादिअनंत, ४ भावथी रूपी एटले वर्णादियुक्त, ५ गुण पुरण, गलण, मिलण, विखरण, सडण, पडण, विध्वंसन, धर्मलक्षण.

६. जीवास्तिकायः–१ द्रव्यथी अनेक एटले अनंत, २ क्षेत्रथी लोक मध्ये, ३ कालथी अनादिअनंत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण चेतनाउपयोगवंत.

एवी रीते षड्द्रव्यना द्रव्यादि अपेक्षाए, [illegible] भेद दर्शाव्या प्रकारांतरे, प्रकारांतरे निश्चयव्यवहारनये द्रव्य क्षेत्र काल भावे कथंचित् सप्रदेशी, कथंचित् अप्रदेशी, एम भवनाए विध विध अपेक्षाए अनेक भेद स्वरूप [illegible] ग्रंथांतरथी गुरुगम्य जाणी लेवुं. जुदी प्रस्तावने नीचे मुजब छे.

परमार्थी, शुभमति, एकांत निस्पृही, निर्ममत्वी, निरभिमानी, संपूर्ण रीते सरळ, मोटपणे गंभीर, परमसमान, इष्टिमंत, दयाळु, कृपाळु, पोताना आश्रितोने विषे पूर्ण विश्वासी, सर्वमिथ्याभ्रम रहित थया थका सदानंदपणे प्रवर्तमान होय पण हा ! इति खेदे आ विषम काळना प्रभावे उपर कह्या वेवा सुशिष्यो तथा सुगुरुओ मळवा दुर्लभ छे, अने ज्यां होय त्यां तेओ निश्चय कल्पवृक्ष समान जाणवा.

१२१ प्र०–शाता, अशाता, सुख, दुःख विषे निमित्त तथा उपादान कारण समजावो.

उ०–शाताऽशातासुखदुःखयोश्चायं विशेषः शाताऽशाताऽनुक्रमेण उदयप्राप्तानां वेदनीयकर्मपुद्गलानां अनुभवरूपं तथा सुखदुःखेन परोदीर्यमाणवेदनीय अनुभवरूपं. शातादि पूर्वोक्त चारे अनुक्रमे उदयप्राप्त शातादि वेदनीय कर्मना पुद्गलोनो शाता, अशाता, सुख, दुःखरूप अनुभव छे; तथा सुख दुःखने उदयमां लावनारा उदीरणारूप जे मूळ हेतु ते वेदनीयकर्म अनुभवरूप शातादि उपादान कारण छे; अने शाता अशाता उदय आव्यां जे कर्मपुद्गलो तेनुं वेदवुं, भोगववुं ते अशुद्ध उपादानरूप छे, अने सुख, दुःख तेहना फळ छे, ते फळ पाक्यां एटले उदय आव्यां ते वेदनीयकर्मनुं भोगववुं ते भोगववो निमित्तरूप थयो, अर्थात् सुख दुःखने भोगवतां थकां जो हर्ष शोक करे, मदोन्मत्तता के झूर्णा

जीवद्रव्य शुद्ध जाणवा; तथा कर्मावरणे सहित म-
लिन आत्मप्रदेशी, रागद्वेषादि भाव मलिन परिण-
तिवंत चतुर्गति भ्रमण लक्षणरूप अशुद्ध जीवद्रव्य
जाणवा; हवे तेना गुण अने पर्याय विषे लखीए
छीए:—जीवना गुण पण बे प्रकारे छे. १ शुद्ध,
२ अशुद्ध, त्यां शुद्धगुण ते केवळज्ञानादि अ-
नंतगुणलक्ष्मीरूप परमशुद्धक्षायिक भावना गुण
वे तथा मतिज्ञानादि दश भेद शुद्धाशुद्ध क्षायो-
पशमिक भावना गुण ते अशुद्ध जाणवा. हवे
जीवना पर्याय पण बे भेदे छे, एक व्यंजनपर्याय
अने बीजा अर्थ पर्याय, वळी व्यंजन पर्याय पण
बे भेदे छे, एक शुद्ध अने बीजा अशुद्ध; त्यां
शुद्ध व्यंजन पर्याय ते चरम शरीर प्रमाण किंचित्
उणी अवगाहनावंत, सिद्धावस्थावंत ते शुद्ध व्यंजन
पर्यायवंत जीव जाणवा; तथा नरनारकादि चतु-
र्गतिरूप अशुद्ध व्यंजनपर्याय जाणवा, अर्थ पर्याय
पण बे भेदे छे:—एक शुद्ध अने बीजा अशुद्ध
त्यां आपणी गुणश्रेणि मध्ये षड्गुणहानिवृद्धिरूप-
अगुरुलघुपर्याय ते शुद्धअर्थपर्याय, अने मति-
ज्ञानादि अवलोकन अवस्थिति एक अक्षरने अनं-
तमे भागे पर्यायरूप जे ज्ञानादि चेतन उपयोग
स्थिति ते अशुद्ध पर्याय जाणवो, तथा उत्पाद
व्ययध्रवरूप जीवना शुद्धाशुद्ध द्रव्यगुणपर्याय
जाणवा, जेम मतिज्ञान उपयोगनो व्यय, श्रुतज्ञानो-
पयोगनो उत्पाद अने ज्ञानगुण ध्रुव ते शुद्ध भेद;

ते अभ्युपगामिनी वेदना अने एक उदीरणाइं करी उदय लावीने वेद कर्मना पुद्गल समभावे वेदी खपावे ते उपक्रामिकी वेदना जाणवी ए भाव,

१२३ प्र०—देशना शुद्ध स्याद्वादे जैनधर्मनी छे एम क्यारे कहेवाय ?

उ०—जिनवचनानुसार देशना चतुर्विध छेः—१ कारण कार्यरूप, २ निमित्त उपादान सहित, ३ द्रव्य भाव युक्त, ४ निश्चय व्यवहारनययुक्त.

१२४ प्र०—बावीस परिषहमां शीत केटला अने उष्ण केटला ? शीत अने उष्ण ते शुं ? अनुकूळ अने प्रतिकूळ केटला, अष्ट कर्मना विभागे कया कर्मना कया कया परिषहो छे ?

उ०—स्त्री अने सत्कार ए वे शीत एटले मनने शाताकारी माटे अनुकूळपरिषहो छे, बाकीना उष्ण एटले मनने संतापकारी माटे प्रतिकूळ छे; एम आचारांगे तृतीयाध्ययनेधुरेटीकामध्ये कयुं छे. तथा उत्तराध्ययनसूत्रमां कयुं छे. हवे ज्ञानावरणीयना क्षयोपशमे प्रज्ञा अने ज्ञानावरणना उदये अज्ञान ए बे छे; वेदनीयना उदयेः—१ क्षुधा, २ पिपासा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ डंस, ६ चर्या, ७ मळ, ८ सज्जा, ९ वध, १० रोग, ११ तृण स्पर्श; मोहनीयना उदयेः—१ अचेलक, २ स्त्री, ३ अरति; ४ आक्रोश, ५ याचना, ६ निसिहिया, ७ सत्कार अने ८ सम्यक्त्व परिषह ते मिथ्यात्वमोहना उदये

अने पुद्गल द्रव्य तो शाश्वत छे, एटले जेम सोनानो कंदोरो भांगीने सोनाना बाजुबंध कराव्या त्यां कंदोरानो व्यय, बाजुबंधनो उत्पाद अने सोनुं ते ध्रुव. हवे धर्मास्तिकायना द्रव्य गुण पर्याय विचारे छे. धर्मास्तिकाय शुद्धद्रव्य लोकप्रमाण, असंख्यात प्रदेशी, अखंड, एक आकृतिरूप अरुपि शुद्धव्यंजन पर्यायरूप धर्मास्तिकायद्रव्य जाणवुं, तथा पोतानी गुणश्रेणि मध्ये षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणमन करे त्यां शुद्ध अर्थपर्याय धर्मास्तिकायना कहिये; गुण ते जीव पुद्गलने गतिसहायकरूप, तथा उत्पादव्ययध्रुवपणे षट्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय जाणवाः—जेम चलणगतिनो उत्पाद, स्थितिनो व्यय अने द्रव्यसत्ता ध्रुव शाश्वत जाणवी, एवीज रीते अधर्मादि बीजा त्रण द्रव्योनुं पण किंचित् स्वरूप लखीए छीएः—अधर्मनो गुण जे पुद्गलने स्थितिसहायक, असंख्यातप्रदेशी, लोकप्रमाण, अखंड, षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणाम, ते शुद्ध पर्याय, त्यां अखंडआकृतिरूप शुद्ध व्यंजनपर्याय जाणवो अने ज्यां षट्गुणहानिवृद्धि करे त्यां शुद्ध अर्थपर्याय जाणवो, जेम स्थितिनो उत्पाद, गतिनो व्यय, अने द्रव्यसत्ता ध्रुव जाणवी, काळ द्रव्यनो गुण वर्तना लक्षण, पंचद्रव्यनो वर्तना पर्याय सर्व द्रव्यनो पर्याय, असंख्यात लोकप्रमाण शुद्ध पर्याय कहीए. वर्तमान समयनो व्यय, अनागत समयनो

अहोनिशंतर्ईर्ष्यं, निसिदिआवेव जावज्जीव,
सव्वतुल्लसमासे, ईर्ष्यान्तरेवनिव्वाणम्मि ॥ २ ॥
पंचिंदिअसुरवी, धतिमाकिल्लानदेवसंदेव ।
बहुगोमतरसम्म, हेमेमुनि पविभागे ॥३॥ इति भाव.

१२८ प्र०—उपसर्ग अने परिषहमां शो फेर छे ?

उ०—उपसर्ग ते अन्यकर्तृजनित छे, उपसर्गोने सहवं उपसर्ग ते माटे, तथा परिषह ते पराजनित छे. पण्ना निशिथनी कथा ते गहेवुं 'परिसहन्नानुक्रवे इति परिषह' इति उपसर्ग परिषहनो अर्थ विचारवो इति भाव.

१२९ प्र०—चार प्रमाणे करी वीर परमात्मा महत्वा क्यारे गणाय ? ते सिद्ध करो.

उ०—श्री भगवतीमां चार प्रमाणे पाठ छे. "तद्यथा अप्रमाण प्रमाण चार अनुयोगद्वारसूत्रे कह्या छे, अनुमान प्रमाण १, उपमान प्रमाण २, आगम प्रमाण ३, प्रत्यक्ष प्रमाण ४; ते मध्ये आज श्री वीर स्वामी प्रत्यक्ष प्रमाणे किम मळे ? ते भावना निक्षेपाथी मळे ते किम ? समभाव शांत मुद्रापर्यंकासननो उपादे अने रागद्वेषनो विनाश एहवी अवस्थानी मनन (भावना) जिनप्रतिमा ते देखीने भावथी श्रीवीरस्वामी प्रत्यक्ष प्रमाणे मिळे. जिन प्रतिमा ते जिन सरखी ते जिनप्रतिमानी भक्ति जिनभावे कीधाना फल आवश्यके महानिशिथसूत्रे कह्युं छे. 'अर्थप्रत्यक्षे,' इति वचनात्, त्रिहुवारे जिन प्रतिमानी भक्ति कीधी

१४३ प्र०—वेदना संबंधी चौभंगी कहो.

उ०—१ अल्पवेदना अल्पनिर्जरा ते देवताओने, २ महावेदना अल्पनिर्जरा ते नारकीने, ३ महावेदना महानिर्जरा ते अप्रमत्त साधुने, गजसुकुमालनीपरे; ४. अल्पवेदना महानिर्जरा ते शैलेशीकारकमहात्मा चौदमा गुणठाणी परमात्मस्वरूप सन्मुखी जाणवा.

१४४ प्र०—सम्यक्त्व अने मिथ्यात्वनी चौभंगी भिन्न भिन्न जीवाश्रित कहो.

उ०—अनादिअनंतमिथ्यात्व अभव्यने; २. अनादिसांत मिथ्यात्व भव्यने; ३. सादिसांतमिथ्यात्व भव्य सम्यक्त्ववमनारने; ४. सादि अनंत भांगो शून्य छे.

१४५ प्र०—व्रतअंगीकार तथा पालनमां सिंहपणा तथा शियाळपणानी चौभंगी दृष्टांत सहित कहो.

उ०—१. सिंहपरे व्रत ग्रहे अने सिंहनी परे पाळे ते जंबुस्वामी स्थूलभद्रादिनी परे; २. सिंहपरे ग्रहे अने शियाळनीपरे पाळे, ते मरिचादिवत्; ३. शियाळपरे ग्रहे अने सिंहनी परे पाळे, ते मेतार्यमुनीआदिवत्; ४. शियाळपरे ग्रहे अने शियाळपरे पाळे ते अंगारमर्दकाचार्य, कुलवालुकादिवत् जाणवा.

१४६ प्र०—चार अनुयोग ते कया.

उ०—१. द्रव्यानुयोग ते षट्द्रव्य विषयक गुणपर्याय स्वरूप कथनयुक्त आत्मद्रव्य विवेचनमुख्याधिकार; २ धर्मकथानुयोग, ते सना, सर्वे महात्माओनां चरित्रो

परिषह उपसर्ग सहन करवामां निर्भय, साहसिक, केसरी सिंहसमान पराक्रमी, वीरपरमात्मा उपमा प्रमाणे पण सिद्ध थया जाणवा; ४ प्रत्यक्ष प्रमाणे जिननाविना जिन सरखी होवाथी वीरपरमात्मा-स्थापना निक्षेपे सिद्ध थया, कारण जे समभाव, शांत मुद्रा, विशुद्ध पर्यंकासन इत्यादिनो उत्पाद, रागद्वेषनो व्यय, अने मूळस्वरूपे ध्रुव, सच्चिदानंद घनमय एवी असलनी नकल श्री जिन प्रतिमाजी छे ते देखी भावथी श्री वीरपरमात्मा प्रत्यक्ष सिद्ध थया जाणवा; स्थापनाजीनी भक्ति ते साक्षात्नी बराबर छे, कारणे कार्य उपचारे सत्य छे.

१३० प्र०—जीव अष्टकर्मवर्गणादलिक केवी रीते वहेंची आठे कर्मने आपे छे ?

उ०—समय समय जीव कर्मवर्गणा ग्रहे छे, ते आठे कर्मने वहेंची आपे छे ते आवी रीतेः—सर्वथी थोडां आउकर्मने, तेथी विशेषाधिक नाम अने गोत्रने, ते बेउनां मांहोमांहे सरखां; तेथी १ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ तथा अंतराय ए त्रणने विशेषाधिक पण मांहोमांहे सरखां दळ आपे, तेथी मोहनीयने संख्यातगुणाधिक, तेथी वेदनीयने अधिक; एम वेदनीयकर्मने सर्वथी अधिक दळ मळे छे, केम जे वेदनीय विपाक जीवने थोडा दळे प्रगटपणे जणाय नहि तेथी. इति भगवतीसूत्रे कह्युं छे.

प्र०—जीव विग्रहगति करे तो तेनो उत्कृष्ट काळ केटलो ?

अनंतकाळ संसारपरिभ्रमण करतां थकां पण
सामग्रीनी जोगवाइ पामवी महादुर्लभ थइ पडे,
पछी धर्म प्राप्तिनी दुर्लभतानी वातजं तो कहेवुंज शुं

१४८ प्र०–आठ प्रकारना आत्मा ते कया ?

उ०–१. द्रव्यात्मा एटले असंख्यातप्रदेशी शुद्धजीव द्रव्य स्वगुणपर्यायसहित सत्ताए छे ते शुद्ध द्रव्यात्मा, अने तेना ज्ञानदर्शनादि उपयोगे रहित ते अशुद्धद्रव्यात्मा कहीये; २ कषायात्मा, सोळ कषाय तथा नव नोकषाय प्रवर्तमान जीव ते कषायात्मा; ३ मनवचनादि योगप्रवर्तमान आत्मा ते योगात्मा; ४ ज्ञान अज्ञानादि उपयोगी आत्मा ते उपयोगात्मा; ५ ज्ञानात्मा एटले जीवाश्रित सच्चिदानंदघन ज्ञानस्वरूपे प्रवर्तमान आत्मा ते; ६ दर्शनात्मा ते सम्यग्दृष्टिजीव ते; ७ चारित्रात्मा ते सत्तागत स्वरूपरमणरूपस्थिरतागुणे प्रवर्तमान जे जीव ते; ८ वीर्यात्मा, मन वचन कायादिना बळ पराक्रमरूप अशुद्ध वीर्यात्मा कहीए, पण आत्मसत्तागत रहेल अनंतशक्तिनी स्फुरतिए शुद्धात्मोपयोगे प्रवृत्ति करी अनादि अनंतकाळना कर्म मळने निकंदन करणरूपशक्तिनी व्यक्ति ते शुद्धवीर्यात्मा कहीए.

१४९ प्र०–पूर्वोक्त अष्टविध आत्माओमांथी कइ गतिमां केटला होय ते कहो.

उ०–नारकी तथा देवनाओ मध्ये सात आत्मा होय, पण चारित्रात्मा न होय; तथा एकेंद्रिय मध्ये छ आत्मा

करे तो अधिक गुणठाणी कहेवाय, नहि तो भावनी शुद्धाशुद्ध तारतम्यता कहेवाय.

१२४ प्र०—सम्यक्त्व मोहनीयने कोण वेदे, अने क्यां सुधी वेदे, अने तेनुं स्वरूप शुं ?

उ०—क्षयोपशम समकितीने समकित मोहनीनो उदय होय अने उपशमिक अने क्षायिकने ते न होय; तेमज वेदकने एक समयनोज अतिसूक्ष्म काळ होवाथी गणत्रीमां लीधुं नथी, सम्यक्त्व मोहिनी ते क्षयोपशमीने होय तथा उपशमीने सत्ताए होय, तेथी प्रदेशे अने रसे अनुक्रमे, ते संकाकंखादि सहज विभमता वेदे, कोइक जिनप्रणीत सूक्ष्म अर्थभाव मध्ये मुंझाय ते सम्यक्त्वमोहनीयनुं स्वरूप जाणवुं.

१२५ प्र०—उत्सर्ग अने अपवादनुं शुं स्वरूप छे ?

उ०—उत्सर्ग ते व्यवहारमार्ग अपवाद ते निश्चयमार्ग यथा साधुने पृथ्वी कायादि षट्कायनी विराधना निषेधी छे. कदाचित् कारणे नदी उतरवी पडे तथा आहारादिकने अर्थे गुरुदेव वंदनाने अर्थे चालता विराधना थाय ते उत्सर्ग. ते माटे अपवादे पच्चखाण महाव्रतना होई अने कांइक अण कारण पडे उत्सर्गमार्ग होय, तथा वाचानान्तरे कोइक ग्रन्थे उत्सर्ग ते उत्कृष्टो निश्चयमार्ग कह्यो छे. अने अपवाद ते कोमलमार्ग माटे व्यवहारमार्ग कह्यो छे, तेहनो स्वरूप आगे लख्यो छे ए भाव. उत्सर्ग मार्गनी चर्चा घणी छे, पण इहां तो अल्पबुद्धिए जेहवुं जाण्युं तेहवुं लख्युं छे. इति भाव.

उ०–" जीवेणकहविफासियं, अंतमुहुत्तंपिजेणसमत्तं । तिमाअवड्ढपुग्गल, परियट्टोचेवसंसारो " ॥ १ ॥ पुद्गलानांपरावर्त्तः पुद्गलपरावर्त्तः, अपकृष्टः किंचिन्न्यूनोऽर्द्धपुद्गलः परावर्त्तः अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तः अथ अन्तर्मुहूर्त्तं प्रमाण. अन्तर्मुहूर्त्तं अष्टसमयोर्द्धवघटिद्वयं यावदित्यर्थः तद्यसम्यक्त्वोपशमिकं अत्रक्षेत्रपुद्गलपरावर्त्तनाधिकारः न द्रव्यादि पुद्गलपरावर्त्तेत्युपदेशकम् ।

एक चपटी वगाडीए अथवा आंख मींचीने उघाडीए तेटला वखतमां असंख्याता समय थाय तेवा नव समयथी मांडीने एक मुहूर्त जे एक सामायिकनो काल बेघडी प्रमाण छे, तेमां एक समय ओछो, तेटला कालने अंतर्मुहूर्त कहीए, अर्थात् जघन्यथी नवसमय, उत्कृष्ट बे घडीमां एक समय ओछो, अने ए बेनी वचमां जेटला समयनी संख्या ते सर्व मध्यमअंतर्मुहूर्त जाणवा; एवी रीते अंतर्मुहूर्तना असंख्याता भेद थाय छे.

१५४ प्र०–जातिस्मरण ते शुं ? तेना केटला भेद अने तेमां केटला भवनुं ज्ञान थाय ?

उ०–अथगाथा " पुव्वभवासोपिच्छइ, एक्कोनिन्निभावनवगंवा उवरिनस्सअविसओ, सभावओजाईसरणस्स ॥ १ ॥

कोइपण वस्तु शब्दरूपादि जे पूर्वे भवांतरमां घणा परिचितअभ्यास सहवासरूप थएल होय एवा घर, हाट, वाडी, वस्त्र, भूषणादि आकृति मात्र देखतां, शब्द मात्र सांभळतां थकां. पूर्वभवसंबंधी जे

१३७ प्र०—वक्ता तथा श्रोताना चौद चौद गुण कया कया छे ते कहो.

उ०—वक्ताना चौद गुणो :—१ आगमोक्त तोळबोलना जाण. २ शास्त्रार्थ विस्तारवंत, ३ वाणीमां मीठाश, ४ प्रास्ताविक अवसर ओळखे, ५ सत्य बोले, ६ सांभळनारना संदेह छेदे, ७ बहु शास्त्रवेत्ता गीतार्थ उपयोगी होय, ८ अर्थ विस्तारी संवरी जाणे, ९ व्याकरण रहित कठिनभाषा के अपशब्द न बोले, १० वाणीए सभाने रीझावे. ११ वाणी सांभळीने श्रोता रसस्वाद पामे, १२ प्रभावंवंत, १३ अहंकार रहित, १४ संतोषादिगुणवंत. श्रोताना चौद गुणो :— १ भक्तिवंत, २ मिष्टभाषी, ३ निरभिमानी, ४ सांभ-

---

अने रात्रे उपाश्रयमां दीवाना प्रकाशमां पुस्तको वांचे छे. शरीरपर प्रकाश पडे छे ने अशाहरविसर्ग पुद्गलरूप छे एम माने छे. अनन्त परमाणुओनो स्कंध बने छे तेनी अवश्य छाया होय छे. अग्निकायनां पुद्गलोनी, मणिनी छायानी पेठे छाया पडे छे. दीवानी चारे तरफ प्रकाश रूप विस्तरा पुद्गलो छे, तेम अग्निना छाया–प्रतिबिंब पुद्गलो छे माटे छाया प्रतिबिंब पुद्गलो छे ने विध्वंसरूप होई अचित्त छे. अन्य सचित्त मनुष्य वगेरे वस्तुना प्रतिबिंब छाया पुद्गलोनी पेठे–ए प्रमाणे आगमो-क्तयुक्तियो अनेक स्थाने छे. श्रीमद् देवचन्द्रजी बहुश्रुत गीतार्थ उपयोगी हता. तेमना गुरुओना परंपरागत ए मन्तव्यनी श्रद्धा होवी जोईए. तपागच्छमां पण केटलाक मुनियोनी तेवी मान्यता तथा प्रवृत्ति मंदगतिथी चाले छे. बीजा पक्षवाळाओ दीवाना पुद्गलोनी उजेही माने छे. तेओ स्थापना पाळनी मासी आवे छे. (तत्त्वं केवलिगम्यम्).

ज्यारे धर्मतो शुद्धात्मपरिणतिरूप चित्तनी निर्मळता, विषयकषायादिरहित शुद्धज्ञानानंदीआत्मारामरूप छे.

१५६ प्र०—बारउपयोगमां रूपी केटला अने अरूपी केटला, अने ते शा माटे?

उ०—केवलज्ञान अने केवलदर्शन ए बे आत्मगुणरूप होवाथी अरूपी छे; अने शेष दस आत्मगुणथीभिन्न मिश्रित होवाथी रूपी छे.

१५७ प्र०—पांच समकितमां, रूपी केटला अने अरूपी केटला? ते कारण सहित कहो.

उ०—पांच मध्ये एक क्षायिक ते शुद्धात्मगुण माटे भणी अरूपी छे, अने शेषचार पुद्गल उदयमी अन्याश्रित किंचिद् पराधीनता भणी रूपी छे.

१५८ प्र०—छआवश्यकमध्ये केटला रूपी अने केटला अरूपी! तथा तेमां संवरमां केटला अने निर्जरामां केटला!

उ०—सामायिकादि पांचआत्मगुण भणी अरूपी छे, अने एक प्रतिक्रमण आवश्यक पापनिंदा, गर्हारूप अने सन्मुखी पण मंदता भणी रूपी छे; तथा सामायिक चउवीसत्थो तथा वांदणा ते त्रण संवरनयमां छे; अने शेष त्रण निर्जरानयनां छे.

१५९ प्र०—सर्वार्थसिद्ध विमानना देवताओ अने विजयादिकना देवताओ केटला भवमां सिद्धि पामे.

उ०—" सव्वट्ठाओनियमाएगंमिभवंमिसिज्झइंभयम्मं । वि-जयाइविमाणेहिंयं, संखिज्जभवाओनायव्वा ॥ १ ॥

ते शीत, उष्ण, स्निग्ध, अने लुखो, अने औदारि-
कादिशरीरमां आठे स्पर्श छे तो बीजा चार स्पर्श
हलको, भारी, सुंवाळो अने खरखरो ए क्यांथी
आव्या? तेनो उत्तर जे संबंध बे प्रकारना छेः—
१ समवायसंबंध अने संयोगसंबंध, त्यां समवाय
संबंध ते सहचारी वस्तु गुणपर्यायादि जेम घट
द्रव्यमां छे तेम जाणवो; अने संयोगसंबंध ते
घणा भिन्न भिन्न पुद्गलो मळे थके प्रयोगे अपर
नवीन गुण के भाव प्रगटे ते, जेम खाराना साथे
द्रव्यनो संयोग थये रसायण नीपजे तेम जाणवुं;
एवीज रीते आत्मा अने पुद्गलने संयोगे शब्दनामा
गुण प्रगट्यो तेम वर्णादिगुणवंत कर्म परमाणुमां
चार स्पर्श समवायसंबंधे पुद्गलाश्रित कहवाय, अने
पछी जीवशरीरादि संयोगसंबंधे आठ नीपज्या.

१४० प्र०—जीव परभव आयु केवा परिणामे बांधे?

उ०—योग, कषाय, ध्यान अने लेश्या ए चारना शुभा-
शुभ यथायोग्य एकत्र संयोगे, जीवने परभवायु
बंधाय छे.

१४१ प्र०—षड्द्रव्यना क्षेत्रकाळभावादि बीस भेद कह्या, तथा
प्रकरणांतरे पण द्रव्यादिक चार भेदनुं स्वरूप कहो.

उ०—षड्द्रव्य मांहेला प्रत्येकना पांच पांच गुण छे ते
आ प्रमाणे—

१. धर्मास्तिकायः—१ द्रव्यथी एक, २ क्षेत्रथी लोकप्र-

पीसण स्थान, ए पांच छकाय हिंसानां स्थान, एमां उत्तमजीवो निःशंकपणे न वर्तता अतियतनाए वर्ते छे, तेथी आकरो कर्मबंध पडतो नथी.

१६३ प्र०—आत्मस्वरूप सूचक केटलांएक अन्वय अने व्यतिरेकभावे विशेषणो कहो.

उ०—असंख्यातप्रदेशी, अनंतज्ञानमयी, अनंतदर्शनमयी, अनंतचारित्रमयी, अनंतदानमयी, अनंतवीर्यमयी, अनंतलाभमयी, अनंतभोगमयी, अनंतउपभोगमयी, अरूपी, अखंड, अगुरुलघुमयी, अक्षय, अजर, अमर, अशरीरी, अन्येन्द्री, अणाहारी, अलेशी, अनुपाधिक, अरागी, अद्वेषि, अक्रोधी, अमानी, अमायी, अलोभी मिथ्यात्वरहित, अविरतिरहित, कषायरहित, योगरहित, अयोगी, सिद्धस्वरूपी, संसाररहित, स्वात्मसत्तावंत, परसत्ता रहित, परभाव अकर्ता, स्वभाव कर्ता, परभाव अभोक्ता, स्वभाव भोक्ता, क्षायिक वेत्ता, स्वक्षेत्रावगाही, परक्षेत्र अनावगाहि, लोकप्रमाण अवगाहनवंत, धर्मास्तिकायथी भिन्न, अधर्मास्तिकायथी भिन्न, आकाशास्तिकायथी भिन्न, पुद्गलथी भिन्न, परकालथी भिन्न, स्वद्रव्यवंत, स्वक्षेत्रवंत, स्वकालवंत, स्वभाववंत, आत्मपोताना स्वगुणथी अभिन्न, कार्यभेदे भिन्न, अस्तित्वसत्तावंत, परिणमनसत्तावंत, द्रव्यास्तिकनये नित्य, पर्यायास्तिकनये नित्यानित्य, द्रव्यपणे एक, गुण पर्यायपणे अनेक, अनंतद्रव्यास्तिकधर्मवंत, अनंत पर्यायास्तिकधर्मवंत इत्यादि स्वधर्मसत्तामयी, चेतन

पुनरपि द्रव्यथी क्षेत्रथी कालथी भावथी स्युं ? ते कहे छे १ द्रव्यथी अप्रदेशी, बीजुं क्षेत्रथी अप्रदेशी २, त्रीजें कालथी अप्रदेशी ३, चोथे भावथी अप्रदेशी ४, हवे क्षेत्रथी ते नियमा अप्रदेशी ते द्रव्यथी स्यात् सप्रदेशी अप्रदेशी ४. हवे कालथी स्यात् सप्रदेशी अप्रदेशी. कालथी पण भजना, क्षेत्रथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी, हवे भावथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी एनी रीते लेजो ए भाव, हवे जे द्रव्यथी सप्रदेशी ते क्षेत्रथी सप्रदेशी छे, जे कालथी सप्रदेशी छे ते भावथी सप्रदेशी छे ४. हवे सप्रदेशी ते क्षेत्रथी स्यात् सप्रदेशी, अप्रदेशी ते द्रव्यथी सप्रदेशी नियमा ते द्रव्यथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी ते द्रव्यथी सप्रदेशी होइने अप्रदेशी पण छे. हवे अप्रदेशी कालथी स्यात् सप्रदेशी, सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी, कालथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी, ते क्षेत्रथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी, हवे भावथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी भावथकी भजना भावथकी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी ने कालथी पण स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी इति भाव.

१४२ प्र०—षट्द्रव्यना गुणपर्यायनुं शुद्धाशुद्ध स्वरुप यथार्थ विस्तारे समजावो.

उ०—षट्द्रव्यमध्ये प्रथम जीवद्रव्य लइए, ए जीव बे प्रकारे छे, एक शुद्ध अने बीजो अशुद्ध; द्रव्यकर्म, भावकर्म अने नोकर्मादि सर्व कर्मकलंके रहित शुद्ध निष्पन्न स्वरुपी सिद्धालये अनादि तथा सादि अनंत भांगे, लोकाग्रे बिराजता सिद्धपरमात्माओना

३ आकास्तिकायना–अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने अवकाशदानवंत.

४ पुद्गलास्तिकायना–रूपी, अचेतन, सक्रिय, अने पूरणगलण.

५ कालना–अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने वर्तना.

६ जीवना–अरूपी, चेतन, सक्रिय, चेतनालक्षणवंत.

१६८ प्र०–पर्यायास्तिकनयना छ भेद कहो, तथा तेनुं किंचित् विशेषकथन गुणपर्यायस्वरूप कहो.

उ०–१ पर्यायत्वं, २ भव्यत्वं, ३ सिद्धत्वं, ४ अभव्यत्वं, ५ कारणत्वं, ६ कार्यत्वं.

वळी प्रकारांतरे गुणपर्याय स्वरूप कहे छेः—

द्रव्यव्यंजनपर्याय असंख्यप्रदेशत्वं, गुणपर्याय गुणांतरभेद क्षांत्यादिभेद, गुणव्यंजनपर्याय, एक गुणना अनंतपर्याय, स्वभाव पर्याय, ते परगुणहानि वृद्धिरूप, अने विभावपर्याय ते नर नरकादिपर्यायास्तिक सामान्य पारिणामिक, अखंड, अलग, असहायी, सक्रियना अनंतगुणपर्याय समुदायनो बादर द्रव्यभेद कहीए.

१६९ प्र०–द्रव्य अभेदी ते शुं ?

उ०–द्रव्यना बे भाग न थाय माटे.

१७० प्र०–भेद द्रव्य ते केम ?

उ०–गुण गुणना करनार जुजुवा भणी भेदस्वरूपी कहीए. जेम केः–ज्ञान गुण, दर्शन गुण, चारित्र गुण, गुण

तथा मनुष्यगतिनो व्यय, देवगतिनो उत्पाद अने
जीवद्रव्य नो ध्रुवपन ध्रुवरूपे छे, ते अनुक्रमे
जाणवो. हवे पुद्गलद्रव्यना गुणपर्याय विषये,
त्यां ते पुद्गलद्रव्य पण बे भेदे छे, एक शुद्ध
अने बीजो अशुद्ध, आकाशप्रदेशे रहेल शुद्ध
अविभागी अच्छेद्य अनेकरूप परमाणुओ ते शुद्ध
पुद्गलद्रव्य. अने द्वयणुक त्र्यणुकादि परमाणुओना
मेला जे स्कंधो ते अशुद्ध पुद्गलद्रव्य. हवे पौद्-
गलिक गुण पण बे भेदे छे, एक शुद्ध अने बीजो
अशुद्ध. त्यां शुद्ध ते निर्विभागी वर्णगुणयुक्त
पुद्गलद्रव्यगुण जाणवा. वर्णगुणादि सहित अनंत
गुणविभिन्न द्वयणुकादि स्कंधरूप गुरुत्व गमन
रूपान्तर गुणनी गौणता अने सत्तागुणनी मुख्यता
ते अगुरुलघुगुण गुण वर्तीए, वळी पुद्गलपर्याय
पण शुद्ध अने अशुद्ध एम बे भेदे छे, ते पण
व्यंजन अने अर्थना भेदे द्विविध छे, त्यां शुद्ध
आकाशप्रदेशे अविभागी षड्गुणहानिवृद्धिरूप शुद्ध
परमाणु पर्याय ते अने अशुद्धव्यंजनपर्याय ते
स्थूल सूक्ष्म परिणामरूप द्वयणुकादि स्कंध पर्याय
छे; वळी शुद्धअर्थपर्याय ते पोतानी गुणश्रेणि मध्ये
षड्गुणहानिवृद्धिरूप परिणमन पर्याय छे, तथा
अशुद्धअर्थपर्याय ते द्वयणुकादि स्कंधरूप गुण-
विगति, तीव्र मन्द तारतम्यभेद परिणमन पर्याय
छे; जेम पूर्व स्कंधनो व्यय, वर्तमाननो उत्पाद

३ आकास्तिकायना—अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने अवकाशदानवंत.

४ पुद्गलास्तिकायना—रूपी, अचेतन, सक्रिय, अने पूरणगलण.

५ कालना—अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने वर्तना.

६ जीवना—अरूपी, चेतन, सक्रिय, चेतनालक्षणवंत.

१६८ प्र०—पर्यायास्तिकनयना छ भेद कहो, तथा तेनुं किंचित् विशेषकथन गुणपर्यायस्वरूप कहो.

उ०—१ पर्यायत्वं, २ भव्यत्वं, ३ सिद्धत्वं, ४ अभव्यत्वं, ५ कारणत्वं, ६ कार्यत्वं.

वळी प्रकारांतरे गुणपर्याय स्वरूप कहे छेः—

द्रव्यव्यंजनपर्याय असंख्यप्रदेशत्वं, गुणपर्याय गुणांतरभेद क्षांत्यादिभेद, गुणव्यंजनपर्याय, एक गुणना अनंतपर्याय, स्वभाव पर्याय, ते षट्गुणहानि वृद्धिरूप, अने विभावपर्याय ते नर नरकादिपर्यायास्तिक सामान्य पारिणामिक, अखंड, अलख, असहायी, सक्रियना अनंतगुणपर्याय समुदायनो बादर द्रव्यभेद कहीए.

१६९ प्र०—द्रव्य अभेदी ते शुं ?

उ०—द्रव्यना बे भाग न थाय माटे.

१७० प्र०—भेद द्रव्य ते केम ?

उ०—गुण गुणना करनार जुजुवा भणी भेदस्वरूपी कहीए. जेम केः—ज्ञान गुण, दर्शन गुण, चारित्र गुण, सुख

उत्पाद, द्रव्य सत्ता ध्रुव, उपचारे एक कालद्रव्य आकृति ते शुद्ध व्यंजनपर्याय, हवे आकाशद्रव्यनो गुण अवकाशदानलक्षण, लोकालोकप्रमाण, अनंतप्रदेशी, घटाकाशनो उत्पाद, पूर्वघटाकाशनो व्यय अने द्रव्य सत्ता ध्रुव जाणवी तथा लोकालोक प्रमाण अखंडआकृतिरूप शुद्धव्यंजनपर्याय कहीये, एम षट्द्रव्यनुं पर्यायादि किंचित् स्वरूप कहिने तेमां जे कांइ विशेष जाणवा योग्य छे ते कहे छे:—

गाथा—परिणामी जीवमुत्ता, सपएसा एगखित्तकिरियाय.
णिच्चंकारणकत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे (१)

१ जीव अने पुद्गल परिणामी, शेष चार अपरिणामी, २ जीवद्रव्य ते जीव चेतनरूप अने शेष पांच अजीव अचेतन जडरूप छे, ३ पुद्गल रूपी मूर्तिमंत छे, शेष पांच अरूपी छे, ४ काल, अप्रदेशी छे, शेष पांच सप्रदेशी छे, धर्म, अधर्म अने आकाश ए त्रण एक अने शेष त्रण अनेक, ६ आकाश क्षेत्र छे, अने शेष पांच क्षेत्री छे, ७ जीव अने पुद्गल बे सक्रिय छे, शेष चार अक्रिय छे, ८ जीव अने पुद्गल बे व्यवहारथी अनित्य शेष चार नित्य छे, ९ जीव अकारणरूप अने शेष पांच कारणरूप छे, १० जीव कर्ता अने शेष पांच अकर्ता छे, ११ आकाश सर्वगत छे, अने शेष पांच असर्वगत छे.

उ०—१ सम एटले उपशम कहेतां पारमार्थिक अकषायि-पणुं एटले अपराधिशत्रुनुं पण चित्तमां अंतरंग परिणामे कदी मातुं चिंतवे नहि, २ संवेग ते एकांत शुद्धपरमात्मस्वरूपसुखनीज अभिलाषा, ३ निर्वेद ते संसार थकी उदासीनता तीव्रउद्विग्नता, ४ अनुकंपा, ते प्राणीमात्रने आत्मवत् लेखी कोइ उपर पण मारातारापणानो मित्रभाव न गणे, लुखा व्यवहारे वर्ते, अंतरंगथी सदा न्यारो लखे छतां सर्वउपर आप समान दया भाव दृष्टि, ५ आस्तिकता ते शुद्ध जिनवचन उपर एकांत दृढ चित्त प्रतिबंधरूप श्रद्धा, गाढ सत्य मान्यता.

१७६ प्र०—आत्मा बंधक छे, अबंधक छे, भोक्ता छे, अभोक्ता छे, कर्ता छे, अकर्ता छे ते शुं ?

उ०—निश्चयनये अबंधक, व्यवहारनये बंधक, एमज भोक्ता कर्तादि व्यवहारे आत्मा जाणवो, अने निश्चये एटले मूळस्वरूपे अपरिणामिकपणे एटले स्वरूपपरिणामे अभोक्ता, अकर्ता, स्वरूपभोक्ता स्वरूप कर्ताज कहिये.

१७७ प्र०—त्रणआत्मानुं मूळस्वरूप कहो.

उ०—१ बहिरात्मा ते देहादिकने आत्मबुद्धिए अहंभावे एकांते बाह्यदृष्टिए पोतारूप समजे, जेवुं देखे तेवुंज माने, पण अंतरंगदृष्टिए कंई विचारे नहि के समजे नहि ते एकांतमिथ्यादृष्टि पहेलेगुणठाणे जाणवा, २ अंतरात्मा ते आत्मा अने देहादिक

वचन स्वरूप. ३. वीतरागद्वेष ते क्षीण. मद्गुरु
देवादिक. देवगुरुआदिकनुं वीतराग वचन स्वरूप.
४. पक्षपातद्वेष ते मिथ्यात्व मतिवादि मत
पक्षपात निवारे निर्दि वचनस्वरूप.

१४७ प्र०—जीव दुर्लभबोधिपणुं केवी रीते पामे ?

उ०—पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए कम्मं पकरेंति अरिहंताणं अव-
ण्णंवयमाणे ॥१॥ अरिहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवण्णंवयमाणे
॥२॥ आयरियानं अवण्णंवयमाणे ॥३॥ उवज्झायानं
अवण्णंवयमाणे ॥४॥ चउव्विहसंघस्स अवण्णंवयमाणे
॥५॥ सम्मदिट्ठिदेवानं अवण्णंवयमाणे ॥ ६ ॥

१ श्रीअरिहंत, २ तथा तेमनो भाखेलो जे धर्म
तथा तेमनी प्रतिमाओ तथा तेमना वचनरूप जे
सिद्धांत इत्यादिक अरिहंत संबंधी अवर्णवाद लिख,
देवादि वस्तुरूप अविनयादि करता थकां; ३ जिन
आज्ञाकारी, जिनशासनप्रभावक श्रीआचार्यभग-
वंतनो अवर्णवाद करता थकां; ४ श्रीसूत्रसिद्धां-
तना पारगामी आचार्यपदने योग्य, अनेक शिष्योने
वाचनादिक देता थका, सूत्रसिद्धांतनुं अध्याप-
न्ना करता श्रीउपाध्यायजी भगवंतनो अवर्णवाद
करता थकां; ५ ज्ञाने करीने पूर्ण मोक्षमार्गना
साधक श्रीसाधु मुनिमहाराजनो अवर्णवाद करता
थकां; ६ जिन आज्ञाकारी सुदृष्टि श्रीअरिहंतादिकने
पण ... पूजो श्रीचतुर्विधसंघ तेनो अवर्ण-
वाद करता थकां, जीव दुर्लभबोधिपणुं पामे. अर्थात्

मिन्न छुं. किवारे कुलाभ पामे तिवारे जाणे जे ए वस्तुथी संबंध टळ्यो छे. वेदनादिक दृष्टि आवें समभावे राखें. परभव पुद्गलादिक आत्माथी भिन्न जाणवो. छंडवानीखपकरी परमात्मानी वांछा करे. ध्यान सज्झाय विशेष करे. भावना खीणखीण भावे. संवर आदरे. निज स्वभावे जे ज्ञान तेहने विशेपे इम मन रहे ते अंतरात्मा ध्यान करवा. परमात्माने जोग्य चोथा गुणठाणाथी बारमा गुणठाणा सुधि अंतरात्मा जाणवो, एहवो जे अंतरात्मा ओलखे तिवारे परमात्मा पामे, परमात्मानो स्वरूप लखिए छीए. साक्षात् पोतानो स्वरूप देखे कर्मनी उपाधि रहित ते परमात्मा तेरमे तथा चौदमे गुणठाणे होय. तथा सिद्ध जाणवा ए परमात्मा ध्यान योग्य, अंतरात्मा ध्याववा योग्य तां ध्येय ते परमात्मा ध्यान ते एकाग्रता एम त्रणआत्माना स्वरूप जाणवा इनि भाव.

१७८ प्र०–सद्दहणा, फरसणा अने प्ररूपणा, संबंधी अष्टभंगी दृष्टांत सहित कहो.

उ०–सद्दहणा, फरसणा अने प्ररूपणा, एटले जाणे आदरे अने पाळे, ते भांगे श्री गौतमादि महात्मा जाणवा, २ सद्दहणा, फरसणा, पण प्ररुपणाए असमर्थ ते जे सामान्य साधु उपदेश देवाने असमर्थ छे, पण पोते पाळे छे तेने जाणवो; ३ सद्दहणा पण फरसणा, प्ररुपणा नहि, ते अनुत्तर विमानवासी देवने, जाणे न आदरे पण पाळे ते भांगे जाणवुं; ४ सद्दहणा

संभवे पण ज्ञानात्मा अने चारित्रात्मा नहि; तथ
तिर्यंचपंचेंद्रिय अने मनुष्यगतिमध्ये आठे आत्मा
होय; तथा पंचमगतिमध्ये एटले श्रीसिद्धपरमात्माने
अनंतगुणभाजनरूप शुद्ध जीवद्रव्य ते श्रीसिद्ध भगवं-
ततुं छे, तेने विषे चतुर्विधआत्मा छे, ते ज्ञानात्मा,
दर्शनात्मा, उपयोगात्मा तथा शुद्ध द्रव्यात्मा.

१५० प्र०—अष्टविध त्रसजीवो छे ते कया ? ते दृष्टांत सहित कहो.

उ०—१ अंडजा ते पक्षीआदि; २ पोतजा ते गजादि; जरादि ते गवादि; ४ रसजा ते कीटकादि; ५ स्वेदजा ते यूकादि; ६ संमूर्च्छिम ते पतंगादिक; ७ उद्भिज ते गिगोडादि; ८ उत्पादिका ते देव नरकादि.

१५१ प्र०—जीवना दस प्रकारना परिणाम ते कया ?

उ०—१ गति, २ इंद्रिय, ३ कषाय, ४ लेश्या, ५ योग, ६ उपयोग, ७ ज्ञान, ८ अज्ञान, ९ दर्शन, १० चारित्र. इति पन्नवणा सूत्रना १३ मां पद मध्ये छे।

१५२ प्र०—जीवपरिणमन केटला प्रकारे छे ?

उ०—" बंधण १ गई २ संठाणा ३ भेय ४ वन्न ५ गंध ६ रस ७ फास ८ अगुरुलघु १० परिणामा ए दसहुंतिअजीवा ॥ १ ॥

१ बंधन, २ गति, ३ संस्थान एटले आकृति, ४ जाति, ५ वर्ण, ६ गंध, ७ रस, ८ स्पर्श, ९ अगुरु लघु, १० शब्द; ए दस रीते परिणमे छे.

१५३ प्र०—अंतर्मुहूर्त कोने कहीए ?

भाव जे जे समयमां प्रभु यथा होय ते ते समय तथा ते ते देवना जाणता; संवत्सरी दानना सोनैया शक्र इंद्रोना आदेशे वैश्रमण देवना आठसमयमां निपजावी प्रभुना गृहभंडारमां भरे, हवे ते दानना छ अतिशय कहे छेः–१ तीर्थंकरना हाथने विषे सौधर्मेंद्र एवी स्थिति करे के जेथी प्रभु दान देतां थाके नहि, जोके प्रभुनो अनंत शक्तिना धणी छे, तोपण आ उत्सव अवसरे ए प्रथमइंद्रनो अधिकार सहाशे लेवारूप छे, ते अनादिनी एवी मर्यादा जाणवी; इशानेंद्र सुवर्णमय रत्नजडित छडी, दंड लइ उभो रहे अने चोसटइंद्र सिवाय बीजा सामानिक प्रमुख देवोने दान लेतां निवारे, अने याचकना भाग्यानुसार इशानेंद्र तेना मुखे बोलावे अने २ चमरेंद्र तथा बलींद्र प्रभुनी मुट्ठीमां वधारे होय तो पाछी नांखे, अने ओछुं होय तो पूरुं करी आपे, सामानी प्राप्तिने अनुसारे मळे, ३ भुवनपतिदेवता भरतक्षेत्रना मनुष्यने तेडी आवे, ४ अने वाणव्यंतर देवो तेमने पाछा मूकी आवे, ५ ज्योतिषी देवो विद्याधरोने प्रभुना दाननी खबर आपे, ६ तथा प्रभुना पिता त्रण मोटी दानशाळा करावे, एकमां भरतक्षेत्रना मनुष्यने अन्नपानादि खाद्य वस्तु आपे, बीजीए वस्त्र आपे, अने त्रीजीए आभरण आपे.

१० प्र०–हवे साधु सज्झाय करे छे. शुभयोगे व्रतादिकनी

अचानक सर्व सांभरी आवे, अने तेथी पोते पूर्वे क्षेण हतो तथा क्यां एवीरीते वगेरे समस्त निजपणानुं भान थइ आवे तेने जातिस्मरण कहे छे; ते बे प्रकारे छे, एक शुद्धक्षयोपशमानुसार ते पूर्वभवना सम्यग्दृष्टि गाढ धर्माभ्यासी महात्माओने थाय ते, जेम श्रीवज्रस्वामी प्रमुखने, अने बीजुं अशुद्धक्षयोपशमानुसार ते पूर्वभवना मोहादि विषय कषायादि द्वेषादि स्मरण रागद्वेषजनित निरर्थक जाणवुं, जातिस्मरणमां जघन्यथी एक बे त्रण भव देखे, मध्यम चार पांच छ आदि अने उत्कृष्ट नव भव सुधी देखे (इति पन्नवणादि वचनात्). *

१५५ प्र०—पुण्य अने धर्मनां शुं फेर ?

उ०—पुण्य ते शुभकर्मपुद्गल प्रकृति छे, ते जीवना शुभ परिणामे दुःखे सुपात्रने अन्नपानादि भक्ति नमस्कारादि करवे करीने नव प्रकारे बंधाय छे, तेना नाम अन्नपुण्णे १ पाणपुण्णे २ लेहणपुण्णे ३ सयणपुण्णे ४ वत्थपुण्णे ५ मनपुण्णे ६ वयणपुण्णे ७ कायपुण्णे ८ नमोक्कारपुण्णे ९ ए नव भेद पुण्यना कह्या अने बेंतालीस प्रकारे शातादिरूपे भोगवाय छे;

* जूनी प्रतिमां चउद रत्नो प्रश्न छे तेना उत्तरमां

गाथा—" चक्कअसिछत्तदंडा, आयुहमाणिक्ककाकिणीचत्तारि ।
चम्ममणिरयणगोनिहि, मिरिगिहवइगोहुंति ॥१॥
सेणावइगाहावई, पुरोहियवइदुईनीयणचरे ।
थीरयणरायपुत्ते, बेअइदसंटगमनुरया ॥ २ ॥

नान्तरे निर्लेप थाशे, पण वनस्पतिकायनिगोदलो-लकना जीव निर्लेप " नत्थितत्थअत्थिअणंता जीवा जेहिंनपत्तोनसाइं परिणामो। उपपन्निपयवंतिपपुणोवी-तत्थेवतत्थेव ॥ १ ॥ एणे न्याये वनस्पतिकायना जीव निर्लेप न थाय ए भाव.

१८३ प्र०—बादरअप्पकाय उपरदेवलोकमां क्यां सुधी छे? तथा तेउकाय केटले सुधी छे?

उ०—बादरअप्पकाय बारमादेवलोक सुधी अने बादरतेउकाय तीर्छो मनुष्यलोकरूपअढीद्वीपमांहे, उंचो मेरुपर्वतनी चुलिका सुधी.

१८४ प्र०—सातमी तथा छट्ठी नरकमां, कुंभिमां उपजार्नु थाय छे के आलियामां थाय छे.

उ०—सातमी तथा छट्ठी नरके आलीया छे. जेम नदीनी भेखडे मोटा होय छे एहवे सुनां छे ते उपर तीर विचार विचार पटे एम सांभळ्युं छे ए भाव.

८५ प्र०—साधुना १४ उपगरणो ते कया कया.

उ०—पत्तंपत्ताबंधो, पायठवणंचपायकेसरिया।
पडलाइंरयत्ताणं, गोच्छओपायनिज्जोगो ॥ १ ॥
तिन्नेवयपच्छागा, रयहरणंचेवहोइमुहपत्ती।
एसोदुवालसविहो, उवहीजिणकप्पियाणंतु ॥ २ ॥
एएचेवदुवालस, मत्तगअइरेगचोलपट्टो।
एसोचउदसरूवो, उवहीपुणथेरकप्पंमि ॥ ३ ॥

पत्त कहेतां पात्रु, २ पत्ताबंध ते. झोळी, ३ पात्रनां नीचे राखवानो कटको, ४ पायकेसरिया ते

अर्थ—सर्वार्थसिद्धविमानवासि देवताओ निश्च
एक भवमां सिद्धि पामे छे. अने विजयादि विम
वासि देवोनी स्थिति संख्याताभवनी होय छे.

१६० प्र०—श्रावक जघन्य पदे केटला लाभे ?

उ०—क्षेत्रपल्योपमने असंख्यातमे भागे इति आवश्यक-
निर्युक्तौ जंबूद्वीपमध्ये 'कोटिकावहृन्य अथवा नरा-
वहवः तनोत्तर पदासंमूर्च्छिमाणां विरहः तदाकोटिका-
स्नोकानरावहवः

१६१ प्र०—चार सामायिक ते कया. अने ते प्रत्येकमां कयु सम-
कित तथा गुणठाणुं होय ते कहो.

उ०—१ श्रुतसामायिकमां दीपकसमकित अने पहेलुं
गुणठाणुं होय, ते अभव्यने पण होय; कारण जे
जिनवचनानुसार प्ररूपणा करे तेथी परने मार्ग
दीपावे, धर्म पमाडे पण पोताने अंधारुं होय, अ-
वितु श्रद्धा, पाप, शमादि न होय तेथी, २ दर्शन
सामायिक सम्यग्दृष्टि चोथागुणठाणाने होय, ३
देशविरतिसामायिक पांचमे गुणठाणे श्रावकने होय,
४ सर्वविरतिसामायिक ते छठेसातमेगुणठाणे वर्तता
मुनिमहाराजने होय, ए सर्व गुणठाणानी परिणतिरूप
कषायना क्षयोपशमने लीधे होय छे.

१६२ प्र०—छकाय जीवोनी महाविराधनारूप पांच स्थान कया
कह्या छे ?

उ०—१ खंडी स्थान, २ चूला स्थान ते रसोडुं, ३ पानी-
आरुं, ४ सांबेलु, ५ उखल मूसलादि खांडण

हवे—आत्मानंभावयतीतिभावना, आत्मानंअधिकृत्यकरोतीति अध्यात्मं, मन्यतेजगतः तत्त्वं, स मुनिःपकीर्तितः सम्यक्त्वमेवतन्मौनं, सम्यक्त्वतत्त्वमेव ॥ १ ॥ इतियोगबिन्दुग्रन्थे हरिभद्रसूरिणा अध्यात्मभावनाचतुर्वाकथिता यथा ॥

परहितचिंतामैत्री, परदुःखविनाशिनीतथाकरुणा । परसुखतुष्टिर्मुदिता, परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥१॥ ए भाव, हवे छद्मस्थजीवानांध्यानंकथितं, अंतमुहुत्तमित्तं, चिन्तावत्थाणमेगवत्थुमि, च्छउमत्थाणंज्झाणं, योगनिरो जिणाणंतु इतिध्यानम् ।

आत्माप्रत्ये भाववुं अने आत्मचिंतवन करवुं भावना, आत्माने अधिकारीपणे कार्य करनार अध्यात्मपंचास्तिकायरूपजगत्तत्त्वने जे यथार्थ माने तेने मुनि कहीए, परहित चिंता ते मैत्री भावना; परदुःख विनाशनी इच्छा ते कारुण्य भावना, परसुखदिठे संतोष तथा प्रमोद आणे ते प्रमोद भावना, पर दोषनी उपेक्षा ते मध्यस्थ भावना.

९८ प्र०—वर्तमानचोवीसजिनना मातपितानी गति कहो.

उ०—उसभपियानागेसु, सेसाणंसत्तहुंतिईसाणे ।
अट्ठय सणंकुमारे, माहिंदे अट्ठ चोवथ्या ॥ १ ॥
अट्ठणं जणणीओ, तित्थयराणं हुंति सिद्धिओ ।
अट्ठय सणंकुमारे, माहिंदेअट्ठचोवथ्या ॥ २ ॥

प्रथमतीर्थंकरना पिता श्री नाभिराजा ते नागकुमार मध्ये, बीजाथी आठमा सुधीना प्रभुना पिताओ बीजा

लक्षणे लक्षित, स्वसंपदाए पूर्ण. परसंगे परिणम्यो थको संसार उभो कर्यो, स्वज्ञानादिगुणे परिणम्यो थको सिद्धता करे. एवा आत्मद्रव्यनी ओळखाण अनंतनये, अनंतनिक्षेपे थाय. ए रीते जे आत्मप्रतीति करे तेने जैनमार्गी जैनमार्गमां गणे छे, एवो आत्मा अनेकांतपणे जैनमार्गी छे; एनी जे प्रतीति ते सम्यग्दर्शन, एनुं जे ज्ञान ते सम्यग्ज्ञान, एमां जे रमवुं ते सम्यक्चारित्र कहीए.

१६४ प्र०–द्रव्यास्तिकनयना छ सामान्य स्वभाव कहो.

उ०–१ अस्तित्वं, २ वस्तुत्वं, ३ द्रव्यत्वं. ४ प्रमेयत्वं, ५ प्रदेशत्वं, ६ अगुरुलघुत्वं.

१६५ प्र०–वस्तुना अग्यार विशेष स्वभाव कहो.

उ०–१ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ सत्य, ६ असत्य, ७ वक्तव्य, ८ अवक्तव्य, ९ भेद, १० अभेद, ११ परम स्वभाव.

१६६ प्र०–प्रकारांतरे बीजा नव आत्मवस्तुस्वभाव कहो.

उ०–१ स्वप्रदेश, २ अप्रदेश, ३ चेतन, ४ अचेतन, ५ मूर्तिमंत, ६ अमूर्तिमंत, ७ कर्तृत्व, ८ भोक्तृत्व, ९ परिणामिक.

१६७ प्र०–षड्द्रव्यमध्ये प्रत्येकना चार चार गुण छे ते कहो.

उ०–१ धर्मास्तिकायना–अरूपी, अचेतन, अक्रिय अने गतिसहायक.

२ अधर्मास्तिकायना–अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने स्थिरसहायक.

पशमे कषाय पण न दिठुं होय, न सांभळ्युं होय छतां सहज स्वभावे पोतानी बुद्धिने जोरे सम-यसुचककार्य करी शके, ते अभयकुमार तथा रोहानी परे, २ वैनयिकी ते गुर्वादिकनो विनय बहुमान करतां मतिज्ञानावरणीयकर्मनो क्षयोपशम थइने बुद्धि उपजे ते नागार्जुनादिकनी परे, ३ कार्मणिकी ते विज्ञान, कळा, व्यापारादिनो अभ्यास करतां करतां जे बुद्धि प्रगटे ते, ४ पारिणामिकी ते वृद्ध अनुभवी पुरुषोनी संगते रहेवायी तथा वयना परिपाके जे बुद्धि उत्पन्न थाय ते.

१९२ प्र०—जातिस्मरणज्ञान अने विभंगज्ञान ते शामां समाय छे?

उ०—जातिस्मरणज्ञाननो मतिज्ञानमां समावेश थाय छे, अने विभंगज्ञाननो अवधिदर्शनमां समावेश थाय छे.

१९३ प्र०—राशिगतसूर्य प्रश्नः

उ०—मेषराशिनो सूर्य होय त्यारे कन्याराशिना सूर्यनी तथा चन्द्रनी चाल उत्तरभणी थाय, तथा तूलाराशि थकी मांडी मीनराशि सुधिना चन्द्रनी चाल दक्षिणदिशा तरफ थाय छे.

१९४ प्र०—मिथ्यात्वअविरतिना हेतुनो प्रश्नः,

उ०—जेहवो आत्मानो शुद्धोपयोग वस्तु आवरवाने जेम मिथ्यात्वबलवत्तर छे, तेम आत्माना परिणमन शुद्ध निवारवाने अविरति बलवत्तर छे, अविरतिनो उदय टळवायी आत्मानुं विरतिपरिणमन थाय छे ने तेथी सुखमय आत्मा स्वस्वरूपे परिणमे छे.

गुण, दान गुण, लाभ गुण, भोग गुण, वीर्य गुण,
इत्यादि अनंतगुणऋद्धि ऐश्वर्यनो धणीपु.

१५१ प्र०—सम्यक्त्वनां पर्यायनामो कहो.

उ०—आस्ता, श्रद्धा, प्रतीति, निर्धार, रुचि, अभिलाष, बहुमान, अविपरीत भासना, गुण ओळखना, गुण गुणी आधारता, तत्त्वनिर्धारकता, वस्तु धर्म, तत्त्वार्थ ग्रहणा, इत्यादि.

१५२ प्र०—सम्यग्ज्ञाननां पर्यायनामो कहो

उ०—अवलोकन, भासन, परिच्छेदन, विवेचन, अनुसं-वेदनरूप, संवेदना, अविसंवादित्व, निराकरणता, ज्ञाय-कता, स्वरूपओळखाण, स्वरूपानुभव इत्यादि.

१५३ प्र०—सम्यक्चारित्रनां पर्याय नामो कहो.

उ०—स्थिरता, स्वरमण, निश्चलतानुभूति, परमक्षमा, परममार्दव, परमआर्जव, परमनिर्लोभता, अचलता, अनासंगता, ध्रुव, स्वरूपविलास, रमणता, संतोष, समता, स्वरूपस्वादना, स्वरूपानंद, सहजता, स्वाधीनता, इत्यादि.

१५४ प्र०—सम्यक्त्वनी दशरुचि कहो.

उ०—१ निसर्ग रुचि, २ उपदेश रुचि, ३ आज्ञा रुचि, ४ सूत्र रुचि, ५ बीज रुचि, ६ अभिगम रुचि, ७ विस्तार रुचि, ८ क्रिया रुचि, ९ संक्षेप रुचि, १० धर्म रुचि.

१५५ प्र०—सम्यक्त्वनां पांच लक्षण कहो.

तोपण आयुवर्जित सातकर्मनो स्थितिबंध नवसागरे ऊणा एककोडाकोडीसागरोपमनो उत्कृष्ट बंध करे तथा उपशमश्रेणियी पडीने मिथ्यात्वे जाय तेपण आयुवर्जित सातकर्मनी उत्कृष्टि स्थिति बांधे तो ना हजारसागरोपममें ऊंणी एककोडाकोडीसागरनो उत्कृष्टो बंध करे इनि भुवनभानुचरित्रे कयुं छे.

१९७ प्र०—जीव मार्गाभिमुखथइ समकित क्यारे पामे ?

उ०—भवितव्यताने योगे अकामनिर्जराए कर्मखपावतां बे पुद्गलपरावर्तकाल संसार रहे, त्यारे जीव आस्तिकपणे जिनमार्गसन्मुखी थाय, पछी त्यांथी संसारपरिभ्रमण करतो जीव उंचो आवे त्यारे ते मार्गपतित दोढ पुद्गलपरावर्तसंसार रहे त्यारे जिनोक्त मार्गे रुचिवंत थाय; वळी कर्मयोगे त्यांथी पडी संसारभ्रमण करतो ज्यारे एकपुद्गलपरावर्तकालसंसार रहे, त्यारे जीव मार्गानुसारीपणुं पामे, त्यां मित्रादिकदृष्टि प्रगटे, न्यायसंपन्नविभवादि पांत्रीशगुणयुक्त थाय, त्यां जिनोक्त मार्गे चाली मिथ्यात्व मंद करतो करतो नदी गोळपाषाण न्याये घंचना घोळ परिणामे (एटले जेम नदी कांटेथी छूटो पड्यो एक पत्थर, ते जेम पाणीनी छोळमां अथडातो कुटातो पोतानी मेळे गोळ थइ जाय एम) ज्यारे जीव अर्धपुद्गलपरावर्तकाल मांहे आवे त्यारे आर्यदेश, संज्ञीपंचेन्द्रियमनुष्य उत्तम कुलादि संयत थइ सद्गुरु उपदेशे के सहजस्वभावे कोइ निमित्तपामीने यथाप्रवृत्तिकरण वडी उत्तर अन्त-

पौद्गलिक भावने भिन्नभिन्न लखे स्वरूप गवेखे प-
र्यो उन्नर्त्तनना चिन्तवे इत्यादिभेदज्ञानी चोथेथी
मांडी गुणठाणा सुधी जाणवा, ३ परमात्मा ते
अतिनिर्मल, शुद्धस्वरूपानुभवी, निष्कलंकी निरा-
वरणी सच्चिदानंदघनस्वरूपमय, अंतरात्माने ध्येय
ध्यानरूप जाणवा. ए त्रिणे प्रकारनां त्रण आत्मानुं स्व-
रूप नीचे प्रमाणे छे.

हवे आत्मानो स्वरूप लखे छे. आत्मा त्रण प्र-
कारे ते आत्मानो स्वरूप सम्यग्दृष्टिए धारवो जेम
म्दिरना थाय ते लखे छे ते त्रण प्रकार ते कया ?
एक बहिरात्मा १, एक अंतरात्मा २, एक परमात्मा
३. हवे बहिरात्मा कहे छे. शरीर, कुटुंब, माल,
धन, घर, परिवार, नगर, देश, रागद्वेष, मिथ्यात्व,
में मार्यो, में जीवाड्यो, में सुखी कर्यो, में दुःखी
कर्यो, इत्यादिमोहप्रमुख ए सर्व निजस्वभाव जाणे
तेने बहिरात्मा कहिए. तेहने बहिरदृष्टि होइ ते
प्रथम मिथ्यात्वगुणठाणे होवे १. अथ अंतरात्मा-
रूप कहे छे. *प्रथम कर्मबांध्यानो कारण*
लखे छे मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कषाय
ए सत्तावन हेतु ए जीव कर्मबांधे ते
भोगवतां मोहनीकर्मना जोरे दुःख
जाणे जे मारो स्वभाव नहि. किसी
मरण आवे तिहारे इम जाणिने
कांइ जातो नथी. ए सर्व सत्ताथी



प्राप्त थइ पुत्रप्राप्ति फळ लहे, तेम निकटभवी सद्गुरु उपदेश योगपामी शुद्ध श्रद्धा लही, शुद्ध चारित्र पाळी तत्काळ सिद्धि वरे; बीजा मध्यमभवि ते कोइ स्त्रीने पति समागमे बे चार वर्षे गर्भ रही पुत्रप्राप्ति थाय तेम मध्यमभवी थोडा संख्याता भवमां सिद्धि वरे, अने त्रीजा दुर्भवि ते जेम कोइ स्त्रीने घणे कष्टे घणे काळे पतियोगे गर्भ रही पुत्र प्राप्ति थाय तेम धर्मविराधक, पडवाइ बहुलकर्मी भारेकर्मीपणाने लीधे घणे काले, घणे कष्टे, घणे उपदेशे कर्मखपावी सिद्धि वरे.

२. अभव्यस्वरूप वांझणी स्त्री समान जाणवुं, एटले जेम वंध्यादोषवंत स्त्रीने पतिनो समागम छतां पुत्र प्राप्ति थायज नहि, तेम अभव्यने मुक्तिगमन योग्यतास्वभाव न होवाथी गमे तेटली धर्म सामग्रीनी जोगवाइ मळे, तोपण शुद्ध श्रद्धारूप खरेखरुं संसार थकी उद्विग्नपणुं, स्वपरओळखाणपणुं भेद ज्ञान न थाय पण पौद्गलिकआशीभावे चारित्रादिक पाळे, नवमा ग्रैवेयक सुधी जाय छे, पण तेनुं सघळुं फोक निष्फळ जाय छे, केम जे तेना ज्ञानक्रियादि मोक्षने अर्थे यथार्थ न होय तेथी.

३. तथा भव्याभव्य जीवने सत्ताए भव्य समान योग्यता धरावे छे, तोपण कोइ भवितव्यताज ज्ञानीए एवी दिठेली के तेनो स्वभाव व्यवहारराशिमां आववारूप न थाय. अत्र गाथा—

पौद्गलिक भावने भिन्नभिन्न करी स्वरूप गवेषे प-
रथी उदासीनता चिंतवे इत्यादिभेदज्ञानी चोथेथी
बारमा गुणठाणा सुधी जाणवा, ३ परमात्मा ते
अतिनिर्मळ, शुद्धस्वरूपानुभवी, निष्कलंकी निरा-
वरणी सच्चिदानंदघनस्वरूपमय, अंतरात्माने ध्येय
ध्यानरूप जाणवा. जनि मतिमां पण आत्मानुं स्व-
रूप नीचे प्रमाणे छे.

एवे आत्मानो स्वरूप कहे छे. आत्मा पण प्र-
कारे ते आत्मानो स्वरूप सम्यग्दृष्टिए भाख्यो जेम
मिथ्यात्वना भाव ने टले छे ते पण प्रकारने कथा !
एक बहिरात्मा १, एक अंतरात्मा २, एक परमात्मा
३. हवे बहिरात्मा कहे छे. शरीर, कुटुंब, माल,
धन, घर, परिवार, नगर, देश, रागद्वेष, मिथ्यात्व,
में मार्यो, में जीवाड्यो, में सुखी कर्यो, में दुःखी
कर्यो, इंद्रियविमोहप्रमुख ए सर्व निजस्वभाव जाणे
तेहने बहिरात्मा कहिए. तेहने बहिर्दृष्टि होइ ते
प्रथम मिथ्यात्वगुणठाणे होवे १. अथ अंतरात्मा-
नो स्वरूप कहे छे. प्रथम कर्मबांध्यानो कारण
जाणे ते लखे छे मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कषाय
२५ योग १५ ए सत्तावन हेतु ए जीव कर्मबांधे ते
वळतां भोगवे ते भोगवतां मोहनीकर्मना जोरे दुःख
पामे तिहारे इम जाणे जे मारो स्वभाव नहि. किसी
वस्तु जाइ तथा मरण आवे तिहारे इम जाणिजे
माहरा प्रदेशथी कांइ जातो नथी. हुं सर्व वस्तुथी

वस्तुना अभावे मोहमयविषयकषाययुक्तमलिन परिणतिवंत थयो थको मोहितदुःखना भारने लीधे संसारथी उद्विग्न रहे, पण ते साचो दुःखगर्भित वैराग्य भांगे पण न गणाय.

२०२ प्र०–चतुर्विध संसारीप्राणीनुं स्वरूप दृष्टांतथी समजावो.

उ०–१ सघनरात्रि समान, एटले घन कहेतां जे मेघनी घमघोर घटाए आच्छादित थएली अमासनी रात्रिमां कांइपण सूझ न पडे तेम जीवने गाढमिथ्यात्वना उदये तीव्रमोहनी प्रबलताए कंइपण हिताहित सत्यासत्य के कृत्याकृत्यनी सूझ न पडे. तेवा प्रथम गुणठाणी भवाभिनंदी मिथ्यात्वदृष्टि जीव जाणवा; २. अघनरात्रि समान ते जेम मेघनां वादळां रहित रात्रिमां घटपटादिक सूझे, तेम जीव कांइक मिथ्यात्वनी मंदताए मोहादिकना किंचित्क्षयोपशमे धर्ममार्गसन्मुखी मार्गानुसारीजीव अघनरात्रि समान जाणवा; ३ सघनदिन समान ते जेम वादळांए आच्छादितसूर्यवाळा दिवसमां निर्मळ रात्रि करतां विशेष स्पष्ट घटपटादि पदार्थो सूझे छे, तेम मिथ्यात्वनय क्षयोपसमादि गुणेकरी सम्यग्दृष्टि चोथा गुणठाणाथी बारमा गुणठाणा सुधीना परमात्माना मार्गप्राप्त ज्ञानिमहात्माओ जाणवा; ४ अने अघनदिन समान एटले मेघरहित निर्मळसूर्यवंत दिवसनी परे पूर्णज्ञान प्रकाशवंत केवळज्ञानी भगवंतो जाणवा.

२०३ प्र०–संसारीजीवने आठ दृष्टि कहि छे तेना नाम कहो.

तथा प्ररुपणा पण फरसणा नहि ते संवेगपाक्षिकने. जाने, आदरे पण पाळवा असमर्थ ते भांगे जाणवुं. ५ फरसणा पण सद्दहणा ने प्ररुपणा नहि, ते बाळ तपस्वी प्रमुखने=न जाने पण आदरे अने पाळे ते भांगे जाणवुं; ६ प्ररुपणा होय पण सद्दहणा अने फरसणा नहि, ते आदरे पण न जाने अने न पाळे ए भांगो असंजयति संन्यासी आदिने; ७ फरसणा तथा प्ररुपणा होय पण सद्दहणा नहि, ते न जाने पण आदरे पाळे ते भांगो पासत्थादिकने तथा अभव्यदीपकसमकितीने पण होय; ८ असद्दहणा, अप्ररुपणा ते अनादिमिथ्यात्विने; न जाने न आदरे न पाळे ए भांगो जाणवो. ते निगोदिया प्रमुख एकेंद्रियादिकने होय.

१७९ प्र०—श्रीतीर्थंकर प्रभुना दानाधिकार संबंधी छ अतिशयो वर्णवो.

उ०—प्रतिदिन एकक्रोड अने आठलाख सोनैया आपे, ते सोनैयो आठरति के मतांतरे ऐंशीरतिनो पण कह्यो छे; छ घडी दहाडो चडतां आपवा मांडे ते पोणापेपहोर सुधी जमवानी वेळा पर्यंत मनवांछित दान सौने भाग्यप्रमाने प्रभु आपे, सोनैयामां प्रभुनुं तथा प्रभुना मातपिताना नाम होय, ते एक दिवसना दानना सोनैया नवहजार मण थाय, चाळीस मणनुं एक गाडुं भरतां कुल २२५ गाडां भराय, ते गाडां तथा मण वगेरे सर्व

कपाय उपने पूर्वकोडिनुं पाल्युंचारित्र क्षय करे ते उपर गाथा. आचारंगनी दीपिका मध्ये छे यतः " सामणमणुचरंतस्स, कसायजस्सउक्कडाहुंति, मन्नामिइक्षुपुप्फव, निप्फलंतस्ससामण्णम्॥१॥ जंअजियंचरितं, देसूणएविपूव्वकोडीए तंपिकसायमित्तोहारेईनरोमुहुत्तेण ॥ २ ॥"

२०६ प्र०–आंविल एटले शुं ?

उ०–आवश्यकनी टीका मध्ये कह्युं छे के आय कहेतां ओसामण काढ्युं होय ते मध्येथी जेम अन्न काढीए ते रीते काढीने आहार करवो, अने जे आम्ल जे खाटोरस षड्विगय ए बे वर्जिने ते आंबिल कहिए.

२०७ प्र०–नियाणानो प्रश्न.

उ०–नियाणानव प्रकारे दशाश्रुतस्कंध मध्ये कह्या छे, तथा जे नियाणुं समकितनुं छे, अने बीजुं अव्रततुं छे ए बे मध्ये जे समकितनो घात करी नियाणुं बांधे ते समकित पामवो दुर्लभ करे, तथा अविरतनुं भोगप्रतिबुंनियाणुं बांधे ते भोग पूरा थये व्रत उदये आवे जेम द्रौपदीना जीवे भोगप्रतिबुं नियाणुं बांध्युं ते पांच भर्त्तारी थइ. भोग पुरा थया पछी व्रत उदये आव्युं ते माटे अविरतिआसरीनियाणुं कहीये. पण ते समकितनो नथी. इत्यर्थः

२०८ प्र०–चार प्रकारना सामायिक कया ?

उ०–१ श्रुतसामायिक, २ समकितसामायिक, ३ देशविरतिसामायिक, ४ सर्वविरतिसामायिक.ते मध्ये श्रुतसामायिकनो

' अन्नंमांसेनमोविहई ' इम अलन्पाल करे छे
ते सर्व कर्म खपावने अर्थे ते किहा कर्म ख-
पावे, खपावमां तो सत्त कर्म छे, उदयकर्म अने
बंधकर्म ने सत्ताकर्म. उदीरणाकर्म तो उदयना भेद
मध्ये गणेवाय. तथा कर्म ते मध्ये उदय होने खपावे
छे, तथा सत्ताकर्म होने होवे छे. इति बंधकर्म
किम मटे ?

उ०—शुक्लध्येये पांच महाव्रत सकलक्रियाए तथा बंध
पडे ते कर्मनिवारे ते मटे बंधकर्म निवारे ते अना-
दिक शुभक्रियाए तथा पांच प्रकारना सज्झाय
ध्याने उदयकर्म खपावे छे, ते निष्फल करे छे, तथा
शुक्लध्येये अत्मध्याने सत्ताए जे कर्म छे ते सोधे
खपावे. इम मुनि अत्मगुणे निर्मल करी सिद्धि वरे
ए भाव.

१८१ प्र०—ज्ञानीने आत्मा ते संयमने केवी रीते परीणमे छे.

उ०—ज्ञानीने शुक्लध्येये अत्मदर्शनाने आत्मना कारन
ते संवरभावे थाय छे आचारांग सूत्रना चोथा
अध्ययने त्रिदीपपदेशके सम्यक्त्वना अध्ययन मध्ये
" आत्मा ते परीणमा " एवी गाथा छे.

१८२ प्र०—हवे श्री वीर जिनचंद्र प्रत्ये गिरीवरदे श्री गौतमे पुछयुं
के स्वामिन् ! पांच स्थावरना जीव हमना वर्तमा-
ननां लेखा छे ते निर्लेप थाशे गजवारे थाशे ?

उ०—एक वनस्पतिकायविना पांचकायना जीव निर्लेप
थाशे. पृथ्वीअप्तेउवायुत्रसकायना जीव सर्वस्था-

२११ प्र०-नवअनंताए जे जे पदार्थो छे ते कहो.

उ०-प्रथमना त्रणअनंते कोइ पदार्थ न होवाथी शून्य छे, अने चोथेअनंते अभव्यजीवराशि छे, पांचमे अनंते मध्यम भांगे सम्यक्त्व पडवाइ छे, वली तेहज पांचमे अनंते शुद्ध सिद्धना जीवो छे, पण ते पूर्वोक्त पडवाइओथी अनंतगुणा जाणवा, वली छट्ठो अनंतो शून्य, सातमुं शून्य वली आठमे अनंते सर्व निगोदीयाजीवो, तथा तेथी अनंता अनंतगुणा पुद्गलपरमाणु, तेथी काल, तेथी सर्व आकाश प्रदेश, तेथी केवलज्ञान तथा केवलदर्शनना पर्याय, ए सर्व एक एकथी अनंतगुणा पण आठमे अनंते छे, नवमेअनंते कोइ वस्तु विशेष नथी, माटे शून्य जाणवो.

२१२ प्र०-सर्व समकितमां पहेलुं कयुं समकित उत्पन्न थाय छे?

उ०-सिद्धान्त आगममांहि प्रथम क्षयोपशम सम्यक्त्व कहे, उपशमनो मेल नहि ते श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणनी कहेली समकित पद्धतिथी मले कहुं छे, जे पहिलो क्षयोपशम सम्यक्त्व पामे उपशमनो मेल नहि तथा कर्मग्रन्थमां पहिलो उपशम समकित पामे त्यारपछी क्षयोपशमसमकित पामे, उपशमनो मेल नहि एहवो आगमनो मत छे, अने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे नव [illegible] ए अभिप्राय पण [illegible] नहि माने छे.

पट्टो, ५ पडलाइ ते गोचरीए जाता पात्रा उपर कपडुं राखे ते, ६ रयत्ताणं ते पात्रवीटवानुं लुगडु, ७ गुच्छो ते कंबलमयखंड पात्राउपर वींटीछे ते, ए सात पात्राना उपगरणो जाणवा, तथा ८, ९, १० बे सुतराउ कपडां, अने एक उननुं मळी त्रण कपडां राखे. ११ ओघो. १२ मुहपत्ति. ए बार जिन कल्पिने होय, तथा १३ मात्रीउं. १४ चोलपट्टो. एवं चउदस्थविरकल्पने जाणवा.

१८६ प्र०—श्री युगप्रधानआचार्यना विहार शोभा लक्षण कहो.

उ०—काव्यं. देशांहिवसे न यन्ति [illegible]

न गट्टभङ्गो न च [illegible] ।

गदा प्रणर्घनियटोदकेन

युगप्रधाना (मुनिवन्दपूज्य) ॥ १ ॥

उत्तम शारीरिकसौदर्यवलयुक्त आचार्यना उत्तम गुणे सहितः तथा ज्या विचरे त्या अढी योजन प्रमाण मरकीप्रमुखनो उपद्रव न थाय उत्कृष्टपणे दशविध यतिधर्म पाळना पळावना. निजकाळने विषे सर्वथी श्रेष्ठपुरुष एकावनारी महात्मा युग प्रधान आचार्य-भगवन जाणवा.

१८७ प्र०—नीचे जणावेला शब्दोनो अर्थ कहो

भावना. अध्यात्म. मुनि. मैत्री. कारुण्य, मध्यस्थ, अने प्रमोद भावनाओ

उ०—जूनि प्रतिमा नीचे प्रमाणे लखेल छे.

दुर्गतौप्रपतज्जन्तुधारणाद्धर्म उच्यते;

संयमादिदशविधसर्वज्ञोक्तोभवति ॥ १ ॥

२१५ प्र०–दर्शननी क्षपक श्रेणि कया गुणठाणाथी मांडे अने चारित्रनी क्षपक श्रेणि कया गुणठाणाथी मांडे ?

उ०–दर्शननी क्षपक श्रेणि ते चोथा गुणठाणाथी मांडे, चारित्रनी क्षपक श्रेणि आठमाथी मांडे.

२१६ प्र०–ज्ञानावरणीय कर्मनो जघन्य अने उत्कृष्ट बंध केटलो ?

उ०–कर्मनो बंध जघन्यथी एक समयनो, जघन्य स्थिति ते अंतर्मुहूर्तमांइ भोगवे, उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय कर्मनी त्रीस कोडाकोडी इम ए रीते छे.

२१७ प्र०–सर्व जीवोनी मूळ भूमिका कइ ?

उ०–भव्य, अभव्य, सर्व जीव सूक्ष्म निगोदथी नीकळ्या छे. मूळ भूमिका ते जाणवी.

२१८ प्र०–जघन्य अने उत्कृष्ट योगनो काळ केटलो छे ?

उ०–मनोयोगनो जघन्यकाळ एक समयनो, उत्कृष्टो अंतर्मुहूर्तनो काळ एम वचनयोगनो पण काळ पूर्वे छे एम धार्यु छे.

२१९ प्र०–वस्तुने विषे षड्गुण हानि वृद्धि [illegible] कहो

उ०–गुण पर्याय सहित जे वस्तु तेने द्रव्य कहीए, ते उत्पाद, व्यय अने ध्रुवता ए त्रण [illegible] छे, पर्यायवाळी छे, ते पर्यायमां [illegible] पर्यायपणुं परिणमन. जघन्य, मध्यम, अने उत्कृष्ट [illegible] छे, तेने [illegible] वस्तुमां षड्गुण हानि वृद्धि [illegible] अगुरुलघु पर्याय ते [illegible] छे, ते [illegible] छे, ते [illegible]

इशान देवलोके, अने नवमी सोळ सुधीना प्रभुना पिता बीजा सनत्कुमारदेवलोके, अने सत्तरमी चोवीस सुधीना पिता चोथा महेंद्रदेवलोके प्राप्त थया छे. प्रथमना आठजिननी माताओ मोक्षे, नवमी सोळसुधीना जिननी माताओ त्रीजा सनत्कुमार देवलोके, अने शेष सत्तरमी चोवीस सुधीना आठ जिननी माताओ चोथा महेंद्रदेवलोकने प्राप्त थएल छे.

१८९ प्र०—श्रीजिनवाणीश्रवण, चारघातीकर्मना क्षयोपशमे केवी रीते थाय?

उ०—१ अंतरायकर्म तथा दर्शनावरणीयकर्मना क्षयोपशमे जिनवाणी सांभळवानी रुचि थाय, २ दर्शनावरणीय तथा ज्ञानावरणीयकर्मना क्षयोपशमे वाणी काने सांभळे तथा समजे, अने ३ मिथ्यात्वमोहनीयना क्षयोपशमे जिनवचन आत्मस्वरूप ज्ञानरूप यथार्थग्रहणमां आवे.

१९० प्र०—श्री जिनवाणीनुं ध्यानरूप एकाग्रपणमन महाफळ दायक क्यारे थाय?

उ०—धर्मान्तरायना क्षयोपशमे संयमफलपामीने एकाग्रतारूपध्यानमांहि सिद्धि वरे, तथा चारकर्म क्षायिक भावे थये थके केवळज्ञान अने केवळदर्शनादि अनंतलक्ष्मी प्रगट करी महानंदपद पामे.

१९१ प्र०—चारप्रकारनी बुद्धिनुं स्वरूप टुंकमां दृष्टांत सहित समजावो.

उ०—१ औत्पातिकी बुद्धि ते मतिज्ञानावरणीयकर्मना क्षयो-

उ०—केवळी भगवंतने कांइ शुभ संकल्परूप व्यवहार नथी, तेमने एक शुक्ल लेश्यानो उदय छे, ते योगद्वारे परिणमे छे, अने योगनुं परिणमन ते औदयिक भावे जइ परिणमे, केम जे पुद्गलने पुद्गलनो विश्राम छे, तेथी ते लेश्याए योग प्रत्यइक एक साता प्रकृतिनो एक समयनो बंध छे, ते बीजे समये संक्रमे, अने त्रीजे समये खेरवे अर्थात् उत्तम पुद्गल ग्रहे, बीजे समये तेने वेदे अने त्रीजे समये खेरवे एटले खपावे.

२२३ प्र०—सम्यग्दृष्टिने अने मिथ्यादृष्टिने शुभाचार अने शुभ उपयोग केवी रीते होय छे ?

उ०—मिथ्यादृष्टिजीवने शुभाचार होय पण शुभोपयोग न होय, अने सम्यग्दृष्टि जीवने शुद्धोपयोग होय तेहने शुभोपयोग आचरणरूपे होय पण आदर न होय अने मिथ्यादृष्टि जीवने शुभाचाररूप होय पण अशुद्धोपयोगना घरनो अशुभोपयोग होय पण अशुभोपयोग उपचारे कहिए इति भाव, हवे चोथे गुणठाणे सम्यग्दर्शन पामे अनंतानुबंधिया रागद्वेष तथा मिथ्यात्वमोहनोक्षय तथा क्षयोपशम थाय.

२२४ प्र०—भामंडल करवानी शी जरूर छे ?

उ०—आणंद श्रावकनी संधि खरतरगच्छे मुनिश्रीसारनी कीधी गाथा त्रणसेने एकासीमी छे ते मध्ये अष्टप्रतिहार्य अधिकारे देवता भामंडल किम करे छे ? तत्र गाथा—तेज अरिहंत अतिघणो ए, सर्मी न शके नरनारी । ते तेज लइ मुख करे ए, पुंठे भामंडलसार ॥ १ ॥ परमउदारिक शरीरना तेज

वीर्योल्लास थकी अपूर्वकरणे रागद्वेषनी ग्रंथि भेदी मिथ्यात्वमोहनीयनी सातप्रकृतिने उपशमाववानो अंतरकरणमां थइ अनिवृत्तिकरणे आवी सम्यग्दृष्टि थाय, त्यारे जीवने मार्गानुसारी कहीए, वस्तु सत्ता धर्म अंशे प्रगट कर्यो त्यां तेनी केवी दृष्टि वर्ते ते कहुं छे के:-

काव्य.

अंशे होय इहां अविनाशी, पुद्गल जाल तमाशी,
चिदानंदघन स्वरूप विलासी, केम होय जगनो आशी;
ए गुण वीतरागे न वीसारे संभारे दिन रातरे,
पशु टाली सुरूप करे जे, समकितने अवदातरे.   १

१९८ प्र०—साधुने जे त्रणयोग छे ते रत्नत्रयगुणे प्रणम्या छे ते केवी रीते ?

उ०—मनोयोग ते सम्यग्दर्शनगुणे दृढासक्तिरूपे परिणमे छे, तथा वचनयोग ते जिनवाणीमांहे ज्ञानगुणे प्रणम्यो छे, तथा कायायोग ते चारित्रगुणे "जयंचरे जयंचिट्ठे जयंमासे जयंसये " इत्यादिकरूप प्रगट्यो छे तेथी यावज्जीवसुधि सावद्ययोगनो निवर्त्तीने मुनि संयमयोगे परिणमे छे. इतिभाव

१९९ प्र०—संसारमां जीव भव्यअभव्यादि त्रणप्रकारना छे ते क्या ? तेनुं स्वरूप दृष्टांतसहित स्पष्ट समजावो.

उ०—१ भव्य, २ अभव्य, ३ भव्याभव्य अथवा जातिभव्य; त्यां भव्य त्रणप्रकारे छे:—निकटभवी, मध्यमभवी, अने दुर्भवी; निकटभवी सोहागण स्त्री समान, ते जेम सोहागणी स्त्री पतिसमागमे ९ मासमां गर्भ

मानथी अन्न पानादिनुं दान देतां थकां जीव महा पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जीने देव मनुष्यादि उत्तम भव करतां थकां शीघ्र सिद्धि वरे.

२३३ प्र०–छकायनां गोत्रनां नाम कयां ?

उ०–१ इंदिथावरकाय, २ बभीथावरकाय, ३ सिपिथावरकाय, ४ समुइथावरकाय, असरिसथावरकाय, जंगम थावरकाय, इन्द्रियथावरकायतुं पृथ्वीकाय गोत्र, पीतवर्ण पुढवीनाम जीव, इन्द्र देवता, बभी थावरनो अपकायगोत्र, श्वेतवर्ण ब्रह्म देवता अपकाय जीव, सिपीथावरकायनो ते जसगोत्र रक्तवर्ण शिल्प देवता तेउकाय जीव, समुइथावरकायनो गोत्र, वाउकाय, हरितवर्ण समुद्रदेवता वायुकाय जीव, आवशाइथावरकायना वनस्पतिगोत्र, नानावर्ण पातालदेवता, वनस्पति जीव, सात नरकनां गोत्रनी पेठे ए पण जाणवा.

२३४ प्र०–दश प्रकारनां सत्य ते कयां ?

उ०–१ जनपद सत्य, २ समय सत्य, ३ स्थापना सत्य, ४ नाम सत्य, ५ रूप सत्य. ६ प्रत्येय सत्य, ७ व्यवहार सत्य, ८ भाव सत्य, ९ योग सत्य, १० उपमा सत्य. गाथा–

जणावयण समयवणा, नामेरूपेपड्डुच्च सच्चे य।
ववहारभाव योगे, दसमे उवमसच्चे य॥

२३५ प्र०–पांच इंद्रियोनी आकृति तेमनो विषय क्षेत्र, तथा विषय विकार, केटला अने कया कया छे ते कहो.

उ०–१ स्पर्शेन्द्रियनो आकार अने प्रकारे छे, नव योजन

" सत्तत्तं जाणताओ ववहारनयेण सम्मत्तं ।
सव्वविरेसन्ना जे छिदुहंतगंति ॥ १ ॥ "

अर्थात् जे अल्पज्ञानीओने तेम छतां पण अंतःकरणमां कल्पविचारो नहीं पण कुल-निर्देशोनो अभ्यास करतो रहे, तेम कल्पविचार करीने शुद्धोपयोगे रहे कहो पण मध्यस्थो योग न थाय तेमां दुख मानि न शके एम जाणवुं.

२०० प्र०—अध्यात्मशास्त्रमां व्यवहारना भेद कह्या छे ते क्या ?

उ०—सद्भूतिनो २ निश्चयदृष्टि ? अने कृतस्थितो. ते चैतन्य पोतानो गुणस्थानवत्नो व्यवहारछे. २ अस्या-नेमां ते कृति, ३ इतिमात्र.

२०१ प्र०—केवलज्ञानमां व्यवहारनुं हेतु स्वरूप कहो.

उ०—ज्ञानदर्शन चैतन्य, ज्यां ज्ञान दर्शननो नानाविध हेतु होय पण एक निःस्वरूपनी निजबुद्धि-वाळो एवुं चैतन्यमुनि पाय पण अल्पज्ञान न होवाथी पण पौद्गलिकज्ञान स्थानो केवल नहि पडतो समय छे; तेने ज्ञानदर्शनचैतन्य कहीए; पण ते जो वर्ण मध्ये रत्ना पडी शुद्धज्ञान देखानेथी केवलज्ञान थने ते पछी तेनो केवल रूप स्वतो ज्ञानदर्शन कहेवाय, एटले ज्ञानदर्शन केवली पदार्थे मनमां प्रकाश थयेलो होय, तथा इन्द्रिय संबंध नहि अने पंचेन्द्रियपणां होय; त्यारे केवलज्ञानदर्शन केवळ श्री, इष्ट, अनादि

सम्यक्त्व पामे, त्यारे वीतराग धर्मनी रुचिपूर्वक प्रतीतात्मक धर्मरूप शुद्ध तत्त्वार्थ श्रद्धाने आत्म-स्वरूपनुं दर्शनज्ञान, स्वरूपाचरणरूपे जीवने थाय.

२३८ प्र०–आत्मांगुल उच्छेदांगुल प्रमाणांगुलनां भान क्यां केवां छे ?

उ०–आवश्यक निर्युक्तिमां तेनुं मान नीचे प्रमाणे कह्युं छे.

गाथा––उस्सेहंगुलमेगं, हवइ पमाणांगुलं सहसगुणं।
तंचेव दुगणीयंखलु, वीर सायंगुलं भणियं ॥१॥
आयंगुलनवथ्थुं, सरीर मुस्सेहंगुलेण तहा।
नग पुढवी विमाणाई, मिणसुयमाणंगुलेणंतु ॥२॥

२३९ प्र०–मतिज्ञानना केटला भेद छे ?

उ०–मतिज्ञानना श्रुतनिश्रित अने अश्रुतनिश्रित ते मध्ये श्रुतनिश्रितना ४ भेद अवग्रह, १ ईहा, २ अपाय, ३ धारणा ४ अवग्रहना वे भेद १ व्यंजनावग्रह, २ अर्थावग्रह व्यंजनावग्रहना ४ भेद १ स्पर्शेंद्रिय, २ रसेंद्रिय, ३ घ्राणेंद्रिय, ४ श्रोत्रेंद्रिय, अर्थाग्रहना ६ भेद पांच इंद्रिय छट्ठुं मनएम छ चोक चोवीस अने ४ व्यंजनावग्रहना इम ईहा अपाय धारणा करना एवं २८ एम ऐकेकना १२ भेद थाय १ बहु, २ अ-बहु, ३ बहुविध, अबहुविधादिक चार भेद जिहां अनेक जीव वाजिंत्रना शब्द सांभले छे ते मध्ये क्षयोपशमिक विचित्रताए करी कोइक जीव घणा शब्दग्रहे ते बहु १, कोइक जीव थोडाग्रहे ते अबहु २, कोइक .. मांहे इत्यादिक घणा

उ०–१ ...पे जाणे ... थोडा विशे...

विशे

उ०—१ मित्रा, २ तारा, ३ बला, ४ दीप्रा, ५ स्थिरा, ६ कांता, ७ प्रभा, ८ परा, ए आठ दृष्टि कहि तेनो विस्तार योगदृष्टिसमुच्चयथकी जाणवो.

२०४ प्र०—सर्वपदार्थमात्रमां चारकारण छे ते दृष्टांतथी कहो.

उ०—१ उपादानकारण ते जेम घटमां मृत्तिका; २ निमित्तकारण ते जेम घटनी उत्पत्तिमां चक्र, दंड, चीवरादि छे तेम जाणवुं; ३ असाधारणकारण ते जेम घट निष्पन्न करवामां कुंभार हेतुभूत छे तेम जाणवुं; ४ अपेक्षा कारण ते वस्तु जेम छे तेमनी तेम रहे. पण तेना आलंबने, महायनाए आश्रये आपणुं कार्य करीए, जेम घट नीपन्यो तेमनो तेम रहे पण तेहनी साहाये जलभरणपानरूप काम नीपजे, तथा जेम सूर्य दीपे छे, तेनी साहाये आपणा काम करीए छीए तेम जाणवुं; वली बीजां पण त्रण कारण कह्यां छेः—समवायिकारण ते सहचारी संबंध कारण जेम घटनुं उपादान मृत्तिका छे तेम; २ असमवायिकारण ते असहचारी भिन्ननिमित्त, जेम घटनी उत्पत्तिमां कुंभार छे तेम; ३ निमित्तकारण ते चक्रदंडचीवरादिरूप जाणवुं.

२०५ प्र०—सर्ववस्तु, द्रव्यार्थिकनय अने पर्यायार्थिकनय वडे प्ररूपाय छे. ते मांहेथी साननय ते कया ?

उ०—१ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र, ५ शब्द, ६ समभिरूढ, ७ एवंभूत. ए सात नय तेहना उत्तनय ए विस्तारनयचक्रथी जाणवो, तथा

उ०–अनंता सूक्ष्म परमाणुए एक व्यवहार परमाणु; आठ त्रसरेणुए एक उर्ध्वरेणु; आठ उर्ध्वरेणुए एक रथ रेणु; आठ रथ रेणुए उत्तर कुरु युगलीयाना तुरत जन्मेला बाळकनो एक बाळाग्र; एवा आठ बालाग्रे एक महा हिमवन्त क्षेत्र युगलीक बाळ बाळाग्र; एवा आठ बाळाग्रे; एक महाविदेह क्षेत्र मनुष्य बाळाग्र; एवा आठ बाळाग्रे एक भरतक्षेत्र मनुष्य बाळाग्र, एवा आठ बाळाग्रे एक लीख, आठ लीखे एक जु, आठ जुए एक जव; आठ जव एक आंगळ; २४ आंगळनो एक हाथ, चार हाथनो एक धनुष, अने बे हजार धनुषे एक कोश, एवा चार कोशनो एक योजन जाणवो.

१४२ प्र०–षड्विध पल्योपमनुं स्वरूप कहो.

उ०–उद्धार, अद्धा, क्षेत्र पल्योपम, सूक्ष्म अने बादर भेदे करीने छ प्रकारे छे ते आवी रीतेः–१ पूर्वोक्त योजन चार प्रमाणे लांबो पहोळो, अने उंडो कुवो कल्पिए तेने पल्य कहिए, तेनी छे उपमा ते जेने तेने पल्योपम कहिए ते पल्यने देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्रना युगलिक तुर्त जन्मेला बाळकना बाळाग्र एकना आठ आठ खंड सातवार करीए, ते बाळाग्र खंडे करी ठांसी ठांसीने भर्वो, एवो के ते उपरथी चक्रवर्तिनी सेना चाली जाय, तथा गंगा नदीनो प्रवाह पूर जोरथी ते उपरथी वहन करे, तोपण एक पण बालाग्र तेमांथी खसे नहि, एवो ठांसीने भरीए, पछी ते बालाग्रने समय समय एक एक

लाभ ते भव्यमिथ्यात्विने होय अभव्यने पण द्रव्यथी श्रुतनो लाभ थाय, तथा समकितसामायिक ते सम्यग्दृष्टिने होय पांचमे गुणठाणे देशविरतिसामायिकनो लाभ होय, सर्वविरतिसामायिक ते छठ्ठा गुणठाणावाळा मुनिने होय.

२०९ प्र०—व्यवहार अने निश्चय समकितनीनुं टुंक स्वरूप कहो.

उ०—जिनवाणी प्रतीतिमंडाने प्रत्यक्षस्वरूपने वेदे, गुण पर्यायनो विवेचन करे, भेदरूप रत्नत्रयने आराधे, तेने व्यवहारसमकिती कहीए, तथा जेने जिनवाणी गुण पर्यायअभेदरूपरत्नत्रये द्रव्य द्रव्यरूपे निर्विकल्प समाधिपणे परिणमे तेने निश्चयसमकिती कहीए, ते आगळ कनां व्यवहार प्रवर्तनां वस्तुधर्मरूप शुद्धात्मनिश्चयपरिणतिरूप समकितने मेळवे.

२१० प्र०—कया ज्ञानथी अने कइ क्रियाथी मोक्ष थाय?

उ०—क्रिया बेप्रकारनी छे:—१ योगक्रिया ते शुभाशुभ बंधरूप छे, अने उपयोगक्रिया ते पोताने स्वरूपे परिणमे, त्यां कर्म निर्जरा थाय. योगक्रिया आवे आस्रवरूप होइ कर्मबंध निपजावे, अने उपयोग क्रिया ते स्वरूप प्रगटावे. एटले योगक्रिया कर्म ग्रहण त्यागरूप मुख्य पुष्ट छे, परंतु सर्वथा मोक्षार्थे नथी, केम के सर्वथा मोक्षरूप धर्म ते शुद्धोपयोगे छे, माटे उपयोगशून्यक्रिया आस्रवरूप मोक्षनी एटले आत्मस्वरूपनी कराणनी एटले आच्छादन करनारी छे. (नाश करनारी छे.)

अनादिकाळना अज्ञान, मोह, मिथ्यात्व, प्रमादादि रूपभववासनाना जोरे आवी उत्तम योगवाइवाळा मनुष्यभववुं लेशमात्र पण बहुमान नयी आवतुं, हा ! इति खेदे केवी अफसोसनी वात छे, माटे हे चेतन ! आ परमात्माना वचने करीने हवे चेत! अने जे कुळमां उत्तम कुळना प्रभावे करीने हिंसानो आचारज नयी तेवा अहिंसक कुळनी प्राप्ति छतां श्रीजिनेश्वरभगवंतनो धर्म पाळवामां प्रमादने छोड, अने तारुं खरुं कर्तव्य आ मनुष्य भवमां शुं? छे, तेनो विचार करी विषयकषायनी प्रवृत्तिनो जेम बने तेम संकोच कर, अने तत्त्वमार्गने आदर, सुदेव, सुगुरु, अने सुधर्मने ओळख; अने ते ओळखाण पूर्वक शुद्धक्रियानुं सेवन कर; अने सरळता, कोमळता, विनयादि गुण धारण करनां शीख जेथी परंपराये तारा आत्मानुं चिरकाळ कल्याण थशे, तथास्तु शुभंभवतु, शांतिः शांतिः शांतिः । पूर्वोक्त सूक्ष्मअद्धा काळे करी आयुष्यमान, कर्मस्थिति, कायस्थिति, तथा अन्य काळमानादिनुं प्रमाण थाय छे; ३ पूर्वोक्त बाळाग्रवडे स्पर्शा जे आकाश प्रदेश तेने प्रत्येकने समय समय काढतां जेवारे पल्यवाळाग्रथी खाली थाय तेटला काळने बादरक्षेत्रपल्योपम कहिए, अने बाळाग्रने स्पर्शा सर्व आकाश प्रदेश पल्यना समय समय खाली करतां जेवारे पल्य निर्लेप थाय एटला काळने सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपम कहिए, तेने दश कोटाकोटि

त्माने विषे प्रवर्त्ते, यतः जोखवेइ मोहखलु, सोविसय विरत्तो मणो णिरुंभित्ता। समवट्ठिदोसाभावे, सो अप्पाणं हवई झाया ॥ १ ॥ इति उक्तं प्रवचनसारे, आत्मभावनानी गाथा-त्रण लखीए छीए. एगोहंहोमिपरे सिं, ण मे परे णत्थि मज्झमिहकिंवि। इय आय भावणाए, रागदोसाविलय जंति ॥ १ ॥ नाणस्सविसुद्धिए, अप्पा एगतंउ ण संसुद्धो। जम्मानाणंअप्पा, अप्पाणंच अणंता ॥२॥ आयासामाइए, आयासामाइयस्सअठोत्ती। तेणेव इमंसुत्तं, भासई आयपरिणामं ॥ ३ ॥ ए सूत्रे पण चारित्रनें आत्मपरिणामरूपज कहीए छीए. पण बाह्यक्रियारूप नथी कह्युं. तत्र काव्यं-येषांनचेनो ललनासुलभं, मग्नं न साहित्यसुधासमुद्रे। ज्ञास्यंति ते किममहाप्रयासा-नन्धो यथा वारवधूविलासान् ॥ इत्यर्थः ॥ त्यारे शुद्धात्मोपयोगअवस्थानरूप निर्मळ ध्यानदशानी परम शीतळ शांत सुगंधिनी अनुभवलेहेरीओनुं आत्मा आस्वादन करे, ते सुख आगळे पौद्गलिक सुखना मीखारीओ शुं जाणीए; कह्युं छे जेः—

सघळुं परवश ते दुःख लक्षण, निजवश ते सुख लहिए;
ए दृष्टे आतमगुण प्रगटे, कहो सुख ते कोण कहीएरे.
भविका वीरवचन चित्त धरीए. १
नागर सुख पामर नवी जाणे, वल्लभ सुख न कुमारी;
अनुभव विण तेम ध्यानतणुं सुख, कोण जाणे नरनारीरे. भ. २
भोग क्षय शांत वाहिता, शिव मारग ध्रुव नाम;
असंग क्रिया इहां योगी, विमळ सुजस परिणामरे. भ. ३

होय. स्थविरकल्पमां पण आ कालमां सापेक्ष अ-
पवादनी मुख्यताए चारित्र छे.

२४५ प्र०—पांच नोधम्मीया प्राणी कह्या छे ते कया?

उ०—भट्ठोदेवायच्चो, विसयासत्तो अज्जियापुत्तो । गुरु देवा-
यणदुट्ठो, नोधम्मा पंचपन्नत्ता ॥ १ ॥ अस्यार्थः—
१ भ्रष्ट ज्ञात कुळथी वंठेला जीव; २ देवादिक धर्म-
खाताना निःशूक मने हराम दानते पगाँर खानारा
पूजारादिक तथा देव गुर्वादिक द्रव्यना खानारा;
३ विषयाशक्त लोलुपी लंपटी; ४ व्यभिचारवडे
साध्वीने पेटे अवतरेल पुत्र, ५ देव, गुरु, धर्मादि-
कनो निंदक, घातक उत्थापक ए पांच अधर्मी एटले
नोधम्मिया जाणवा, ते वीतराग भाषित धर्मथी
पराङ्मुख रहे.

२४६ प्र०—समूर्च्छिममनुष्य मरी केटला दंडकमां जाय छे?

उ०—दशदंडकमां जाय छे. ५ पांच थावरमां ३
विकलेन्द्रियमां ९ पंचेन्द्रियमनुष्यमां १० पंचेन्द्रिय
तिर्यंचमां जाय पण युगलियो न थाय. तथा ए
दशदंडकमां तेउकाय. वायुकाय ए वे दंडक वर्जिने
बीजा आठ दंडकना आव्या संमूर्च्छिममनुष्य थाय.

२४७ प्र०—जीवने परभवआयु शी रीते बंधाय छे; अने ते
केटला प्रकारनुं छे?

उ०—जीवने आयुकर्म परभवसंबंधिनुं आ भव भोगवतां
थकां एकजवार निकाचितपणे त्रण आकर्ष करी सो-



रागियाने नग आरती (स्तुति) करे छे. [illegible]
गाय पानी पीति [illegible] पीवे. तेम [illegible]
पन आयुष्यना [illegible] भेद आवि थाये. [illegible]
मति तेवी गति अथवा गति तेवी मति [illegible]
परिणाम [illegible] थइ पडे.

२४८ प्र०—आरती [illegible]

उ०—आरती [illegible]

[illegible]

हतां ते आत्मप्रदेशोदये भोगवी, आयुकर्म बांध्युं हतुं तेटलुं पूरुं भोगवी लीधुं, तथा काळ आसरी अकाळे मुओ एटले जे आयु सुखे समाधे जीव विपाकोदये भोगवीने मरत, ते थोडा काळमां ते आयुना दळने प्रदेशोदये वेदीने खपावीने मुओ तेथी तेने अकाळमरण कहे छे. अर्थात् जेटलुं आयुष बांध्युं हतुं तेटलुं प्रदेशोदये भोगवीने पूरुं कीधुं तेथी संपूर्ण आयुषे मुओ तेम कहेवाय अने घणा काळे विपाकोदये भोगववानुं आयु कर्म थोडा काळमां भोगवीने खपाव्युं माटे अकाळ मरण कहिये.

२५२ प्र०—कोने संघनी बहार काढवो तथा कोने दीक्षा न आपवी जोइए ?

उ०—अथ प्रास्ताविक गाथा—

जो भणईनत्थिधम्मो, न सामाइयं न चेव वयाइं ।
सो समणसंघबज्झो, कायव्वो समणसंघेण ॥ १ ॥
अट्ठारसपुरिसेसु, वीसइत्थीसु दसनपुंसेसु ।
जिणपडीकुतिन्नियाओ, पव्वावेउं न कप्पंति ॥२॥
बालेवुड्ढेनपुंसयेय, कियेजडेयवाहिए ।
तेणेरायावगारिय, उमत्ते य अदंसणे ॥ ३ ॥
दासेदुट्ठेअमूढेय, अणंतेजुगए एप ।
अवबंधए यभिएय, सेहेनिप्फोडीयाइय ॥ ४ ॥
एटलाने दीक्षादेवी न कल्पे,

२५३ प्र०—सोळ संज्ञाओ कइ ?

प्रमाण. अने तेइंद्री अनंता प्रदेशोनी अड प्रकारे
स्पर्श छे, तेना विकारो ९६ छे. २ रसेन्द्रियनी आ-
कृति खुरपो तथा खड्गना पत्र सरीखी छे, नव
योजन अने तेना पुद्गलोनो स्वाद आवुधी वें-
धाइ आवे धके छाय. तेना ह स्वरूप ५ वि-
षयना ७२ विकारो छे. ३ घ्राणेन्द्रियनी आकृति
नरना फूल सरखी छे, तेनो विषय उत्कृष्ट नव
योजननो तेना विषय २ अने विकार १२ छे. ४
चक्षुइंद्रिय. तेनी आकृति मसुरनी दाळ समान. एक
लाख योजन विषय उत्कृष्ट. तेना विषय पांच अने
तेना विकार ६०. क्षेत्रनो ए योजन आत्मांगुल
प्रमाणे एक लाखनो योजन जाणवो. तथा सूर्यनो
बिंबनो आत्मांगुल प्रमाणे घणा लाख योजन थाय.
ते माटे चक्षुनो पूरो विषय नथी तो सूर्यनो बिं
बि, देखाय छे. तथोना सूर्यनो विमान देवता
एक योजनना एकसठिया अडतालीस भागनो छे.
तेना आसपास गाउ १३०० ने आशरे मोटो विमान
छे. ते संपूर्ण आंखे देखतो नथी. पण तेना वि-
मानना तेजपणा तेजनो आतापनाम झलक कांति
दिसे छे. पण संपूर्ण विमान आंखे न देखाय ते
माटे आत्मांगुल प्रमाणेनो लाख योजन विषय
कह्यो. श्रोत्रेन्द्रियनी आकृति अगथीआ वृक्षना फूल
समान, तेनो १२ योजन विषय छेय, तेना विषय
३ अने विकार १२ एम एकंदर पांच इंद्रिय वि-
षय २३ अने विकार २५२ ते विकारो रहित मात्र

अंतरद्वीपना, हवे अग्रवीज, मूलवीज, पर्ववीज, स्कंधवीज, ए चार वनस्पतिना भेद. पृथ्वीकाय, अप्‌काय, तेउकाय, वाउकाय, एवं चार तथा देवता अने नारकी एवं अढार १८ भावदिशा. आचारांग सूत्रमध्ये शस्त्रपरिज्ञाअध्ययनमांहे भावदिशा वखाणी छे. तथा अढार द्रव्यदिशा. चारदिशि, चारविदिशि, आठदिशि, विदिशिनां आंतरां. ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा ए १८ द्रव्यदिशा जाणवी.

२५६ प्र०—नीलीगलीए रंगेला वस्त्रमां केटला वखतमां जीव पडे छे ?

उ०—नीलीगलीए रंगेला वस्त्रथी मनुष्यसंसर्गे तत्काल कुंथुमसुख त्रसजीव घणा उपजे छे. एम रत्नसंचय ग्रन्थमां कह्युं छे.

२५७ प्र०—लब्धिपर्याप्तानुं तथा करणपर्याप्तानुं केवुं स्वरूप छे ?

उ०—पर्याप्तिर्द्विधा लब्धिः करणश्च तत्र ये स्वयोगपर्याप्ति सर्वाअपि समर्था म्रियन्ते न अर्वाग् ते लब्धिपर्याप्ता ये पुनःकरणानि शरीरेन्द्रियादीनि निवर्तन्तः ते करणपर्याप्ता इति, ननुचास्यशरीरपर्याप्तौ च शरीरंभविष्यति किं प्राग् अभिहितेन शरीरनाम्ना ? नैतदस्ति साध्यभेदात् तथा जयसोमकृत बालावबोधमां एम लख्युं छे.

२५८ प्र०—छ पर्याप्तिनुं स्वरूप कहो.

उ०—जे 'कर्मना उदयथी आरंभी पर्याप्ति पूरी कर्या विना न मरे ते पर्याप्तिनामकर्म, तेणे एकेन्द्रियने चार

जाणे ते अबहुविध ४, कोइक उतावळो ते क्षिप्र ५, कोइक मंदपणे ते धीर कहीये ६, कोइक ध्वजादिक लिंगे करी अनुमानादिक जाणे ते सलिंग ७ तथा जे लिंग विना जाणे ते अलिंग ८, एक संदेहालो जाणे ते संदिग्ध कहीए ९, संदेह रहित जाणे ते असंदिग्ध १०, कोइकनेड कयुं ते बीजी वेळाए अवधारे ते जाण ते ध्रुव कहीए ११, कोइक वारंवार जणावे जाणे ते अध्रुव १२, एम अवग्रहादिक २८ भेद ते बार गुणा करता ३३६ भेद थाय एटला श्रुतनिश्रितना भेद तथा अश्रुतनिश्रितना ४ भेद ते १ औत्पातिकीबुद्धि, २ वैनयिकीबुद्धि, ३ कर्मथी ते कार्मिकीबुद्धि, ४ परिणामिक ते पारिणामिकीबुद्धि, एवं ते अश्रुतनिश्रित भेद मळी मतिज्ञानना ३४० भेद कर्मग्रंथनी टीका मध्ये कह्या छे.

४० प्र०–ज्योतिष देवतामां कया जीवो न उपजे ?

उ०–पन्नवणा सूत्रना छठ्ठा व्युत्क्रांतिपद मध्ये कयुं छे के ज्योतिषि देवतामांहे संमूर्छिममनुष्यअसंज्ञियो तथा तिर्यंच असंज्ञियो समुर्छिम असंख्यात आयुष्यवाळा युगलिया पंखी तथा अंतर्द्वीप युगलिया मनुष्य एटला मांहेथी आवी ज्योतिषि देवतापणे न उपजे.

प्र०–एक योजननुं प्रमाण परमाणुथी मांडीने की रीते थाय छे ? ते कहो.

ए गाथानो गुरुगमथी अर्थ धारज्यो. सम्यग्दृष्टिने उदयस्थिति प्रतियोबंध होय. पण आत्मप्रतियोबंध न होय.

२६१ प्र०—छद्मस्थ कोने कहे छे ?

उ०—छाद्यते केवलज्ञानदर्शने आत्मनः अनेनेतिछद्म-ज्ञानावरणं दर्शनावरणं मोहनीयान्तरायकर्मोदयेसति तस्य केवलज्ञानदर्शनस्यानुत्पादात् तदपगमानन्तरं चोत्पादात् ज्ञानावरणादिछद्मनि तिष्ठतीतिछद्मस्थः॥ केवलज्ञान विना बाकीनां चार ज्ञान प्रगटतां पण छद्मस्थ गणाय छे.

२६२ प्र०—मुनिने अप्रमत्तदशाए समय समय अनंतगुणविशुद्धि कही छे ते शी रीते ?

उ०—आत्मोपयोग एकाग्रध्यान भणी मुनिने आत्मप्रदेशे रहेल अनंतीकर्मवर्गणानी निर्जरा थतां आत्मानी अनंती विशुद्धि समय समय थाय छे.

२६३ प्र०—आहारकआहारक मिश्र जीव किम करे ?

उ०—जेवारे पूर्वधरे संदेह पुछवा निमित्ते आहारकशरीर मोकल्युं होय तिहां ज्ञानवंत नहीं तिवारे तिहांथी वळी बीजुं आहारक करे ते करती वेलाए पूर्वआ-हारक संघाते मिश्र होय ते माटे. इति भावार्थ।

२६४ प्र०—सिद्धने अफुसमाण के फुसमाण गति शी रीते समजवी ?

उ०—एक समयमां समश्रेणिना सर्वआकाशप्रदेश, प्र-

काढतां जेटला समयमां ते पल्य खाली थाय तेटला कालने एकबादरउद्धारपल्योपम कहिए. ते [illegible] कहिए. तेमज [illegible] थाय मात्र पण ते वालाग्रखंडना एक एकना असंख्याताखंड क-ल्पिए. अने ते कल्पनाखंड समय समय काढतां जेटला कालमां खाली थाय तेटला समयने एक सूक्ष्मउद्धारपल्योपम कहिए. [illegible] [illegible] कोडाकोडी-उद्धारपल्योपम एक [illegible] प्रमाणे तिर्च्छालोके द्वीप अने समुद्र असंख्य छे. ते पछी पूर्वोक्त वालाग्रखंड एक एकने सो सो वर्षे काढतां ज्यारे खाली थाय तेटला समयने एक बादरअद्धार-पल्योपम कहिए. अने ते वालाग्रखंडना असंख्याताखंड कल्पीने प्रत्येक खंड सो सो वर्षे काढतां जेटला समयमां पल्य खाली थाय तेटला वखतने एक सू-क्ष्मअद्धापल्योपम कहिए. तेवा दसकोडाकोडी[illegible] एक सागरोपम. तेवा दसकोडाकोडी [illegible] एक अवसर्पिणी ने उत्सर्पिणी काळ छे. ते [illegible] वीसकोडाकोडीसागरोपम प्रमाण एक कालचक्र. एवा अनंताकाळचक्रे एक पुद्गल[illegible] [illegible] भाग. आ जीव संसार मध्ये [illegible] [illegible] जन्म मरण करतो करतो [illegible] [illegible] [illegible] पीडातो, कोइ महापुण्य [illegible] [illegible] [illegible] नदी गोळपाषाणना [illegible] [illegible] [illegible] अत्यंतदुर्लभ एवो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निरोगी देहसहित [illegible] [illegible] छे. [illegible]

[illegible]

अथ प्रास्ताविक गाथा—

कालेसुपत्तदाणं, समत्तविसुद्धिबोहिलाभं च ।
अंते समाहिमरणं, अभव्वजीवा न पावंति ॥ १ ॥
अखंडियचउत्थो, वयगहणाउ जोय गीयत्थो ।
तस्स सगासे दंसण, वयगहणंसोहिगहणं च ॥ २ ॥
कत्थय जीवो बलीओ, कत्थय कम्माइं हुंति बलीआइं ।
जीवस्सय कम्मस्सय ॥ ३ ॥
कालसहावोनियइ, पुव्वकयंपुरसकार ए गंता ।
मिच्छं तंतं चेवओ, समासओ होतिसमत्तं ॥ ४ ॥
नव हि जीववहकरणं, करायण अणुमोदिय जोगेहि ।
कालतिएहिंगुणीएं, पाणीवहहुस्सतेयाल ॥ ५ ॥ अस्यार्थः

साधुने पहेलाव्रतना नवकोटी पच्चक्खाण छे पण तेहना भांगा २४३ थाय इम २७ करवाना २७ कराववाना २७ अनुमोदवाने विपे निषेवे इम ८१ थाय ते काले भणेगुणेगुणी त्रिगुणाकरतां २४३ भेदे साधुने पच्चक्खाण होय जावजीवलगे इत्यर्थः ।

२६७ प्र०—छ प्रकारना पुद्गलनुं स्वरुप कहो.

उ०—१ बादर ते खडी माटी पाषण प्रमुख जाणवा, केमजे ते पदार्थोने छेद्या थकां तेना खंडो एकमेक न रहे, पण भिन्नभिन्न नजरे देखाय छे, माटे बादर बादर ते पहेलो भेद, २ बादर ते घी, दूध, पाणी, तेल, मद्य, गोळ, खांड इत्यादिकना पुद्गलने बादर कहिये, केमजे तेमने छेद्यां थकां भिन्न न थाय एकमेक मळेलांज रहे छे. ३ बादरसूक्ष्म ते छांं-

बादरमां एकेंद्रिय वे प्रमादि जीव सम्यानमान कराय छे. ए असंख्यातउत्सर्पिणी प्रमाने इम श्रण सूक्ष्म-पल्यो शास्त्रने विषे उपयोगी होइ तिन बादर कह्या ते सूक्ष्मनो सुखावबोधार्थ इहा प्राय घणो अद्धा-पल्योपमनो प्रयोजन छे. इम कोडाकोडी सागरोपम एककालचक्र होते अने ते कालचक्रे पुद्गलपरावर्त्त होइ ते आठ प्रकारना छे ते त्याथी जो जो. अन्य गाथा—उद्धार अद्धखितं, पलियतिहा समय वा समय समए किमवहारोदीवोदही. आउसम्माइ परिमाणं ॥ १ ॥ ॥ पांचमें कर्म ग्रन्थे उक्त.

२४३ प्र०—आत्मसमअवस्थानउपयोगरूप ध्यानदशा केवी रीते पमाय ?

उ०—मोहवशे जीव परभावअनुयादि प्रवृत्ति करे छे. मिथ्या सुखनी तृष्णाए मुन्यो थको ससार भ्रमण करे छे, ज्यारे मोहग्रन्थिनि घटे त्यारे परप्रवृत्ति छुटे, अने ज्यारे परप्रवृत्ति टळे त्यार विषयथकी विरक्त बुद्धि थाय. अने तेना करी मनोरोध थाय, केमके कारण विना कार्य बनतुं नथी. मनने भमवानु कोइ कारण के टाम न होवाथी ते सकल्प विकल्प क्याना करे ? जेम तृण विनानी भूमिमां पडेले उत्तर भूमिना पडेलो अग्नि जेने बाळे, अर्थात् पोतानी मेळे उपशमी जाय छे. तेम विषय वांछा टळवाथी मन पोतानी मेळेज रुंधाय अने मन रुंधावाथी मननी चचळता मटे, त्यारे मन एकाग्र थइने अ

नामकर्मनो उदय गुणठाणा १४ सुधी, गोत्रकर्मनो उदय गुणठाणा १४ मा सुधी, अंतरायकर्मनो उदय गुणठाणा १२ मा सुधी, ज्ञानावरणीयकर्मनी उदीरणा १२ मा गुणठाणा सुधी, दर्शनावरणीयकर्मनी उदीरणा १२ मा सुधी, वेदनीयकर्मनी उदीरणा ६ सुधी, मोहनीयनी १० मा सुधी, आयुकर्मनी ६ सुधी, नामकर्मनी १३ मा सुधी, गोत्रकर्मनी १३ मा सुधी, अंतरायनी १२ सुधी, हवे ज्ञानावर्णीय कर्मनी सत्ता गुणठाणा १२ मा सुधी, दर्शनावर्णीय कर्मनी सत्ता १२मा सुधी, वेदनीयकर्मनी सत्ता १४मा सुधी, मोहनीयकर्मनी सत्ता ११ मा सुधी, आयुकर्मनी सत्ता १४ मा सुधी, नामकर्मनी सत्ता १४ मा सुधी, गोत्रकर्मनी सत्ता १४ मा सुधी, अंतरायकर्मनी सत्ता १२ मा सुधी होय, एवं बंध उदय उदीरणासत्तानुं स्वरूप कह्युं छे. ए सर्व भाव केवलज्ञानी एकजीव स्वरूपे द्रव्य गुणपर्याये छे तेहवा अनंताजीव देखे, एकेक जीवने अनंतातर्न जे रीते छे ते देखे, एकेक जीवने अनंताभव देखे छे. एकेक जीवना अनंताभाव देखे छे, भावने परिणाम इम केवली सर्वभाव आस्तिनास्तिरूपे जीम छे ते तीम जाणे ते देखे इति भाव।

२६१ प्र०–अचित्तमहास्कंध ते शुं ? अने तेनो समुद्घात तथा केवलीसमुद्घात केवी रीते थाय छे तेनुं स्वरूप कहो.

१४४ प्र०—उत्सर्ग अने अपवाद मार्ग परमार्थे एकज आत्मार्थि-
पणारूप मोक्ष साधक दशाज छे, ते शी रीते ?

उ०—उत्सर्गमार्ग घणो कठीण, घोरतपस्या शुद्धब्रह्म-
चर्यादि पाळे, जिनकल्पिपणे प्रवृत्ते ते जाणवो, अने
अपवादमार्ग ते पूर्वोक्त उत्सर्गनी अपेक्षाए एटले
ज्यारे ते उत्सर्गदशामां न टकी शकाय, त्यारे तेमां
पाछा स्थिर थवाने माटे, जे कांइक कोमळ
मार्गनुं अवलंबन साधनादि करवुं एटले मुनि पंच-
महाव्रत शुद्ध पाळे, उग्रविहार तपस्यादि करी श-
रीर गाळे, जेथी विषय कषायादि मोहवासना गाळे,
शिष्य, गच्छ, शास्त्रादिनी धारणा करे, ते प्रत्ये पर-
स्पर स्वाध्याय करे करावे, भव्यप्राणीओने धर्मो-
पदेश आपी स्वपर महानिर्मलता करे करावे, पोते
उत्तम मार्गे चाले बीजाने चलावे, अने चालता होय
तेने अनुमोदनरूप उपष्टंभ एटले सहायतादि दइ
स्थिर करे, इत्यादि अपवादमार्गनुं सेवन करी,
मुनि पाछा उत्सर्गमार्गमां लीन रहे छे, एम परमार्थे
उत्सर्ग अने अपवादमार्गो आत्मार्थीज छे, उभय
मार्ग शास्त्रानुसार छे, पण जे निष्कारण दूषित
मार्गनुं सेवन करे, अने कहे जे अमे उत्सर्गने माटे
अपवाद सेवीए छीए, ते चारित्रघातीनी मिथ्या वात
छे, केमजे मुनिने कोइ अतिचाररूप दूषण प्रासं-
गिक लागीजवारूप संभव छे, पण मन थकी अ-
तिचार सेवनकरवारूप प्रमादादि कदापि काळे न

अने एक वरसमां ४ क्रोड, ७ लाख, ४८ हजार, अने ८०० गणतां तेने विषे निगोदीओ जीव ७० कोडी ७७ लाख ८८ हजार अने ८०० वार जन्ममरणरूप भव करे, एवा भव पूर्वे आ जीवे असंख्यातेकाले असंख्याता अधिक भव कीधा, एम अनंताकाले अनंता भव कीधा, अनंता अतीतकाळमां अनंताअनंत भव कर्या, ते श्री वीतराग परमात्मावुं वचन सद्दहिने, हे चेतन ! तुं मनमां कांइक पापनो त्रास आण अने आ तारा पोताना जीवनी दया चिंतवीने तेने आवा भयंकर जन्ममरणना फेरामांथी मुक्त करवानो श्रीजिन प्रणीत मार्ग छे, तेने अप्रमत्तपणे यथार्थ आदर. इतिभाव. जूनी प्रतिमां नीचे प्रमाणे पाठ छे. तथा एक गोलामांहे असंख्याति निगोद छे. निगोदशरीर एकशरीरे अनंता जीव छे, एटले अनंते जीवे मळीने एक शरीर बांध्युं छे, आप आपणा तेजसकार्मण जूदा छे. औदारिक एक छे. साथे आहारनिहार साथे मरण २५६ आवलीनो आयु भोगवी पर्याप्ति पूरी करीने मरे तेहनी निश्राए बीजा कोइ अपर्याप्ता होय नहीं ते अनंत केटला छे ? जेटला कंदमूल मध्ये अनंता छे ते कंदमूल चौदराज प्रमाणे ढग करीए तेमांहे पण सूक्ष्मनिगोदना एकशरीरना अनंता निकल्या तेमांहे न समाय एहना अनंताअनंत भव घणा छे. तिहांना निकळ्या तेमांहेज समाय, तथा कंदमूलना ते बादरनिगोदिया छे व्यवहारराशि-

पक्रमि तथा निरुपक्रमिभेदे जघन्यथी अंतर्मुहूर्त अने उत्कृष्ट ३३ सागरोपम सुधीनुं अध्यवसायनी तारतम्यताए भिन्न भिन्न जीवने नानाविध बंधाय छे; त्यां देवता नारकीने आ भव आयु छमास था-कतां बाकी रहेतां परभवायु बंधाय, तथा युगलिक मनुष्यो तथा तिर्यंच तेमज तीर्थंकरादि त्रिषष्टि श-लाकापुरुष अने चरमशरीरी एटलानुं आयु निरु-पक्रमि बंधाय, शेषने सोपक्रमी आयुबंध होय, त्यां उपक्रम एटले उपघातादि कारण विशेषे आयु त्रूटे, एवो मंद मंदतरादि परिणामविशेषे जीवे आयुबंध कर्यो होय, तेवो उपक्रम पण आयुना बंधनी साथेज बंधाय छे, पृथी जेम तेले करीने वाट सहित संपूर्ण रीते दीवानुं कोडीउं भरेलुं होय, ते दीवाने कोइ-पण पवनादि उपघात न लागे तो तो ते ठेठ सुधी सारी रीते बळे छे, नहि तो पवनना एक सपाटा? छते तेले अने वाटे टरी पण जाए, एम सोपक्रम आयुना बंध पण एवांज दीलां जाणवां, ते व्यवहारे विष, शस्त्र, अकस्मातादि सात कारणे त्रूटे छे, पण निश्चये तो जीवे तेवीज रीतनुं तेटलाज समयकाळनुं बांधेलुं ज्ञानीनी दृष्टिए दीठेलुं भोगवे छे, एक समयमात्र पण आवुं पाछुं करवाने कोइ पण समर्थ नथी; देव नारकीआदि शिवायना सोप-क्रमी आयुबंध प्राणीओ घणुं करीने पोताना भव आयुना अंतमां अंतर्मुहूर्त थाकतां परभव आयु बांधे छे, ते बांधतां जीवने अंतर्मुहूर्त लागे छे, ते बंध

निगोदमांथी नीकळी व्यवहारराशीमां आवे तथा व्यवहारराशीया जीव पाछा निगोदगोळकमां जाय तो ते एकादियी मांडी उत्कृष्ट अनंता सुधी जाय, एम व्यवहारराशीया नीकळे तो उत्कृष्ट अनंता नीकळे, पण अव्यवहारराशीया तो उत्कृष्ट १०८ नीकळे, तेमां भव्य अने अभव्य बेउ होय ते सूक्ष्म निगोदना अनंता नीकळ्याबाद निगोदमांहे समाय, बीजामांहे नहि, तथा एकसूक्ष्म निगोदमांहे अनंता जीव केटला छे? तोके त्रण काळना जेटला समय अनंता छे, तेथी अनंता जीव एक निगोदमांही छे, तेथी ज्यारे केवळी भगवंतने सिद्धना जीवनी संख्या पुछीए, त्यारे कहे छे के एक निगोदने अनंतमे भागे सिद्धमां जीवो छे, एम ज्यारे पुछीए त्यारे जवाब मळे, केम जे पूर्वोक्त निगोदअनंतानुं स्वरूप विचारतां ए वात यथार्थ विवेकीने समजमां आवे, माटे उत्तमजीवे श्रीवीतराग परमात्मानुं वचन सदा सर्वदा सद्दहवा योग्य छे, आपणी बुद्धिनी मंदताने लीधे निरोगी, निर्मम वीतराग प्रभुना वचनमां संदेह लाववो नहि, केम जे एमणे तो पोताना ज्ञानमां दिठुं तेज कह्युं छे अने तेज सत्य छे. जूनी प्रतिमा नीचे प्रमाणे पाठ छे. व्यवहारराशिया बादरनिगोदमांहे जे अनंता छे ते करी कर्मनी बहुलताए सूक्ष्मनिगोद गोलकमांहे जाये ते सित्तेर कोडाकोडी सागरोपम सुधी तिहां रहे वळी पाछा कंदादिक साधारणमांहे आवे इम संबंधे सूक्ष्मना

३, आरंभिकी ४, मायाप्रत्ययिकी ५, ए पांच क्रियावन्तौं जीवोनुं अल्पबहुत्व कहो.

उ०—मिथ्यात्वप्रत्ययिकीक्रियावाळा सर्वथी थोडा; १ ते थकी अपच्चखाणीक्रियावंतजीव असंख्यातगुणा अधिक केमके तेमां अविरति भव्या; २ ते थकी परिग्रहिकीक्रियावंतजीवो असंख्यातगुणाधिक जे भणी तेमां देशविरति भव्या माटे; ३ ते थकी आरंभिकीक्रियावंत असंख्यातगुणाधिक जे भणी सर्वविरति छट्टा गुणठाणाना मुनि तेमां भळे तेथी; ४ मायाप्रत्ययिकीक्रियावंत तेथी संख्यातगुणाधिक जे भणी तेमां नवमा गुणठाणावर्ति मुनि वध्या तेथी. ए भाव पन्नवणासूत्रमध्ये छे. इति ।

२५० प्र०—देवगतिने विषे छ लेश्या आसरी अल्पबहुत्व कहो.

उ०—१ शुक्ललेश्यावंतदेवताओ सर्वथी थोडा, २ ते थकी पद्मलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ३ तेथी कृष्णलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ४ ते थकी नीललेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ५ ते थकी कापोतलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ६ ते थकी तेजोलेश्यावंत ज्योतिषीदेवो असंख्यातगुणाधिक जाणवा.

२५१ प्र०—सोपक्रमिआयुष्यवंतजीव आयु पुरुं भोगवतां थकां पण अकाळे चेवर्जाविपाओववरोविया—॥ मरण पाम्यो एम कहे छे तेनुं शुं समजवुं ?

उ०—जेम राजाए कोइएक चोरने पकडीने शूळीये के फांसीए दीधो, त्यां ते जीवे सर्व आयु कर्मनां दळ

तो अनंता सुधी एकसमये निकळे पण अव्यवहारिया ते एकसमये उत्कृष्टे १०८ निकळे तेमांहे भव्य अभव्य बे होय. ते सूक्ष्मनिगोदना अनंता निकळ्या बादरमांहि समाय बीजामां नहीं, तथा एक सूक्ष्मनिगोदमांहे अनंताजीव केटला छे ते त्रण कालना समय अनंता छे तेहथी अनंताजीव एक निगोदमांहे छे, तेणेकरी जेवारेजेवारे पुछीए तेवारे जिनेश्वर कहे छे जे " एकस्सनिगोअस्स अणंत तमो भागो य सिद्धिगओ " एटले सूक्ष्मनिगोदथी बादरनिगोदमांहे निरंतर आवे छे ते ते आवे तो एकसमये १०८ सुधी उत्कृष्टे आवे तथाचोक्तं-सिज्झंति य तियाखलु, इहय ववहाररासिमज्झाओ। इनिअणाईवणस्सईमज्झाओ, तित्तियाचेव ॥ १ ॥ इतिश्रीभुवनभानुकेवली चरित्रमध्ये उक्तं. एम निगोदनो विचार लख्यो छे.

२७२ प्र०—सिद्धशिलानुं किंचित् स्वरूप वखाणो.

उ०—जेम साबुनो गोळो उपर जाडपणे समो अने नीचे टेकराख्पे विस्तरनो तेम अथवा उंधी उघाडी राखेल अर्धछत्रआकारे, श्वेत, सुवर्णमय, स्फटिकरत्नमय सरखी निर्मळ मध्ये आठजोजन जाडी परिधिविस्तारमां ४५ लाख जोजन प्रमाणे अढीद्वीपरूप मनुष्यक्षेत्रनी उपरे ढांकण समान, छेडे जातां माखीनी पांख समान पातळी, लोकना अग्रभागे रहेली अतिनिर्मळ सिद्धशिला शोभी रही छे, तेनी उपर १ गाउए एटले एक गाउने छठे भागे अनंता

उ०—गाथा—

आहारभयपरिग्गह, मेहुनतह कोहमाणमायाए ।
लोहेहलोगसन्ना, दसभाहुंतिसव्वेसि ॥ १ ॥
सुहदुहमोहसन्ना, वितिगिच्छावउद तहुनेयसन्ना ।
सोगे तहधम्मसन्ना, सोलस ए हुंति मणुएसु ॥ २ ॥

२५४ प्र०—दश संज्ञा कया कया जीवोनां छे.

उ०—गाथा—

रुक्खानजलाहारो, संकोयनीयाभएन संकुयइ ।
नीयतंतुएन वेढइ, वल्लीरुक्खेन परिग्गहेय ॥ ३ ॥
इत्थीपरिरंभेन, कुरवकतरुणोफलंती मेहुने ।
तहकोकनदस्सकंदो, हुंकारंमुयइ कोहेन ॥ ४ ॥
माणेन रुयइरुंती, छायइ वल्ली फलाइंमायाए ।
लोहेबिल्लपलासा, खिवंतिमूले निहाणुवरि ॥ ५ ॥
रयणीए संकोओ, कमलानं होइलोगसन्नाह ।
ओहे चइंउ मग्गं, चडंति रुक्खेसु वल्लीओ ॥ ६ ॥
इति १० संज्ञाना उदाहरन ।

२५५ प्र०—अढार भावरत्ना तथा अढार द्रव्यरत्नानुं स्वरूप कहो.

उ०—तेनी गाथा—

तिरियपणइगचउराया, नरइ अन्तरदीपाय चउगे ।
देवाय नेरइया—अढारसभावरत्नाओ ॥ १ ॥

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, ए चार तथा सम्मूर्छिममनुष्य कर्मभूमिजा अकर्मभूमिजा

करे छे, ए मधना एकटीपानी तृष्णामां पोतानी आसपास अनंतगणुं व्यापी रहेलुं दुःख हिसाबमां गणतो नथी, तेम स्त्रीसेवनमां जाणे साक्षात् अ- मृतसार महास्वादिष्टभोजन प्राप्त न थयुं होय, तेवो लोलुपी थयो थको भुंड सुकरनी पेठे निज स्वरूपने तद्दन विसारीने अथवा उवेखीने खरज खणवाना स्वादना परे अथवा मधुलिप्त खड्गधारने चाटवानी परे प्रथम सेवन करतां सुख वेदे, अने पाछळथी तत्काळ एकक्षणवारमां शरीर वीर्य क्षय थतां घाभरा जेवो थइपडी निर्माल्य नपुं- सकरूप अनुभवे छे, अने त्यारेज ते पोतानी भुंडसुकरपणानी निर्लज्ज बाळचेष्टाने अंतरदृष्टिए धि- क्कारे छे, तेम आ संसारने विषे चक्रवर्ति आदिनां विषयनां उत्कृष्ट पौद्गलिक सुख नर्कादिकने विषे तेना विपाककाळ आगळ तुच्छ अल्पकालिक क्षणिक छे; छतां हा! इति खेदे आ भवनी अ- नादि काळनी विषय वासना जाणताने पण बाळ- रूप करनार एवी महामोहमय प्रबळताथी चेत- नने सावधान रहेवानुं छे, जुओ बारमा ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिनुं आयुष्य मात्र ७०० वरसनुं हतुं ते भोगवीने नरके गयो, तिहां ३३ सागरनुं आयु भोगवे छे. तेटलो काल विषयसुख भोगव्या ते उपर केटलुं दुःख तेहनी विगत वर्ष १०० दिवस ३६००० थाय तेवारे ७०० वर्षना दिवस २५२००० थाय

विगलेन्द्रिय तथा असंज्ञीपंचेन्द्रियने भाषा होय. संज्ञीपंचेन्द्रियने मन होय. उत्पत्ति प्रथम समयथी आरंभी पर्याप्ति पूरी कर्या विना न मरे. पूरी करीने मरे ते लब्धिपर्याप्तो जाणवो. शरीर इन्द्रिय पर्याप्ति पूरी न थाय त्यां सुधी तेने अकरणपर्याप्तो कहेवो. अथवा जे जे पर्याप्ति पूर्ण नथी थइ तेनी अपेक्षाए अकरणपर्याप्तो जाणवो. जे जे पर्याप्ति पूरी करी ते अपेक्षाए करणपर्याप्तो जाणवो. जे कर्मना उदये आरंभेली पर्याप्ति पूरी कर्या विना मरे ते लब्धिअपर्याप्त नामकर्म पुद्गलना उपचयथी थयो पुद्गल परिणमन हेतु शक्ति विशेष ते पर्याप्ति विषय भेदे छे.

२५९ प्र०—पर्याप्ति ने प्राणमां शो फेर छे ?

उ०—पर्याप्ति ते उपजतीवेलाए होय अने प्राण ते जावजीव लगे होय.

२६० प्र०—सम्यग्दृष्टिनी केवी दशा होय ?

उ०—गाथा

बंधोअविरइहेउ. जाणतो रागदोसदुख्खच ।
विरइसुह इच्छतो. विरइ काउ च असमत्थो ॥ १ ॥
एस असंजयसम्मो निंदतोपावकम्मकरणच ।
अहिगयजीवाजीवो. अचलियदिट्ठीचलियमोहो ॥२॥
सम्मदंसणसहिओ, गिण्हंतोविरइमप्पसत्तिए ।
एगवइयचरमो, अणुमइमित्तत्तिदेसजई ॥ ३ ॥

ठाणानी श्रेणिए चढे अने स्वरूपाचरण चारित्ररूप शुद्धात्मोपयोग तीव्र वर्ते.

२७५ प्र०–मिथ्यादृष्टि अने सम्यग्दृष्टिना आचार तथा उपयोगने सरखावो.

उ०–मिथ्यादृष्टिजीवने शुभाचार होय पण शुभोपयोग न होय, अने सम्यग्दृष्टिजीवने शुद्धोपयोग होय तेने शुभोपयोग आचरणरूपे होय पण आदरण न होय, अने मिथ्यादृष्टिजीवने शुभआचाररूप होय, पण ते अशुद्धोपयोगना घरनो अशुभोपयोग होय छतां तेने शुभोपयोग उपचारे कहिये.

२७६ प्र०–युगप्रधानना गुणो कहो.

उ०–युगप्रधानना गुणो १४ छे. तत्र गाथा—

पडिरूवोतेयस्सि, जुगप्पहाणागमोमहुरवक्को ।
गंभीरोधीमंतो, उवएसपरोयआयरिओ ॥ १ ॥
अपरिस्सविसोमो, संगहसीलो अभिग्गहमईय ।
अविकत्थणोअचवलो, पसंतहिययोगुरूहोई ॥२॥
एवं चतुर्दशगुणा भवन्ति ।

२७७ प्र०–कया ठेकाणे मगपोयो कार्यो.

उ०–भद्रबाहुस्वामीकृत ओघनिर्युक्तिनी ७२ मी गाथामां मगशेपो कवी कयों छे. यथा–

अरण्णंतु गओ, जिणेसरिंदुग्गसेणं ।
तिहिपुंडिरेहा, वारसमविइट्टमोनन्द ॥ १ ॥

२७८ प्र०–नवतत्व अने अनन्तनुं शुं फल छे?

सनो जीव सिद्धि गतिए जाय. पण वचमा विषम श्रेणिना आकाशप्रदेश न फरसे माटे ते अपेक्षाए सिद्धनी अफुसमाणगति कहिए. तथा समश्रेणिए आकाशप्रदेश फरसतो फरसतो जाय. ते अपेक्षाए छद्मआश्रिफुसमाणगति कहीए. अने एक समयथी बीजा समयने [illegible] न फरसे ते माटे आश्रि अफुसमाण गति कहे छे.

२६५ प्र०–त्रणस्वभावना पुद्गलो दृष्टान्तथी समजावो.

उ० विश्रसा ते स्वभावे करी निमित्त [illegible] तदाकार थाय. जेम [illegible] [illegible] प्रयोगमा ते जीव व्यापार. उदय कर्मने न निपजे. जेम भवन, घटपटादि. ३ मिश्रसा ते [illegible] [illegible] स्वभाव अने [illegible] प्रयोगे जेम ते मागस जुनो पडो बांध्यो अथवा [illegible] [illegible] मारो इत्यादिमा पुद्गलोने [illegible] [illegible] स्वभाव कहाय. अने वचनकर्म ते मनवचना [illegible] [illegible] [illegible]. एम स्वभाव अने प्रयोगे [illegible] [illegible] [illegible] मिश्रसा पुद्गल कहे छे.

२६६ प्र०–श्रीतीर्थंकरना जन्मादिक कल्याणक वखत साते नरके केटलु अजवालु थाय ते कहो.

उ०–पहेली नरके सूर्यसमान उद्योत, २ बीजीए वादळे ढांकेला सूर्यसमान, ३ त्रीजीए पूनमना चंद्रसमान, ४ चोथीए वादळे ढांकेला चंद्रमासमान, ५ पांचमीए ग्रहोना उद्योत समान, ६ छठीए नक्षत्रना उद्योत समान, ७ सातमीए ताराना उद्योत समान.

२८५ प्र०—त्रेसठशलाकापुरुषोना जीवो केटला तथा माता पिताना जीवोनी संख्या केटली छे ?

उ०—त्रेसठशलाका पुरुषोना जीव ५९ छे. तेहनी विगत—त्रणजीव चक्रवर्त्तिनी पदवीना ओछा थया तथा एक वासुदेव थया ए ४ जीवो घट्या तेथी ५९ थया. तथा ५९ जीवना माता ६० पिता ५१ कह्या छे तेहनी विगत. २४ जिननी माता, ९ चक्रीनी माता, ९ वासुदेवनी माता, ९ बलदेवनी माता, ९ प्रति वासुदेवनी माता एवं ६० माता जाणवी. हवे पिता ५१ तेहनी विगत, २४ जिनना पिता, ९ चक्रीना पिता, ९ वासुदेव तथा बलदेवना पिता, ९ प्रतिवासुदेवना एवं ५१ पिता जाणवा. एणी रीते पदवी ६३, जीव ५९, माता ६०, पिता ५१ ए रीते अर्थ.

२८६ प्र०—श्रीऋषभदेवस्वामी केटला वर्षनो काल गृहस्थाश्रमे वस्या तथा सर्वायु केटला वर्ष जीव्या.

उ०—ऋषभदेवस्वामी वीसलाखपूर्व कुमारपणे रह्या तेहना वर्ष केटलां चौदलाखकोडाकोडी इग्यारहजारकोडाकोडी वर्षे कोडाकोडी१४११२०००००००००००००००० एटला वर्ष कुमारपणे रह्या त्यारपछी ६३ लाखपूर्व राज्यावस्था भोगवी तेहना वर्ष केटला ? पुंमालीसलाख कोडाकोडी पीस्तालीसहजारकोडाकोडी वर्षमें कोडाकोडी पूर्वकोडाकोडी तेहना अंक

रनी छाया छतां छायडो धूमाडा वगेरेना पुद्गलो नजरे देखाय छे. पण हाथमां ग्रहवाय नहि. माटे बादरसूक्ष्म. ४ सूक्ष्मबादर ते गंध, रस, स्पर्श शब्दादिकना पुद्गलो आंखे देखाता नथी, परंतु स्पर्शादिके लक्षने जणाय छे, माटे तेने सूक्ष्मबादर कहिए. ५ सूक्ष्म ते अष्टकर्मवर्गणाना पुद्गलो चार स्पर्शवाळा छे ते नजरे देखाता नथी माटे. ६ सू-क्ष्मसूक्ष्म ते छुटो शुद्धपरमाणुपुद्गल जे बे स्पर्श-वाळो अत्यंतसूक्ष्म छे माटे ए रीते छ प्रकारना पुद्गल संसारमध्ये व्यापी रह्या छे जेम छ कायना जीव व्यापी रह्या छे तेम जाणवुं

६८ प्र०—ज्ञानावरणीयादिकर्मनो बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता केटला गुणठाणा सुधी होय.

उ०—ज्ञानावरणीयनो बंध गुणठाणा १० मा सुधी दर्शनावरणी-यनो बंध १० मा सुधी. वेदनीयनो बंध गुणठाणा १२ मा सुधी. मोहनीयनो बंध गुणठाणा नवमा सुधी, आयुकर्मनो बंध गुणठाणा सातमा सुधी. नाम-कर्मनो बंध गुणठाणा १० सुधी. गोत्रकर्मनो बंध गुणठाणा दशमा सुधी. अंतरायकर्मनो बंध गुणठाणा दशमा सुधी. हवे ज्ञानावरणीयादिकर्मनो उदय गुणठाणा १२ मा सुधी. दर्शनावरणीयकर्मनो उदय गुणठाणा १२ मा सुधी, वेदनीयकर्मनो उदय गुणठाणा १४ मा सुधी, मोहनीयकर्मनो उदय गुणठाणा १० मा सुधी, आयुकर्मनो उदय गुणठाणा १४ मा सुधी,

णोठी), ३ गुंजानो एक वाल, सोळवालनो एक गदीआणो, दशगदीआणे एक पल, दोढसोपले एकमण, दशमणनी एकधडी, दश धडीनो एक भार जाणवो.

२८९ प्र०—अढारभारवनस्पति कहेवाय छे त्यां भारनुं प्रमाण केटलुं, तथा ते वनस्पति अढारभार कइ कइ छे ते कहो.

उ०—३ क्रोड, ८१ लाख १२ हजार नवसें सीतोतेर मणे एकवनस्पतिभार थाय छे, तथा प्रत्येक जातनी वनस्पतिनुं एक एक पान लइने एकठो ढगलो करीए, ए प्रमाणमां चारभार वनस्पति केवळ फुलमय छे, तथा आठभार वनस्पति फळ फुलपानमय छे. तथा छभार वनस्पति वेलनी छे, एम एकंदर १८ भार वनस्पति जाणवी.

२९० प्र०—मुनिराज कया चोविसपरिग्रहना त्यागी होय.

उ०—क्षेत्रवास्तुधनधान्यद्विपदचतुष्पदयानंशय्यासनं भाण्डं कुप्यंचेति बहिर्दश, मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषाय चतुष्टयंरागद्वेषावाभ्यंतराःचतुर्दश ॥

२९१ प्र०—महारोग केटला तथा तेनो संतानपरिवार केटलो कह्यो छे ?

उ०—चार मोटा रोग कह्या छेः—१ ज्वर, २ भगंदर, ३ कोढ, ४ धातुक्षय. तेनी चार स्त्रीओनां नामः— ज्वरनी स्त्री तृष्णा. भगंदरनी स्त्री हेडकी, कोढनी स्त्री भूख, धातुक्षयनी स्त्री निद्रा. तथा ते प्रत्येक रोगनां

उ०-त्रिप्रदेशी परमाणुओना स्कंधथी मांडीने असंख्यात प्रदेशीयास्कंधपर्यंत एकएकस्कंध थाय. तेने वर्गो लोक पूराय नहि. वळी अनंतापरमाणुओमळीने जे स्कंध बने तेथी पण लोक सघळो पूराय नहि. पण अनंतानंतपरमाणुनो एकस्कंध तेवा अनंतास्कंधमळे त्यारे ते अचित्तमहास्कंधरूप थाय. तेपेकी चौदराजलोक पूराय ते आवी रीते– ते स्कंध विश्रसापरिणामे परिणमीने केवळीसमुद्घातनी परे दंडरूप करीने दिशि तथा विदिशिमां विस्तरी संदुआ पूर्ण चौदराज सर्वां स्पर्शीने पाछो केवळीसमुद्घातनी पर सर्वांने स्वस्थान थाय. ते स्कंध असंख्यातआकाशप्रदेशअवगाहीने रहे. ते अचित्तमहास्कंधक्षेत्रआसरी अढीद्वीपमांही करे. पण ते थकी बाहेर न करे. जेम केवळी केवळीसमुद्घात अढीद्वीपमांहे करे. पण बहार नहि. तेम ए पण जाणवुं तथा केवळी पण केवळीसमुद्घात करे तेवार पोताना जे आठ रुचक प्रदेश छे ते मेरुना मध्य जे रुचक प्रदेश छे, त्यां जाय, त्यारे, पछी त्यांथी विस्तारीने संपूर्ण चौदराजलोक पोताना आत्मप्रदेशे भ. त्यां प्रथम चौदराजप्रमाण लिंबो उंचो दंडरूप आत्मप्रदेश विस्तारे पछी रत्नपाना चार समान भागना पर कपाट आकारपने विस्तारे, पछी मांहोमा आंतरा पूरे, ए सर्व समुद्घातक्रिया केवळी भगवान् जेमनुं आयुष्य अल्प होय अने कर्म घणा रह्या होय तेज केवळीभग-

हजाररूप विकुर्वे, तेनी आठअग्रमहिषीओ प्रत्येक १६ हजाररूप विकुर्वे, त्यारे ते हिसाबे इंद्रनुं आयुष्य जे बेसागरोपमनुं छे तेमां २२ क्रोडा-कोडी ८५ लाख ७१ हजार चारसो अठावी-स कोडी ५७ लाख १४ हजार सो छीपनी उपर आठ गुणी एटली देवांगनाओ पुरइंद्रना आयुष्यमांहि थवे.

२९३ प्र०–पांच स्थावर, विगलेन्द्रि, तथा पंचेन्द्रिय क्यां क्यां होय.

उ०–एगेन्द्रियपंचेंदीया, उड्ढेअहेयतिरियलोएय ।
विगलेंन्दियजीवाघुण, तिरियलोएसु मुणेयव्वं ॥ १ ॥
पुढवीआउवणस्स, बारसकप्पेसु सत्तपुढवीसु ।
पुढवीजा सिद्धसिला, तेउनगरेसितिरियलोए ॥ २ ॥
सुरलोए वावीमज्झे, मच्छअनन्थीजलयराजीवा ।
गेविज्झेनउवावि, वाविअभावेजलंनत्थी ॥ ३ ॥

२९४ प्र०–नवनियाणानुं स्वरूप तथा ते नियाणाना करनारने केवा हीनफळनी प्राप्ति थाय छे ते कहो.

उ०–१. राजादिक थवानी इच्छा, २. अनल्प थवानी इच्छा, ३. स्त्री थवानी इच्छा, ४. देवभोगनी इच्छा, ५. देवीभोगनी इच्छा, ६. भोग न करवानुं नियाणुं, ७. श्रावक थवानी इच्छा, ८. दरिद्र थवानी इच्छा, ९ वर्णसंकर थवानी इच्छाकरनाराने प्रथमना ७ नियाणाना धर्मनी दुर्लभबोधी थाय, माव धर्म स्पर्शे नहि. सातनियाणाना धर्मने देशविरति

सांत ते ए भव्यने २, सादि अने सांत ते समकितथी पडी पछे चडे तेहने होय ३, सादि अने सांत छे तेहने जघन्यथी अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टे तो अर्द्धपुद्गल परावर्त्त जाणवो ४. हवे विभंगज्ञाननो काल कहीए. जघन्य तो एकसमय, उत्कृष्ट सागर ३३ झाझेरो, मनुष्यनो आयु पूर्वकोडीनो पाळी सातमी नरके उत्कृष्टे आउखे जाय एटले एक पूर्वकोडने तेत्रीस सागर थाय, हवे ए आठे ज्ञाननुं आंतरु कहे छे. मतिज्ञाननुं आंतरु जघन्यथी अंतर्मुहूर्तनुं होय, उत्कृष्टे अर्द्धपुद्गलपरावर्त्त माठेरुं होय एम एणे प्रकारे श्रुतज्ञान अवधिमनःपर्यवज्ञाननुं पण आंतरु जाणवुं केवलज्ञाननुं आंतरु नथी, हवे मतिश्रुतअज्ञाननुं आंतरुं जघन्य तो अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट ६६ सागरोपम झाझेरुं होय, हवे विभंगज्ञाननुं आंतरुं जघन्यथी अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट तो वनस्पतिनो काल इति भाव।

२९७ प्र०—सत्तरप्रकारना मरणनुं स्वरुप कहो.

उ०—१. समयसमय आयुकर्मदल क्षयरूप मरण, २. संपूर्ण आयु भोगवयारूप मरण, ३. नरकादि गतिमां यथा मरण, एटले फरी ते गतिए मरण न थाय ते; ४. व्रतीनुं मरण, ५. पतंगीआनी पेठे इंद्रिय विषयासक्त मरण, ६. शल्य सहित मरणरूप मरण, ७. प्रमत्तरीते मरण, ८. अविरतिनिषमादिहिना बाल मरण, ९. सर्वविरतिवंतना मरण, १० देशविरतिवंतना मरण, ११. [illegible]

बादरनिगोदमांहे आवे वळी बादरना सूक्ष्ममांहे जाय
एम बे स्थानके आवागमन करता जीव उत्कृष्टो
रहे तो अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तनपर्यंत रहे पछी पृथ्वी-
आदिक स्थानके क्रमतो उंचो आवीने मनुष्य
थाय, तीहां व्यवहारराशियो भव्यजीव सामग्री मळे
बोधिबीज पामी सिद्धिवरे. तथा वळी कोइ वा-
चनाए इम कह्यु छे जे कंदमूलसाधारणमांहिथी
जीव सूक्ष्मगोळकमांहे जाय तो उत्कृष्ट काल रहे
तो असंख्याती उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल सुधी
सूक्ष्मनिगोदना गोळकमांहे रहे. तिहांथी नीकळ्यो
बादरनिगोदमांहे उत्कृष्टो ७० कोडाकोडी सागर
सुधी रहे, एम सर्वे बे निगोद मध्ये आवागमन
करतां उत्कृष्टे अर्द्धपुद्गलपरावर्त्त सुधी व्यवहार
राशियो जीव निगोदमांहि रहे एकनिगोदनो गोळो
असंख्याताआकाशप्रदेश अवगाही रह्यो छे. तथा अ-
व्यवहारराशिया जे निगोदमांहि छे ते भवस्थितिनी
परिपक्वता सुधी उंचा आवे ते एकसमये केटला
नीकळे ? जेटला अर्द्धद्वीपमांहेथी सकलकर्म
सत्तानी एकसमये जेटला सिद्धिवरे तेटला सूक्ष्म
निगोदमांहेथी नीकळी व्यवहारराशिमां आवे एक
समये एक, बे, त्रण उत्कृष्टे एकसमये अर्द्धद्वीपमांहे
१०८ सिद्धिवरे तेटला सूक्ष्मनिगोदमांहेथी नीकळे
व्यवहारराशिनो पामे तथा व्यवहारराशियो निगो-
दना गोळामांहे जाय तो एकसमये एक, बे, त्रण
एम अनंता सुधी जाय ते व्यवहारराशिया नीकळे

गुण ८, आचार्यना ३६, "पंचिंदियसंवरणो" इत्यादि गाथा वेथी जाणज्यो, उपाध्यायना २५ इग्यार अंग भणे भणावे एम १२ उपांग भणे भणावे तथा चरणसित्तरि करणसित्तरि आराधे एवं २५. हवे साधुना २७ गुण ते छव्रत पाळे छकायरक्षपाळे १२ पंचेन्द्रियनो निग्रह १७ लोभनिग्रहसंचर १८ क्रोधनिग्रहक्षमागुण एवं १९ भावविशुद्ध २० पडिलेहणाविशुद्ध २१ संयमयोगयुक्त २२ मनवचनकायनुं कुशलपणुं २५ शितादिक पीडानो सहवो २६ मरणांत उपसर्गनो सहवो २७ ए सर्व मळी १०८ गुण पंचपरमेष्टिना वेहनी नोकारवाळी कहिए इत्यर्थः इति ।

प्र० २०१–साधु सोएवसा पंचमहाव्रत पाळे अने श्रावक सवाउ वसाए पंचअणुव्रत पाळे ते केवी रीते.

उ०–पहेलुं प्राणातिपात श्रावकने अणुव्रत तिहा दया श्रावकने वसा १। नी होय पांचस्थावर ते सूक्ष्म ने बादर एवं १० ते पर्याप्ताने अपर्याप्ता एवं २० एम एणी रिते साधु सोवसाए पंचमहाव्रतपाळे, श्रावकने पांचअणुव्रतमळीने सवाच्छवसा इत्यर्थ; तथा वळी पांच अणुव्रत श्रावकने होय तेहनो विवरो दर्शाए छीए स्थूलबेंद्रियादिक त्रसजीव निरपराध जाणीने न हणे ए प्राणातिपात अणुव्रतनी दया वसा १। नी होय ते पूर्वे कह्युं छे तेहमां जो जो, तथा पांच अणुव्रत मध्ये आवने काजे स्वकाडुनं [illegible] वसा २० सूक्ष्म ने बादर यमा १० कल्याने पर्ने

सिद्धगणनाओ विराजे छे. तेमने मारो त्रिकरण शुद्धिए नमस्कार हो.

२७६ प्र०—अष्टमहासिद्धिना नाम अर्थसहित कहो.

उ०—प्रथमसिद्धिना ते शरीरनुं हलवापणुं थाय जेनरुप पामे १. बीजी अनिमासिद्धि तेहथी निह. सर्व. तैजसउपादिक रूप थाय २. त्रीजुं ममसिद्धि लब्धिनिद्धि ३. चोथी वासीसिद्धि तेथी अपन रसनेन्द्र होय. पूर्ववर्तनादिक [illegible] करी होय ४. पचमी [illegible] तेथी मोटु लागसोनंदु शरीर कर ५. छट्ठी [illegible] सिद्धि तेथ नाहनुं कुंथुआ जेवड रूप करन [illegible] पर्वतमां निकळे अने जेने [illegible] ६. सा-तमी [illegible] सिद्धि [illegible] जेवड़ा उपयोग ७, आठमी प्राप्तिसिद्धि [illegible] मनरूपने [illegible] [illegible] ८. [illegible] अर्थविज्ञानसंयोग वेहना [illegible] होय

[illegible] प्र०—[illegible] सुख [illegible] ?

उ०—आ [illegible] अनंतुं इंद्रिय विषयना भौगादिकने विषे सुख [illegible] [illegible] सुख अने इंद्रियादिक सुख [illegible]

पांच मोटकाजूठा ते सूक्ष्म ने बादर एवं १० ते उपयोगे ने अनुपयोगे एवं २० वसातुं मृषावाद साधु न बोले पण श्रावकने १। वसातुं मृषावाद श्रावकथी पले इति भाव । अथ अदत्तादानअणुव्रत ३ समस्त अदत्तविरमणसाधुने २० वसा सूक्ष्म बादर भेद थइने वसा १० सराजनिग्रह ने निराजनिग्रहथी ५ आत्मनिमित्त परनिमित्तथी २॥ याच्युं तथा अणयाच्युं १। वसा तत्र गाथा—

सुहुमथुलमदिन्नदाणं, निवरायदंडकारियं ।
रायनिगहकारियंपुण, दुविहंकहियं गुरुजणेहिं ॥ १ ॥
नविराहनिगहकरं, अप्पाणंभेयगं दुविहं ।
दिन्नमदिन्नंच परं, भासियवं निउणबुद्धिहिं ॥ २ ॥

अदत्त पांच स्थूलजीव अदत्त १ जिन २ गुरु ३ स्वामी ४ सागारिअदत्त ५ ते सूक्ष्म ने बादर एवं १० उपयोगे तथा अनुपयोगे एवं २० वीसगुणी ए इति । हवे मैथुनअणुव्रततुर्य ४ साधुने समस्त मैथुनविरमण २० मनवचनकाया ३ एवं १० स्वदारा परस्त्री करतां एवं पांच वेश्या तथा परस्त्री २॥ कुमारी तथा अपरस्त्री १ । तत्र गाथा—

मणवयकायमेहुण, मविनियमअविरई ।
इत्थीओवेसापरत्थीओ, कुमारीपरइत्थीनियमो य ॥१॥

स्वदारा १ परस्त्री २ वेश्या ३ दासी ४ कुमारी ५ एवं ते मनवचन तथा कायाए करी एवं १० ते सुपने तथा जाग्रतपणे एवं वीस २० वसानो शी·

तेहना मुहूर्त ७५६००० ते एकमुहूर्तना ३७७३ श्वासोच्छ्वास थाय. ७५६००० ने गुणा करतां २८५२३८८०००० एटले ७०० वर्षना एटला श्वासोच्छ्वास थाय. तथा सागरोपम ३३ ना पल्योपम श्रणनेत्रीसकोडाकोडी थाय तेहना आंक ३३००००००००००००००० तेवारे एकश्वासोच्छ्वास सुधी संसारमध्ये विषयना सुख भोगव्या ते उपरे ११५६९८५ इंग्यारलाख छपनहजार नवसेंने पंचासी एटला पल्योपम थाय. मानसी नरके दुःख भोगवे छे एटले 'खणमित्तसुखबहुकालदुक्खम' ए पद सूत्रे कह्यं छे तेहनो ए भावार्थ जाणवो. अने तेटलामां अतिअधर्मना निरूकनार्थी भोगवव्या जे विषयभोगो तेना दारुणविपाको ते मानसी नरके विषे ज्यां आंख मीचीने उघाडीए एटली वार पण जीवने लेशमात्र सुख नथी तेने विषे जीव एकलो निरधारपणे भोगवी रह्यो छे माटे ज्ञानी कहे छे जे-

प्रभाति.

विषयवासना त्यागो चेतन. साचे मारग लागोरे,
तप जप क्रिया दानादिक सहु. गणतां एक न आवेरे;
इंद्रिय सुखने कल्युं ए मन. वक्र तुरग ज्यु धावेरे. इत्यादि
एम ज्ञानी आ संसारना पृष्ट जे विषय कषाय मोहादि
[illegible]तेनो जय करवाने माटे परमात्माना वचनमां ज्ञानपूर्वक
[illegible]बुद्धि राखी इंद्रियोनो जय करवो, जेथी विषय त्यागे
[illegible]भावनादि मारगना उदय आवे, कषायनी संतापे दुःख-

अणदिधुं लेवा नियम समस्तअदत्तादानपच्चक्खाण २० सूक्ष्मबादरभेदे १० सराजनिग्रह निराजनिग्रह ५ आत्मकाजनिग्रह परकाजनिग्रह २॥ पियारी दिधी पियारीअणदीधी १। एवं राजनिग्रह पडे तेहनो पच्चक्खाण ते सराजनिग्रहमांहि बे भेद एक आत्मराजनिग्रह पराजनिग्रह कहिए, हवे ते आत्मराजनिग्रह ते मोकळो, पराजनिग्रहतुं पच्चक्खाण, हवे पराजनिग्रहना बे भेद ते किया? एक पियारी दीधी, पीयारीअणदीधी परकीयवस्तु आणी आपे ते कोइनी दृष्टि वंची न लीये एटले सवावसो त्रीजा व्रतनो जाणवो, अथ चतुर्थ स्वदारासंतोष परदारा विवर्जनारूप ए मांहे सर्व फलामणी छे, समस्त मैथुनविरमण मनवचनकाया १० स्वदारा परस्त्री ५ वेश्या अपरस्त्रीमांहे बे भेद ते किया? वेश्याने अपरस्त्री ते मल्ये वेश्यानो नहीं पछे, अपरस्त्रीनो पलसे एवं २॥ अपरस्त्रीमांहि बे भेद छे ते किया? कुमारी अने परणी अपरस्त्री ते कुमारी नहीं पछे परणीस्त्रीनो पलसे कुमारीश्या माटे मोकळी? जे विवाह मल्यो छे परण्या नथी ने ते उपरे स्त्रीनो अभिलाप धरे ते माटे एटले सवावसो रह्यो. " आणंद श्रावकस्य सपादो विशेषाधिकः " अथ पांचमे आपणोपरिग्रह स्त्रीयादिकनो करी आपणे वार्ये आण्यो होय ए परिग्रहअणुव्रत तिहां समस्तपरिग्रहविरमण २० अभ्यन्तर ने बाह्य परिग्रह विस्ना १० परआत्म एवं ५ स्त्रीपिहर आत्मा एवं २॥

उ०–तवसंयमेण मुक्खो, दाणेणहुंतिउत्तमाभोगा ।
देवंचणेणरज्जं, अणसणमरणेणइंदत्तं ॥ १ ॥

२७९ प्र०–अभव्यजीवो शुं नथी पामता.

उ०–इंदत्तं चक्कीत्तं, पंचोत्तरविमाणवासित्तं ।
लोगंतादेवत्तं, अभव्वजीवा नपावंति ॥ १ ॥

२८० प्र०–कया अभव्यजीवो थया.

उ०–संगमककालयसूरि, कविलाअंगारपालयादोवि ।
एएसत्तअभव्वा, उदाइनिवमारओचेव ॥ १ ॥

२८१ प्र०–तुच्छनुं स्वरूप कहो.

उ० तुच्छंभत्तंपाणं, तुच्छानिंदाय तुच्छमारभो ।
तुच्छा जह्वा कसाया, नाहं तुतुच्छसंसारे ॥ १ ॥

२८२ प्र०-कया जीव अहींथी मरीने महाविदेहमां नवमे वर्षे केवली थाय छे ?

उ०–इहभरहेकेइजीया, मिच्छादिट्ठीभदयाभव्वा ।
तेमरीउणनवमे, वरसे होहंतिकेवलीणो ॥ १ ॥

२८३ प्र०–चमरेन्द्रनो केवो परिवार छे ?

उ०–चमरेन्द्रने पांचअग्रमहिषी छे. आठआठसहस्र देवीनो परिवार एम ४० सहस्र देवीओथी भोग भोगवतो विचरे छे.

२८४ प्र०–षड्दर्शनना नाम कहो.

उ०–१ बौद्ध, २ नैयायिक, ३ सांख्य, ४ जैन, ५ वैशेषिक, तथा ६ चार्वाकदर्शन ए छ दर्शनना नाम.

उ०–गाथा—

चतारियवाराओ, चउदसपुव्वी करेइ आहारं।
संसारंमिवसंतो, एकभवे दुन्निवाराओ ॥ १ ॥

३०४ प्र०–आहारकशरीरनुं जघन्य अने उत्कृष्ट आंतरुं केटलुं?
समयोजहन्नमंतरं, उक्कोसेणंजावछमासा ॥
उ०–आहारसरीराणं, उक्कोसेणं तु नवसहसा ॥ २ ॥

३०५ प्र०–पांच प्रकारना समकित जिनेश्वरे कया प्ररुप्या छे?

उ०–खईउ खओवसमीयं, वेयगमुवसामीयं च सासाणा।
पंचविहं समत्तं, परुवियंजिणवरंदेहिं ॥ १ ॥

३०६ प्र०–क्षेत्र अने कालमांथी सूक्ष्म कोण छे.

उ०–सुहुमोयहोइकालो, ततोसुहुमतरहवइखित्ते।
अंगुसेढीमित्ते, उसप्पिणीओअसंखिज्जा ॥ १ ॥

३०७ प्र०–अभव्य, दुर्भव्य, अने निकटभव्य, ए त्रणने ग्रंथिभेदथी पाछा पाडवामां मुख्य हेतु कोण छे?

उ०–अनादिमिथ्यात्वनी वासनाए पतितपणुं ते अभव्यने होय तथा विषय लालसाए पतितपणुं दुर्भव्यने होय, कर्मवर्गणामांथी कोइककर्मोदये पतितपणुं निकट भवीने यथाप्रवृत्तिकरणग्रंथिदेश थकी कोइ कर्मना उदये पतित थाय, पण विषयवासनाए के लालसाए नहि, आमां अभव्यने मंदता यथाप्रवृत्तिकरणे करी तीव्रभाव एटले उत्साहने पामे, निकटभवीनी मंदता क्षयोपशमभावने पामे.

३०८ प्र०–यथाप्रवृत्तिकरणनो शब्दार्थ कहो.

४४४९३२८००००००००००००००० त्यारपछी एकलाखपूर्व दीक्षाकेवलपणे रह्या तेहना केटला वर्ष सित्तेरहजारकोडाकोडी पांचसेकोडाकोडी ते उपरे ६० कोडाकोडी तेहना आंक ७०५६००००००००००००००० एटला वर्ष थया. एम सर्वे चोराशीलाखपूर्वनां वर्ष सरवाळे ५९ लाखकोडाकोडी २७ हजारकोडाकोडी ते उपरे वळी ४० कोडाकोडी एटला वर्ष जीव्या. एटला वर्ष श्रीऋषभदेव सर्वायु जीव्या. एकडा उपर १९ मींडा आवे त्यारे कोडाकोडी थाय एकडा उपर २१ मींडा आवे त्यारे कोडाकोडीकोडाकोडी थाय. तथा एकडा उपर २९ मींडा आवे तेवारे कोडाकोडीकोडाकोडी थाय. इत्यर्थ ८४ लक्षपूर्वनो जाणवो.

२८७ प्र०—प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, रसबंध. तथा प्रदेशबंध क्यारे क्यारे नीपजे ?

उ०—योगे प्रदेशबंध प्रकृतिबंध नीपजे ते कर्मवर्गणापुद्गलनो संचय थाय. तथा योगनें लेश्या वे एकठा मळे त्यारे प्रकृति ने प्रदेशबंध नीपजे, तथा ध्यानकषाय ए वे मळे त्यारे स्थितिबंध रसबंध नीपजे, तथा जिहां कषायध्यान आवे त्यारे त्यारे मेळा थाय. इत्यर्थः ।

२८८ प्र०—शास्त्रमां कहेला भारनुं प्रमाण कोइक कहो ?

उ०—उत्तरसवनो एक जव, ३ जवनी एक गुंजा (घ-

जीवत्व समरे शुद्धोपयोग समरे, अने तेथी शु
श्रद्धानरूप समकित पामे, तेथी योग समरे, ते
अनाशक्त्यादि हठी रीते उदय आवे तेथी प
णाम साग थाय, तेथी अनमतना जीतने अ
अने तेथी जीवना अध्यवसाय समरे, अने शु
ध्यान प्रगटे, अने तेने योगे क्षपकश्रेणिमां
कर्मक्षय करी केवलज्ञान पामी मुक्तिपद पामे,
परिपाटि गुणाण अने यथाशनी उत्तर पुरु अत्र

३१० प्र० पर्याप्ति अने प्राणमां शुं फेर ?

उ०—भवोत्पत्तिवाटे अंतर्मुहूर्तमां जीव जे पावे ते पर्या
पती जीविंत्वांगुणी ग्रहणशी रहे ते प्राण क
अर्थात् भरभर करी उत्पद्यन थाय ते पर्याप्ति
महशी भोगवाडी शरीर ते प्राण जाणा.

३११ प्र०—पत्मात् अने प्रदेशमां शुं विशेष ?

उ०—स्कंधभीरूत ते परमाणु, अने विभक्तीरुत ते प्रदेश
परमाणु स्कंधने वळगेले छे, स्कंधथी प्रदेश कई
छूटो पडे तेने परमाणु कहिए.

३१२ प्र०—[illegible] भगवान् [illegible] [illegible]
[illegible] तेनी [illegible] [illegible] ?

उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible], [illegible] [illegible]

३१३ प्र०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible].

उ०—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

ते स्त्रीओने समागमे पचिस पचिस छोकरां रूप नानाविध रोगोनी उत्पत्ति छे, पूर्वोक्त प्रत्येक रोगने २५ गुणा करतां १०० रोग थाय, ते मध्ये आठ बीजा रोग मेळीए तेवारे वैदकशास्त्रमां वर्णवेल १०८ रोगनी संख्या थाय छे. तेनी चिकित्सा निपुण नाडीपरीक्षाना अनुभवी वैद्य यथार्थ करी शके, पण ते सर्वद्रव्यरोग, अने तेना मटाड-नार पण द्रव्यवैद्य जाणवा, पण जे थकी ते द्रव्यरोगो उत्पन्न थाय छे ते भावरोग जीवनी विषयकषायरूप अनादिकाळनी मलिन विकारी परिणति छे, तेना वैद्य तो सनत्कुमार सरखा परि-णतिवंत महात्माओ गणधर तीर्थंकरादि जाणवा, जे सर्वऔषधना जाण, तथा सर्वरोगना मटाडनारा छे, माटे हे चेतन ! तुं मिथ्या शरीरादिकनी ममताने छोडीने तेओने शरणे जा, तेमना वचनने आदरथी स्वीकार अने तेमने मार्गे चालतो अनादि अनंतअव्याबाध सुखने अचलपणे अनुभवीश.

२९२ प्र०—एकसौधर्मेंद्रना आउखामां केटली इंद्राणीओ चवे ?

उ०—कोडाकोडी दुविसं, पंचासीटलक्खाइंतिकोडीओ ।
इगुत्तरीसहस्साकोडी, चत्तारिसयापनहकोडी ॥ १ ॥
अट्ठावीसंकोडी, सत्तावंदवंतिलक्खाइं ।
सहस्साचउदसमया, एगाईइंदेगइंसनिंथि ॥ २ ॥
इयभंखवादेवीओ, चवंतिइगइंदसमंमि ॥ ३ ॥

इंद्र विषयसुख भोगवतां एकलाख अट्ठावीस

शंकर उत्पत्ति छे, तेथीज जे जीव रागद्वेषी छे तेओ वर्णशंकररूप देखाव संसारमां करे छे, अने तेओने बाळलीलावंतभवनाख्यने विषे मग्न जोइ रह्या छे.

२१६ प्र०—श्री युगप्रधान आचार्यजी महात्माना चार मुख्य अतिशय कया ?

उ०—१ जेमना वस्त्रमां जू न पडे, २ ज्यां विचरे ते देशनो भंग न थाय, ३ तथा ते देशमां चिंता न उपजे, ४ तेमना पग धोइने पीए तेना सर्व रोग नाश पामे.

२१७ प्र०—उत्सेधांगुल, आत्मांगुल, अने प्रमाणांगुल नो अर्थ कहो, तथा तेणे करी कइ कइ वस्तुओ मपाय छे ते पण कहो.

उ०—१ उत्सेधांगुल एटले स्वदेशे, स्वक्षेत्रे, स्वकाळे पोतानुं जेवडुं शरीर होय तेना प्रमाणनो एक आंगुल जाणवो तेणे करी शरीरादिक मपाय छे. २ आत्मांगुल ते उत्सेधांगुलथी बमणो जाणवो, अने तेणे करी घर, हाट वगेरे मपाय छे, ३ आत्मांगुलथी हजारगुणो प्रमाणआंगुल जाणवो, तेणे करी पृथ्वी, पर्वत, विमानादि मपाय छे.

२१८ प्र०—भावना, अध्यात्म मौनपणुं, मुनि अने सम्यक्त्व तेनो टुंक तात्विकशब्दार्थ कहो.

उ०—१ आत्माने ज्ञानादिकेकरी भावीए ते भावना, २ आत्माने अधिकारी करीने जे वर्तीए ते अध्यात्म ३ सत्य यथार्थ जिनवचनानुसार बोलवुं, ते सर्व मौन एटले मुनिपणुं जाणवुं. तथा ४ आत्मतत्वने

उदय न आवे, आठमाना धणीने सर्वविरति उदय न आवे, नवमाना धणीने मुक्ति न थाय.

२९५ प्र०-पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पंचेंद्रियपणुं, अने त्रसपणुं, कायस्थितिए लागलगाट तेने तेज पर्याये रहे तो उत्कृष्ट केटलो काळ रहे ?

उ० १. पुरुषवेद, उत्कृष्ट ६०० सागरोपम झाझेरा;
२, स्त्रीवेद, ११० पल्योपम ६ क्रोडपूर्व सुधी;
३, नपुंसकवेद, अनंती उत्सर्पिणी अवसर्पिणी सुधी;
४, पंचेन्द्रियपणुं, १००० सागरोपम झाझेरा;
५, त्रसपणुं, २००० सागरोपम झाझेरा;

प्र० २९६-पांचज्ञान त्रणअज्ञान कालथकी जघन्य तथा उत्कृष्टे केटलो काळ रहे.

उ०-मतिज्ञान अने श्रुतज्ञाननोकाळ जघन्यथी एकसमय उत्कृष्ट ६६ सागरोपझाझेरो, अवधिज्ञान एकसमय ते केम ? विभंगज्ञान समकित पडवजे तेवारे विभंग फीटी अवधिज्ञान [illegible] त्यारे एकसमय रहि वळी पडे, [illegible] विभंगज्ञान[illegible] आवे एम अवधिज्ञान जघन्यथी एकसमय होय, मनःपर्यवज्ञान-जघन्यथी एकसमय [illegible] पूर्वक्रोडी. एक समय ते किम [illegible] गुणठाणे वर्त्ततां मनःपर्यवज्ञान उपजीने [illegible] एकसमय जाणवो, केवलज्ञान[illegible] [illegible]. हवे मतिअज्ञानने श्रुतअज्ञानना [illegible] त्रण-जाणवा, एकअनादि ने अनंत अभव्यने ? अनादि

३२१ प्र०—साम, दाम, भेद अने दंड ए चार नीतिनो टुंक शब्दार्थ कहो.
उ०—१. साम ते प्रेमवाळुं मधुर वचन, २ दाम ते दंड आपीने झघडो मटाडवो संतोषवो ते; ३ भेद ते, शत्रुवर्गमां कोइ छळभेदकरी लांच रुशवतादिके पुरुषोने फोडी शत्रुनी अंदरने अंदर फाटफुट पडाववी ते, अथवा एकपक्षनी सामे बीजापक्षनी तरफेण करीने भेद पडाववो ते; ४ दंड पूर्वोक्त त्रणथी न माने तो छेवटे युद्धादि करी शिक्षा आपवी ते.

३२२—आजकाल कोइने पण सम्यक्त्वगुण प्रगट्यो छे, तेनी कोइ पण शीघ्र जणाय एवी कोइ परीक्षा रीति छे. तेनी खात्री शी रीते करी शकाय ?
उ०—वीतरागपरमात्मा श्रीअरिहंत जिनेश्वरदेवनुं नाम सांभळतां जे जीवने रोमांच खडा थाय, तीव्र शोकावस्थामां पण जेमनुं गुण स्वरूप सांभळतां, मुद्रा नीहाळतां तमाम शोक दुःख पीडादि मूली जइने अंतरंग अने बहार अत्यंत हर्षोल्लास प्रगटे, ए परमात्मा उपर परिणतिनुं शीघ्र परखाय एवुं खास लक्षण चिह्न छे.

इति श्रीविचाररत्नसारग्रन्थसिद्धान्तना प्रश्नाः ।

पं. श्री देवचन्द्रजीकृत प्रश्न समाप्तम् ॥

श्रेयं भूयात् संवत् १८७५ ना वर्षे माहसुदि २ दिने बुधवारे लि. पं. श्रीरूपचन्द्रजीगणि तच्छिष्य रत्नचन्द्रेण श्रीमत्खरतरगच्छे भट्टारकक्षेमशाखायां श्रीअहम्मदाबादे घांचीनीपोल मध्ये श्रीसंभवनाथप्रसादात् लिपीचक्रे अधिकहीननामिथ्यादुष्कृतम् ॥ ग्रन्थांक २५२७ ॥

मरण, १२. केवली मरण, १३. फांसी शस्त्र, विषादिक थकी मरण, १४. पक्षीपशुओ पासे शरीर वरटाववारूप मरण, १५ अणसणी आराधक मरण, १६ वैयावच्च त्यागपूर्वक अणसणी मरण, १७ पादोपगम मरण ते निश्चल छूटी पडेल झाडनी डाळी समान कायाने वोसराववारूप मरण.

२९८ प्र०—मूर्मी क्यां सुधी अचित्त होय?

उ०—१ राजमार्गनी मृत्तिका पांचआंगळ सुधीनी उपरनी सचित्त पछी खोदेली अचित्त. २ शेरीनी मूर्मी सातआंगळ सुधी, ३ घरनी मूर्मी दश, ४ मळमूत्र मृत्तिका पंदर आंगळ, ५ गाय भेंस बकरी वगेरे बांधवाना स्थाननी मूर्मी २१ आंगळ सुधीनी अचित्त, ६ चूला हेठळनी मूर्मी ३२ आंगळ सुधीनी अचित्त, ७ कुंभारना निभाडानी मूर्मी ७२ आंगळ अचित्त, ८ इंटवा अंतःमूर्ति १०२ आंगळ अचित्त. इति सूयडांगवृत्तिमध्ये कयुं छे.

प्र० २९९—आवळनी छालमां केटला जीव होय.

उ०—आवळनी छालमां असंख्यताजीव कह्या छे, ते पन्नवणाजीना पहेलापदमां कयुं छे.

प्र० ३००—नोकारवाळिना १०८ गुण ते कया?

उ०—बारगुण अरिहंतनाते अष्टमहाप्रातिहार्य ज्ञानातिशय १ वचनातिशय २ पूजातिशय ३ अपायापगमातिशय ४ एवं १२, आठकर्मना क्षयथी सिद्धना

तो सूत्रमध्ये दीसतो नथी. तथा ठाणांगसूत्रमे दशमेठाणांगे कह्युं छे. "दसाहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताएकम्मं पगरेंति तं. अनिदाणयाए, दिठीसंपन्नयाए, योगवाहीययाए, खंतीखमणयाए, जीइंदियाए, अमाइल्लयाए, अपासत्थयाए, सुसामन्नयाए, पवयणवछल्लयाए, पवयणउज्झावणयाए तथा उत्तराध्ययने पण कह्युं छे.

नीयावत्तीअचवले, अमाइ अकुतूहले ।
विणीय विणएदंते, जोगवं उवहाणवं ॥ १ ॥

इत्यादि वचन अनेक छे. वर्त्तासयोगसंग्रहमध्ये पिण सूत्र भणवानो मनोरथ कह्यो नथी. तथा सर्व सूत्रे श्रावक लद्धट्ठा कह्या छे, पण आचारांगादिकसूत्रना पारगामी किहांई कह्या नथी. तथा उत्तराध्ययने १३ मा अध्ययनमांहे गाथा छे. जे ॥

महत्थरूवा वयणप्पभूआ, गाहाणुगीयानरसंघमज्जे।
जं भिखुणो सीलगुणोववेया,इहज्जयंतेसमणोमिजाओ

ए गाथामे कह्यो. एहवी गुणवंत गाथा ते भिक्षु भणे ते माटे हुं पिण श्रमण थयो इहां पण सूत्र भणवाना अधिकारी मुनि दीसे छे, तथा सुगडांगे १४ मा अध्ययने कह्यो छे.

गंथं विहाय इहसिखमाणा, उठायसुबंभचेरे वसिज्जा।
उवयकाराविणुयंसिरके, जे छेएवि पमायंनकुज्जा ॥१॥

ए गाथाइं पण ग्रंथ छे. ते मुनि योग्य छे ईम छे. ईम अनेक सूत्रे पाठ छे. तथा समवायांग सूत्रे" सेणंअंगठ्ठयाएपढमे

छाका अवगाहनायेव ५ सत्तावने निगमावे करी
कम २॥ अवगाहे हूते पन निगमावे नहीं २॥
मनेहने कृपा निषेढे वम्ने १॥ ए नया अत्र गाथा,

नसथावर जीवा. संस्थानिंसओमने दुविहा।
सज्जइलिगसहा. सावरसा पेव निरवसा ॥ १ ॥

जीव दे प्रकरे सूक्ष्म ने बादर ते मध्ये सूक्ष्मना १०
भेद नथा १० बादरना, सूक्ष्मना १० हे पांच स्था-
वर पर्याता ने अपर्याता. एवं १० नी दया श्रावकने
न होय, एवं १० बादर ते किहा ° बेइंद्रि १
तेंद्रि २ चौरेंद्रि ३ पंचेन्द्रि ४ ए पर्याता ने अपर्याता
एवं भेद ८ पंचेन्द्रिसंज्ञीनो ९ ने असंज्ञीनो १०
एवं भेद बादरना थया, ते मध्ये श्रावकने संकल्पी
न मारवुं आरंभे जयणा एवं ५ भेद रह्या, ते मध्ये
अवगाहे हूने निगमावे नहीं एटले २॥ वसा रह्या,
ते मध्ये सापेक्ष अने निरपेक्ष निरपराधने न हणे एवं
१। वसानी दया श्रावकने सम्यक्‌त्वनी रही इति
मानसनी जीवदया १ । वसनी इति । मृषावाद-
अलन २ मनुष्यभूपाकनिषम मावने २० वसा
सूक्ष्म ने बादर कम्नां वसा १० उपयोगे अनुपयोगे
" अनाकुट्टा " अलनन एवं ५ स्वजन परजन
॥१॥ ८ कन्या एवं २॥ वर्ण अजर अयवे परार्थे १। तत्र
गाथा—

सहुमसायम्मई ये, अन्नानसनेसयं भवे दुविहं ।
तत्तो पर्ग च तहा, धम्मर्य वेयवनायन्वं ॥ १ ॥

दशवैकालिक आदिसे उपधानतप विना भिन्नविरुद्ध छे आगम
नीक छे. ते माटे योग उपधानविनि सूत्र भणवा कह्या छे.
तथा कोइक कहेछे जे दशवैकालिक योगवह्या विना सूत्र भणे
छे ते किम भणे छे ? तेहनो उत्तर जे योगवह्या विना
जे सूत्र भणे तेहने अरिहंत आज्ञानी विराधना छे. जो पोताने
देशे तो तेने दोष नहीं ? पण जो पोताने तथा बीजाने
भावना अर्थ होय ते तो आज्ञा प्रमाणे भणे. श्रीअनुयोगद्वार
टीकामांहे अकालिकसूत्र वांचे ते पोते ज्ञानावरणीयकर्म बांधतो
थको छे. अने जे सांभले छे ते दर्शनावरणीय कर्म बांधतो थको
छे. तथा साक्षीसूत्र सरल जाणो.

उस्सुत्तभासगाणं, बोहीनासोअणंतसंसारो ।
पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्तं तं न भासंति ॥ १ ॥

इमजाणी उत्सूत्र न बोलवो तथा जीतव्यवहारेमहानिशीथ-
सूत्रीनेज सिद्धांत भणवा प्रमुख कुंडी तथा हीरप्रश्न तथा विधि-
प्रपाप्रमुख अनेकग्रंथे अधिकार छे. इहां कोइकथकोअणगार
धेरस्वामीप्रमुखनो दृष्टांत देइने कुयुक्ति करे ते पोताना आ-
त्माने अहित करे छे. थकोअणगारप्रमुखआगम व्यवहारे छे
तेहने जीतनो निर्धार नहीं, पण हवणां तो जीतनो व्यवहार
छे ते माटे योगवही सिद्धांत वांचे तेपिण नयप्रमाणसप्तभंगी
निक्षेपातपाद्रव्यभावनया निमित्तउपादान उत्सर्ग अपवादनाजाण
हुवे ते प्रश्नव्याकरणमे बोल कह्या. तेहनो जाण हवे ए सि-
द्धांतनो उपदेश करे ए मार्ग छे. मुख्यपणे अर्थना कथक
आचार्य, सूत्रना दायक उपाध्याय गुणवंतने आज्ञा छे. बीजा

गाणंदेवाणं अंतीयेएयमटंसोच्चा निसम्महट्ठतुठेजाव सणिआउ अ-
ब्भुठेइ अब्भुठियत्ता उववायसभाए पुरिच्छिमिल्लेण दारेणं नि-
ग्गछेइ जेणेवदारे तेणेवउवागच्छति हरयंअणुप्पदाहिणीकरेमाणे
पुरिखिमिलेणं तोरणेणं अणुप्पविसति" इत्यादि पाठे नवावैक्रिय
कर्या विना सर्व पाठ छे ते माटे शय्यामध्ये कोइ देवतानो
शरीर न रहे तो शय्या खाली रहे छे, ए पाठ जीवाभिगम
मध्ये विजयदेवाधिकारे छे. तथा भगवतीसूत्रे चमरोत्पातअधिकारे
सौधर्मेंद्रे वज्र मुक्या पछी श्रीवीरनिआसातना जाणी तेवारे
वज्रने लेवा माटे उत्तरवैक्रिय अणकरे पडतो मुक्यो इहां पण
उत्तरवैक्रिपनो पाठ नथी तेमाटे देवलोकमध्ये मूलगेरूपेज प्रवर्त्ते
पण उत्पात शय्यामध्ये मूलगोरूप रहे ए पाठ कीहांइं नथी.

तथा बीजे प्रश्नेसंगमाने देवलोकथी मूलगेशरीरे काढियो छे
जेसंगमानी देवांगनाए इंद्र आगल विनती करी जे अम्हने
सी आज्ञा छे तेवारे इंद्रे कह्युं जे तुंम्हे मेरु जावो अने वली
पाछा इहां सुखे आवज्यो पिण संगमाने देवलोकमध्ये आण-
स्योमा इंणेकरी जाणीये छे जे ते मूलगो शरीर तिहां रह्यो
हवे तो देवांगनाने स्याने जावो पडे तेमाटे मूलगा शरीरे
काढ्यो छे. ए कल्पकिरणावलिमध्ये अधिकार छे.

तथा केवलीसमुद्घात जे केवलीने छ मासनो शेष आउखो
हवे ए अवसरे केवलज्ञान उपजे ते नियमा समुद्घात नियमा
करे तेहथी अधिक आउखा वाला केवलीने समुद्घातनी भजना
छे. करे अथवा न करे ए अधिकारपन्नवणा टीका तथा गुण-
स्थानकमारोह टीका मध्ये छे. ॥ ३ ॥

तथा पुष्प परोवानो पाठ पंचासकमध्ये तथा हीरप्रश्न मध्ये

स्त्रीजाना एवं स्त्रीआत्मानन आत्मा १। अन्दना परिग्रह क्रोधमानादिकनो नहीं पक्षे अने बाह्य प- रिग्रह १० प्रकारनो ते ते पक्षे एवं १० बाह्य परिग्रहनाहि दे भेद ते किया ? एक आत्मपरिग्रह अने परपरिग्रह ते मध्ये आत्मपरिग्रहनो नहीं पक्षे, परपरिग्रहनो पक्षे एवं ५ वस्तु परिग्रहना बे भेद ते किया ? आत्मनियोग अने स्त्रीविहार आत्मनियोग अने स्त्रीविहारआत्मनियोग ते शुं कहीए ? जे वासोतरादिकनो जे गर्व ते आत्मनियोग पक्षे अने स्त्रीना विहारनो जे परिग्रह ते आत्मनियोगनो नहीं पक्षे एवं २॥ स्त्रीना विहारनो परिग्रह तेहना बे भेद ते किया ? एक सोदन अने असोदन एवं १। सद्वादनो धर्मो इति पंचाध्यनानि एम श्राव- कने ५ अनुवर्ते १। सद्वादनानो होय ते विवरण कर्यु. इति संपूर्ण ।

३०२ प्र०—संसारमां सार शुं ?

उ०—संसार पोतेतो निःसार छे, एटले संसार जे विषय कषायनी परिणति तेमां आत्माने कांइपण सारभूत नथी, अने अधर्म मार्गमां सम्यग्दर्शनरूप धर्म सार छे, तेमां पण सम्यग्ज्ञान सार छे. वली तेमां पण सम्यक्चारित्र सारभूत छे. तेमां निर्वाणपद जे मोक्ष ते सारभूत छे.

३०३ प्र०— चौदपूर्वी आहारकशरीर केटलीवार करे ?

प्रदेशथी निकले छे इम अधिकार छे ए अधिकार चरितानुवाद मध्ये छे अने कर्मग्रंथना आशयथी पिण इम जणाय छे.

तथा महीयपुइए ए पाठनो अर्थ नंदीटीकामें नथी ते नंदीटीका तो अम्ह पासे नथी पण अनुयोगद्वार आवश्यक वृतिमध्ये ए पाठना अर्थ कह्या छे तेहथी जाणवा छे. नंदी टीका मध्ये बीजो कोइ अर्थ लीख्यो नथी सुगम माटे स्पुंलीखे एं रीते धारज्यो.

तथा अष्टापदना चैत्यनो तथा बिंब भराव्यानो अधिकार आवश्यकनिर्युक्तिमध्ये तथा बावीसहजारीमध्ये छे तथा भगवती टीकामध्ये विरपरचीयो सिगोयमा ए आलावामें अधिकार छे.

तथा चक्रवर्तिने कोइकने मिथ्यात्वगुणठाणो छे अने भरतादिक जीवोने चोथो छे वली परिणाम वधे तो मुनिपणो सातमो तथा छठो गुणठाणो थाय पण पांचमो फरसे नहीं ए अधिकार पदवीना लाभना अधिकार पन्नवणाटीकामसुखे ते वली अवसरे संभारवुंजी.

पलाल्याबानमध्ये अनंताजीव उपजे ते ए प्रत्येक छे तेम मध्ये साधारण किम उपजे तथा" सवोकिसलयखलु उगवमाणोअणंत उ भणीओ" इहां पहिला अनंतकाय छे ते मध्ये पछी प्रत्येक उपजे इंम पिण छे तेहनो उत्तर जे मनुषणीना शरीरे योनि मध्ये असंख्यातासमृर्छिमनीयोनिचक्र छे पिण अवसरे गर्भज जीव पण उपजे छे ते माटे अन्यनी योनिपणो थाय छे. सुगडांगसूत्रे पृथवीप्रमुख स्थावरमध्ये अपप्रमुखस्थावर नथा समृर्छिमनी योनि कही छेजी.

८

उ०–यथा एटले जेवा कर्म उदय आवे तेवा प्रवृत्ति एटले वेदीने खेरवे, करण एटले शुभ परिणामे करी, अर्थात् यथाप्रवृत्तिकरणमां जीव अकाम निर्जराए तथा कषायनी मंदताए पूर्वना औदयिककर्मने खपावे, पण नवा रागद्वेषप्रत्ययिक बंध न करे एम यथाप्रवृत्तिकरणमां जीव अकाम निर्जराए तथा कषायनी मंदताए पूर्वना औदयिककर्मने खपावे, पण नवा रागद्वेष प्रत्ययिक बंध न करे एम यथाप्रवृत्तिकरणे तो अभवीजीव पण असंख्यातीवार ग्रंथीदेश सुधी आवे, पण ते ग्रंथीने भेदवाना अपूर्वकरणरूपी परिणाम न थाय तेथी पाछो पडे: इहां ग्रंथी ते अनादिरागद्वेषनी निबिडगांठ, जेम कोइ वृक्षना काष्ठमध्यनी निबिडगांठ भेदी न जाय, तेम आत्मानो पुद्गल उपर तन्मय एकीभावरूप ममता ते ग्रंथि जाणवी. ते अपूर्वकरणपरिणामविशेषे भेद प्रारंभे तेहने अने भेदीने अनिवृत्तिकरण पामे ए सर्व क्रियाअंतर्मुहूर्तनी त्यारपछी मिथ्यात्वनो जाणवो. उपशम समकितनुं थवुं ते अंतरकरण एकसमयनो इति ४ करणनो भावार्थ: ।

३०९ प्र०–सम्यक्त्वनी प्राप्तिए शुं पामे शुं समरे.

उ०–समकित पामे थके जीवनो शुद्धोपयोग समर्यो, ते उपयोग समरे, जीव समर्यो, जीव समरे योग समर्यो, योग समरे परिणाम समर्या, परिणाम समरे अध्यवसाय समर्या, वर्म थोडी रीते वर्द्धाए तो

नाखे छे, अने प्रभु विहार पछी पण विखेरी नाखे छे. तथा फूल समोसरणमाहे सचित्तनी मुख्यता छे. इंम जाणजोजी. तथा त्रीजे प्रश्न पूछ्यो जे प्रभुनी माताए सरोवर दीठो ते किहां छे. ते कल्पनी टीकामध्ये तथा जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिनी अपेक्षाये तो चुलहेमवंत उपर पद्मद्रहते जणाय छेजी. जेम कमलप्रमाण ए रीतनो सर्व वर्णव्यो छेजी. तथा पांचमे प्रश्ने जे व्यवहार रासी मध्ये जेटला जीव मोक्ष जाय तेटला अव्यवहारीनिगोदमांथी नीकले ए पाठ छे तेहना उत्तर माटे लिखीये छे जे अव्यवहारीनिगोदमध्ये पिण भव्य तथा अभव्य बे जीव छे. व्यवहारराशिमध्ये पिण भव्य अभव्य बे जातिना जीव छे. ते मध्ये भुवनभानुकेवली चरित्रे भवभावनीटीका तथा उपमितिभव प्रपंचामध्ये अनादिनिगोदथी अभव्य नीकली व्यवहारराशिमध्ये आवे छे ए प्रगट अक्षर छे. ते माटे इहां पूछस्ये जे भव्यजीव तो व्यवहारराशिमांथी अवसरे मोक्ष जाय छे. तिणे वधे नही पिण अभव्य जे व्यवहारीया थया ते तो व्यवहारराशिमध्ये छता पांमीये तेहनो उत्तर जे घणो काल तो भव्य नीकले छे अने कोइक वेला १० जीव मोक्ष जाय तेवारे अव्यवहारीनिगोदथी १० जीव नीकले ९ भव्य १ अभव्य इंम पण निकले छे. केइक कहस्ये जे ए रिते करतां व्यवहारराशि वधती जणाय छे. तेहनो उत्तर जे मूल तो इंम वधे नहीं कदापि कोइ काला उपजे तो पिण अल्प माटे गिण्या नथी. तथा ॥

सिज्झंतिजित्तीयाकिर, गुणयोगेणंववहाररासीओ।
एइतितित्तियाकिर, अणाइनिगोयरासीओ ॥ १ ॥

रसातिरेकयोजनसहस्रमानत्वादौदारिकं, वैक्रियं द्विधा भवधारणीयं उत्तरवैक्रियं च यदेकंभूत्वा अनेकंभवति अनेकंभूत्वा एकंचभवति सेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाणं वैक्रियं ॥ उक्तंच ॥

कज्जंमि समुप्पन्ने, सुयकेवलिणा विसिट्ठलद्धीए ।
जंएत्थआहरिज्जइ, भणियंआहारगं तंतु ॥१॥ अथवैतत्
सव्वस्सउम्हसिद्धरसाइ, आहारपाकजणगंच ।
तेयगलद्धिनिमित्तं, तेयगं होइ नायव्वं ॥ १ ॥

भुक्ताहारपरिणमनकारणं तै३। अथवाशुभवैक्रियत्वात् इत्याहारकं ४। कर्मणाज्ञानावरणादिना कर्मपरिणामं च आत्मप्रदेशैस्सहक्षीरनीरवत्, कर्मणो विकारः कार्मणं इतिवा, यदुक्तं यतः ॥

कम्मविगारोकम्मण. मट्ठविहविचित्त कम्मनिप्पन्नं ।
सव्वेसिं सरीराणं, कारणभूयंमुणेयव्वं ॥ १ ॥

३१४ प्र०–मिथ्यात्व अने चारित्रमोहनो तात्त्विक अर्थ कहो.

उ०–शुद्धआत्मादि नवतत्त्वने विषे जे विपरीतबुद्धि तेज मिथ्यात्व; निर्विकारी आत्मज्ञानथकी विपरीत प्रवर्तन, अर्थात् वीतरागचारित्रने विषे मुंझवण, विकल्पता ते चारित्र मोह.

३१५ प्र०–रागद्वेष ते कर्मजनित छे के जीवजनित छे.

उ०–एकदेशे शुद्धनिश्चयनये ते कर्मजनित छे, अने अशुद्धनिश्चयनये जीवजनित छे, पण तात्त्विक रीते शुद्ध पण अर्थ कहतां वस्तुगते, रागद्वेष ए नथी पुद्गलनो स्वभाव. के नथी जीवनो स्वभाव स्पष्टपणे, पण ते बंनेना संयोगिकभावथकी एक नवीन कर्म-

अजीवनी वर्त्तनालक्षण कांइक पर्याय वर्त्तना ते काल जाणवो. ए सूत्र वचन छे. तथा उत्तराध्ययने २८ अध्ययने" अनंताणिय दव्वाणिकालो पुग्गलजंतवो" ए पाठ छे ए पाठे कालद्रव्य अनंता कह्या ते जीवअजीवद्रव्य अनंतानी जुदी जुदी वर्त्तना तेहने कालद्रव्य मानीने अनंतद्रव्य कह्या छे ते माटे कालद्रव्य छटो वस्तुगते जूदो नथी. अने पर्याय ते वस्तुनो आरोप करीये तो एहने द्रव्यपणे कहीये. जिम घटद्रव्य ते घट छे. ते पुद्गलनो बंध छे. ते विभाग पर्याय छे ते पिण उपचारे द्रव्य कहीइ छे. तिम ए पिण जाणवो.(तथा कोइ पूछे जे काल ए छतो छे के अछतो छे ? उत्तर-जे कालवर्त्तनारूप पर्याय पंचास्तिकायमध्ये छतो छे, पण पंचास्तिकायथी भिन्न नथी. ते माटे इंम कहेवो. अने जे भगवतीसूत्रे छठो कालद्रव्य छे ते अढीद्वीपप्रमाण ज्योतिश्चक्रने वारे जे व्यवहारकाल तेहने कालपणे मानीने ए वचन कह्यो छे. ते माटे व्यवहारनये छ कहीजे, निश्चयनये तो पंचास्तिकाय छे. तथा तत्त्वार्थटीका मध्ये कह्युं छे जे द्रव्यास्तिकायनयन गवेषीये तो पर्यायास्तिकायने द्रव्य मानीये तेवारे कालद्रव्य कहीये, तेमाटे ए श्रद्धा राखवी. तथा सिद्धांतना आलावा तथा द्रव्यानुयोगनीपरिणति सर्व इम टरे छे. तथा धर्मसंग्रहणीमध्ये बे मत कह्या छे. तत्त्वार्थकारे पिण" सोऽनंतसमय" ए सूत्रसद्दहवो ते काल छ द्रव्य अनंतसमय रूप छे इम कह्यो तथा श्री हेमाचार्ये पिण कालना रेणुक कह्या ते पाठ जो जो ॥

लोकाग्रप्रदेशस्याभिन्नाः कालाणवस्तुयेभावानां ।
परिवर्त्तापिमुख्यः कालसउच्यते ॥ १ ॥ (?)

पंचास्तिकायने यथार्थ माने तेने मुनि कहीए, अने जे मुनिपणुं छे तेज खरुं सम्यक्त्व कहिये.

३१९ प्र०—दीक्षाने अयोग्य केवा प्राणीओ कह्या छे.

उ०—१८ प्रकारना पुरुष, २० प्रकारनी स्त्रीओ, तथा १० प्रकारना नपुंसक जातिना प्राणीओने दीक्षा आपवाने जिनराजे वर्जन कर्युं छे. तेमां प्रथम १८ प्रकारना पुरुष कया ते कहे छेः—१ बाळ, २ वृद्ध, ३ क्लीब ते नपुंसक, ४ जड ते मूर्ख, ५ रोगिष्ट, ६ चोर, ७ राजानो अपराधी, ८ उन्मत्त, ९ अंध, १० दास एटले कोइनो गोलो प्रमुख. ११ दुष्ट कषायवंत एटले अत्यन्तक्रोधी मानी वगेरे, १२ मूढ ते मोहमयी. १३ करजदार, १४ हीनजातिवंत, १५ विषयादिक कोइपण प्रदस्वार्थरागवंत, १६ भिक्षुक मार्गारवानार निर्लज्ज प्रमुख, १७ चोरीने के भग्मावीने [illegible] अन्य कोइपण अयोग्य प्रकार मेळवेला शिष्यने. १८ हीनसत्त्ववंत ते बीकण प्रमुख. ए रीते ए अढारदोषवंत पुरुष तथा १९ गर्भवती स्त्री तथा २० स्तनपान करनार बाळकवत स्त्री ते धावप्रसवस्त्री एम ए वे युक्त वीशदोषवत स्त्री [illegible] [illegible] दीक्षाने अयोग्य कह्या छे. [illegible] दशप्रकारना नपुंसक पण [illegible] कह्या

० प्र०—कोइ जे अल्पसंसारी छे ते कया लक्षणथी जाणीये.

उ०—अल्पआहार, अल्पनिद्रा, अल्पआरंभ, तथा अल्पकषाय होय ते निश्चे अल्पसंसारी जाणीये.

जे जीवाभिगम तथा महाभाष्ययी वधती साख कोनी मागो छो ? वली पूछस्ये जे एटले ठेकाणे ६ द्रव्य कह्या छे तो पांच किम मनाय ? तेहने कहीये जे जीवाभिगम तथा भाष्यकारे ते ए अक्षर सर्व जाण्या हता तेहयी अजाण्या नही. अनुयोगद्वारे अनादिसिद्ध कह्या ते पण ए उपयोगेज कह्या छे, तथा वाच्यवाचकभावे कालनो नियम जूदो कह्यो छे तेमाटे द्रव्य जूदो वाच्यमां संभववो घटे छे, तेहने उत्तर संवरतत्वे वाचक नाम जूदो कह्यो छे, तेहनो वाच्यज्ञान चारित्रादिक पण छे तेमाटे संवरपदार्थ कह्यो पण संवर ते जीवनी परिणति छे पण पिंडपणे जीवयी संवर जूदो नहीं. तथा वली कहेस्ये जे संवरने द्रव्य कह्यो नथी पण द्रव्ययी प्राणातिपातादिक कह्या. तथा प्राणातिपातादिविरमण पण द्रव्यभाव आगम मध्ये कह्या, तेमाटे ए सर्वयी कांई द्रव्य जूदो थाय नहीं तथा कोइक पूछस्ये जे ए ५ समान छट्ठो द्रव्य कह्यो, तिहां उत्तर जे पंचमहाव्रत मेलो छठो रात्रीभोजनव्रत कह्यो, पिण अनेकाए कह्यो, तेमाटे रात्रिभोजन कांइ मूलगुण महाव्रतरूप न थाये. सर्व गुण, सर्व पर्याय, सर्व परिणाम, सर्ववाच्यवाचकभाव, संयुक्त छे. तेमाटे भिन्नपिंडी द्रव्यपणो न पामे अने पर्यायने द्रव्य कहीये एहवे नये पिण जैन बोले, ए दीक्षा लेवा माटे कालने छठो द्रव्य कह्यो ते रीते कहीये, यावत्मान अभिलाप्यभाव होवे ते वाच्यवाचकभावसंयुक्तज होवे, तेमाटे द्रव्यपणो न पामे, जिम धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायनो देशपणो तथा पुद्गलास्तिकायनो देशपणो कदापि खंधयी जूदो नयी, अने अवि-वना भेद करतां जूदो कह्यो, तेमाटे ते रीते पृथग मानज्यो. प्रवचनसारोद्धारमध्ये तथा पंचकारणमध्ये जे वसंतादिकना

तो ते समयनो क्षेत्र किहां मानीये, जिहां मानीये तिह
प्रदेश मध्ये रह्यो जोइये. तेवारे सर्वलोक अलोक
उत्पादव्ययनी वर्तना किम थाये ? तेमाटे पंचास्ति
वर्तना ते कालज मान्यो पूरवे कही नवजीरणता
कालनोलक्षण स्थूल छे. नवजीरणधर्म खंधनो छे
कालनी वर्तना सर्वद्रव्य मध्ये छे ते पुद्गलपरमाणु
नवजीरण थतो नथी तेवारे ए व्यवहारकालनी अपेक्ष
जाणवो, तथा नवजीरणता पुद्गलपरमाणुनोपर्याय छे इम लिख
ते ए परमाणु तो एकलानो पर्याय छे नही, खंधनो उत्प
पर्याय छे, जिम शब्दपणो छे तिम छे, अत्र तेहने एम
तेमाटे वर्त्तमान समय एक छे ते सर्व जीव पुद्गलादिकमें व
छे, ते माटे कालद्रव्य अनंतो कहेवाय छे, जो अणुकादिक कोइ
काल मानीये तो "जीवापुग्गलसमवा" ए गाथा द्रव्यानुयोगना अल्प-
बहुत्वनी भगवती टीकामध्ये छे. तथा पन्नवणासूत्रे "एसिणंभंते-
तीणंपुग्गलाणं" इत्यादि प्रश्नसूत्रे उत्तर कह्यो छे "सव्वथोवाजीवा
पुग्गलाअणंतगुणा अद्धासमया अणंतगुणा सव्वदव्वाविसेसाहीया" ए
पाठ छे, तेह जीव अनंता, तेहथी पुद्गल अनंतगुणा, तेहथी
कालसमयअनंतगुणा, ते सर्वथी काल अनंतगुणो, द्रव्यवर्त्तना
गवेखीये तोज पूरवे (पालवे) जो काल भिन्नद्रव्य मानीये तो
पूरवे जे कारणे जे एक आकाशप्रदेशे अनंताकाल द्रव्य मानीये
तो पूरवे जे कारणे जे एक आकाशप्रदेशे अनंताकाल द्रव्य
मानीये तो अस्तिकायपणो थई (टली) जाये, अने एक आ-
काशप्रदेशे एकएक काल द्रव्य मानीये तो असंख्यातो द्रव्य
थाय, पण अनंतो न थाय तेवारे सूत्रनो अल्पबहुत्व किम मिले?
तेमाटे जीव तथा पुद्गल धर्म अधर्म आकाशनीवर्त्तना मान्यांज



बीजा पण उपचारी भेद घणा छे, सिद्धांतनो भाष्यका आशय एकज छे, अने व्याख्यामेद छे. तथा कोइ कहे जे कोइक गीतार्थ पोतानो आशय पोषे, ते तो जे पोष्या आशय पोषे ते गीतार्थ नथी. गीतार्थने तो सिद्धांतना स आलावा अबाधक रहे ते अर्थने मुख्य कहे. बीजा कोइ ग्रंथे अर्थ कह्या हुवे तो ते कहे पण तेपणे कहे ए रीत छे इहां पंचास्तिकाय मध्ये, स्वकाल तेहज काल छे; पण जूदो नथी, उत्पाद व्यय ते सर्व द्रव्यमां समये समये थाय छे. ते समय जूदो मानीये तेवारे सिद्धनो तथा धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायमां आकाशमां काल भिन्न द्रव्यथी उत्पादव्यय मानवो पडे. तेवारे सिद्धादिकनो उत्पादव्यय परअपेक्षाये (थाय) ते परअपेक्षाये उत्पादव्यय मानतां उत्पादव्यय ध्रुवता ते द्रव्यनो लक्षण (परापेक्षाए थाय) जे लक्षण होवे ते स्वरूपेज होवे परअपेक्षाये थाय नहीं (स्वस्वरूपेणलक्षणंनपरस्वरूपेणलक्षणं) तथा तुह्मे सूत्रनी साक्षी मागी ते जीवाभिगममध्ये "किमिदंभंतेअद्धासमएत्तिवुच्चेइ. गो० जीवाचेव अजीवाचेव" ए पदमध्ये ए आव्यु छे. तथा जिहां छ द्रव्य कह्या तिहां लगनोग पूछयो जे " कतिणंभंते अत्थिकायापन्नत्ता? गो० पंचअत्थिकाया पन्नत्ता " ए पदमध्ये अस्ति ते छतानो नाम छे, तेटला छता पिंडपणे केटला छे? तो कह्युं जे पांच छे. एटले एवी वयतो अक्षर स्यो मागो छो? तथा उपचार टस्ये तो किवारे केटोक थई जस्ये, सिद्धमे संसारीपणो व्यापसे ते एहवी कल्पना स्याने करीये ? जे वर्णीये तथा पूर्वाचार्ये जे उपचार कर्यो ते करीये. पण नवा न कल्पीये. अने कोइक उपचार करीये ते पण कोइक कार्य माटे करीये. सूक्ष्मनिगोदीयाने सिद्ध

साधुने विण उपदेश देवानी मर्यादारीति नथी, तो गृहस्थलिंगे उपदेश करे ते किम पालये ? घणुं स्युं लखीइं ? आगमगंभीरसुरुवे मिल्या अनेकअर्थ कहेवाये इम मोडल्यो.

तथा कडुकमती कहे छे जे पोरसीमसुखपच्चक्खाणे जो पहोरथी वधतो काल थाय तो दोष छे तेहनो उत्तर जे पच्चक्खाणनी शुद्धि ६ कही तिहां तीरीयसमदायकाले ए पाठ आवश्यकनिर्युक्ति-प्रवचनसारोद्धार पच्चक्खाणभाष्यने विषे छे. वली भगवती टीका-मध्येखंदाधिकारे तीरइतिपूर्णेपि भवद्यो स्तोककालावस्थानानए पाठ छे.

तथा केइकगच्छना धउमर अठम तपने अधिकारे आगल पाछल वे एकासणां करे तेवार चउत्थादिक तप थाय ते माटे अनेक कुयुक्ति करे छे तेहनो उत्तर श्रीभगवती टीकामध्ये खंदाधिकारे चउत्थंचउत्थेणं चितुर्थभक्तंयावद्भक्तंत्यज्यते यनच-तुर्थमिदंचोपवासस्यसंज्ञाएवं षष्ठादिकमुपवासद्वयादेरिति

तथा केइक संडासां पजवो मानना नथी तिहां श्रीभगव-तीसूत्र टीकामध्ये एवनिसीइयव्वंति निषिनव्यं उपवेष्टव्यं· संदसकप्र-मिमार्जनादिन्यायेनेत्यर्थ·

तथा श्रीनवानगरना संघे महं० अमरचंदशेठ जादवजी सा महन महं० रायचंद भं० डोसा महं० भीम महं० माहवजी प्रमुखे नवानगरथी पूछाव्या तेहनो आगमशाखें उत्तर लीखीइं छे. प्रश्न पुछ्युं जे देवता शय्यामे उपजे ते देवतानो मूलगो शरीर शय्यामे रहे के न रहे ? तेहनो उत्तर जे देवता शय्यामे उपन्या पछी रहे नही. देवता देवलोक मध्ये जे कार्य करे ते मूलगे रूपे करे छे. तिहां श्रीरायपसेणिसूत्रे कर्युं छे." तयाणंसेसुरीयामेदेवे वेसिं सरिसावय-

पर्यवने देशप्रत्यक्ष मान्यो. वली लोकव्यवहारे उपचार करीने थोडा इंद्रियसन्निकर्षथी जे ज्ञान थयो तेहने पण व्यवहारे प्रत्यक्ष मान्यो. ए बे रीत नंदीसूत्रादिक मध्ये छे. तेपण कारणे छे. तिम कालनी बे व्याख्या कारणे छे. पण मूल व्याख्याने निजराखीने सर्व व्याख्या करीये. ए रीते कल्याण छे. तथा विशेषावश्यके "नतुपश्यतिक्षेत्र कालावसौ तयोरमूर्त्तत्वादत्रधिश्च मूर्त्तविषयत्वात्, वर्तनारूपंतुकालंपश्येत्तद्द्रव्यपर्यायत्वात्, तस्येति" इहां पुद्गलनीवर्त्तनानी अपेक्षायेकालने रूपीगवेख्यो छे. तथा बावीसहजारीमध्ये तथा "कालस्यवर्त्तनादिरूपत्वात्, द्रव्यपर्यायत्वात्, द्रव्योपक्रमएवोपचारात्," श्रीभगवतीसूत्रे १३ मे शतके उद्देसे ४ थे कालस्पर्शनाधिकारे नत्थिइकेणवि ए अधिकारे टीकामध्ये पुद्गलादिकनी वर्तना तेहिज काल गवेष्यो छे. राधनपुरथी पं. वीरचंद गणीए पूछ्युं तेहनो पडुत्तरने वैक्रियशरीर करे तेवारे, अथवा आहारकशरीर करे तेवारे सर्वप्रदेश आहारकशरीर मध्ये छे. पण औदारिक मध्ये नथी. तेहनो उत्तर जे आहारकवैक्रियलब्धिकाले ठाणांगवृत्ते त्रण शरीर छे. तथा कर्मग्रंथ कम्मपयडीमध्ये पण उत्तरवैक्रिय तथा आहारक करतां उदयस्थानक नामकर्मनां कह्यां छे. "आहारक संयतानां उदयस्थानानि भवंति तद्यथापंचविंशतिः सप्तविंशतिः अष्टाविंशति एकोनत्रिंशत्" "तत्र आहारकमाहारकोपांगसमचतुरस्रसंस्थान उपघातंमत्येकंइति पंचप्रकृतयः प्रागुक्तायांमनुष्यगतिनायोग्यापा मेकविंशतौ प्रक्षिप्यंते मनुष्यानुपूर्वीचापनीयते ततोजातापंचविंशति" इत्यादिपाठे, आहारकवालाने औदारिकोदय दीसतो नथी. वली जो एहने औदारिकउदय होवे तो संघयणनो पण उदय जोइये. तेमाटे ते आहारकशरीरकाले औदारिक उदय

प्रगट छे तेम तुमे जोज्यो नवा बिंबना तीर्थंकरने पूजे पूजे एहवे शंका आणे तेहनी बुद्धिनो दोष छे, उववाइमध्ये अनेगसंघाडयवन्नीया ए वचन छे ते ए पदनी टीका पूर्वानुपूर्व-मालादिना ए अर्थ कर्यो छे, अभयदेवसूरिकृत टीकामध्ये पाठ दीसे छे.

तीर्थंकरप्रतिमाने अडके नहीं इम कहे तेपण समजता नथी. देवलोकना पगथी तोरणनां यंत्रां कुकडानां यंत्रां पारेवानां यंत्रां मोर तोरण संसारवर्ती क्रिया न लागे ए पाठ भगवतीसूत्र-मध्ये प्रगट छे ते जोजो तो भक्ते फूल चढावे तेमध्ये स्यो दोष छे ? !

तथा कुवे पाणी पीना अण्यो पाणी कलशीयाने रहे ए मध्ये समूर्छिम उपजवानो मन दाखवो नथी. पन्नवणा टीकाने आसंदेइन जणाय छे तिम ए चालवणो नहींजी.

तथा स्त्रीने जो अचरमपर्यवसितनी ममनकायनी ऋतु थाय छे ते अगाने थाय एनो निरधार दीसे छे अने ते ऋतु मे बीजा जीव तो जाण्या नथी अने त्रिहांइक इंदे अन्यजाति मध्ये उपजता पण कह्या छे. योगशास्त्र टीकाने ए चाया लिखी छे, ते माटे उपजता तिम जणाय छे, शीतस्पर्शने योगे स्त्रीया उपजवानी हा दीसेनो छे तिम घणेकाल गये योनिपलटे ऊपजे परभावे ग्रीविरंग उदडे ते हणाय छे ए जाणवो तिम आगमरीते तमसरखा ए करे छे.

तथा आहारकशरीर करे प्रदेशनाओठिभागे जे दिशे केवलीने निर्धार ते दिशे मोकले छे, दशमाद्वारनो कांइ प्रयोजन नथी त्रिहांइ पाट पण नथी अने मुंडपने हृदय प्रमुख आगला

ए तेजोप्रदेशोदयरूप गणवो. पण विपाकी नथी. तथा वैक्रिय शरीरने पण इमहीज जाणवो. इहां कोइ पूछशे जे, चक्रवर्ती भोगकाळे ६४ हजाररूप करे छे तिहां स्त्रीने साथे भोग भोगवेरूप करे छे ते मूलगो औदारिक शरीर के ? तिहां इम छे जे चक्रवर्ति ६४ हजाररूप करे छे ते चक्रवर्तिनी शक्ती पेरे औदारिक शरीरनाज छे पण वैक्रिय नथी तथा श्रीभगवतीसूत्रे "घडाओघडसहस्सं घडाओघडसहस्सं" ए पाठे घडा एमांथी हजारेगम घडा काढे ए पण वैक्रिय नथी. आकाशगा मेरे घडामांथी घडा काढे छे तिम औदारिक शरीरमांथी औदारिक शरीर काढे छे ए अक्षर पण ग्रंथांतरे दीठा छे पण ते ग्रंथ पामे नथी. आहारक करतांथकां पूर्वशरीरमध्ये आत्मप्रदेश छे ते तेजसकार्मणशरीरी छे पण औदारिक शरीरी नथी अने आहारक करे तेपण इहां ३ वर्गणानो करे छे. तथा आहारकशरीरी करतां औदारिकमिश्र मान्यो छे ते पूर्वशरीर औदारिक पुद्गल जे छे, अने नवा ग्रह्या जे आहारक पुद्गल ते भेला थया माटे मिश्र छे पण आहारकथी औदारिक मळ्या नथी. आहारक मूकतांकाळे पण प्रथमथी औदारिकपुद्गल ते वळी पाछा भेळा थइ छे इम जणाय छे, पछे तो आगम अनंत छे. तथा तुम्हे [illegible] आश्री लिख्युं ते वैक्रियशरीर बांधे औदारिक शरीर ते पण वैक्रिय मांहेज गणवो छे अने ते औदारिक पुद्गल ते वैक्रियने उदयथी वैक्रियपणे परिणमे, एटले परस्परसंबन्ध छे तेमाटे जे वैक्रियसमुद्घात करे तेह आपणा मूलना पुद्गल देह प्रदेशथी वैक्रियपणे परिणमावे छे. अने जे वैक्रियशरीर घणां करे छे तेहने औदारिक सर्वे प्रदेश छे तेहनो ए परिणति होय मूलना शरीर पण वर्ते

तथा साधुजीने चोथे कर्मग्रंथ मध्ये भगवती २५ मे शतके लेश्या छ दीसे छे ते माटे तेजससमुद्घाते परने बालवाने तेजो लेश्या मुके ते वारे कृष्णलेश्या पण हुवे बीजी पिण हुवे जां सीम शासनकाम करे तां सीम प्रशस्त लेश्या हुवे पछी परिणाम पलटे अप्रशस्तरने परिणमे तो अप्रशस्त लेश्या पिण हुवे इम धारवोजी. ए प्रश्ननो शास्त्रनो पुस्तकथी जोइ लेजो.

नवानगरना श्रावक भगवाली डोसाए प्रश्न पूछ्या तेना उत्तर लख्या छे:—समवसरणमध्ये फूलनी वृष्टि थाय छे ते उपर साधुजी किम चाले छे तेहनो उत्तर तंदुलवेयाली पयन्नानी टीका मध्ये लिख्या छे. ते कोइक आचार्य कहे छे जेविचे मारग रहे छे. जिम वाडी मध्ये जेम क्यारी करे छे तिम मारग रहे छे. पिण ए उत्तर पंचांगीने लेखे टहरतो नथी ते वली एहज टीका मध्ये कह्यो छे. जे फूलनो सर्वत्र व्यापीने वृष्टि करी छे ते उपर साधु चाले छे तिहां वे टीका मध्ये पूछ्युं छे. जे फूलने किलामना उपजे के न उपजे ? तिहां इम उत्तर छे, जे कोइक समवसरणे देवना विकुर्व्या फूल करे से तो अचित छे अने समवायांगने पाठे सचित्त फूल छे पण देवताने सामर्थे वेदना थाती नथी तथा कदापि थाय तो पण साधुजीने प्राणातिपातकी क्रिया न लागे तथा जिन-भक्ते हिंसानो बंध न थाय इम जाणवो, गुरु साहमा सूत्र सुण्याना फल उत्तराध्ययनमध्ये कह्यो छे. ते श्रीअरिहंत विचरता ते गुरुतत्त्वमध्ये छे उपदेशक माटे. तथा वली पूछ्यो जे समवसरण उपाडे तेवारे फूलनो किम थाय छे ? तेहनो उत्तर जे फूल सचित्त छे तेतो करमाय पछे देवना विखेरी

[illegible]

इहां गंत्रवानो नियम कर्यो छे पण भव्य अभव्य नियम नथी ते माटे पंडितोनी गीते इम जणाय छे वली जो श्री केवलीनां जाणवाने हुवे ते प्रमाण होशे. तथा समवसरण मध्ये पृथ्वी दृष्टि थाय छे ते सचितपृथ्वी छे श्री यशोविजय उपाध्यायजी प्रतिमाशतकमध्ये पण ए प्रश्नो पक्ष्यो होशे इम कहेवो जे वर्णवे प्रमाणमां जे वरे ते मध्ये आ कथन नथी ए पृथ्वी परिणत होशी कोइक प्रगटाक्षरमां तो उत्पादन मुखे पृथ्वी पुनरागमने कर्यो छे.

अपसत्थेहिदारेहि. सव्वओपिहीयासवो ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहि. पसत्थदमसासणो ॥ १ ॥

इत्यादिक अनेकआचारांगादिसूत्रे घणा पाठ छे ते जोइ लेजो. तिथा पं. ज्ञानकुशलनो प्रश्न जे सूत्रे द्रव्य छ कह्या छे. तथा विशेषावश्यक मध्ये पांचज द्रव्य कह्या छे. तेहनो स्वरूप लिखवो छे. जे वर्तना ते विवक्षा हाल्नो वस्तुगतो पिंडरूप द्रव्यपणो नथी. ते माटे अस्तिकायपणो नथी. अस्तिकायपणो बहुप्रदेश लिये बहुप्रदेशात् लिये थाय ते कालने नथी. कोइक कालना रहु अनंतपाना माने छे. लोकाकाशप्रदेशप्रमाण माने छे तिण ए वात प्रमाण नथी. जे रेणुआमांश्यां अस्तिकायपणो थाय कदापि रेणुआंने भिन्नद्रव्य मानीये तो कालद्रव्य अनंतपाना थाये. अने सूत्रे कालद्रव्य अनंतो मान्यो छे ते माटे रेणुआनो मानवो तो संभवे नहीं. तथा सूत्र पन्नावणे श्रीजीवाभिगमसूत्रे पण इम दिसे छे. " जे किंयंभंतेकालोत्तिवुच्चइ गोयमा जीवाचेव अजीवाचेव" एटले जीव

मनी. जिहां कोइ पूछे जे, ज्ञानांशनो नो प्रदेशनो [illegible]
निर्जरा कार्य करे छे, ते इहां आत्मनो अनंतमो नो [illegible]
निरावरण छे. ते माटे ते प्रदेशनो [illegible] प्रदेशे अने
साहाय्य करे छे, पण क्षयोपशमगुण थाय नहीं. एम कही पू-
छीजे "अक्षरना अनंतमो भागो नित्य उघाडो सिद्धांतेमां
छे ? तेहनो उत्तर जे आत्माने आवरण [illegible] करेल [illegible]
करेल ज्ञानगुण तेहनो अनंतमो भाग तेह तेनो [illegible]
गुणनो अंश ते सदा उघाडो छे. ते क्षयोपशमी छे. [illegible]
ए अनंतमोभाग जे उघाडो थयो छे, ते [illegible]
केवलिसमुद्घात [illegible] छे. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इम पाठ छे पण मूलद्रव्यानुयोगमध्ये नजर देतां तथा जीवाभिगम अनुयोगद्वारसूत्र तथा पन्नवणा भगवतीना अल्प बहुत्व विचारतां कालद्रव्य जूदो नथी पंचास्तिकायनी वर्त्तना छे, तिहां कोइ पूछस्ये जे जेवारे पंचास्तिकायनीवर्त्तनाने काल मानीये तेवारे कालने एकलो अरूपीपणोइदरे नहि जे पुद्गलास्तिकायनी वर्त्तना रूपी जोइये, तेहनो उत्तर जे पुद्गलनी वर्त्तना मुख्यपणे रूपी संभवे पिण वर्त्तना ते पिंड नहीं वर्णादिक तथा अगुरुलघुनो पलटण उत्पादव्ययरूप छे ते व्यक्तअवस्था पावे नहीं तेमाटे अरूपीज बहु मतिये गिण्यो तथा कोइक पूछस्ये जे काल जेवारे जीवनी वर्त्तना गवेषीये तेवारे कालने चेतनपणो आवस्ये तेने कहे छे जे जेवारे पर्यास्तिकनयनी भेद व्याख्या करे तेवारे चारित्रादिक गुणमध्ये ज्ञानगुणनी नास्ति कहीइं जे सर्वगुणस्वरूपे अस्ति छे पररूपे नास्ति छे तो वर्त्तनापर्यायने चेतनपणो किम कहेवाये ? तेमाटे कालद्रव्यने पिण अचेतनज कह्यो, इम कालने उपचारे निक्षेपा द्रव्यादिक च्यार गुण पर्याय सर्व कहेवा, पिण मुख्यव्याख्याये काल ते पंचास्तिकायनी वर्त्तना छे. सूत्र तथा निर्युक्ति तथा भाष्यकार सर्व गीतार्थ तथा गणधर सर्वनी एहिज व्याख्या छेजी, तथा पुछे जे द्रव्य छ छे के पांच छे? ते जीवाभिगमसूत्रे तो द्रव्य पांच कह्या छे अने भगवतीप्रमुखमध्ये द्रव्य ६ कह्यां छे, पिण सूत्रना वचन विरोधी हुवेज नहीं तेहनो परमार्थ धारवो पण जिहां उत्तराध्ययन भगवती तथा टीकाप्रमुख सर्वत्र जिहां ६ द्रव्य एहवो पाठ तिहां नियमापंचास्तिकायनी वर्त्तना तेहने उपचारे भिन्न व्याख्याये भिन्न द्रव्य कह्यो ते सर्वत्र उपचार जांणज्यो तथा कोइक कहेस्ये जे एहनी साख किहां छे तेहने कहीये.

णामेज कालो थयो. श्वेतपणानो व्यय कालापणानो उत्पाद, इत्यादिक धारवो, तथा तुमहे पुछ्यो जे ए परमाणुमें पूरणगलन ते किम छे ? तेहनो उत्तर. एकपरमाणुमें जे वर्णादिक गुण हवे ते एकगुणो हवे. ते समयमां ते संखगुण थाय. अथवा असंखगुण थाय, अथवा अनंतगुण थाय, अथवा अनंतगुणो हवे, ते असंखगुण संखगुणा एकगुण थइ जाये. कोइक समये वर्ण इंम थया, कोइक समे वर्ण ते प्रमाणेज रहे तो गंधादिक वधे घटे, कदाकाले वर्णादिक च्यार तेह प्रमाणे तेहनो तेज रहे. पण अगुरुलघुगुणतो एकसमयथी बीजे समे षट्गुणहानि अथवा वृद्धिपणे नियमापरिणमे ते पूरणगलनतानियमा छे पण अगुरुलघुनी पूरणगलनतागवेखी नथी. वर्णादिकनी जे गवेखी छे तथा परमाणुमध्ये एक परमाणु अन्यथी मिलवारूप स्निग्धता छे तेपण घटेवधे छे "द्वाम्यांद्वाम्यां अधिकाम्यां संबंधः" ए तत्त्वार्थनो वचन छे. ते रस शब्दे तीखा कडुआ मांहिली नथी, तथा फरस मांहिलो नथी. जे रस मध्ये स्वाद धर्म छे, पण मिलवानो धर्म नथी. तथा फरस मांहिला स्निग्धता छेवे तो "रुखरसरुखेण दुयाहिण्ण" एटले लुखो परमाणुओ बीजा लुखा परमाणुथी द्विगुण अधिकने मिले ए पाठ न टरे किम तेमाटे मिलवो कारणरूपज स्निग्धता ते पूरणगलनगुणनी छे ते पण घटेवधे छे, जे पुरायुं ते पूरण, घटे ते गलन थयो, तथा एक परमाणु एक टामे अस्तिकाय कहेवाय छे ते स्यामाटे जे अन्य परमाणुथी मिलाय तेहनो कारण पूरणगलननी आटता ते परमाणुमध्ये छे. तेमाटे अस्तिकायपना छे. जे अगुरुलघुनी हानिवृद्धितो सर्व द्रव्यमां छे तेमाटे तेहनी पूरणगलनता गणवी नथी जे वर्णादिक ४ नी तथा



दिखाडवाने अर्थे ए कथन करयो छे. राधनपुरी श्राविका आणंदबाईकृत प्रश्नोत्तराणिपुलाकचारित्रीयाने श्रुत जघन्य नवमा पूर्वना तीनवस्तु उत्कृष्टे नवपूर्व पुरां श्रीभगवती २५ मे शतके कह्यो छे, ते पुलाकचारित्रीयाने द्रव्यलिंग तीन कह्या छे, गृहलिंग, अन्यलिंग, स्वलिंग. ते गृहलिंगी अन्यलिंगी पूर्वक्रिमभणे ? तेहनो उत्तर जे श्रीभगवतीसूत्रेकह्या छे जे " भावलिंग पडुचनियमासलिंगेहुज्जा " ए पाटना आशयथी जे जे द्रव्यथी तीनलिंग कह्या ते वैक्रियलब्धिकरतां कारणे साधु गृहस्थलिंग अन्यलिंग करेपरे ते साधु छे. पण गृहस्थ नथी. तथा बीजे प्रश्ने भगवतीसूत्रे बंधनो उदयनो नीम छे. परं सत्तानो नाम नथी. ते भगवतीसूत्रे सर्वअधिकार समकाल कहे ते नियामक नथी. परं पन्नवणा तथा समवायांगे सत्तानो पाठ छे. तथा तीजे प्रश्ने धर्मलाभनो पाठ किहां छे? तेहनो उत्तर जे भवभावना टीका तथा उपमितिभवप्रपंचादिक ग्रन्थे पाठ छे. चोथे प्रश्ने आलोयणनो तुम्हे कह्यो ते किहां कह्यो छे ? तेहनो उत्तर जे परंपरा जीत दीसे छे. तथा नांदि मांडे तेहां अखीयाणां मुकवानो अधिकार विधिप्रपाप्रमुखविधि ग्रंथमे छे. तथा स्त्रीनी असज्झाई चोवीसपहोरनो मान, आवश्यकनिर्युक्ति तथा प्रवचनसारोद्धारटीका मध्ये छे. तथा तिर्यंचणीनी असज्झाइनो जीत दीठो नथी. तथा सिद्धांतगसामत्ये कह्यो छे. तिर्यंचणीनी असज्झाइकालेदुहली धातु झरे छे. पण रुधिर झरतो नथी. ते माटे धातु झरे, असिज्झाइ नथी तथा मनुष्यने धातु झरवा काले पाणीयेसुचि करे ते समूर्छिमनी उपज टालवाने परं असिज्झाइ नथी. तिर्यंचना धातुप्रमुखथी समूर्छिम उपजे नहीं. अने जे कुयुक्ति करी जे जीत

पत्रे ए सूत्रनो पण एहवा आशय छे, जिहां "उवयारकाला
इत्यादिक सूत्र पण व्यवहारकालने उपचार मानी ठ कथा ए
आमपरुदेन छे, तेमाटे एहि आशय सिद्धांतकारनो छे.
सिद्धांतवादी पण इमज कहे छे इहां कुशे पोतानी मतिना
दोषे समजण विना सिद्धांतवादीपणो कुशे माने तेहने संसार
वधे, अने सिद्धांतअनुयायी सिद्धांतवादी श्रीजिनभद्रगणि क्ष-
माश्रमणना वचनो पीजो कोइ नथी, सिद्धांतनी खरी आज्ञा
प्रमाणजीव छे. तेहथी वचनो हीनो चित्तमां विकल्प करे
तेहने संसार वधे इम धारज्यो, एटले आवलिकादि व्यवहार-
काल ते सर्व लौकिक छे. परमार्थे पंचास्तिकायनीवर्त्तनाने काल
कहीये छे. पण कह्यो नथी. अने कालद्रव्य कयो ते उपचारे
छे, तिहां वली पूछे जे उपचार वस्तुनी छनी गर्वाने कह्यो
छे के वस्तु पांचज छे ? तेहनो उत्तर जे वस्तुपणे मूलसूत्रने
प्रमाण पांचज वस्तु छे. छठी वस्तुपणे नथी, अने पंचास्ति-
कायमध्ये स्वकालरूप एक स्वभावपर्याय छे, तेहने काल मान्यो
छे. ते स्वकालरूप पर्याय ते पंचास्तिकायमध्ये छनो छे. तेमाटे
छनानो उपचार छे. इहां कोइ पूछस्ये जे छनो तेहने उप-
चार छे किम कहीये ? तेहनो उत्तर जे, जिम छे तेहनी
पर्यायी अवस्था कहेवी ते उपचार, जे वर्त्तना ते पर्याय स्वभाव
हनो तेहने द्रव्यपणो कहेवो ते उपचार छे एटले द्रव्यपणो
अछतो छे, इम धारवो, तथा अजीवना १४ भेदमध्ये तथा
५६० भेदमध्ये अछतो होवे तो किम गण्यो ? तेहनो उत्तर
जे धर्मास्तिकायदेश १ अधर्मास्तिकायदेश २ ए भेद अछता छे,
पण ए भेद मध्ये गण्या छे तेमाटे ए भेद सर्व वस्तुगति तथा
उपचार ए वे भेदोनेज प्ररूप्या छे, पांचलेसाठ भेदमध्ये

अधिकार छे. तथा रूपानाणे सोनहीये गौतमपदनी पूजानो अधिकार छे. तथा ज्ञानपंचमीनी कथामध्ये तथा पूजापटल, श्री तत्त्वार्थकारकृत छे, तेमध्ये वासपूजा, नाणानीपूजा, मोतीनी, वींटणानी, दीवानी, धूपनी, एटली पूजा लिखी छे. तथा जीत-कल्पचूर्णिमध्ये जिहां आचार्यादिक पुस्तक वांचे तिहां वासपूजा वींटणा निमित्त वस्त्रपूजा रूपा सोनाना फूल तथा नाणो तथा श्रीफल तथा दीप तथा धूपनी पूजा ज्ञाननी करवी पण गुरु आचार्य ते सचित्तने अडकता नथी जे पुस्तकथी गुरुने अ-डकवो पडे तेह पुस्तकने तो वासनी तथा सोनारूपाना फूलनी तथा नाणानी रत्ननी तथा लगडानी एटली पूजा करवी ए जीत छे. धूपपूजा श्रावक पोते गुरुने अडक्या विना करे तथा गुरुपूजा गुरुने नव अंगे रत्नेकरी नाणेकरी सोनारूपाने फूले करी करवी ए अधिकार हीरप्रश्नमध्ये साखसहित छे. तथा गु रुने तथा पुस्तकने वधाववाने चोखे तथा मोतीए तथा सोना रूपाने फूले वधाववा एटलानो जीत छे वधनो जीत नथी तथा गूहलीनो अधिकार श्रीविशेषावश्यकमध्ये गणधरस्थापन अधिकारे इंद्राणीए करी छे. ए सर्व पंचांगीने रीते लिख्यो छेजी. "यत जेणेव वसापसभाणेव उवागच्छन्ति लोमहत्थगपगगु सति पोत्थयरयणं लोमहत्थएणं पमज्जनिदिवएदगधागअगेहिं-रेहिं गंधेहिं यमलेहिं अचेंति" ए पाटथी पाणीना धाग फूलनी पूजानो अक्षर सूरीयाभने अधिकारे छे. । साह लाधाजीना पूछ्या प्रश्ननो उत्तर तुम्हे पूछ्युं जे वायुकायने वैक्रियशरीर छे ते लब्धिप्रत्ययी छे भवप्रत्ययी नथी जे पन्नवणानो वचन छे निरिगति मनुष्यने लब्धिप्रत्ययी वैक्रियज हुवे तेमाटे वायु-काय ते तिरिपंचना ४८ भेदमध्ये छे. तथा जे पंखेमां जे

कह्या ते उपचारे, इम अनेक उपचार छे. ने केटला लिखीये, अनुत्पादनादिक ए सर्व उपचार छे, पण कार्य माटे छे. तथा कोइक वांनो वोलाय ते मध्ये कोइ जीवने लाभ नहीजी. तेमाटे एटलो बोलवानो मन करीये, पण खींचाताण मध्ये न पेसीये. तथा श्रीभगवतीसूत्रमध्ये धर्मास्तिकायना नामपर्याय कह्या छे, तिहां धर्मास्तिकाय कहीये प्राणातिपातविरमण कहीये. इम अढारस्थानके ते धर्मास्तिकायनां नाम कह्या. तथा अढार पापस्थानने अधर्मास्तिकायनां नाम कह्यां. ते पण सर्व उपचारे कह्यो छे. तेमाटे एहवा उपचार सूत्रे अनेक छे ...माटे पंचास्तिकायनी रचना तेहजने काल कह्यो छे. अने श्रीतीर्थंकरदेवे पण छ द्रव्य कह्या, तेपण आशय मध्ये एहज उपयोगे कह्या छे. बीजो कोइवे नवे ए आशय न कह्यो. " अनागयद्धाजीयद्धा जीवाजीवइ " इत्यादिक जोज्यो. तथा श्रीजिनाज्ञाथी भिन्न कह्यो नथी. वीरप्रभुथकी सुधर्मास्वामीए अर्थ इमहीज धार्यो हतो. ते परंपराये चउदपूर्वधारी भद्रबाहु स्वामी निर्युक्ति मध्ये पण एहज. जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण तेपण दशपूर्वधर छे. ए वात गणधरनाथमतकर गणधरदेवतार करीये. पण आसन्नपणो शक्तीने करीये. इम धारजो तेमाटे ए व्याख्या ए रीतेज करज्यो. जे वस्तुविकने पांच छे, अने पांचना स्वरूपपर्यायने कालद्रव्य कही बोलाव्यो छे, ते आगेज छे. ए अपेक्षा ते जिन निश्चयपर्यायसमूह एक तत्त्वनो छे अने व्यवहारे अर्थाविसह असंख्यात तत्त्वनी लोकने बोधना माटे मान्यो, तिम मानज्यो. तथा वली जे मनःपर्यव मध्ये वस्तुने केवलज्ञान ते सर्व प्रत्यक्ष मान्यो. अन्यैरुक्तं:

दीसतो नथी. तथा कोइ प्रश्नस्थेजे औदारिकशरीर छतो देशनादेतो दीसे छे ते एहनो आशय छे, जे आहारकनो अंतर्मुहूर्त नान्हो जणाय छे ते लोकने खबर पडे नहीं. तथा जो ए शरीर मध्ये आत्मप्रदेश छे तेपण तैजसकार्मणशरीरी छे, पण औदारिकावगाही नथी अने जो ए शरीरे आत्मप्रदेश सर्वदा न मानीए तो आहारकशरीरनो संकेलो संभवे नहीं. तथा तिहां उत्तर सांभल्यांज आहारक छुटी जाय छे अने आत्मप्रदेशो औदारिकशरीरमध्ये समाय छे तथा कोइक पुछस्ये जे मूलगे शरीरथी जाय्ये. आहारक जइ तां सीम आत्मप्रदेशनी श्रेणि छे ते तैजसकार्मणवंत छे, जे सर्मी अवगाहनापन्नवणा सूत्रे पांचराजनी कही छे कार्मणनी अवगाहना १४ राजनी कही छे उत्कृष्टथी जघन्य अंगुलने असंख्यातमे भागे कही छे, अने आहारककरनां शरीरादि पर्याप्ति नवी करवी पडे छे ते कर्मग्रंथटीकामध्ये कयुं छे. "शरीरपर्याप्तापर्याप्तस्यसप्तविंशतिः" इत्यादि तथा ते आहारकनी अवगाहनाखुंड हस्ते छे तेमाटे मध्यप्रदेशे तैजसकार्मण छे इम जाणवुं. तथा औदारिकशरीरवंत मध्ये नथी आहारकपुद्गलग्रहे तेपण औदारिकशरीरथी छेतो नथी, जे औदारिकआहारकबंधन नथी तेपण आत्मप्रदेशगत आहारकनामकर्मनी प्रकृति तेपण कार्मणवर्गणारूप जे उदय थइ तेहने उदये आहारकसमुद्घात करे, तेणे प्रदेश बाह्य नीकले. ते प्रदेश तैजसकार्मणशरीर छे. ते शरीरथी नवा आहारकवर्गणाना पुद्गल आहारे ते सर्वप्रदेशे आहारे ते पछे सर्व प्रदेशे आहारकशरीर छे. एक अष्टप्रदेश ते अचल छे तथा श्रेणिगत प्रदेश सर्वने तैजसकार्मण शरीर छे ते पछे आहारकशरीर उदय छे इम जणाय छे, इहां किहां औदारिक उदय मान्यो. हवे तेजो प्रशस्तआचार्य वचन

वैक्रिय थयो छे, अने लोक औदारिक जेहवो देखे तेतो शक्ति
विशेष छे, जिम इंद्र कालिकाचार्यपासे निगोदस्वरूप पूछवा
आव्या वृद्धब्रह्मरूप करीने ते शरीर वैक्रिय हतो पण
लोके औदारिकपने दीठो, आचार्ये पण पछे उपयोग दीधे
जाण्यो तिम मनुष्य वैक्रिय करे ते मूल शरीर पण वैक्रिय छे,
अने बीजा शरीर तेपण वैक्रिय छे. ए वैक्रियसमुद्घातनी
उत्कृष्ट अवगाहना लाख योजननी छे तेमाटे अने जे लाख
योजनथी उपरांत छे ते तो मूल शरीरे तथा अंतरालवर्त्ती प्र-
देश सर्वनवे तैजसकार्मणशरीर छे, समुद्घातगत केवली शरीरपरे
पण औदारिकशरीर नथी. जे उत्तरवैक्रियकाले औदारिकना
उदयनो ना कही छे कर्मग्रंथने विषे तेमाटे इहां कोइ कहे जे
एकलवे २ शरीर कह्या छे पण रूपभेदे वैक्रियादिक हवे.
तेहनो उत्तर. जे कर्म उदय न हवे ते सर्व प्रदेशेज हवे पण
कोइ प्रदेश हवे कोइ प्रदेशे न हवे इंम हवे नहीं. यद्यपि शुभ-
नामकर्म अशुभनामकर्म तेना "भुवरिसिरइसुहं" ए पाठे नाभि
थकी नाभिथी हेठले अशुभ इंम उदय कह्यो छे पर तिहां तत्त्वार्थ
टीकाकारे कह्यो छे जे नाभिपर्यंत शुभनो विपाकोदय अने
नाभिथी हेठल शुभनामकर्मनो प्रदेशोदय छे अशुभनो उदय
छे इंम जाणवो. पण कर्म उदय हवे तेहल थोडावणा चीकणा
लूखानो फेर हवे पण कोइ प्रदेशे न हवे इंम न हवे, तेमाटे
इंम जाणवुंजी. तथा तुम्हे पूछयुं जे मनुष्यगतिमार्गणा तथा
तिर्यंचगतिमार्गणा मध्ये औदारिकद्विक नरकद्विक वज्रऋषभना-
राचसंघयण ए पांच ५ प्रकृति मूलओघे बंधनथी तो औदा-
रिकमिश्रकाययोगनी मार्गणाए चोथे गुणठाणे ७५ प्रकृतिनो
बंध तेमध्ये ए ५ प्रकृति गवेषी ते स्युं ? तेहनो उत्तर परंपराइ इंम

वरण छे. सिद्धसमान छे. केवलज्ञानादिक अनंतगुण निरावरण छे, तिहां वली पूछयो जे आठप्रदेश निरावरण, केवलज्ञानमयी छे तो लोकालोक कां जाणता नथी? तिहां उत्तर जे पंचास्तिकाय मध्ये जड च्यार अस्तिकाय छे. ते अकर्त्ता छे, जे सर्वप्रदेशे कार्य भिन्नभिन्नपणे करे छे, अने जीवद्रव्य कर्त्ता छे. ते एक जीवना असंख्याता प्रदेश बधा मिलीने जाणवारूप कार्यने करे छे, ते सर्व प्रदेश मिल्या जाणपणो करी शके तेमाटे आठ प्रदेश निरावरणा छे पण केवलज्ञानमयी छे पण सर्व पदार्थ जाणी न शके जे आठ निर्मला पण असंख्याता सावरण छे तेह प्रदेशे तो केवलज्ञानादिगुण अणाणा छे. ते प्रवृत्ति करी शकता नथी. आठ प्रदेशे सर्व भाव जाणी शके नहीं. वली कोइ पूछस्ये जे ए आठ प्रदेश निरावरण केम रह्या? तेहनो उत्तर जे भगवती सूत्रे जे "एअइ वेअइ चलइ फंदइ से बंधइ" ते जे प्रदेशचलपणे वर्ते ते बंधाये तेमाटे ए आठ प्रदेश निश्चल छे. तत्त्वार्थवृत्तौ "क्रियावत्वं पर्यायोपयोगिता प्रदेशाष्टकनिश्चलता एवंप्रकाराः संति भूयांसः" तथा भगवती सूत्रे अनादिअनंत संबंध कह्यो छे, तिणे ए आठ प्रदेश अचल छे, बीजा सर्व प्रदेश कटाहगत तेल उकालतां जिम तेल उपरनो नीचे आवे छे, नीचायी उपर आवे छे तिम सर्व प्रदेश चली रह्या छे. प्रदेशने चलवे वीर्यनी चलता छे. केटलेक एकला वीर्यनी चलता माने ते न घटे, जे द्रव्यनोक्षेम जे प्रदेश ते मूकीने गुणने अल्पक्षेत्रे जवो घटे नहीं, ए तत्त्वार्थवृत्तिनो आशय छे. तिहां कम्मपयडीमध्ये वीर्यविभागने अधिकारे आत्मप्रदेशे वीर्यनो तरतमपणो कह्यो छे. ते क्षयोपशमज ए रीते छे. परंकोइ प्रदेशनो वीर्यकोइ मध्ये आव्यो

न हुवे तो सर्व प्रदेशने इंद्रियज्ञान वेत्तापणो किम पावे ? तेमाटे इम मतहत्वोनिर्धार छे. इहां इंद्रियक्षयोपशमना माननो अधिकार छे, तेह मध्ये युक्ति अनेक उपजे. पण नय भेदे धारवा ते सर्व आगम रीते सापेक्ष छेजी. अथवा " यद्यपि अभिलाप्यानां भावानामनंतभागं एवश्रुतनिबद्धस्तथापि प्रसंगतः सर्वेऽप्यनभिलाप्याः श्रुतविषयं न जानंति इति उच्यते" ए पाठ भगवती टीका मध्ये आटमे शतके उद्देशे २ छे. (सा. हरखचंद दत्ता प्रश्न पूछ्यो मकसूदाबादथी जे पुद्गलपरमाणुने विषे वर्णादिक परिणमे छे ? तेहनो उत्तर " कारणमेवनदंत्यसूक्ष्मनित्यश्चभवति परमाणुः एकरसवर्णगंधाद्विस्पर्शः कार्यलिंगीच " ए तत्त्वार्थवृत्तिनो वचन छे, जे सर्वस्कंधनो अंत्य कहेतां छेहलो कारण छे एटले द्व्यणुकादि सर्वस्कंध परमाणुथी नीपजे पण परमाणुनो कोइ कारण नथी ए अनादिअनंत शास्वत सिद्धरूप छे ते सूक्ष्म छे तेहनो परमार्थ जे एक जीवनो एक प्रदेश, तथा आकाशनो एक प्रदेश तथा परमाणु एक सर्वनी अवगाहना तुल्य छे. पण एक आकाशप्रदेशमध्ये एक जीवना असंख्याता अने अनंताजीवना अनंताप्रदेश मावे, एक प्रदेशे कर्मवर्गणापणे परिणम्या अनंता परमाणु समाइ रहे. ते माटे आकाशप्रदेशथी आत्मप्रदेश समाय वे सूक्ष्म छे, अने आत्मप्रदेशथी परमाणु समाय वे सूक्ष्म छे, तेमाटे सर्वथी परमाणु सूक्ष्म छे, तथा ते परमाणु द्रव्यपणे नित्य छे. ते एक परमाणुमे एकवर्ण, एक रस, बे फरस हवे, ते मध्ये फरस लूखो तथा चीकणो, उन्हो तथा टाढो, ए च्यार मांहेला बे हवे. लूखो उन्हो ए बे अथवा लूखो टाढो ए बे अथवा चीकणो उन्हो ए बे, अथवा चीकणो टाढो ए ए रीते हवे. तेजे परमाणु श्वेत वर्ण हवे ते विश्रसापरि-

पूरणगलननी जे हानिवृद्धि ने पूरणगलनपने तेवी ए रीते ते वर्गी पुद्गलद्रव्य छे, तेमज नित्यादिक अनंतस्वभावी छे, अनंतगुणपर्यायी छे, सदाकाल छे. कृष्णवर्णीगन्धे सा लब्धा कृत प्रश्नने वीरस्वामीनो जीव सातमीनरकथकी सिंहपने उपन्यो ते किम ? तेहनो उत्तर "सप्तम्याः उद्वृत्तः तिर्यक्ष्वेव उत्पद्यते" प्रायोऽनन्तरेण तथा श्रीविशेषावश्यकमध्ये "सत्तममहिनेरइया ते उव्वाउ अणंतरुव्वट्टा नयपावेइमणुस्सं" इतिवचनात् तिरिजं-चमध्येऽप्यजेमनुष्यनोऽरवंइनिपातकनहीं. तथा सिंहथी नरके गये पण सर्वसिंह नरके जावे ए नियम नथी. उक्तंच "बालादाटीयरुविहट्टंति नग्गागयाउ अड्रूगजंति पुणोनिरएसुवहुहेणं न उग नियमो" ते माटे नियम नथी मनुष्य मरी चक्रवर्ति थया ते किम घटे ? तथाच कल्पसूत्रटीकायांमनुष्यसंयोगेपाल्यायः "सुरनेरइएहिंचियहवंतिहरि अरिहंचक्किबलदेवाइञ्जुत्तत्वात्कथंमनुष्योभूत्वा-चक्रवर्तिजातः" तत्रोत्तरं "यथास्मिन्क्षेत्रेदशाश्चर्याणिजातानि तथा तस्मिन्क्षेत्रेइदमाश्चर्यमन्येगणितमस्ति पुनरत्रनागकुमारतरतीर्थ-करोजातोऽस्तिइदं विस्मारयितनाद्वैवमद्रवृत्तेवीरचरित्रेचाद्वष्टव्यं" तथा सर्वार्थसिद्धविमानआश्री पूछ्युं तेहनो उत्तर. जे "श्रीनेमिनाथस्य सप्तमेभवे स्वयंवर यशोमती भार्या, तथा द्वावपि अपराजिते-महाविमानेदेवत्वेनोत्पन्नौ" इति भवभावनावृत्तिकायां. तथा स्त्रीने वज्रऋषभनाराचसंहननं अस्ति "तथाबृहत्संग्रहणी कल्पसूत्रांमध्ये नामकर्मोदयभेगार्थिकास्तु सर्वाणि संहननं तस्य भंगवाकृता, दिगं-बराम्नायेति गोम्मटसारे पुत्रनेयवाक्यं च मनुष्यणीषु कर्मबन्ध इतिवाक्यात्, तथादिगम्बरीयपरिभंगायोनिनंतस्त्रीणामत्र भेनिन्द्यरूपं ततयथमसंहननं द्वितीयसंहननं पश्चात् तृतीयसंहननं उदितसं-स्थानेतिनानिरितिनीतिः" दंडकने अधिकारे संक्षेप विस्तर व्याख्या

उघारे तेहने जीतनी श्रद्धा नथी पण आगमनी आज्ञाये इम छे जे गीतार्थनो करयो जीत मानवो तिहां साख छे.

असढाइन्नवणज्झ, गीअत्थअवारीयंतिमज्झत्था ।
आयरणाविहुआणंति, वयणओसुबहुमन्नंति ॥१॥

ए वचनथी उत्तम आचार्ये जे जीत करयो ते प्रमाण छे. तथा चूर्णिकार टीकाकारना कीधा जे बीजा ग्रंथ ते मध्ये ते वचन ते पण पंचांगीनेपरे प्रमाण करवो इति. तथा सिद्धांतसें सा टोकर मसुखे पूछयो प्रश्न तेहनो उत्तर जे तुम्हे पूछ्युं जे पुस्तकनी आगमनी पूजा किम छे ? केटला प्रकारनी छे तेहनो उत्तर जे जननी नो पूजा पुस्तकनी नथी अने पंचगगन ज्ञानपूजानी गाथा छे ते गाथा ।

नमंतसामंतनहीवनाहं, देवेहिंपुज्झंमुविहीयपुव्वं ।
भत्तिहिमुत्तित्तमणिदामएहिं, मंदारपुप्फपसवेहि-
नाणं ॥ १ ॥
तहेवसद्दामणिमुत्तिएहिं, सुगंधपुप्फेहिंवरंसुएहिं ।
पूयंति वंदंति नमंति नाणं, नाणंसलाभायभवक्ख-
याय ॥ २ ॥

आशयथी मनि कहेतां रत्नजाति, पुष्प कहेतां फूलजाति अमुकवस्त्रजाति मोतीनीजातिना पूजाना अक्षर छे. तथा श्रीपालचरित्रे तथा नवपदप्रकरण श्रीरत्नप्रभसूरिकृतमध्येसिद्धचक्रनी पूजामध्ये ज्ञानपदनी पूजा अष्टप्रकारे करी छे. तथा शत्रुंजयमहात्म्यमध्ये धनेश्वरसूरिजीए सोनाने वरखे ज्ञानपूजानो

धर्मिपद्गल बांध्यो हवे पहलो पंचेंद्रि। तिर्यंच मनुष्य मर्गने
बादरएकेन्द्रियपर्यापामे उपन्या छे. औदारिकशरीरने उदये
भोगवता पछे लब्धिरूप उदय थाइ. तथा गर्भ विजयमध्ये ३२
हजार देश छे आर्य २५ जणाय छे पण अक्षर दीठा नथी.
तथा महानिशीथे सुमतिनागिल थया ते परमाधार्मि थया ते अनेक
पुद्गलपरावर्त्त संसारभम्यो ते जे समकीतनो अर्धपुद्गलपरावर्त्त
संसारभमे अधिकोभमे नही ते किम मिल्यो ? एहनो पदुत्तर
जे पछवाडेने अर्धपुद्गलपरावर्त्त कह्यो ते कालपुद्गलपरावर्त्त लीधो
छे अने जिहां अनेक पुद्गलपरावर्त्त कह्या छे ते कालपुद्गलप-
रावर्त्तमध्ये द्रव्यपुद्गलपरावर्त्त अनेक थाइ. तथा अभव्यजीव
आश्री श्रीभुवनभानुकेवलीचरित्रमध्ये अव्यवहारराशिमध्येथी
निकल्या ए पाठ दीठो ते अव्यवहारमध्ये अभव्य छे इम ठहरता
छेजी. तथा मासआश्री लिख्यो ते आचारांगटीकामध्ये तथा
आचारांगचूर्णिमध्ये तथा निशीथचूर्णिमध्ये एहज अर्थ कह्यो
ते बीजे कोणे नवो कल्पायेजी. तथा जे साधु अध्यापकपणे
जे असुज्झताआहारादिक करे तेहने बंध नही आत्मानो
कर्त्तापणो स्वरूपानुयायी हवे तेवारे जे हिंसादिक ते प्रशस्त
छे अने प्रशस्तआस्रवनी आलोयण नथी वंदित्तुमध्ये "आपरि-
यमप्पसत्थे" इत्यादि पाठ जोज्यो. ए चर्चा सुहडासुहडे कहेवराइ.